मैं कहता आंखन देखी

प्रवचन-क्रम

1. सत्य सार्वभौम है...3
2. चिन्मय कौन? अजन्मा क्या?...24
3. आकाश जैसा शाश्वत है सत्य...45
4. धर्म की गति और तेज हो!...66
5. मंदिर के आंतरिक अर्थ..81
6. तीर्थ: परम की गुह्य यात्रा..100
7. तिलक-टीकेः तृतीय नेत्र की अभिव्यंजना.......................................126
8. मूर्ति-पूजाः मूर्त से अमूर्त की ओर..146
9. ज्योतिषः अद्वैत का विज्ञान...169 10..ज्योतिष अर्थात अध्यात्म
.... 187
11...मैं कौन हूं?
.... 205
12...धर्म क्या है?
.... 209
13...विज्ञान की अग्नि में धर्म और विश्वास
.... 211
14..मनुष्य का विज्ञान
.... 215
15..विचार के जन्म के लिएः विचारों से मुक्ति
.... 218
16...जीएं और जानें
.... 225
17..शिक्षा का लक्ष्य
.... 229
18...जीवन-संपदा का अधिकार
.... 232
19..समाधि योग
.... 235
20...जीवन की अदृश्य जड़ें
.... 237
21..अहिंसा क्या है?
.... 240
22...आनंद की दिशा
.... 242

मैं कहता आंखन देखी
पहला प्रवचन

सत्य सार्वभौम है

ओशो, आपका साहित्य पढ़ा है। आपको सुना भी है। आपकी वाणी बड़ी सम्मोहक और बातें बड़ी साफ हैं। आप कभी महावीर पर बोलते हैं, कभी कृष्ण पर चर्चा करते हैं, कभी बुद्ध की बातें करते हैं, कभी क्राइस्ट और मोहम्मद पर भी बहुत कुछ कह डालते हैं। गीता की अत्यंत प्रभावोत्पादक मीमांसा करते हैं। वेद और उपनिषद का विवेचन करने में भी नहीं चूकते। यहां तक कि गिरजाघरों में जाकर भी प्रवचन कर आते हैं। ऊपर से आप कहते हैं कि उपरोक्त व्यक्तियों से मैं किसी से भी प्रभावित नहीं हूं। मेरा इनसे कोई लेना-देना नहीं है। इनको मानते भी नहीं हैं। उधर प्राचीन मान्यताओं और शास्त्रों पर निरंतर प्रहार करते हैं, धर्मों की बुराई करते हैं। फिर आप क्या अपना पंथ या मत चलाना चाहते हैं? या आप यह बताना चाहते हैं कि आपका ज्ञान अपार है? या आप लोगों को कनफ्यूज करना चाहते हैं? आठों पहर शब्द ही बोलते हैं, शब्दों से ही समझाते हैं, सूचनाएं देते हैं; और शब्दों की पकड़ से कहीं पहुंचोगे नहीं, यह भी जताते रहते हैं! कहते आप यह हैं कि मुझे मानना नहीं, पकड़ना नहीं, नहीं तो वही भूल हो जाएगी; और निषेध निमंत्रण है, ऐसा भी आप दर्शाते हैं। तो कृपया यह बताएं कि आप क्या हैं? कौन हैं? और क्या करना चाहते हैं? क्या कहना चाहते हैं? आपका मकसद क्या है?

पहले तो महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या जीसस, उनसे मैं प्रभावित नहीं हूं--इसका अर्थ।
धर्म की एक खूबी है कि वह एक अर्थ में सदा पुराना है। इस अर्थ में, कि वैसी अनुभूति अनंत लोगों को हो चुकी है। धर्म की कोई अनुभूति ऐसी नहीं है कि कोई व्यक्ति कहे कि वह मेरी है। इसके दो कारण हैं। एक तो धर्म की अनुभूति होते ही "मेरा" मिट जाता है। इसलिए "मेरे" का दावा इस जगत में सब चीजों के लिए हो सकता है, सिर्फ धर्म की अनुभूति के लिए नहीं हो सकता। सिर्फ वही अनुभूति "मेरे" की सीमा के बाहर पड़ती है, क्योंकि उसकी अनिवार्य शर्त है कि "मेरा" मिट जाए तो ही वह अनुभूति होती है। इसलिए कोई व्यक्ति धर्म की अनुभूति को "मेरी" नहीं कह सकता। न ही कोई व्यक्ति धर्म की अनुभूति को नई कह सकता है। क्योंकि सत्य नया और पुराना नहीं होता। इस अर्थ में मैं महावीर और जीसस, कृष्ण और क्राइस्ट के नाम, और औरों के नाम भी लेता हूं। उन्हें अनुभूति हुई है। लेकिन जब मैं कहता हूं, मैं उनसे प्रभावित नहीं हूं, तो मेरा मतलब यह है कि मैं जो कह रहा हूं वह मैं उनसे प्रभावित होकर नहीं कह रहा हूं। मैं खुद भी जान कर कह रहा हूं। और अगर मैं उनका नाम भी ले रहा हूं तो चूंकि मेरे जानने से उनका मेल खाता है इसीलिए ले रहा हूं। मेरे लिए कसौटी मेरा अनुभव है। वह कसौटी पर उन्हें भी मैं ठीक पाता हूं, इसलिए उनके नाम लेता हूं। इसलिए प्रभावित उनसे जरा भी नहीं हूं। मैं जो भी कह रहा हूं, वह उनसे प्रभावित होकर नहीं कह रहा हूं। मैं जो भी कह रहा हूं, अपने ही अनुभव से कह रहा हूं। लेकिन मेरे अनुभव पर वे लोग भी खरे उतरते हैं। इसलिए उनका नाम भी ले रहा हूं। वे मेरे लिए गवाह हो जाते हैं। मेरे अनुभव के लिए वे भी गवाह हैं।
लेकिन इस अनुभूति को, जैसा कि मैंने कहा कि नया नहीं कहा जा सकता, लेकिन एक दूसरे अर्थों में इसे बिल्कुल नया भी कहा जा सकता है। और यही धर्म का बुनियादी रहस्य और पहेली है। उसे नया इसलिए कहा जाता है कि जिस व्यक्ति को भी कभी वह अनुभव होगा उसके लिए बिल्कुल ही नया है। उसे इसके पहले नहीं हुआ है। किसी और को हुआ होगा। लेकिन किसी और के होने से उसका क्या लेना-देना है! जिस व्यक्ति को भी अनुभव होगा उसके लिए नया है। उसके लिए इतना नया है कि वह इसकी तुलना भी नहीं कर सकता कि यह कभी हुआ होगा या किसी को हुआ होगा। जहां तक उस व्यक्ति की चेतना का संबंध है, यह अनुभूति पहली ही दफे हुई है।

और फिर धर्म की अनुभूति इतनी ताजी और कुंआरी है, वर्जिन है, कि जब भी किसी को होगी उसे यह ख्याल भी नहीं आ सकता कि यह पुरानी हो सकती है। वह जैसे फूल सुबह खिला हो, और उसकी पंखुड़ी पर ओस हो और अभी सूरज की किरण पड़ी हो, इतनी ताजी है। इस फूल को देख कर, जिसने पहली दफे यह फूल देखा हो, वह यह नहीं कह सकता कि यह फूल पुराना है। हालांकि रोज सुबह फूल उगते रहे हैं, खिलते रहे हैं; और रोज सुबह धूप और ओस और सूरज की किरणों ने नये फूलों को घेरा है; रोज किसी की आंखों ने उन फूलों को देखा होगा। लेकिन जिस आदमी ने पहली दफे इस फूल को देखा है, वह यह सोच भी नहीं सकता कि यह पुराना हो सकता है। यह इतना नया है कि अगर वह यह घोषणा करे कि सत्य बिल्कुल पुराना कभी नहीं होता, सदा नया ही है, एकदम मौलिक ही है, तो भी गलत नहीं है।
धर्म को हम इसलिए पुरातन और सनातन कह सकते हैं, क्योंकि सत्य सदा से है। और धर्म को हम इसलिए नया और नवीनतम कह सकते हैं, नूतन कह सकते हैं, क्योंकि सत्य का अनुभव जब भी होता है, तो जिस व्यक्ति पर भी वह आघात पड़ता है, उसकी प्रतीति एकदम नये और ताजे की और कुंआरे की है। यदि कोई व्यक्ति इन दो में से कोई भी एक धारा पकड़ ले तो वह व्यक्ति कभी असंगत मालूम नहीं पड़ेगा। दो में से कोई भी एक धारा पकड़ ले तो वह कभी असंगत नहीं मालूम पड़ेगा। अगर वह कहे कि सत्य सनातन है और कभी न कहे कि सत्य नया है, तो आपको कभी कोई अड़चन और असंगति दिखाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि कोई इनकंसिस्टेंसी नहीं है। कोई व्यक्ति पकड़ ले कि सत्य नया है और नूतन है... ।
गुरजिएफ से पूछेंगे तो वह कहेगाः पुराना है, सनातन है। कृष्णमूर्ति
से पूछेंगे तो वे कहेंगेः नया है, बिल्कुल नया है। पुराने से कुछ वास्ता ही नहीं। पुराना है ही नहीं। ये दोनों व्यक्ति बिल्कुल ही संगत मालूम पड़ेंगे। तो जो सवाल आप मुझसे पूछ सकते हैं वह गुरजिएफ से नहीं पूछ सकते। वह सवाल कृष्णमूर्ति से भी नहीं पूछ सकते। लेकिन मेरी अपनी प्रतीति ऐसी है कि यह अर्ध-सत्य है। ये दोनों अर्ध-सत्य हैं। अर्ध-सत्य सदा ही संगत हो सकता है। कंसिस्टेंट हो सकता है। पूर्ण सत्य सदा ही असंगत होगा, इनकंसिस्टेंट होगा। क्योंकि पूर्ण में विरोधी को भी समाहित करना होगा। अधूरे में हम विरोधी को छोड़ सकते हैं।
एक आदमी कहता है प्रकाश ही प्रकाश है बस सत्य, तो अंधेरे को असत्य कर देता है। उसके असत्य करने से अंधेरा छूट नहीं जाता, लेकिन वह संगत हो जाता है। जब अंधेरे को इनकार ही कर दिया तो अब कोई सवाल न रहा। उसे कोई संगति बिठालने की जरूरत न रही। उसके वक्तव्य सीधे, साफ और गणित के जैसे हो सकते हैं। उसके वक्तव्य में पहेली नहीं रह जाएगी। जो आदमी कहता है अंधेरा ही अंधेरा है, प्रकाश धोखा है, उसकी भी कठिनाई नहीं है।
कठिनाई उस आदमी की है जो कहता है कि अंधेरा भी है और प्रकाश भी है। और
जो आदमी दोनों को स्वीकार करता है, वह किसी गहरे अर्थ में यह बात भी स्वीकार करेगा कि दोनों--अंधेरा और प्रकाश--एक ही चीज के दो छोर हैं। अन्यथा प्रकाश के बढ़ने से अंधेरा नहीं घट सकता, अगर दोनों अलग चीजें हों। अन्यथा प्रकाश के कम होने से अंधेरा नहीं बढ़ सकता, अगर दोनों अलग चीजें हों। लेकिन प्रकाश को कम-ज्यादा करने से अंधेरा कम-ज्यादा होता है। अर्थ साफ है, कि अंधेरा कहीं प्रकाश का ही हिस्सा है, उसका ही दूसरा छोर है। इसे छुओ तो वह भी प्रभावित हो जाता है।
मैं पूरे ही सत्य को कहने की कोशिश में कठिनाई में पड़ता हूं। तो मैं दोनों बातें एक साथ कहता हूं कि सत्य सनातन है, नया कहना गलत है; और कह भी नहीं पाता कि मैं दूसरी चीज भी कहना चाहता हूं कि सत्य सदा नया है, पुराना कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। यहां मैं सत्य को उसकी पूरी की पूरी स्थिति में पकड़ने की कोशिश में हूं। और जब भी सत्य को उसकी पूरी स्थिति में पकड़ा जाएगा, जब उसके अनेकांत में पकड़ा जाएगा, तो विरोधी वक्तव्य एक साथ देने होंगे। महावीर का स्यातवाद ऐसे ही विरोधी वक्तव्यों का संतुलन है--एक ही साथ। तो ठीक जो कहा है पहले वचन में, दूसरे में उसके विपरीत बोलना पड़ेगा। क्योंकि उससे जो विपरीत शेष रह गया है, उसे भी समाहित करना है, उसे भी कॉम्प्रिहेंड करना है। अगर वह बाहर रह गया तो यह सत्य पूरा नहीं होगा। इसलिए जो सत्य बहुत साफ दिखाई पड़ते हैं और सुलझे हुए दिखाई पड़ते हैं,
वे अधूरे होते हैं। पूरे सत्य की अपनी मजबूरी है। वही उसका सौंदर्य भी है,

वही उसकी जटिलता भी है। लेकिन वह जो विपरीत को भी समाहित कर लेना है, वही सत्य की शक्ति भी है।
असत्य अपने से विपरीत को समाहित नहीं कर सकता। यह बहुत मजे की बात है! असत्य अपने से विपरीत को समाहित नहीं कर सकता। असत्य अपने से विपरीत के विरोध में खड़े होकर ही जीता है। लेकिन सत्य अपने से विपरीत को भी पी जाता है। तो एक अर्थ में असत्य कभी भी बहुत उलझा हुआ नहीं होता, सीधा-साफ होता है। लेकिन सत्य में उलझाव होंगे, क्योंकि अस्तित्व में उलझाव हैं। और सारा जीवन विरोधों से निर्मित है। बिना विरोध के जीवन में एक भी चीज नहीं है। हां, हमारा मन जो है, हमारा तर्क जो है, वह विरोध से निर्मित नहीं है। तर्क जो है हमारा वह संगत होने की चेष्टा है और अस्तित्व जो है वह असंगत होना ही है। अस्तित्व में सब असंगतियां एक साथ खड़ी हैं।
जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है। तर्क में विपरीत को काट कर हम चलते हैं, इसलिए तर्क साफ-सुथरा है। तर्क साफ-सुथरा है, क्योंकि जन्म है तो जन्म है और मृत्यु है तो मृत्यु है। ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। तो हम तर्क में कहते हैंः अ अ है; अ ब नहीं है। हम कहते हैंः जन्म जन्म है, जन्म मृत्यु नहीं है। फिर मृत्यु मृत्यु है, और मृत्यु जन्म नहीं है। तो हम साफ-सुथरा तो कर लेते हैं, गणित तो बिठा लेते हैं, लेकिन जिंदगी का जो राज था वह चूक गए।
इसलिए तर्क से कभी सत्य नहीं पकड़ा जा सकता। क्योंकि तर्क, संगत होने
की चेष्टा है; और सत्य, असंगत होना ही है। वह असंगति के बिना सत्य का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए जो-जो तर्क से चलेंगे वे संगति को पहुंच जाएंगे, सत्य को नहीं। कंसिस्टेंट होंगे, बिल्कुल संगत होंगे। उन्हें पराजित नहीं किया जा सकता। लेकिन चूक गए, उससे चूक गए, जो था।
मैं तार्किक नहीं हूं, यद्यपि निरंतर तर्क का उपयोग करता हूं। लेकिन तर्क का उपयोग ही इसलिए करता हूं कि किसी सीमा पर ले जाकर तर्क के बाहर धक्का दिया जा सके। तर्क को न थकाया जाए तो उसके पार होने का उपाय भी नहीं है। सीढ़ी से चढ़ता हूं, लेकिन सीढ़ी से प्रयोजन नहीं है; एक क्षण सीढ़ी को छोड़ देने से प्रयोजन है। तर्क का उपयोग करता हूं कि तर्कातीत का ख्याल आ जाए। तर्क से कुछ सिद्ध नहीं करना चाहता, तर्क से सिर्फ तर्क को ही असिद्ध करना चाहता हूं। इसलिए मेरे वक्तव्य अतार्किक होंगे, अतर्क्य होंगे, इल्लाजिकल होंगे। और मैं यह कहना चाहूंगा कि जहां तक मेरे वक्तव्य में तर्क दिखाई पड़े वहां तक समझना कि मैं सिर्फ विधि का उपयोग कर रहा हूं। जहां तक तर्क दिखाई पड़े वहां तक मैं सिर्फ इंतजाम बिठा रहा हूं, साज जमा रहा हूं। गीत शुरू नहीं हुआ है। जहां से तर्क की रेखा छूटती है वहीं से मेरा असली गीत शुरू होता है; वहीं से साज बैठ गया और अब संगीत शुरू होता है।
लेकिन जो साज के बिठाने को संगीत समझ लेंगे उनको बड़ी कठिनाई होगी। वे मुझसे कहेंगे कि यह क्या मामला है? पहले तो हथौड़ी लेकर और तबला ठोंकते थे, अब हथौड़ी क्यों रख दी?
हथौड़ी से तबला ठोंक रहा था, वह कोई तबले का बजाना नहीं था। वह सिर्फ तबला बजने की स्थिति में आ जाए, फिर तो हथौड़ी बेकार है। हथौड़ी से कहीं तबले बजे हैं?
तो तर्क मेरे लिए सिर्फ तैयारी है अतर्क्य के लिए। और यही मेरी कठिनाई हो जाती है कि जो मेरे तर्क से राजी होकर चलेगा वह थोड़ी ही देर में पाएगा कि मैं कहीं उसे अंधेरे में ले जा रहा हूं। क्योंकि जहां तक तर्क दिखाई पड़ेगा वहां तक प्रकाश है, साफ-सुथरी हैं चीजें; लेकिन उसे लगेगा कि मैंने सिर्फ प्रकाश का प्रलोभन दिया था और अब तो मैं अंधेरे में सरकने की बात कहने लगा। इसलिए वह मुझसे नाराज होगा और वह कहेगा, यहां तक ठीक है, इसके आगे हम कदम नहीं रख सकते। अब आप अतर्क्य की बात कर रहे हैं, और हम तो भरोसा किए थे तर्क का। और जो आदमी अतर्क्य से मोहित है वह मेरे साथ चलेगा नहीं, क्योंकि वह कहेगा, आप तर्क की बातें कर रहे हैं, हम आपके साथ नहीं चलते हैं। मेरे साथ दोनों ही कठिनाई में पड़ेंगे। तर्क वाला थोड़ी दूर चल सकेगा, फिर इनकार करेगा। अतर्क्य वाला चलेगा ही नहीं। उसे पता ही नहीं है कि थोड़ी दूर चल ले तो मैं अतर्क्य में ले जाऊंगा।

लेकिन मेरी समझ ऐसी है कि जिंदगी ऐसी है। तर्क साधन बन सकता है, साध्य नहीं। इसलिए मैं निरंतर तर्कसंगत बातों के आगे-पीछे, कहीं न कहीं, अतर्क्य वक्तव्य भी दूंगा। वे असंगत मालूम पड़ेंगे, वे बिल्कुल असंगत मालूम पड़ेंगे। लेकिन वे बहुत सोच-विचार कर दिए गए हैं, वे अकारण नहीं हैं; असंगत हो सकते हैं, अकारण नहीं हैं। मेरी तरफ कारण साफ है।
तो एक दफे मैं कहूंगा कि महावीर और बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट, उनसे मैं जरा भी प्रभावित नहीं हूं। हूं भी नहीं। उनसे प्रभावित होकर मैंने कुछ भी नहीं कहा है। जो भी मैंने कहा है वह मैंने जान कर कहा है। लेकिन जब मैंने जाना है तब मैंने यह भी जाना कि जो उन्होंने कहा है वह यही है। इसलिए जब मैं उनका वक्तव्य देने की बात करूंगा, या उनके संबंध में कुछ कहूंगा, तो मैं यह भूल ही जाऊंगा कि मैं उनके संबंध में कह रहा हूं। मैं पूरा का पूरा खड़ा ही हो जाऊंगा। मैं खुद ही खड़ा हो जाऊंगा उनके वक्तव्य में। क्योंकि तब मुझे कोई फासला ही नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए जब भी मैं उनके संबंध में कुछ कहने जाऊंगा तो बहुत गहरे में मैं अपने संबंध में ही कह रहा हूं। इसलिए मैं फिर कोई शर्त नहीं रखूंगा, मैं फिर पूरे भाव से ही डूब जाऊंगा उनको कहने में।
तो जिस व्यक्ति ने यह सुना कि मैं उनसे प्रभावित नहीं हूं और फिर एक दफा मुझे भाव में डूबा हुआ उनके संबंध में बात करते देखा, उसकी कठिनाई स्वाभाविक है। उसकी कठिनाई बिल्कुल स्वाभाविक है। वह कहेगा कि प्रभावित नहीं हैं तो उनकी बात करते वक्त इतने क्यों डूब जाते हैं? इतना तो जो प्रभावित है वह भी नहीं डूबता! जो प्रभावित है वह भी फासला रखता है।
मेरे देखे तो जो प्रभावित है उसको फासला रखना ही पड़ेगा। क्योंकि जो प्रभावित है वह अज्ञानी है। प्रभावित हम सिर्फ अज्ञान में होते हैं; ज्ञान में प्रभाव का, इनफ्लुएंस का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। ज्ञान में हम जानते हैं। ज्ञान में हम प्रभावित नहीं होते, लेकिन सम-ध्वनियां सुनते हैं, रिजोनेंसेज सुनते हैं। जो हम गा रहे हैं वही गीत किसी और से भी सुनते हैं। और वह गीत, और वह गाने वाला, और वह सब इतना एक हो जाता है कि वहां प्रभावित होने की भी दुई और फासला नहीं है। प्रभावित होने के लिए भी दूसरा होना जरूरी है, अनुयायी होने के लिए भी दूसरा होना जरूरी है। उतना फासला भी नहीं है।
इसलिए जब मैं महावीर के किसी वक्तव्य की व्याख्या करने लगूं या कृष्ण
की गीता पर बोलने लगूं तब मैं करीब-करीब अपने ही वक्तव्य की व्याख्या कर रहा हूं। कृष्ण केवल बहाना रह जाते हैं। मैं बहुत जल्दी भूल जाता हूं। कब शुरू किया था उन पर, यह बात खतम हो जाती है। उनसे शुरू ही करता हूं, अंत तो मैं अपने पर ही कर पाता हूं। कब वे छूट गए, यह भी मुझे पता नहीं!
अब यह बहुत मजे की बात है कि मैंने गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी। कभी नहीं पढ़ी पूरी। कई दफे शुरू की है। दो-चार-दस पंक्तियां पढ़ीं और मैंने कहा ठीक है, सो मैंने वहीं बंद कर दी। अब जब गीता पर बोल रहा हूं तब पहली दफे ही सुन रहा हूं। इसलिए गीता की व्याख्या करने का तो उपाय नहीं है मेरे पास। क्योंकि व्याख्या तो वह करे जिसने गीता पर अध्ययन किया हो, विचार किया हो, सोचा-समझा हो।
अब यह बहुत बड़े मजे की बात है कि कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त मैं उठा कर
रख देता हूं, लेकिन साधारण सी कोई किताब पढ़ता हूं तो आद्योपांत पढ़ जाता हूं, क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। एक बिल्कुल साधारण सी किताब मैं पूरी पढ़ता हूं शुरू से आखिर तक। उसको मैं रुक नहीं सकता; क्योंकि वह मेरा अनुभव नहीं है। लेकिन कृष्ण की किताब उठाता हूं तो दो-चार पंक्तियां पढ़ कर रख देता हूं, कि बात ठीक है। उसमें आगे मेरे लिए कुछ खुलेगा और, ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता।
तो मुझे कोई जासूसी उपन्यास पकड़ा जाए तो मैं पूरा पढ़ता हूं; क्योंकि मुझे सदा उसमें आगे खुलने को बचता है। लेकिन कृष्ण की गीता मुझे ऐसे ही लगती है जैसे कि मैंने ही लिखी हो। इसलिए ठीक है, जो लिखा होगा वह मुझे पता है। वह बिना पढ़े पता है। इसलिए जब गीता पर बोल रहा हूं तो मैं गीता पर नहीं बोल रहा हूं; गीता सिर्फ बहाना है। शुरुआत गीता से होती है, बोल तो मैं वही रहा हूं, जो मुझे बोलना है, जो मैं बोल सकता हूं, वही बोल रहा हूं। और अगर

आपको लगता है कि इतनी गहरी व्याख्या हो गई, तो वह इसलिए नहीं कि मैं कृष्ण से प्रभावित हूं, बल्कि इसलिए कि कृष्ण ने वही कहा है जो मैं कह रहा हूं।
उनमें रिजोनेंस है। मैं जो कह रहा हूं वह व्याख्या नहीं है गीता की। तिलक ने जो कही है वह व्याख्या है, गांधी ने जो कही है वह व्याख्या है। वे प्रभावित लोग हैं।
मैं जो गीता में से कह रहा हूं वह गीता से कुछ कह ही नहीं रहा हूं। गीता जिस स्वर को छेड़ देती है वह मेरे भीतर भी एक स्वर छेड़ जाता है। फिर तो मैं अपने सुर को पकड़ लेता हूं। मैं अपनी ही व्याख्या कर रहा हूं, बहाना गीता का होगा। तो कृष्ण पर बोलते-बोलते कब मैं अपने पर बोलने लगता हूं, इसका आपको ठीक-ठीक पता उसी क्षण चलेगा जब आपको लगे कि मैं कृष्ण पर बहुत गहरा बोल रहा हूं। तब मैं अपने पर ही बोल रहा हूं।
महावीर के साथ भी वही है, क्राइस्ट के साथ भी वही है, बुद्ध और लाओत्सु
के साथ और मोहम्मद के साथ भी वही है। क्योंकि मेरे लिए ये सिर्फ नाम के फर्क हैं। मेरे लिए ये मिट्टी के दीये में जो फर्क होता है वह फर्क है, लेकिन जो ज्योति जलती है वह एक है। तो वह मोहम्मद के दीये में जली है, कि महावीर के दीये में, कि बुद्ध के दीये में, उससे मुझे प्रयोजन नहीं है।
कई बार मैं मोहम्मद, महावीर और बुद्ध के खिलाफ भी बोलता हूं। तब और जटिलता हो जाती है कि पक्ष में इतना गहरा बोलता हूं, फिर खिलाफ बोल देता हूं।
जब भी खिलाफ बोलता हूं तब मेरे खिलाफ बोलने का कारण यही होता है कि अगर कोई भी व्यक्ति दीये पर बहुत जोर देता है तो मैं खिलाफ बोलता हूं। जब भी मैं पक्ष में बोलता हूं तब ज्योति पर मेरा जोर होता है; और जब भी मैं खिलाफ बोलता हूं तब दीये पर मेरा जोर होता है। जब कोई आदमी मुझे दीये से मोहित मालूम पड़ता है, मिट्टी से मोहित मालूम पड़ता है, तब मैं एकदम खिलाफ बोलता हूं। उसकी कठिनाई स्वाभाविक है, क्योंकि उसके लिए महावीर का मिट्टी का दीया और महावीर की चिन्मय ज्योति में कोई फर्क नहीं है, वह एक ही चीज समझ रहा है।
इसलिए जब भी मुझे ऐसा लगता है कि कोई दीये पर बहुत जोर दे रहा है तब मैं बहुत खिलाफ बोलता हूं। जब भी मुझे ऐसा लगता है कि ज्योति की बात छिड़ गई तब मैं एकदम एक होकर बोलने लगता हूं। और यह फासला है। महावीर के दीये और मोहम्मद के दीये में बहुत फर्क है। उसी फर्क को लेकर तो जैन और मुसलमान का फर्क है। दीये की बनावट बहुत अलग ढंग की है। क्राइस्ट के दीये और बुद्ध के दीये में बहुत फर्क है। होगा ही। पर वे फर्क शरीर के फर्क हैं, आवरण के फर्क हैं, आकार के फर्क हैं। और जिनको भी आवरण और आकार का बहुत मोह है, मेरा मानना है कि उनको ज्योति दिखाई नहीं पड़ी है। क्योंकि जिसको भी ज्योति दिखाई पड़ जाएगी वह दीये को भूल जाएगा। ज्योति दिखाई पड़ जाए और दीया याद रह जाए, यह असंभव है। दीये की याददाश्त तभी तक है जब तक ज्योति न दिखाई पड़ी हो। अनुयायियों की हालत ऐसी है जैसे कि वे दीये के नीचे खड़े हों जहां अंधेरा होता है, और वहां से देख रहे हों। वहां से ज्योति तो नहीं दिखाई पड़ती, दीये की पेंदी दिखाई पड़ती है। सबकी पेंदियां अलग हैं। और पेंदी के नीचे घना अंधेरा है। और अनुयायी वहीं खड़ा रहता है, और पेंदियों के संबंध में झगड़े और विवाद चलते रहते हैं।
तो जब भी मैं किसी को पेंदी के नीचे खड़ा देखता हूं तो मैं सख्ती से और खिलाफत में बोलता हूं। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता है। क्योंकि अनुयायी के लिए, अनुयायी होने के लिए छाया में खड़ा होना पड़ता है, उसे अंधेरे में खड़ा होना पड़ता है। दीये के नीचे खड़ा होना पड़ता है। इसलिए जितना बड़ा अनुयायी अर्थात उतने सेंटर में। परिधि के अनुयायी थोड़ा-बहुत दूसरे के बाबत भी समझ लें। लेकिन ठीक बीच में खड़े हुए अनुयायी कभी नहीं समझ पाते।
लेकिन जिसे भी दीये को देखना है उसे परिधि के बिल्कुल बाहर आ जाना चाहिए। वह अंधेरे की छाया के बिल्कुल बाहर आ जाना चाहिए। और एक बार ज्योति दिख जाए तो दीयों के फर्कों का फासला और विवाद क्या अर्थ रखता है? इसलिए मेरे लिए कोई अंतर नहीं है।

क्राइस्ट पर बोलता हूं कि कृष्ण पर, कि महावीर पर, कि बुद्ध पर, इससे मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता है। मैं एक ही ज्योति की बात कर रहा हूं जो बहुत दीयों में जली है। लेकिन उनसे मैं प्रभावित होकर नहीं बोल रहा हूं। बोल तो मैं वही रहा हूं जो मैं जानता हूं। लेकिन जब भी रिजोनेंस मुझे मिल जाती है, जब भी मुझे ऐसा लग जाता है कि दूसरी तरफ से भी वही ध्वनि आ रही है, तो इसे मैं इनकार भी नहीं कर सकता हूं। क्योंकि यह इनकार करना भी उतना ही गलत होगा। यह फिर ज्योति की तरफ पीठ करके खड़ा हो जाना हो जाएगा। यह अनुयायी ने एक गलती की है कि वह पेंदी के नीचे खड़ा हुआ है। फिर यह पीठ करके खड़ा हो जाता है। ये दोनों को मैं एक सी गलतियां मानता हूं।
अब अगर कृष्णमूर्ति से आप पूछेंगे तो वे रिजोनेंस भी स्वीकार नहीं करेंगे। वे यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि मुझे जो हो रहा है वह कृष्ण को हुआ होगा। वे यह भी स्वीकार नहीं करते। वे यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि मुझे जो हो रहा है वह किसी और को हुआ होगा। वे इसकी चर्चा ही नहीं चलाएंगे। इसे भी मैं गलत मानता हूं। क्योंकि सत्य इतना निर्वैयक्तिक है; और इससे कोई सत्य की गरिमा में कमी नहीं पड़ती कि वह और को भी हुआ है। गरिमा बढ़ती है, गरिमा कम नहीं होती। सत्य इतना कमजोर नहीं है कि बासा हो जाए, कि किसी और को हो गया हो तो बासा हो जाए! लेकिन इसके इनकार करने का मोह भी गलत है।
तो मेरी कठिनाई कि जहां-जहां मुझे सत्य दिखाई पड़ता है, मैं स्वीकार करूंगा। प्रभावित जरा भी नहीं हूं। और जहां-जहां सत्य के नाम पर कुछ और पकड़े हुए लोग मुझे दिखाई पड़ेंगे वहां मैं इनकार भी करूंगा और विरोध भी करूंगा। और जब भी जो करूंगा उसे पूरे मन से करूंगा, इसलिए और मुश्किल हो जाती है। जब भी जो करूंगा उसे पूरे मन से करूंगा; समझौते की मेरी वृत्ति नहीं है। और मैं मानता हूं कि समझौते से कभी कोई सत्य पर नहीं पहुंचता। तो मेरी वृत्ति ऐसी है कि जब भी मैं जो कहूंगा तब मैं पूरे प्राण से कह रहा हूं। तो अगर किसी ने ज्योति की बात की तो मैं कहूंगा कि महावीर भगवान हैं, कृष्ण अवतार हैं और जीसस ईश्वर के बेटे हैं; और किसी ने अगर दीये की बात की तो मैं कहूंगा कि अपराधी हैं, क्रिमिनल हैं। दोनों स्थिति में जिस वक्तव्य को मैं दे रहा हूं, मैं पूरा उसके साथ खड़ा हूं। और जब मैं उस वक्तव्य को दे रहा हूं तब दूसरे वक्तव्य का मुझे स्मरण भी नहीं है। क्योंकि मेरी समझ यह है कि दोनों वक्तव्य अपने में पूरे हैं और एक-दूसरे को काटते नहीं हैं। अगर मुझे ऐसा ख्याल हो कि एक-दूसरे को काटते हैं... अगर मैं आपके शरीर से कहता हूं कि यह मरणधर्मा है और आपसे कहता हूं कि आप अमृत हो, तो इन दोनों को मैं विपरीत वक्तव्य नहीं मानता। और न मैं यह मानता हूं कि ये एक-दूसरे को काटते हैं। न मैं यह मानता हूं कि इन दोनों में समझौते की कोई जरूरत है।
आपका शरीर तो मरेगा ही, इसलिए मरणधर्मा है। और अगर आप समझते हैं कि आप शरीर ही हैं तो मैं कहता हूं आप मरोगे। और इसको मैं पूरे ही बल से कहूंगा। इसमें रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं रखूंगा आपके बचने की। लेकिन आपकी आत्मा की चर्चा है तो मैं कहूंगा, आप कभी पैदा ही नहीं हुए, अजन्मा हो; मरने का कोई सवाल ही नहीं है, अमर हो, अमृत हो। ये दोनों वक्तव्य अपने में पूरे हैं। ये एक-दूसरे को कहीं काटते नहीं। इनका आयाम अलग है, इनका डायमेंशन अलग है।
इसलिए निरंतर कठिनाई हो जाती है। और फिर और कठिनाई इससे जटिल हो जाती
है कि मेरे सारे वक्तव्य चूंकि लिखे हुए नहीं हैं, बोले हुए हैं, इसलिए जटिलता और बढ़ जाती है। लिखे हुए वक्तव्य में एक तरह की निरपेक्षता होती है। वह किसी से कहा नहीं गया होता, लिखा गया होता है। सुनने वाला, पढ़ने वाला सामने नहीं होता। इसलिए उसमें वह सम्मिलित नहीं हो पाता। वह बाहर होता है। लेकिन जब बोला जाता है कुछ, तो जो सुन रहा है वह इनक्लूडेड होता है।
तो जब भी मैं कुछ बोल रहा हूं तो उस दिए गए वक्तव्य के लिए मैं अकेला जिम्मेवार नहीं हूं, वह आदमी भी जिम्मेवार है जिससे मैं बोल रहा हूं। इससे जटिलता भारी हो जाती है। जब भी मैं बोल रहा हूं तो मेरे वक्तव्य की जिम्मेवारी दोहरी है। मैं तो जिम्मेवार हूं ही, लेकिन उस वक्तव्य को उस भांति से निर्मित करवाने में वह आदमी भी जिम्मेवार है जिससे मैं बोल रहा

हूं। अगर वह न होता, उसकी जगह कोई दूसरा होता, तो मेरा वक्तव्य भिन्न होता। अगर तीसरा होता तो और भिन्न होता। और अगर मैंने शून्य में वक्तव्य दिया होता तो बिल्कुल ही भिन्न होता।
तो चूंकि मेरे सारे वक्तव्य बोले गए वक्तव्य हैं, और मैं मानता हूं कि बोले गए वक्तव्य ही जीवित होते हैं। क्योंकि वक्तव्य को जीवन दोनों से आता है--बोलने वाले से और सुनने वाले से। जब बोलने वाला अकेला बोलता है और सुनने वाला कोई भी नहीं होता तो वह इस तरह का सेतु बना रहा है जिसमें दूसरा किनारा नहीं है। वह सेतु बन नहीं सकता। वह एक किनारे पर खड़ा हुआ सेतु है। वह गिरेगा ही। वह अधर में है। इसलिए इस जगत के सब श्रेष्ठतम सत्य बोले गए सत्य हैं, लिखे गए नहीं।
अगर मैं लिखता भी हूं तो पत्र लिखता हूं, क्योंकि पत्र करीब-करीब बोला गया है। उसमें दूसरा सेतु है, उसमें दूसरा तट है, जिससे मैं सेतु बना रहा हूं। पत्र के अलावा मैंने कुछ नहीं लिखा। क्योंकि पत्र मुझे बोलने का ही एक ढंग मालूम हुआ। उसमें दूसरा मेरे सामने है कि मैं किससे बोल रहा हूं। इसलिए हजार लोगों से जब बोलता हूं तो हजार वक्तव्य हो जाते हैं; इसमें
हर बोलने वाला सम्मिलित हो जाता है। तब जटिलता भारी हो जाएगी।
लेकिन ऐसा है, और इस जटिलता को जान बूझ कर कम करने को मैं उत्सुक नहीं हूं। मेरी उत्सुकता यह है कि इस जटिलता को समझ कर भी आप इस उदघाटित सत्य की सरलता को समझ पाएं तो आपका विकास है। इस जटिलता को कम करने को मैं उत्सुक नहीं हूं। क्योंकि कम यह की जाए तो कट जाएगी। इसको सरल किया जा सकता है। लेकिन तब इसके बहुत से अंग कट जाएंगे। तब यह मुर्दा होगी कट कर। इसकी जटिलता को मैं रत्ती भर कम करने को उत्सुक नहीं हूं। उत्सुक इसमें हूं कि आप इस जटिलता के भीतर भी सरलता को खोज पाएं तो आपका विकास है।
मेरी कठिनाई कम इसमें हो जाए कि मैं इसको सरल कर दूं। वक्तव्य सीधे और गणित के कर दूं। मेरी कठिनाई बिल्कुल ही खत्म हो जाए। लेकिन मेरी कठिनाई की मुझे कोई चिंता नहीं। वह कोई कठिनाई है नहीं। आप इतनी जटिलता में भी सरलता को देख पाएं, इतने विरोध में भी निर्विरोध सत्य को देख पाएं, इतने उलटे वक्तव्यों में भी एक ही तारतम्य देख पाएं तो आपका विकास होता है, आपकी दृष्टि ऊंची उठती है। यह आप तभी देख पाएंगे जितने आप ऊपर उठेंगे। तभी यह जटिलता आपको सरल हो पाएगी।
ये पहाड़ पर चढ़ते हुए हजार रास्ते एक-दूसरे को काटते हुए बड़े जटिल हैं, लेकिन शिखर पर खड़े होकर एकदम सरल हो जाते हैं। जब सब दिखाई पड़ते हैं, इकट्ठे, एक पैटर्न में, तब मालूम पड़ता है कि सभी पर्वत शिखर की तरफ भाग रहे हैं। न तो वे किसी को काट रहे हैं और न किसी के विरोध में हैं। लेकिन जब कोई आदमी पहाड़ पर चढ़ता है अपने रास्ते पर, तब बाकी सब रास्ते गलत जाते हुए मालूम पड़ते हैं। और ऐसा आदमी जो पहाड़ की चोटी से कह रहा हो कि सब ठीक है, या कभी किसी से कह रहा हो कि यह ठीक है और दूसरा गलत है, और कभी उस दूसरे से कह रहा हो कि तेरा ठीक है और पहले वाला गलत है, तब बहुत जटिलता बढ़ जाती है। लेकिन सब वक्तव्य एड्रेस्ड हैं। मेरा प्रत्येक वक्तव्य पता-ठिकाना लिए हुए है। वह किसी से कहा गया है। और उसी से ही कहा गया है और उस विशेष स्थिति में ही कहा गया है।
अब अगर एक आदमी को मैं डांवाडोल देखता हूं उसके रास्ते पर तो मैं कहता हूं, सब गलत है, यही ठीक है। लेकिन इसको कहना चाहिए, यह जो वक्तव्य है, यह सिर्फ उसकी सुविधा के लिए है। ऊपर आकर तो वह भी जान लेगा और हंसेगा कि दूसरे रास्ते भी ले आते हैं। लेकिन अपने रास्ते पर, जब वह अधूरे में खड़ा था, अगर उसको यह ख्याल आ जाए कि बगल वाला रास्ता भी ले आता है और वह डांवाडोल हो और उस रास्ते पर जाने लगे, और यह उसकी चित्त की दशा हो जाए तो कल और तीसरा रास्ता दिखाई पड़े और उस पर जाने लगे, तो वह कभी पर्वत पर नहीं आ पाएगा। उससे तो मुझे कहना ही पड़ेगा कि तू बिल्कुल ठीक चल रहा है, और सब गलत है, तू आ। लेकिन उसके पड़ोस में कोई दूसरे रास्ते पर भी चल रहा है, और जब मैं उससे बात कर रहा हूं तो उससे भी मुझे वही सिचुएशन है। और जब ये दोनों वक्तव्य दोनों को मिल जाते हैं तो कठिनाई हो जाती है।
अब यह मैं आपसे कहूं कि महावीर और बुद्ध को यह कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। क्योंकि उनके वक्तव्य उनके सामने लिखे नहीं गए। पांच सौ साल

बाद दूसरों को दिक्कत हुई। जो सवाल आप मुझसे पूछ रहे हैं, यह बुद्ध से नहीं पूछा जा सका। पांच सौ साल बाद दिक्कत हुई, इसलिए पांच सौ साल बाद पंथ बने। पच्चीस पंथ बने। वक्तव्य दिए गए थे, लिखे गए नहीं थे। इसलिए कभी कंपेअर नहीं किए जा सके।
आपको मैंने एक बात कही थी। आपको दूसरी कही थी। उनको तीसरी कही थी। आप तीनों को कभी मौका नहीं मिला लिखित वक्तव्य का कि आप तीनों कंपेअर कर लें, तुलना कर लें कि मुझसे यह कहा, तुमसे यह कहा, उनसे यह कहा। ये वक्तव्य निजी थे और आपके भीतर डूब गए थे। जब लिखे गए तब उपद्रव शुरू हुआ। इसलिए पुराने धर्मों ने बहुत दिनों तक अपने शास्त्रों को न लिखे जाने की जिद की, कि वे लिखे न जाएं। क्योंकि लिखे जाते ही कंट्राडिक्शन साफ हो जाएंगे। जैसे ही लिखा जाएगा, पता चलेगा कि यह मामला क्या है! जब तक नहीं लिखा गया है तब तक व्यक्तिगत है। जैसे ही लिखा गया कि व्यक्तिगत नहीं रह जाता।
तो जो कठिनाई मेरे सामने है, वह बुद्ध-महावीर के सामने नहीं थी। लेकिन
अब आगे कोई उपाय नहीं है। अब तो जो भी कहा जाएगा वह लिखा जाएगा। और लिखे जाते से... कहा तो गया था व्यक्ति से, लिखे जाते से समाज की संपत्ति हो जाएगी। फिर सब इकट्ठा हो जाएगा, और उस सब इकट्ठे में फिर सूत्र खोजना मुश्किल हो जाएगा। मगर अब ऐसा होगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। और मैं मानता हूं, अच्छा है। क्योंकि बुद्ध के सामने लिखा गया होता तो बुद्ध इसका उत्तर भी दे सकते थे। पांच सौ साल बाद जब लिखा गया और जब सवाल पूछे गए तो उत्तर देने वाला कोई भी नहीं था।
इसलिए किसी ने एक वक्तव्य को ठीक माना, उसने एक पंथ बना लिया। उससे विपरीत वक्तव्य को जिसने ठीक माना, उसने दूसरा पंथ बना लिया। जिसके पास जो वक्तव्य था उसने उसके हिसाब से पंथ बना लिया। सारे पंथ ऐसे जन्मे हैं। मेरे साथ पंथ नहीं जन्म सकेंगे। क्योंकि मेरा सारा उलझाव सीधा-साफ है। कल साफ होगा ऐसा नहीं, आज ही साफ है। और मुझसे सीधी बात पूछी जा सकती है।
साथ में आपने पूछा है कि शब्दों से ही बोलता हूं और फिर भी निरंतर कहता हूं कि शब्द से कुछ कहा नहीं जा सकता है।
बोलने के लिए शब्द के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है--साधारणतः। शब्द से
ही बोला जाएगा। और फिर भी यह सत्य है कि शब्द से बोला नहीं जा सकता। ये दोनों बातें ही सत्य हैं। शब्द से ही बोला जाएगा, यह हमारी परिस्थिति है। यानी जिस सिचुएशन में आदमी है उसमें शब्द के अतिरिक्त और संवाद का कोई उपाय नहीं है। या तो हम आदमी की परिस्थिति बदलें। तो सिर्फ गहरे साधकों से बिना शब्द के बोला जा सकता है। लेकिन गहरी साधना में उनको ले जाने के पहले भी शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा। एक घड़ी आ सकती है बहुत बाद में कि बिना शब्द के बोला जा सके। लेकिन वह घड़ी आएगी बहुत बाद में, वह है नहीं। जब तक वह घड़ी नहीं है तब तक शब्द से ही बोलना पड़ेगा। निःशब्द में ले जाने के लिए भी शब्द से बोलना पड़ेगा। यह परिस्थिति है, सिचुएशन है। लेकिन सिचुएशन खतरनाक है।
शब्द से ही बोलना पड़ेगा और यह जानते हुए बोलना पड़ेगा कि शब्द अगर पकड़ लिए गए तो जो हम प्रयास कर रहे थे वह व्यर्थ हो गया। हम प्रयास कर रहे थे कि निःशब्द में ले जाएं, बोलें शब्द से। यह मजबूरी थी, कोई उपाय न था। अगर शब्द पकड़ लिए गए तो प्रयोजन व्यर्थ हो गया, क्योंकि ले जाना था निःशब्द में। इसलिए शब्द से बोल कर और शब्द के खिलाफ निरंतर बोलना पड़ेगा, वह भी शब्द में ही बोलना पड़ेगा। उसका भी कोई उपाय नहीं है। चुप हुआ जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। वैसे लोग भी हुए हैं जो इस परिस्थितिगत कठिनाई से चुप हो गए। उनके चुप होने से वे तो झंझट के बाहर हो गए, लेकिन जो उनके पास था वह दूसरों तक न पहुंच पाया।
मेरे चुप हो जाने में मुझे कोई अड़चन नहीं है। मैं चुप हो जा सकता हूं।
और कोई आश्चर्य नहीं कि कभी हो जाऊं! क्योंकि जो कर रहा हूं वह करीब-करीब, जिसको कहना चाहिए इम्पासिबल एफर्ट है, वह असंभव को संभव बनाने की चेष्टा है।
लेकिन मेरे चुप हो जाने से कुछ हल नहीं होता। आप तक कोई संवाद नहीं पहुंचता। खतरा फिर वही का वही है। पहले शब्द पकड़े जा सकते थे। उनसे डर था कि शब्द पकड़ जाएं तो जो मैं पहुंचाना चाहता था वह नहीं होगा। अब चुप्पी रह

जाएगी। अब पहुंचाने की बात ही खतम हो गई। लेकिन पहले में एक संभावना थी कि कुछ लोगों तक पहुंच जाएगा। सौ से बात करूंगा तो एक तो शब्द को बिना पकड़े जा सकेगा; निन्यानबे प्रयास व्यर्थ होंगे, एक तो सार्थक हो जाएगा! चुप रह कर वह एक भी संभव नहीं रह जाता। उसका भी उपाय नहीं रह जाता। इसलिए व्यर्थ चेष्टा करनी पड़ती है।
और मजे की बात यह है कि जिसको भरोसा है कि शब्द से कहा जा सकता है, वह बहुत ज्यादा नहीं बोलेगा। उसने थोड़ा बोल दिया, बात खत्म हो गई। लेकिन जिसे भरोसा नहीं है कि शब्द से कहा जा सकता है, वह बहुत बोलेगा। क्योंकि कितना ही बोले उसे पक्का पता है कि अभी भी पहुंचा नहीं। वह और बोलेगा, और बोलेगा, और बोलेगा। यह जो बुद्ध का चालीस साल निरंतर बोलना है सुबह से सांझ तक, यह इसलिए नहीं है कि शब्द से कहा जा सकता है इसलिए इतना बोल रहे हैं। यह इसलिए है कि हर बार बोल कर पता लगता है कि अभी भी तो नहीं पहुंचा, फिर बोलो, और ढंग से बोलो, किसी और रास्ते से बोलो, कोई और शब्द का उपयोग करो।
इसलिए चालीस साल निरंतर बोलने में बीत गए। फिर डर भी लगता है कि जब चालीस साल निरंतर बोलूंगा तो कहीं ऐसा न हो कि लोगों को शब्द पकड़ जाएं, क्योंकि चालीस साल से शब्द ही तो दे रहा हूं! इसलिए फिर निरंतर यह भी चिल्लाते रहो कि शब्द पकड़ मत लेना। पर यह स्थिति है, और इस स्थिति के बाहर जाने के लिए सिवाय इसके कोई मार्ग नहीं है। शब्द से बाहर जाने के लिए शब्द का ही उपयोग करना पड़ेगा।
यह करीब-करीब स्थिति ऐसी है, जैसे यह कमरा है। इस कमरे से बाहर जाने के लिए भी इस कमरे में दस-पांच कदम चलने पड़ेंगे--बाहर जाने के लिए भी। क्योंकि जहां हम बैठे हैं वहां से दस कदम तो उठाने ही पड़ेंगे बाहर जाने के लिए। हालांकि कोई कह सकता है कि कमरे में ही चलने से कमरे के बाहर कैसे पहुंचोगे? लेकिन कमरे में चलने के ढंग पर निर्भर करता है।
एक आदमी वर्तुलाकार चल सकता है कमरे में, गोल चक्कर काट सकता है। वह मीलों चल ले तो भी बाहर नहीं पहुंचेगा। लेकिन एक द्वार की तरफ चल सकता है। वर्तुलाकार नहीं, लीनियर होगा उसका चलना, रेखाबद्ध होगा। अगर रेखा कहीं जरा भी मुड़ गई तो चक्कर खा जाएगा कमरे के भीतर। अगर रेखा बिल्कुल सीधी रही तो दरवाजे से निकल भी सकता है। लेकिन दोनों को चलना तो पड़ेगा कमरे में ही। अगर मैं उस आदमी से कहूं, जो कमरे में कई चक्कर लगा चुका है, उससे मैं कहूं कि दस कदम चलो, बाहर निकल जाओगे। वह कहेगा, पागल हैं! दस कदम कह रहे हो, मैं मीलों चल चुका और कमरे के बाहर नहीं निकला। उसका कहना भी गलत नहीं है। वह गोल चल रहा है।
और एक बड़े मजे की बात है कि इस जगत में अगर बहुत प्रयास न किया जाए तो
सब चीजें गोल चलती हैं--सब चीजें! गति गोल है, सर्कुलर है। सब गतियां सर्कुलर हैं। अगर आप चेष्टा न करें तो सब चीजें गोल चलेंगी। सीधा चलाना बहुत एफर्ट की बात है।

हम लोग भी?

हां, सभी कुछ इस जगत में गति सर्कुलर है--चाहे एटम्स चलें, चाहे चांद-तारे चलें, चाहे आदमी की जिंदगी चले, चाहे विचार चलें--इस जगत में जो भी चलता है वह गोल चलता है। इसलिए बड़ी से बड़ी साधना सीधा चलना है। पर वह बड़ा कठिन मामला है। आपको पता ही नहीं चलता कि आप कब गोल हो गए। इसलिए ज्यामेट्री तो कहेगी कि सीधी रेखा ही नहीं खींची जा सकती। सब सीधी रेखाएं भी किसी बड़े वर्तुल के हिस्से हैं; बस धोखा देते हैं कि सीधे हैं। कोई सीधी रेखा नहीं है जगत में। स्ट्रेट लाइन खींची नहीं जा सकती है, स्ट्रेट लाइन सिर्फ डेफिनीशन में है।
यूक्लिड कहता है कि स्ट्रेट लाइन सिर्फ व्याख्या है, कल्पना है, खिंच नहीं सकती। कितनी ही बड़ी सीधी रेखा खींचें हम, पहले तो हम उसे पृथ्वी पर खींचेंगे और पृथ्वी चूंकि गोल है इसलिए वह गोल हो जाएगी। इस कमरे में हम सीधी रेखा खींच सकते हैं, लेकिन वह पृथ्वी के बड़े गोल का एक टुकड़ा है।

एक कर्व है?

हां, एक कर्व है। लेकिन कर्व इतनी छोटी है कि हमें दिखाई नहीं पड़ती। उसको हम दोनों तरफ बढ़ाए चले जाएं तो हमको पता चल जाएगा कि पूरी पृथ्वी का सर्किल लगा कर वह गोल घेरा बन गई। वस्तुतः तो खींचना मुश्किल ही है। साधना में सबसे बड़ा जो प्रश्न है, गहरे अंतर में, वह यही है कि विचार
भी वर्तुल चलते हैं, चेतना भी वर्तुल घूमती है। और जो आर्डुअसनेस है, जो तपश्चर्या है, वह इस वर्तुल के बाहर छलांग लगाने में है। लेकिन कोई उपाय नहीं है। सब शब्द वर्तुलाकार हैं। कभी हम ख्याल नहीं करते कि शब्द वर्तुलाकार हैं। सब शब्द वर्तुलाकार हैं। आप जब एक शब्द की व्याख्या करते हैं तो दूसरा शब्द उपयोग करते हैं।
अगर आप डिक्शनरी उठा कर देखें, उसमें देखें कि मनुष्य, तो लिखा है आदमी। और आदमी का शब्द उठा कर देखें, तो लिखा है मनुष्य। यह तो बड़ा पागलपन है। यानी तुम्हें दोनों का ही पता नहीं है, इसका मतलब यह हुआ! लेकिन डिक्शनरी पढ़ने वालों को कभी ख्याल में नहीं आता कि डिक्शनरी बिल्कुल सर्कुलर है। उसमें एक जगह जो व्याख्या दी गई है वही व्याख्या उस शब्द के लिए फिर वहां दे दी गई है। इसका फल क्या हुआ? इससे मतलब क्या हुआ? मनुष्य आदमी है और आदमी मनुष्य है, तो हम वहीं के वहीं खड़े हैं। इससे व्याख्या हुई कहां?
सारी व्याख्याएं वर्तुलाकार हैं, सारे सिद्धांत वर्तुलाकार हैं। एक सिद्धांत को समझाने के लिए दूसरे का उपयोग करना, दूसरे के लिए फिर उसी का करना पड़ता है। पूरी चेतना वर्तुलाकार है। इसलिए बूढ़े आखिरी अवस्था में करीब-करीब बच्चों जैसे हो जाते हैं। वर्तुल पूरा हो गया।
शब्द कितने ही बोले जाएं, वर्तुल में ही घूमते हैं। शब्दों की बनावट वर्तुलाकार है। सीधी रेखा में वे चल नहीं सकते। अगर आप सीधी रेखा में चलें तो शब्द के बाहर पहुंच जाएं। पर शब्दों में हम जीते हैं, इसलिए अगर मुझे शब्दों के खिलाफ भी कुछ कहना है तो शब्दों में ही कहना पड़ेगा। यह बड़ा पागलपन है। लेकिन इसमें मेरा कसूर नहीं है; ऐसी स्थिति है।
तो शब्द बोलता रहूंगा; शब्द के खिलाफ बोलता रहूंगा। इस आशा में शब्द बोलूंगा कि शब्द के बिना आप समझ नहीं सकते हैं। इस आशा में शब्द के खिलाफ बोलूंगा कि शायद शब्द की पकड़ से बच जाएं। अगर ये दोनों घटनाएं घट सकें तो ही मैं आपको जो कहना चाहता हूं वह पहुंचा पाता हूं। अगर आप सिर्फ मेरे शब्द समझ गए तो भी चूक गए। अगर आप शब्द ही न समझे तो भी चूक गए। शब्द तो मेरे समझने ही पड़ेंगे, लेकिन शब्द के साथ-साथ जो निःशब्द का इंगित है वह भी समझना पड़ेगा।
इसलिए शास्त्रों के खिलाफ बोलता रहूंगा, और आज नहीं कल मेरे वचन सब शास्त्र बन जाएंगे। सब शास्त्र इसी तरह बने हैं। ऐसा एक भी कीमती शास्त्र नहीं है जिसमें शब्द के खिलाफ वक्तव्य न हो। इसका मतलब यह हुआ कि एक भी ऐसा शास्त्र नहीं है जिसमें शास्त्र के खिलाफ वक्तव्य न हो--चाहे उपनिषद हों और चाहे गीता हो और चाहे कुरान हो और चाहे बाइबिल हो, चाहे महावीर, चाहे बुद्ध हों। तो ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि मेरे साथ कुछ भिन्न हो जाएगा। वही असंभव कोशिश चलती है, वही चलेगी। शब्द के खिलाफ बोल-बोल कर शब्द बहुत बोल चुका होऊंगा, कोई न कोई उन्हें पकड़ लेगा और शास्त्र बन ही जाएंगे।
लेकिन इस डर से बोलना बंद नहीं किया जा सकता। क्योंकि सौ के साथ एक के निकलने की संभावना है। न बोलने के साथ एक की भी संभावना खो जाती है। फिर डर इसलिए भी नहीं है कि मेरे शब्दों और शास्त्रों के खिलाफ बोलने वाला कोई न कोई फिर मिल जाएगा, इसलिए डर नहीं है।
अब यहां एक दूसरी उलझन खड़ी हो जाती है। वह यह है कि इस जगत में मेरा काम कभी भी कोई वही आदमी करेगा जो मेरे खिलाफ बोलेगा। यह जो कठिनाई है वह ऐसी है कि आज अगर बुद्ध के पक्ष में काम करना है तो बुद्ध के खिलाफ बोलना पड़ेगा। क्योंकि उनके शब्द किन्हीं के लिए पत्थर की तरह पकड़ गए हैं और उन पत्थरों को तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक बुद्ध को न हटाया जाए। क्योंकि बुद्ध की प्रतिष्ठा के साथ वे पत्थर उनकी छाती पर जमे हुए हैं। पत्थर को

हटाना है तो बुद्ध को गिराना पड़े; तो वे पत्थर हटाएं। अगर बुद्ध को न गिराओ तो वे पत्थर न हटाएं।
अब मेरे जैसे आदमी की मजबूरी ख्याल में आ सकती है कि मुझे बुद्ध के खिलाफ बोलना पड़े, और यह जानते हुए कि उनका काम कर रहा हूं। मगर जिनको बुद्ध के नाम के साथ आग्रह पकड़ गया है और शब्द के साथ आग्रह पकड़ गया है, उन्हें हिलाने का क्या उपाय है? जब तक बुद्ध न हिलें तब तक वे नहीं हिल सकते। तो अकारण बुद्ध के साथ झंझट करनी पड़ती है इस आदमी को हिलाने के लिए। जब तक वेद न हिलाया जाए तब तक यह आदमी नहीं हिल सकता। यह वेद को पकड़े बैठा हुआ है। जब इसको पक्का हो जाए कि वेद बेकार है, तभी यह छोड़ सकता है। एक दफे खाली हो तो कुछ आगे बढ़ सके। हालांकि जो वेद ने कहा है वही मैं इससे कहूंगा--खाली होने के बाद। तब जटिलता और बढ़ जाती है। तब अकारण गलत मित्र पैदा हो जाते हैं और गलत शत्रु पैदा हो जाते हैं। बाकी सौ में निन्यानबे मौके गलत मित्रों और गलत शत्रुओं के हैं।
गलत मित्र वे हैं जो मेरी बात को शास्त्र की तरह पकड़ लेंगे और गलत शत्रु वे हैं जो कि मेरी बात को शास्त्र के शत्रु मान कर पकड़ लेंगे, कि मैं दुश्मन हूं शास्त्रों का। मगर ऐसा है, और ऐसा होगा। और इसमें कुछ बेचैनी का कारण नहीं है; क्योंकि सारी स्थिति ऐसी है।

आप लिखना नहीं चाहेंगे?

नहीं लिखना चाहूंगा। नहीं लिखना चाहूंगा कई कारणों से। नहीं लिखना चाहूंगा कई कारणों से। एक तो इसलिए कि लिखना मेरी दृष्टि में एब्सर्ड है, बिल्कुल व्यर्थ है। व्यर्थ इसलिए कि किसके लिए? यानी लिखना मेरे लिए ऐसा है कि एक पत्र लिखा है, लेकिन पता नहीं है मालूम। तो लिफाफे में बंद करके उसको भेजना कहां है?
वक्तव्य सदा ही एड्रेस्ड है। लिखते वे लोग हैं जो मास के लिए एड्रेस
कर रहे हैं। वे भी एड्रेस कर रहे हैं अनजान भीड़ के लिए। लेकिन जितनी अनजान भीड़ हो उतनी ही ओछी बातें कही जा सकती हैं। और जितना जाना-माना व्यक्ति हो उतनी ही गहरी बातें कही जा सकती हैं।
गहरे सत्य व्यक्तियों से कहे जा सकते हैं--व्यक्ति से कहे जा सकते हैं। भीड़ से कामचलाऊ बातें कही जा सकती हैं। भीड़ से कभी गहरे सत्य नहीं कहे जा सकते। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ हो उतनी ही समझ कम हो जाती है, और अगर भीड़ बिल्कुल अज्ञात हो तो समझ को शून्य मान कर चलना पड़ता है। इसलिए जितना मास लिटरेचर होगा, बहुत जमीन पर आ जाएगा, आसमान की उड़ान नहीं रह जाएगी। अगर कालिदास के काव्य में कोई खूबी है और आज के कवि में खूबी नहीं है
तो उसका कोई फर्क कालिदास और आज के कवि में नहीं है। कालिदास का वक्तव्य एड्रेस्ड है, किसी सम्राट के सामने कहा गया है। किन्हीं दस-पांच चुने हुए लोगों के बीच कही गई कविता है। आज का कवि अखबार में छाप रहा है कविता। कोई चाय की दुकान में पढ़ेगा, कोई मूंगफली खाते हुए पढ़ेगा, कोई हुक्का पीते हुए देख लेगा एक नजर--कौन, वह भी पता नहीं। तो वह जो अनजान आदमी है उसको तो हमें आखिरी मान कर चलना पड़ता है। अगर लिखना हो तो उसको ध्यान में रख कर लिखना पड़ता है।
अब मेरी तो तकलीफ यह है कि हमारे बीच जो श्रेष्ठतम हैं उससे भी कहने में मुश्किल है सत्य, तो हमारे बीच जो निकृष्टतम हैं उससे तो कहने का कोई उपाय नहीं है। हमारे बीच जो श्रेष्ठतम हैं, जिसको हम कहें चू.जन फ्यू, जो गहरे से गहरा समझ सकते हैं, उनमें से भी सौ से कहूंगा तो एक समझेगा, निन्यानबे चूक जाएंगे। तो भीड़ को तो कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। और लिखा तो भीड़ के लिए जा सकता है, व्यक्ति के लिए कहा जा सकता है।
और दूसरे भी कारण हैं। मेरा मानना है कि हर मीडियम के साथ कंटेंट बदल जाता है। हर माध्यम के साथ विषय-वस्तु बदल जाती है। आप जैसे ही माध्यम बदलते हैं, विषय-वस्तु वही नहीं रह जाती। माध्यम भी विषय-वस्तु को बदलने के लिए चेष्टा करता है। यह एकदम से दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन इसे... ।
जब मैं बोल रहा हूं तब माध्यम और है। एक तो जीवंत है, सुनने वाला भी जीवित मौजूद है, मैं भी जीवित मौजूद हूं। जब मैं बोल रहा हूं तब वह मुझे

सुन ही नहीं रहा, मुझे देख भी रहा है। मेरे चेहरे के हलके से फर्क, मेरी आंख पर जरा सी बदली हुई लहर, मेरी अंगुली का उठना या गिरना, वह सब उसे दिखाई भी पड़ रहा है। सुन भी रहा है, देख भी रहा है। मेरे शब्द ही नहीं सुन रहा है, मेरे ओंठ भी देख रहा है। शब्द ही नहीं कहते, ओंठ भी कहते हैं। मेरी आंखें भी कुछ कह रही हैं। यह सब इकट्ठा पी रहा है वह। सुन भी रहा है, देख भी रहा है, यह सब इकट्ठा जा रहा है। एक कंटेंट अलग होगा इसका।
जब वह एक किताब पढ़ रहा है, तब मेरी जगह सिर्फ काले अक्षर हैं, काली स्याही है, और कुछ भी नहीं है। तो मैं और काली स्याही, ये इक्वीवेलेंट नहीं हैं। इनका कोई लेन-देन नहीं है, इनका कहीं कोई संबंध नहीं है। काली स्याही में न तो कोई भाव उठते, न कोई गेस्चर्स होते, न कोई जीवन है। मुर्दा टंका हुआ संदेश है। बहुत बड़ा हिस्सा खो गया; जो बोलने के साथ जीवंत था वह खो गया। एक मुर्दा वक्तव्य उसके हाथ में है। बड़े मजे की बात है, किताब पढ़ने के लिए उतना अटेंटिव होना जरूरी नहीं है। सुनने वाले में भी फर्क होते हैं। सुनने वाला जब सुनता है तब, और जब पढ़ता है तब, दोनों में बुनियादी ध्यान के फर्क हो जाते हैं। सुनते समय आपको पूरा-पूरा एकाग्र होना पड़ता है, क्योंकि जो बोला गया है वह दोहराया नहीं जाएगा। उसको वापस लौट कर नहीं देख सकते। वह खो गया। प्रतिपल जब मैं बोल रहा हूं तो जो भी बोला जा रहा है वह अनंत खाई में खोता चला जा रहा है। अगर आपने पकड़ लिया तो पकड़ लिया, अन्यथा वह गया। वह फिर नहीं लौटेगा। किताब पढ़ते वक्त कोई डर नहीं है, आप दस दफे लौट कर किताब पढ़ सकते हैं। इसलिए बहुत अटेंटिव होने की जरूरत नहीं है। इसलिए दुनिया में जब से किताब आई तब से ध्यान कम हुआ, अटेंशन कम हो गई। होगी ही, वह कंटेंट बदल गया। किताब के साथ तो ऐसा है न कि आप अभी एक पूरा पन्ना पढ़ जाते हैं और फिर ख्याल आता है कि अरे कुछ ख्याल में नहीं आया, फिर उलटा कर पढ़ लेते हैं। लेकिन मुझे उलटाया नहीं जा सकता। मैं गया।
यह बोध कि जो सुना जा रहा है वह खो जाएगा, एक दफे चूका कि सदा के लिए चूका, वह कभी पुनरुक्त नहीं हो सकेगा, आपकी चेतना को, जिसको कहना चाहिए पीक पिच में रखता है, आपकी चेतना को उसके ऊंचे से ऊंचे शिखर पर रखता है ध्यान के। फिर जब आप बैठे हैं आराम से, पढ़ रहे हैं, खो गया, कोई हर्जा नहीं, पन्ने पलटाए, फिर पढ़ गए आप! समझ कम होती है किताब के साथ, पाठ बढ़ता है। समझ ध्यान के साथ कम हो जाती है।
इसलिए अकारण नहीं है कि बुद्ध या महावीर या जीसस बोलने के माध्यम को चुनते हैं। लिखा जा सकता था। बोलने के माध्यम को चुनते हैं, उसके दोहरे कारण हैं। एक तो बोलने का माध्यम बड़ा माध्यम है। उसके साथ बहुत चीजें और जुड़ी हैं जो लिखने में खो जाएंगी।
इसलिए आप ध्यान रखें कि जैसे ही फिल्म आई, उपन्यास खो गए। क्योंकि फिल्म ने वापस जीवंत कर दी चीज को। उपन्यास को कौन पढ़ेगा? वह मृत है, मृतवत हो गया। उपन्यास ज्यादा दिन जिंदा नहीं रह सकता। उसकी जान चली गई। वह विधा खो जाएगी, क्योंकि अब हमारे पास ज्यादा जीवंत माध्यम है। मैकलोहान इसको हॉट मीडियम कहता है। यह हॉट मीडियम है, यह जो टेलीविजन है या फिल्म है; क्योंकि जीवंत है, इसके खून में गर्मी है। यह कोल्ड मीडियम है किताब जो है। यह बिल्कुल डेड कोल्ड है, ठंडा है बिल्कुल। इसमें कोई जान नहीं है। खून बहता नहीं है इसमें। आपका टेलीफोन खो जाएगा, जिस दिन भी हम विजन जोड़ देंगे उस दिन टेलीफोन एकदम खो जाएगा; जैसे रेडियो खो गया टेलीविजन के सामने। रेडियो कोल्ड मीडियम हो गया; टेलीविजन हॉट मीडियम हो गया।
तो बोलना जो है मेरे हिसाब से हॉट मीडियम है। उसमें खून है, गर्मी है।
अब अभी तक भी भाषा का हम कोई उपाय नहीं कर सकते। जैसे कि जब मुझे किसी चीज पर जोर देना होता है तो मैं जरा जोर से बोलता हूं। उसके बोलने का न्युएंस बदल जाता है, उसके बोलने की तर्ज बदल जाती है, उसका जोर बदल जाता है। लेकिन शब्द में कोई उपाय नहीं है। शब्द बिल्कुल डेड है। प्रेम, चाहे प्रेम करने वाले ने लिखा हो और चाहे प्रेम न करने वाले ने लिखा हो और चाहे प्रेम में जलने वाले ने लिखा हो और चाहे प्रेम को बिल्कुल न जानने वाले ने लिखा हो, प्रेम प्रेम है। उसमें कोई न्युएंस नहीं है, उसमें कोई ध्वनि- तरंग नहीं है। वह मुर्दा है। तो जब जीसस कहेंगे "प्रार्थना", तो उसका मतलब वह नहीं होता जो किताब में कोई भी लिख देता है प्रार्थना उसका होता है। यह

जीसस की पूरी जिंदगी प्रार्थना है, वह सिर से अंगूठे तक प्रार्थना है, रोआं-रोआं प्रार्थना है। जब वे कहते हैं--प्रार्थना! तो इसका कुछ अर्थ ही और है, जो कि भाषाकोश में नहीं हो सकता।
साथ ही जब भी किसी से बोला जा रहा है तब बहुत जल्दी जिसको कहें एक ट्यूनिंग निर्मित हो जाती है। बहुत जल्दी आपका हृदय, सुनने वाले का हृदय, निकट आ जाता है। द्वार खुल जाते हैं। आपके डिफेंस गिर जाते हैं। सुनते वक्त अगर आप ध्यान से सुन रहे हैं तो आपका सोचना बंद हो ही जाता है। जितने ध्यान से सुन रहे हों उतना सोचना बंद हो जाता है, द्वार खुल जाते हैं। रिसेप्टीविटी साफ हो जाती है, ग्राहकता बढ़ जाती है, चीजें सीधी चली जाती हैं। और एक-दूसरे से हम परिचित हो जाते हैं एक बहुत गहरे अर्थ में और भीतर से सुर-संबंध बन जाते हैं। बोलना ऊपर चलता है, भीतर के सुर-संबंध भी यात्रा शुरू कर देते हैं। पढ़ते वक्त ऐसा कोई सुर-संबंध नहीं बनता, क्योंकि बनेगा किससे? पढ़ते वक्त आप समझते नहीं, समझना पड़ता है। सुनते वक्त आप समझते हैं, समझना पड़ता नहीं है।
फिर, जिन्होंने मुझे बोलते सुना है वे अगर मुझे पढ़ते हैं, और अगर मैंने जैसा कहा है वैसा ही रिपोर्ट किया गया है--ठीक वैसा, अक्षरशः--तो वे भूल जाते हैं कि पढ़ रहे हैं। थोड़ी देर में उनको लगता है कि वे सुन रहे हैं। अगर जरा भी इधर-उधर हेर-फेर किया गया है तो धारा टूट जाती है। तो जिसने मुझे एक दफा सुन लिया है उसके लिए मेरा कहा गया और लिखा हुआ जब वह पढ़ेगा, तो वह करीब-करीब पढ़ना नहीं होगा, सुनना होगा। और भी फर्क हैं। फर्क बहुत हैं; माध्यम के फर्क बहुत हैं। और कंटेंट बदलता है। बड़ी कठिनाई जो है वह यह है कि जो हम कहने जा रहे हैं, वह जिस माध्यम से हम कहते हैं, वह उसके साथ बदलता है। अब इधर मैं अनुभव करता हूं, बदलेगा ही। अगर उसी बात को काव्य में कहना है तो काव्य अपनी ही व्यवस्था थोपेगा, तोड़-फोड़ करेगा, काट-छांट करेगा। अगर उसी को गद्य में कहना है तो बात और होगी--कंटेंट बदल जाएगा।
इसलिए प्राथमिक रूप से सारे के सारे दुनिया के ग्रंथ काव्य में लिखे गए। उसका कारण था; जो कहा जा रहा था वह इतना तर्कातीत था कि उसे गद्य में कहना कठिन पड़ा। गद्य बहुत लाजिकल है, पद्य बहुत इल्लाजिकल है। अच्छा, पद्य में इल्लाजिक को क्षमा किया जा सकता है, गद्य में नहीं किया जा सकता। अगर आप कविता में थोड़ा सा बुद्धि के इधर-उधर सरकें तो माफ किया जा सकता है, लेकिन प्रोज में माफ नहीं किया जा सकता। क्योंकि प्रोज गहरे में लाजिक है और पोएट्री गहरे में इल्लाजिक है।
अगर उपनिषद को आप गद्य में लिखें, या गीता को गद्य में लिख दें, आप पाएंगे, उसका प्राण खो गया। यह मीडियम बदल गया। वही बात जो पद्य में बहुत प्रीतिकर लगती थी, गद्य में आकर खटकने लगेगी, क्योंकि वह तर्कहीन हो जाएगी। गद्य जो है वह तर्क की व्यवस्था है। उपनिषद तो कहे गए पद्य में, गीता कही गई पद्य में, लेकिन बुद्ध और महावीर पद्य में नहीं बोले, गद्य में बोले हैं। कारण था। युग बदल गया था पूरा का पूरा। जब उपनिषद और वेद रचे गए तब एक अर्थ में युग ही पद्यात्मक था। लोग सीधे-सादे थे, तर्क की उनकी मांग ही नहीं थी। उनसे किसी ने कह दिया कि ईश्वर है, तो उन्होंने कहा है। फिर वे यह भी पूछने नहीं आए कि कैसा है? क्या है?
अगर बच्चों को देखें तो आपको पता चल जाएगा कि उस युग के लोग कैसे रहे होंगे।
एक बच्चा आपसे कितना ही कठिन सवाल पूछे, लेकिन कितने ही सरल जवाब से राजी हो जाता है। सवाल कितना ही कठिन पूछे, जवाब से बड़े सरल राजी हो जाता है। वह पूछेगा, बच्चे कहां से आते हैं? आप कहते हैं कि कौवा लाता है। वह चला गया खेलने। सवाल उसने भारी कठिन पूछा था, जिसका अभी बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी ठीक से जवाब नहीं दे पा सकता है। सवाल बड़ा कठिन था उसका, अल्टीमेट पूछ लिया था, बच्चे कहां से आते हैं? आपने कहा कि कौवे ले आते हैं। वह गया। बड़े सरल जवाब से राजी हो गया। ध्यान रखें, जवाब जितना पोएटिक होगा बच्चा उतने जल्दी राजी हो जाएगा। अगर इसको ही आप पोएट्री में कह देते--कौवा ले आया। और भी जल्दी राजी हो जाता। और भी जल्दी राजी हो जाता। इसलिए छोटे बच्चों की किताब हमें पोएट्री में लिखनी पड़ती है। क्योंकि

उसके हृदय में जल्दी से पहुंच जाती है। उसमें धुन होती है, लय होती है। वह उसके मन में उतर जाती है। अभी वह धुन और लय के जगत में जीता है।
बुद्ध और महावीर को गद्य का उपयोग करना पड़ा। क्योंकि युग तार्किक था
और लोग भारी तर्क कर रहे थे। लोग सवाल छोटा सा पूछते, लेकिन बड़े से बड़े जवाब से राजी नहीं थे। हालत उलटी हो गई थी। छोटा सा सवाल लोग पूछेंगे, बड़े से बड़ा जवाब भी उनको काफी नहीं था। क्योंकि पच्चीस सवाल और पूछेंगे। इसलिए बुद्ध और महावीर को बिल्कुल ही गद्य में बोलना पड़ा।
और अब दुनिया में पद्य में कभी बोला जा सकेगा इसकी कठिनाई है। इसलिए पद्य अब ज्यादा से ज्यादा मनोरंजन है। उसमें कोई गहरी बातें नहीं कही जातीं, जब कि दुनिया की प्राथमिक सभी बातें पद्य में कही गई हैं। लेकिन अब पद्य सिर्फ मनोरंजन है। कुछ लोग जिनको फुर्सत में कुछ मनोरंजन करना है, करते हैं। लेकिन जो भी कीमती बातें हैं वे अब गद्य में कही जाएंगी। क्योंकि अब आदमी जो है बच्चे जैसा नहीं है, प्रौढ़ है। हर चीज पर तर्क करेगा। गद्य ही उस तक पहुंचेगा।
हर माध्यम कंटेंट को बदलता है। पहुंचाने की सुविधा, संभावना को बढ़ाता
और घटाता है। और मेरी अपनी दृष्टि तो यह है कि जैसे-जैसे टेक्नालाजी विकसित होती जा रही है वैसे-वैसे बोलने का माध्यम वापस लौट आएगा। बीच में खोया था। बीच में खोया था; क्योंकि किताब ने पकड़ लिया था चीजों को। टेक्नालाजी हमें वापस लौटाए दे रही है। टेलीविजन आ जाएगा। कल थ्री डायमेंशनल टेलीविजन हो जाएगा। कोई किताब पढ़ने को राजी नहीं होगा। किताब लिखने की कोई जरूरत नहीं होगी। मैं सारी दुनिया से एक साथ बोल सकता हूं, टेलीविजन पर बोल सकता हूं। वे मुझे सीधा ही सुन सकते हैं। बहुत जल्दी, किताब के लिए बड़े खतरे हैं। भविष्य किताब का बहुत अच्छा नहीं है। किताब के लिए खतरे हैं। जल्दी, किताब भी पढ़ी नहीं जाएगी, देखी जाएगी एक अर्थ में। किताब जल्दी से ट्रांसफार्म होगी। उसको देखने में ट्रांसफार्म करना पड़ेगा। अभी भी माइक्रो फिल्म्स बन गई हैं, जिनमें कि किताब को पर्दे पर आप देखेंगे। बहुत जल्दी इनको हम पिक्चर में बदल लेंगे। इसमें ज्यादा देर नहीं लगेगी।
मेरी अपनी समझ ऐसी है कि लिखने का माध्यम एक मजबूरी थी। कोई और उपाय नहीं था तो लिखा गया। फिर भी जिन्हें कुछ बहुत बड़ी बात कहनी थी वे अब तक भी बोलने का ही माध्यम उपयोग करते रहे।
तो मेरे मन में कभी ख्याल नहीं आता कुछ लिखने का।
एक तो मेरी यही समझ में नहीं आता कि किसके लिए? जब तक मेरे सामने किसी
का चेहरा न हो तब तक इस वजह से और भी मेरे भीतर कुछ उठता नहीं; क्योंकि मेरे पास, एक जो कहने का रस होता है, वह मेरे लिए कारण नहीं है। एक तो रस होता है कि कुछ कहूं। एक साहित्यकार में और एक ऋषि में वही फर्क है। साहित्यकार को कहने में रस है। कह पाया, आनंदित है। अभिव्यक्ति बड़ा आनंद है। कह दिया, जैसे कोई बोझ हलका हो गया। कोई भारी थी चीज।
मेरे ऊपर कोई बोझ नहीं है। जब मैं आपसे कुछ कह रहा हूं तो मुझे कहने की वजह से कोई आनंद नहीं आ रहा है। कह कर मेरा कोई बोझ हलका नहीं हो रहा है। मेरा कहना, बहुत गहरे में, एक्सप्रेशन कम और रिस्पांस ज्यादा है। मुझे कुछ कहना ही है आपसे, ऐसा नहीं है, आपको कुछ कहलवाना हो तो ही मेरे भीतर से कुछ आ सकता है। यानी करीब-करीब हालत मेरे मन की भीतर ऐसी है कि अगर आप बाल्टी डाल दें तो ही मेरे कुएं से कुछ आ सकता है। इसलिए धीरे-धीरे आप देखें, मुझे मुश्किल होता जा रहा है। जब तक मुझसे कुछ पूछा न जाए मुझे कहना मुश्किल होता जा रहा है। इसलिए बहुत कठिन है आगे कि मैं सीधा बोल पाऊं। वह मुझे भारी पड़ने लगा। इसलिए अब मुझे बहाने खोजने पड़ेंगे।
अगर गीता पर बोल रहा हूं तो उसका कारण है। मुझे बहाना चाहिए। आप कोई बहाना खड़ा कर देंगे तो मैं बोल दूंगा। आपने बहाना नहीं खड़ा किया तो मेरे लिए मुश्किल हो जाता है कि खूंटी नहीं है तो... और क्या टांगना है और क्यों टांगना है, वह भी पकड़ में नहीं आता। एकदम खाली बैठा रह जाता हूं। अगर आप नहीं पूछ रहे हैं तो मैं खाली हूं। आप कमरे के बाहर गए कि मैं खाली हूं। जिसको अभिव्यक्ति देनी है, जब आप कमरे के बाहर गए, तब वह तैयारी कर रहा है। उसके दिमाग में कुछ तैयार हो रहा है। जब वह भारी हो जाएगा तब वह उसको प्रकट

करेगा। मैं बिल्कुल खाली हूं। आप कुछ बुलवा लेंगे तो बोल दूंगा। आप कोई प्रश्न खड़ा कर देंगे तो कुछ बोल दूंगा। तो लिखना मुश्किल है। क्योंकि लिखना जो है, वे जो भारी हैं, उनके लिए आसान है। वे निकालें, वे निकाल दे सकते हैं।
इस संबंध में कुछ और पूछना हो तो पूछ लें। फिर दूसरे प्रश्न दूसरे दिन लेंगे।

आप अपने खुद के एक्सपीरिएंसेज, अपनी आटो-बायोग्राफी क्यों नहीं लिखते?

हां, यह सवाल ठीक है कि मैं अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखता?
अब यह बहुत मजेदार है। असल में आत्मा के जानने के बाद कोई आत्मकथा नहीं होती। और सब आत्मकथाएं अहंकार-कथाएं हैं। आत्मकथाएं नहीं हैं, ईगो- ग्राफीज हैं। मेरी बात समझे न! पहला तो यह कि हम कहते हैं आत्मकथा उसे, आत्मकथा नहीं है। क्योंकि जब तक आत्मा का पता नहीं है तब तक जो भी हम लिखते हैं वह ईगो-ग्राफी है, वह अहम-कथा है।
इसलिए बड़े मजे की बात है कि जीसस ने आत्मकथा नहीं लिखी, कृष्ण ने नहीं लिखी, बुद्ध ने नहीं लिखी, महावीर ने नहीं लिखी। न लिखी, न कही। आत्म-कथ्य जो है वह इस जगत में किसी भी उस आदमी ने नहीं लिखा जिसने आत्मा जानी है। क्योंकि आत्मा को जानने के बाद वह ऐसे निराकार में खो जाता है कि जिन्हें हम तथ्य कहते हैं वे सब उखड़ कर बह जाते हैं। जिनको हम खूंटियां कहते हैं-- यह जन्म हुआ, यह यह हुआ, यह यह हुआ--वे सब उखड़ कर बह जाती हैं। इतना बड़ा अंधड़ है आत्मा का आना कि उस आंधी के बाद जब वह देखता है तो पाता है कि सब साफ ही हो गया; वहां कुछ बचा ही नहीं। कोरा कागज हो जाता है। आत्मकथा लिखने का जो रस है वह आत्मा जानने के पहले है--जरूर है! इसलिए राजनीतिज्ञ आत्मकथा लिखेंगे। साधु आत्मकथा लिखेंगे। लेखक, कवि, साहित्यकार आत्मकथा लिखेंगे। ये आत्मकथाएं बहुत गहरे में "मैं" की ही सजावटें हैं।
तेरा मतलब भी मैं समझा कि उस अनुभव की बात लिखूं जो मुझे हुआ।
तो आत्म-कथ्य तो बचता नहीं। उसका कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। आत्मा को जानने के बाद आत्मकथा करीब-करीब ऐसी हो जाती है जैसे कोई अपने सपने लिखे।
करीब-करीब ऐसी जैसे कोई अपने सपनों का ब्योरा लिखे रोज सुबह कि आज मैंने यह सपना देखा, कल मैंने यह सपना देखा, परसों मैंने यह देखा। और एक आदमी अगर अपने सपनों की कथा लिखे तो जितनी उसकी कीमत हो सकती है उससे ज्यादा कीमत इसकी भी नहीं है जिसको हम यथार्थ कहते हैं।
और जाग गया आदमी लिख सकता है--कठिन है मामला। क्योंकि जागते से ही पता चलता है कि सपना था, उसको लिखने योग्य भी नहीं कुछ बचता। अनुभव की बात रह जाती है कि जो जाना है। वह भी नहीं लिखा जा सकता। वह नहीं लिखा जा सकता इसलिए कि लिखते ही बहुत फीका और बेमानी हो जाता है। उसको ही कहने की कोशिश चलती है निरंतर, बहुत-बहुत मार्गों से, बहुत-बहुत विधियों से। जिंदगी भर उसी को कहता रहूंगा, वह जो हुआ है। उसके अलावा अब कुछ कहने को है नहीं। लेकिन उसको भी लिखा नहीं जा सकता। क्योंकि जैसे ही लिखते हैं उसको, वैसे ही पता चलता है कि यह तो कोई बात नहीं हुई। क्या लिखेंगे? लिख सकते हैं कि आत्मा का अनुभव हुआ, कि बड़ा आनंद मिला, कि बड़ी शांति मिली। सब बेमानी मालूम होता है। शब्द मालूम होते हैं।
बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट पूरी जिंदगी, जो उन्होंने जाना है, उसको
ही बहुत रूपों में कहे चले जा रहे हैं। फिर भी थकते नहीं हैं; क्योंकि रोज लगता है कि बाकी रह गया। फिर उसको और तरह से कहते हैं, फिर और तरह से कहते हैं। वह चुकता नहीं। बुद्ध-महावीर चुक जाते हैं, वह नहीं चुकता। वह कथा कहने को बाकी ही रह जाती है।
तो दोहरी कठिनाइयां हैं। जो कहा जा सकता है वह सपने जैसा हो जाता है।
जो नहीं कहा जा सकता है वह कहने जैसा लगता है। और उसको ही... ।
फिर यह भी ख्याल में निरंतर होता है कि उसको सीधा कहने से कुछ भी तो प्रयोजन नहीं है। तुमसे मैं कह दूं मुझे यह हुआ, उससे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन तो इससे है कि तुम्हें उस रास्ते पर ले चलूं जहां तुम्हें हो

जाए, तो तुम शायद किसी दिन समझ सको कि क्या हुआ होगा। उसके पहले समझ भी नहीं सकोगे। सीधा यह वक्तव्य कि मुझे क्या हुआ, क्या मतलब रखता है? तुम भरोसा करोगे, यह भी मैं नहीं मानता। तुम भरोसा भी नहीं कर सकोगे!
तो तुम्हें गैर-भरोसे में डालने से क्या प्रयोजन है? नुकसान ही होगा। यही उचित है कि तुम्हें उस रास्ते पर, उस किनारे पर धक्का दिया जाए जहां कि तुम्हें किसी दिन हो जाए। उस दिन तुम भरोसा कर सकोगे। उस दिन तुम जान सकोगे कि ऐसा होता है। नहीं तो भरोसे का भी उपाय नहीं।
और जैसे बुद्ध की मृत्यु का वक्त है और लोग पूछ रहे हैं कि आप जब मर जाएंगे तो कहां जाएंगे? तो अब बुद्ध क्या कहें? वे कहते हैं, मैं कहीं था ही नहीं तो मर कर मैं कहां जाऊंगा! मैं कभी कहीं गया ही नहीं, मैं कभी कहीं था ही नहीं। तब भी पूछने वाले पूछ रहे हैं कि नहीं, फिर भी कुछ तो बताएं कि कहां जाएंगे! अब वे बिल्कुल तथ्य कह रहे हैं। क्योंकि बुद्धत्व का मतलब ही नो-व्हेयर-नेस है। उस स्थिति में कोई न कहीं होता है और न होने का कोई सवाल होता है।
तुम भी अगर शांत पड़ कर किसी क्षण रह जाओ तो सिवाय सांस चलने के और क्या बचेगा? सिर्फ सांस ही रह जाएगी और बचेगा क्या? तो सांस वैसे ही रह जाएगी जैसे बबूले में हवा रहती है, और क्या रह जाएगा? वह तो हम कभी ख्याल नहीं करते और हमें ख्याल में नहीं आता। क्योंकि हम कभी उतने क्षण में भी नहीं होते। कभी दो क्षण को भी मौन होकर बैठ जाओ, तो तुम क्या पाओगे कि तुममें है क्या सिवाय सांस के? विचार नहीं हैं तो सिवाय सांस के तुममें क्या बचेगा? और तुममें सांस का बाहर-भीतर आना, एक बबूले में सांस का या एक बैलून में हवा के बाहर-भीतर आने से ज्यादा और क्या है?
तो बुद्ध कहते हैं, मैं एक बबूला था, था कहां? इसलिए जाने का क्या सवाल है? एक बबूला फूट गया, हम पूछते हैं कहां चला गया? हम नहीं पूछते, क्योंकि हम पहले से ही जानते हैं कि बबूला था ही कहां! इसलिए हम नहीं पूछते कहां चला गया! बस ठीक है, वह था ही नहीं तो जाने की क्या बात है!
अब बुद्ध जैसा व्यक्ति अपने को जान रहा है कि बबूला है, तो क्या तो आत्मकथा लिखे? क्या अनुभव की बात कहे? और जो भी कहेगा वह मिसअंडरस्टैंड होने वाला है।
जापान में एक फकीर हुआ, लिंची। तो लिंची ने एक दिन सुबह घोषणा की कि हटाओ ये बुद्ध की मूर्तियां वगैरह यहां से! यह आदमी कभी हुआ नहीं। अभी उसने बुद्ध की मूर्ति की पूजा की है, अभी उसने कहा कि हटाओ यहां से! यह आदमी कभी हुआ नहीं, यह सरासर झूठ है। तो किसी ने खड़े होकर कहा कि आप क्या कह रहे हैं! आपका मस्तिष्क तो दुरुस्त है? उस लिंची ने कहा, जब तक मैं सोचता था कि मैं हूं, तब तक मैं मान सकता था कि बुद्ध हैं। लेकिन जब मैं ही नहीं हूं, हवा का बबूला है, तो यह आदमी कभी हुआ नहीं। सांझ फिर पूजा कर रहा था वह बुद्ध की। तो लोगों ने कहा कि यह क्या कर रहे हो? तुम दोपहर तो कह रहे थे कि यह नहीं हुआ। उसने कहा कि लेकिन इसके न होने से मुझे भी न होने में सहायता मिली, तो धन्यवाद मैं दे रहा हूं। लेकिन एक बबूले का एक बबूले को धन्यवाद है, इसमें कुछ और ज्यादा बात नहीं है।
लेकिन ये वक्तव्य समझे नहीं जा सकते। लोगों ने समझा कि यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया है। यह कुछ बुद्ध के खिलाफ हो गया है।
आत्म-कथ्य बचता नहीं। बहुत गहरे में समझो तो आत्मा भी बचती नहीं। आमतौर से यहां तक तो हम समझ पाते हैं कि अहंकार नहीं बचता, क्योंकि हमसे हजारों साल से यह कहा जा रहा है। और कोई वजह नहीं है। हजारों साल से कहा जा रहा है कि अहंकार नहीं बचता तो हम समझ लेते हैं--वर्बली हमको समझ में आ जाता है कि ज्ञान की स्थिति में अहंकार नहीं बचता। लेकिन अगर ठीक से समझना चाहो तो आत्मा भी नहीं बचती। पर यह समझने में बहुत घबराहट होती है।
इसलिए तो बुद्ध को हम नहीं समझ पाए। उसने कहा कि आत्मा भी नहीं बचती, अनात्म हो जाते हैं। यह बहुत कठिन पड़ गया। इस पृथ्वी पर बुद्ध को समझना अब तक सर्वाधिक कठिन पड़ा। क्योंकि महावीर अहंकार तक की बात कहते हैं, कि अहंकार नहीं बचता। वहां तक हम समझ सकते हैं। ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है कि आत्मा भी नहीं बचती है। लेकिन हमारी समझ को ही ध्यान में रखे हुए हैं कि ठीक है, अहंकार तो छोड़ो, फिर आत्मा तो अपने से छूट जाती है। कोई

अड़चन नहीं है उसको कहने की। लेकिन बुद्ध ने पहली दफा वह स्टेटमेंट दे दिया जो बहुत दिन तक सीक्रेट था, जो कहा नहीं गया था।
उपनिषद भी जानते हैं और महावीर भी जानते हैं कि आत्मा नहीं बचती। क्योंकि आत्मा का ख्याल भी अहंकार का ही सूक्ष्म रूप है। लेकिन बुद्ध ने एक सीक्रेट, जो सदा से सीक्रेट था, कह दिया। कह दिया कि आत्मा नहीं बचती। मुश्किल पड़ गई। वही लोग जो मानते थे कि अहंकार नहीं बचता, वही लड़ने खड़े हो गए, कि यह क्या कह रहे हैं! अब बुद्ध की अड़चन समझते हैं? ये लोग मानते हैं कि अहंकार नहीं बचता वे ही लड़ने खड़े हो गए, कि आप यह क्या कह रहे हैं? आत्मा ही नहीं बचती तो सब बेकार है। जब हम ही नहीं बचते तो फिर क्या करना है! बुद्ध ने ठीक कहा। फिर कैसी आत्मकथा होगी? फिर कोई आत्मकथा नहीं हो सकती। सब सपने जैसा है, बबूले का देखा हुआ सपना है, बबूले पर बने हुए रंग-बिरंगे किरण के जाल हैं। बबूले के साथ सब खो जाते हैं। ऐसा जब दिखाई पड़ता हो तो बड़ी कठिनाई होती है, बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी जब बिल्कुल ही स्पष्ट स्थिति हो तो बहुत कठिनाई हो जाती है।

आटो-बायोग्राफी न सही, बायोग्राफी तो लिखी जा सकती है।

बायोग्राफी कोई लिख लेता है तो लिख लेता है। बायोग्राफी हजार हो सकती हैं, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। हजार देखने के ढंग हो सकते हैं, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। वह हो सकती है।

रियलाइजेशन के पहले जिस प्रक्रिया से गुजरता है सिद्ध, उसे लिखा जाना महत्वपूर्ण है या नहीं साधकों के लिए?

असल में साधकों के काम पड़ सकती है, साधकों के काम पड़ सकती है। लेकिन सिद्ध को लिखना बहुत मुश्किल है। क्योंकि सिद्ध की कठिनाई यह है जो कि साधक की कठिनाई नहीं है। सिद्ध की कठिनाई ऐसी है कि इस कमरे में भूत नहीं है--है ही नहीं। तुम्हारे लिए है। इस कमरे में एक भूत है तुम्हारे लिए। जो जानता है उसके लिए भूत नहीं है, हालांकि कभी उसको भी भूत था और उसने एक मंत्र से उसको भगाया था। लेकिन अब वह जानता है कि भूत भी झूठा था और मंत्र भी झूठा था। अब वह किस मुंह से कहे कि मैंने मंत्र से भूत को भगाया!
मेरा मतलब समझे? उसकी तकलीफ तुम्हारे लिए कह रहा हूं। यानी अब वह जानता है कि भूत तो झूठा था ही, वह कभी था ही नहीं, मंत्र ने सिर्फ अंधेरे में भरोसा दिलाया कि ठीक, ताकत में आ जाओ, कोई बात नहीं। अब वह जानता है कि भूत भी झूठा था, भगाया जिस मंत्र से वह भी झूठा था। अब वह किस मुंह से तुमसे कहे कि मैंने मंत्र से भूत को भगाया! अब वह घटना बेमानी हो गई। हालांकि तुम्हारे लिए भूत है, और अगर वह कह सके कि मंत्र से मैंने भगाया तो मंत्र तुम्हारे काम पड़ सकता है। समझे न!
इसलिए वह यह नहीं कहेगा कि मैंने मंत्र से भूत को भगाया। वह तुमसे यही कहेगा कि भूत मंत्र से भगाए जा सकते हैं। वह तुमसे यही कहेगा कि भूत मंत्र से भगाए जा सकते हैं। तुम मंत्र का उपयोग करो, भूत भाग जाता है। लेकिन यह तुमसे वह नहीं कहेगा, क्योंकि वह फाल्स स्टेटमेंट है, वह यह कहे कि मैंने मंत्र से भूत को भगाया। क्योंकि अब वह जानता है कि मंत्र उतना ही झूठा था जितना भूत झूठा था।
इसलिए ऐसे व्यक्ति के वक्तव्य बहुत ही कम सेल्फ सेंटरिक होंगे। वह मुश्किल से ही कभी अपने बाबत बोलेगा। वह सदा तुम्हारे लिए, और तुम्हारे बाबत, और तुम्हारी परिस्थिति के बाबत बोलता रहेगा। उसकी तकलीफ है। या फिर उसको फाल्स स्टेटमेंट देना पड़ते हैं।

साधना के प्रोसेस सब भूत हैं?

सब भूत हैं! क्योंकि आखिर में जो तुम पाओगे वह तुम्हें सदा से मिला ही हुआ है। आखिर में तुम जो पाओगे वह तुम्हें सदा से मिला ही हुआ है। आखिर में जिससे तुम छुटकारा पाओगे उसमें तुम कभी बंधे ही नहीं हो। लेकिन यह भी

कठिनाई है न! यही मैं कहता हूं कि सिद्ध की कठिनाइयां हैं। अगर वह तुमसे यह कह दे कि साधना के सब उपाय झूठ हैं तो तुम्हें दिक्कत में डाल देगा। क्योंकि तब तुम्हारे लिए भूत तो सच्चा रहेगा और साधना के उपाय झूठे हो जाएंगे। भूत झूठा हो जाए, तो साधना के उपाय झूठ हैं सार्थक है। मेरा मतलब समझे न? भूत तो झूठा नहीं होगा।
यह बड़े मजे की बात है कि गलत गलत कहने से गलत नहीं होता। लेकिन सही, गलत कहने से हम फौरन मान लेते हैं कि गलत है। गलत गलत कहने से गलत नहीं होता। कोई कितना ही कहे कि क्रोध गलत है, इससे क्रोध गलत नहीं होता। लेकिन कोई कह दे कि ध्यान गलत है, फौरन गलत हो जाता है। एक सेकेंड नहीं लगता गलत होने में।
कोई आदमी तुमसे कहे कि फलां आदमी संत है, तुम नहीं मान लेते हो। लेकिन कोई आदमी कहे कि फलां आदमी चोर है, तुम बिल्कुल मान लेते हो। कोई आदमी कहे संत है, तो तुम पचास तरकीब से पता लगाओगे कि है कि नहीं! क्योंकि तुम्हें भी बेचैनी रहेगी उसके संत होने से। तुम्हारे अहंकार को चोट लगेगी। तुम कोई न कोई तरकीब निकाल कर कर लोगे पक्का कि नहीं है, वह भी कोई संत नहीं है। लेकिन कोई कह दे कि फलां आदमी चोर है, तुम बिल्कुल पता लगाने नहीं जाते, तुम बिल्कुल मान ही लेते हो कि चोर है! तुम कभी पता नहीं लगाओगे कि यह आदमी चोर है! क्योंकि तुम्हें सुख मिलता है इस बात को मान लेने में कि हम अकेले ही चोर नहीं हैं, वह भी चोर है।
निंदा इतनी जल्दी स्वीकृत होती है, प्रशंसा कभी स्वीकृत नहीं होती।
और प्रशंसा जब तुम स्वीकार भी कर लेते हो, मजबूरी में, कोई उपाय नहीं देख कर, तब भी वह टेंटेटिव होती है। तब भी वह सिर्फ मजबूरी होती है कि कभी मौका मिल जाएगा तो सुधार कर लेंगे। निंदा एब्सोल्यूट हो जाती है, फिर मौका भी तुम्हें मिल जाए सुधार करने का तो तुम नहीं करोगे।
ठीक ऐसा ही जीवन में चलता है कि गलत अगर कोई कह दे गलत है, तो हम सुन लेते हैं, उससे वह गलत नहीं होता; लेकिन ठीक को अगर कोई कह दे गलत, हम फौरन मान लेते हैं, क्योंकि हम झंझट से बचे। क्योंकि ठीक में कुछ करना पड़ता है। क्रोध हो जाता है, ध्यान करना पड़ता है। कोई कह दे क्रोध गलत है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह होता रहेगा। लेकिन ध्यान करना पड़ता है। कोई कह दे गलत है, छूट जाएगा।

ध्यान तो एक अवस्था बताई आपने, क्रिया तो नहीं?

यही तो दिक्कत है। यही मैं कह रहा हूं कि सिद्ध की दिक्कत यही है। सिद्ध की दिक्कत यही है कि उसकी बात तुमसे अगर वह पूरी कह दे, जैसा उसको है, तो तुम भटक जाओगे सदा के लिए। क्योंकि वह तुम्हारा नहीं है मामला। जैसे कि मैंने कह दिया कि ध्यान अवस्था है। बिल्कुल सच बात है यह, ध्यान अवस्था है। लेकिन तुम्हारे लिए क्रिया ही होगी, तुम्हारे लिए अवस्था नहीं हो सकती। क्योंकि ध्यान अवस्था है, इससे तुम अब क्या करोगे? अब कुछ करने को नहीं बचा। बात खत्म हो गई। अगर क्रिया है तो तुम कुछ करोगे; अवस्था है तो बात खत्म हो गई। तुम निश्चिंत हुए कि ठीक है।
लेकिन क्रोध जारी रहेगा। इसके मानने से कि ध्यान अवस्था है, क्रोध खत्म नहीं होगा। काम जारी रहेगा, लोभ जारी रहेगा। यह जो तकलीफ है, तकलीफ यह है कि अगर तुम्हें देख कर कहूं तो मुझे कुछ न कुछ झूठ बोलना ही पड़ता है। और अगर अपने को देख कर कहूं तो जो मैं बोलता हूं वह बेकार है। बेकार ही नहीं, खतरनाक भी है। क्योंकि सुनने वाले तुम हो; तुम्हें गहरे में कुछ न कुछ उससे बाधा पड़ने वाली है। इसलिए अगर मैं ठीक वही कहूं जो मुझे लगता है तो मैं तुम्हारे किसी फायदे में नहीं आ सकता, तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता हूं।
जैसा कृष्णमूर्ति का, मैं मानता हूं कि लोगों को नुकसान पहुंचता है।
और जितना ज्यादा मैं देख पा रहा हूं उतना मुझे लगता है कि नुकसान पहुंचता है। क्योंकि वे वही कह रहे हैं जो भीतर है। तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है।

जब मौन में इतनी शक्ति है तो फिर कोई कहता ही क्यों है? मौन में बहुत शक्ति है और मौन ही सब कुछ है,
तो फिर शब्द क्यों कहे जाते हैं? कोई क्यों कहता है?

मौन में तो बहुत शक्ति है, लेकिन मौन को सुनने वाला चाहिए न!

सुनाने की जरूरत क्यों पड़ती है?

जरूरत इसलिए पड़ती है कि तुम्हें मैं देख रहा हूं कि तुम गड्ढे में जा रहे हो। तुम्हें मैं देख रहा हूं कि तुम गिरोगे गड्ढे में, हाथ-पैर तोड़ लोगे। मैं खड़ा हूं, मैं मौन से कह सकता हूं, लेकिन मौन से सुनने का तुम्हारे पास कान नहीं है। तो मैं चिल्ला कर कहूं कि गड्ढे में गिर जाओगे!

उसमें अपनी शक्ति लूज हुई, इसमें कोई हर्जा नहीं है?

नहीं-नहीं, कुछ लूज तो होती ही नहीं है। जिसको शक्ति का पता चल गया उसका कुछ कभी नहीं खोता। जिसको पता नहीं चला उसी का सब खोता रहता है। जिसको पता चल गया उसका कभी कुछ नहीं खोता। जो कठिनाई है वह यह है कि अगर मैं आत्मकथा की तरह कुछ लिखूं तो वह या तो झूठ होगी या सच होगी। दो ही उपाय हैं। सच होगी तो तुम्हें नुकसान पहुंचाएगी, झूठ होगी तो मैं वैसा वक्तव्य नहीं देना चाहूंगा। मेरी बात समझ रही है न तू? उस तल पर पकड़ ही नहीं पाओगे। या तो बिल्कुल सत्य होगी तो फिर तुम्हारे लिए नुकसान ही पहुंचाने वाली है, क्योंकि तुम जो कर रहे हो, वह सब उससे निकलेगा कि बेकार है। सब बेकार है। और तुम बड़ी जल्दी राजी हो जाओगे बेकार के लिए।
एक व्यक्ति आए। उन्होंने कहा कि कृष्णमूर्ति ने तो कहा कि मेडीटेशन बेकार है तो हमने छोड़ दिया। बहुत अच्छा किया तुमने! अब छोड़ कर तुम्हें क्या मिला? छोड़ कर कुछ नहीं मिला। तो पकड़ी तुमने किसलिए थी? पकड़ी इसलिए थी कि क्रोध चला जाए, अज्ञान चला जाए। छोड़ने से चला गया? वह नहीं गया। तो फिर तुमने कैसे छोड़ दिया? कृष्णमूर्ति ने कहा इसलिए छोड़ दिया। क्योंकि बेकार है मेडीटेशन। जब बेकार है, जब इतना ज्ञानी आदमी कहता हो तो हम काहे के लिए झंझट में पड़ें।
यह बड़ी मुश्किल की बात है न! बड़ी मुश्किल की बात है। मैं भी जानता हूं बेकार है। किसी क्षण मैं किसी से कहता भी हूं कि बेकार है; लेकिन उसी से कहूंगा जो बहुत कर चुका और अब बेकार होने को समझ सकता है, जो अब उस जगह पहुंच गया जहां मेडीटेशन भी छूटनी चाहिए। लेकिन बाजार में कहने का कि मेडीटेशन बेकार है, खतरा है बहुत। अभी उसने कभी मेडीटेशन की नहीं। जो नासमझ सुन रहे हैं उन्होंने कभी की नहीं। उनसे तुम कह रहे हो बेकार है! वे कभी करेंगे ही नहीं अब। उनको तो बहुत राहत मिल गई कि बिना ही किए सब हो गया, मामला खत्म।
तो चालीस साल से कृष्णमूर्ति को लोग सुन रहे हैं और नासमझों की भांति बैठे हुए हैं। क्योंकि वे कहते हैं, बेकार है। जब बेकार ही है, जब कृष्णमूर्ति कह रहे हैं, तो अब ठीक है। कोई गलत तो नहीं कह रहे हैं। सारी जिंदगी से वे वही कह रहे हैं। वे गलत जरा भी नहीं कह रहे हैं। और फिर भी गलत कह रहे हैं। क्योंकि तुम्हारे ऊपर कोई दृष्टि नहीं है; अपनी कहे चले जा रहे हैं।
इसलिए मैं निरंतर इस कोशिश में रहता हूं कि अपने को बचाऊं, अपनी कहूं
ही नहीं तुमसे। क्योंकि अगर मैं अपनी कहूंगा और ठीक-ठीक कहूंगा, तो तुम्हारे किसी काम का नहीं होगा। लेकिन अब कितना मजा है कि अगर मैं तुम्हारी कहूं, तुम्हारी फिक्र से कहूं, तो तुम ही मुझसे कहने आओगे कि अरे आपने ऐसा कह दिया। इसमें यह विरोध आ गया। मैं बिल्कुल अविरोध की बात कह सकता हूं, लेकिन तब तुम्हारे किसी काम की नहीं होगी। हां, इतने ही काम की होगी कि तुम जहां हो वहीं ठहर जाओगे।
तो सिद्ध की कठिनाई है कि वह जो जानता है वह कह नहीं सकता। और इसलिए जो पुरानी व्यवस्था थी एक लिहाज से उचित थी, गहरी थी। तुम्हारी स्थिति के

अनुसार बातें कही जाती थीं। तुम कहां तक हो वहां तक बात कही जाती थी। सब बातें टेंटेटिव थीं, कोई बात अल्टीमेट नहीं थी। तुम जैसे-जैसे बढ़ते जाओगे वैसे-वैसे हम खिसकाते जाएंगे। तुम्हारी जितनी गति होगी उतना हम पीछे हटाते जाएंगे। हम कहेंगे, अब यह बेकार हो गया, अब इसको छोड़ दो। जिस दिन तुम उस स्थिति में पहुंच जाओगे जब हम कह सकेंगे कि परमात्मा बेकार है, आत्मा बेकार है, ध्यान बेकार है, उस दिन कह देंगे। लेकिन यह उसी वक्त कहा जा सकता है जब कि इसके बेकार होने से कुछ भी बेकार नहीं होता। जब इसके बेकार होने से कुछ भी बेकार नहीं होता, तब तुम हंसते हो, और जानते हो।
अगर मैं कहूं कि ध्यान बेकार है और तुम ध्यान करते चले जाओ, तो मैं मानता हूं कि तुम पात्र थे, तुमसे कहा तो ठीक कहा। अगर मैं कहूं कि संन्यास बेकार है और तुम संन्यास ले लो, तो मैं जानता हूं कि तुम पात्र थे और तुमसे ठीक कहा।
अब ये जो कठिनाइयां हैं, ये कठिनाइयां ख्याल में आएंगी धीरे-धीरे तुम्हें!
"मैं कहता आंखन देखी" : अंतरंग भेंट-वार्ता

मैं कहता आंखन देखी
दूसरा प्रवचन

चिन्मय कौन? अजन्मा क्या?

आपने कहा कि यदि शरीर की बात करोगे तो मैं कहूंगा, मरणधर्मा है; और आत्मा की बात करोगे तो मैं कहूंगा, तुम कभी जन्मे ही नहीं। फिर जब बुद्ध कहते हैं कि "बस एक बबूला था, जो मिट गया; मैं था ही नहीं तो जाऊंगा कहां?" तो फिर चिन्मय कौन? और अजन्मा क्या?

एक तो सागर है, लहरें आती हैं और चली जाती हैं। और सागर बना रहता है। लहरें सागर से जरा भी अलग नहीं हैं, फिर भी लहरें सागर नहीं हैं। लहरें सिर्फ सागर में उठे रूप हैं, आकार हैं, बनेंगे, मिटेंगे। जो लहर बनी ही रहे, उसको लहर कहना बेकार है। लहर का मतलब यह है कि आई भी नहीं और गई। लहर शब्द का भी मतलब यही है, उठी भी नहीं कि जा चुकी। जिसमें उठती है वह सदा है; जो उठती है वह सदा नहीं है। तो सदा की छाती पर परिवर्तनशील का नृत्य है। सागर तो अजन्मा है, लहर का जन्म होता है। सागर की कोई मृत्यु नहीं है, लहर की मृत्यु होती है। लेकिन लहर भी अगर यह जान ले कि मैं सागर हूं तो जन्मने और मरने के बाहर हो गई। जब तक लहर समझती है कि मैं लहर हूं, तभी तक जन्मने और मरने के भीतर है।
जो भी है, वह अजन्मा है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। क्योंकि जन्म होगा कहां से? शून्य से कुछ पैदा नहीं होता। मृत्यु होगी कहां? शून्य में कुछ खोता नहीं। तो जो भी है--अस्तित्व--वह तो सदा है। समय कुछ भी अंतर नहीं कर पाता। काल से कोई रेखा नहीं पड़ती। लेकिन यह जो अस्तित्व है, यह अस्तित्व हमारी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि हमारी इंद्रियों की पकड़ में सिर्फ रूप आता है, आकार आता है। नाम-रूप के अतिरिक्त हमारी इंद्रियां कुछ भी पकड़ नहीं पातीं।
यह बहुत मजे की बात है कि सागर के किनारे आप सैकड़ों बार खड़े हुए होंगे
और अनेक बार कहा होगा कि मैं सागर देख कर लौटा हूं। लेकिन देखी आपने सिर्फ लहरें हैं, सागर आपने कभी देखा नहीं। सागर कभी दिखाई पड़ सकता नहीं। आप जो भी देखेंगे वह लहर है।
इंद्रियां, सिर्फ ऊपर जो है, उसे पकड़ पाती हैं, भीतर जो है वह छूट जाता है। ऊपर भी आकार भर को पकड़ पाती हैं, आकार के भीतर जो निराकार है, वह छूट जाता है। तो नाम-रूप का जो जगत है वह इंद्रियों के देखने की वजह से पैदा हुआ है। वह कहीं है नहीं। जो भी नाम-रूप में है वह सब जन्मा है और मरेगा। जो उसके पार है वह सदा है--न वह जन्मा है, न वह मरेगा।
तो जब बुद्ध कहते हैं कि बबूले की भांति मैं उठा, तो वे दो बातें कर रहे हैं। सच पूछा जाए तो बबूले में होता क्या है? अगर बबूले में हम प्रवेश करें तो हवा का थोड़ा सा आयतन बबूले के भीतर होता है, उसी हवा का, जो बबूले के बाहर अनंत होकर फैली है। इस विराट हवा के और बबूले के भीतर की हवा के बीच पानी की एक पतली सी दीवार होती है, एक फिल्म की दीवार। जरा सी पानी की पतली दीवार। जिसको दीवार कहना भी ठीक नहीं है, सिर्फ पानी की पतली फिल्म है। वह पानी की जरा सी पतली फिल्म, हवा के एक छोटे से हिस्से को कैद कर लेती है। पानी की पतली फिल्म और हवा का छोटा सा हिस्सा कैद होकर बबूला बन जाता है।
स्वभावतः सब चीजें बड़ी होती हैं, बबूला भी बड़ा होता है; और बड़े होने में ही टूटता है और फूट जाता है। फिर हवा बाहर की हवा से मिल जाती है, फिर पानी पानी में मिल जाता है। बीच में जो निर्मित हुआ था वह इंद्रधनुषी अस्तित्व था--रेनबो एक्झिस्टेंस। कहीं कुछ अंतर नहीं पड़ा था शाश्वत प्राणों में, सब वैसे का वैसा था। लेकिन एक रूप निर्मित हुआ, वह रूप जन्मा और मरा।
हम भी अपने को बबूले की तरह देखें, तो एक रूप का बनना और मिटना है। भीतर जो है, वह सदा से है। लेकिन हमारी आइडेंटिटी, हमारा तादात्म्य होता है बबूले से। तो मैं कहता हूं कि अगर आपके शरीर को देख कर कहूं तो कहूंगा

कि आप मरणधर्मा हैं, मर ही रहे हैं। जन्मे, उसी दिन से मर रहे हैं। मरने के सिवाय आपने कोई काम ही नहीं किया है। बबूले को फूटने में सात क्षण लग जाएंगे, आपको फूटने में सत्तर वर्ष लगेंगे। समय की अनंत धारा में सात क्षण और सत्तर वर्ष में कोई भी फर्क नहीं है।
सब फर्क हमारी छोटी आंखों के फर्क हैं। अगर समय अनंत है, न उसका कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है, तो सत्तर साल में और सात क्षण में कौन सा फर्क होगा? हां, समय अगर सीमित हो, सौ ही साल का हो, तो फिर सत्तर साल में और सात क्षण में फर्क होगा। सात क्षण बहुत छोटे होंगे, सत्तर साल बहुत बड़े होंगे। लेकिन अगर दोनों तरफ कोई सीमा नहीं है, न इस तरफ कोई प्रारंभ है, न उस तरफ कोई अंत है, तो सात क्षण में और सत्तर साल में क्या फर्क है? हमें फिर भी भ्रम हो सकता है कि सात क्षण में और सत्तर साल में फर्क है। लेकिन अगर हम समय की पूरी धारा को देखें तो क्या फर्क है? अनंत की तुलना में सात क्षण भी उतने ही हैं, सत्तर वर्ष भी उतने ही हैं। कितनी देर में फूट जाता है बबूला, यह बड़ा सवाल नहीं है। बनता है तभी से फूटना शुरू हो जाता है।
इसलिए मैंने कहा कि शरीर को देख कर कहें। शरीर से मेरा मतलब है, नाम-रूप से निर्मित जो दिखाई पड़ रहा है। और आत्मा से मेरा मतलब है, नाम-रूप के गिर जाने पर भी जो होगा, नाम-रूप नहीं थे तब भी था। आत्मा से मेरा मतलब है सागर और शरीर से मेरा मतलब है लहर। और ये दोनों ही बातें एक साथ समझनी जरूरी हैं। नहीं तो इन दोनों के बीच अगर भ्रम पैदा हो तो जगत की सारी कठिनाइयां खड़ी होती हैं।
भीतर हमारे तो वह है जो कभी मर नहीं सकता। इसलिए गहरे में हमें सदा ही ऐसा लगता है, मैं कभी न मरूंगा। लाखों लोगों को हम मरते हुए देख लें, फिर भी भीतर यह प्रतीति नहीं होती कि मैं मरूंगा। इसकी गहरे में कहीं कोई ध्वनि पैदा नहीं होती कि मैं मरूंगा। सामने ही लोग मरते रहें और फिर भी हमारे भीतर न मरने का भाव कहीं सजग होता है। किसी गहरे तल में, "मैं नहीं मरूंगा", यह बात हमें जाहिर ही होती है। माना कि बाहर के तथ्य झुठलाते हैं। और बाहर की घटनाएं कहती हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं न मरूंगा! तर्क कहते हैं कि जब सब मरेंगे तो तुम भी मरोगे। लेकिन सारे तर्कों को काट कर भी भीतर कोई स्वर कहे ही चला जाता है कि मैं नहीं मरूंगा।
इसलिए इस जगत में कोई आदमी कभी भरोसा नहीं करता कि वह मरेगा। इसीलिए
तो हम इतनी मृत्यु के बीच जी पाते हैं, नहीं तो इतनी मृत्यु के बीच तत्काल मर जाएं। जहां सब मर रहा है, जहां प्रतिपल हर चीज मर रही है, वहां हम किस भरोसे जीते हैं? आस्था क्या है जीने की? ट्रस्ट कहां है जीने का? किसी परमात्मा में नहीं है। आस्था इस आधार पर खड़ी है भीतर कि हम कितना ही मृत्यु कहे कि मरते हैं, भीतर कोई कहे ही चला जाता है कि मर कैसे सकते हैं? कोई आदमी अपनी मृत्यु को कंसीव नहीं कर सकता। उसकी धारणा नहीं बना सकता कि मैं मरूंगा। कैसी ही धारणा बनाए, वह पाएगा कि वह तो बचा हुआ है। अगर वह अपने को मरा हुआ भी कल्पना करे और देखे, तो भी पाएगा कि मैं देख रहा हूं, मैं बाहर खड़ा हूं। मृत्यु के भीतर हम अपने को कभी नहीं रख पाते, सदा ही बाहर खड़े हो जाते हैं। मृत्यु के भीतर कल्पना में भी रखना असंभव है। सत्य में रखना तो बहुत मुश्किल है, हम कल्पना भी नहीं कर सकते ऐसी जिसमें मैं मर गया। क्योंकि उस कल्पना में भी मैं बाहर खड़ा देखता रहूंगा। वह कल्पना करने वाला बाहर ही रह जाएगा, वह मर नहीं पाएगा।
यह जो भीतर का स्वर है वह उस सागर का स्वर है, जो कहता हैः मौत कहां? मौत कभी जानी नहीं! लेकिन फिर भी हम मौत से डरते हैं--यह हमारे शरीर का स्वर है। और इन दोनों के बीच कनफ्यूजन है। भीतर के स्वर को हम शरीर का स्वर जिस दिन समझ लेते हैं, उसी दिन प्राण कंपने लगते हैं, उसी दिन हम घबड़ाने लगते हैं, क्योंकि शरीर तो मरेगा। इसे हम कितना ही झुठलाएं, और कितना ही विज्ञान खड़ा करें, और कितनी ही चिकित्सा के शास्त्र बनाएं, और कितनी ही दवाइयों को घेर कर बैठ जाएं, और कितने ही चिकित्सकों को चारों तरफ खड़ा कर लें, फिर भी शरीर एक क्षण को भी नहीं कहता कि मैं बचूंगा। शरीर के पास कोई स्वर नहीं है अमृतत्व का। वह जानता है कि मैं मरूंगा।
शरीर जानता है कि वह बबूला है; और हम जानते हैं कि हम बबूले नहीं हैं। जिस दिन हम समझते हैं कि हम बबूले हैं, हमारे जीवन का सारा उपद्रव शुरू हो

जाता है। वह जो शाश्वत है हमारे भीतर, जैसे ही लहर के साथ तादात्म्य कर लेता है वैसे ही कठिनाई में पड़ जाता है। इस तादात्म्य का नाम अज्ञान है।
इस तादात्म्य के टूट जाने का नाम ज्ञान है। कुछ फर्क नहीं होता, सब चीजें फिर भी वैसी ही होती हैं। शरीर अपनी जगह होता है, आत्मा अपनी जगह होती है। एक भ्रांति टूट गई होती है। तब हम जानते हैं कि शरीर मरेगा, इससे हम भयभीत नहीं होते। क्योंकि इसमें भयभीत होने का उपाय नहीं है, शरीर मरेगा ही। भयभीत भी होने का वहां उपाय है जहां बचने की संभावना है। आप ऐसी स्थिति में कभी भयभीत नहीं होते, जहां बचने की संभावना ही नहीं होती। बचने की संभावना से ही भय है।
युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है। तो घर से जब तक जाता है तब तक डरा रहता है। युद्ध के मैदान पर भी कंपा रहता है। लेकिन जब बचाव का सब उपाय समाप्त हो जाता है और बम उसके ऊपर ही गिरने लगते हैं तब वह निर्भय हो जाता है। तब वह आदमी, जो कि जरा सी गोली चल जाती तो घबरा जाता, वह बम गिरते रहते हैं, गोलियां चलती रहती हैं और बैठ कर ताश भी खेलता रहता है। एक बिल्कुल साधारण आदमी, कुछ विशेष आदमी नहीं है वह। स्थिति विशेष है। स्थिति ऐसी है कि जिसमें मौत से अब डरने का कोई अर्थ नहीं है, मीनिंगलेस है। मौत इतनी प्रकट है कि अब बचने का कोई सवाल नहीं है।
फिर भी युद्ध के मैदान पर भी बचने की संभावना है, क्योंकि कोई मरता है, कोई बचता है। इसलिए थोड़ा भय सरकता है। लेकिन मृत्यु के मैदान पर तो बचने की कोई संभावना नहीं, कोई भी नहीं बचता। इसलिए अगर यह भ्रांति हमारी टूट जाए कि मैं शरीर हूं, तो उसी के साथ मृत्यु का भय चला जाता है। क्योंकि शरीर मरेगा, यह एक सुनिश्चितता हो जाती है। यह नियति, डेस्टिनी हो जाती है। इसका उपाय नहीं है, यह भाग्य है शरीर का, इसमें रत्ती भर हेर-फेर नहीं है।
एक तरफ यह स्पष्ट हो जाए कि शरीर मरेगा ही, मृत्यु शरीर का स्वभाव है। मरेगा, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। वह मरा हुआ ही है। और जैसे एक तरफ यह स्पष्ट हो वैसे ही दूसरी तरफ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह जो शरीर के पार है, वह कभी जन्मा ही नहीं है, इसलिए मरने का कोई सवाल नहीं। वहां से भी भय तिरोहित हो जाता है। क्योंकि जो नहीं मरेगा, उसके लिए भय का क्या कारण! और जो मरेगा ही, उसके लिए भी भय का कोई कारण नहीं है। भय इन दोनों के मेल से पैदा होता है। भय इससे पैदा होता है कि भीतर कोई कहता है कि बचूंगा और बाहर कोई कहता है कैसे बचोगे? और ये दोनों चीजें मिश्रित हो जाती हैं। ये दो स्वर अलग-अलग वीणाओं से उठ रहे हैं, यह पता नहीं चलता। ये स्वर एक-दूसरे में खो जाते हैं। हम इसे एक ही संगीत समझ लेते हैं।
तो अज्ञान में निरंतर भय है मृत्यु का, फिर भी ऐसे जीए जाने की चेष्टा
है जैसे मौत नहीं है। अज्ञानी जीता ऐसे ही है जैसे मौत नहीं है, यद्यपि प्रतिपल डरा हुआ जीता है कि मौत है। ज्ञानी ऐसे जीता है जैसे मौत नहीं है। और प्रतिपल जान कर जीता है कि किसी भी क्षण मौत हो सकती है, और मौत नहीं है। लेकिन तल का फासला हो गया है--दो तलों पर अस्तित्व टूट गया। परिधि अलग हो गई, केंद्र अलग हो गया। लहर अलग हो गई, सागर अलग हो गया। रूप अलग हो गया, अरूप अलग हो गया। फिर ऐसा नहीं कि वह रूप से भाग जाता है। यह भी एक बहुत अदभुत बात है कि जीवन की जो भ्रांतियां हैं वे हमारे जानने से मिटने वाली भ्रांतियां नहीं हैं। जानने से सिर्फ हमारी पीड़ा मिटती है।
जैसे शंकर ने निरंतर उदाहरण लिया है कि राह पर पड़ी है रस्सी और अंधेरे में दिखाई पड़ जाती है कि सांप है। लेकिन वह उदाहरण बहुत ठीक नहीं है। क्योंकि उसके पास आ जाने पर पता चल जाता है कि रस्सी है। और एक दफा पता चल जाए तो फिर आप कितने ही दूर चले जाएं, फिर आपको सांप दिखाई नहीं पड़ सकता। लेकिन जीवन का भ्रम इस तरह का नहीं है। जीवन का भ्रम ऐसे है जैसे आप सीधी लकड़ी को पानी में डाल दें, वह तिरछी दिखाई पड़ती है। आप बाहर निकाल कर फिर देख लें कि सीधी है, फिर पानी में डाल दें, वह फिर तिरछी दिखाई पड़ती है। हाथ डाल कर पानी में टटोल लें, पाएंगे कि सीधी है, लेकिन फिर भी तिरछी दिखाई पड़ती है। आपके ज्ञान से उसके तिरछे होने का रूप नहीं मिटता। हां, लेकिन तिरछी है, इसका भ्रम मिट जाता है।

तो जीवन का जो हमारा भ्रम है वह सांप और रस्सी वाला भ्रम नहीं है, वह हमारा पानी में डाली गई सीधी लकड़ी का तिरछा दिखाई देने वाला भ्रम है। भलीभांति जानते हैं कि लकड़ी तिरछी नहीं है, फिर भी तिरछी दिखाई पड़ती है। बड़े से बड़ा वैज्ञानिक जो सब तरह से जांच-परख कर चुका है कि पानी में जाने से लकड़ी तिरछी नहीं होती है, फिर भी उसको भी लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ती है। वह तिरछी दिखाई पड़ना इंद्रियगत है, वह आपके ज्ञान से उसका कोई लेना-देना नहीं है।
हां, अब आप तिरछा मान कर व्यवहार नहीं करेंगे। अब आप तिरछा मान कर व्यवहार नहीं करेंगे, अब आप मान कर चलेंगे कि लकड़ी सीधी है, और देखते रहेंगे कि लकड़ी तिरछी है। यह दो तल पर बंट जाएंगी बातें--जानने के तल पर लकड़ी सीधी होगी, देखने के तल पर लकड़ी तिरछी होगी। इन दोनों में कोई भ्रांति नहीं रह जाएगी।
जीने के तल पर शरीर होगा, बाहर के तल पर शरीर होगा, अस्तित्व के तल पर आत्मा होगी। खो नहीं जाएगा; ऐसा नहीं कि ज्ञानी को संसार खो जाता है। ज्ञानी को संसार नहीं खो जाता। ज्ञानी को संसार ठीक वैसा ही होता है जैसा आपको होता है। शायद और भी प्रगाढ़ होकर और साफ होकर होता है, और स्पष्ट होता है। रोआं-रोआं अस्तित्व का साफ उसकी दृष्टि में होता है। खो नहीं जाता। लेकिन अब वह भ्रम में नहीं पड़ता। अब वह जानता है कि रूप उसकी इंद्रियों से पैदा हुए हैं, जैसे लकड़ी पानी के भीतर तिरछी दिखाई पड़ती है, क्योंकि किरणों का रूपांतरण हो जाता है।
पानी में किरणों की यात्रा बदल जाती है। किरणें थोड़ी झुक जाती हैं, उनके झुकाव की वजह से लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ती है। हवा में किरणें एक तरह से चलती हैं, झुकती नहीं हैं, इसलिए लकड़ी तिरछी दिखाई नहीं पड़ती। लकड़ी तिरछी नहीं होती है, लकड़ियां जिस किरण के आधार पर दिखाई पड़ती हैं, वह तिरछी हो जाती है। लेकिन वह तो दिखाई नहीं पड़ती। किरण तिरछी हो जाती है, तो किरण के तिरछे होने की वजह से लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ती है।
अस्तित्व तो जैसा है वैसा है, लेकिन इंद्रियों से गुजर कर जो ज्ञान की किरण है वह थोड़ी तिरछी हो जाती है। जानने का जो ढंग है, वह बदल जाता है, माध्यम की वजह से। जैसे कि मैंने एक नीला चश्मा लगा लिया, अब चीजें नीली दिखाई पड़ने लगीं। मैं चश्मा उतार कर नीचे देखता हूं, देखता हूं चीजें सफेद हैं। फिर चश्मा लगाता हूं, वे फिर नीली दिखाई पड़ती हैं। अब मैं जानता हूं कि चीजें सफेद हैं, लेकिन फिर भी चश्मे से नीली दिखाई पड़ती हैं। अब मैं यह भी जानता हूं कि यह चश्मे की वजह से नीली दिखाई पड़ती हैं, बात खतम हो गई। चीजें सफेद हैं। अब मैं भ्रम में पड़ने वाला नहीं हूं। अब मैं चश्मा नीला लगाए रहूं, चीजें नीली दिखाई पड़ती रहेंगी, और मैं जानूंगा भलीभांति कि चीजें सफेद हैं।
ठीक ऐसे ही, आत्मा अमृत है, ऐसा जान कर भी शरीर का मरणधर्मा होना चलता रहता है। अस्तित्व सनातन है, ऐसा जान कर भी लहरों का खेल चलता रहता है। लेकिन अब मैं जानता हूं कि वह चश्मे से दिखाई पड़ता है। वह आंख है इंद्रिय की, जो ऐसा देखती है।
इसलिए बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट जैसे लोगों के वक्तव्य दो तलों पर हैं। और हमारी कठिनाई यह है कि हम चूंकि दोनों तलों को अपने भीतर भी सम्मिश्रित कर लेते हैं, हम उनके वक्तव्यों को भी सम्मिश्रित कर लेते हैं--स्वभावतः। कभी बुद्ध इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे वे शरीर हैं। जैसे बुद्ध कहते हैं कि आनंद, मुझे प्यास लगी है, तू पानी ले आ।
अब आत्मा को कोई प्यास नहीं लगती। प्यास शरीर को लगती है। बुद्ध कह रहे हैं, मुझे प्यास लगी है आनंद, तू पानी ले आ। अब आनंद सोच सकता है कि बुद्ध कहते हैं कि शरीर तो है ही नहीं--नाम-रूप है, बबूला है। फिर उनको कैसे प्यास लगी? जब जान लिया आपने कि शरीर है नहीं, तो अब कैसी प्यास! फिर बुद्ध दूसरे दिन कहते हैं कि मैं तो कभी पैदा हुआ नहीं, मैं कभी मरूंगा नहीं! तो अब सुनने वाले की कठिनाइयां शुरू होती हैं। सुनने वाले की कठिनाइयां ये हैं कि वह सोचता है कि ज्ञान में अस्तित्व बदल जाएगा।
ज्ञान में अस्तित्व नहीं बदलता, सिर्फ दृष्टि बदलती है। और जब बुद्ध
कह रहे हैं कि आनंद, मुझे प्यास लगी, तब भी वे यह कह रहे हैं कि आनंद, इस

शरीर को प्यास लगी है। तब भी वे यही कह रहे हैं कि यह जो नाम-रूप का बबूला है, इसे प्यास लगी है, अगर नहीं पानी डालेगा तो यह जल्दी फूट जाएगा। वे इतना ही कह रहे हैं। लेकिन सुनने वाले की कठिनाई यह है कि जिस तरह वह अपने अस्तित्व को मिला-जुला कर जी रहा है दोनों बातों को, कभी नहीं समझ पाता कि कौन स्वर कहां से है, वैसे ही वह अर्थ वहां से भी निकालना शुरू करता है। इसलिए मैंने वैसा कहा। और अगर ये दोनों तलों पर दोनों बातें साफ हो जाएं... ।
सिमोन वेल ने एक किताब लिखी है, ग्रेड्स ऑफ सिग्नीफिकेंस। ऐसे ही महत्ता के तल हैं। और जितना महान व्यक्ति है उतनी अनेक महत्ताओं के तलों पर वह एक साथ जीता है। जीना ही पड़ता है। क्योंकि जब जिस तल का व्यक्ति उसके सामने आता है, उसी तल पर उसे बात करनी पड़ती है। या फिर बात बेमानी हो जाती है। बुद्ध अगर बुद्ध की तरह आपसे बात करें, तो बेकार होगी। आप समझेंगे पागल हैं।
और ऐसा अक्सर हुआ है कि इस तरह के लोगों को हमने पागल समझा है। पागल समझने का कारण था। क्योंकि जो बात उन्होंने की, वह बिल्कुल पागलपन की मालूम पड़ी। तो या तो वे पागल ठहराए जाएंगे अगर अपने तल पर बोलें, या आपके तल पर बोलें तो उनको ग्रेड नीचे लाना पड़ेगा। उस तल पर आना चाहिए उन्हें जहां आप समझ पाएं, जहां वे पागल नहीं मालूम पड़ेंगे। फिर जितने तलों के लोग उनके पास आते हैं उतने तलों की बात उनको बोलनी पड़ती है।
करीब-करीब बात ऐसी है कि बुद्ध जैसे व्यक्ति को, जितने लोगों से उन्होंने बात कही, ऐसा समझ लेना चाहिए कि उतने दर्पण बुद्ध के सामने आए। और सब दर्पणों ने अपनी-अपनी तस्वीर बना ली। कोई दर्पण तिरछा था तो तिरछी तस्वीर बनी। नहीं तो दर्पण नाराज होता। दर्पणों से मेल खानी चाहिए तस्वीर। कोई दर्पण लंबा करके दिखाता था तो लंबी तस्वीर बनी, कोई छोटा करके दिखाता था तो छोटी तस्वीर बनी। अन्यथा दर्पण नाराज होते हैं। और या फिर दर्पणों को तोड़ना पड़ता और ठीक करना पड़ता।
तो इसलिए बहुत तलों पर वक्तव्य हैं। और कई बार तो एक ही वक्तव्य में बहुत तल होते हैं। क्योंकि ऐसा व्यक्ति बोलना शुरू करता है तब वह अक्सर वहीं से शुरू करता है जहां वह होता है। और जब वह बोलना अंत करता है तब वह अक्सर वहीं होता है जहां आप होते हैं। कई दफे तो एक ही वाक्य में भी लंबी यात्रा हो जाती है। क्योंकि जब वह बोलना शुरू करता है तो वह वहीं से शुरू करता है जहां वह होता है। आपसे बड़ी अपेक्षाएं रख कर शुरू करता है। फिर धीरे-धीरे अपेक्षा उसे नीचे उतारनी पड़ती है। आखिरी वक्तव्य तक वह वहां होता है जहां आप होते हैं।
और ये दो गहरे खाई विभाजन हैं। इनसे जो आखिरी खतरा ख्याल में ले लेना चाहिए वह यह कि इसका यह मतलब नहीं है कि ये दोनों बहुत अलग हैं, कि भिन्न हैं, कि पृथक हैं। जैसा मैंने कहा, सागर और लहर जैसे हैं। यह और मजे की बात है कि सागर तो बिना लहर के कभी हो सकता है, लेकिन लहर कभी बिना सागर के नहीं हो सकती। तो निराकार तो आकार के बिना हो सकता है, लेकिन आकार कभी निराकार के बिना नहीं हो सकता। लेकिन हम अपनी भाषा में देखें तो उल्टा मजा है। भाषा में निराकार शब्द में आकार है, आकार शब्द में निराकार नहीं है। भाषा में निराकार में तो आकार को होना ही पड़ेगा, आकार में निराकार न हो तो चल जाएगा। भाषा हमने बनाई है। अस्तित्व की हालत उल्टी है। वहां निराकार हो सकता है बिना आकार के। आकार कभी बिना निराकार के नहीं हो सकता।
पूरे हमारे शब्द ऐसे हैं! पूरे शब्द हमारे ऐसे हैं--अहिंसा हो कि हिंसा हो। अहिंसा शब्द में हमारे हिंसा जरूरी है। हिंसा शब्द में अहिंसा आवश्यक नहीं है। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि हिंसा बिना अहिंसा के नहीं हो सकती है। हिंसा के होने के लिए अहिंसा बिल्कुल ही अनिवार्य तत्व है। नहीं तो हिंसा का अस्तित्व नहीं हो सकता। हालांकि अहिंसा बिना हिंसा के हो सकती है, उसके लिए हिंसा का होना कोई जरूरी नहीं है। भाषा हम बनाते हैं और हम अपने हिसाब से बनाते हैं। हमारे लिए संसार हो सकता है बिना परमात्मा के, परमात्मा कैसे बिना संसार के हो सकता है?
ये दो चीजें अलग नहीं हैं। इसलिए इसमें जो विराट है वह क्षुद्र के बिना हो सकता है। लहर के बिना सागर के होने में कोई भी बाधा नहीं है। लेकिन

लहर कैसे होगी सागर के बिना? लहर इतनी छोटी है--और अपने होने के लिए चारों तरफ सागर से बंधी है। सब तरफ सागर उसको पकड़े हुए है, तो ही वह है। सब तरफ सागर ने उसको उठाया है, तो ही वह है। सब तरफ सागर उसको सम्हाले है, तो ही वह है। सागर छोड़ दे तो वह गई। सागर हो सकता है। उसे किसी लहर ने नहीं सम्हाला हुआ है। इसलिए लहर के होने का कोई सवाल नहीं है।
ये दो अलग नहीं हैं, लेकिन फिर भी मैं कहता हूं अलग हैं। अलग इसलिए कहता हूं कि लहर को भ्रम न हो जाए, कि वह अपने को अमृत और निराकार और शाश्वत न समझ ले। अलग है, तो भ्रम हो सकता है, भ्रम की कठिनाई पैदा हो सकती है। अगर एक ही है तो भ्रम नहीं होगा। और अगर एक का ऐसा अनुभव हो तब तो फिर वह कहेगी कि मैं हूं ही नहीं, सागर ही है।
जैसे जीसस बार-बार कहते हैं कि मैं कहां हूं, वही है पिता जो ऊपर है। मैं नहीं हूं; वही है।
हमें दिक्कत होती है। हमें बहुत कठिनाई होती है। क्योंकि या तो हम ऊपर पिता को खोजना चाहते हैं कि वह कौन है ऊपर? कहां है? और या फिर इस आदमी को हम पागल समझते हैं कि यह आदमी क्या कह रहा है! तुम्हीं तो हो, और कौन है? पर जीसस यही कह रहे हैं कि लहर मैं नहीं हूं, सागर ही है। पर हमें लहरों के सिवाय किसी चीज का कभी कोई दर्शन नहीं हुआ। इसलिए सागर हमारे लिए सिर्फ शब्द है। जो है वस्तुतः वह हमारे लिए केवल शब्द है और जो मात्र दिखाई पड़ता है वह हमारे लिए सत्य है।
इसलिए मैंने कहा कि शरीर मरणधर्मा है, मृत्यु है। चैतन्य, चिन्मय मरणधर्मा नहीं है, वरन अमृतत्व है। और उस अमृतत्व के ऊपर ही सारी मृत्यु का खेल है।
सागर और लहर को तो हमें समझने में कठिनाई नहीं होती, क्योंकि हमने कभी सागर और लहर में इतनी दुश्मनी नहीं मानी। लेकिन मृत्यु और अमृत में हमें बड़ी मुश्किल होती है, क्योंकि हमने बड़ी दुश्मनी मान रखी है। दुश्मनी हमारी मानी हुई है। सागर और लहर जब मैं कहता हूं तो आपको कठिनाई नहीं होती। आप कहते हैं कि बड़े निकट के अस्तित्व हैं, ठीक कहते हैं। लेकिन मृत्यु और अमृत तो बड़े विपरीत हैं। पदार्थ और परमात्मा तो बड़े विपरीत हैं। जन्म और मृत्यु तो बड़े विपरीत हैं। ये तो एक नहीं हो सकते।
ये भी एक हैं। मृत्यु को भी जितना गहरे जाकर जानेंगे, पाएंगे, परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। लहर भी परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। अमृत को भी जितना खोजेंगे, पाएंगे, वह शाश्वतता, इटरनिटी है, और कुछ भी नहीं है। इस जगत में जो-जो हमें विपरीत दिखाई पड़ता है वह अपने विपरीत पर ही निर्भर होता है। हमारे दिखाई पड़ने में विपरीत के कारण बड़ी अड़चन है। हम मृत्यु को और अमृत को बिल्कुल अलग रख देते हैं। लेकिन मृत्यु जी नहीं सकती अमृत के बिना। उसको भी होने के लिए अमृत से ही थोड़ा सहारा उधार लेना पड़ता है। जितनी देर होती है उतनी देर भी अमृत के ही कंधे पर हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़ी देर चलना हो तो सत्य के कंधे पर थोड़ा हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़े कदम रखने हों तो उसको कहना पड़ता है, मैं सत्य हूं।
सत्य शायद दावा नहीं करता कि मैं सत्य हूं, लेकिन झूठ सदा दावा करता
है कि मैं सत्य हूं। बिना दावे के वह चल नहीं सकता इंच भर, चला कि गिरा! उसको चिल्ला कर घोषणा करनी पड़ती है कि सम्हल जाओ, मैं आ रहा हूं, मैं सत्य हूं। वह सब प्रमाण लेकर साथ चलता है कि मैं सत्य क्यों हूं। सत्य कोई प्रमाण लेकर नहीं चलता। उसके लिए झूठ के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं है। वह सहारा लेगा तो दिक्कत में पड़ेगा, झूठ सहारा न लेगा तो दिक्कत में पड़ जाएगा।
अमृत के लिए मृत्यु के सहारे की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन मृत्यु की घटना तो अमृत के सहारे ही घटती है। शाश्वत के लिए परिवर्तन की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन परिवर्तन की घटना शाश्वत के बिना नहीं घट सकती। इतना जरूर तय है कि वह जो परिवर्तनशील है, वह हमारी जो स्थिति है, हम सिर्फ परिवर्तनशील को ही जानते हैं। इसलिए जब भी शाश्वत के संबंध में सोचते हैं तो हम परिवर्तनशील से ही कुछ अनुमान लगाते हैं। और कोई उपाय नहीं है। हमारी हालत ऐसी है जैसे कि अंधेरे में खड़ा आदमी अंधेरे से ही प्रकाश
का अनुमान लगाए। उसके पास और कोई उपाय नहीं है। यद्यपि अंधकार भी प्रकाश

का ही धीमा रूप है, अंधकार भी प्रकाश के बहुत कम होने की स्थिति है। कोई अंधकार ऐसा नहीं है जहां प्रकाश न हो। क्षीण होगा। और क्षीण भी कहना ठीक नहीं है, सिर्फ हमारी इंद्रियों की पकड़ के लिए क्षीण है। हमारी इंद्रियां नहीं पकड़ पातीं। अन्यथा हमारे पास से इतने बड़े प्रकाश के बवंडर निकल रहे हैं जिसका कोई हिसाब नहीं, कि हम देख लें तो हम अंधे हो जाएं। लेकिन हमारी इंद्रियां उनको नहीं पकड़ पातीं। अंधेरा हो जाता है।
जब तक एक्स-रे नहीं थी, हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर भी किरणें आर-पार हो रही हैं। हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर की हड्डी की तस्वीर भी किसी दिन बाहर आ जाएगी। आज नहीं कल और गहरी किरण खोज ली जाएगी और हम एक बच्चे के, मां के पेट में जो पहला अणु है, उसके आर-पार किरण को डाल सकेंगे किसी दिन तो हम उसकी पूरी जिंदगी देख लेंगे कि वह क्या-क्या हो जाएगा। इसकी सारी संभावनाएं हैं।
हमारे पास से बहुत तरह का प्रकाश गुजर रहा है, हमारी आंख नहीं पकड़ती। नहीं पकड़ती यानी हमारे लिए अंधेरा है। जिसे हम अंधेरा कहते हैं, उसका कुल मतलब इतना ही है कि ऐसा प्रकाश जिसे हम नहीं पकड़ रहे हैं, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन फिर भी अंधेरे में खड़े होकर कोई आदमी प्रकाश के बाबत जो भी अनुमान लगाएगा वे गलत होंगे। माना कि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है, फिर भी अंधेरे से प्रकाश के बाबत जो भी अनुमान लगाए जाएंगे वे गलत होंगे। माना कि मृत्यु भी अमृत का एक रूप है, फिर भी मृत्यु से अमृत के बाबत जो भी अनुमान लगाए जाएंगे वे गलत होंगे। हम अमृत को जान लें तो ही कुछ होता है, अन्यथा कुछ भी नहीं होता।
मृत्यु से घिरे हुए व्यक्ति अमृत से जो मतलब लेते हैं उनका मतलब इतना
ही होता है केवल कि हम नहीं मरेंगे, जो कि बिल्कुल गलत है। मृत्यु से घिरा हुआ व्यक्ति अमृत से एक ही मतलब लेता है कि मैं नहीं मरूंगा। अमृत का मतलब है अमर--मृत्यु से घिरे आदमी को--कि मैं मरूंगा नहीं। जो जानता है अमृत को, उसका मतलब है कि मैं कभी था ही नहीं। जो नहीं जानता है वह कहता है, मैं कभी होऊंगा ही, सदा रहूंगा, कभी भी "नहीं" नहीं होऊंगा। देखते हैं उन दोनों का फर्क बुनियादी है, गहरा है। मरने को जानने वाला आदमी कहता है कि ठीक पक्का हो गया न कि आत्मा अमर है? फिर मैं कभी नहीं मरूंगा। वह हमेशा फ्यूचर ओरिएंटेड होगा। उसका जो मतलब होगा वह भविष्य में होगा कि फिर मैं कभी नहीं मरूंगा। जो आदमी जान लेगा अमृत को वह कहेगा, मैं कभी था ही नहीं, मैं कभी हुआ ही नहीं। वह हमेशा पास्ट ओरिएंटेड होगा।
इसलिए चूंकि सारा विज्ञान हमारा मृत्यु के हाथ में घिरा हुआ है, इसलिए सारा विज्ञान भविष्य की बात करता है। और सारा धर्म चूंकि अमृत के आस-पास घिरा था इसलिए वह अतीत की बात करता है--ओरिजिन की, एंड की नहीं। स्रोत, मूल स्रोत क्या है? धर्म कहता है, जगत कहां से पैदा हुआ? कहां से हम आए? क्योंकि धर्म कहता है कि हम अगर इस बात को ठीक से जान लें कि जहां से हम आए हैं वह स्रोत क्या है, तो हम निश्चिंत हो जाएंगे कि कहां हम जाएंगे। क्योंकि जहां से हम आए हैं उससे अन्यथा हम जा नहीं सकते। जो हमारा मूल है वही हमारी डेस्टिनी है, वही हमारी नियति है, वही हमारा अंत है। जो हमारा आदि है, वही हमारा अंत है।
इसलिए सारे धर्म की चिंतना "आदि" की खोज में हैः व्हाट इ.ज दि ओरिजिन? जगत आया कहां से है? अस्तित्व कहां से पैदा हुआ? आत्मा कहां से आई? सृष्टि कहां हुई? सारी चिंतना धर्म की पीछे की खोज है, आखिर की। और सारा विज्ञान आगे की खोज हैः कि हम जा कहां रहे हैं? हम पहुंचेंगे कहां? हम हो क्या जाएंगे? कल क्या होगा? अंत क्या है? उसका कारण यह है कि विज्ञान की सारी खोज मरणधर्मा कर रहा है। धर्म की सारी खोज उनकी है जिनको मृत्यु की बात समाप्त हो गई।
अब मजे की बात यह है कि मृत्यु सदा भविष्य में है। मृत्यु का अतीत से कोई लेना-देना नहीं है। जब भी आप मृत्यु के संबंध में सोचेंगे, अतीत का कोई सवाल ही नहीं है, बात ही खत्म हो गई। मृत्यु सदा आने वाले कल में है। और जीवन जहां से आया है वह सदा कल था। जहां से जीवन आ रहा है। जहां से गंगा आ रही है वह तो गंगोत्री से आ रही है, जहां गिरेगी वह सागर है। जहां मिटेगी वह कल है। जहां बनी है वह कल था।

मृत्यु से घिरा आदमी जो भी अर्थ निकालेगा वह मृत्यु के ही अनुमान होंगे। इसलिए दूसरे तल की बात पहले तल का अनुमान नहीं है। दूसरे तल की बात दूसरे तल का अनुभव है। यह भी बहुत मजे की बात है कि जो दूसरे तल को जान लेता है वह पहले को तो जानता ही है, लेकिन जो पहले को जानता है वह जरूरी रूप से दूसरे को नहीं जानता है।
इसलिए अगर हमने बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को प्रज्ञावान कहा, बुद्धिमान कहा, तो हमारा उन्हें बुद्धिमान कहने का कारण दूसरा है। वे दो तलों को जानते हैं, हम एक तल को जानते हैं। इसलिए उनकी बात हमसे ज्यादा अर्थपूर्ण है। क्योंकि जितना हम जानते हैं उतना तो वे जानते ही हैं। इसमें तो अड़चन नहीं है। उन्होंने भी मृत्यु को जाना है, उन्होंने भी दुख जाना है, उन्होंने भी क्रोध जाना है, उन्होंने भी हिंसा जानी है। उतना तो वे जानते हैं जितना हम जानते हैं। लेकिन वे कुछ और भी जानते हैं जो हम नहीं जानते। इसलिए पूरब के मुल्कों में सदा ही वि.जडम जो है, प्रज्ञा जो है, वह जिसको कहना चाहिए तल-परिवर्तन है।
पश्चिम के मुल्कों में ज्ञान जो है वह उसी तल पर एक्यूमुलेशन है, उसी
तल पर। आइंस्टीन कितना ही जानता हो, हम जो जानते हैं, हममें और उसमें क्वांटिटेटिव अंतर है। कितना ही जानता हो! हम इस टेबल को ही नाप पाते हैं, उसने सारे विश्व को नाप लिया। बाकी यह जो अंतर है यह परिमाण का है, मात्रा का है। कोई गुणात्मक अंतर नहीं है। यानी कुछ ऐसा वह नहीं जानता है जो कि मुझसे भिन्न है। हां, मेरे का ही विस्तार है। मैं कम जानता हूं, वह ज्यादा जानता है। मेरे पास रुपया है, उसके पास करोड़ रुपये हैं। लेकिन जो मेरे पास है, उससे भिन्न उसके पास नहीं है। उसकी ही और-और ज्यादा राशि है।
बुद्ध या महावीर को जब हम कहते हैं ज्ञानी, तो हमारा मतलब यह नहीं है।
यह भी हो सकता है कि हमारे तल पर हम ही उनसे ज्यादा जानते हों। नहीं लेकिन हमारा ज्ञान का मतलब है कि वे दूसरे तल पर कुछ जानते हैं, जिसमें हम कुछ भी नहीं जानते। एक नयी यात्रा उन्होंने शुरू की है, क्वालिटेटिव अंतर है। इसलिए ऐसा हो सकता है कि महावीर को और आइंस्टीन को सामने खड़ा करें तो आइंस्टीन जो जानता है उस मामले में महावीर बहुत ज्यादा ज्ञानी सिद्ध न हों; उतना एक्यूमुलेशन उनके पास नहीं होगा। वे कहेंगे, भई मैं तो टेबल ही नाप सकता हूं, तुम सारे संसार को नाप लेते हो। तुम दूर चांद-तारों की भी लंबाई बता देते हो, बाकी मैं नहीं बता सकता। मैं तो इस कमरे को भी नाप लूं तो बहुत है। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि तुम मुझसे ज्यादा ज्ञानी नहीं हो। क्योंकि तुम जो जानते हो, वह कंसीवेबल है। उसमें कुछ ऐसा मामला नहीं है। अगर कमरा नापा जा सकता है तो तारे भी नापे जा सकते हैं। इसमें कहीं कोई क्रांति घटित नहीं हो गई है।
आइंस्टीन के भीतर कोई म्यूटेशन नहीं हो गया है। यह कोई दूसरा आदमी नहीं है। यह आदमी वही है। हां, उसमें ही ज्यादा कुशल है, जिसमें हम अकुशल हैं। उसमें ही ज्यादा गतिमान है, जिसमें हम मंद-गति हैं। उसमें ही दूर तक गया, जिसमें हम थोड़ी दूर गए हैं। उसमें ही गहरा गया, जिसमें हम बाहर से ही लौट आए हैं। लेकिन कहीं और नहीं है इसका कोई प्रवेश।
बुद्ध और महावीर या उस तरह के लोग जिनको हमने बुद्धिमान कहा, उनसे हमारा प्रयोजन है कि वह जो तल है जानने का, मृत्यु का, उसके पार वे वहां गए जहां अमृत है। और उनकी बात का मूल्य है, उनकी बात का मूल्य है। एक आदमी जिसने कभी शराब नहीं पी है, उसकी बात का बहुत मूल्य नहीं है कि वह क्या कह रहा है। एक आदमी जिसने शराब पी है, उसकी बात का भी बहुत मूल्य नहीं है। लेकिन एक आदमी जिसने शराब पी, और शराब के पार भी गया, उसकी बात का बहुत मूल्य है। जिसने शराब पी ही नहीं, वह बचपन में है, उसने कोई प्रौढ़ता नहीं पाई। उसका वक्तव्य चाइल्डिश है। इसीलिए शराब नहीं पीने वाले कभी भी शराब पीने वालों को समझा नहीं पाते हैं। क्योंकि नहीं पीने वाले चाइल्डिश मालूम होते हैं, बचकाने। शराब पीने वाला जानता है कि हम तुमसे ज्यादा जानते हैं। तुम तो जो जानते हो वह हमने भी जाना है। हम तुमसे ज्यादा जानते हैं। अगर तुम भी पीकर देखो तभी तुम कुछ कह सकते हो। लेकिन जिसने शराब पी और छोड़ी, शराब पीने वाला उसकी बात का मूल्य करता है।

यूरोप और अमरीका में एक संगठन है शराब पीने वालों का--अल्कोहल्स अनानिमस। एक बहुत व्यापक आंदोलन है। इसमें सिर्फ वे ही लोग सम्मिलित हो सकते हैं जो शराब में गहरे गए हैं। सिर्फ वे ही लोग सम्मिलित हो सकते हैं। और यह शराब छुड़ाने वालों का आंदोलन है, लेकिन सिर्फ शराब पीने वाले ही सम्मिलित हो सकते हैं।
और यह हैरानी की बात है कि शराब पीने वालों की ये मंडलियां किसी भी नये शराब पीने वाले की फौरन शराब छुड़वा देती हैं। क्योंकि वह मैच्योर्ड है। शराब पीने वाला उसकी बात समझ पाता है; क्योंकि जो कह रहा है वह अनुभवी है। वह गैर-अनुभव से नहीं कह रहा है, उसने भी पीया है, वह भी इसी तरह गिरा है, वह भी इन्हीं कठिनाइयों से गुजरा है और पार हुआ है। उसकी बात का कोई मूल्य है।
पर फिर भी यह मैंने उदाहरण के लिए कहा--क्योंकि शराब पीयो, कि न पीयो,
कि पीने के बाद छोड़ दो, बहुत तल का फर्क नहीं है। हां, एक तल के भीतर ही सीढ़ियों का फर्क है। लेकिन एक बार अमृत का अनुभव हो जाए तो सारा तल परिवर्तित हुआ। अगर बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट जैसे लोगों की बात का इतना गहरा परिणाम हुआ तो उसका कारण यह था। उसका कारण यह थाः हम जो जानते थे, वे जानते ही हैं; हम जो नहीं जानते, वह भी वे जानते हैं। और जो उन्होंने नया जाना है उस नये जानने से वे कह रहे हैं कि हमारे जानने में कहीं बुनियादी भूलें हैं।

ओशो, महावीर पर हुई चर्चा में आपने बताया था कि महावीर पूर्व-जन्म में
ही परम उपलब्धि को प्राप्त हो चुके थे। केवल अभिव्यक्ति के लिए करुणावश उन्होंने पुनः जन्म धारण किया था। इसी प्रकार कृष्ण के बारे में आपका कहना था कि वे तो जन्म से ही सिद्ध थे। अब, जब जबलपुर में आपकी और मेरी जो वार्ता हुई थी, उससे मुझे ऐसा आभास हुआ था कि जो बात महावीर और कृष्ण के बारे में आपने बताई थी वही बात आप पर भी घटित होती है। अतएव प्रश्न उठता है, यदि ऐसी बात है तो आपको किस करुणावश जन्म लेना पड़ा? इस संबंध में अपने पूर्व-जन्मों और पूर्व-जन्मों की उपलब्धियों पर भी प्रकाश डालने की कृपा करें ताकि वे साधक के लिए उपयोगी हो सकें। और यह भी कि पिछले जन्म और इस जन्म में समय का कितना अंतराल रहा?

इसमें बहुत सी बातें ख्याल में लेनी पड़ेंगी। पहला तो, ऐसे व्यक्तियों
के जन्म के संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में रखनी चाहिए। एक जन्म में ज्ञान की यात्रा पूरी हो गई हो तो व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह चाहे तो एक जन्म और ले सके और चाहे तो न ले। बिल्कुल स्वतंत्रता की स्थिति है। सच तो यह है कि वही एक जन्म स्वतंत्रता से लिया गया होता है। अन्यथा तो कोई जन्म स्वतंत्रता का नहीं है। चुनाव नहीं है बाकी जन्मों में। बाकी जन्म तो हमारे वासना के पाश में बहुत मजबूरियां हैं, लेने पड़े हैं। जैसे धकाए गए हैं, या खींचे गए हैं, या दोनों ही बातें एक साथ हुई हैं। धकाए गए हैं पिछले कर्मों से, खींचे गए हैं आगे की आकांक्षाओं से। तो हमारा जन्म साधारणतः बिल्कुल ही परतंत्र घटना है। उसमें चुनाव का मौका नहीं है। सचेतन रूप से हम चुनते नहीं कि हम जन्म लें। सचेतन रूप से सिर्फ एक ही मौका आता है चुनने का, वह तब आता है जब पूरी तरह व्यक्ति स्वयं को जान लिया होता है। वह घटना घट गई होती है जिसके आगे पाने को कुछ नहीं होता। ऐसा क्षण आ जाता है जब वह व्यक्ति कह सकता है कि अब मेरे लिए कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि मेरे लिए कोई वासना नहीं है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं न पाऊं तो मेरी कोई पीड़ा है। यह बहुत ही शिखर का क्षण है--पीक। इस शिखर पर ही पहली दफा स्वतंत्रता मिलती है।
अब यह बड़े मजे की बात है और जीवन के रहस्यों में से एक कि जो चाहेंगे
कि स्वतंत्र हों वे स्वतंत्र नहीं हो पाते हैं और जिसकी अब कोई चाह नहीं रही वे स्वतंत्र हो जाते हैं। जो चाहते हैं कि यहां जन्म ले लें, वहां जन्म ले लें, उनके लिए कोई उपाय नहीं है। और जो अब इस स्थिति में है कि कहीं जन्म लेने का कोई सवाल न रहा, अब वह इस सुविधा में है कि वह चाहे तो कहीं ले ले। लेकिन यह भी एक ही जन्म के लिए संभव हो सकता है। इसलिए नहीं कि एक जन्म के

बाद उसे स्वतंत्रता नहीं रह जाएगी, इसलिए नहीं कि एक जन्म के बाद उसे स्वतंत्रता नहीं रह जाएगी जन्म लेने की। स्वतंत्रता तो सदा होगी। लेकिन एक जन्म के बाद स्वतंत्रता का उपयोग करने का भाव भी खो जाएगा। वह अभी रहेगा।
स्वतंत्रता मिलते ही, इस जन्म में यदि आपको घटना घट गई परम अनुभव की,
तो स्वतंत्रता तो मिल गई आपको। लेकिन जैसा कि सदा होता है, स्वतंत्रता मिलने के साथ ही स्वतंत्रता का उपयोग करने की जो भाव-दशा है वह एकदम नहीं खो जाएगी। उसका अभी उपयोग किया जा सकता है। जो बहुत गहरे जानते हैं वे कहेंगे, यह भी एक बंधन है।
इसलिए जैनों ने, जिन्होंने इस दिशा में सर्वाधिक गहरी खोज की--इस दिशा में जैनों की खोज की कोई भी तुलना नहीं है सारे जगत में--इसलिए उन्होंने तीर्थंकर-गोत्रबंध इसको नाम दिया। यह आखिरी बंधन है--स्वतंत्रता का बंधन है। आखिरी, कि इसका भी उपयोग कर लेने का एक मन है। वह भी मन ही है। इसलिए सिद्ध तो बहुत होते हैं, तीर्थंकर सभी नहीं होते। परम ज्ञान को कई लोग उपलब्ध होते हैं, लेकिन तीर्थंकर सभी नहीं होते। तीर्थंकर होने के लिए, यानी इस स्वतंत्रता का उपयोग करने के लिए, एक विशेष तरह के कर्मों का जाल अतीत में होना चाहिए। शिक्षक होने का, वह टीचरहुड का एक लंबा जाल होना चाहिए। अगर वह पीछे है, तो वह आखिरी धक्का देगा। और जो जाना गया है, वह कहा जाएगा। जो पाया गया है, वह बताया जाएगा। जो मिला है, वह बांटा जाएगा।
तो इस स्थिति के बाद सारे लोग ही दूसरा जन्म यानी एक जन्म और लेते हैं, ऐसा नहीं है। कभी करोड़ में एकाध! इसलिए जैनों ने तो करीब-करीब औसत तय कर रखी है कि एक सृष्टि-कल्प में सिर्फ चौबीस। वह बिल्कुल औसत है। पर औसत की वजह से हमको... जैसे कि हम कह सकते हैं कि आज बंबई की सड़कों पर कितने एक्सीडेंट होंगे। पिछले तीस साल का सारा औसत निकाल लेंगे तो आज हम कह सकते हैं कि बंबई में कितने एक्सीडेंट होंगे। और वह करीब-करीब सही होने वाले हैं। बस ऐसे ही चौबीस का जो औसत है, वह औसत है। वह अनेक कल्पों के स्मरण का औसत है--अनेक कल्पों के! अनेक बार सृष्टि के बनने और मिटने का जो सारा का सारा स्मरण है, उस स्मरण में अंदाजन जो सबका हम भाग दें, तो वह चौबीस है। यानी एक पूरी सृष्टि के बनने और मिटने के बीच चौबीस व्यक्ति ऐसा बंध कर पाते हैं कि वे एक जन्म का और उपयोग करें।
इसमें दूसरी बात भी ख्याल रख लेनी चाहिए कि जब हम कहते हैं कि बंबई में कितने एक्सीडेंट होंगे आज, तो हम लंदन के एक्सीडेंट की बात नहीं कर रहे हैं। या हम कहते हैं कि मरीन ड्राइव के रास्ते पर कितने एक्सीडेंट होंगे, तो फिर हम बंबई के और रास्तों की भी बात नहीं कर रहे हैं।
तो जैनों का जो हिसाब है वह उनके अपने रास्ते का है, उसमें जीसस की गणना नहीं होगी। और कृष्ण और बुद्ध की भी गणना नहीं होगी। लेकिन यह बहुत मजे की बात है कि जब हिंदुओं ने भी गणना की तो वह चौबीस अनुपात पड़ा, उनके रास्ते पर भी और जब बुद्धों ने गणना की तब भी चौबीस अनुपात पड़ा, उनके रास्ते पर भी। इसलिए चौबीस अवतारों का ख्याल हिंदुओं में आ गया; चौबीस तीर्थंकरों का जैनों में था ही; और चौबीस बुद्धों का ख्याल बौद्धों को आ गया।
इसका कभी बहुत गहरा हिसाब ईसाइयत ने और इसलाम ने लगाया नहीं। लेकिन इसलाम ने यह जरूर कहा कि मोहम्मद पहले आदमी नहीं, पहले और लोग हो गए। और जिन चार लोगों के लिए मोहम्मद ने इशारे किए कि मुझसे पहले चार लोग हुए, वे इशारे दो कारणों से अधूरे और धुंधले हैं। वे इसलिए अधूरे और धुंधले हैं कि मोहम्मद के पीछे मोहम्मद का रास्ता नहीं है। मोहम्मद का रास्ता मोहम्मद से शुरू होता है। महावीर जितनी स्पष्टता से गिना सके अपने पीछे के चौबीस आदमी, उतना दूसरा नहीं गिना सका दुनिया में। क्योंकि महावीर पर वह रास्ता करीब-करीब पूरा होता है। तो अतीत के बाबत बहुत साफ हुआ जा सकता था। मोहम्मद के आगे मामला था, उसके बाबत साफ होना बहुत कठिन था।
जीसस ने भी पीछे के लोगों की गणना करवाई। लेकिन वह भी धुंधली है, क्योंकि जीसस का भी रास्ता नया शुरू होता है। बुद्ध ने पीछे के लोगों की कोई साफ गणना नहीं करवाई, सिर्फ कभी-कभी बात की। इसलिए चौबीस बुद्धों की बात है, पीछे के नाम एक भी नहीं हैं। इस मामले में जैनों की खोज भी गहरी है

और बहुत प्रामाणिक रूप से बहुत मेहनत की है उस मामले में। इसलिए एक-एक व्यक्ति का पूरा ठिकाना, हिसाब सारा रखा है।
प्रत्येक रास्ते पर अंदाजन चौबीस लोग एक जन्म और लेंगे ज्ञान के बाद।
यह जन्म, मैंने कहा, करुणा से होगा। इस जगत में बिना कारण कुछ भी नहीं हो सकता। और कारण केवल दो ही हो सकते हैं--या तो कामना हो, या करुणा हो। तीसरा कोई कारण नहीं हो सकता। या तो मैं कुछ लेने आपके घर आऊं, या कुछ देने आऊं। और तीसरा कोई उपाय क्या हो सकता है? आपके घर या तो लेने कुछ आऊं तो कामना हो, या कुछ देने आऊं तो करुणा हो। तीसरा आपके घर आने का कोई अर्थ नहीं है, कोई कारण भी नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है।
कामना से जितने जन्म होंगे वे सब परतंत्र होंगे। क्योंकि आप मांगने
के संबंध में स्वतंत्र कभी भी नहीं हो सकते। भिखमंगा कैसे स्वतंत्र हो सकता है? भिखमंगे के स्वतंत्र होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सारी स्वतंत्रता देने वाले पर निर्भर है, लेने वाले पर क्या निर्भर हो सकती है! लेकिन देने वाला स्वतंत्र हो सकता है। तुम न भी लो, तो भी दे सकता है। लेकिन तुम न दो, तो ले नहीं सकता।
महावीर और बुद्ध का जो सारा का सारा दान है, वह हमने लिया, यह जरूरी नहीं है। वह दिया उन्होंने, इतना निश्चित है। लेना अनिवार्य रूप से नहीं निकलता, लेकिन दिया। जो मिला, वह बांटने की इच्छा स्वाभाविक है। पर वह भी अंतिम इच्छा है। इसलिए उसको भी बंध ही कहा है, जो जानते हैं उन्होंने उसको भी कर्म-बंध ही कहा है। वह भी बंधन है आखिर। आना तो मुझे आपके घर तक पड़ेगा ही--चाहे मैं मांगने आऊं और चाहे देने आऊं। आपके घर से बंधा तो रहूंगा ही। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपके घर से नहीं बंधा रहूं, आना तो पड़ेगा ही आपके घर तक। और बड़ी जो कठिनाई है वह यह है कि चूंकि आपके घर सदा मांगने वाले ही आते रहे हैं और आप भी सदा कहीं मांगने ही गए हैं, इसलिए जो देने आएगा उसको समझने की कठिनाई स्वाभाविक है।
और यह भी मैं आपसे कहूं, और इसलिए एक और भी बहुत जटिल चीज पैदा हुई है
कि चूंकि आप देने को समझ ही नहीं सकते, इसलिए बहुत बार ऐसे आदमी को आपसे लेने का भी ढोंग करना पड़ा। क्योंकि आप कभी समझ ही नहीं सकते। आपके लिए यह बात बिल्कुल ही समझ के परे है कि कोई आदमी आपके घर देने आया हो, तो वह आपके घर रोटी मांगने आ गया है।
इसलिए महावीर के सारे उपदेश जो हैं, वे किसी घर में भोजन मांगने के बाद दिए गए उपदेश हैं--वे सिर्फ धन्यवाद हैं। आपने जो भोजन दिया उसके लिए धन्यवाद। अगर महावीर भोजन मांगने आए तो आपकी समझ में आ जाता है। फिर वे पीछे धन्यवाद देने में दो शब्द कह कर चले जाते हैं। आप इसी प्रसन्नता में होते हैं कि दो रोटी हमने दी हैं, बड़ा काम किया है। करुणा में आप इसको भी न समझ पाएंगे, क्योंकि करुणा की दृष्टि को यह भी देखना पड़ता है कि आप ले भी सकेंगे? और अगर आपको देने का कोई भी उपाय न दिया जाए तो आपका अहंकार इतनी कठिनाई पाएगा कि बिल्कुल न ले सकेगा।
इसलिए यह अकारण नहीं है कि महावीर और बुद्ध भिक्षा मांगते रहे। यह अकारण नहीं है। क्योंकि आप उस आदमी को बरदाश्त ही नहीं कर सकते जो सिर्फ दिए चला जाए। आप उसके दुश्मन हो जाएंगे। आप उसके बिल्कुल दुश्मन हो जाएंगे। अब यह बहुत उल्टा लगेगा देखने में कि जो आदमी आपको दिए ही चला जाए, आप उसके दुश्मन हो जाएंगे। क्योंकि आपको तो देने का वह कोई मौका ही नहीं देता। आपसे वह कुछ मांगता ही नहीं है। तो कठिनाई हो जाती है।
इसलिए वे छोटी-मोटी चीजें आपसे मांग लेते हैं। कभी भोजन मांग गया आपके घर पर, कभी उसने कहा कि चीवर नहीं है, कभी उसने कहा कि ठहरने की जगह नहीं है, कभी उसने कुछ और कहा। उसने आपसे कुछ मांग लिया, आप बिल्कुल निश्चिंत हो गए। आप बराबर हो गए। हमने तो एक मकान दे दिया, कि हमने एक दुकान दे दी, कि हमने एक थैली भेंट कर दी--हमने कुछ दिया! उसने क्या दिया, उसने दो बातें कह दीं। इसलिए बुद्ध ने तो अपने संन्यासी को भिक्षु ही नाम दे दिया कि तू भिक्षु के साथ ही चल, तू भिखारी होकर ही दे सकेगा जो तुझे देना है। ढंग तू रखना मांगने का, और देने का इंतजाम करना।
करुणा की अपनी कठिनाइयां हैं। और उस तल पर जीने वाले आदमी की बड़ी मुसीबतें हैं। उसकी मुसीबतें हम समझ ही नहीं सकते। वह ऐसे लोगों के बीच जी

रहा है जो न उसकी भाषा समझ सकते हैं, जो सदा ही उसे मिसअंडरस्टैंड करेंगे, जो कि उसे कभी समझ ही नहीं सकते। और यह अनिवार्यता है। इसमें उसको कोई हैरानी नहीं होती। जब आप उसे गलत समझते हैं तब कोई हैरानी नहीं होती, क्योंकि यह माना ही जाता है कि स्वाभाविक है यह, यह होगा ही। आप अपनी जगह से ही अनुमान लगाएंगे।
तो जिन लोगों के जीवन में, पिछले जन्मों में, अगर बहुत ज्यादा बांटने
की क्षमता का विकास न हुआ हो, तो वे तो उनको ज्ञान हुआ और वे तत्काल तिरोहित हो जाते हैं। तत्काल तिरोहित हो जाते हैं, दूसरा जन्म उनका नहीं बनता।
इस संबंध में यह भी ख्याल ले लेने जैसा है कि बुद्ध और महावीर और इन सबका सम्राटों के घर में पैदा होना एक और गहरे अर्थ से जुड़ा हुआ है। एक और गहरे अर्थ से जुड़ा हुआ है। जैनों ने तो स्पष्ट धारणा बना रखी थी कि तीर्थंकर का जो जन्म हो वह सम्राट के घर में ही हो। और इसीलिए मैंने पीछे बात भी की है कि महावीर का गर्भ तो हुआ था एक ब्राह्मणी के गर्भ में, लेकिन कथा है कि देवताओं ने उस गर्भ को निकाल कर क्षत्रिय के गर्भ में पहुंचाया। उसे बदला। क्योंकि तीर्थंकर को सम्राट के घर में ही पैदा होना चाहिए। कारण?
कारण सिर्फ इसलिए कि सम्राट के द्वार पर पैदा होकर अगर वह भिखारी हो जाएगा तो लोग उसे ज्यादा समझ सकेंगे, लोग ज्यादा समझ सकेंगे। और सम्राट से उनकी सदा ही लेने की आदत रही है। शायद उस आदत की वजह से, थोड़ा सा जो यह देने आया है, वह भी इससे ले सकेंगे। सम्राट की तरफ सदा ही ऊपर देखने की आदत रही है। यह सड़क पर भीख मांगने भी खड़ा हो जाएगा तो बिल्कुल ही इसे नीचे नहीं देखेंगे, वह पुरानी आदत थोड़ा सहारा देगी। इसलिए टेक्निकल, तकनीकी ख्याल था कि उसे ऐसे घर से ही पैदा करके लाना चाहिए। और चूंकि चुनाव उसके हाथ में था इसलिए इसमें कठिनाई न थी। ऐसे इसमें बहुत कठिनाई है। लेकिन चूंकि चुनाव उसके हाथ में है इसलिए बहुत कठिनाई नहीं है, चुना जा सकता है।
ये सारे महावीर या बुद्ध का सारा ज्ञान पिछले जन्म का है। वह सारा का सारा इस जन्म में बंटता है। पूछा जा सकता है कि यह ज्ञान अगर पिछले जन्म का है तो महावीर और बुद्ध इस जन्म में भी साधना करते हुए दिखाई पड़ते हैं! इससे ही सारी भ्रांति पैदा हुई है। इससे सारी भ्रांति पैदा हुई है, क्योंकि महावीर फिर साधना क्यों करते हैं? बुद्ध फिर साधना क्यों करते हैं? कृष्ण ने ऐसी कोई साधना नहीं की; महावीर और बुद्ध ने इस तरह की साधना की।
यह साधना सत्य को पाने के लिए नहीं है। सत्य को पाने के लिए नहीं है। सत्य तो पा लिया गया है। लेकिन उस सत्य को बांटना, पाने से कोई कम कठिन बात नहीं है। थोड़ी ज्यादा ही कठिन है। और अगर एक विशिष्ट तरह के सत्य देने हों... ।
जैसे कि कृष्ण का सत्य जो है, वह विशेष तरह का नहीं है। कृष्ण का सत्य बिल्कुल निर्विशेष है। इसलिए कृष्ण जैसी जिंदगी में हैं, वहीं से उसको देने की कोशिश में सफल हो सके। महावीर और बुद्ध के सत्य बहुत ही स्पेशलाइज्ड हैं। वे जिस मार्ग की बात कर रहे हैं, वह मार्ग बहुत ही विशिष्ट है। और वह मार्ग इस भांति विशिष्ट है कि अगर महावीर किसी से कहें कि तू तीस दिन उपवास कर ले और उसे पता हो कि महावीर ने कभी उपवास नहीं किया, वह सुनने के लिए राजी नहीं हो सकता। वह यह सुनने के लिए राजी ही नहीं हो सकता। यह बात ही नहीं हो सकती। महावीर को बारह साल लंबे उपवास, सिर्फ जिनको उन्हें कहना है, उनके लिए करने पड़े हैं। अन्यथा इनको उपवास की बात ही नहीं कही जा सकती। महावीर को बारह वर्ष मौन उनके लिए रहना पड़ा है जिनके लिए बारह दिन मौन रखवाना हो। नहीं तो महावीर की बात ये सुनने वाले नहीं हैं।
बुद्ध की तो और भी एक मजेदार घटना है। चूंकि बुद्ध एक बिल्कुल ही नयी साधना-परंपरा को शुरू कर रहे थे। महावीर कोई नयी साधना-परंपरा को शुरू नहीं कर रहे थे। महावीर के पास तो पूर्ण विकसित विज्ञान था एक, जिसमें वे अंतिम थे, प्रथम नहीं। शिक्षकों की एक लंबी परंपरा थी, बड़ी शानदार परंपरा थी। और बहुत सुशृंखलित परंपरा थी, जिसमेंशृंखला इतनी साफ थी कि जो कभी नहीं खोई। जिसमें परंपरा से जो मिली हुई धरोहर थी वह कभी भी खोई नहीं।

महावीर तक तो वह इतनी ही सातत्यपूर्ण थी कि जिसका कोई हिसाब नहीं। इसलिए महावीर के लिए कोई नया सत्य नहीं देना था। एक सत्य देना था जो चिर-पोषित था, और चिर-परंपरा से जिसके लिए बल था। लेकिन महावीर को अपना व्यक्तित्व तो खड़ा करना ही था कि इस व्यक्तित्व से लोग सुन सकें। नहीं तो लोग सुन नहीं सकेंगे।
इसलिए मजे की बात है कि महावीर को सर्वाधिक जैन याद रखे और बाकी तेईस
को सर्वाधिक भूल गए। यह भी बहुत आश्चर्यजनक है! क्योंकि महावीर आखिरी हैं; न तो पायोनियर हैं, न तो प्रथम हैं। न ही कोई नया अनुदान है महावीर का। जो जाना हुआ था, बिल्कुल परखा हुआ था, उसको ही प्रकट किया है। फिर भी महावीर सर्वाधिक याद रहे और बाकी तेईस बिल्कुल ही पौराणिक जैसे हो गए, माइथोलाजिकल हो गए। और अगर महावीर न होते तो तेईस का आपको नाम भी पता नहीं होता। उसका गहरा कारण, महावीर ने बारह साल जो अपने व्यक्तित्व को निर्मित करने का प्रयास किया, वह है। बाकी इनमें से कोई व्यक्तित्व को निर्माण नहीं किया था। ये अपनी साधना से गुजर रहे थे।
महावीर का बहुत व्यवस्थित उपक्रम था। साधना में कभी व्यवस्थित उपक्रम नहीं होता। महावीर के लिए साधना का एक अभिनय था, जिसको उन्होंने बहुत सुचारु रूप से पूरा किया। इसलिए महावीर की प्रतिमा जितनी निखर कर प्रकट हुई उतनी प्रतिमा बाकी तेईस की कोई की नहीं निखरी। वे सब फीके हो गए और खो गए। महावीर ने बिल्कुल कलाकार की तरह व्यक्तित्व को खड़ा किया। सुनियोजित था मामला। क्या उन्हें करना है इस व्यक्तित्व से, उसकी पूरी तैयारी थी। उस पूरी तैयारी के साथ वे प्रकट हुए।
बुद्ध पहले थे, इस अर्थ में कि वे एक नया सूत्र साधना का लेकर आए। इसलिए बुद्ध को एक दूसरे ढंग से गुजरना पड़ा। यह बहुत मजे की बात है, और उससे भ्रांति पैदा हुई कि बुद्ध साधना कर रहे हैं। बुद्ध को भी पहले ही जन्म में अनुभव हो चुका है। इस जन्म में उन्हें अनुभव बांटना है। लेकिन बुद्ध के पास कोई सुनियोजित परंपरा नहीं है। बुद्ध की खोज निजी, वैयक्तिक खोज है। उन्होंने एक नया मार्ग तोड़ा है। उसी पहाड़ पर एक नयी पगडंडी तोड़ी है, जिस पर राजपथ भी है। महावीर के पास बिल्कुल राजपथ है। जिसकी चाहे उदघोषणा करनी हो, जिसे चाहे लोग भूल गए हों, लेकिन जो बिल्कुल तैयार है। बुद्ध को एक रास्ता तोड़ना है।
इसलिए बुद्ध ने एक दूसरी तरह की व्यवस्था की इस जन्म में। उन्होंने पहले सब तरह की साधनाओं में वे गए। और प्रत्येक साधना से गुजर कर उन्होंने कहा बेकार है। यह बहुत मजे की घटना है। सब तरह की साधना में गए और हर साधना से गुजर कर उन्होंने कहा बेकार है, इससे कोई कहीं नहीं पहुंचता। और अंत में अपनी साधना की घोषणा की कि इससे मैं पहुंचा हूं, और इससे पहुंचा जा सकता है।
यह बहुत ही जिसको कहना चाहिए मैनेज्ड थी बात, यह भी बहुत व्यवस्थित थी। जिसको भी नयी साधना की घोषणा करनी हो उसे पुरानी साधनाओं को गलत कहना ही पड़ेगा। और अगर बुद्ध बिना गुजरे कहते गलत, जैसा कि कृष्णमूर्ति कहते हैं, तो इतना ही परिणाम होता जितना कृष्णमूर्ति का हो रहा है। क्योंकि जिस बात से आप गुजरे नहीं हैं, उसको आप गलत कहने के भी हकदार नहीं रह जाते। अभी कोई यहां से गया होगा कृष्णमूर्ति के पास, उसने कुंडलिनी के लिए पूछा होगा, उन्होंने कहा, सब बेकार है। तो मैंने उसको कहा कि तुम्हें उनसे पूछना था कि आप अनुभव से कह रहे हैं या बिना अनुभव के? कुंडलिनी के प्रयोग से आप गुजरे हैं? या बिना गुजरे कह रहे हैं? अगर बिना गुजरे कह रहे हैं तो बिल्कुल बेकार बात कह रहे हैं। अगर गुजर कर कह रहे हैं तब तो दो सवाल पूछने चाहिए, कि गुजरने में आप सफल हुए हैं कि असफल होकर कह रहे हैं? अगर सफल हुए हैं तो नानसेंस कहना गलत है। अगर असफल हुए हैं तो ऐसा मान लेना जरूरी नहीं है कि आप असफल हुए हैं इसलिए और लोग भी असफल हो जाएंगे।
तो बुद्ध को सारी साधनाओं से गुजर कर लोगों को दिखा देना पड़ा कि यह भी गलत है, यह भी गलत है, यह भी गलत है। इनसे कोई कहीं नहीं पहुंचता। फिर जिससे मैं पहुंचा हूं वह मैं तुमसे कहता हूं। जिससे मैं पहुंचा वह मैं तुमसे कहता हूं। महावीर उन्हीं साधनाओं से गुजर कर घोषणा किए कि ये सही हैं जो

परंपरा से तैयार थीं। बुद्ध ने घोषणा की कि वे सब गलत हैं, और एक नयी दिशा खोजी। मगर ये दोनों ही व्यक्ति पिछले जन्मों से उपलब्ध हैं।
कृष्ण भी पिछले जन्म से उपलब्ध हैं। लेकिन कृष्ण कोई विशेष मार्ग साधना का नहीं दे रहे हैं। कृष्ण जीवन को ही साधना बनाने का मार्ग दे रहे हैं। इसलिए किसी तपश्चर्या में जाने की उन्हें कोई जरूरत नहीं रही; बल्कि वह बाधा बनेगी। अगर महावीर यह कहें कि दुकान पर बैठ कर भी मोक्ष मिल सकता है, तो महावीर का खुद का व्यक्तित्व बाधा बन जाएगा। महावीर अगर यह कहें कि दुकान पर बैठ कर मोक्ष मिल सकता है, तो महावीर से खुद लोग पूछेंगे कि फिर तुमने क्यों छोड़ दिया? कृष्ण अगर जंगल में तपश्चर्या करने जाएं और फिर युद्ध के मैदान पर खड़े होकर कहें कि यहां युद्ध में भी मिल सकता है, तो फिर यह बात नहीं सुनी जा सकती। फिर तो अर्जुन भी कहता कि क्यों धोखा देते हैं मुझे? आप खुद जंगल में जाते हैं और मुझे जंगल जाने नहीं देते।
तो यह प्रत्येक शिक्षक के ऊपर निर्भर करता है कि वह क्या देने वाला है। इसके अनुकूल उसे सारी जिंदगी खड़ी करनी पड़ेगी। बहुत बार उसे ऐसी व्यवस्थाएं जिंदगी में करनी पड़ेंगी जो कि बिल्कुल ही आर्टिफीशियल हैं। मगर जो उसे देना है उसे देने के लिए उनके बिना मुश्किल है, वह नहीं दिया जा सकता।
अब इसमें मेरे बाबत पूछते हैं, जो थोड़ा कठिन है। मुझे सरल पड़ता है बुद्ध या कृष्ण की या महावीर की बात पूछने में। दो-तीन बातें ख्याल में लेकिन ली जा सकती हैं।
एक तो पिछला जन्म कोई सात सौ साल के फासले पर है। इसलिए बहुत कठिनाई
भी है। महावीर का पिछला जन्म केवल ढाई सौ साल के फासले पर है। बुद्ध का पिछला जन्म केवल अठहत्तर साल के फासले पर है। बुद्ध के तो इस जन्म में वे लोग भी मौजूद थे जो पिछले जन्म की गवाही दे सके। महावीर के जन्म में भी इस तरह के लोग मौजूद थे जो अपने पिछले जन्मों में महावीर के जन्म का स्मरण कर सके। कृष्ण का जन्म कोई दो हजार साल बाद हुआ। इसलिए कृष्ण ने जितने नाम लिए हैं वे सब नाम अति प्राचीन हैं और उनका कोई स्मरण नहीं जुटाया जा सकता।
सात सौ साल इसलिए लंबा फासला है। जो व्यक्ति सात सौ साल बाद पैदा होता है, उसके लिए लंबा फासला नहीं है। क्योंकि जब हम शरीर के बाहर हैं तब एक क्षण और सात सौ साल में कोई फर्क नहीं है। सब जो टाइम स्केल है हमारा, शरीर के साथ शुरू होता है। शरीर के बाहर तो कोई अंतर नहीं पड़ता है कि आप सात सौ साल रहे कि सात हजार साल रहे। लेकिन शरीर में आते ही अंतर पड़ता है।
और यह भी बड़े मजे की बात है कि यह जो पता लगाने का उपाय है कि एक व्यक्ति, जैसे मैं अपना कहता हूं कि मैं सात सौ साल नहीं था, तो यह सात सौ साल का मुझे कैसे पता लगेगा? यह भी मुझे सीधा पता लगाना बहुत कठिन है। यह भी मैं उन लोगों की तरफ देख कर पता लगा सकता हूं जो इस बीच में कई दफे जन्मे हैं। समझिए कि एक व्यक्ति मुझ से सात सौ साल पहले परिचित था मेरे पिछले जन्म में। बीच में मेरा तो गैप है, लेकिन वह दस दफे जन्म गया। और उसके दस जन्मों की स्मृतियों का संग्रह है। वही संग्रह से मैं हिसाब लगा सकता हूं कि मैं बीच में कितनी देर तिरोहित था। नहीं तो नहीं हिसाब लगा सकता। हिसाब लगाना कठिन हो जाता है। क्योंकि हमारा जो टाइम स्केल है, जो नाप का हमारा पैमाना है, वह शरीर के पार जो टाइम है उसका नहीं है, शरीर के इस तरफ जो टाइम है उसका है।
करीब-करीब ऐसा है, जैसे मैं एक क्षण को झपकी लग जाए और सो जाऊं और एक सपना देखूं। और सपने में मैं देखूं कि वर्षों बीत गए--ऐसा सपना देखूं। और क्षण भर बाद आप मुझे उठा दें और कहें कि आपकी झपकी लग गई। और मैं आपसे पूछूं कि कितना समय गुजरा? और आप कहें कि अभी तो क्षण भर भी नहीं बीता होगा। और मैं कहूं कि यह कैसे हो सकता है? क्योंकि मैंने तो वर्षों लंबा सपना देखा है।
सपने में, एक क्षण में वर्षों लंबा सपना देखा जा सकता है। टाइम स्केल अलग है। और सपने से लौट कर अगर उस आदमी को इस जगत में कोई भी उपाय न मिले जानने का कि मैं कब सोया था, तो पता लगाना मुश्किल है कि वह कितनी देर सपना देखा उसने। वह तो यहां जो घड़ी रखी है वह बताती है कि जब मैं अभी जाग रहा था

तब बारह बजे थे और अभी सोया हूं और अभी उठा तो बारह बज कर एक ही मिनट हुआ है। वह आपकी तरफ देखता है। आप अभी यहीं बैठे हैं, तो ही पता लगता है, अन्यथा पता नहीं लगता। ये जो सात सौ साल का पार होना है।

और दूसरी बात आपने पूछी कि क्या मैं पूरे ज्ञान को लेकर पैदा हुआ?
तो इसमें दो बातें समझनी पड़ेंगी जो थोड़ी भिन्न हैं। कहना चाहिए करीब-करीब पूरे ज्ञान को लेकर पैदा हुआ। करीब-करीब इसलिए कहता हूं कि जान कर कुछ चीजें बचा ली गई हैं। जान कर भी बचाई जा सकती हैं।
इस संबंध में भी जैनों का हिसाब बहुत वैज्ञानिक है। जैनों ने ज्ञान
के चौदह हिस्से तोड़ दिए हैं। तेरह इस जगत में, और चौदहवां अंदर चला जाएगा। तो वे तेरह गुण-स्थान कहते हैं उनको। तेरह लेयर्स हैं। इनमें कुछ ऐसे गुणस्थान हैं जिनकी छलांग लगाई जा सकती है, जिनसे बच कर निकला जा सकता है। जिन्हें छोड़ा जा सकता है, जो ऑप्शनल हैं। जरूरी नहीं है कि उनसे गुजरा जाए। उनको पार किया जा सकता है। लेकिन उनको पार करने वाला व्यक्ति तीर्थंकर-बंध को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। वह जो ऑप्शनल है, शिक्षक को तो वह भी जानना चाहिए।
समझ रहे हैं न! जो वैकल्पिक है, शिक्षक को वह भी जानना चाहिए। जो अनिवार्य है, साधक के लिए तो पर्याप्त है, लेकिन शिक्षक के लिए पर्याप्त नहीं है। वैकल्पिक भी जानना चाहिए। तो इनमें तेरह में कुछ गुण-स्थान वैकल्पिक हैं। ऐसी कुछ ज्ञान की दिशाएं हैं जो कि सिद्ध के लिए आवश्यक नहीं हैं, वह सीधा मोक्ष जा सकता है। लेकिन शिक्षक के लिए जरूरी हैं। दूसरी बात, इसमें एक सीमा के बाद, जैसे बारहवें गुणस्थान के बाद, वह जो
दो शेष अवस्थाएं रह जाती हैं, उनको लंबाया जा सकता है। उनको एक जन्म में पूरा किया जा सकता है, दो जन्म में पूरा किया जा सकता है, तीन जन्म में पूरा किया जा सकता है। और उनको लंबाने का उपयोग किया जा सकता है।
जैसा मैंने कहा कि पूरे ज्ञान हो जाने के बाद तो एक जन्म के बाद कोई उपाय नहीं है। एक जन्म से ज्यादा सहयोगी नहीं हो सकता व्यक्ति। लेकिन बारहवें गुण-स्थान के बाद अगर दो गुण-स्थानों को रोक लिया जाए तो वह बहुत जन्मों तक सहयोगी हो सकता है। और वह रोकने की संभावना है। बारहवें गुणस्थान पर करीब-करीब बात पूरी हो जाती है, लेकिन मैं कहता हूं करीब-करीब। जैसे कि सब दीवारें गिर जाती हैं और सिर्फ एक पर्दा रह जाता है, जिसके आर-पार भी दिखाई पड़ता है। लेकिन फिर भी पर्दा होता है। जिसको हटा कर उस तरफ जाने की कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अब उस तरफ जाकर भी जो देखने को मिलेगा, वह यहां से भी देखने को मिल रहा है। यानी इससे कोई अंतर भी नहीं पड़ता। इसीलिए मैं कहता हूं करीब-करीब। एक कदम हटा कर उस तरफ चला जाया जाए तो
एक जन्म और लिया जा सकता है। लेकिन उस पर्दे के इस पार खड़ा रहा जाए तो कितने ही जन्म लिए जा सकते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन पार जाने के बाद एक बार से ज्यादा इस तरफ आने का कोई उपाय नहीं है।
पूछा जा सकता है कि महावीर और बुद्ध को भी यह ख्याल था?
यह सबको साफ रहा है। तो इसका तो और उपयोग किया जा सकता था! लेकिन बहुत
सी स्थितियों में बुनियादी फर्क पड़े हैं। महावीर और बुद्ध जिन लोगों के साथ कई जन्मों से काम कर रहे थे, यह बड़े मजे की बात है कि परम ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद केवल बहुत ही एडवांस्ड साधकों पर उपयोग किया जा सकता है उसके ज्ञान का, और कोई उपयोग किया नहीं जा सकता। जिन लोगों पर बुद्ध और महावीर काम कर रहे थे जन्मों से, जो उनके साथ चल रहे थे बहुत रूपों में, उनके लिए एक जन्म काफी था। कई बार तो ऐसा हुआ कि एक जन्म भी जरूरी नहीं रहा। इस जन्म में ज्ञान हो गया अगर बीस साल की उम्र में एक आदमी को, और साठ साल उसको जिंदा रहना है, और चालीस साल में ही काम हो सका, तो बात समाप्त हो गई। कोई लौटने की जरूरत न रही।
लेकिन अब हालतें बिल्कुल अजीब हैं। अब जिसको हम कह सकें कि बहुत विकसित साधक, वे न के बराबर हैं। अगर उन पर भी काम करना हो तो भविष्य के शिक्षकों को अनेक जन्मों के लिए तैयारी रखनी पड़ेगी। तभी उन पर काम किया जा सकता है, नहीं तो काम नहीं किया जा सकता।

और एक मजे की बात थी कि महावीर या बुद्ध को, जब भी वे छोड़ते थे अपना आखिरी जीवन, तब सदा उनके पास कुछ लोग थे जिनको आगे का काम सौंपा जा सके। आज वह हालत बिल्कुल नहीं है।

दैट मीन्स यू हैव टेकेन टू?

न! आदमी जो है आज, आदमी का पूरा का पूरा ध्यान बाह्यमुखी है। और इसलिए
आज शिक्षक के लिए ज्यादा कठिनाई है जो उस वक्त कभी भी नहीं थी। बहुत ज्यादा कठिनाई है। क्योंकि एक तो उसे ज्यादा मेहनत करनी पड़े, ज्यादा अविकसित लोगों के साथ मेहनत करनी पड़े, और हर बार मेहनत के खो जाने का डर है। और कभी भी ऐसे आदमी मिलने मुश्किल होते हैं जिनको काम सौंपा जा सके। जैसे कि नानक के मामले में हुआ। गोविंदसिंह तक, दस गुरुओं तक काम सौंपने वाला आदमी मिलता गया। गोविंदसिंह को सिलसिला तोड़ देना पड़ा। बहुत कोशिश की। यानी गोविंदसिंह ने इतनी कोशिश की है इस जमीन पर जैसी कभी किसी को नहीं करनी पड़ी कि एक आदमी मिल जाए ग्यारहवां सिलसिला जारी रखने के लिए। लेकिन एक आदमी नहीं मिल सका। क्लोज कर देना पड़ा इस बात को। ग्यारहवां आदमी अब नहीं होगा। क्योंकि यह जो होना है यह इस कंटिन्युटी में ही हो सकता है, इसमें जरा सा भी ब्रेक हो तो यह नहीं हो सकता। इसमें जरा सा भी अंतराल हो जाए तो कठिनाई है। फिर यह नहीं हो सकता। वह जो दिया जाना है वह कठिन हो जाएगा।
बोधिधर्म को हिंदुस्तान से चीन जाना पड़ा, क्योंकि चीन में आदमी उपलब्ध था जिसको दिया जा सकता था। लोग समझते हैं कि हिंदुस्तान से कोई बौद्ध धर्म का प्रचार करने बौद्ध भिक्षु चीन गए, गलत है ख्याल। यह हम ऊपर से जो इतिहास को देखते हैं उनकी समझ है। हुईनेन नाम का आदमी चीन में उपलब्ध था जिसको कि दिया जा सकता था। और बड़े मजे की बात है कि हुईनेन आने को राजी नहीं था। यानी जो कठिनाई है इस जगत की वह बहुत अदभुत है। हुईनेन आने को राजी नहीं था। क्योंकि उसे भी अपनी संभावनाओं का कोई पता नहीं था। बोधिधर्म को यहां से यात्रा करनी पड़ी। और एक वक्त आया कि चीन से भी हटा देना पड़ा और जापान में जाकर देना पड़ा।
यह जो सात सौ साल का फासला कई लिहाज से कठिनाई का है। दो लिहाज से कठिनाई का है। एक तो जन्म लेने की कठिनाई रोज बढ़ती जाएगी। जो भी व्यक्ति किसी स्थिति को उपलब्ध हो जाएगा, उसे जन्म खोजना कठिन होता जाएगा। बुद्ध और महावीर के वक्त कोई कठिनाई नहीं थी। रोज ऐसे गर्भ उपलब्ध थे जहां ऐसे व्यक्ति पैदा हो सकते थे। खुद महावीर के वक्त में आठ परम ज्ञानी बिहार में थे, ठीक महावीर की स्थिति के। अलग-अलग आठ मार्गों से वे काम कर रहे थे। और निकटतम स्थिति को तो हजारों लोग थे। थोड़े-बहुत लोग नहीं थे, हजारों लोग थे, जिनको काम कभी भी सौंपा जा सकता है। जो सम्हालेंगे, आगे बढ़ा देंगे।
आज तो किसी को जन्म लेना हो तो आगे और हजारों साल प्रतीक्षा करनी पड़े
तब वह दूसरा जन्म ले सके। इस बीच उसने जो काम किया था वह सब खो जाए। इस बीच जिन आदमियों पर काम किया था उनके दस जन्म हो जाएं, दस जन्मों की पर्तें उनके ऊपर हो जाएं, जिनको काटना कठिन हो जाए।
तो अब तो किसी भी शिक्षक को पर्दे के पार होने में काफी समय लेना पड़ेगा। उसे रुकना पड़ेगा। और अगर कोई पर्दे के पार हो गया तो वह दूसरा जन्म लेने को, एक भी जन्म चुनने को राजी नहीं होगा, क्योंकि वह बेकार है। उसका कारण है। अब वह एक जन्म भी लेना बेकार है। क्योंकि किसके लिए लेना? उस एक में अब काम नहीं हो सकता। यानी मुझे पता हो कि इस कमरे में आकर घंटे भर में काम हो जाएगा तो आने का मतलब है। और अगर काम हो ही नहीं सकता तो उचित नहीं है।
उचित एक कारण से और नहीं है। करुणा इस संबंध में दोहरे अर्थ रखती है।
एक तो आपको जो देना है, वह भी करुणा चाहती है। लेकिन वह यह भी जानती है कि अगर सिर्फ आपसे कुछ छीन लिया जाए और दिया न जा सके तो आपको और खतरे में डाल दे। आपका खतरा कम नहीं होता, बढ़ जाता है। अगर मैं आपको कुछ दिखा सकता हूं तो दिखा दूं, और न दिखा सकूं और जो आपको दिखाई पड़ता था उसमें भी आप अंधे हो जाएं तो और कठिनाई हो जाती है।

इस सात सौ साल में दो-तीन बातें और आपको ख्याल में लेनी चाहिए। एक, कभी मेरे ख्याल में नहीं था कि उसकी बात उठेगी, लेकिन अभी अचानक पूना में बात उठ गई। मेरी मां आई होगी, तो उसको रामलाल पुंगलिया ने पूछा होगा कि मेरा पहले से पहला उनको कोई ख्याल हो तो मुझे बताएं। तो मैं तो सोचता था कि इसकी बात कभी उठने की बात नहीं होगी। हैरानी मुझे हुई क्योंकि मुझे तो पता ही नहीं था कि कब उनकी बात हुई। अभी उन्होंने मीटिंग में वहां इसको कहा। तो मेरी मां ने उनको कहा कि मैं तीन दिन तक रोया नहीं और तीन दिन तक मैंने दूध नहीं पीया। यह मुझे पहला स्मरण है। फिर मैं कुछ बात नहीं किया, वह अभी आई बात गई हो गई। लेकिन यह ठीक है।
सात सौ वर्ष पहले, पिछला मेरा जो जन्म था, उसमें मरने के पहले इक्कीस दिन के एक अनुष्ठान की व्यवस्था थी। इक्कीस दिन पूर्ण उपवास रह कर मैं वह शरीर छोड़ दूंगा। उससे कुछ प्रयोजन थे। लेकिन वे इक्कीस दिन पूरे नहीं हो सके। तीन दिन बाकी रह गए। वे तीन दिन इस बार पूरे करने पड़े। वह कंटिन्युटी है वहां से। वहां बीच का समय नहीं अर्थ रखता कोई भी। वह जो मैं कह रहा हूं बीच के समय का कोई अर्थ नहीं होता। तीन दिन पहले हत्या ही कर दी गई पिछले जन्म में। वे इक्कीस दिन पूरे नहीं हो सके, तीन दिन पहले हत्या ही कर दी गई। वे तीन दिन छूट गए। वे तीन दिन इस जन्म में पूरे हुए। वे इक्कीस दिन अगर पूरे हो जाते उस जन्म में, तो शायद एक जन्म से दूसरा ज्यादा जन्म लेना कठिन हो जाता। अब इसमें बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी हैं। वे इक्कीस दिन अगर पूरे हो जाते तो एक जन्म से ज्यादा लेना कठिन हो जाता। क्योंकि उस पर्दे के पास खड़े होना और पार न होना बड़ा कठिन है। उस पर्दे से देखना और पर्दे को न उठा लेना बहुत कठिन है। यह कब उठ जाता है इसका ठीक होश रखना भी कठिन है। उस पर्दे के पास खड़े रहना और पर्दे को न उठाना करीब-करीब असंभव मामला है। वह संभव हो सका, क्योंकि तीन दिन पहले हत्या कर दी गई।
इसीलिए निरंतर इधर मैंने बहुत बार कई सिलसिलों में कहा है कि जैसे जीसस की हत्या के लिए जुदास की कोशिश जीसस से दुश्मनी नहीं है। वैसे ही जिस आदमी ने मेरी हत्या कर दी उसमें भी दुश्मनी नहीं है। हालांकि वह दुश्मन की तरह ही लिया गया। दुश्मन की तरह ही लिया जाएगा। वह हत्या कीमती हो गई। वे तीन दिन जो चूक गए, मृत्यु के क्षण में, उस जीवन की पूरी साधना के बाद वे तीन दिन जो कर सकते थे, इस जन्म में इक्कीस वर्षों में हो पाया। एक-एक दिन के लिए सात-सात वर्ष चुकाने पड़े।
तो उस जन्म से पूरा ज्ञान लेकर मैं नहीं आया, करीब-करीब! पर्दा उठ सकता था, लेकिन तब एक जन्म होता। अभी एक जन्म और ले सकता हूं। अभी एक जन्म की संभावना और है। लेकिन वह इस पर निर्भर करेगा कि मुझे लगे कि कुछ उपयोग हो सकेगा कि नहीं। इस जन्म भर पूरी मेहनत करके देख लेने से पता लगेगा कि कुछ उपयोग हो सकता है तो ठीक है, अन्यथा वह बात समाप्त हो जाती है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।
हत्या उपयोगी हो गई। क्योंकि जैसा मैंने कहा कि समय का स्केल बदलता है, वैसा चित्त की दशाओं में भी समय का स्केल भिन्न होता है। जन्म के वक्त समय बहुत मंद गति होता है। मृत्यु के वक्त बहुत तीव्र गति होता है। अब समय की गति का हमें कभी कोई ख्याल नहीं, क्योंकि हम तो समझते हैं कि समय की कोई गति नहीं होती। हम तो समझते हैं कि समय में सब गति होती है। अभी तक बड़े से बड़े वैज्ञानिक को भी समय में भी गति होती है, टाइम विलॉसिटी भी है, इसका कोई ख्याल नहीं है। और इसलिए ख्याल नहीं है कि टाइम विलॉसिटी अगर हम बना लें, समय की गति बना लें, तो बाकी गति को नापना मुश्किल हो जाएगा।
समय को हमने थिर रखा है। हम कहते हैं कि एक घंटे में मैं तीन मील चला। लेकिन अगर घंटा भी तीन मील में कुछ चला हो तब तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। तो हमने घंटे को थिर किया है। उसको हमने स्टेटिक मान लिया है। उसको हमने थिर कर लिया है कि यह तय है। नहीं तो सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। तो समय को हमने स्टेटिक बनाया हुआ है। अब यह बड़े मजे की बात है, समय जो कि सबसे ज्यादा नॉन-स्टेटिक है, समय जो कि सबसे ज्यादा तरल है और गतिमान है। समय यानी परिवर्तन! उसको हमने बिल्कुल फिक्स्ड खड़ा कर रखा है, खूंटे की तरह गाड़ दिया है। उसको गाड़ा इसलिए है नहीं तो हमारी सारी गतियों को नापना मुश्किल हो जाएगा।

यह जो समय की गति है, यह भी चित्त-दशा के अनुसार कम और ज्यादा होती है। बच्चे की समय की गति बहुत धीमी होती है, बूढ़े की समय की गति बहुत तीव्र होती है, बहुत कॉम्पैक्ट हो जाती है, सिकुड़ जाती है। थोड़े स्थान में समय ज्यादा गति करता है बूढ़े के लिए। बच्चे के लिए ज्यादा स्थान में समय बहुत धीमी गति करता है।
प्रत्येक पशु के लिए भी अलग-अलग होती है। आदमी का बच्चा चौदह साल में जितनी गति कर पाता है, कुत्ते का बच्चा बहुत थोड़े महीनों में ही उतनी गति कर लेता है। और पशुओं के बच्चे और भी जल्दी गति कर लेते हैं। कुछ पशुओं के बच्चे करीब-करीब पूरे पैदा होते हैं। जमीन पर उन्होंने पैर रखा कि उनमें और उनके एडल्ट में कोई फर्क नहीं होता। वे पूरे होते हैं। इसीलिए पशुओं को समय का बहुत बोध नहीं है। गति बहुत तीव्र होती है। इतनी तीव्रता से हो जाती है कि बच्चा पैदा हुआ घोड़े का और चलने लगा। उसे पता ही नहीं चलता कि पैदा होने और चलने के बीच में समय का फासला है। आदमी के बच्चे को समय का फासला पता चलता है। इसलिए आदमी समय से पीड़ित प्राणी है। समय से बहुत परेशान है, एकदम कंपित है। समय जा रहा है। समय भागा जा रहा है।
तो उस जन्म के आखिरी क्षण में तीन दिन में जितना काम हो सकता था, क्योंकि समय कॉम्पैक्ट था। कोई एक सौ छह वर्ष की उम्र थी। और वह समय बिल्कुल कॉम्पैक्ट था। तो तीव्रता से हो सकती थी जो बात तीन दिन में, वह इस जन्म के बचपन से शुरू होगा, वह तो अंत था, वह इक्कीस वर्ष उसको पूरा होने में लगे। कई बार, अवसर चूका जाए, तो एक-एक दिन के लिए सात-सात साल चुकाने पड़ सकते हैं।
तो इस जन्म में पूरा लेकर नहीं आया, करीब-करीब पूरा लेकर आया। लेकिन
अब मेरी सारी व्यवस्था मुझे और करनी पड़ेगी। जैसा मैंने कहा कि महावीर को एक व्यवस्था करनी पड़ी। एक तपश्चर्या, जिसके माध्यम से वह दे सकें। बुद्ध को दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी--एक-एक तपश्चर्या को गलत करके, एक तपश्चर्या। मुझे बिल्कुल व्यर्थ ही, जो महावीर-बुद्ध को कभी नहीं करना पड़ा, वह करना पड़ा। मुझे व्यर्थ ही सारे जगत में जो भी है, वह पढ़ना पड़ा--बिल्कुल व्यर्थ, उसका कोई प्रयोजन नहीं है मुझे। क्योंकि आज के जगत को अगर कोई भी मैसेज दी जा सकती है, तो न तो उपवास करने वाले की आज के जगत को कोई फिक्र है, न आंखें बंद करके बैठे आदमी की कोई फिक्र है, आज के जगत को अगर कोई भी मैसेज जा सकती है, अगर कोई भी तपश्चर्या जा सकती है, तो वह आज के जगत के पास जो एक बौद्धिक ज्ञान का विराट अंबार लग गया है, उस सबको आत्मसात करके ही जा सकती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।
इसलिए मैंने अपनी पूरी जिंदगी किताब के साथ लगाई। और मैं आपसे कहता हूं कि महावीर को उतनी तकलीफ भूखे रहने में नहीं हुई; उतनी तकलीफ नहीं हुई। क्योंकि जिससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं, उस पर मुझे व्यर्थ ही श्रम करना पड़ा। लेकिन उस श्रम के बाद ही आज के युग के लिए बात सार्थक हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती। और कोई उपाय नहीं है। आज का युग उस बात को ही समझ सकेगा, अन्यथा नहीं समझ पाएगा।
और यह अगर ख्याल में आ जाए तो कठिन नहीं है बहुत कि आपको अपने पिछले जीवन का भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल आने लगे। और मैं चाहूंगा कि जल्दी वह ख्याल आपको लाऊं। क्योंकि वह ख्याल आने लगे तो एक बड़ी समय की और शक्ति की बचत हो जाती है। क्योंकि अक्सर यह होता है कि आप हर बार वहां से शुरू करते हैं जहां से आपने छोड़ा नहीं था। यानी करीब-करीब आप हर बार अ ब स से शुरू करते हैं। अगर आपको पिछला स्मरण आ जाए तो आपको अ ब स से शुरू नहीं करना होता, जहां आपने छोड़ा था उसके आगे आप शुरू करते हैं। और तब कोई गति हो पाती है, नहीं तो गति नहीं हो पाती।
अब यह समझने जैसा है। पशुओं की कोई गति नहीं हो पाई है। वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं कि पशु वहीं के वहीं रिपीट करते रहते हैं। बंदर के पास करीब-करीब आदमी से थोड़ा ही कम विकसित मस्तिष्क है। मगर विकास का अंतर बहुत भारी है, जितना मस्तिष्क में अंतर नहीं है। बात क्या है? क्या कठिनाई है? यह वर्तुल में बंदर आगे क्यों नहीं बढ़ते? वे ठीक वहीं हैं जहां दस लाख साल पहले थे। और अभी तक हम सोचते थे कि विकास हो रहा है सब में, लेकिन यह अब संदिग्ध है बात। डार्विन की यह बात बहुत संदिग्ध है। क्योंकि लाखों साल

से बंदर वहीं के वहीं है। वह विकसित नहीं हो रहा है। गिलहरी गिलहरी है, वह विकसित नहीं हो रही है। गाय गाय है, वह विकसित नहीं हो रही है। तो विकास, सिर्फ होने से नहीं हो रहा है, कहीं कोई और बात में फर्क पड़ रहा है।
हर बंदर को अपना प्रारंभ वहीं से करना पड़ता है जहां उसके बाप को करना पड़ा था। वह बाप ने जहां अंत किया वहां से बंदर प्रारंभ नहीं कर पाता। बाप कम्युनिकेट नहीं कर पाता। जो सारी कठिनाई है, बाप ने जहां तक पाया अपनी जिंदगी में, वह अपने बेटे को वहां से शुरू नहीं करवा पाता। बेटा फिर वहीं शुरू करता है जहां बाप ने शुरू किया था। फिर विकास होगा कैसे? हर बार हर बेटा फिर वहीं से शुरू करता है। तो एक वर्तुल है जिसमें घूम कर फिर शुरू हो जाता है।
करीब-करीब ऐसी ही स्थिति जीवन के आत्मिक विकास की भी है। आप अगर इस जन्म को फिर वहीं से शुरू करते हैं जहां आपने पिछला जन्म शुरू किया था, तो आप कभी विकसित नहीं हो पाएंगे, आध्यात्मिक अर्थों में आपका कभी कोई इवोल्यूशन नहीं हो पाएगा। फिर अगले जन्म में आप वहीं से शुरू करेंगे जहां से अभी शुरू किया था। हर बार अंत करेंगे, हर बार शुरू करेंगे। शुरुआत का बिंदु अगर वही रहा जो पिछला था तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा।
विकास का मतलब है, पिछला अंतिम बिंदु इस जन्म का पहला बिंदु बन जाए। नहीं तो विकास नहीं हो सकता। मनुष्य ने विकास कर लिया, क्योंकि उसने भाषा खोज ली कम्युनिकेट करने को। बाप जो कुछ जान पाता है वह अपने बेटे को दे जाता है, शिक्षा दे जाता है। एजुकेशन का मतलब ही इतना है कि बाप की पीढ़ी ने जो जाना, वह बेटे की पीढ़ी को सौंप देगी। बेटे को वहां से शुरू न करना पड़ेगा जहां से बाप की पीढ़ी को करना पड़ा; बेटा वहां से शुरू करेगा जहां बाप अंत कर रहा है। तो फिर गति हो जाएगी। तब यह स्पायरल जो है सर्कुलर नहीं होगा, स्पायरल हो जाएगा। यह फिर एक ही जगह नहीं घूमेगा, ऊपर उठने लगेगा। यह पहाड़ की तरह ऊपर की तरफ चढ़ने लगेगा।
जो मनुष्य के विकास में सही है, वह एक-एक व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में भी सही है। आपके और आपके पिछले जन्म के बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं है। आपने अपने पिछले जन्म से अभी तक कोई बातचीत नहीं की। आपने कभी पूछा नहीं कि कहां छूटा था मैं? वहां से शुरू करूं! नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि फिर वही मकान बनाऊं जो मैंने पहले भी ईंटें भरी थीं, और बुनियाद रखी थी, और मर गया। और फिर ईंटें भरूं, और फिर बुनियाद रखूं, और फिर मर जाऊं। और हमेशा बुनियाद ही भरता रहूं, तो शिखर कब उठेगा?
इसलिए मैंने यह जो थोड़ी सी पिछले जन्म की बात की वह इसलिए नहीं कही कि मेरे बाबत आपको कुछ पता हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह सिर्फ इस कारण कह दी है कि शायद उससे आपको थोड़ा ख्याल आना शुरू हो, पिछले जन्म की थोड़ी तलाश शुरू हो। क्योंकि उसी दिन आपके जीवन में आध्यात्मिक क्रांति होगी, उत्क्रांति होगी, जिस दिन आप पिछले जीवन के आगे इस जीवन में कदम उठाएंगे! अन्यथा अनेक जन्म भटक जाएंगे और कहीं भी नहीं पहुंचेंगे। वही पुनरुक्त होता रहेगा। पिछले जीवन और इस जीवन के बीच संवाद चाहिए। और पिछले जीवन में जो-जो आपने पाया था उसको शिक्षा करके अपने भीतर, और अपने को उसके आगे कदम उठाने की क्षमता चाहिए।
इसलिए महावीर और बुद्ध जिन्होंने कि सबसे पहले पिछले जन्मों की विराट चर्चा की, इसके पहले शिक्षकों ने नहीं की थी। उपनिषद-वेद के शिक्षकों ने ज्ञान की बात कही थी, परम ज्ञान की बात कही, लेकिन कभी भी पिछले जन्मों के विज्ञान से उसको जोड़ने की बहुत चेष्टा नहीं की। महावीर तक आते-आते यह बात साफ हो गई। यह बहुत साफ हो गई कि सिर्फ इतना कहना काफी नहीं है कि तुम क्या हो सकते हो, यह भी बताना जरूरी है कि तुम क्या थे। क्योंकि तुम जो थे, उसके आधार के बिना तुम वह नहीं हो सकोगे जो हो सकते हो। इसलिए महावीर और बुद्ध का तो पूरा चालीस साल का समय लोगों को उनके पिछले जन्म स्मरण कराने में बीता। और जब तक एक आदमी पिछला जन्म स्मरण न कर ले तब तक वे कहते थे, आगे की फिक्र मत कर। तू पहले पीछे की पूरी फिक्र कर ले। साफ-साफ उस नक्शे को देख ले, तू कहां तक चल चुका है। फिर आगे हम कदम रखें। अन्यथा दौड़ होगी, व्यर्थ होगी। कहीं तू फिर उसी रास्ते पर दौड़ता रहा जिस पर तू पहले भी दौड़ चुका है, तो सार क्या होगा? इसलिए पुनर्स्मरण अत्यंत अनिवार्य कदम था।

अब आज की कठिनाई यह है, पुनर्स्मरण कराया जा सकता है, पिछले जन्मों का स्मरण कठिन जरा भी नहीं है, लेकिन साहस नाम की चीज ही खो गई है। और पिछले जन्म का स्मरण तभी कराया जा सकता है जब इस जन्म की कैसी ही कठिन स्मृतियों में भी आप शांत रह सकते हों, अन्यथा नहीं करवाया जा सकता। क्योंकि यह तो कुछ कठिन नहीं है। पिछले जन्म की स्मृतियां टूटेंगी तो बहुत कठिन होगा। और ये स्मृतियां तो इंस्टालमेंट्स में मिलती हैं, वे तो इकट्ठी मिलेंगी। इसमें तो आज की तकलीफ आज झेल लेते हैं, कल भूल जाते हैं। कल की तकलीफ कल झेल लेते हैं, परसों भूल जाते हैं। पिछले जन्म की स्मृति तो पूरी की पूरी इकट्ठी टूट पड़ेगी--इकट्ठी। फ्रैगमेंट्स में नहीं आएगी। वह तो पूरी की पूरी आपके ऊपर आ जाएगी, एक साथ। उसको झेल पाएंगे कि नहीं झेल पाएंगे?
अब उसके झेलने की कसौटी तभी मिलती है जब इस जन्म की सारी स्थिति में आपको कोई तकलीफ नहीं मालूम पड़ती हो कि ठीक है। इससे कोई पीड़ा नहीं, कोई अड़चन नहीं। कुछ भी हो जाए, कोई अंतर नहीं पड़ता हो। इस जीवन की कोई स्मृति आपके लिए चिंता न बनती हो, फिर ही पिछले जन्म की स्मृति में उतारा जा सकता है। नहीं तो वह तो महाचिंता हो जाए। और उस महाचिंता का द्वार तभी खोला जा सकता है जब झेलने की क्षमता और पात्रता हो।
"मैं कहता आंखन देखी" : अंतरंग भेंट-वार्ता

मैं कहता आंखन देखी
तीसरा प्रवचन

आकाश जैसा शाश्वत है सत्य

ओशो, जिस इक्कीस दिन के अनुष्ठान की ओर आपने संकेत किया है, क्या वह साधना या तत्वानुभूति किसी परंपरागत थी? क्योंकि आपके अभिव्यक्तिकरण से निरंतर ऐसा भास होता है कि आप भी निश्चित ही किसी टीचर एवं तीर्थंकर की पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी के अंतर्गत यह जानने का साहस भी करना चाहता हूं कि आप किसी परंपरा की अध्यात्म-शृंखला की कड़ी को जोड़ना चाहते हैं, या बुद्ध की भांति किसी पहाड़ में नया मार्ग काटने का प्रयास कर रहे हैं?

परंपरागत, परंपरा से चली आने वाली धारा तो परंपरागत है ही, बुद्ध का मार्ग भी अब नया नहीं है। जो परंपरा से चलते रहे वह तो मार्ग पुराना हो ही गया; लेकिन जो परंपरा को तोड़ कर नयी परंपरा निर्मित करते रहे वह मार्ग भी अब नया नहीं है। उस भांति भी बहुत लोग चल चुके। जैसे बुद्ध ने तोड़ी नयी पद्धति। महावीर पुरानी परंपरा को मान कर चल रहे थे। लेकिन महावीर कीशृंखला के भी पहले आदमी ने पद्धति तोड़ी थी। वह मार्ग भी सदा से पुराना नहीं था। महावीर कीशृंखला का पहला तीर्थंकर भी वही काम किया था जो बुद्ध ने किया है।
परंपरा मान कर चलना भी पुराना है; नयी परंपराएं तोड़ना भी नयी घटना नहीं है। नहीं तो परंपराएं कैसे निर्मित होंगी? तो आज तो दोनों ही बात पुरानी हैं। और इसलिए और इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि आज की स्थिति में दोनों ही बातों से भिन्न किसी चीज की जरूरत है। जैसे दोनों तरह के लोग आज मौजूद हैं। अगर जार्ज गुरजिएफ को हम देखें तो किसी पुरानी परंपरा के सूत्र को स्थापित करेगा; महावीर की तरह उसका काम है। अगर जे.कृष्णमूर्ति को देखें तो कोई नयी परंपरा का सूत्रपात करेंगे; बुद्ध के जैसा उनका काम है। पर दोनों बातें पुरानी हैं।
बहुत परंपराएं तोड़ी जा चुकी हैं और बहुत नयी परंपराएं बनाई जा चुकी हैं। जो आज नयी परंपरा होती है वही कल पुरानी हो जाती है। जो आज पुरानी दिखाई पड़ती है वह कल नयी थी। आज की स्थिति न तो ठीक वैसी है जहां महावीर सार्थक हो सके, और न ठीक वैसी है जहां बुद्ध सार्थक हो सके। क्योंकि लोग पुराने से तो बुरी तरह ऊब गए हैं, एक और नयी घटना घटी हैः लोग नये से भी बुरी तरह ऊब रहे हैं। क्योंकि सदा से ऐसा ख्याल था कि नया जो है वह पुराने के विपरीत है। अब मनुष्य उस जगह है जहां उसे साफ दिखाई पड़ता है कि नया केवल पुराने का प्रारंभ है। नये का मतलब है जो पुराना होगा। हमने नया कहा नहीं कि पुराना होना शुरू हो गया। अब नये का भी आकर्षण नहीं है। पुराने के प्रति विकर्षण था!
एक जमाना था, पुराने के प्रति आकर्षण था, बड़ा आकर्षण था। कोई चीज जितनी पुरानी है उतनी कीमती थी। क्योंकि उतनी परखी हुई थी, उतनी जानी- पहचानी थी। उतनी प्रायोगिक थी, उतने अनुभव से गुजरी थी। परीक्षित थी भलीभांति। भय न था, निरापद थी। चलने में किसी तरह के संदेह की जरूरत न थी। श्रद्धावान हुआ जा सकता था। इतने लोग चल चुके थे, इतने पैर पड़ चुके थे, इतने लोग पहुंच चुके थे कि नये चलने वाले को आंख बंद करके भी चलना हो तो चल सकता था। अंधे के लिए भी मार्ग था। जरूरत न थी कि वह बहुत संदेह करे, बहुत विचार करे, बहुत खोजे, बहुत निर्णय करे। और फिर अज्ञात में बहुत निर्णय हो नहीं सकता। और कितना ही संदेह कोई करे, अज्ञात की छलांग अंततः श्रद्धा से लगती है। संदेह ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकता है कि किसी श्रद्धा तक पहुंचा दे। बाकी अंततः छलांग श्रद्धा से ही लगती है।
पर वैसे पुराने का आकर्षण भी खो गया। उस पुराने के आकर्षण के खो जाने
के कारण थे। पहला कारण तो यही बना कि पुराने की परंपरा, जब तक एक व्यक्ति के लिए एक ही परंपरा का परिचय था तब तक तो असुविधा न थी, लेकिन जब बहुत पुरानी परंपराएं एक साथ एक व्यक्ति को परिचित हुईं, तब असुविधा पैदा हुई।

जो आदमी हिंदू घर में पैदा हुआ था, हिंदू वातावरण में जीया था, हिंदू मंदिर के पास बड़ा हुआ था, हिंदू मंदिर की घंटे की ध्वनि दूध के साथ खून में चली गई थी, हिंदू मंदिर का देवता वैसे ही हिस्सा था हड्डी-खून-मांस का, जैसे हवा, पहाड़, पानी सब था। और कोई प्रतियोगी न था। कोई मस्जिद न थी, कोई चर्च न था। कभी दूसरा कोई स्वर दूसरी किसी परंपरा का मन के भीतर न पड़ा था। तो पुराना इतना वास्तविक था कि उसमें प्रश्न नहीं लगाया जा सकता था। वह हमसे भी इतने पहले था, हम उसमें ही बड़े होते और खड़े होते थे। उससे अन्यथा हम सोच ही नहीं सकते थे।
फिर मंदिर के पास मस्जिद आ गई, चर्च आ गया, गुरुद्वारे आए। सारी परंपराएं एक साथ एक-एक व्यक्ति पर टूट पड़ीं। जैसे-जैसे गति हुई, स्थान छोटा हुआ, वैसे-वैसे सारी परंपराएं एक साथ टूट पड़ीं। कनफ्यूजन स्वाभाविक था। तब कोई भी चीज असंदिग्ध रूप से नहीं ली जा सकती, क्योंकि संदेह कराने के लिए दूसरा सूत्र भी सामने खड़ा है। अगर मंदिर घंटे देकर पुकार कर रहा है कि आओ, भरोसा करो! तो पास ही मस्जिद अजान दे रही है कि गलत है, वहां भूल कर मत जाना! ये दोनों बातें एक साथ प्रवेश कर गईं।
यह जो सारी दुनिया में इतना संदेह है, उस संदेह का मौलिक कारण मनुष्य
की बुद्धिमानी का बढ़ जाना नहीं है। मनुष्य उतना ही बुद्धिमान है जितना सदा था। मनुष्य की बुद्धि पर बहुत से संस्कारों का एक साथ पड़ जाना है। और स्वविरोधी संस्कार! और हर रास्ता दूसरे रास्ते को गलत कहेगा ही। यह मजबूरी है। इसलिए नहीं कि दूसरा रास्ता गलत है, दूसरा रास्ता गलत है इसलिए नहीं, बल्कि दूसरे रास्ते को गलत कहना ही होगा। दूसरे रास्ते को गलत न कहा जाए तो स्वयं को सही कहने की जो शक्ति है, जो बल है, वह टूट जाता है और बिखर जाता है। असल में स्वयं को सही कहना हो तो दूसरे को गलत कहना अनिवार्य हिस्सा है। उसी की पृष्ठभूमि में स्वयं को सही कहा जा सकता है।
तो जब तक एक-एक परंपरा का अपना मार्ग था, और विजातीय मार्ग कहीं मिलते नहीं थे, कहीं कोई चौरस्ते नहीं थे, कहीं कोई चौराहे नहीं थे जहां विजातीय मार्ग भी मिलते हों, जब सब धाराएं अपने में बंट कर अलग-अलग बहती थीं, तब पुराने का गहन आकर्षण था। ऐसे युग में, ऐसे समय में, महावीर जैसा व्यक्तित्व बड़ा उपयोगी था, सहयोगी था।
लेकिन जैसे-जैसे धाराएं अनेक हुईं, प्रतियोगी हुईं, बहुत हुईं, पुराना संदिग्ध हो गया, नये का मूल्य बढ़ा। नये के लिए भी प्रतियोगी थे। लेकिन पुरानी धारा के खिलाफ जब भी नया प्रतियोगी खड़ा हो जाए और जब सब पुरानी धाराएं मन को सिर्फ विभ्रम में डालती हों और कुछ तय न हो पाता हो, तो पुरानों में से चुनने की बजाय नये को चुनना मनुष्य के लिए सरल पड़ता है। कई कारणों से। पहला कारण तो यह कि पुरानी धाराओं का तीर्थंकर, पैगंबर लाखों साल पहले हुआ। उसकी आवाज धुंधली हो जाती है बहुत। नये का पैगंबर अभी मौजूद होता है, सामने। उसकी आवाज घनी हो जाती है। पुरानी जो परंपरा है वह फिर भी पुरानी भाषा बोलती है, क्योंकि जब वह निर्मित हुई थी तब की भाषा बोलती है। नया तीर्थंकर, नया बुद्ध, नयी भाषा बोलता है। अभी निर्मित हो रही है। पुराने शब्दों के साथ जो संदेह जुड़ गया उन शब्दों को वह हटा देता है। वह नये शब्दों को लाता है जो एक तरह से कुंआरे हैं, जिन पर भरोसा ज्यादा आसान है।
तो नये का आकर्षण क्रमशः बढ़ा, जैसे-जैसे परंपराएं साथ हुईं, इकट्ठी हुईं; और करीब-करीब हम चौराहे पर जीने लगे जहां सभी रास्ते मिलते हैं, और हर घर के पास सभी रास्ते टूटते हैं, तो नये का आकर्षण बढ़ा। लेकिन अब नये का आकर्षण भी नहीं है। क्योंकि अब हमें यह भी पता चला कि सब नये अंततः पुराने हो जाते हैं। और जो भी पुराने हैं वे कभी नये थे। और हमें अब यह भी पता चला कि नये और पुराने में शायद शब्दों का ही फासला है।
नये की बड़ी गति थी। इधर कोई तीन सौ वर्षों से नये ने वही प्रतिष्ठा ले
ली थी जो कभी पुराने सत्य की थी। जैसे कभी पुराना होना सही होने का प्रमाण था वैसे ही नया होना सही होने का प्रमाण हो गया। इतना ही काफी है बताना कि नयी है बात, और लोग भरोसा करेंगे। जैसे पहले काफी था कि पुरानी है बात, और लोग भरोसा करते थे। अब किसी चीज को पुराना कहना अपने हाथ से उसको निंदित करना है। इसलिए प्रत्येक धारा नये होने की चेष्टा में लग गई। और प्रत्येक

धारा ने नये व्यक्ति पैदा किए जिन्होंने नये की बातें कीं। पुराना समाप्त नहीं हुआ, पुराने रास्ते चलते ही रहे, नये रास्ते भी चल पड़े। उन्हें भी नये चलने वाले मिल गए। और जब नये की तीव्रता पकड़ती है तो एक अनूठी घटना घटी। जैसे पुराना सदा तय करता था कि कितना पुराना है, तो सारे धर्म चेष्टा करते थे कि उनकी परंपरा से ज्यादा पुरानी कोई परंपरा नहीं है। अगर जैनों से पूछें तो वे कहेंगे कि उनकी परंपरा से ज्यादा पुरानी कोई परंपरा नहीं है। वेद भी बाद के हैं। अगर वेद से पूछें तो वे कहेंगे कि वेद काफी पुराना है। उससे तो पुराने का कोई सवाल ही नहीं है। वे तो प्राचीनतम हैं। उसको पीछे खींचने की कोशिश की जाएगी, क्योंकि पुराने की प्रतिष्ठा थी। फिर ऐसे ही नये की प्रतिष्ठा जब बननी शुरू हुई तो कितना नया?
तो आज से अगर पचास साल पहले के अमरीका में--जहां कि नये की बहुत पकड़ थी, क्योंकि सबसे ज्यादा नया समाज था--तो दो पीढ़ियां थीं; लेकिन आज अमरीका में दो पीढ़ियां नहीं हैं। बूढ़ों की पीढ़ी थी, जवानों की पीढ़ी थी, आज से पचास साल पहले। आज हालत बहुत अजीब है। आज चालीस साल वाले की अलग पीढ़ी है; तीस साल वाले की अलग पीढ़ी है; बीस साल वाले की अलग पीढ़ी है; पंद्रह साल वाले की अलग पीढ़ी है। तीस साल वाले कहते हैं, तीस साल के ऊपर भरोसा करना ही मत किसी पर। पच्चीस साल वाले तीस साल वाले पर भी उतने ही संदेह से भरे हैं, कि बूढ़े हो गए ये। लेकिन उनके पीछे जो बीस साल वाला जवान है वह कह रहा है कि ये भी जा चुके हैं। हाईस्कूल के बच्चे भी अब जवानों को बूढ़ा समझ रहे हैं जो आज पच्चीस साल के हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि तुम गए-गुजरे, जा चुकी पीढ़ी। यह कभी सोचा भी न गया था कि इतनी पीढ़ियां होंगी। दो पीढ़ी का ख्याल था, कि जवान की पीढ़ी है, बूढ़े की पीढ़ी है। लेकिन जवान की पीढ़ी में भी परतें हो जाएंगी और बीस साल का आदमी पच्चीस साल के आदमी को समझेगा कि वह गया-गुजरा है, आउट ऑफ डेट है।
जब इतने जोर से नये की पकड़ होनी शुरू हो तो नये का आकर्षण भी खो जाएगा। क्योंकि आकर्षण बन भी नहीं पाएगा और नया पुराना हो जाएगा। आकर्षण बनने में भी समय लगता है। और धर्म कोई कपड़ों की फैशन की भांति नहीं है कि आप छह महीने में बदल लें। वह कोई मौसमी फूल के बीज नहीं हैं कि चार महीने पहले लगाया और चार महीने पहले हमने उन्हें समाप्त कर दिया। धर्म तो ऐसे वटवृक्ष हैं जो हजारों-लाखों साल में तो पूरे हो पाते हैं। और जब ऐसा ख्याल हो कि हर दो-चार-दस साल में बदल डालना है तब तो वटवृक्ष लगेंगे ही नहीं। तब फिर मौसमी फूल ही लग सकते हैं। नये का आकर्षण भी खोने लगा है।
यह मैंने इसलिए कहा कि मैं साफ कर सकूं कि मेरी मनोदशा बिल्कुल तीसरी है। न तो मैं मानता हूं कि महावीर की भाषा कारगर हो सकती है अब, परंपरा की। न मैं मानता हूं कि नये का ही आग्रह कारगर हो सकता है। दोनों ही गए। अब तो मैं मानता हूं कि शाश्वत का आग्रह अर्थपूर्ण है--पुराने का भी नहीं, नये का भी नहीं--जो सदा है।
सदा का मतलब कि जो न पुराना होता है, न नया हो सकता है। पुराना-नया दोनों ही सामयिक घटनाएं हैं और धर्म दोनों में काफी परेशान हो लिया। पुराने के साथ बंध कर भी परेशान हो लिया; अब नये के साथ बंध कर भी उसने देखा है। कृष्णमूर्ति अभी भी नये का आग्रह लिए चले जाते हैं। उसका कारण है कि उनके पास जो पकड़ है वह उन्नीस सौ पंद्रह और उन्नीस सौ बीस के बीच की है, जब कि नये का आकर्षण जमीन पर था। वह जो पकड़ है वह उन्नीस सौ पंद्रह और उन्नीस सौ बीस के बीच की है, जब कि नया प्रभावी था। वे अभी भी कहे चले जाते हैं। लेकिन अब नये को कहने का भी कोई मतलब नहीं है।
अब तो इस पृथ्वी पर एक ही संभावना है। सब परंपराएं इतने निकट आ गई हैं
कि अब कोई परंपरा एक्सक्लूसिवली कहे कि मैं ठीक हूं, तो अब उस पर संदेह पैदा होगा। कभी इस बात के कहने से विश्वास आता था कि कोई परंपरा कहती थी कि मैं ठीक हूं, और निरपेक्ष, एब्सोल्यूट अर्थों में ठीक हूं! कभी इससे श्रद्धा बनती थी। अब इसी से अश्रद्धा बन जाएगी कि कोई कहे कि मैं बिल्कुल निरपेक्ष अर्थों में ठीक हूं। यह उसके पागलपन का सबूत होगा। यह सबूत होगा कि वह आदमी बहुत बुद्धिमान नहीं है। यह सबूत होगा कि बहुत सोच-विचार वाला नहीं है। यह सबूत होगा कि बहुत मतांध है, अंधा है, डाग्मैटिक है।

बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं लिखा है कि मैंने किसी बुद्धिमान आदमी को कभी बेझिझक बोलते नहीं देखा। बुद्धिमान में तो झिझक होगी ही, हेजीटेशन होगा ही। सिर्फ बुद्धू बेझिझक बोल सकते हैं।
रसेल यह कह रहा है कि सिर्फ अज्ञानी कह सकते हैं कि बस पूर्ण सत्य यह रहा। ज्ञान के बढ़ने के साथ ऐसी निरपेक्ष घोषणाएं नहीं हो सकतीं। तो इस युग में अब कोई एक परंपरा को ठीक कहने का आग्रह करे तो इसीलिए वह परंपरा को नुकसान पहुंचाने वाला हो जाएगा। ठीक दूसरी बात भी, अगर कोई कहे कि जो मैं कह रहा हूं वह बिल्कुल नया है, बेमानी हो गई। क्योंकि इतने नये की उदघोषणा होती है और आखिर में बहुत गहरे में पाया जाता है कि वही है। कितने रूपों में बातें कही जाती हैं! रूप को जरा हटा कर देख लें, तो कपड़े हट जाते हैं और पीछे पाया जाता है, वही है। इसलिए अब नये की घोषणा भी बहुत अर्थ नहीं रखती। पुराने की घोषणा भी बहुत अर्थ नहीं रखती।
मेरी दृष्टि में भविष्य का जो धर्म है, कल जिस बात का प्रभाव होने वाला है, जिससे लोग मार्ग लेंगे, और जिससे लोग चलेंगे, वह है--सनातन, इटरनल का आग्रह। हम जो कह रहे हैं वह न नया है, न पुराना है। न वह कभी पुराना होगा और न उसे कभी कोई नया कर सकता है। हां, जिन्होंने पुराना कह कर उसे कहा था उनके पास पुराने शब्द थे, जिन्होंने नया कह कर उसे कहा उनके पास नये शब्द हैं। और हम शब्द का आग्रह छोड़ते हैं।
इसलिए मैं सभी परंपराओं के शब्दों का उपयोग करता हूं, जो शब्द समझ में
आ जाए। कभी पुराने की भी बात करता हूं, शायद पुराने से किसी को समझ में आ जाए। कभी नये की भी बात करता हूं, शायद नये से किसी को समझ में आ जाए। और साथ ही यह भी निरंतर स्मरण दिलाते रहना चाहता हूं कि नया और पुराना सत्य नहीं होता। सत्य आकाश की तरह शाश्वत है। उसमें वृक्ष लगते हैं आकाश में, खिलते हैं, फूल आते हैं। वृक्ष गिर जाते हैं। वृक्ष पुराने, बूढ़े हो जाते हैं। वृक्ष बच्चे और जवान होते हैं--आकाश नहीं होता। एक बीज हमने बोया और अंकुर फूटा। अंकुर बिल्कुल नया है, लेकिन जिस आकाश में फूटा, वह आकाश? फिर बड़ा हो गया वृक्ष। फिर जराजीर्ण होने लगा। मृत्यु के करीब आ गया वृक्ष। वृक्ष बूढ़ा है, लेकिन आकाश जिसमें वह हुआ है, वह आकाश बूढ़ा है? ऐसे कितने ही वृक्ष आए और गए, और आकाश अपनी जगह है--अछूता, निर्लेप।
सत्य तो आकाश जैसा है। शब्द वृक्षों जैसे हैं। लगते हैं, अंकुरित होते हैं, पल्लवित होते हैं, खिल जाते हैं, मुरझाते हैं, गिरते हैं, मरते हैं, जमीन में खो जाते हैं। आकाश अपनी जगह ही खड़ा रह जाता है! पुराने वालों का जोर भी शब्दों पर था और नये वालों का जोर भी शब्दों पर है। मैं शब्द पर जोर ही नहीं देना चाहता हूं। मैं तो उस आकाश पर जोर देना चाहता हूं जिसमें शब्द के फूल खिलते हैं, मरते हैं, खोते हैं--और आकाश बिल्कुल ही अछूता रह जाता है, कहीं कोई रेखा भी नहीं छूट जाती।
तो मेरी दृष्टिः सत्य शाश्वत है--नये-पुराने से अतीत, ट्रांसेंडेंटल है। हम कुछ भी कहें और कुछ भी करें, हम उसे न नया करते हैं, न हम उसे पुराना करते हैं। जो भी हम कहेंगे, जो भी हम सोचेंगे, जो भी हम विचार निर्मित करेंगे, वे आएंगे और गिर जाएंगे। और सत्य अपनी जगह खड़ा रह जाएगा।
इसलिए वह भी नासमझ है जो कहता है कि मेरे पास बहुत पुराना सत्य है। क्योंकि सत्य पुराने नहीं होते। क्योंकि आकाश पुराना नहीं होता। वह भी उतना ही नासमझ है जो कहता है कि मेरे पास नया सत्य है, मौलिक है। आकाश पुराना भी नहीं होता, आकाश मौलिक और नया भी नहीं होता।
इस तीसरे तत्व की घोषणा को मैं भविष्य के लिए मार्ग मानता हूं। क्यों मानता हूं? क्योंकि इस तत्व की घोषणा, जो बहुत सी परंपराओं के जाल से जो उपद्रव पैदा हो गया है, उसे काटने वाली होगी। तब हम कहेंगे कि ठीक है, वे वृक्ष भी खिले थे आकाश में और ये वृक्ष भी खिल रहे हैं आकाश में! और अनंत वृक्ष खिलते हैं आकाश में, इससे आकाश को कोई फर्क नहीं पड़ता। आकाश में बहुत अवकाश है, बहुत स्पेस है। हमारे वृक्ष उसको रिक्त नहीं कर पाते और न भर पाते हैं। हम इस भ्रम में न रहें कि हमारा कोई भी वृक्ष पूरे आकाश को भर देगा।
तो हमारे कोई भी शब्द, और हमारी कोई भी धारणाएं, और कोई भी सिद्धांत सत्य के आकाश को भर नहीं पाते। सदा गुंजाइश है। हजार महावीर पैदा हों तो

भी कोई अंतर नहीं पड़ता, करोड़ महावीर पैदा हों तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। करोड़ बुद्ध पैदा हो जाएं तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। कितने ही बड़े वे वटवृक्ष हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वटवृक्षों के बड़े होने से आकाश के बड़ेपन को नहीं नापा जाता। हालांकि स्वाभाविक, वटवृक्षों के नीचे जो घास के तिनके हैं उन्हें आकाश का कोई पता नहीं होता, वटवृक्ष का ही पता होता है। और उनके लिए वटवृक्ष भी इतना बड़ा होता है कि इससे भी बड़ा कुछ हो सकता है इसकी कल्पना भी संभव नहीं है।
तो अब इस दुर्गम स्थिति में जहां कि सारी परंपराएं एक साथ खड़ी हो गई हैं और आदमी के मन को एक साथ आकर्षित कर रही हैं चारों तरफ से, सब परंपराएं सब तरह का आकर्षण पैदा कर रही हैं--पुराने हैं, नये हैं, रोज नये पैदा होने वाले विचार हैं, वे सब मनुष्य को खींच रहे हैं। और उन सब के खींचने की वजह से मनुष्य ऐसी स्थिति में है कि वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। वह करीब-करीब खड़ा हो गया है। वह कहीं जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। क्योंकि वह कहीं भी कदम बढ़ाए तो संदेह पैदा होता है। श्रद्धा कहीं भी नहीं आती।
सब श्रद्धा पैदा करवाने वाले ही उसको अश्रद्धा की हालत में खड़ा कर दिए हैं। क्योंकि श्रद्धा जो है जिस ढंग से पैदा की जाती थी उसी ढंग से अब भी पैदा की जा रही है। कुरान कहे जा रहा है कि वह ठीक है; धम्मपद कहे जा रहा है वह ठीक है। स्वभावतः, जो भी कहेगा कि मैं ठीक हूं, उसे यह भी कहना पड़ता है कि दूसरा गलत है। दूसरे को भी यही करना पड़ता है, कि मैं ठीक हूं कहना पड़ता है, दूसरा गलत है। और स्थिति ऐसी है कि खड़े हुए आदमी को ऐसा लगता है कि सभी गलत हैं।
क्यों? क्योंकि खुद को ठीक कहने वाला तो एक है, लेकिन उसको गलत कहने वाले पचास हैं। ठीक का दावा एक-एक अपने लिए कर रहा है, और उसके गलत होने का दावा बाकी पचास लोग कर रहे हैं कि वह गलत है। गलत कहे जाने का इतना बड़ा इम्पैक्ट होगा कि वह जो एक चिल्ला रहा है कि मैं ठीक हूं, उसकी आवाज खो जाएगी इसमें कि वे जो पचास कह रहे हैं कि वह गलत है। यद्यपि उन सब पचास के साथ भी यही हालत है। क्योंकि वे सब अपने को ही अकेला ठीक कहेंगे, बाकी पचास फिर उनको भी गलत कहेंगे।
तो एक आदमी के सामने पचास लोग कहते हैं गलत है, और एक आदमी कहता है ठीक है। स्वभावतः वह चलने वाला नहीं है। वह खड़ा हो जाएगा। यह जो मनुष्य की आज की स्थिति है खड़े हो जाने की, उसके पीछे सबकी श्रद्धाएं और सब श्रद्धाओं की मांग, कि आ जाओ मेरे पास, दिक्कत डाल रही है। उनकी पुरानी आदत है, वे कहे चले जा रहे हैं।
यह स्थिति मिट सकती है एक ही तरह से, वह यह कि एक ऐसा आंदोलन चाहिए जगत में, जो यह ठीक है या वह ठीक है, इसका बहुत आग्रह नहीं करता; खड़ा होना गलत है और चलना ठीक है, इसका आग्रह करता है। इसका आग्रह नहीं करता कि यह ठीक है या वह गलत है। और इतनी व्यापक दृष्टि की जरूरत है कि जो आदमी जहां जाना चाहे, उसे वहां कैसे वह ठीक जा सके, यह बताने की सामर्थ्य हो।
दुरूह है यह मामला। मुसलमान होना आसान है, ईसाई होना आसान है, जैन होना आसान है। बंधी हुई लीक है, बंधी हुई परंपरा है। एक परंपरा से परिचित होना आसान है।
अब एक युवक मेरे पास आया कोई आठ दिन पहले। वह मुसलमान है और वह संन्यासी होना चाहता है। मैंने उससे कहा कि तू संन्यासी हो जा। पर उसने कहा कि मेरी गर्दन दबा देंगे वे सारे लोग। तो मैंने कहा, तू संन्यासी जरूर हो जा, लेकिन मुसलमान न हो जा, यह मैं नहीं कह रहा हूं। तू मुसलमान रहते हुए संन्यासी हो जा। तो उसने कहा, क्या फिर मैं गेरुआ वस्त्र पहन कर मस्जिद में नमाज पढ़ सकता हूं? मैंने उससे कहा, पढ़नी ही पड़ेगी! उसने कहा, मैं तो नमाज पढ़ना छोड़ चुका आपको सुन कर। मैं तो ध्यान कर रहा हूं। मैं तो जाता नहीं आज साल भर से। और मुझे अपूर्व आनंद हुआ है; जाना भी नहीं चाहता। मैंने कहा, जब तक ध्यान तेरा उस जगह न आ जाए कि नमाज और ध्यान में कोई फर्क न रहे, तब तक समझना कि ध्यान अभी पूरा नहीं हुआ।
इसे वापस नमाज पढ़ने भेजना ही पड़ेगा मस्जिद में। इसे मस्जिद से तोड़ना खतरनाक है। क्योंकि इसे मस्जिद से तोड़ कर किसी मंदिर से नहीं जोड़ा जा

सकता। क्योंकि जिस विधि से हम तोड़ते हैं वही विधि इसको इस भांति विकृत कर जाती है कि फिर यह किसी मंदिर से नहीं जुड़ सकता।
तो न तो पुराने मंदिरों के बीच प्रतियोगिता खड़ी करनी है, और न नया मंदिर खड़ा करना है। जो जहां जाना चाहे, खड़ा न रहे, जाए। तो मेरे सामने जो पर्सपेक्टिव है, परिप्रेक्ष्य है, वह यही है कि जो भी व्यक्ति, जो उसकी क्षमता हो उस क्षमता, जो उसकी पात्रता हो, जो उसका संस्कार हो, जो उसके खून में प्रवेश कर गया हो, जो सुगमतम हो उसके लिए, उस पर ही मैं उसे गतिमान करता हूं।
तो मेरा कोई धर्म नहीं है और मेरा कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि अब कोई
भी रास्ते वाला धर्म, संप्रदाय वाला धर्म, भविष्य के लिए नहीं है। संप्रदाय का अर्थ है रास्ता। अब कोई भी रास्ते वाला धर्म भविष्य के लिए काम का नहीं है। अब ऐसा धर्म चाहिए जो एक रास्ते का आग्रह न करता हो, जो पूरे चौरस्ते को घेर ले। जो कहे कि सब रास्ते हमारे हैं। तुम चलो भर! तुम जहां से भी चलोगे वहीं पहुंचोगे। सब रास्ते वहीं ले जाते हैं। आग्रह यह है कि तुम चलो, खड़े मत रहो।
तो कोई नयी धारणा, कोई पर्वत पर नया मार्ग तोड़ने की मेरी उत्सुकता नहीं, मार्ग बहुत हैं। चलने वाला नहीं है। मार्ग की कमी नहीं है कि मार्ग कम हैं इसलिए हम एक नया मार्ग तोड़ें। मार्ग बहुत हैं। मार्ग ज्यादा और चलने वाले कम हैं। करीब-करीब मार्ग सूने पड़े हैं, जिन पर कोई चलने वाला वर्षों से नहीं गुजरा है। सैकड़ों वर्षों से, हजारों वर्षों से कई मार्ग सूने पड़े हैं। कोई राहगीर नहीं आया उन पर। क्योंकि पर्वत पर चढ़ने की जो संभावना थी, वही टूट गई। पर्वत के नीचे इतना विवाद है और इतनी कलह है, और सारी कलह का पूरा का पूरा जो परिणाम हो रहा है वह प्रत्येक व्यक्ति को थका देने वाला, घबरा देने वाला, खड़ा कर देने वाला है। इतने बिगूचना में कोई चल नहीं सकता।
लेकिन यहां एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है, फिर भी मेरी दृष्टि इकलेक्टिक नहीं है। मेरी दृष्टि गांधी जैसी नहीं है कि मैं चार कुरान के वचन चुन लूं और चार गीता के वचन चुन लूं, और कहूं कि दोनों में एक ही बात है।
दोनों में एक बात है नहीं। यह मैं कहता हूं कि सब रास्तों से चल कर आदमी वहीं पहुंच जाएगा, लेकिन सब रास्ते एक नहीं हैं। यह मैं नहीं कहता। रास्ते तो बिल्कुल अलग-अलग हैं। और अगर गीता और कुरान को एक बताने की कोशिश की जाती है तो तरकीब है।
अब यह बड़ी मजेदार बात है कि गांधी गीता को पढ़ लेंगे, फिर कुरान को पढ़ लेंगे। और कुरान में जो-जो बातें गीता से मेल खाती हैं वे चुन लेंगे, बाकी बातें छोड़ देंगे। बाकी बातें क्या हुईं जो मेल नहीं खातीं और जो विपरीत पड़ती हैं? वे छोड़ देंगे। पूरे कुरान को गांधी नहीं राजी हो सकते--पूरे कुरान को! पूरी गीता को राजी हैं।
इसलिए मैं कहता हूं इकलेक्टिक! पूरी गीता को राजी हैं, फिर गीता के भी समानांतर कुछ मिलता हो कहीं कुरान में तो उसके लिए राजी हैं। इसमें राजी होने में कोई कठिनाई ही नहीं है। इसको तो कोई भी राजी हो जाएगा। मैं कहता हूं कि नहीं मैं आपसे बिल्कुल राजी हूं, उतनी दूर तक, जहां तक कुरान गीता का अरबी रूपांतर है, बस। उससे इंच भर ज्यादा नहीं। वह तो कुरान वाला भी राजी हो जाता है।
लेकिन यह बहुत मजेदार प्रयोग होगा कि कुरान वाले से आप गीता में चुनवाएं कि कौन-कौन सी बात का मेल है, तो आप बिल्कुल हैरान हो जाएंगे। जो चीजें वह चुनेगा वे गांधी ने कभी नहीं चुनीं। वह बहुत भिन्न चीजें चुनेगा। इसको इकलेक्टिसिज्म कहता हूं मैं। यह चुनना है। यह पूरे की स्वीकृति नहीं है। स्वीकृति तो हमारी ही है। उससे आप भी मेल खाते हो कहीं, तो आप भी ठीक हो। ठीक तो हम ही हैं अंततः। लेकिन आप भी उतने दूर तक ठीक हो, इतना कहने की हम सहिष्णुता दिखलाते हैं, जितनी दूर तक आप हमसे मेल खाते हैं। यह कोई बहुत सहिष्णुता नहीं है।
और यह प्रश्न कोई सहिष्णुता का नहीं है। यह तो आकाश जैसी उदारता का है, सहिष्णुता का नहीं है। टालरेंस का नहीं है। यह नहीं है कि एक हिंदू एक

मुसलमान को सह जाए; यह नहीं है कि एक ईसाई एक जैन को सहे। सहने में ही हिंसा भरी हुई है। मैं यह नहीं कहता कि कुरान और गीता एक ही बात कहते हैं। कुरान तो बिल्कुल अलग बात कहता है। उसका अपना इंडिविजुअल स्वर है। वही उसकी महत्ता है। अगर वह भी वही कहता है जो गीता कहती है, तो कुरान दो कौड़ी का हो गया। बाइबिल तो कुछ और ही कहती है, जो न गीता कहती है, न कुरान कहता है। उनके सबके अपने स्वर हैं। महावीर वही नहीं कहते जो बुद्ध कहते हैं, बड़ी भिन्न बातें कहते हैं।
लेकिन इन भिन्न बातों से भी अंततः जहां पहुंचा जाता है, वह एक जगह है।
जो मेरा जोर है वह मंजिल की एकता पर है, मार्ग की एकता पर नहीं है। जो मेरा जोर है वह यह है कि अंततः ये सारे मार्ग वहां पहुंच जाते हैं जहां कोई भेद नहीं है।
लेकिन ये मार्ग बड़े भिन्न हैं। और किसी भी आदमी को भूल कर दो मार्गों
को एक समझने की चेष्टा में नहीं पड़ना चाहिए। अन्यथा वह किसी पर भी न चल पाएगा। माना कि ये सब नावें उस पार पहुंच जाती हैं, लेकिन फिर भी दो नावों पर सवार होने की गलती किसी को भी नहीं करना चाहिए। अन्यथा नावें पहुंच जाएंगी, दो नावों पर चढ़ने वाला नहीं पहुंचेगा। वह मरेगा, वह डूबेगा कहीं। माना कि सब नावें नावें हैं, फिर भी एक ही नाव पर चढ़ना होता है, पहुंचना हो तो।
हां, किनारे पर खड़े होकर बात करनी हो कि सब नावें नावें हैं, तो कोई हर्जा नहीं है। सब नावें एक ही हैं, तो भी कोई हर्जा नहीं है। लेकिन यात्रा करने वाले को तो नाव पर कदम रखते से ही चुनाव करना पड़ेगा। इस चुनाव के लिए मेरी परम स्वीकृति है सबकी।
बहुत कठिन है, क्योंकि बड़ी विपरीत घोषणाएं हैं। एक तरफ महावीर हैं जो चींटी को भी मारने को राजी न होंगे, पैर फूंक कर रखेंगे। दूसरी तरफ तलवार लिए मोहम्मद हैं। तो जो भी कहता है कि दोनों एक ही बातें कहते हैं, गलत कहता है। ये दोनों एक बात कह नहीं सकते। ये बातें तो बड़ी भिन्न कहते हैं। और अगर एक बात बताने की कोशिश की गई तो किसी न किसी के साथ अन्याय हो जाएगा। या तो मोहम्मद की तलवार छिपानी पड़ेगी और या महावीर का चींटी को फूंकना भुलाना पड़ेगा। अगर मोहम्मद का मानने वाला चुनेगा तो महावीर से वे हिस्से काट डालेगा जो तलवार के विपरीत जाते होंगे। और महावीर का मानने वाला चुनेगा तो तलवार को अलग कर देगा मोहम्मद से, और सिर्फ वे ही बातें चुन लेगा जो अहिंसा के तालमेल में पड़ती हों। बाकी यह अन्याय है।
इसलिए मैं गांधी जैसा समन्वयवादी नहीं हूं। मैं सारे धर्मों के बीच किसी सिंथीसिस और किसी समन्वय की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो यह कह रहा हूं कि सारे धर्म अपने निजी व्यक्तिगत रूप में जैसे हैं वैसे मुझे स्वीकृत हैं, मैं उनमें कोई चुनाव नहीं करता। और मैं यह भी कहता हूं कि उनके वैसे होने से भी पहुंचने का उपाय है।
इसलिए सारे धर्मों ने जो अलग-अलग अपने रास्ते बनाए हैं, उन रास्तों के
जो भेद हैं, वे रास्तों के भेद हैं। मेरे रास्ते पर वृक्ष पड़ते हैं और आपके रास्ते पर पत्थर ही पत्थर हैं। आप जिस कोने से चढ़ते हैं पहाड़ के वहां पत्थर ही पत्थर हैं और मैं जिस रास्ते से चढ़ता हूं वहां वृक्ष ही वृक्ष हैं। कोई है कि सीधा पहाड़ पर चढ़ता है, और बड़ी चढ़ाई है और पसीने से तरबतर हो जाता है; और कोई है कि बहुत मद्धिम और घूमते हुए रास्ते से चढ़ता है, वह लंबा जरूर है, लेकिन थकता कभी नहीं और पसीना कभी नहीं आता। निश्चित ही ये अपने- अपने रास्तों की अलग-अलग बात करेंगे। इनके वर्णन बिल्कुल अलग होंगे। फिर प्रत्येक के रास्ते पर मिलने वाली कठिनाइयों का हिसाब भी अलग होगा; और प्रत्येक कठिनाई से जूझने की साधना भी अलग होगी। और यह सब अलग होगा। अगर हम इनके रास्तों की ही चर्चा को देखें तो हम इनमें शायद ही कोई समानता खोज पाएं।
तो जो समानता दिखाई पड़ती है वह रास्तों की नहीं है। वह समानता उन वचनों की है जो पहुंचे हुए लोगों ने कहे हैं। वह रास्तों की जरा भी नहीं है। वह समानता उन वचनों की है, जो पहुंचे, जो शिखर पर पहुंचे हुए लोगों ने कहे हैं। फिर भाषा का ही फर्क रह जाता है, अरबी का होगा, कि पाली का होगा, कि प्राकृत का, कि संस्कृत का, उन शब्दों में सिर्फ भाषा ही का फर्क रह जाता

है जो मंजिल की घोषणा के लिए कहे गए हैं। बाकी मंजिल के पहले सारे फर्क बहुत वास्तविक हैं। और मैं नहीं कहता कि उनको भुलाने की जरूरत है।
तो मैं कोई नया रास्ता नहीं तोड़ना चाहता। न ही किसी पुराने रास्ते को, बाकी रास्तों के खिलाफ, सही कहना चाहता हूं। मैं कहना चाहता हूं कि सभी रास्ते सही हैं, भिन्न हैं। क्योंकि हमारे मन में सही होने का एक ही मतलब होता है कि वे एक से हों। हमारे मन में यह भाव होता है कि दो चीजें तभी सही हो सकती हैं जब एक सी हों। एक सी होना कोई अनिवार्यता नहीं है। सच तो यह है कि दो एक सी चीजों में अक्सर एक नकल होगी, सही नहीं होगी। दो बिल्कुल एक सी चीजों में एक नकल होगी, दोनों भी नकल हो सकती हैं, बाकी एक तो पक्का ही नकल होगी। दो बिल्कुल ही वास्तविक असली चीजें बिल्कुल अलग होती हैं। उनका व्यक्तित्व भिन्न होता ही है।
इसमें मैं आश्चर्य नहीं मानता कि मोहम्मद और महावीर के मार्ग में भेद है। न होता भेद तो एक चमत्कार था। जो कि बिल्कुल अस्वाभाविक है। महावीर की सारी परिस्थितियां भिन्न हैं, मोहम्मद की सारी परिस्थितियां भिन्न हैं। मोहम्मद को जिन लोगों के साथ काम करना पड़ रहा है, वे बिल्कुल भिन्न हैं। महावीर को जिनके साथ काम करना पड़ रहा है, वे बिल्कुल भिन्न हैं। सारी संस्कारगत जो धारा है मोहम्मद के लोगों की वह बिल्कुल और है। महावीर के पास जो धारा है वह बिल्कुल और है। यह सब इतना भिन्न है कि इसमें महावीर और मोहम्मद का मार्ग एक नहीं हो सकता। और आज भी सबकी स्थितियां भिन्न हैं। उन भिन्न स्थितियों को ही ध्यान में रख कर जाना पड़े।
तो मैं न तो कोई नया मार्ग तोड़ने को उत्सुक हूं, न किसी पुराने मार्ग को, शेष पुराने मार्गों के खिलाफ सही कहने को उत्सुक हूं। दो बातें हैं। सभी सही हैं, जो टूटे मार्ग वे, जो आज टूट रहे हैं वे, और जो कल टूटेंगे वे भी, और जो अभी नहीं टूटे हैं वे भी सही हैं। आदमी खड़ा न रहे--चले। गलत से गलत मार्ग से चलने वाला भी आज नहीं कल पहुंच जाएगा और सही से सही मार्ग पर खड़ा रहने वाला कभी नहीं पहुंच सकता। इसलिए असली सवाल चलने का है।
और जब कोई चलता है तो गलत मार्ग से मुक्त हो जाना अड़चन नहीं है। लेकिन
जब कोई खड़ा रह जाता है तो पता ही नहीं चलता कि जहां खड़ा है वह सही है कि गलत। चलने से पता चलता है कि सही है या गलत। अगर आप किसी भी सिद्धांत को मान कर बैठ जाएं तो कभी पता नहीं चलता कि वह सही है या गलत। आप उसका प्रयोग करें और चलें, और आपको फौरन पता चलता है कि वह सही है या गलत। कोई भी विचार, कर्म बन कर ही सही या गलत होने की कसौटी पर कसा जाता है, अन्यथा कोई कसने का उपाय नहीं है।
तो मेरी उत्सुकता है, चलें। और मैं प्रत्येक को उसके मार्ग पर ही सहारा देने के लिए उत्सुक हूं। स्वभावतः, महावीर के लिए यह आसान नहीं था। आज यह आसान है, और रोज आसान होता चला जाएगा। क्योंकि आज करीब-करीब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो अपने दो-चार-छह जन्मों में दो-चार-छह धर्मों में पैदा न हो चुका हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। एक-एक आदमी चार-चार, छह-छह धर्मों में पैदा हो चुका है। इधर पिछले पांच-सात सौ वर्षों में जैसी बाहरी निकटता बढ़ी है वैसी ही भीतरी आत्मा के आवागमन की निकटता बढ़ी है। जो कि स्वाभाविक है, बढ़ेगी ही।
जैसे, उदाहरण के लिए, आज से दो हजार साल पहले कोई ब्राह्मण मरता तो शूद्र के घर में पैदा होना सौ में निन्यानबे मौके पर संभव नहीं था। शूद्र के घर में पैदा नहीं हो सकता था। आत्मा का आवागमन इतना ही कठिन था। क्योंकि आवागमन ही नहीं था। चित्त तो सारे संस्कार लेता है। जिस शूद्र को कभी छुआ नहीं, जिसकी छाया से बचे, जिसकी छाया पड़ गई तो स्नान किया, अलंघ्य खाई रही जिसके और हमारे बीच। मरने के बाद आत्मा यात्रा नहीं कर सकती। क्योंकि यात्रा जो चित्त कराएगा वह चित्त बिल्कुल ही खिलाफ है। कोई यात्रा नहीं हो सकती।
इसलिए महावीर के समय तक बहुत कभी ऐसा मौका होता था कि कोई आदमी कोई धर्म-परिवर्तन में पैदा हो जाए। यह संभव नहीं था। धाराएं इतनी बंधी थीं, लीकें इतनी साफ थीं कि आप इस जन्म में ही अपने धर्म के भीतर घूमते थे, ऐसा नहीं है, आप अगले जन्म में भी उसी धर्म के भीतर घूमते थे।

अब यह संभव नहीं रहा। अब चीजें जैसे बाहर उदार हो गई हैं वैसे भीतर भी उदार हो गई हैं। वह तो चित्त... । आज मुसलमान के साथ बैठ कर खाना खाने में किसी ब्राह्मण को कोई तकलीफ कम हुई है, कम होती चली जाएगी। और जिसको कम नहीं हुई है वह आज का आदमी नहीं है। उसके पास चित्त पांच सौ साल पुराना है। आज के आदमी को तो बिल्कुल कम हो गई है। आज तो सोचना भी उसे बेहूदा मालूम पड़ता है कि इस तरह की बात सोचे।
लेकिन इससे भीतरी आवागमन का भी द्वार खुल गया है, यह ख्याल में ले लेना जरूरी है। इधर पांच सौ वर्ष में रोज द्वार खुलता गया है। वह जो भीतर का द्वार खुल गया है, उसके कारण आज कुछ बातें कही जा सकती हैं। अगर मैंने अपने पिछले जन्मों में अनेक मार्गों पर घूम कर देखा हो तो मेरे लिए बहुत आसान हो जाता है कि मैं कह सकूं। अगर आज एक तिब्बतन साधक मुझसे पूछता है तो उससे मैं कुछ कह सकता हूं। लेकिन तभी कह सकता हूं जब कि किसी न किसी यात्रा में तिब्बतन जो मिल्यू है, तिब्बतन जो वातावरण है, उसमें मैं जीया होऊं, अन्यथा मैं नहीं कह सकता हूं। और अगर मैं कहूंगा तो ऊपरी होगा, बहुत गहरा नहीं हो सकता। बहुत गहरा नहीं हो सकता। जब तक कि मैं किसी जगह से नहीं गुजरा हूं तब तक मैं बहुत कुछ नहीं कह सकता।
अगर मैंने कभी नमाज नहीं पढ़ी है तो मैं नमाज के लिए कोई सहायता नहीं
दे सकता हूं। और दूंगा तो बहुत ऊपरी होगी। किसी मूल्य की नहीं होगी। लेकिन अगर मैं किसी भी मार्ग से नमाज से गुजरा हूं तो मैं सहायता दे सकता हूं। और अगर मैं एक दफा गुजरा हूं तो मैं जानता हूं कि नमाज से भी वहीं पहुंचा जाता है, जहां किसी प्रार्थना से पहुंचा जाता होगा। और तब मैं इकलेक्टिक नहीं हूं। इसलिए नहीं कह रहा हूं कि हिंदू-मुसलमान को एक होना ही चाहिए, इसलिए दोनों ठीक हैं। तब मेरे कहने का कारण बहुत और है। तब मैं जानता हूं कि वे दोनों की पद्धतियां भिन्न हैं, लेकिन जो प्रतीति है भीतर वह एक है। और यह रोज स्थिति ऐसी और भी जो मैं कह रहा हूं उसके अनुकूल होती चली जाएगी। भविष्य के लिए आने वाले सौ वर्षों में इतना आवागमन तीव्र हो जाएगा आत्माओं का, क्योंकि जितने बंधन बाहर टूटेंगे, उतने भीतर टूट जाएंगे।
और यह आप जान कर हैरान होंगे कि जिन्होंने बाहर बंधन बहुत सख्ती से तय किए थे, उनका आग्रह भी बाहर के बंधन के लिए नहीं था। भीतर का इंतजाम था। इसलिए कभी भी इस मुल्क की वर्ण-व्यवस्था को बहुत वैज्ञानिक रूप से समझा नहीं जा सका। जैसा आज हमें लगता है कि कितना अन्याय किया होगा उन लोगों ने। एक तरफ वही ब्राह्मण उपनिषद लिख रहा है और दूसरी तरफ वही ब्राह्मण शूद्रों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करने की व्यवस्था कर रहा है। ये संगत नहीं हैं बातें। या तो सब उपनिषद झूठे हैं, जो लिखे नहीं गए कभी, क्योंकि उसी ब्राह्मण से नहीं निकल सकते जिस ब्राह्मण से शूद्र की व्यवस्था निकल रही है। और अगर उससे ही शूद्र की व्यवस्था निकली हो, तो हम जो व्याख्या कर रहे हैं उसमें कहीं भूल हो रही है।
निकली उसी से है। वही मनु एक तरफ इतनी ऊंची बात कह रहा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। नीत्से कहा करता था कि मनु से ज्यादा बुद्धिमान आदमी पृथ्वी पर नहीं हुआ। लेकिन अगर मनु के वचन हम देखें तो शूद्रों और वर्णों के बीच जितनी अलंघ्य खाइयां उसने निर्मित कीं, उतनी किसी और आदमी ने नहीं कीं। वह अकेला आदमी जो तय कर गया उसको आज भी नहीं हिला पा रहे हैं आप। पांच हजार साल की धारा पर वह छाया है। आज भी सारा कानून, सारी व्यवस्था, सारी समझ, सारी बुद्धिमानी, सारी राजनीति उसके खिलाफ लगी है--पांच हजार साल पहले मरे हुए आदमी के। लेकिन वह जो व्यवस्था दे गया है उसको हटाना बहुत मुश्किल पड़ रहा है। राजा राममोहन राय से लेकर गांधी तक सारे हिंदुस्तान के डेढ़ सौ वर्ष के सारे समझदार आदमी मनु के खिलाफ लड़ रहे हैं। और वह एक आदमी, और वह पांच हजार साल पहले हो गया!
वह कोई छोटी समझ का आदमी नहीं है। ये सब बचकाने हैं उसके सामने, बिल्कुल जुविनाइल हैं। गांधी या राजा राममोहन राय बिल्कुल बचकाने हैं। आज सारी स्थिति विपरीत हो गई है, फिर भी मनु एकदम हिल नहीं पा रहा है। उसको हिलाना कठिन है। क्योंकि कारण भीतर है। सारी व्यवस्था इतनी ही थी कि एक आदमी इस जन्म में अगर नमाज पढ़ता रहा है, तो मनु चाहता है कि वह अगले जन्म में भी नमाज वाले घर में ही पैदा हो। नहीं तो जो काम तीन जन्म में हो सकता

है एक ही परंपरा में पैदा होकर, वह तीस जन्मों में नहीं हो सकेगा। हर बारशृंखला टूट जाएगी। और जब भी वह आदमी रास्ता बदलेगा तब फिर अ ब स से शुरू करेगा। क्योंकि पुराने से आगे नहीं जोड़ा जा सकता है।
एक आदमी पिछले जन्म में मुसलमान के घर में था और इस जन्म में हिंदू के
घर में पैदा हो गया। अब वह फिर क ख ग से शुरू कर रहा है। पिछली यात्रा बेकार हो गई, पुछ गई। उसका कोई अर्थ न रहा। वह ऐसा हुआ कि एक स्कूल में पढ़ा था वह छह महीने, फिर निकल आया। फिर दूसरे स्कूल में भर्ती हुआ, फिर पहली क्लास में भर्ती हुआ। फिर छह महीने बाद तीसरे स्कूल में भर्ती हो गया, उन्होंने फिर उसे पहली क्लास में भर्ती कर लिया। वह स्कूल बदलता चला गया। यह शिक्षित कब होगा?
मनु का ख्याल था यह--और बड़ा कीमती है--कि हम उस व्यक्ति को उसी विचार-तरंगों के जगत में वापस पहुंचा दें जहां से वह छोड़ रहा है। फिर से शुरू न करना पड़े। जहां से छोड़ा वहां से शुरू कर सके। और यह तभी हो सकता था जब बहुत सख्ती से व्यवस्था की जाए। इसमें थोड़ी भी ढील-पोल से नहीं चलता। अगर इसमें इतना भी हो कि कोई हर्जा नहीं है कि शूद्र से विवाह कर लो। लेकिन मनु ज्यादा बुद्धिमान है। वह जानता है कि जब शूद्र से विवाह कर सकते हो तो कल शूद्र के घर में गर्भ लेने में कौन सी कठिनाई पड़ेगी? जब शूद्र की लड़की को गर्भ दे सकते हो तो शूद्र की लड़की में गर्भ लेने में कौन सी अड़चन रह जाएगी? कोई तर्कसंगत अड़चन नहीं रह जाती। अगर गर्भ लेने से रोकना है तो गर्भ देने से रोकना पड़ेगा। इसलिए विवाह पर सख्त पाबंदी लगा दी। उसमें इंच भर हिलने नहीं दिया। क्योंकि यहां इंच भर हिल गए तो पीछे की सारी व्यवस्था, वह सारी की सारी अस्तव्यस्त हो जाएगी।
लेकिन वह अस्तव्यस्त हो गई। अब शायद उसे व्यवस्थित करना कठिन पड़ेगा। कठिन क्या, मैं समझता हूं, असंभव है। अब हो नहीं सकता। सारी स्थिति ऐसी है अब कि अब नहीं हो सकता है। अब हमें और सूक्ष्म रास्ते खोजने पड़ेंगे, मनु से भी ज्यादा सूक्ष्म।
मनु बहुत बुद्धिमान था, लेकिन व्यवस्था बहुत स्थूल थी। इसलिए स्थूल व्यवस्था आदमी के लिए अन्यायपूर्ण हो जाएगी। बहुत बाह्य, बाहर से रोकी थी भीतर को सम्हालने को--आज नहीं कल कठिन हो जाएगी--स्टिफ जैकिट बैठ गई ऊपर वह, लोहे की हो गई।
आज और सूक्ष्म तल पर प्रयोग करने पड़ेंगे। सूक्ष्म तल पर प्रयोग करने
का मतलब यह है कि आज हमें प्रार्थना और नमाज को इतना तरल बनाना पड़ेगा कि जिसने पिछले जन्म में नमाज छोड़ी हो वह इस जन्म में अगर प्रार्थना भी शुरू करे तो वहां से शुरू कर सके जहां से नमाज छोड़ी थी। इसका मतलब हुआ कि प्रार्थना और नमाज इतनी तरल, लिक्विड होनी चाहिए कि प्रार्थना से नमाज शुरू की जा सके, नमाज से प्रार्थना शुरू की जा सके। मंदिर के घंटे सुनते- सुनते कान ऐसे न हो जाएं कि किसी दिन सुबह अजान की आवाज अजनबी मालूम पड़े। मंदिर के घंटों और अजान की आवाज में कहीं कोई आंतरिक तालमेल बनाना पड़ेगा। और इसमें बनाने में कोई कठिनाई नहीं है। यह बिल्कुल बनाया जा सकता है। और इसलिए भविष्य के लिए बिल्कुल एक नये धर्म की, नयी धार्मिकता की, न्यू रिलीजसनेस--नया धर्म नहीं कहना चाहिए--नयी धार्मिकता की जरूरत पड़ेगी। मनु का सारा इंतजाम टूट गया। बुद्ध, महावीर की सारी परंपराएं विशृंखल
हो गईं। उन्हीं आधारों पर कोई नये प्रयोग करना चाहेगा, वे मजबूरी में टूट जाएंगी। गुरजिएफ ने बहुत कोशिश की, वह टूट गया। कृष्णमूर्ति चालीस साल से मेहनत करते हैं, कुछ बनता नहीं। सारी स्थिति अन्यथा हो गई।
इस अन्यथा स्थिति में बिल्कुल ही एक नयी धारणा--नयी धारणा इस अर्थ में, जैसा कि हमने कभी प्रयोग ही नहीं की। एक तरल धर्म की धारणा। सब धर्मों के, वे जैसे हैं वैसे ही सही होने की धारणा। दृष्टि मंजिल पर, आग्रह चलने का! कहीं भी कोई चले। और हर दो रास्तों के बीच इतनी निकटता कि किसी भी रास्ते से दूसरा रास्ता शुरू हो सके। इन रास्तों के बीच इतना फासला नहीं कि एक रास्ते पर चलने वाला जब दूसरे पर शुरू करे तो उसे दरवाजे पर आना पड़े वापस। नहीं, वह जहां से एक रास्ते से हटे, वहीं से दूसरे रास्ते से मिल जाए।

तो जिनको कहना चाहिए लिंक रोड्स, रास्तों को जोड़ने वालीशृंखला कड़ियां! मंजिल से जोड़ने वाले रास्ते सदा से हैं। दो रास्तों को जोड़ने वाली कड़ियां सदा से नहीं हैं। मंजिल तक जाने की तो कोई कठिनाई नहीं है। कोई भी एक रास्ते को पकड़े, मंजिल पर पहुंच जाएगा। लेकिन अब ऐसा है कि एक रास्ते पर शायद ही कोई पूरा चल पाए। जिंदगी रोज अस्तव्यस्त होती रहेगी। भौतिक अर्थों में भी, मानसिक अर्थों में भी अस्तव्यस्त होती रहेगी। एक आदमी हिंदू घर में पैदा होगा, हिंदू गांव में बड़ा होगा, और फिर जिंदगी हो सकता है कि वह यूरोप में बिताए। एक आदमी अमरीका में पैदा होगा और हिंदुस्तान के जंगल में जिंदगी बिताए। लंदन में बड़ा होगा, वियतनाम के गांव में जीएगा। यह रोज होता जाएगा। भौतिक अर्थों में भी रोज वातावरण बदलेगा और आंतरिक अर्थों में भी इतना ही वातावरण बदलेगा। यह बदलाहट इतनी ज्यादा होती जाएगी कि अब हमें लिंक्स बनानी पड़ेंगी सब रास्तों के बीच।
कुरान और गीता एक नहीं हैं, लेकिन कुरान और गीता के बीच एक कड़ी बांधी
जा सकती है। तो मैं एक ऐसे संन्यासियों का जाल भी फैलाना चाहता हूं जो कड़ियां बन जाएं। मस्जिद में नमाज भी पढ़ें, चर्च में भी प्रार्थना करें, मंदिर में भी गीत गाएं। महावीर के रास्ते पर भी चलें, बुद्ध की साधना में भी उतरें, सिक्खों के पंथ पर भी प्रयोग करें और लिंक निर्मित करें। और ऐसे व्यक्तियों का जीवित जाल, जो लिंक बन जाए! और ऐसी एक धार्मिक अवधारणा कि सब धर्म भिन्न होते हुए एक हैं! अभिन्न होकर एक नहीं, भिन्न होते हुए, बिल्कुल भिन्न होते हुए, अपनी-अपनी निजता में भिन्न होते हुए एक हैं। एक, क्योंकि एक जगह पहुंचाते हैं। एक, क्योंकि परमात्मा की तरफ चलाते हैं।
तो मेरा काम कुछ तीसरे तरह का है। और वैसा काम ठीक से हुआ नहीं, कभी नहीं हुआ। कुछ छोटे-छोटे कभी प्रयोग किए गए, बहुत छोटे। लेकिन सदा असफल हुए। रामकृष्ण ने थोड़ी सी मेहनत की। पर वे प्रयोग भी बहुत पुराने नहीं हैं, इधर बस दो सौ वर्ष के बीच प्राथमिक कदम उठाए गए। रामकृष्ण ने मेहनत की, लेकिन खो गया। विवेकानंद ने उसे फिर वापस हिंदू रंग दे दिया पूरा का पूरा। वह बात खो गई। नानक ने कोशिश की थी पांच सौ वर्ष पहले, और थोड़ा पीछे, लेकिन वह भी खो गई। नानक ने गुरुग्रंथ में सारे हिंदू-मुसलमान संतों की वाणी इकट्ठी की। नानक गीत गाते, तो मर्दाना--एक मुसलमान--तंबूरा बजाता। कभी किसी दूसरे को तंबूरा नहीं बजाने दिया। उन्होंने कहा कि गीत हिंदू गाता हो तो मुसलमान तंबूरा तो बजाए ही। इतना तो गीत और तंबूरा कहीं तो एक हो जाए। मक्का और मदीना की यात्रा की, मस्जिदों में नमाज पढ़ी नानक ने। पर खो गई। तत्काल सारी चीज को इकट्ठा करके नया पंथ खड़ा हो गया।
और भी, सूफी फकीरों ने कुछ मेहनत की, और कहीं-कहीं कुछ मेहनत हुई। लेकिन सारी मेहनत अभी प्राथमिक रही, वह अभी तक बन नहीं पाई। उसके दो कारण थे। युग भी नहीं पूरा निर्मित हुआ था। लेकिन अब युग पूरा निर्मित हुआ जा रहा है। और अब एक बड़े पैमाने पर श्रम किया जा सकता है।
तो मेरी दिशा बिल्कुल तीसरी है। न पुराने को दोहराना है, न नये की कोई बात है। पुराने और नये में, सब में जो है, उस पर चलने का आग्रह है। कैसे भी चलें उसकी स्वतंत्रता है।

ओशो, जिस शाश्वत की बात, जिस सनातन की बात आपने की, क्या उसका बोध सात
सौ वर्ष पूर्व आपको हो चुका था और उसी सांकेतिक में भी आज आप सारी बात कर रहे हैं? अथवा आज की परिस्थितियों में उस शाश्वतता वाली बात का बोध आपको होता है?

शाश्वत का बोध सभी को हुआ है। बोध में कहीं कोई अड़चन नहीं है। बोध की अभिव्यक्ति में अड़चन पड़ती है। शाश्वत का बोध महावीर को भी है, बुद्ध को भी है। लेकिन महावीर पुराने की भाषा में उस शाश्वत के बोध को अभिव्यक्त करते हैं; बुद्ध नये की भाषा में उस शाश्वत को अभिव्यक्त करते हैं। मैं उसे शाश्वत की ही भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता हूं।
और जो आप पूछते हैं कि क्या सात सौ वर्ष पहले मुझे हो गया था?
करीब-करीब। अभिव्यक्ति तो आज ही दूंगा। क्योंकि सात सौ साल पहले भी
जो जाना हो, वह भी जब आज कहा जाएगा, तो जानने में अंतर नहीं पड़ेगा, कहने में

बहुत अंतर पड़ेगा। सात सौ साल पहले यही नहीं कहा जा सकता था, कोई कारण ही नहीं था कहने का। स्थिति करीब-करीब ऐसी है जैसे कभी वर्षा में इंद्रधनुष बन जाता है।
यह बहुत मजेदार घटना है। आप जहां खड़े होते हैं तो वहां से इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है। इंद्रधनुष तीन चीजों पर निर्भर होता है। वर्षा के कण, पानी के कण होने चाहिए हवा में, भाप होनी चाहिए हवा में। उन भापों को काटने वाली सूरज की किरणें एक विशेष कोण पर होनी चाहिए। और आप एक खास जगह में खड़े होने चाहिए। अगर आप उस जगह से हट जाएं तो इंद्रधनुष खो जाएगा। इंद्रधनुष के बनाने में सिर्फ सूरज की किरणें और पानी की बूंदें ही काम नहीं करतीं, आपका खास जगह खड़ा होना भी काम करता है। हां, सिर्फ सूरज की किरणें और पानी नहीं बनाते इंद्रधनुष को, आपकी आंख खास जगह से देख कर भी उतना ही हिस्सा बंटाती है उसके निर्माण में। यानी इंद्रधनुष के कांस्टीट्युएंट एलीमेंट्स जो हैं, उनमें आप भी एक हैं। तीन में से कोई भी हट जाए, इंद्रधनुष खो जाएगा।
तो जब भी सत्य अभिव्यक्त होता है तब भी तीन चीजें होती हैं। सत्य की अनुभूति होती है। वह न हो तब तो सत्य की अभिव्यक्ति नहीं होगी। सूरज न निकला हो तो कोई इंद्रधनुष बनने वाला नहीं है, आप कहीं भी खड़े हो जाएं और वर्षा के कण कुछ भी करें। तो सूर्य की तरह तो सत्य की अनुभूति अनिवार्य है। लेकिन सत्य की अनुभूति भी हो, सत्य को सुनने वाला भी मौजूद हो, लेकिन बोलने वाला ठीक कोण पर न हो तो नहीं बोला जा सकता।
जैसा कि मेहर बाबा को मैं मानता हूं कि वे कभी उस ठीक कोण पर नहीं खड़े
हो पाए जहां से उनकी अनुभूति और सुनने वाले के बीच इंद्रधनुष बन जाता। वे उस कोण पर नहीं खड़े हो पाए। बहुत से फकीर मौन रह गए। मौन रहने का कारण है। वे कोण पर नहीं खड़े हो पाए ठीक, जहां से कि अभिव्यक्ति का कोण बन सके। वह भी अनिवार्य है। नहीं तो सत्य की अनुभूति एक तरफ रह जाएगी, सुनने वाला एक तरफ रह जाएगा, बोलने वाला मौजूद नहीं है, ठीक जगह पर नहीं है।
लेकिन बोलने वाला भी ठीक जगह पर हो, ठीक बोलने में समर्थ हो, लेकिन सुनने वाला--वह भी कांस्टीट्युएंट है, वह भी!
सात सौ साल पहले जिससे मैं बोलता वह भी मेरे बोलने में हिस्सा होता। इसलिए मैं यही नहीं बोल सकता था जो मैं आपसे बोल रहा हूं। और आप यहां न बैठे हों तो भी मैं यही नहीं बोल सकूंगा। क्योंकि आप भी, जो मैं बोल रहा हूं, उसमें उतने ही अनिवार्य हिस्से हैं। आपके बिना भी नहीं बोला जा सकता। ये तीनों चीजें जब एक निश्चित ट्यूनिंग पर आती हैं, एक निश्चित ध्वनि-तरंग पर मेल खाती हैं, तब अभिव्यक्ति हो पाती है। उसमें जरा सी भी चूक, कि सब खो जाता है। इंद्रधनुष एकदम बिखर जाता है। सूरज फिर कुछ नहीं कर सकता; रहा भला आए। पानी की बूंदें कुछ नहीं कर सकतीं। एक भी चीज कहीं से हिल गई कि इंद्रधनुष तत्काल खो जाता है।
तो सत्य की अभिव्यक्ति जो है वह रेनबो एक्झिस्टेंस है। वह बिल्कुल ही इंद्रधनुष की भांति है। अत्यंत पल-पल खोने को तत्पर। जरा सा इधर-उधर चूके कि वह खो जाएगी। सुनने वाला जरा सा चूका कि इंद्रधनुष खो जाएगा। बोलने वाला जरा सा चूका कि बोलना व्यर्थ हो जाएगा।
इसलिए सात सौ साल की बात तो दूर है, सात दिन पहले भी आपसे मैं यही नहीं
कह सकता था, और सात दिन बाद भी यही नहीं कह सकूंगा। क्योंकि सब बदल जाएगा। सूरज नहीं बदलेगा, वह जलता रहेगा। लेकिन सूरज के अलावा, सत्य की अनुभूति के अलावा, वे जो दो और अनिवार्य तत्व हैं--सुनने वाला और बोलने वाला--वे दोनों बदल जाएंगे।
इसलिए बोध तो सात सौ साल पहले का है, लेकिन अभिव्यक्ति तो आज की है-- अभी की है। आज की भी नहीं कहनी चाहिए--अभी की! कल भी जरूरी नहीं है कि ऐसी ही हो। कठिन है कि ऐसी ही हो, इसमें बदलाहट होती ही चली जाएगी।

आत्मा जब शरीर छोड़ देती है और दूसरा शरीर धारण नहीं करती है, उस बीच के समयातीत अंतराल में जो घटित होता है उसका, तथा जहां वह विचरण करती है उस वातावरण के वर्णन की कोई संभावना हो सकती है? और इसके साथ जिस प्रसंग में

आपने आत्मा का अपनी मर्जी से जन्म लेने की स्वतंत्रता का जिक्र किया है, तो क्या उसे जब चाहे शरीर छोड़ने अथवा न छोड़ने की भी स्वतंत्रता है?

पहली तो बात, शरीर छोड़ने के बाद और नया शरीर ग्रहण करने के पहले जो अंतराल का क्षण है, अंतराल का काल है, उसके संबंध में दो-तीन बातें समझें तो ही प्रश्न समझ में आ सके।
एक तो कि उस क्षण जो भी अनुभव होते हैं वे स्वप्नवत हैं, ड्रीम लाइक हैं। इसलिए जब होते हैं तब तो बिल्कुल वास्तविक होते हैं, लेकिन जब आप याद करते हैं तब सपने जैसे हो जाते हैं। स्वप्नवत इसलिए हैं वे अनुभव कि इंद्रियों का उपयोग नहीं होता। आपके यथार्थ का जो बोध है, यथार्थ की जो आपकी प्रतीति है, वह इंद्रियों के माध्यम से है, शरीर के माध्यम से है। अगर मैं देखता हूं कि आप दिखाई पड़ते हैं, और छूता हूं और छूने में नहीं आते, तो मैं कहता हूं कि फैंटम हैं। है नहीं आदमी। यह टेबल मैं छूता हूं और छूने में नहीं आती और हाथ मेरा आर-पार चला जाता है, तो मैं कहता हूं झूठ है। मैं किसी भ्रम में पड़ा हुआ हूं। कोई हेलुसिनेशन है। आपके यथार्थ की कसौटी आपकी इंद्रियों के प्रमाण हैं। तो एक शरीर छोड़ने के बाद और दूसरा शरीर लेने के बीच इंद्रियां तो आपके पास नहीं होतीं, शरीर आपके पास नहीं होता। तो जो भी आपको प्रतीतियां होती हैं, वे बिल्कुल स्वप्नवत हैं--जैसे आप स्वप्न देख रहे हैं।
जब आप स्वप्न देखते हैं तो स्वप्न बिल्कुल ही यथार्थ मालूम होता है, स्वप्न में कभी संदेह नहीं आता। यह बहुत मजे की बात है। यथार्थ में कभी- कभी संदेह आता है। स्वप्न में कभी संदेह नहीं आता। स्वप्न बहुत श्रद्धावान है। यथार्थ में कभी-कभी ऐसा होता है कि जो दिखाई पड़ रहा है वह सच में है या नहीं! लेकिन स्वप्न में ऐसा कभी नहीं होता कि जो दिखाई पड़ रहा है वह सच में है या नहीं। क्यों? क्योंकि स्वप्न इतने से संदेह को सह न पाएगा, टूट जाएगा, बिखर जाएगा।
स्वप्न इतनी नाजुक घटना है कि इतना सा संदेह भी मौत के लिए काफी है। इतना ही ख्याल आ गया कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं है! कि स्वप्न टूट गया। या आप समझिए कि आप जाग गए। तो स्वप्न के होने के लिए अनिवार्य है कि संदेह तो कण भर भी न हो। कण भर संदेह भी, बड़े से बड़े, प्रगाढ़ से प्रगाढ़ स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर जाएगा, तिरोहित कर देगा।
तो स्वप्न में कभी पता नहीं चलता कि जो हो रहा है, वह हो रहा है? बिल्कुल हो रहा है। इसका यह भी मतलब हुआ कि स्वप्न जब होता है तब यथार्थ से ज्यादा यथार्थ मालूम पड़ता है। यथार्थ कभी इतना यथार्थ नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि यथार्थ में संदेह की सुविधा है। स्वप्न तो अति यथार्थ होता है। इतना अति यथार्थ होता है कि स्वप्न के दो यथार्थ में विरोध भी हो, तो विरोध दिखाई नहीं पड़ता।
एक आदमी चला आ रहा है, अचानक कुत्ता हो जाता है, और आपके मन में यह भी ख्याल नहीं आता कि यह कैसे हो सकता है! यह अभी आदमी था, यह कुत्ता हो गया? नहीं, यह भी ख्याल नहीं आता कि यह कैसे हो सकता है! बस हो गया। और हो सकता है। इसमें कहीं संदेह नहीं है। जागने पर आप सोच सकते हैं कि यह क्या गड़बड़ हुई! लेकिन स्वप्न में कभी नहीं सोच सकते। स्वप्न में यह बिल्कुल ही रीजनेबल है, इसमें कहीं कोई असंगति नहीं है। बिल्कुल ठीक है। एक आदमी अभी मित्र था और एकदम बंदूक तान कर खड़ा हो गया। तो आपके मन में कहीं ऐसा सपने में नहीं आता कि अरे, मित्र होकर और बंदूक तानते हो! इसमें कोई असंगति नहीं है।
स्वप्न में असंगति होती ही नहीं। स्वप्न में सब असंगत भी संगत है। क्योंकि जरा सा शक, कि स्वप्न बिखर जाएगा। लेकिन जागने के बाद! जागने के बाद सब खो जाता है। कभी ख्याल न किया होगा कि जाग कर ज्यादा से ज्यादा घंटे भर के बीच सपना याद किया जा सकता है, इससे ज्यादा नहीं। आमतौर से तो पांच-सात मिनट में खोने लगता है। लेकिन ज्यादा से ज्यादा, बहुत जो कल्पनाशील हैं वे भी एक घंटे से ज्यादा स्वप्न की स्मृति को नहीं रख सकते। नहीं तो आपके पास सपने की ही स्मृति इतनी हो जाएं कि आप जी न सकें। घंटे भर के बाद

जागने के भीतर स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं। आपका मन स्वप्न के धुएं से बिल्कुल मुक्त हो जाता है।
ठीक ऐसे ही दो शरीरों के बीच का जो अंतराल का क्षण है, जब होता है तब तो
जो भी होता है वह बिल्कुल ही यथार्थ है--इतना यथार्थ, जितना हमारी आंखों और इंद्रियों से कभी हम नहीं जानते। इसलिए देवताओं के सुख का कोई अंत नहीं! क्योंकि अप्सराएं जैसी यथार्थ उन्हें होती हैं, इंद्रियों से स्त्रियां वैसी यथार्थ कभी नहीं होती हैं। इसलिए प्रेतों के दुख का अंत नहीं! क्योंकि जैसे दुख उन पर टूटते हैं, ऐसे यथार्थ दुख आप पर कभी नहीं टूट सकते। तो नरक और स्वर्ग जो हैं वे बहुत प्रगाढ़ स्वप्न अवस्थाएं हैं--बहुत प्रगाढ़! तो जैसी आग नरक में जलती है वैसी आग आप यहां नहीं जला सकते। उतनी यथार्थ आग नहीं जला सकते। हालांकि बड़ी इनकंसिस्टेंट आग है।
कभी आपने देखा कि नरक की आग का जो-जो वर्णन है, उसमें यह बात है कि आग में जलाए जाते हैं, लेकिन जलते नहीं। मगर यह इनकंसिस्टेंसी ख्याल में नहीं आती कि आग में जलाया जा रहा हूं, आग भयंकर है, तपन सही नहीं जाती, और जल बिल्कुल नहीं रहा हूं! मगर यह इनकंसिस्टेंसी बाद में ख्याल आ सकती है। उस वक्त ख्याल नहीं आ सकती।
तो दो शरीरों के बीच का जो अंतराल है उसमें दो तरह की आत्माएं हैं। एक
तो वे बहुत बुरी आत्माएं, जिनके लिए गर्भ मिलने में वक्त लगेगा। उनको मैं प्रेत कहता हूं। दूसरी वे भली आत्माएं, जिन्हें गर्भ मिलने में देर लगेगी, उनके योग्य गर्भ चाहिए। उन्हें मैं देव कहता हूं। इन दोनों में बुनियादी कोई भेद नहीं है--व्यक्तित्व भेद है, चरित्रगत भेद है, चित्तगत भेद है। योनि में कोई भेद नहीं है। अनुभव दोनों के भिन्न होंगे। बुरी आत्माएं बीच के इस अंतराल से इतने दुखद अनुभव लेकर लौटेंगी, उनकी ही स्मृति का फल नरक है। जो-जो उस स्मृति को दे सके हैं लौट कर, उन्होंने ही नरक की स्थिति साफ करवाई। नरक बिल्कुल ड्रीमलैंड है, कहीं है नहीं। लेकिन जो उससे आया है वह मान नहीं सकता। क्योंकि आप जो दिखा रहे हैं, यह उसके सामने कुछ भी नहीं है। वह कहता है, यह जो आग है बहुत ठंडी है उसके मुकाबले जो मैंने देखी। यहां जो घृणा और हिंसा है वह कुछ भी नहीं है जो मैं देख कर चला आ रहा हूं। वह जो स्वर्ग का अनुभव है, वह भी ऐसा ही अनुभव है। सुखद सपनों का और दुखद सपनों का भेद है। वह पूरा का पूरा ड्रीम पीरियड है।
अब यह तो बहुत तात्विक समझने की बात है कि वह बिल्कुल ही स्वप्न है।
हम समझ सकते हैं, क्योंकि हम भी रोज सपना देख रहे हैं। सपना आप तभी देखते हैं जब आपके शरीर की इंद्रियां शिथिल हो जाती हैं। एक गहरे अर्थ में आपका संबंध टूट जाता है। तो आप सपने में चले जाते हैं। सपने भी रोज ही दो तरह के देखते हैं--स्वर्ग और नरक के; या तो मिश्रित होते हैं, कभी स्वर्ग, कभी नरक; या कुछ लोग नरक के ही देखते हैं, कुछ लोग स्वर्ग के ही देखते हैं। कभी सोचें कि आपका सपना रात आठ घंटा आपने देखा। अगर इसको आठ साल लंबा कर दिया जाए तो आपको कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि टाइम का बोध नहीं रह जाता, समय का कोई बोध नहीं रह जाता। इसलिए वह जो घड़ी बीतती है, उस घड़ी का कोई स्पष्ट बोध नहीं रह जाता। उस घड़ी का बोध पिछले जन्म के शरीर और इस जन्म के शरीर के बीच पड़े हुए परिवर्तनों से नापा जा सकता है। पर वह अनुमान है। खुद उसके भीतर समय का कोई बोध नहीं है।
और इसीलिए, जैसे क्रिश्चिएनिटी ने कहा कि नरक सदा के लिए है। वह भी ऐसे लोगों की स्मृति के आधार पर है जिन्होंने बड़ा लंबा सपना देखा। इतना लंबा सपना कि जब वे लौटे तो उन्हें पिछले अपने शरीर के और इस शरीर के बीच कोई संबंध स्मरण न रहा। इतना लंबा हो गया। लगा कि वह तो अनंत है, उसमें से निकलना बहुत मुश्किल है।
अच्छी आत्माएं सुखद सपने देखती हैं, बुरी आत्माएं दुखद सपने देखती हैं। सपनों से ही पीड़ित और दुखी होती हैं। तिब्बत में आदमी मरता है तो वे उसको मरते वक्त जो सूत्र देते हैं वह इसी के लिए है, ड्रीम सीक्वेंस पैदा करने के लिए है। आदमी मर रहा है तो वे उसको कहते हैं कि अब तू यह-यह देखना शुरू कर। सारा का सारा वातावरण तैयार करते हैं।
अब यह मजे की बात है, लेकिन वैज्ञानिक है--कि सपने बाहर से पैदा करवाए
जा सकते हैं। रात आप सो रहे हैं। आपके पैर के पास अगर गीला पानी, भीगा हुआ

कपड़ा आपके पैर के पास घुमाया जाए तो आप में एक तरह का सपना पैदा होगा। हीटर से थोड़ी पैर में गर्मी दी जाए तो दूसरे तरह का सपना पैदा होगा। अगर ठंडक दी गई पैर में, तो शायद आप सपना देखें कि वर्षा हो रही है, शायद सपना देखें कि बर्फ पर चल रहे हैं। गर्म पैर किए गए, तो शायद सपना देखें कि रेगिस्तान में चले जा रहे हैं। तपती हुई रेत है, सूरज जल रहा है, पसीने से लथपथ हैं। आपके बाहर से सपने पैदा किए जा सकते हैं। और बहुत से सपने आपके बाहर से ही पैदा होते हैं। रात छाती पर हाथ रख गया जोर से तो सपना आता है कि कोई छाती पर चढ़ा हुआ बैठा है--आपका ही हाथ रखा हुआ है।
ठीक एक शरीर छोड़ते वक्त, वह जो सपने का लंबा काल आ रहा है--जिसमें आत्मा नये शरीर में शायद जाए, न जाए--जो वक्त बीतेगा बीच में, उसका सीक्वेंस पैदा करवाने की सिर्फ तिब्बत में साधना विकसित की गई। उसको वे बारडो कहते हैं। वे पूरा इंतजाम करेंगे उसका सपना पैदा करने की। उसमें जो- जो शुभ वृत्तियां रही हैं उसकी जिंदगी में, उन सबको उभारेंगे। और जिंदगी भर भी उनकी व्यवस्था करने की कोशिश करेंगे कि मरते वक्त वे उभारी जा सकें। जैसा मैंने कहा कि सुबह उठ कर घंटे भर तक आपको सपना याद रहता है। ऐसा
ही नये जन्म पर कोई छह महीने तक, छह महीने की उम्र तक करीब-करीब सब याद रहता है। फिर धीरे-धीरे वह खोता चला जाता है। जो बहुत कल्पनाशील हैं या बहुत संवेदनशील हैं, वे कुछ थोड़ा ज्यादा रख लेते हैं। जिन्होंने अगर कोई तरह की जागरूकता के प्रयोग किए हैं पिछले जन्म में, तो वे बहुत देर तक रख ले सकते हैं।
जैसे सुबह एक घंटे तक सपना याददाश्त में घूमता रहता है, धुएं की तरह आपके आस-पास मंडराता रहता है, ऐसे ही रात सोने के घंटे भर पहले भी आपके ऊपर स्वप्न की छाया पड़नी शुरू हो जाती है। ऐसे ही मरने के भी छह महीने पहले आपके ऊपर मौत की छाया पड़नी शुरू हो जाती है। इसलिए छह महीने के भीतर मौत प्रेडिक्टेबल है।

एक्सीडेंट भी?

एक्सीडेंट भी बिल्कुल एक्सीडेंट नहीं है। उसकी बात करेंगे। कोई एक्सीडेंट बिल्कुल एक्सीडेंट नहीं है। हमें लगता है, क्योंकि हमारी व्यवस्था के कुछ भीतर नहीं घटित होता। लेकिन कोई दुर्घटना सिर्फ दुर्घटना नहीं है। दुर्घटना भी सकारण है।
छह महीने पहले मौत की छाया पड़नी शुरू हो जाती है, तैयारी शुरू हो जाती है। जैसे रात नींद के एक घंटे पहले तैयारी शुरू हो जाती है। इसलिए सोने के पहले जो घंटे भर का वक्त है, वह बहुत सजेस्टिबल है। उससे ज्यादा सजेस्टिबल कोई वक्त नहीं है। क्योंकि उस वक्त आपको शक होता है कि आप जागे हुए हैं, लेकिन आप पर नींद की छाया पड़नी शुरू हो गई होती है। इसलिए सारे दुनिया के धर्मों ने सोने के वक्त घंटे भर और सुबह जागने के बाद घंटे भर प्रार्थना का समय तय किया है--संध्याकाल!
संध्याकाल का मतलब सूरज जब डूबता है, उगता है, तब नहीं। संध्याकाल का मतलब है सोने से जब आप नींद में जाते हैं, बीच का समय। सुबह जब आप नींद से टूट कर और जागने में आते हैं, तब बीच की संध्या। वह जो मिडिल पीरियड है, उसका नाम है संध्या। सूरज से कोई लेना-देना नहीं है। वह तो बंध गया सूरज के साथ इसलिए कि एक जमाना ऐसा था कि सूरज का डूबना ही हमारा नींद का वक्त था और सूरज का उगना हमारे जागने का वक्त था। तो एसोसिएशन हो गया और ख्याल में आ गया कि सूरज जब डूब रहा है तो संध्या और सुबह जब सूरज उग रहा है तब संध्या।
लेकिन अब संध्या का वह ख्याल छोड़ देना चाहिए। क्योंकि अब कोई सूरज के डूबने के साथ सोता नहीं और कोई उगने के साथ उठता नहीं। जब आप सोते हैं उसके घंटे भर पहले संध्या और जब आप उठते हैं उसके घंटे भर बाद संध्या। संध्या का मतलब धुंधला क्षण--दो स्थितियों के बीच।
कबीर ने अपनी भाषा को संध्या-भाषा कहा है। कबीर कहते हैं कि न तो हम सोए हुए बोल रहे हैं, न हम जागे हुए बोल रहे हैं। हम बीच में हैं। हम ऐसी मुसीबत में हैं कि हम तुम्हारे बीच से भी नहीं बोल रहे, हम तुम्हारे बाहर

से भी नहीं बोल रहे, हम बीच में खड़े हैं, बार्डर लैंड पर। वहां, जहां से हमें वह दिखाई पड़ता है जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता और जहां से हमें वह भी दिखाई पड़ रहा है जो आंखों से दिखाई पड़ता है। देहरी पर खड़े हैं। तो हम जो बोल रहे हैं उसमें वह भी है जो नहीं बोला जा सकता और वह भी है जो बोला जा सकता है। इसलिए हमारी भाषा संध्या-भाषा है। इसके अर्थ तुम जरा सम्हाल कर निकालना।
यह जो सुबह का एक घंटे का वक्त है और सांझ सोने के पहले जो घंटे भर का वक्त है, यह बहुत मूल्यवान है। ठीक ऐसे ही छह महीने जन्म के बाद का वक्त है और छह महीने मरने के पहले का वक्त है। लेकिन जो लोग रात के घंटे भर का और सुबह के घंटे भर के समय का उपयोग नहीं जानते, वे छह महीने के शुरू का और छह महीने के बाद का भी उपयोग नहीं जानेंगे। जब संस्कृतियां बहुत समझदार थीं इस मामले में तो पहले छह महीने बड़े महत्वपूर्ण थे। बच्चे को पहले छह महीने में ही सब कुछ दिया जा सकता है जो भी महत्वपूर्ण है। फिर कभी नहीं दिया जा सकता। फिर बहुत कठिन हो जाएगा। क्योंकि उस वक्त वह संध्याकाल में है, सजेस्टिबल है। लेकिन हम चूंकि बोल कर कुछ नहीं समझा सकते उसको, और चूंकि बोलने के सिवाय हमें और कुछ रास्ता नहीं है कहने का, इसलिए अड़चन है।
और ऐसे ही मरने के पहले का छह महीने का वक्त बहुत कीमती है। लेकिन बच्चे को हम समझा नहीं पाते, छह महीने तो हमें पता होते हैं कि ये रहे। और बूढ़े के हमें छह महीने पता नहीं होते कि कब छह महीने हैं। इसलिए दोनों मौके चूक जाते हैं। लेकिन जो आदमी सुबह के घंटे भर का उपयोग करे और रात के घंटे भर का ठीक उपयोग करे, वह अपने इस बार मरने के छह महीने पहले उसे पक्का पता चल जाएगा कि मरना है। क्योंकि जो आदमी रात सोने के पहले घंटे भर प्रार्थना में व्यतीत कर दे उसे स्पष्ट बोध होने लगेगा कि संध्या का काल क्या है। वह इतना बारीक और सूक्ष्म अनुभव है उसकी भिन्नता का, न तो वह जागने जैसा है, न सोने जैसा। वह इतना बारीक और अलग है कि अगर उसकी प्रतीति होनी शुरू हो गई तो मरने के छह महीने पहले आपको पता लगेगा कि अब वह प्रतीति रोज दिन भर रहने लगी है। वही प्रतीति, जो घंटे भर रात सोते वक्त आपके भीतर आती है, वह मरने के पहले छह महीने स्थिर हो जाएगी।
इसलिए मरने के पहले के छह महीने तो पूरी साधना में डुबा देने हैं। वही
छह महीने बारडो के लिए उपयोग किए जाते हैं जिसमें वे ड्रीम ट्रेनिंग देते हैं कि अब अगली यात्रा में तुम क्या करोगे। वह कोई ठीक मरते वक्त नहीं दी जा सकती एकदम। उसके लिए तैयारी छह महीने की चाहिए। और जो आदमी इस छह महीने में तैयार हुआ हो, उसी आदमी को उसके अगले जन्म के पहले छह महीने में ट्रेनिंग दी जा सकती है, अन्यथा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि इस छह महीने में वे सारे सूत्र उसे सिखा दिए जाते हैं, जिन सूत्रों के आधार पर उसके अगले छह महीने में उसको ट्रेनिंग दी जा सकेगी।
अब इस सब की पूरी की पूरी अपनी वैज्ञानिकता है और इस सबके अपने सूत्र
और राज हैं। और सारी चीजें तय की जा सकती हैं। वे जो अनुभव हैं उस बीच के, जो आदमी सारी प्रक्रिया से गुजरा हो, वह छह महीने के बाद भी याद रख सकता है। लेकिन याददाश्त सपने की रह जाती है, यथार्थ की नहीं होती। स्वर्ग-नरक दोनों ही सपने की याददाश्त हो जाते हैं। विवरण दिए जा सकते हैं। उन्हीं विवरणों के आधार पर सारी दुनिया में स्वर्गों-नरकों का सब लेखा-जोखा निर्मित हुआ है। लेकिन विवरण अलग-अलग हैं, क्योंकि सबके स्वर्ग-नरक अलग-अलग होंगे। क्योंकि स्वर्ग-नरक कोई स्थान नहीं हैं, मानसिक दशाएं हैं। इसलिए जब ईसाई स्वर्ग का वर्णन करते हैं तो वह और तरह का है। वह और तरह का इसलिए है कि जिन्होंने वर्णन किया है उन पर निर्भर है। भारतीय जब वर्णन करते हैं तो और तरह का होगा; जैन और तरह का करेंगे; बौद्ध और तरह का करेंगे। असल में हर आदमी और तरह की खबर लाएगा।
करीब-करीब स्थिति ऐसी है जैसे हम सारे लोग इस कमरे में आज सो जाएं और
कल सुबह उठ कर अपने-अपने सपनों की चर्चा करें। हम एक ही जगह सोए थे, हम सब यहीं थे, फिर भी हमारे सपने अलग-अलग हैं। वे हम पर निर्भर करेंगे। इसलिए स्वर्ग और नरक बिल्कुल वैयक्तिक घटनाएं हैं। लेकिन मोटे हिसाब बांधे जा सकते हैं--कि स्वर्ग में सुख होगा, कि नरक में दुख होगा, कि दुख के क्या रूप

होंगे, कि सुख के क्या रूप होंगे। ये मोटे हिसाब बांटे जा सकते हैं। ये सारे ब्योरे, जो भी दिए गए हैं अब तक, वे सभी सही हैं चित्त-दशाओं की भांति।

और पूछा है कि जन्म को चुन सकता है व्यक्ति तो क्या अपनी मृत्यु को भी चुन सकता है?
इसमें भी दो-तीन बातें ख्याल में लेनी पड़ेंगी। एक, जन्म को चुन सकने
का मतलब यह है कि चाहे तो जन्म ले। यह तो पहली स्वतंत्रता है ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति को--चाहे तो जन्म ले। लेकिन जैसे ही हमने कोई चीज चाही कि चाह के साथ परतंत्रताएं आनी शुरू हो जाती हैं।
मैं मकान के बाहर खड़ा था। मुझे स्वतंत्रता थी कि चाहूं तो मकान के भीतर जाऊं। मकान के भीतर मैं आया। लेकिन मकान के भीतर आते ही से मकान की सीमाएं और मकान की परतंत्रताएं तत्काल शुरू हो जाती हैं। तो जन्म लेने की स्वतंत्रता जितनी बड़ी है, उतनी मरने की स्वतंत्रता उतनी बड़ी नहीं है। उतनी बड़ी नहीं है। रहेगी। साधारण आदमी को तो मरने की कोई स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि उसने जन्म को ही कभी नहीं चुना। लेकिन फिर भी जन्म की स्वतंत्रता बहुत बड़ी है, टोटल है एक अर्थ में, कि वह चाहे तो इनकार भी कर दे, न चुने। लेकिन चुनने के साथ ही बहुत सी परतंत्रताएं शुरू हो जाती हैं। क्योंकि अब वह सीमाएं चुनता है। वह विराट जगह को छोड़ कर संकरी जगह में प्रवेश करता है। अब संकरी जगह की अपनी सीमाएं होंगी।
अब वह एक गर्भ चुनता है। साधारणतः तो हम गर्भ नहीं चुनते इसलिए कोई बात नहीं है। लेकिन वैसा आदमी गर्भ चुनता है। उसके सामने लाखों गर्भ होते हैं। उनमें से वह एक गर्भ चुनता है। हर गर्भ के चुनाव के साथ वह परतंत्रता की दुनिया में प्रवेश कर रहा है। क्योंकि गर्भ की अपनी सीमाएं हैं। उसने एक मां चुनी, एक पिता चुना। उन मां और पिता के वीर्याणुओं की जितनी आयु हो सकती है वह उसने चुन ली। यह चुनाव हो गया। अब इस शरीर का उसे उपयोग करना पड़ेगा।
आप बाजार में एक मशीन खरीदने गए हैं, एक दस साल की गारंटी की मशीन आपने चुन ली। अब सीमा आ गई एक। पर यह वह जान कर ही चुन रहा है। इसलिए परतंत्रता उसे नहीं मालूम पड़ेगी। परतंत्रता हो जाएगी, लेकिन वह जान कर ही चुन रहा है। आप यह नहीं कहते कि मैंने यह मशीन खरीदी, तो दस साल चलेगी तो अब मैं गुलाम हो गया। आपने ही चुनी है, दस साल चलेगी यह जान कर चुनी है, बात खत्म हो गई। इसमें कहीं कोई पीड़ा नहीं है, इसमें कहीं कोई दंश नहीं है। यद्यपि वह जानता है कि यह शरीर कब समाप्त हो जाएगा। और इसलिए इस शरीर के समाप्त होने का जो बोध है, वह उसे होगा। वह जानता है, कब समाप्त हो जाएगा। इसलिए इस तरह के आदमी में एक तरह की व्यग्रता होगी, जो साधारण आदमी में नहीं होती है।
अगर हम जीसस की बातें पढ़ें तो ऐसा लगता है वे बहुत व्यग्र हैं। अभी कुछ होने वाला है, अभी कुछ हो जाने वाला है। उनकी तकलीफ वे लोग नहीं समझ सकते, जो सुन रहे हैं। वे नहीं समझ सकते, क्योंकि उनके लिए मृत्यु का कोई सवाल नहीं है और जीसस के लिए वह सामने खड़ी है। जीसस को पता है कि यह हो जाने वाला है। इसलिए अगर जीसस आपसे कह रहे हैं यह काम कर लो, आप कहते हैं कल कर लेंगे। अब जीसस की कठिनाई है कि वह जानता है कि कल वह कहने को नहीं होगा। तो चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों, चाहे जीसस हों, इनकी व्यग्रता बहुत ज्यादा है। बहुत तीव्रता से भाग रहे हैं। क्योंकि वे सारे मुर्दों के बीच में ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें पता है। बाकी सब तो बिल्कुल निश्चिंत हैं; कोई जल्दी नहीं है। और कितनी ही उम्र हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, जल्दी होगी ही ऐसे आदमी को। इससे फर्क नहीं पड़ता कि वह सौ साल जीएगा कि दो सौ साल जीएगा। सारा समय छोटा है। वह तो हमें समय छोटा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि वह कब खत्म होगा, यह हमें कुछ पता नहीं है। खत्म भी होगा, यह भी हम भुलाए रखते हैं।
तो जन्म की स्वतंत्रता तो बहुत ज्यादा है। लेकिन जन्म कारागृह में प्रवेश है, तो कारागृह की अपनी परतंत्रताएं हैं, वे स्वीकार कर लेनी पड़ेंगी।

और ऐसा व्यक्ति सहजता से स्वीकार करता है, क्योंकि वह चुन रहा है। अगर
वह कारागृह में आया है तो वह लाया नहीं गया है, वह आया है। इसलिए वह हाथ बढ़ा कर जंजीरें डलवा लेता है। इन जंजीरों में कोई दंश नहीं है, इनमें कोई पीड़ा नहीं है। वह अंधेरी दीवारों के पास सो जाता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि किसी ने उसे कहा नहीं था कि वह भीतर जाए। वह खुले आकाश के नीचे रह सकता था। अपनी ही मर्जी से आया है, यह उसका चुनाव है।
जब परतंत्रता भी चुनी जाती है तो वह स्वतंत्रता है। और जब स्वतंत्रता
भी बिना चुनी मिलती है तो परतंत्रता है। स्वतंत्रता-परतंत्रता इतनी सीधी बंटी हुई चीजें नहीं हैं। अगर हमने परतंत्रता भी स्वयं चुनी है तो वह स्वतंत्रता है। और अगर हमें स्वतंत्रता भी जबरदस्ती दे दी गई है तो वह परतंत्रता ही होती है, उसमें कोई स्वतंत्रता नहीं है।
फिर भी, ऐसे व्यक्ति के लिए बहुत सी बातें साफ होती हैं, इसलिए वह चीजों को तय कर सकता है। जैसे उसे पता है कि वह सत्तर साल में चला जाएगा तो वह चीजों को तय कर पाता है। जो उसे करना है, वह साफ कर लेता है। चीजों को उलझाता नहीं। जो सत्तर साल में सुलझ जाए वैसा ही काम कर लेता है। जो कल पूरा हो सकेगा, वह निपटा देता है। वह इतने जाल नहीं फैलाता जो कि कल के बाहर चले जाएं। इसलिए वह कभी चिंता में नहीं होता। वह जैसे जीता है वैसे ही मरने की भी सारी तैयारी करता रहता है। मौत भी उसके लिए एक प्रिपरेशन है, एक तैयारी है।
एक अर्थ में वह बहुत जल्दी में होता है, जहां तक दूसरों का संबंध है। जहां तक खुद का संबंध है, उसकी कोई जल्दी नहीं होती। क्योंकि कुछ करने को उसे बचा नहीं होता है। फिर भी इस मृत्यु को, वह कैसे घटित हो, इसका चुनाव कर सकता है। कब घटित हो, इसकी व्यवस्था दे सकता है--सीमाओं के भीतर। सत्तर साल उसका शरीर चलना है तो सीमाओं के भीतर वह सत्तर साल में ठीक मोमेंट दे सकता है मरने का, कि वह कब मरे, कैसे मरे, किस व्यवस्था और किस ढंग में मरे!
एक झेन फकीर औरत हुई। उसने कोई छह महीने पहले अपने मरने की खबर दी। उसने अपनी चिता तैयार करवाई। फिर वह चिता पर सवार हो गई। फिर उसने सबको नमस्कार कर लिया। फिर सारे मित्रों ने आग लगा दी। तब एक साधु, जो देख रहा था खड़ा हुआ, उसने जोर से पूछा--जब आग की लपटें लग गईं और वह जलने के करीब होने लगी--उसने पूछा उससे कि वहां भीतर गर्मी तो बहुत मालूम होती होगी? तो वह फकीर औरत हंसी और उसने कहा कि तुम जैसे मूढ़, अभी भी इस तरह के सवाल उठाए जा रहे हो? मतलब और तुम्हें कोई काम लायक बात पूछने की नहीं ख्याल में आई। तुम जैसे मूढ़, अभी भी ऐसे सवाल उठाए जा रहे हो? अब यह तो तुम्हें दिखाई ही पड़ रहा है! और आग में बैठूंगी तो गर्मी लगेगी या नहीं लगेगी, यह मुझे भी पता है।
पर यह चुना हुआ है। वह हंसते हुए जल जाती है। वह अपनी मृत्यु के क्षण
को चुनती है। और उसके जो हजारों शिष्य इकट्ठे हो गए हैं उनको वह दिखा देना चाहती है कि हंसते हुए मरा जा सकता है। जिनके लिए हंसते हुए जीना मुश्किल है उनके लिए यह संदेश बड़े काम का है। जिनके लिए हंसते हुए जीना भी मुश्किल है उनके लिए यह संदेश बड़े काम का है कि हंसते हुए मरा जा सकता है।
तो मृत्यु को नियोजित किया जा सकता है। वह व्यक्ति पर निर्भर करेगा
कि वह कैसा चुनाव करता है। लेकिन सीमाओं के भीतर सारी बात होगी। असीम नहीं है मामला। सीमाओं के भीतर वह कुछ तय करेगा। इस कमरे के भीतर ही रहना पड़ेगा मुझे, लेकिन मैं किस कोने में बैठूं, यह मैं तय कर सकता हूं। बाएं सोऊं कि दाएं सोऊं, यह मैं तय कर सकता हूं। ऐसी स्वतंत्रताएं होंगी।
और ऐसे व्यक्ति अपनी मृत्यु का निश्चित ही उपयोग करते हैं। कई बार प्रकट दिखाई पड़ता है उपयोग, कई बार प्रकट दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन ऐसे व्यक्ति अपने जीवन की प्रत्येक चीज का उपयोग करते हैं, वे मृत्यु का भी उपयोग करते हैं। असल में वे आते ही अब किसी उपयोग के लिए हैं। उनका अपना कोई प्रयोजन नहीं रह गया होता है। अब उनका आना कुछ किसी के काम पड़ जाने के लिए है। तो वे जीवन की प्रत्येक चीज का उपयोग कर लेते हैं।
पर बड़ा ही कठिन है, बड़ा कठिन है कि हम उनके प्रयोग को समझ पाएं। जरूरी नहीं है! अक्सर हम नहीं समझ पाते। क्योंकि जो भी वे कुछ कर रहे हैं, हमें तो कुछ पता नहीं होता। और हमें पता करवा कर किया भी नहीं जा सकता।

अब जैसे बुद्ध जैसा आदमी नहीं कहेगा कि मैं कल मर जाने वाला हूं। क्योंकि कल मरना है यह आज कह देने का मतलब होगा कि कल तक जो भी जीवन का उपयोग हो सकता था वह मुश्किल हो जाएगा। ये लोग आज से ही रोना-धोना, चिल्लाना शुरू कर देंगे। ये चौबीस घंटे का जो उपयोग हो सकता था वह भी नहीं हो सकेगा। तो कई बार चुपचाप रह कर वैसा व्यक्ति ठीक समझेगा तो करेगा, कई दफे घोषणा भी करेगा--जैसी तत्काल परिस्थिति। पर इतनी सीमा तक वह तय करता है।
और ज्ञान के बाद का जन्म, जन्म से लेकर मृत्यु तक पूरा ही पूरा एक शिक्षण है, खुद के लिए नहीं। एक अनुशासन है, खुद के लिए नहीं। और हर बार स्ट्रेटेजी बदलनी पड़ती है। क्योंकि सब स्ट्रेटेजी पुरानी पड़ जाती हैं और बोथली हो जाती हैं, और लोगों को समझने में मुश्किल पड़ जाती है।
अब गुरजिएफ था अभी। महावीर कभी पैसा नहीं छुएंगे; गुरजिएफ से आप एक सवाल पूछेंगे तो वह कहेगा, सौ रुपये पहले रख दें। सौ रुपये बिना रखे वह सवाल भी स्वीकार नहीं करेगा। सौ रुपये रखवा लेगा, तब एक सवाल का जवाब देगा। हो सकता है एक वाक्य बोले, हो सकता है दो वाक्य बोले। फिर दूसरी बात पूछनी है तो फिर सौ रुपये रख दें।
अनेक बार लोगों ने उससे कहा कि आप यह क्या करते हैं? और जो उसे जानते
थे वे हैरान होते थे, क्योंकि ये रुपये यहां आए और यहां वे बंट जाने वाले हैं। कुछ भी होने वाला है उनका। कोई गुरजिएफ उनको रखने वाला है एक क्षण को, ऐसा भी नहीं है; वे इधर-उधर बंट जाने वाले हैं। फिर किसलिए ये सौ रुपये मांग लिए हैं?
गुरजिएफ ने कभी कहा कि जिन लोगों के मन में सिर्फ रुपये का मूल्य है उन्हें परमात्मा के संबंध में मुफ्त कहना गलत है--एकदम गलत है। क्योंकि उनकी जिंदगी में मुफ्त चीज का कोई मूल्य नहीं होता। और गुरजिएफ कहता कि हर चीज के लिए चुकाना पड़ेगा कुछ। जो चुकाने की तैयारी नहीं रखता, कुछ भी चुकाने की तैयारी नहीं रखता, उसको पाने का हक भी नहीं है।
लेकिन लोग समझते कि गुरजिएफ को पैसे पर बड़ी पकड़ है। जो दूर से ही देखते हैं उनको तो लगता ही कि पैसे की बड़ी पकड़ है, बिना पैसे के सवाल का जवाब भी नहीं देता है।
पर मैं मानता हूं कि जिस जगह वह था, पश्चिम में, जहां पैसा एकमात्र मूल्य हो गया, वहां उसी तरह के शिक्षक की जरूरत थी। एक-एक शब्द का मूल्य ले लेना। क्योंकि वह जानता है, जिस शब्द के लिए तुमने सौ रुपये दिए हैं, तुमने सौ रुपये देने की तैयारी दिखाई है जिस शब्द के लिए, तुम उसको ही ले जाओगे, बाकी तुम कुछ ले जाने वाले नहीं हो।
गुरजिएफ बहुत से ऐसे काम करेगा जो बिल्कुल ही कठिन मालूम पड़ेंगे। उसके शिष्य बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे, वे कहेंगे, यह आप न करते तो अच्छा था। और वह जान कर करेगा। वह बैठा है, आप उससे मिलने गए हैं, वह ऐसी शक्ल बना लेगा कि ऐसा लगे कि जैसे ठीक गुंडा-बदमाश है। साधु तो बिल्कुल नहीं है। बहुत दिन तक सूफी प्रयोग करने की वजह से आंखों के कोण को वह तत्काल कैसा भी बदल सकता था। और आंखों के कोण के बदलने से पूरी शक्ल बदल जाती है। एक गुंडे में और एक साधु में आंख के अलावा और कोई फर्क नहीं होता। बाकी तो सब एक सा ही होता है। पर आंख का कोण जरा ही बदला कि सब साधु गुंडा हो जाता है, गुंडा साधु हो जाता है। आंखें उसकी बिल्कुल ढीली थीं दोनों। आंखों को वह कैसा ही, उनकी पुतलियां कैसे ही कोण ले सकती थीं। यह एक सेकेंड में, इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता था। यह बगल वाले को पता ही नहीं चलेगा कि उसने दूसरे को गुंडा दिखा दिया है, यह बगल वाले को पता ही नहीं चलेगा कि उसने एक आदमी को घबरा दिया है। और बगल वाला आदमी घबरा गया कि यह आदमी कैसा है! मैं कहां आ गया!
उसके मित्रों ने जब धीरे-धीरे पकड़ा कि वह इस तरह कई लोगों को परेशान करता है तो उन्होंने कहा कि आप यह क्या करते हैं? हमें पता ही नहीं चलता कि वह बेचारा आया था, आपने उसे ऐसा... ।
तो गुरजिएफ कहता कि वह आदमी, अगर मैं साधु भी होता तो मुझ में गुंडा खोज लेता। थोड़ी देर लगती। मैंने उसका वक्त जाया नहीं करवाया। मैंने कहा, तू देख ले, तू जा। क्योंकि तू नाहक दो-चार दिन चक्कर लगाएगा, खोजेगा तू

यही। मैं तुझे खुद ही सौंपे देता हूं। अगर वह इसके बाद भी रुक जाता तो मैं उसके साथ मेहनत करता।
इसलिए बहुत मुश्किल मामला है। जो गुरजिएफ को गुंडा समझ कर चला गया है,
अब कभी दोबारा नहीं आएगा। लेकिन गुरजिएफ का जानना गहरा है। वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है, यह आदमी यही खोज लेता। इसको खुद मेहनत करना पड़ती। वह काम मैंने हल कर दिया। इसके चार दिन खराब नहीं हुए और मेरे चार दिन खराब नहीं हुए। अगर यह सच में ही किसी खोज में आया था, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था, यह फिर भी रुकता। यह मेरे बावजूद रुके तो ही रुका, मेरी वजह से रुके तो मैं इसको रुकना नहीं कहूंगा। यह खोजने आया हो तो रुके, धैर्य रखे, थोड़ी जल्दी न करे। इतने जल्दी नतीजे लेगा कि मेरी आंख जरा ऐसी हो गई तो इसने समझा कि आदमी गड़बड़ है, इतने जल्दी नतीजे लेगा तो मुझमें कुछ न कुछ इसे मिल जाएगा जिसमें वह नतीजे लेकर चला जाएगा।
अब यह एक-एक शिक्षक के साथ होगा कि वह क्या करता है, कैसे करता है।
बहुत बार तो जिंदगी भर पता नहीं चलता कि उसके करने की व्यवस्था क्या है।
पर वह जिंदगी के प्रत्येक क्षण का उपयोग करता है--जन्म से लेकर मृत्यु तक।
एक भी क्षण व्यर्थ नहीं है। उसकी कोई गहरी सार्थकता है, किसी बड़े प्रयोजन और किसी बड़ी नियति में उपयोग है।
"मैं कहता आंखन देखी" : अंतरंग भेंट-वार्ता

मैं कहता आंखन देखी
चौथा प्रवचन

धर्म की गति और तेज हो!

ओशो, उस समयातीत अंतराल में आत्मा पर क्या घटित होता है वह तो दर्शाया आपने, किंतु यह बात रह गई कि उस आत्मा का अशरीरी रूप क्या होता है? वह स्थिर होती है या विचरण करती है? और अपनी परिचित दूसरी आत्माओं को पहचानती कैसे है? और उस अवस्था में आपस में कोई डायलाग की भी संभावना होती है?

इस संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में लेनी चाहिए। एक तो स्थिरता और गति दोनों ही वहां नहीं होतीं। और इसलिए समझना बहुत कठिन होगा। हमें समझना आसान होता है कि गति न हो, तो स्थिरता होगी। स्थिरता न हो, तो गति होगी। क्योंकि हमारे ख्याल में गति और स्थिरता दो ही संभावनाएं हैं। और एक न हो तो दूसरा अनिवार्य है। हम यह भी समझते हैं कि ये दोनों एक-दूसरे से विरोधी हैं।
पहली तो बात, गति और स्थिरता विरोधी नहीं हैं। गति और स्थिरता एक ही चीज की तारतम्यताएं हैं। जिसको हम स्थिरता कहते हैं वह ऐसी गति है जो हमारी पकड़ में नहीं आती। जिसको हम गति कहते हैं वह भी ऐसी स्थिरता है जो हमारे ख्याल में नहीं आती। तो पहली तो बात गति और स्थिरता दो विरोधी चीजें नहीं हैं। बहुत तीव्र गति हो तो भी स्थिर मालूम होगी।
यह ऊपर पंखा है, यह तेज गति से चलता हो तो इसकी तीन पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़ती हैं। बहुत तेज चले तो संभावना ही नहीं है अनुमान करने की कि कितनी पंखुड़ियां हैं! क्योंकि बीच की जो खाली जगह है तीन पंखुड़ियों के, इसके पहले कि वह हमें दिखाई पड़े, पंखुड़ी उस जगह को भर देती है। यह पंखा इतनी तेज गति से भी चलाया जा सकता है कि हम इसके आर-पार किसी चीज को भी न निकाल सकें। यह इतना भी तेज चल सकता है कि हम इसको हाथ से छुएं और इसकी गति न मालूम पड़े। जब हम किसी चीज को हाथ से छूते हैं, अगर बीच का जो खाली हिस्सा है वह हमारे हाथ के स्पर्श के पकड़ने से पहले दूसरी पंखुड़ी फिर नीचे आ जाए तो हमें पता नहीं चल सकेगा। इसलिए विज्ञान कहता है कि हर चीज जो हमें थिर मालूम पड़ रही है वह सब गतिमान है। पर गति बहुत तीव्र है। हमारी पकड़ के बाहर है। तो गति और थिर होना दो चीजें नहीं हैं। और एक ही चीज की डिग्रीज हैं। उस जगत में जहां शरीर नहीं है दोनों नहीं होंगी। क्योंकि जहां शरीर नहीं है वहां स्पेस भी नहीं है, टाइम भी नहीं है। जैसा हम जानते हैं, ऐसा कोई स्थान भी नहीं है, कोई समय भी नहीं है। समय और स्थान के बाहर किसी भी चीज को सोचना हमें अति कठिन है। क्योंकि हम ऐसी कोई चीज नहीं जानते जो समय और स्थान के बाहर हो।
तो वहां क्या होगा अगर दोनों न हों?
तो हमारे पास कोई शब्द नहीं है जो कहे कि वहां क्या होगा। जब पहली दफा धर्म के अनुभव में उस स्थिति की खबरें आनी शुरू हुईं तब भी यह कठिनाई खड़ी हुई। कहें क्या? ऐसे ठीक समानांतर उदाहरण विज्ञान के पास भी हैं जहां कठिनाई खड़ी हो गई कि कहें क्या? जब भी हमारी धारणाओं से भिन्न कोई स्थिति का अनुभव होता है तो बड़ी कठिनाई खड़ी होती है।
जैसे कि पिछले चालीस साल पहले जब पहली दफा इलेक्ट्रान का अनुभव विज्ञान को हुआ तो सवाल उठा कि इलेक्ट्रान कण है या तरंग? और बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। क्योंकि न तो उसे कण कह सकते, कण तो ठहरा हुआ होता है; तरंग गतिमान होती है। वह दोनों एक साथ है। तब सिर घूम जाता है, क्योंकि हमारी समझ में इन दोनों में से एक ही हो सकता है। और इलेक्ट्रान दोनों एक साथ है-- कण भी और तरंग भी। कभी हमारी पकड़ में आता है कि वह कण है और कभी हमारी पकड़ में आता है कि वह तरंग है। और तब शब्द ही नहीं था दुनिया की किसी भाषा में कण-तरंग इकट्ठा कि जिसे हम प्रकट कर सकें। और जब वैज्ञानिकों ने यह कहा तो वैज्ञानिक खुद कहने तो लगे कि कण-तरंग दोनों है, लेकिन उनके लिए भी कंसीवेबल नहीं रहा है। रहस्य हो गई बात! और जब आइंस्टीन से लोगों ने कहा कि आप दोनों बातें एक साथ कहते हैं जो कि तर्क में नहीं आती हैं; ये तो बड़ी

रहस्य की बातें हो गई हैं। तो आइंस्टीन ने कहा कि हम तर्क को मानें कि तथ्य को मानें। तथ्य यही है कि वह दोनों है एक साथ और तर्क यही कहता है कि दो में से एक ही हो सकता है।
अब एक आदमी खड़ा हुआ है या चल रहा है। तर्क कहेगा, दो में से एक ही हो सकता है। आप कहें कि वह खड़ा भी है और चल भी रहा है--एक साथ। तर्क नहीं मानेगा, तर्क के पास कोई धारणा नहीं है। लेकिन इलेक्ट्रान के अनुभव ने वैज्ञानिकों को कहा कि अब तर्क की फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी, क्योंकि या तो तथ्य को झुठलाओ! सारे प्रयोग कहते हैं कि वह दोनों है। यह मैंने उदाहरण के लिए आपको कहा।
सारे धार्मिक लोगों के अनुभव कहते हैं कि वह स्थिति दोनों नहीं है--न ठहरी हुई है, न गतिमान है। लेकिन जो भी यह कहेगा कि दोनों नहीं है अंतराल का क्षण, एक शरीर के छूटने और दूसरे शरीर के मिलने के बीच के क्षण में दोनों नहीं हैं, वह समझ के बाहर हो जाएगा। इसलिए कुछ धर्मों ने तय किया कि वे कहेंगे कि वह थिर है; कुछ धर्मों ने तय किया कि वे कहेंगे कि वह गतिमान है। लेकिन यह सिर्फ समझाने की कठिनाई का परिणाम है। अन्यथा कोई इस बात के लिए राजी नहीं है कि वहां स्थिति को, स्थिति कहें कि गति कहें। दोनों नहीं कहे जा सकते। क्योंकि जिस परिवेश में स्थिति और गति घटित होती हैं, वह परिवेश ही वहां नहीं है। स्थिति और गति दोनों के लिए शरीर अनिवार्य है। शरीर के बिना गति नहीं हो सकती। और शरीर के बिना स्थिति भी नहीं हो सकती। क्योंकि जिसके माध्यम से स्थिति हो सकती है, उसी के माध्यम से गति हो सकती है।
अब जैसे यह हाथ है मेरा, मैं इसे हिला रहा हूं या इसे ठहराए हुए हूं।
कोई मुझसे पूछ सकता है कि इस हाथ के भीतर जो मेरी आत्मा है, जब हाथ नहीं रहेगा तो वह आत्मा ठहरी हुई रहेगी कि गति में रहेगी? दोनों बातें व्यर्थ हैं। क्योंकि इस हाथ के बिना न वह गति कर सकती है और न ठहरी हुई हो सकती है।
ठहरना और गति दोनों ही शरीर के गुण हैं। शरीर के बाहर ठहरने और गति का कोई भी अर्थ नहीं है।
ठीक यही बात समस्त द्वंद्वों पर लागू होगी। बोलने या मौन होने पर। शरीर के बिना न तो बोला जा सकता और न मौन हुआ जा सकता। आमतौर से हमारी समझ में आ जाएगी यह बात कि शरीर के बिना बोला नहीं जा सकता; लेकिन मौन नहीं हुआ जा सकता, यह समझ में आनी कठिन पड़ेगी। क्योंकि हम सोचते हैं शरीर के लिए मौन... । लेकिन असली बात यह है कि जिस माध्यम से बोला जा सकता है उसी माध्यम से मौन हुआ जा सकता है। क्योंकि मौन होना भी बोलने का एक ढंग है। मौन होना बोलने की ही एक अवस्था है--न बोलने की है, लेकिन है बोलने की ही।
जैसे उदाहरण के लिए, एक आदमी है, अंधा है। तो हमें ख्याल होता है कि शायद उसको अंधेरा दिखाई देता होगा। वह हमारी भ्रांति है। अंधेरा देखने के लिए भी आंख जरूरी है। आंख के बिना अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। पर हम आंख बंद करके सोचते हों तो हम गलती में पड़ते हैं। क्योंकि आंख बंद करके भी आंख है, आप अंधे नहीं हैं। और अगर एक दफा आपके पास आंख रही हो और फिर अंधी हो जाए, तो भी आपको अंधेरे का ख्याल रहेगा, जो कि झूठ है, जो कि जन्म से अंधे आदमी को नहीं है। क्योंकि अंधेरा जो है, वह आंख का ही अनुभव है। जिससे प्रकाश का अनुभव होता है, उसी से अंधकार का भी अनुभव होता है। तो जो जन्मांध है, उसे अंधेरे का भी कोई पता नहीं है। अंधेरा भी जानेगा कैसे? कान से आप सुनते हैं। भाषा में ठीक लगता है कि जिसके पास कान नहीं हैं,
हम कहेंगे कि तुम मत कहो, वह नहीं सुन रहा है। लेकिन नहीं सुनने की घटना भी नहीं घटती है बहरे के लिए। नहीं सुनने की भी जो प्रतीति है, वह कान वाले की प्रतीति है। कभी ऐसा होता है कि आप नहीं सुनते हैं। पर वह कान उसके लिए भी जरूरी है। कान के बिना "नहीं सुनने" का भी कोई पता नहीं चल सकता है। वह अंधेरे की तरह है।
तो जिस इंद्रिय से गति होती है, उसी इंद्रिय से ठहराव होता है। और दो में से एक भी चीज नहीं है तो दूसरी भी नहीं होगी। तो वैसी अवस्था में आत्मा बोलती है या चुप रहती है, दोनों ही बातें संभव नहीं हैं। उपकरण ही नहीं है बोलने का या चुप रहने का। ये सब उपकरण-निर्भर घटनाएं हैं। इन दोनों के लिए

उपकरण चाहिए। जगत के समस्त अनुभव के लिए उपकरण चाहिए, साधन चाहिए, इंद्रिय चाहिए।
जहां भी शरीर नहीं है, वहां शरीर से संबंधित समस्त अनुभव तिरोहित हो जाते हैं। फिर वहां कुछ बचेगा? अगर आपके जीवन में कोई भी, शरीर के भीतर रहते हुए अशरीरी अनुभव हुआ हो, तो बचेगा। अन्यथा कुछ भी नहीं बचेगा। अगर आप के जीते जी, शरीर के रहते हुए, कोई भी अनुभव हुआ हो जिसके लिए शरीर माध्यम नहीं था, वह बचेगा।
ध्यान के कोई भी अनुभव हों गहरे, तो वे बचेंगे। साधारण अनुभव नहीं बचेंगे ध्यान के, ध्यान में आपको प्रकाश दिखाई पड़ा, वह नहीं बचेगा। लेकिन ध्यान में अगर कोई ऐसा अनुभव हुआ हो जिसमें शरीर ने कोई माध्यम का काम ही नहीं किया था, आप कह सकते थे कि शरीर था या नहीं यह भी मुझे कोई संबंध नहीं रह गया था, तो बच जाएगा। पर ऐसे अनुभव के लिए कोई भाषा नहीं है। शरीर रहते हुए भी हो, तो भी भाषा नहीं है। ये सारी कठिनाइयां हैं।
फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि वैसी आत्मा मोक्ष में पहुंच गई, क्योंकि ये दोनों विवरण एक जैसे लगेंगे। फिर मोक्ष में और दो शरीरों के बीच में जो अंतराल है, इसमें क्या भेद रहा? भेद पोटेंशियलिटी के, बीज के रहेंगे। वास्तविकता के नहीं रहेंगे। दो शरीरों के बीच में जो अशरीरी व्यवधान है बीच का, उसमें आपके जितने संस्कार हैं समस्त जन्मों के, वे बीज-रूप में सब मौजूद रहेंगे। शरीर के मिलते ही वे फिर सक्रिय हो जाएंगे। जैसे एक आदमी के पैर हमने काट दिए, तो भी उसके दौड़ने के जो अनुभव हैं वे विदा नहीं हो जाएंगे। दौड़ नहीं सकता, रुक भी नहीं सकता, क्योंकि दौड़ नहीं सकता तो रुकेगा कैसे! लेकिन अगर पैर मिल जाएं तो दौड़ने की समस्त संस्कार-धारा पुनः सक्रिय हो जाएगी।
जैसे एक आदमी कार चलाता है। लेकिन कार छीन ली। तो अब कार नहीं चला सकता, एक्सीलरेटर नहीं दबा सकता; लेकिन ब्रेक भी नहीं लगा सकता, कार रोक भी नहीं सकता; वे दोनों ही कार के अनुभव थे। अब वह कार के बाहर है। लेकिन कार के चलाने का जो भी अनुभव है, वह सब बीज-रूप में मौजूद है। वर्षों बाद, एक्सीलरेटर पर पैर रखेगा, कार चला सकेगा।
मोक्ष में संस्कार-रहित हो जाता है। दो शरीरों के बीच में सिर्फ इंद्रिय-रहित होता है। मोक्ष में समस्त अनुभव, समस्त अनुभवजन्य संस्कार, सब कर्म, सब तिरोहित हो जाते हैं। उनकी निर्जरा हो जाती है। इस बीच और मोक्ष की अवस्था में एक समानता है--दोनों में शरीर नहीं होता। एक असमानता है--मोक्ष में शरीर नहीं होता, शरीर से संबंधित अनुभवों का जाल भी नहीं होता। यहां शरीर से संबंधित अनुभवों की सब सूक्ष्म तरंगें बीज-रूप से मौजूद होती हैं, जो कभी भी सक्रिय हो सकती हैं। और इस बीच जो-जो अनुभव होंगे, वह शरीर जहां नहीं था, वैसे अनुभव होंगे। जैसे मैंने कहा कि ध्यान के अनुभव होंगे।
लेकिन ध्यान के अनुभव तो बहुत कम लोगों के हैं। कभी करोड़ में एक आदमी
को ध्यान के अनुभव हैं। शेष का क्या कोई अनुभव नहीं होगा?
अनुभव होंगे--स्वप्न के अनुभव। स्वप्न में शरीर की कोई इंद्रिय काम नहीं करती। इस बात की संभावना है कि अगर हम एक आदमी जो स्वप्न में हो, और उसे स्वप्न में ही रखे हुए उसके सारे शरीर को काट कर अलग कर दें, तो आवश्यक नहीं है कि उसके स्वप्न में जरा सा भी भंग पड़े। कठिनाई है कि उसकी नींद टूट जाएगी। काश, हम उसे नींद में रख सकें और उसके एक-एक अंग को अलग करते चले जाएं, तो उसके स्वप्न में कोई भंग नहीं होगा। क्योंकि शरीर का कोई हिस्सा उसके स्वप्न में कोई अनिवार्य कारण नहीं है। स्वप्न में शरीर बिल्कुल सक्रिय नहीं है, शरीर का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। स्वप्न के अनुभव आपके शेष रहेंगे। बल्कि आपके समस्त अनुभव स्वप्न का ही रूप लेकर शेष रहेंगे। अगर कोई आपसे पूछे कि स्वप्न में आप थिर होते हैं कि गतिमान होते हैं?
तो कठिनाई होगी। स्वप्न में थिर होते हैं कि गतिमान होते हैं? स्वप्न से जाग कर तो यह अनुभव होता है कि अपनी जगह पर पड़े हुए हैं, थिर, स्वप्न के भीतर। लेकिन स्वप्न के बाहर आकर पता लगता है कि स्वप्न में तो बड़ी गति थी। स्वप्न में गति भी नहीं होती। अगर बहुत ठीक से समझें तो स्वप्न में आप भागीदार भी नहीं होते, बहुत गहरे में सिर्फ साक्षी होते हैं। इसलिए

स्वप्न में अपने को मरता हुआ भी देख सकते हैं। स्वप्न में अपनी लाश को पड़े हुए भी देख सकते हैं। और स्वप्न में अगर आप अपने को चलता भी देखते हैं, तो भी जिसे आप चलता देखते हैं वह सिर्फ स्वप्न होता है, आप तो देखने वाले ही होते हैं। स्वप्न को अगर ठीक से समझें तो आप सिर्फ विटनेस होते हैं स्वप्न में।
इसीलिए धर्म ने एक सूत्र खोज निकाला कि जो व्यक्ति जगत को स्वप्न-भांति देखने लगे, वह परम अनुभूति को उपलब्ध हो जाएगा। इसलिए जगत को माया और स्वप्न कहने वाली चिंतनाएं पैदा हुईं। राज उनका यही है कि अगर जगत को हम सपने की भांति देखने लगें तो हम साक्षी हो जाएंगे। सपने में कभी भी कोई पार्टिसिपेंट नहीं होता, हमेशा विटनेस होता है। कभी भी, किसी भी स्थिति में आप सपने में पात्र नहीं होते। भला आपको पात्र दिखाई पड़ें आप; लेकिन आप तो वही हैं जिसको दिखाई पड़ता है, आप हमेशा ही देखने वाले होते हैं, दर्शक होते हैं।
तो जितने अनुभव होंगे, बीज होंगे, शरीर-रहित होंगे, स्वप्न जैसे होंगे। जिनके अनुभव दुख को निर्मित किए हैं वे नरक के स्वप्न देखेंगे, नाइटमेयर्स देखेंगे। जिनके अनुभव सुख को अर्जित किए हैं, वे स्वर्ग देखते रहेंगे, सुखद होंगे सपने उनके। लेकिन ये सब सपने जैसे अनुभव होंगे। कभी-कभी इसमें और घटनाएं भी घटेंगी। उन घटनाओं के अनुभव में भेद पड़ेगा। कभी-कभी ऐसा होगा कि ये जो आत्माएं न गतिमान हैं, न चलित हैं, ये आत्माएं कभी-कभी किन्हीं शरीरों में प्रवेश कर जाएंगी। अब यह भाषा की ही भूल है कहना कि ये प्रवेश कर जाएंगी। उचित होगा ऐसा कहना कि कभी-कभी कोई शरीर इनको अपने में प्रवेश दे देगा।
इन आत्माओं का लोक कुछ हमसे भिन्न नहीं है। ठीक हमारे निकट और पड़ोस में है। ठीक हम एक ही जगत में अस्तित्ववान हैं। यहां इंच-इंच जगह भी आत्माओं से भरी हुई है। यहां जो हमें खाली जगह दिखाई पड़ती है वह भी भरी हुई है।
अगर कोई भी शरीर किसी गहरी रिसेप्टिव हालत में हो, और दो तरह से शरीर-- दूसरे लोगों के शरीर--ग्राहक अवस्था में होते हैं। या तो बहुत भयभीत अवस्था में। जितना भयभीत व्यक्ति हो, उसकी खुद की आत्मा उसके शरीर में भीतर सिकुड़ जाती है। सिकुड़ जाती है मतलब शरीर के बहुत हिस्सों को छोड़ देती है खाली। उन खाली जगहों में पास-पड़ोस की कोई भी आत्मा ऐसे बह सकती है जैसे गड्ढे में पानी बह जाता है। तब इसको जो अनुभव होते हैं वे ठीक वैसे ही हो जाते हैं जैसे शरीरधारी आत्मा को होते हैं। या बहुत गहरी प्रार्थना के क्षण में कोई आत्मा प्रवेश कर सकती है। बहुत गहरी प्रार्थना के क्षण में भी आत्मा सिकुड़ जाती है।
लेकिन भय की अवस्था में केवल वे ही आत्माएं सरक कर भीतर प्रवेश कर सकती हैं जो दुख-स्वप्न देख रही हैं। जिन्हें हम बुरी आत्माएं कहें, वे प्रवेश कर सकती हैं। क्योंकि भयभीत व्यक्ति बहुत ही कुरूप और गंदी स्थिति में है। उसमें कोई श्रेष्ठ आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती। और भयभीत व्यक्ति गड्ढे की भांति है, जिसमें नीचे उतरने वाली आत्माएं ही प्रवेश कर सकती हैं।
प्रार्थना से भरा हुआ व्यक्ति शिखर की भांति है, जिसमें सिर्फ ऊपर चढ़ने वाली आत्माएं प्रवेश कर सकती हैं। और प्रार्थना से भरा हुआ व्यक्ति इतनी आंतरिक सुगंध से और सौंदर्य से भर जाता है कि उनका रस तो केवल बहुत श्रेष्ठ आत्माओं को हो सकता है। वे भी निकट में हैं। तो जिसको इनवोकेशन कहते हैं, आह्वान कहते हैं, प्रार्थना कहते हैं, उसमें भी प्रवेश होता है, लेकिन श्रेष्ठतम आत्माओं का। उस समय अनुभव ठीक वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि शरीर में हुए, इन दोनों अवस्थाओं में।
तो जिनको देवताओं का आह्वान कहा जाता रहा है, उसका पूरा विज्ञान है।
वे देवता कहीं आकाश से नहीं आते हैं। जिन्हें भूत-प्रेत कहा जाता रहा, वे भी किन्हीं नरकों से, किन्हीं प्रेत-लोकों से नहीं आते हैं। वे सब मौजूद हैं, यहीं! असल में एक ही स्थान पर मल्टी-डायमेंशनल एक्झिस्टेंस है। एक ही बिंदु पर बहुआयामी अस्तित्व है। अब जैसे यह कमरा है, यहां हम बैठे हैं। हवा भी है यहां। यहां कोई धूप जला दे तो सुगंध भी भर जाएगी यहां। यहां कोई

गीत गाने लगे तो ध्वनि-तरंगें भी भर जाएंगी यहां। धूप का कोई भी कण ध्वनि- तरंग के किसी भी कण से नहीं टकराएगा। इस कमरे में संगीत भी भर सकता है, प्रकाश भी भरा है। लेकिन प्रकाश की कोई तरंग संगीत की किसी तरंग से टकराएगी नहीं। और न संगीत के भरने से प्रकाश की तरंगों को बाहर निकलना पड़ेगा कि जगह खाली करनी पड़े।
असल में इसी स्थान को ध्वनि की तरंगें एक आयाम में भरती हैं, और प्रकाश की तरंगें दूसरे आयाम में भरती हैं, वायु की तरंगें तीसरे आयाम में भरती हैं। और इस तरह के हजार आयाम इसी कमरे को हजार तरह से भरते हैं। एक-दूसरे में कोई बाधा नहीं पड़ती। एक-दूसरे को एक-दूसरे के लिए कोई स्थान खाली नहीं करना पड़ता। इसलिए स्पेस जो है वह मल्टी-डायमेंशनल है।
यहां हमने एक टेबल रखी है। अब दूसरी टेबल नहीं रख सकते इस जगह। क्योंकि एक टेबल और दूसरी टेबल एक ही आयाम में बैठती हैं। तो इस टेबल को रख दिया तो इस स्थान पर--इसी टेबल के स्थान पर--दूसरी टेबल नहीं रख सकते। वह इसी आयाम की है। लेकिन दूसरे आयाम का अस्तित्व इस टेबल से कोई बाधा नहीं पाएगा।
ये सारी आत्माएं ठीक हमारे निकट हैं। और कभी भी इनका प्रवेश हो सकता है। जब इनके प्रवेश होंगे तब जो इनके अनुभव होंगे वे ठीक वैसे ही हो जाएंगे जैसे शरीर में प्रवेश पर होते हैं।
दूसरी बात, जब ये व्यक्तियों में प्रवेश कर जाएं तब ये वाणी का उपयोग
कर सकते हैं। तब संवाद संभव है। इसलिए आज तक पृथ्वी पर कोई प्रेत या कोई देव प्रत्यक्ष और सीधा कुछ भी संवादित नहीं कर पाया है। लेकिन ऐसा नहीं है कि संवाद नहीं हुए हैं। संवाद हुए हैं। और देवलोक या प्रेतलोक के संबंध में, स्वर्ग और नरक के संबंध में जो भी हमारे पास सूचनाएं हैं वे काल्पनिक लोगों के द्वारा नहीं हैं, वे इन लोकों में रहने वाले लोगों के ही द्वारा हैं। लेकिन किसी के माध्यम से हैं।
इसलिए बहुत पुराने दिनों से जो व्यवस्था थी वह यह थी--जैसे कि वेद हैं--तो वेद का कोई ऋषि नहीं कहेगा कि हम इनके लेखक हैं। वे हैं भी नहीं। इसमें कोई विनम्रता कारण नहीं है कि वे विनम्रतावश कहते हैं कि हम लेखक नहीं हैं। इसमें तथ्य है। ये जो-जो कही गई हैं बातें, ये उन्होंने कही नहीं हैं, किसी और आत्मा ने उनके द्वारा कहलवाई हैं। और यह अनुभव इतना साफ होता है, जब कोई और आत्मा तुम्हारे भीतर प्रवेश करके बोलेगी तब यह अनुभव इतना साफ है, क्योंकि तुम पूरी तरह जानते हो कि तुम अलग बैठे हो, और तुम बोल ही नहीं रहे हो, और कोई और ही बोल रहा है। तुम भी सुनने वाले हो, बोलने वाले नहीं हो। बाहर से तो पता चलाना मुश्किल होगा, लेकिन बाहर से भी जो लोग ठीक से कोशिश करें तो बाहर से भी पता चलेगा। क्योंकि आवाज का ढंग बदल जाएगा, टोन बदल जाएगी, शैली बदल जाएगी, भाषा भी बदल जा सकती है। और उस व्यक्ति को तो भीतर बहुत ही साफ मालूम पड़ेगा।
अगर प्रेत आत्मा प्रवेश की है तो शायद वह इतना भयभीत हो जाए कि मूर्च्छित हो जाए। लेकिन अगर देव आत्मा प्रवेश की है तो वह इतना जागरूक होगा जितना कि कभी भी नहीं था; और तब स्थिति बहुत साफ उसे दिखाई पड़ेगी। तो जिनमें प्रेतात्माएं प्रवेश करेंगी वे तो प्रेतात्माओं के जाने के बाद ही कह सकेंगे कि कोई हममें प्रवेश कर गया। वे इतने भयभीत हो जाएंगे कि मूर्च्छित हो जाएंगे। लेकिन जिनमें दिव्य आत्मा प्रवेश करेगी, वे उसी क्षण भी कह सकेंगे कि यह कोई और बोल रहा है, यह मैं नहीं बोल रहा। ये दो आवाजें एक ही उपकरण उपयोग करेगा, जैसे एक ही माइक्रोफोन का दो आदमी एक साथ उपयोग कर रहे हों। एक चुप खड़ा रह जाए और दूसरा बोलना शुरू कर दे।
तो शरीर की इंद्रियों का ऐसा उपयोग हो तब संवाद हो पाता है। इसलिए देवताओं के, प्रेतों के संबंध में जो भी उपलब्ध है जगत में, वह संवादित है, वह कहा गया है। और तो जानने का कोई उपाय नहीं है, जानने का वही उपाय है। और इन सबके पूरे के पूरे विज्ञान निर्मित हो गए थे। और जब विज्ञान पूरा होता है तो बड़ी आसानी हो जाती है। तब हम चीजों को समझ-बूझ पूर्वक उपयोग कर सकते हैं। जब विज्ञान नहीं होता तो समझ-बूझ पूर्वक उपयोग नहीं करते, कभी घटनाएं घटती हैं। तो इनका ठीक विज्ञान तय हो गया था। जैसे एक व्यक्ति प्रवेश कर गया, कोई दिव्य आत्मा किसी में प्रवेश कर गई आकस्मिक रूप से, तो धीरे-धीरे

इसका विज्ञान निर्मित कर लिया गया कि किन परिस्थितियों में वह दिव्य आत्मा प्रवेश करती है। वे परिस्थितियां अगर पैदा की जा सकें तो वह फिर प्रवेश कर सकेगी।
अब जैसे कि मुसलमान लोबान जलाएंगे। वह किन्हीं विशेष दिव्य आत्माओं
के प्रवेश करने के लिए सुगंध के द्वारा वातावरण निर्मित करना है। या हिंदू धूप जलाएंगे, या घी के दीये जलाएंगे। ये आज सिर्फ औपचारिक हैं, लेकिन कभी उनके कारण थे। एक विशेष मंत्र बोलेंगे। विशेष मंत्र इनवोकेशन बन जाता है। इसलिए जरूरी नहीं है कि मंत्र में कोई अर्थ हो, अक्सर नहीं होगा। क्योंकि अर्थ वाले मंत्र विकृत हो जाते हैं। अर्थहीन मंत्र विकृत नहीं होते। अर्थ में आप कुछ और भी प्रवेश कर सकते हैं। समय के अनुसार उसका अर्थ बदल सकता है। लेकिन अर्थहीन मंत्र में आप कुछ भी प्रवेश नहीं कर सकते हैं, समय के अनुसार कोई अर्थ नहीं बदलता।
इसलिए जितने गहरे मंत्र हैं वे अर्थहीन हैं, मीनिंगलेस हैं। उसमें कोई अर्थ नहीं है जिसमें कि युग के अनुसार कोई फर्क पड़ेगा। सिर्फ ध्वनियां हैं। और ध्वनि-उच्चारण की एक विशेष व्यवस्था है, उसी ढंग से उसका उच्चारण होना चाहिए। उतनी ही चोट, उतनी ही तीव्रता, उतना उतार, उतना चढ़ाव, उतनी चोट होने पर वह आत्मा तत्काल प्रवेश हो सकेगी। या वह आत्मा खो गई होगी तो उस जैसी कोई आत्मा प्रवेश हो सकेगी।
सारी दुनिया के धर्मों के जो मंत्र हैं, जैसे कि जैनों का नमोकार है, उसके पांच हिस्से हैं और प्रत्येक हिस्से पर जो इनवोकेशन है, जो आह्वान है, वह गहरा होता जाता है। प्रत्येक पद पर आह्वान गहरा होता जाता है। और गहरी आत्माओं के लिए होता चला जाता है। और साधारणतः जैसा लोग समझते हैं, जैसा आज चलता है, कि पूरे नमोकार को पढ़ेंगे--वह ठीक स्थिति नहीं है। जिसे पहले पद से संबंध जोड़ना है उसको पहले पद को ही दोहराना चाहिए। बाकी चार को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। उस पर ही जोर देना चाहिए। क्योंकि उस पद से संबंधित आत्माएं बिल्कुल अलग हैं।
जैसे, नमो अरिहंताणम्। उसमें अरिहंत के लिए नमस्कार। अब "अरिहंत" विशेष रूप से जैनों का शब्द है। जिसने अपने समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया, अरिहंत का अर्थ है। "अरि" का अर्थ है शत्रु और "हंत" जिसने मार डाला। तो वह ऐसी आत्मा के लिए पुकार है जो अपनी इंद्रियों को बिल्कुल ही समाप्त करके विदा हुई है। यह उस आत्मा के लिए पुकार है जिसका सिर्फ एक ही जन्म हो सकता है। यह एक ही पद को दोहराना है एक विशेष ध्वनि और चोट के साथ।
यह बहुत स्पेसिफिक पुकार है, विशेष पुकार है। इस पुकार के द्वारा इतर जैन दिव्य आत्मा से संबंध नहीं होगा। यह एक पारिभाषिक शब्द है, जो सिर्फ जैन दिव्य आत्मा से संबंध जुड़ा पाएगा। इसमें क्राइस्ट से संबंध नहीं हो सकता। इसमें आकांक्षा नहीं है। इसमें बुद्ध से संबंध नहीं हो सकता। यह पारिभाषिक शब्द है और यह पारिभाषिक आत्मा के लिए पुकार है। ठीक ऐसे, अलग-अलग पूरे पांच हिस्सों में पांच अलग तरह की आत्माओं के लिए पुकार है। अंतिम जो पुकार है, नमो लोए सव्व साहूणं, वह समस्त साधुओं को नमस्कार है। उसमें विशेष पुकार नहीं है। उसमें साधु आत्मा मात्र के लिए आह्वान है। उसमें जैन और इतर जैन का प्रश्न नहीं है। उसमें कोई भी साधु आत्मा से संबंध जोड़ने की आकांक्षा है। वह बड़ी जनरलाइज्ड पुकार है। कोई विशेष निमंत्रण नहीं है उसमें।
सारी दुनिया के धर्मों के पास ऐसे मंत्र हैं जिनसे संबंध जोड़ा जाता रहा। और तब वे शक्ति-मंत्र बन गए। और बड़ी उनकी बीज-महत्ता हो गई। वे नाम की तरह हैं। जैसे आपका नाम रख दिया राम। फिर राम की आवाज दी तो आप चौकन्ने हो गए। ऐसे ही सारे मंत्र हैं। प्रेतात्माओं के लिए भी वैसे ही मंत्र हैं। और दोनों का अपना शास्त्र है। व्यक्ति तो खोते चले जाएंगे, आत्माएं बदलती चली जाएंगी, लेकिन तालमेल खाती आत्माएं सदा उपलब्ध रहेंगी जिनसे संबंध जोड़ा जा सके। इस स्थिति में संवाद हो सकता है।
अब जैसे मोहम्मद को... इसलिए मोहम्मद ने कभी नहीं कहा, मोहम्मद ने सदा यही कहा कि मैं सिर्फ पैगंबर हूं, सिर्फ पैगाम दे रहा हूं--मैसेंजर। क्योंकि मोहम्मद को कभी ऐसा नहीं लगा कि जो वे दे रहे हैं वह उनका है। इतनी साफ आवाज ऊपर से आई, जिसे मुसलमान इलहाम कहते हैं, रिवील हुआ--कि कोई और

भीतर प्रवेश कर गया और बोलना शुरू कर दिया। खुद मोहम्मद को भरोसा नहीं आया कि यह जो मैं बोल रहा हूं, कोई मेरी मानेगा। क्योंकि कभी मैं यह बोला नहीं, मेरा कोई परिचय नहीं है लोगों से ऐसा। लोग जानते नहीं हैं कि मैं इस तरह की बात बोल सकता हूं, इसलिए कोई मेरा मानने वाला नहीं है।
इसलिए मोहम्मद डरे हुए घर लौटे। और रास्ते में बचे हुए घर आए कि कहीं किसी से बोल न दें, अन्यथा अविश्वास के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि पीछे कोई भी तो आधार नहीं है, पृष्ठभूमि नहीं है। तो जाकर पहले सिर्फ अपनी पत्नी को कहा। और उससे भी कहा कि तुझे भरोसा हो तो करना, नहीं भरोसा हो तो मत करना। और तुझे भरोसा आ जाए तो फिर मैं किसी और को कहूं, अन्यथा मैं न कहूं। क्योंकि जो हुआ है, जो आया है, वह ऊपर से आया है। वह कोई बोल गया है। वह मेरी नहीं है आवाज! सिर्फ शब्द मेरे हैं, बोल कोई और रहा है। पत्नी को भरोसा आया, तो फिर और निकट के किसी को कहा।
मूसा के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ। वाणी उतरी।
यह जो वाणियों का उतरना है, वह किसी और बड़ी दिव्य आत्मा के द्वारा किसी का प्रयोग करना है। हर किसी का प्रयोग नहीं हो सकता। उसी का प्रयोग हो सकता है जो इतना वीहिकल, वाहन बनने की पवित्रता में हो। छोटी घटना नहीं है, उतनी पात्रता तो चाहिए ही, उतनी पवित्रता चाहिए, तब संवाद हुआ है। संवाद तो हो सकता है, लेकिन तब दूसरे के शरीर का उपयोग करना पड़ेगा।
अभी इस तरह की कोशिश कृष्णमूर्ति के साथ चली, जो कि असफल हुई।
बुद्ध का एक अवतार होने की बात है--मैत्रेय। बुद्ध ने कहा है कि मैं मैत्रेय के नाम से एक बार और लौटूंगा। पर बहुत वक्त हो गया, ढाई हजार साल हो गए हैं। और ऐसी प्रतीति है कि कोई योग्य गर्भ उपलब्ध नहीं हो रहा है। और मैत्रेय जन्म लेना चाहता है, लेकिन कोई योग्य गर्भ उपलब्ध नहीं है। तब एक दूसरी कोशिश करने की व्यवस्था की गई कि गर्भ अगर नहीं मिल सकता है तो कोई व्यक्ति को विकसित किया जाए और उस व्यक्ति के माध्यम से वह बोल डाले।
तो इसके लिए बड़ा आयोजन चला। सारी थियोसाफी का पूरा का पूरा आंदोलन सिर्फ एक काम के लिए निर्मित हुआ कि वह इतना काम कर दे, पूरा आंदोलन, कि एक ऐसे व्यक्ति को खोज कर तैयार कर दे सब तरह से कि वह वीहिकल बन जाए। मोहम्मद से जो आत्मा संदेश देना चाहती थी उसको यह तकलीफ नहीं हुई, वीहिकल बनाना नहीं पड़ा, तैयार मिला। मूसा से जिस आत्मा ने संदेश दिया उसको भी वाहन बनाने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ी, वाहन मिल गया। बहुत सरल युग थे। वाहन मिलना कठिन नहीं था। अहंकार इतना कम था कि इतनी विनम्रता से समर्पण हो सकता था कि कोई दूसरा उसका उपयोग कर ले शरीर का और कोई हट जाए बिल्कुल ऐसे जैसे है ही नहीं। अब यह असंभव हो गया। इंडिविजुअलिटी प्रगाढ़ है। व्यक्ति-अहंकार भारी है। कोई इंच भर नहीं हट सकता। तो कठिन है मामला। तो व्यक्ति तैयार कर लिया जाए।
तो थियोसाफिस्ट्स ने तीन-चार छोटे बच्चों को चुना, क्योंकि पक्का भरोसा नहीं है कि किस बच्चे का भविष्य क्या हो जाए। उसमें कृष्णमूर्ति को चुना, उनके एक भाई नित्यानंद को चुना। कृष्ण मेनन को भी पीछे चुना। एक और व्यक्ति जार्ज अरंडेल को भी चुना। नित्यानंद की तो मृत्यु हुई अति चेष्टा करने से, दुर्घटना हुई। नित्यानंद पर इतनी चेष्टा की गई--कृष्णमूर्ति के भाई पर--कि वह ठीक माध्यम बन जाए मैत्रेय का संदेश देने का। उस चेष्टा में ही उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु से भी कृष्णमूर्ति को इतना धक्का पहुंचा कि उनके भी माध्यम बनने में बाधा पड़ी। उसकी मृत्यु उस पूरे प्रयोग में हुई।
कृष्णमूर्ति को नौ साल की उम्र में एनी बीसेंट और लीड बीटर ने लिया। लेकिन यह मजे का खेल है, जगत एक बड़ा ड्रामा है। और छोटी शक्तियों का खेल नहीं, बड़ी शक्तियों का खेल है। और जब मैत्रेय की आत्मा की संभावना बढ़ने लगी कि हो सकता है कृष्णमूर्ति से उतर जाए, तो जिस आत्मा ने, देवदत्त नाम के व्यक्ति ने, जिसने बुद्ध का जीवन भर विरोध किया, बुद्ध के जीवन में बुद्ध की हत्या की अनेक कोशिशें कीं, बुद्ध का चचेरा भाई था, उसकी आत्मा कृष्णमूर्ति के पिता पर हावी हो गई। और एक मुकदमा चला जो प्रिवी कौंसिल तक गया।

यह बात कभी नहीं कही गई है, यह मैं पहली दफा कह रहा हूं। कृष्णमूर्ति
के पिता के द्वारा यह दावा करवाया गया कि उसके बच्चे को जबरदस्ती इन लोगों ने कब्जा कर लिया है और वह वापस चाहते हैं। नाबालिग बच्चा है। एनी बीसेंट ने जी-जान लगा कर वह संघर्ष किया। फिर भी नियमानुसार वह जीत नहीं सकती थी। क्योंकि नाबालिग बच्चे थे और बाप का हक था। अगर बच्चे भी कहें तो भी कोई बात नहीं थी, क्योंकि वे नाबालिग थे, उनकी बात का कोई मतलब नहीं हो सकता था।
इसलिए कृष्णमूर्ति को लेकर हिंदुस्तान के बाहर भाग जाना पड़ा। इधर मुकदमा चलाया गया, उधर लेकर भाग गए। इधर मुकदमा चला, इधर से हारी एनी बीसेंट। लेकिन तब तक कृष्णमूर्ति को बाहर निकाल लिया गया। फिर वह सुप्रीम कोर्ट में चला, वहां से भी एनी बीसेंट हारी। क्योंकि वह तो कानूनन मामला था। देवदत्त के हाथ में ज्यादा ताकत थी। और अक्सर ऐसा होता है कि बुरे आदमियों के हाथ में कानून अक्सर सहयोगी हो जाता है। क्योंकि अच्छा आदमी तो बहुत कानून की फिक्र नहीं करता। बुरे आदमी कानून का पहले इंतजाम कर लेते हैं। फिर वह प्रिवी कौंसिल में गया। लेकिन प्रिवी कौंसिल ने, सब कानून को तोड़ कर प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया कि वह एनी बीसेंट के पास रहे। इसके लिए कोई प्रिसीडेंट नहीं था। यह बिल्कुल न्यायोचित नहीं थी घटना। इसके लिए कोई नियम नहीं था, यह बिल्कुल ही गैर-कानूनी था फैसला। लेकिन प्रिवी कौंसिल के ऊपर तो कोई उपाय नहीं था।
यह निर्णय भी मैत्रेय की आत्मा के द्वारा ही संभव हुआ, नहीं तो संभव नहीं हो सकता था। और इसीलिए छोटी कोर्ट्स में इसकी कोशिश नहीं की गई, क्योंकि उनके ऊपर बड़ी कोर्ट्स थीं। आखिरी कोर्ट में ही उपयोग किया गया। छोटी अदालतों में इसका उपयोग करना बेकार था, क्योंकि बड़ी अदालत से वह फिर हार हो जाती। इसलिए आखिरी अदालत के लिए रोक कर रखा गया।
यह नीचे के तल पर तो एक खेल था, जो इधर दिखाई पड़ रहा था, अखबारों में चल रहा था, अदालतों में मुकदमा लड़ा जा रहा था। लेकिन ऊपर के तल पर भी शक्तियों का एक संघर्ष था। फिर कृष्णमूर्ति पर जितनी मेहनत की गई, इतनी शायद ही कभी किसी व्यक्ति पर की गई है। व्यक्तियों ने खुद की है अपने ऊपर, इससे भी ज्यादा मेहनत की है, लेकिन दूसरे लोगों ने किसी पर इतनी मेहनत की हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। पर सारी मेहनत के बावजूद भी बात बिगड़ गई, और ऐन वक्त पर। जिस दिन थियोसाफिस्ट्स ने सारी दुनिया से छह हजार लोगों को हालैंड में इकट्ठा कर रखा था और जिस दिन घोषणा होने वाली थी कि कृष्णमूर्ति उस दिन अपने व्यक्तित्व को छोड़ देंगे और मैत्रेय के व्यक्तित्व को स्वीकार कर लेंगे। सारी तैयारियां हो गई थीं। आखिरी इंच की घोषणा थी, एक बिंदु की बात थी, कि मंच पर खड़े होकर वह कहेंगे कि अब मैं कृष्णमूर्ति नहीं हूं, बस इतनी ही घोषणा बाकी थी। सारी भीतरी तैयारी पूरी थी कि वे इतना कह देंगे कि अब मैं कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व को इनकार करता हूं और खाली बैठ जाएंगे, ताकि मैत्रेय की आत्मा प्रवेश हो जाए और बोलना शुरू कर दे।
सारी दुनिया से छह हजार लोग जो समझते थे और उत्सुक थे और प्यासे थे, वे इकट्ठे हुए थे दूर-दूर से आकर इस घटना को देखने के लिए--मैत्रेय की आवाज को सुनने के लिए। यह बहुत अनूठी घटना होने वाली थी। लेकिन ऐन वक्त पर कुछ नहीं हुआ। और कृष्णमूर्ति ने इनकार कर दिया। देवदत्त फिर धक्का दिया। और वह जो प्रिवी कौंसिल में नहीं हो सका था वह अंततः आखिरी अदालत में हार गया मामला। देवदत्त फिर धक्का दिया और ऐन वक्त पर इनकार करवा दिया कि मैं कोई शिक्षक नहीं हूं, मैं कोई जगतगुरु नहीं हूं, किसी की आत्मा से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं मैं हूं और जो मुझे कहना था वह कह दिया।
बहुत बड़ा प्रयोग असफल हुआ है। पर एक अर्थ में पहला ही प्रयोग था उस तरह का, और असफल होने की ही ज्यादा संभावना थी। उस तल पर आत्माएं संवाद नहीं कर सकती हैं, जब तक वे किसी के शरीर को न ग्रहण कर लें। और बीच में उनकी कोई प्रगति नहीं होती। इसीलिए मनुष्य-जन्म फिर अनिवार्य है। आज कोई मरा और सौ साल तक वह अशरीरी हालत में रहे, तो इस सौ साल में किसी तरह का विकास नहीं होता। वह जहां मरा था पिछले जन्म में, ठीक वहीं से नये जन्म में प्रवेश करेगा, चाहे कितने ही समय बाद प्रवेश करे। यह विकास का काल नहीं

है। ठीक वैसे ही जैसे रात जहां आप सोते हैं, सुबह आप वहीं उठते हैं। नींद कोई विकास का काल नहीं है।
इसलिए अगर बहुत से धर्म नींद के खिलाफ हो गए तो उसका कारण था, और उसको
कम करने में लग गए। क्योंकि वह विकास का काल नहीं है, उसमें कोई विकास नहीं होता। जहां आप थे, सुबह आप वहीं उठते हैं। ऐसे ही दो शरीरों के बीच में, जहां से आप मरे थे, वहीं आप जन्मते हैं। आपकी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता। बिल्कुल ऐसे जैसे हमने एक घड़ी बंद कर दी अभी और जब हम दुबारा शुरू करेंगे तो वह वहीं से शुरू हो जाएगी जहां हमने बंद की थी। बीच में सब विकास अवरुद्ध है।
इसलिए कोई भी देव-योनि से मोक्ष नहीं जा सकता। देव-योनि से मोक्ष न जाने का कुल कारण इतना ही है कि देव-योनि में कोई कर्म-योनि नहीं है। आप कुछ कर नहीं सकते हैं। कुछ हो नहीं सकता। सपने देख सकते हैं, अंतहीन सपने देख सकते हैं। तो मनुष्य होने लौटना ही पड़े।

परिचय नहीं हो सकता दो आत्माओं का? एक-दूसरे की पहचान?

परिचय की जहां तक बात है, दो प्रेतात्माएं भी अगर परिचित होना चाहें
तो भी दो व्यक्तियों में प्रवेश करके ही परिचित हो सकती हैं। सीधी परिचित नहीं हो सकतीं। करीब-करीब ऐसी हालत है, जैसे हम बीस आदमी इस कमरे में सो जाएं। तो हम बीस रात भर यहीं होंगे, लेकिन नींद में हम परिचित नहीं हो सकते। हमारे जो परिचय हैं वे जागने के ही होंगे। जब हम जागेंगे तो फिर कंटीन्यू हो जाएंगे, लेकिन नींद में हम परिचित नहीं हो सकते। हमारा कोई संबंध नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि एक आदमी जाग जाए, इसमें एक आदमी जाग जाए, वह सबको देख ले।
इसका मतलब यह है कि अगर एक आत्मा किसी के शरीर में प्रवेश कर जाए, तो
वह आत्मा इन सारी आत्माओं को देख सकती है। फिर भी वे आत्माएं उसे नहीं देखेंगी। और अगर एक आत्मा किसी के शरीर में प्रवेश कर जाए तो वह दूसरी आत्माओं को, जो कि अशरीरी हैं, उनके बाबत कुछ जान सकती है। लेकिन वे आत्माएं उसके बाबत कुछ भी नहीं जान सकतीं।
असल में जानना जो है, परिचय जो है, वह भी जिस मस्तिष्क से संभव होता है
वह भी शरीर के साथ ही विदा हो जाता है। हां, कुछ संभावनाएं फिर भी शेष रह जाती हैं जो कि हो सकती हैं। जैसे अगर किसी व्यक्ति ने जीते-जी मस्तिष्क-मुक्त टेलीपैथी या क्लेअरवायंस के संबंध निर्मित किए हों, किसी व्यक्ति ने जीते-जी मस्तिष्क के बिना जानने के मार्ग निर्मित कर लिए हों, तो वह प्रेत या देव योनि में भी जान सकेगा। पर ऐसे तो बहुत कम लोग हैं। इसलिए जिन आत्माओं ने कुछ खबरें दी हैं उस लोक की आत्माओं के बाबत, वे इस तरह की आत्माएं हैं।
यह करीब-करीब स्थिति ऐसी है कि जैसे बीस आदमी शराब पी लें, सब बेहोश हो जाएं, लेकिन एक आदमी ने शराब पीने का इतना अभ्यास किया हो कि वह कितनी ही शराब पी ले और बेहोश न हो, तो वह शराब पीकर भी होश में बना रहे। और जो व्यक्ति शराब पीकर भी होश में बना रह सकता है, वह शराब के अनुभव के संबंध में कुछ कह सकता है जो बेहोश रहने वाले नहीं कह सकते। कभी नहीं कह सकते, क्योंकि वे जानने के पहले ही बेहोश हो गए होते हैं।
तो इस तरह के भी छोटे-छोटे संगठन काम करते रहे हैं दुनिया में जो कुछ लोगों को तैयार करते हैं कि वे मरने के बाद जो लोक होगा, उस लोक के संबंध में कुछ जानकारी दे सकें। जैसे लंदन में एक छोटी सी संस्था थी। जिसके कुछ बड़े-बड़े लोग--ओलिवर लाज जैसे लोग सदस्य थे। जिन्होंने पूरी कोशिश की, ओलिवर लाज मरा, तो उन्होंने पूरी चेष्टा की कि मरने के बाद वह खबर दे सके। लेकिन बीस साल तक मेहनत करने पर भी कोई खबर न मिल सकी। ऐसी संभावना मालूम होती है कि ओलिवर लाज ने बहुत कोशिश की, क्योंकि कुछ और आत्माओं ने खबर दी कि ओलिवर लाज पूरी कोशिश कर रहा है, लेकिन कोई ट्यूनिंग नहीं बैठ पाई। बीस साल निरंतर, बहुत दफा ओलिवर लाज ने खटखटाया उन लोगों को, जिनसे उसने वायदा किया था कि मैं खबर दे दूंगा। मैं मरते से ही पहला काम यह करूंगा कि कुछ खबर दे दूं। उसकी सारी तैयारी करवाई गई थी कि वह खबर दे

सकेगा। जैसे नींद में सोए हुए आदमी को वह--हड़बड़ा कर, घबड़ा कर उसका साथी बैठ जाएगा। उसे लगेगा कि ओलिवर लाज कहीं पास में है। और फिर बस बात खतम हो जाएगी।
ट्यूनिंग नहीं बैठ पाई। ओलिवर लाज तैयार गया, लेकिन कोई दूसरा आदमी तैयार नहीं था इस योग्य, जो ओलिवर लाज कुछ कहे तो उसे पकड़ ले। बीस साल वह निरंतर चेष्टा करता रहा। न मालूम कितनी दफे रास्ते में अकेले में कोई जा रहा है, एकदम कोई कंधे पर हाथ रख देगा। मित्र, जो कि ओलिवर लाज के हाथ के स्पर्श को जानते थे, वे एकदम चौंक कर कहेंगे--लाज! लेकिन बस फिर बात खो जाएगी। इसकी बहुत, बीस साल--उसके साथी तो सब घबरा गए और परेशान हो गए कि यह क्या हो रहा है! लेकिन कोई संदेश, एक भी संदेश नहीं दिया जा सका। संदेश कुछ नहीं हो सका, हालांकि उसने द्वार बहुत खटखटाए।
दोहरी तैयारी चाहिए। अगर टेलीपैथी का ठीक अनुभव हुआ हो जीते-जी, बिना शब्द के बोलने की क्षमता आई हो, बिना आंख के देखने की क्षमता आई हो, तो फिर उस योनि में भी उस तरह का व्यक्ति बहुत चीजें जान सकेगा। जानना भी सिर्फ हमारे होने पर निर्भर नहीं होता।
जैसे हम एक बगीचे में जाएं, और एक वनस्पति-शास्त्री भी उस बगीचे में जाए, और एक कवि भी उस बगीचे में जाए, और एक दुकानदार भी उस बगीचे में जाए, एक छोटा बच्चा भी उस बगीचे में जाए। वे सब एक ही बगीचे में जाते हैं। लेकिन एक ही बगीचे में नहीं जाते! बच्चा तितलियों के पीछे भागने लगता है। दुकानदार बैठ कर अपनी दुकान की बात सोचने लगता है। उसे न फूल दिखाई पड़ते हैं, न बगीचा दिखाई पड़ता है। कवि फूलों में अटक जाता है, और कविताओं में खो जाता है। वनस्पति-शास्त्री कुछ जानता है जिसकी उसकी ट्रेनिंग है भारी--पचास साल या बीस साल या तीस साल उसने वनस्पति की जो जानकारी ली है, वह उससे बोलना शुरू कर देगी। वह एक-एक जड़, एक-एक पत्ते और एक-एक फूल में उसे दिखाई पड़ने लगता है बहुत कुछ, जो इनमें से किसी को दिखाई नहीं पड़ सकता।
तो उस लोक में, जो ऐसे ही मर जाते हैं इस जीवन में शरीर के अतिरिक्त बिना कुछ जाने, उनका तो कोई परिचय, कोई संबंध, कुछ नहीं हो पाता। वे तो एक कोमा में, एक गहरी तंद्रा में पड़े रह कर नये जन्म की प्रतीक्षा करते हैं। लेकिन जो कुछ तैयारी करके जाते हैं वे... ।
इसकी तैयारी के भी शास्त्र हैं। और मरने के पहले अगर कोई वैज्ञानिक ढंग से मरे, विज्ञानपूर्वक मरे, और मरने की पूरी तैयारी करके मरे, पूरा पाथेय लेकर, मरने के बाद के पूरे सूत्र लेकर कि क्या-क्या करेगा, तो बहुत काम कर सकता है। विराट अनुभव की संभावनाएं वहां हैं। लेकिन साधारणतः नहीं। साधारणतः आदमी मरा, अभी जन्म जाए कि वर्षों बाद जन्मे, वह इस बीच से कुछ भी लेकर, कुछ भी करके नहीं आता है। और सीधे संवाद की कोई संभावना नहीं है। कोई संभावना नहीं है।

इधर कुछ समय से मैं ऐसा महसूस कर रहा हूं कि आप किसी जल्दी में हैं। वह जल्दी क्या है, यह जानने में असमर्थ हूं। लेकिन जल्दी है जरूर, और इसकी पुष्टि होती है इधर जनवरी और फरवरी महीनों में अपने कुछ प्रेमियों को लिखे गए आपके पत्रों से। प्रश्न उठता है कि जिस करुणावश आपको जन्म धारण करना पड़ा, क्या वह कार्य आप पूरा कर चुके हैं? यदि पूरा कर चुके हैं तो आपके उस कथन का क्या होगा जिसमें आपने कहा था कि मैं गांव-गांव चुनौती देते हुए घूमूंगा और मुझे कोई आंख मिल जाएगी जो दीया बन सकती है, तो मैं उस पर अपना पूरा श्रम करूंगा। मरते वक्त मैं कहीं यह न कहूं कि सौ आदमियों को खोजता था, वे मुझे नहीं मिले!

जल्दी है। जल्दी दो-तीन कारणों से है। एक तो कितना भी समय हो, तो भी सदा कम है। कितना ही समय हो और कितनी ही शक्ति हो, तो भी सदा कम है। क्योंकि काम सदा सागर जैसा है। शक्ति, समय, अवसर, सब चुल्लुओं जैसा है। और बुद्ध हों कि महावीर, कृष्ण हों कि क्राइस्ट, चुल्लू से ज्यादा मेहनत नहीं हो पाती। और काम सदा सागर जैसा है। इसलिए जल्दी तो सदा ही है। यह तो सामान्य जल्दी है जो होगी। दूसरे भी एक कारण से जल्दी है।

कुछ समय तो बहुत थिर होते हैं, जहां चीजें बहुत मंद गति से चलती हैं। जितने हम पीछे जाएंगे, उतना ही मंद गति से चलने वाला समय था। कुछ युग अति तीव्र होते हैं, जहां चीजें बहुत तीव्रता से जाती हैं। आज हम ऐसे ही समय में हैं जहां चीजें इतनी तीव्रता में हैं, जहां सब चीजें तीव्रता में हैं, जहां कोई भी चीज थिर नहीं है। धर्म अगर पुराने ढंग और पुरानी चालों से चले तो पिछड़ जाएगा और पिट जाएगा। जब विज्ञान भी बहुत धीमी गति से चलता था, दस हजार साल हो जाते थे और बैलगाड़ी में कोई फर्क नहीं पड़ता था। बैलगाड़ी ही होती थी। लोहार के औजार में कोई फर्क नहीं पड़ता था, वह वही औजार होता था। सब चीजें ऐसे चलती थीं जैसे कि नदी बहुत आहिस्ता सरकती है कि कहीं पता ही न चलता हो कि नदी सरकती भी है। किनारे करीब-करीब वही के वही होते थे। तब धर्म भी इतनी ही गति से चलता था, तो तालमेल था। धर्म अभी भी उसी गति से चलता है। और सब चीजें बहुत तीव्रता में हैं। तो धर्म अगर पिछड़ जाए और लोगों के पैर से उसका कोई तालमेल न रह जाए तो आश्चर्य नहीं है।
तो इसलिए भी जल्दी है। जितनी तीव्रता से जगत का पौद्गलिक ज्ञान बढ़ता
है और जितनी तीव्रता से विज्ञान कदम भरता है, उतनी ही तीव्रता से, बल्कि थोड़ा उससे भी ज्यादा धर्म को गति करनी चाहिए। क्योंकि धर्म जब भी आदमी से पीछे पड़ जाए तभी आदमी का नुकसान होता है। धर्म आदमी से सदा थोड़ा आगे होना चाहिए। क्योंकि आदर्श सदा ही थोड़ा आगे होना चाहिए। नहीं तो आदर्श का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वास्तविकता से आदर्श सदा ही थोड़ा आगे, पार जाने वाला होना चाहिए।
यह एक बहुत बुनियादी फर्क है। अगर हम राम के जमाने में जाएं तो धर्म सदा आदमी से आगे है। और अगर हम आज अपने जमाने में आएं तो आदमी सदा धर्म से आगे है। तो आज सिर्फ वही आदमी धार्मिक हो पाता है, जो बहुत पिछड़ा हुआ आदमी है। उसका कारण है। क्योंकि धर्म से सिर्फ उसके ही पैर मिल पाते हैं। जितना विकासमान है आज आदमी, उसका धर्म से संबंध छूट जाएगा--या औपचारिक संबंध रह जाएगा जो वह दिखावे के लिए रखेगा। धर्म होना चाहिए आगे।
अब यह कितनी हैरानी की बात है कि अगर हम बुद्ध और महावीर के जमाने को देखें तो उस युग के जो श्रेष्ठतम लोग हैं वे धार्मिक हैं और अगर हम आज के धार्मिक आदमी को देखें तो हमारे बीच का जो निकृष्टतम आदमी है वही धार्मिक है। उस जमाने में जो अग्रणी है, चोटी पर है, वह धार्मिक है; और आज जो बिल्कुल ग्रामीण है, पिछड़ा हुआ है, वही धार्मिक है। बाकी कोई धार्मिक नहीं है। उसका कारण है। धर्म आदमी से आगे कदम नहीं बढ़ा पा रहा है। इसलिए भी जल्दी है।
फिर इसलिए भी जल्दी है कि कुछ समय इमरजेंसी के होते हैं, आपातकालीन होते हैं। जैसे जब आप कभी अस्पताल की तरफ जा रहे होते हैं तब आपकी चाल वही नहीं होती जो आपकी दुकान की तरफ जाने की होती है। वह चाल आपातकालीन है, इमरजेंसी की है।
आज करीब-करीब हालत ऐसी है कि अगर धर्म कोई बहुत प्राणवान आंदोलन जगत में पैदा नहीं कर पाया तो पूरी मनुष्यता भी नष्ट हो सकती है। तो समय बिल्कुल इमरजेंसी का है, अस्पताल की तरफ जाने जैसा है। जहां कि हो सकता है कि हमारे पहुंचने के पहले मरीज मर जाए, हमारे औषधि लाने के पहले मरीज मर जाए, हमारा निदान हो और मरीज मर जाए।
इसका कोई व्यापक परिणाम धार्मिक चिंतकों पर नहीं है। यद्यपि धार्मिक चिंतकों की बजाय सारी दुनिया की नयी पीढ़ी पर और विशेषकर विकसित मुल्कों की नयी पीढ़ी पर इसका बहुत सीधा परिणाम हुआ है। और वह परिणाम यह हुआ है कि आज अगर अमरीका के युवक को मां-बाप यह कहें कि तू यूनिवर्सिटी में पढ़ ले दस साल, पढ़ लेगा तो अच्छी नौकरी मिल जाएगी। तो युवक यह कहता है कि क्या इस बात की गारंटी है कि दस साल बाद मैं बचूंगा या यह आदमियत बचेगी? और मां-बाप के पास जवाब नहीं है। कल का भरोसा सर्वाधिक कम आज अमरीका में है। सर्वाधिक कम! कल बिल्कुल गैर-भरोसे का है। कल होगा भी कि नहीं, इसका कोई पक्का नहीं। इसलिए इतने जोर से आज को ही भोग लेने की आकांक्षा है। यह आकस्मिक नहीं है। यह बहुत तीव्र चारों तरफ साफ स्थिति है कि चीजें कल बिखर सकती हैं बिल्कुल! करीब-करीब ऐसी हालत है जैसे कि मरीज खाट पर पड़ा हो और किसी भी क्षण मर सकता है। ऐसी पूरी आदमियत है।

इसलिए भी जल्दी है कि अगर आपके निदान बहुत धीमे और मद्धिम रहे तो कोई परिणाम होने वाला नहीं है। इसलिए बहुत तीव्रता में मैं हूं कि जो भी हो सकता है वह शीघ्रता से होना चाहिए। और यह जो मैंने कहा कि गांव-गांव घूमूंगा, वह मैं एक अर्थ में अपने हिसाब से घूम लिया हूं। जिन आदमियों पर मेरा ख्याल है, वह मेरा ख्याल आ गया है। अब उन पर काम करने की बात है। बड़ी कठिनाई तो इसलिए होती है कि मेरे ख्याल में कोई आदमी आ जाए इससे उस आदमी के ख्याल में मैं आ जाऊं, यह जरूरी थोड़े ही है। और जब तक उसके ख्याल में मैं न आ जाऊं, तब तक कुछ काम नहीं हो सकता।
काम शुरू भी किया है। और कम आऊंगा-जाऊंगा उसका भी प्रयोजन यही है कि काम कर सकूं। नहीं तो मैं आता ही जाता रहूंगा तो काम नहीं हो पाएगा। और भेजूंगा लोगों को तैयार करके बहुत जल्दी, दो वर्ष में गांव-गांव लोगों को भेज दूंगा। वे बिल्कुल जा सकेंगे। और ऐसी स्थिति नहीं आएगी। सौ नहीं, दस हजार आदमी तैयार किए जा सकेंगे। जो बहुत संकट के काल होते हैं, खतरे के भी होते हैं, संभावना के भी होते हैं। उपयोग न किया जाए तो दुर्घटना हो जाती है। उपयोग कर लिया जाए तो बहुत संभावना के हो जाते हैं। बहुत संभावना का क्षण भी है, बहुत लोगों को तैयार भी किया जा सकता है। बहुत साहस का भी योग है, बहुत से लोगों को बहुत अज्ञात में छलांग के लिए भी तैयार करवाया जा सकता है। वह होगा!
और यह तो जो बाहर की स्थिति है, वह मैंने कही। लेकिन जब भी कोई एक युग ध्वंस के करीब आता है, तब भीतरी तल पर बहुत सी आत्माएं विकास के आखिरी किनारे पर पहुंच गई होती हैं। उनको जरा से धक्के की जरूरत होती है। जरा से इशारे से उनकी छलांग लग सकती है। और जैसे आमतौर से हम जानते हैं कि मौत करीब देख कर आदमी मौत के पार का चिंतन करने लगता है; एक-एक व्यक्ति, निकट जैसे मौत आती है, वैसे धार्मिक होने लगता है। मौत करीब आती है तो सवाल उठने शुरू होते हैं मौत के पार के, अन्यथा जिंदगी इतना उलझाए रखती है कि सवाल नहीं उठते। जब कोई पूरा युग मरने के करीब आता है, तब करोड़ों आत्माओं में भी वे ख्याल भीतर से आने शुरू होते हैं। वह भी संभावना है, उसका उपयोग किया जा सकता है।
इसलिए मैं धीरे-धीरे अपने को बिल्कुल कमरे में ही सिकोड़ लूंगा। मैं आने-जाने को समाप्त ही कर दूंगा। अब तो जो लोग मेरे ख्याल में हैं, उन पर काम शुरू करूंगा। उनको तैयार करके भेजूंगा। और जो मैं अकेला घूम कर नहीं कर सकता हूं, वह मैं दस हजार लोगों को घुमा कर करवा सकूंगा।
और मेरे लिए धर्म बिल्कुल वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो ठीक वैज्ञानिक टेक्नीक के ढंग से सारी चीजें मेरे पास ख्याल में हैं। जैसे-जैसे लोग तैयार होते जाएंगे, उनको वैज्ञानिक टेक्नीक दे देनी है। वे उस टेक्नीक से जाकर काम कर सकेंगे हजारों लोगों पर। मेरी जरूरत नहीं है उसमें। मेरी जरूरत इन लोगों को खोजने के लिए थी। इनसे अब मैं काम ले सकूंगा। मेरी जरूरत कुछ सूत्र निर्मित करने की थी, वे निर्मित हो गए। एक वैज्ञानिक का काम पूरा हो गया। अब टेक्नीशियंस का काम होगा।
एक वैज्ञानिक काम पूरा कर लेता है। उसने बिजली खोज कर रख दी। एक एडिसन
ने बिजली का बल्ब बना दिया। अब तो गांव का मिस्त्री भी बिजली के बल्ब को ठीक कर लेता है और लगा देता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। इसके लिए कोई एडिसंस की जरूरत नहीं है।
अब मेरे पास करीब-करीब पूरा ख्याल है। अब जैसे-जैसे लोग तैयार होते जाएंगे, उनको ख्याल देकर प्रयोग करवा कर उनको भेज दूंगा कि वे जा सकें दूर-दूर। और मेरी नजर में हैं। क्योंकि सभी को संभावनाएं दिखाई नहीं पड़तीं, अधिक लोगों को तो वास्तविकताएं ही दिखाई पड़ती हैं। संभावनाएं देखना बहुत कठिन बात है। संभावनाएं मेरी नजर में हैं। बहुत सरलता से, बुद्ध और महावीर के समय में जैसे बिहार के छोटे से इलाके की स्थिति थी, वैसी दस वर्ष में सारी दुनिया की स्थिति हो सकती है--उतने ही बड़े व्यापक पैमाने पर।
लेकिन बिल्कुल नये तरह का धार्मिक आदमी निर्मित करना पड़ेगा। नये तरह
का संन्यासी निर्मित करना पड़ेगा। नये तरह के ध्यान और योग के प्रयोग और प्रक्रियाएं निर्मित करनी पड़ेंगी। वे सब निर्मित हैं मेरे ख्याल में।

जैसे-जैसे लोग मिलते जाएंगे, उनको दे दिया जाएगा और उनको पहुंचा दिया जाएगा।
खतरा भी बहुत है, क्योंकि अवसर चूके तो बहुत नुकसान भी होगा। अवसर का उपयोग हो सके तो इतना कीमती अवसर मुश्किल से कभी आता है जैसा आज है। सभी अर्थों में युग अपने शिखर पर है, अब आगे उतार ही होगा। अब अमरीका इससे आगे नहीं जा सकेगा, बिखराव होगा। इंग्लैंड छू चुका अपने शिखर को और बिखर गया। अब कोई संभावना नहीं है। इस युग की सभ्यता बिखराव पर है। आखिरी क्षण है। यह हमको ख्याल में नहीं है कि बुद्ध और महावीर के बाद हिंदुस्तान बिखरा। बुद्ध और महावीर के बाद फिर वह स्वर्ण-शिखर नहीं छुआ जा सका। लोग आमतौर से सोचते हैं कि बुद्ध और महावीर की वजह से ऐसा हो गया होगा। बात उलटी है। असल में बिखराव के पहले ही बुद्ध और महावीर की हैसियत के लोग काम कर पाते हैं, नहीं तो काम नहीं कर पाते। क्योंकि बिखराव के पहले जब सब चीजें अस्तव्यस्त होती हैं और सब चीजें गिरने के करीब होती हैं, तो जैसे व्यक्ति के सामने मौत खड़ी हो जाती है, ऐसा पूरी सामूहिक चेतना के सामने मौत खड़ी हो जाती है। और समूहगत चेतना धर्म के और अज्ञात के चिंतन में उतरने के लिए तैयार हो जाती है। इसलिए यह संभव हो पाया कि बिहार जैसी छोटी सी जगह में पचास-पचास हजार संन्यासी महावीर के साथ घूम सके।
यह फिर संभव हो सकता है। इसकी पूरी संभावना है। और उसकी पूरी कल्पना
और योजना मेरे ख्याल में है। मेरा जो काम था वह एक अर्थ में पूरा हो गया। एक अर्थ में पूरा हो गया कि मैं जिन लोगों को खोजना चाहता था, उन्हें मैंने खोज लिया है। उन्हें भी पता नहीं, मैंने उन्हें खोज लिया है। अब उन पर काम कर लेना है और उनको तैयार करके भेज देना है।
इसलिए जल्दी है, इसलिए भी जल्दी है। क्योंकि जब तक मेरा काम था, तब तक मैं बहुत आश्वस्त था, बहुत जल्दी की बात नहीं थी। मैं जानता था क्या मुझे करना है, वह मैं कर रहा था। अब मुझे दूसरों से काम लेना है, अब उतना आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता। जब तक मैं ही कर रहा था कुछ तब तक मुझे ख्याल था कि क्या करना है, बात ठीक थी। अब दूसरों से काम लेना है इसलिए कठिनाई, जटिलता पैदा होती है। और फिर मैं मित्रों को साफ कर ही देना चाहता हूं कि मैं जल्दी में हूं, उन्हें भी जल्दी में होना चाहिए। क्योंकि जिस गति से लोग चलते हुए दिखाई पड़ते हैं, उस गति से वे कहीं नहीं पहुंचने वाले हैं। तो मुझे तीव्रता में देख कर ही उनमें भी तीव्रता आ सकती है, अन्यथा उनमें आ नहीं सकती।
कई बार, जैसे कि जीसस को करना पड़ा। जीसस ने तो कहा कि बहुत जल्दी सब समाप्त होने वाला है। मगर लोग कितने नासमझ हैं, हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। जीसस ने कहा कि बहुत जल्दी सब समाप्त हो जाएगा। तुम अपनी आंखों के सामने देखोगे कि सब नष्ट हो जाएगा। चुनाव का वक्त करीब है। और जो आज नहीं बदलेंगे, उनको बदलने का फिर कोई मौका नहीं बचेगा।
जो सुने, समझे, उन्होंने अपने को बदला। लेकिन अधिक लोग तो पूछने लगे
कि कब आएगा वह समय? देखें? अभी भी ईसाइयत--दो हजार साल बाद--ईसाई पंडित और पुरोहित और थियोलाजियंस बैठ कर विचार कर रहे हैं कि जीसस से कुछ गलती हो गई मालूम होती है। क्योंकि अभी तक तो वह डे ऑफ जजमेंट आया नहीं। वह निर्णय का दिन अभी तक नहीं आया, दो हजार साल हो गए। और जीसस ने कहा था कि अभी, तुम्हारे सामने, अभी यह घटना घट जाएगी। अभी मेरे देखते-देखते चुनाव का वक्त आ जाएगा और जो चूक जाएंगे वे सदा के लिए चूक जाएंगे। तो वह अभी तक नहीं आया। या तो जीसस से कोई भूल हो गई या फिर हमने कुछ समझने में भूल कर दी। कुछ हैं जो कहते हैं कि जीसस को कुछ पता नहीं था, इतनी बड़ी गलती की, इसलिए और भी कुछ पता नहीं होगा। कुछ हैं जो कहते हैं कि कुछ शास्त्र की व्याख्या में भूल हो गई।
लेकिन उनमें से किसी को पता नहीं कि जीसस जैसे लोग जो कहते हैं, उसके प्रयोजन होते हैं। इतनी तीव्रता जीसस ने पैदा की, उस तीव्रता में जो लोग समझ सके वे लोग रूपांतरित हो गए। और आदमी तीव्रता में ही रूपांतरित होता है। नहीं तो रूपांतरित नहीं होता। उसको अगर पता है कि कल हो जाएगा, तो वह आज तो करेगा ही नहीं। वह कहेगा, कल करेंगे। उसे अगर पता है परसों हो जाएगा,

तो वह कहेगा परसों कर लेंगे। उसे अगर पता चल जाए कि कल है ही नहीं, तो ही रूपांतरण की क्षमता आती है।
और एक लिहाज से बिखराव की जो सभ्यताएं होती हैं, जब सभ्यता बिखरती है,
तब कल बहुत संदिग्ध हो जाता है। कल का कोई पक्का नहीं रह जाता। तब आज ही सिकुड़ना पड़ता है हमें। भोगना हो तो भी आज सिकुड़ना पड़ता है और त्यागना हो तो भी आज सिकुड़ना पड़ता है। नष्ट करना हो स्वयं को तो भी आज ही करना पड़ता है, रूपांतरित करना हो तो भी आज ही करना पड़ता है।
तो एक घटना तो घट गई है कि यूरोप और अमरीका भोगने के लिए आज तैयार हो
गए हैं कि जो करना है आज कर लो, कल की फिक्र छोड़ दो। पीना है पी लो, भोगना है भोग लो, चोरी करना है चोरी कर लो, खाना है खा लो। जो करना है, आज कर लो। यह एक घटना घट गई भौतिक तल पर।
मैं चाहता हूं आध्यात्मिक तल पर भी यह घटना घट जानी चाहिए कि जो रूपांतरण करना है वह आज कर लो, अभी कर लो। वह ठीक इसके समानांतर घट सकती है। उसकी तीव्रता में मैं हूं कि वह ख्याल में आना शुरू हो जाए। निश्चय ही, वह पूरब से ही ख्याल आ सकेगा। उसकी हवा पूरब से ही जा सकेगी। पश्चिम उस हवा में जोर से बह सकता है; लेकिन हवा उसकी पूरब से ही जाएगी।
चीजों के पैदा होने का भी स्थान होता है। जैसे सभी वृक्ष सब मुल्कों में नहीं हो जाते हैं। जड़ें होती हैं, जमीन होती है, हवा होती है, पानी होता है। ऐसे ही सभी विचार भी सभी भूमियों में नहीं हो जाते हैं। जड़ें होती हैं, हवा होती है, पानी होता है।
विज्ञान पूरब में पैदा नहीं हो सका। उस वृक्ष के लिए पूरब में जड़ें नहीं हैं। धर्म पूरब में ही पैदा होता रहा है, उसके लिए बड़ी गहरी जड़ें हैं, उसकी हवा बिल्कुल तैयार है, पानी बिल्कुल तैयार है, भूमि बिल्कुल तैयार है। अगर विज्ञान पूरब में आया है, तो वह पश्चिम से ही आया है। अगर धर्म पश्चिम जाएगा, तो वह पूरब से ही जाएगा।
कई बार मुकाबला पैदा हो सकता है। जैसे जापान है। मुल्क पूरब का है, लेकिन विज्ञान में पश्चिम के किसी भी मुल्क से मुकाबला ले सकता है। लेकिन फिर भी मजे की बात है, सिर्फ इमीटेट करता है, कभी भी मौलिक नहीं हो पाता। कितना ही! यानी ऐसा भी कर लेता है इमीटेशन कि जो मूल में था वह भी फीका दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन फिर भी होता इमीटेशन है। फिर भी जापान एक चीज इनवेंट नहीं कर पाता--यानी एक आविष्कार नहीं कर पाता। हां, रेडियो बनाएगा तो वह अमरीका से आगे बनाने लगेगा, लेकिन फिर भी होगी वह नकल। वह नकल में कुशल हो जाएगा। लेकिन होंगे वृक्ष पराए। उनको लगा लेगा, सम्हाल लेगा। लेकिन नये अंकुर उसके पास अपने नहीं आने वाले।
ठीक धर्म के साथ, पश्चिम में आगे जा सकता है अमरीका अभी। अगर पूरब से हवा पहुंच जाए तो वह एक मामले में पूरब को फीका कर सकेगा। लेकिन फिर भी वह नकल होगी। जो इनीशिएटिव है, जो पहला कदम है वह पूरब के हाथ में है।
इसलिए जल्दी ही मैं इस फिक्र में हूं कि पूरब से लोग तैयार किए जाएं
और पश्चिम भी भेजे जा सकें। जोर से वहां आग पकड़ लेगी, लेकिन चिंगारी पूरब से ही जानी है।
"मैं कहता आंखन देखी" : अंतरंग भेंट-वार्ता

मैं कहता आंखन देखी
पांचवां प्रवचन

मंदिर के आंतरिक अर्थ

मंदिर, तीर्थ, तिलक-टीके, मूर्ति-पूजा, माला, मंत्र-तंत्र, शास्त्र-पुराण, हवन-यज्ञ, अनुष्ठान, श्राद्ध, ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष-गणना, शकुन-अपशकुन, इनका कभी अर्थ था, पर अब व्यर्थ हो गए हैं। भगवान श्री, इन्हें समझाने की कृपा करें और बताएं कि क्या ये साधना के बाह्य उपकरण थे? रिमेंबरिंग या स्मरण की मात्र बाह्य व्यवस्था थी, जो समय की तीव्र गति के साथ पूरी की पूरी उखड़ गई? अथवा भीतर से भी इसके कुछ अंतर्संबंध थे? क्या समय इन्हें पुनः लेने को राजी होगा?

जैसे हाथ में चाबी हो, चाबी को हम कुछ भी सीधा जानने का उपाय करें, चाबी से ही चाबी को समझना चाहें, तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता--उस चाबी की खोजबीन से--कि कोई बड़ा खजाना उससे हाथ लग सकता है। चाबी में ऐसी कोई भी सूचना नहीं है जिससे छिपे हुए खजाने का पता लगे। चाबी अपने में बिल्कुल बंद है। चाबी को हम तोड़ें-फोड़ें, काटें--लोहा हाथ लगे, और धातुएं हाथ लग जाएं--उस खजाने की कोई खबर हाथ न लगेगी, जो चाबी से मिल सकता है।
और जब भी कोई चाबी ऐसी हो जाती है जीवन में कि जिसके खजानों का हमें पता नहीं लगता, तब सिवाय बोझ ढोने के हम और कुछ भी नहीं ढोते। और जिंदगी में ऐसी बहुत सी चाबियां हैं जो किन्हीं खजानों का द्वार खोलती हैं--आज भी खोल सकती हैं। पर न हमें खजानों का कोई पता है, न उन तालों का हमें कोई पता है जो उनसे खुलेंगे। और जब तालों का भी पता नहीं होता और खजानों का भी पता नहीं होता, तो स्वभावतः हमारे हाथ में जो रह जाता है उसको हम चाबी भी नहीं कह सकते! वह चाबी तभी है जब किसी ताले को खोलती हो।
जब उससे कुछ भी न खुलता हो, पर फिर भी कभी उस चाबी से खजाने खुले हैं इसलिए बोझिल हो जाती है तो भी मन उसे फेंक देने का नहीं होता। कहीं अचेतन में मनुष्य-जाति के वह धीमी सी गंध बनी ही रह जाती है। चाहे हजारों साल पहले वह चाबी कोई ताला खोलती रही हो, लेकिन मनुष्य की अचेतना में, उससे कभी ताले खुले हैं और कभी कोई खजाने उससे उपलब्ध होते थे, इस स्मृति के कारण ही उस चाबी के बोझ को हम ढोए चले जाते हैं। न कोई खजाना खुलता है अब, न कोई ताला खुलता है! फिर भी कोई कितना ही समझाए कि यह चाबी बेकार है, फेंक देने का साहस भी नहीं जुटता है। कहीं किसी कोने में मन के कोई आशा पलती ही रहती है कि कभी कोई ताला खुल सकता है!
मंदिर है। पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नहीं है जिसने मंदिर जैसी कोई चीज निर्मित न की हो। वह उसे मस्जिद कहती हो, चर्च कहती हो, गुरुद्वारा कहती हो, इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नहीं है जिसने मंदिर जैसी कोई चीज निर्मित न की हो। और आज तो यह संभव है कि हम एक-दूसरी जातियों से सीख लें। एक वक्त था, जब दूसरी जातियां हैं भी, यह भी हमें पता नहीं था। तो मंदिर कोई ऐसी चीज नहीं है, जो बाहर से किन्हीं कल्पना करने वाले लोगों ने खड़ी कर ली हो। मनुष्य की चेतना से ही निकली हुई कोई चीज है। कितने ही दूर, कितने ही एकांत में, पर्वत में, पहाड़ में, झील पर बसा हुआ मनुष्य हो, उसने मंदिर जैसा कुछ जरूर निर्मित किया है। तो मनुष्य की चेतना से ही कुछ निकल रहा है। अनुकरण नहीं है; एक-दूसरे को देख कर कुछ निर्मित नहीं हो गया है। इसलिए विभिन्न तरह के मंदिर बने, लेकिन मंदिर बने। बहुत फर्क है एक मस्जिद में और एक मंदिर में। उनकी व्यवस्था में बहुत फर्क है। उनकी योजना में बहुत फर्क है। लेकिन आकांक्षा में फर्क नहीं है, अभीप्सा में फर्क नहीं है।
तो एक तो जो चीज, मनुष्य कहीं भी हो, कितना ही दूसरों से अपरिचित हो, पैदा होती ही है, वह मनुष्य की चेतना में ही कहीं कोई बीज छिपाए है, एक तो बात यह ख्याल में ले लेने जैसी है। दूसरी बात यह भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि हजारों साल हो जाते हैं, न तालों का पता रह जाता है, न खजानों का, लेकिन फिर भी जिस किसी चीज को हम किसी बिल्कुल अनजाने मोह से ग्रसित हो

लिए चलते हैं; जिस पर हजार आघात होते हैं, बुद्धि जिसको सब तरफ से तोड़ने चलती है; युग का, आज का बुद्धिमान जिसे सब तरह से इनकार करता है; फिर भी मनुष्य का मन उसे सम्हाले ही चलता है, इस सबके बावजूद। तो उसके पीछे दूसरी बात स्मरण रख लेनी जरूरी है कि मनुष्य की अचेतना में कहीं, आज उसे ज्ञात नहीं है तो भी, कहीं कोई गूंजती सी धुन जरूर है जो कहती है कि कभी कोई ताला खुलता था।
अचेतना में इसलिए कि हममें से कोई भी नया पैदा हो गया हो, ऐसा नहीं है। हममें से सभी अनेक बार पैदा हो चुके हैं। ऐसा कोई युग न था जब हम न हों। ऐसी कोई घड़ी न थी जब हम न हों। उस दिन जो हमारी चेतना थी, उस दिन जो हमने चेतन जाना था, वह आज हजारों पर्तों के भीतर दबा हुआ अचेतन बन गया है। उस दिन अगर हमने मंदिर का रहस्य जाना था और उससे हमने किसी द्वार को खुलते देखा था, तो आज भी हमारे अचेतन के किसी कोने में वह स्मृति दबी पड़ी है। बुद्धि लाख इनकार कर दे, लेकिन बुद्धि उतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी गहरी वह स्मृति है। इसलिए सब आघातों के बावजूद और सब तरह से व्यर्थ दिखाई पड़ने के बावजूद भी कुछ चीजें हैं कि परसिस्ट करती हैं, हटतीं नहीं। नये रूप लेती हैं, लेकिन जारी रहती हैं। यह तभी संभव होता है जब कि हमारे अनंत जन्मों की यात्रा में अनंत-अनंत बार किसी चीज को हमने जाना है, यद्यपि आज भूले हैं। और इनमें से प्रत्येक का बाह्य उपकरण की तरह तो उपयोग हुआ ही है, आंतरिक अर्थ भी हैं, अभिप्राय भी हैं।
पहले तो मंदिर को बनाने की जो जागतिक कल्पना है समस्त जगत में, सिर्फ मनुष्य है जो मंदिर बनाता है। घर तो पशु भी बनाते हैं, घोंसले तो पक्षी भी बनाते हैं, लेकिन मंदिर नहीं बनाते। मनुष्य की जो भेद-रेखा खींची जाए पशुओं से, उसमें यह भी लिखना ही पड़ेगा कि वह मंदिर बनाने वाला प्राणी है। कोई दूसरा मंदिर नहीं बनाता। अपने लिए आवास तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है। अपने रहने की जगह तो कोई भी बनाता है। छोटे-छोटे कीड़े भी बनाते हैं, पक्षी भी बनाते हैं, पशु भी बनाते हैं। लेकिन परमात्मा के लिए आवास मनुष्य का जागतिक लक्षण है। परमात्मा के लिए भी आवास, उसके लिए भी कोई जगह बनाना! परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मंदिर नहीं बनाया जा सकता। फिर परमात्मा का गहन बोध भी खो जाए तो मंदिर बचा रहेगा, लेकिन बनाया नहीं जा सकता बिना बोध के। आपने एक अतिथि-गृह बनाया घर में, वह अतिथि आते रहे होंगे तभी। अतिथि न आते हों तो आप अतिथि-गृह नहीं बनाने वाले हैं। हालांकि यह हो सकता है कि अब अतिथि न आते हों तो अतिथि-गृह खड़ा रह जाए।
तो परमात्मा के लिए एक आवास की धारणा उन क्षणों में पैदा हुई जब परमात्मा सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी, सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी, अनेक लोगों के अनुभव की बात थी। और परमात्मा के अवतरण की जो प्रक्रिया थी, उसके उतरने की, उसके लिए एक विशेष आवास, एक विशेष स्थान, जहां परमात्मा अवतरित हो सके, पृथ्वी के हर कोने पर आवश्यक अनुभव हुआ।
प्रत्येक चीज के अवतरण में, आग्रहण में, रिसेप्टिव होने में एक संयोजन है। अभी भी हमारे पास से रेडियो वेव्स गुजर रही हैं, पर हम उन्हें पकड़ नहीं पाएंगे। रेडियो के उपकरण के बिना पकड़ना कठिन होगा। कल अगर ऐसा वक्त आ जाए--आ सकता है--कल एक महायुद्ध हो जाए, और हमारी सारी टेक्नालाजी अस्तव्यस्त हो जाए, और आपके घर में एक रेडियो रह जाए, आप उसे फेंकना न चाहेंगे। लेकिन अब कोई रेडियो स्टेशन नहीं बचा, अब रेडियो से कुछ पकड़ा नहीं जाता, अब रेडियो सुधारने वाला भी मिलना मुश्किल है। फिर भी हो सकता है दस-पांच पीढ़ियों के बाद भी आपके घर में रेडियो रखा रहे। और तब अगर कोई पूछे कि इसका क्या उपयोग है? तो कठिन हो जाए बताना।
लेकिन इतना जरूर बताया जा सके कि पिता आग्रहशील थे इसको बचाने के लिए, उनके पिता भी आग्रहशील थे। इतना हमें याद है कि हमारे घर में इसको बचाने वाले आग्रहशील लोग थे, वे बचाए चले गए हैं। हमें पता नहीं इसका क्या उपयोग है। आज इसका कोई भी उपयोग नहीं है।
और रेडियो को तोड़ कर अगर हम सब उपाय भी कर लें, तो भी इसकी खबर मिलनी बहुत मुश्किल है कि इससे कभी संगीत बजा करता था, कि कभी इससे आवाज निकला करती थी। सीधे रेडियो को तोड़ कर देखने से कुछ पता चलने वाला नहीं है। वह तो

सिर्फ एक आग्राहक था, जहां कुछ चीज घटती थी। घटती कहीं और थी, लेकिन पकड़ी जा सकती थी।
तो मंदिर आग्राहक थे, रिसेप्टिव इंस्ट्रूमेंट्स थे। परमात्मा तो सब तरफ है। आप भी सब जगह मौजूद हैं, परमात्मा भी सब जगह मौजूद है। लेकिन किसी विशेष संयोजन में आप एट्यून्ड हो जाते हैं। आपकी ट्यूनिंग मेल खाती है, तालमेल हो जाता है। तो मंदिर आग्राहक की तरह उपयोग में आए। वहां सारा इंतजाम वैसा था जहां दिव्य भाव को, दिव्य अस्तित्व को, भगवत्ता को हम ग्रहण कर पाएं। जहां हम खुल जाएं और उसे ग्रहण कर पाएं। सारा इंतजाम मंदिर का वैसा था। अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग तरह से वह इंतजाम किया था। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अलग-अलग रेडियो बनाने वाले लोग अलग-अलग शक्ल का रेडियो बनाएं। बाकी बहुत गहरे में प्रयोजन एक है।
जैसे कि इस मुल्क में मंदिर बने। और कोई तीन-चार तरह के मंदिर खास तरह
के मंदिर हैं जिनके रूप में फिर सारे मंदिर बने। इस मुल्क में जो मंदिर बने वे आकाश की आकृति में हैं। जो गुंबद है मंदिर का, वह आकाश की आकृति में है। और प्रयोजन यह है कि अगर आकाश के नीचे बैठ कर मैं ओम का उच्चार करूं तो मेरा उच्चार खो जाएगा, मेरी शक्ति बहुत कम है, विराट आकाश है चारों तरफ। मेरा उच्चार लौट कर मुझ पर नहीं बरस सकेगा, खो जाएगा। मैं जो पुकार करूंगा, वह पुकार मुझ तक लौट कर नहीं आएगी, वह अनंत में खो जाएगी। मेरी पुकार मुझ तक लौट कर आ जाए, इसलिए मंदिर का गुंबद निर्मित किया गया। वह आकाश की छोटी प्रतिकृति है, ठीक अर्ध-गोलाकार, जैसा आकाश पृथ्वी को चारों तरफ छूता है ऐसा एक छोटा आकाश निर्मित किया है। उसके नीचे मैं जो पुकार करूंगा, मंत्रोच्चार करूंगा, ध्वनि करूंगा, वह सीधी आकाश में खो नहीं जाएगी। गोल गुंबद उसे वापस लौटा देगा। जितना गोल होगा गुंबद, उतनी सरलता से वह वापस लौट आएगी--उतनी ही सरलता से। और उतनी ही ज्यादा प्रतिध्वनियां उसकी पैदा होंगी। अगर ठीक व्यवस्था से गुंबद मंदिर का बना हो। और फिर तो ऐसे पत्थर भी खोज लिए गए जो ध्वनियों को वापस लौटाने में बड़े सक्षम हैं।
जैसे कि अजंता का एक बौद्ध चैत्य है। उसमें लगे पत्थर ठीक उतनी ही ध्वनि को तीव्रता से लौटाते हैं, उतनी ही चोट को प्रतिध्वनित करते हैं, जैसे तबला। जैसे आप तबले पर चोट कर दें, ऐसा पत्थर पर चोट करें तो इतनी आवाज होगी। अब वह बहुत विशेष मंत्रों को, जो बहुत सूक्ष्म हैं, साधारण गुंबद नहीं लौटा पाएगा, उसके लिए उन पत्थरों का उपयोग किया गया है।
क्या प्रयोजन है? जब आप ओम का उच्चार करते हैं--और सारे गुंबद के नीचे
ओम का उच्चार हुआ है; वह ओम के उच्चार के लिए ही निर्मित किया गया है--जब बहुत सघनता से, बहुत तीव्रता से आप ओम का उच्चार करते हैं, और मंदिर का गुंबद सारे उच्चार को वापस आप पर फेंक देता है, तो एक वर्तुल निर्मित होता है, एक सर्किल निर्मित होता है। उच्चार का, ध्वनि का, लौटती ध्वनि का एक सर्किल निर्मित हो जाता है। मंदिर का गुंबद आपकी गूंजी हुई ध्वनि को आप तक लौटा कर एक वर्तुल निर्मित करवा देता है। उस वर्तुल का आनंद ही अदभुत है। अगर आप खुले आकाश के नीचे ओम का उच्चार करेंगे, वह वर्तुल निर्मित नहीं होगा और आपको कभी आनंद का पता नहीं चलेगा। वह जब वर्तुल निर्मित होता है तब आप सिर्फ पुकारने वाले नहीं हैं, पाने वाले भी हो जाते हैं। और उस लौटती हुई ध्वनि के साथ दिव्यता की प्रतीति प्रवेश करने लगती है। आपकी की हुई ध्वनि तो मनुष्य की है, लेकिन जैसे ही वह लौटती है, वह नये वेग और नयी शक्तियों को समाहित करके वापस लौट आती है।
इस मंदिर को, इस मंदिर के गुंबद को, मंत्र के द्वारा ध्वनि-वर्तुल निर्मित करने के लिए प्रयोग किया गया था। और अगर बिल्कुल शांत, एकांत स्थिति में आप बैठ कर उच्चार करते हों और वर्तुल निर्मित हो, तो जैसे ही वर्तुल निर्मित होगा, विचार बंद हो जाएंगे। वर्तुल इधर निर्मित हुआ, उधर विचार बंद हुए।
जैसा कि मैंने कई बार कहा है, स्त्री-पुरुष के संभोग में वर्तुल निर्मित हो जाता है शक्ति का। और जब वर्तुल निर्मित होता है तभी संभोग का क्षण समाधि का इशारा करता है। अगर पद्मासन या सिद्धासन में बैठे बुद्ध और महावीर की मूर्तियां देखें तो वे भी वर्तुल ही निर्मित करने के अलग ढंग हैं। जब दोनों पैर जोड़ लिए जाते हैं और दोनों हाथ पैरों के ऊपर रख दिए जाते

हैं तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। खुद के शरीर की विद्युत फिर कहीं से बाहर नहीं निकलती, पूरी वर्तुलाकार घूमने लगती है। एक सर्किट निर्मित होता है। और जैसे ही सर्किट निर्मित हो जाता है वैसे ही विचार शून्य हो जाते हैं। अगर इसे विद्युत की भाषा में कहें तो आपके भीतर विचारों का जो कोलाहल है वह आपकी ऊर्जा के वर्तुल न बनने की वजह से है। वह वर्तुल बना कि ऊर्जा समाहित और शांत होने लगती है।
तो मंदिर के गुंबद से वर्तुल बनाने की बड़ी अदभुत प्रक्रिया है और अंतरंग अर्थ उसके हो गए।
मंदिर के द्वार पर हमने घंटा लटका रखा है, वह सिर्फ इसीलिए, वह सिर्फ इसीलिए। आप जब ओम का उच्चार करेंगे, हो सकता है बहुत धीमे करें, ख्याल में भी न आए। जोर से घंटे की आवाज उस वर्तुल का आपको स्मरण दिला जाएगी तत्काल-- उस गूंजती हुई ध्वनि का--वर्तुल पर वर्तुल, जैसे पानी में फेंका गया पत्थर हो और लहर पर लहर, रिपल पर रिपल उठाता चला गया हो।
तिब्बतन मंदिर में तो घंटा नहीं रखते, एक सब धातुओं का बना हुआ एक बर्तन रखते हैं घड़े की तरह और उसमें लकड़ी का डंडा रखते हैं घुमाने के लिए। उसको सात बार अंदर घुमा कर जोर से चोट करते हैं। सात बार घुमाने पर और चोट करने पर "मणि पद्मे हुम्", इसकी पूरी आवाज निकलती है--पूरा मंत्र! पूरा मंत्र! पूरा घड़ा चिल्ला कर कहता है, मणि पद्मे हुम्! और एक दफा नहीं, सात बार। आपने सात राउंड लेकर जो चोट मारी उस पर, आप हाथ बाहर कर लें, अब आप सात बार सुनें--ओम मणि पद्मे हुम्, धीमी होती जाएगी, ओम मणि पद्मे हुम्, ओम मणि पद्मे हुम्--और सात वर्तुल उसके बन जाएंगे।
ठीक आपको भी मंदिर के भीतर एक घड़े की तरह जोर से अपने भीतर चोट करनी है--ओम मणि पद्मे हुम्! मंदिर भी दोहराएगा। आपका रोआं-रोआं उसे ग्रहण करके वापस फेंकेगा। थोड़ी ही देर में न आप रह जाएंगे, न मंदिर रह जाएगा, सिर्फ विद्युत के वर्तुल रह जाएंगे। और जब विद्युत के वर्तुल रह जाएंगे... ।
और ध्यान रहे, ध्वनि जो है विद्युत का सूक्ष्मतम रूप है। यह भी थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि अभी विज्ञान कहता है कि ध्वनि जो है वह विद्युत का एक रूप है--सभी कुछ विद्युत का रूप है, ध्वनि विद्युत का रूप है। लेकिन भारतीय मनीषी की पकड़ थोड़ी सी भिन्न है। वह कहता है, विद्युत भी ध्वनि का रूप है। साउंड इ.ज दि बेस, इलेक्ट्रिसिटी बेस नहीं है। इसलिए शब्द-ब्रह्म! विद्युत जो है वह सिर्फ ध्वनि का ही एक रूप है। इसमें अब बहुत दूर तक समानता खड़ी हो गई। अभी विज्ञान कहने लगा कि ध्वनि जो है वह विद्युत का एक रूप है। यह थोड़ा सा फर्क रह गया है कि प्राथमिक कौन है? अभी विज्ञान कहता है कि विद्युत प्राथमिक है। लेकिन भारत की मनीषा तो कहती है कि ध्वनि प्राथमिक है और ध्वनि की ही सघनता विद्युत है। विज्ञान कहता है कि विद्युत का एक प्रकार ध्वनि है।
इस बात की बहुत संभावना है कि शब्द-ब्रह्म की खोज बहुत निकट में विज्ञान को कर लेनी पड़ेगी। यह मंदिर के गुंबद के नीचे पैदा की गई ध्वनियों का ही अनुभव है। क्योंकि जब ओम की सघन ध्वनि की गई तो साधक ने मंदिर के भीतर थोड़ी देर में जाना कि मंदिर भी मिट गया और मैं भी मिट गया, और सिर्फ विद्युत रह गई। यह किसी प्रयोगशाला में लिया गया निष्कर्ष नहीं है। यह किसी प्रयोगशाला में लिया गया निष्कर्ष नहीं है, जिन्होंने यह कहा है उनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं थी। उनके पास तो एक ही प्रयोगशाला थी, वह उनका मंदिर था। उस मंदिर में उन्होंने जो जाना है वह यह जाना है कि हम तो ध्वनि से शुरू करते हैं, लेकिन अंततः विद्युत ही रह जाती है। इस ध्वनि के अनुभव के लिए मंदिर का गुंबद निर्मित किया गया था।
जब पहली दफा पश्चिम के लोगों को भारतीय मंदिर देखने को मिले, तो उन्हें अनहाइजिनिक मालूम पड़े। स्वभावतः, खिड़की-दरवाजे ज्यादा नहीं हो सकते, एक ही रखा जा सकता है, वह भी बहुत छोटा, कि किसी भी तरह, ध्वनि जो पैदा हो रही है भीतर, उसके वर्तुल को तोड़ने वाला न बन जाए। तो उनको लगा कि बिल्कुल ही अंधेरे, गंदे, बंद, हवा नहीं जाती। चर्च साफ-सुथरा है, खिड़कियां हैं, दरवाजे हैं। बड़ी खिड़कियां हैं। बड़े दरवाजे हैं। रोशनी भी जाती है, हवा भी जाती है--हाइजिनिक है।

वही मैंने कहा कि चाबी भूल जाती है तो कठिनाइयां खड़ी होती हैं। कोई नहीं कह सका हिंदुस्तान में, एक आदमी भी, कि हमारे मंदिर में खिड़की क्यों नहीं है, दरवाजा क्यों नहीं है। हमको भी लगा कि सच तो है कि अनहाइजिनिक है। और कोई यह न कह सका कि इन मंदिरों में इस मुल्क के स्वस्थतम लोग रहे हैं। इन मंदिरों के भीतर बीमारी नहीं जानी गई। इन मंदिरों में बैठा हुआ पूजा और प्रार्थना करने वाला आदमी स्वस्थतम लोगों में से था। और मंदिर बिल्कुल अनहाइजिनिक है।
यह भी अनुभव में आना शुरू हुआ कि ओम की ध्वनि का जो आघात है, वह अपूर्व रूप से प्योरीफाई करता है। विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात शुद्धता लाते हैं, विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात अशुद्धता लाते हैं। विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को प्रवेश ही नहीं करने देंगी, विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को निमंत्रित कर लेंगी। पर ध्वनि का पूरा शास्त्र खो गया। जिन्होंने कहा था शब्द ही ब्रह्म है, उन्होंने शब्द के लिए बड़ी से बड़ी बात जो कही जा सकती थी वह कही। जो बड़ी से बड़ी बात कही जा सकती थी! ब्रह्म से बड़ा कोई अनुभव नहीं था, और शब्द से गहरी उन्होंने कोई चीज नहीं जानी थी जिसका प्रयोग किया जा सके।
सारे राग, सारी रागिनियां, सारा संगीत पूरब का, वह शब्द-ब्रह्म की ही प्रतीतियों का फैलाव है। समस्त राग, समस्त रागिनियां मंदिरों में पैदा हुईं। समस्त नृत्य पहली दफा मंदिरों में पैदा हुए, फिर फैलते गए दूसरी जगहों पर। क्योंकि मंदिर में ही ध्वनि का अनुभव करने वाला साधक था। उसने ध्वनियों में भेद देखे। उसने इतने भेद देखे जिसका कोई हिसाब नहीं।
अभी सिर्फ चालीस साल पहले काशी में एक साधु था--विशुद्धानंद। सिर्फ ध्वनियों के विशेष आघात से किसी की भी मृत्यु हो जाए, सिर्फ ध्वनियों से, सैकड़ों प्रयोग विशुद्धानंद ने करके दिखाए। और अपने बंद मंदिर के गुंबद में बैठा था जो बिल्कुल अनहाइजिनिक था। और जब पहली दफा तीन अंग्रेज डाक्टरों के सामने उसने एक प्रयोग किया।
वे तीनों अंग्रेज डाक्टर एक चिड़िया को लेकर अंदर गए। और विशुद्धानंद
ने कुछ ध्वनियां कीं, वह चिड़िया तड़फड़ाई और मर गई। और उन तीनों ने जांच कर ली कि वह मर गई। तब विशुद्धानंद ने दूसरी ध्वनियां कीं, वह चिड़िया फिर तड़फड़ाई और जिंदा हो गई! तब पहली दफा शक पैदा हुआ कि ध्वनि के आघात का परिणाम हो सकता है!
अभी हम दूसरे आघातों के परिणाम को मान लेते हैं, क्योंकि उनको विज्ञान कहता है। हम कहते हैं कि विशेष किरण आपके शरीर पर पड़े तो विशेष परिणाम होंगे। और विशेष औषधि आपके शरीर में डाली जाए तो विशेष परिणाम होंगे। और विशेष रंग विशेष परिणाम लाएगा। लेकिन विशेष ध्वनि क्यों नहीं? अभी कुछ प्रयोगशालाएं पश्चिम में, ध्वनियों का जीवन से क्या संबंध हो सकता है, इस पर बड़े काम में रत हैं। और दो-तीन प्रयोगशालाओं ने बड़े गहरे परिणाम दिए हैं। इतना तो बिल्कुल साफ हो गया है कि विशेष ध्वनि के परिणाम, जिस मां की छाती से दूध नहीं निकल रहा है, उसकी छाती से दूध ला सकता है, विशेष ध्वनि करने से। जो पौधा छह महीने में फूल देता है वह दो महीने में फूल दे सकता है, विशेष ध्वनि उसके पास पैदा की जाए तो। जो गाय जितना दूध देती है उससे दुगुना दे सकती है, विशेष ध्वनि पैदा की जाए तो।
तो आज तो रूस की सारी डेअरीज में बिना ध्वनि के कोई गाय से दूध नहीं दुहा जा रहा है। और बहुत जल्दी कोई फल, कोई सब्जी बिना ध्वनि के पैदा नहीं होगी। क्योंकि प्रयोगशाला में तो यह सिद्ध हो गया है, अब उसके व्यापक फैलाव की बात है। अगर फल और सब्जी और दूध और गाय ध्वनि से प्रभावित होते हैं, तो आदमी का कोई कारण नहीं है कि वह प्रभावित न हो।
स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य ध्वनि की विशेष तरंगों पर निर्भर हैं। इसलिए एक बहुत गहरी हाइजिनिक व्यवस्था थी जो हवा से बंधी हुई नहीं थी। सिर्फ हवा के मिल जाने से ही कोई स्वास्थ्य आ जाने वाला है, ऐसी धारणा नहीं थी। नहीं तो यह असंभव है कि पांच हजार साल के लंबे अनुभव में यह ख्याल में न आ गया हो। हिंदुस्तान का साधु बंद गुफाओं में बैठा है, जहां रोशनी नहीं जाती, हवा नहीं जाती। बंद मंदिरों में बैठा है। छोटे दरवाजे हैं, जिनमें से झुक कर अंदर प्रवेश करना पड़ता है। कुछ मंदिरों में तो रेंग कर ही अंदर

प्रवेश करना पड़ता है। पर फिर भी स्वास्थ्य पर इनका कोई बुरा परिणाम कभी नहीं हुआ था। हजारों साल के अनुभव में कभी नहीं आया था कि इनका स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम हुआ है।
पर जब पहली दफा संदेह उठा तो हमने अपने मंदिरों के दरवाजे बड़े कर लिए। खिड़कियां लगा दीं। हमने उनको मार्डनाइज किया, बिना यह जाने हुए कि वे मार्डनाइज होकर साधारण मकान हो जाते हैं। उनकी वह रिसेप्टिविटी खो जाती है जिसके लिए वे कुंजी हैं।
तो एक तो ध्वनि से गहरा संबंध है मंदिर की वास्तु-कला का। उसका जो आर्किटेक्चर है उसका ध्वनि से--वह सारा ध्वनि-शास्त्र ही है। किस कोण से ध्वनि की चोट की जाए, उसका भी हिसाब है। कौन सी ध्वनि खड़े होकर की जाए और कौन सी बैठ कर की जाए, उसका भी हिसाब है। कौन सी लेट कर की जाए, उसका भी हिसाब है। क्योंकि खड़े होकर उसके आघात बदल जाएंगे, बैठ कर उसके आघात बदल जाएंगे। कौन सी ध्वनियां साथ में की जाएं तो परिणाम अलग होंगे। कौन सी ध्वनियां अलग-अलग की जाएं तो परिणाम अलग होंगे।
इसलिए बड़े मजे की बात है कि जब वैदिक साहित्य का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद शुरू हुआ, तो स्वभावतः पश्चिम में भाषा का जो जोर है वह भाषागत है, ध्वनिगत नहीं है, फोनेटिक नहीं है। कोई शब्द लिखा जाए, तो वैदिक दृष्टि में उस शब्द के लिखने और बोलने का उतना मूल्य नहीं है जितना उसके भीतर विशेष ध्वनि और विशेष ध्वनि की मात्राओं का समाहित होना जरूरी है। संस्कृत का जोर फोनेटिक है, लिंग्विस्टिक नहीं है। शब्दगत नहीं है, ध्वनिगत है।
इसीलिए हजारों साल तक कीमती शास्त्रों को न लिखने की जिद की गई। क्योंकि लिखते ही जोर बदल जाएगा, एम्फेसिस बदल जाएगी। बोल कर ही दिया जाए दूसरे को, लिख कर न दिया जाए। क्योंकि लिखे जाने पर शब्द बन जाएगा, और ध्वनि की जो बारीक संवेदनाएं थीं वे मर जाएंगी, उनका कोई सवाल नहीं रह जाएगा।
अब राम को लिख दें हम, तो पढ़ने वाले पचास तरह से पढ़ सकते हैं। कोई र पर थोड़ा कम जोर दे, कोई अ पर थोड़ा ज्यादा जोर दे, कोई म पर थोड़ा कम जोर दे। वह कैसा जोर देगा, वह पढ़ने वाले पर निर्भर करेगा। लिखने के बाद ध्वनिगत जोर समाप्त हो गया। अब उसको फिर डिकोड करना पड़ेगा।
इसलिए हजारों सालों तक जिद थी कि कोई शास्त्र लिखा न जाए। कारण? कारण सिर्फ एकमात्र यही था कि उसकी जो ध्वनिगत व्यवस्था है वह न खो जाए। तो सीधा व्यक्ति के द्वारा ही वह दूसरे को सुनाया जाए। इसलिए हम शास्त्र को श्रुति कहते हैं, जो सुन कर मिले वही शास्त्र था। जो पढ़ कर मिले उसको हमने शास्त्र नहीं कहा कभी। क्योंकि उसकी सारी की सारी जो वैज्ञानिक प्रक्रिया थी, तो उसमें कैसे ध्वनि के आघात होंगे, कहां क्षीण होगी ध्वनि, कहां तीव्र होगी, उसको लिपिबद्ध करने पर कठिनाई खड़ी हो जाएगी। और कठिनाई खड़ी हुई। जिस दिन लिपिबद्ध हुए ये शास्त्र उसी दिन इनकी जो मौलिक आंतरिक व्यवस्था थी वह खंडित हो गई। फिर कोई जरूरत न रही कि आप किसी से जाकर सुन कर ग्रहण करें। आप किताब पढ़ सकते हैं, वह बाजार में उपलब्ध है। और उसके साथ ध्वनि का कोई सवाल नहीं रहा।
यह भी मजे की बात है कि इन शास्त्रों का कभी जोर न था अर्थ पर। इनका जोर नहीं था अर्थ पर। अर्थ पर जोर तो पीछे हमें पकड़ में आना शुरू हुआ जब हमने इनको लिपिबद्ध किया। क्योंकि लिपिबद्ध कोई भी चीज अगर अर्थहीन हो तो हम पागल मालूम पड़ेंगे। हमको उसे अर्थ देना ही पड़ेगा। अभी भी वैदिक वचनों में ऐसे वचन हैं जिनके अर्थ नहीं लगाए जा सके हैं। और जिनके अर्थ नहीं लगाए जा सके वही वचन असली हैं, क्योंकि वे बिल्कुल ही ध्वनिगत हैं, उनमें अर्थ था ही नहीं।
अब जैसे ओम मणि पद्मे हुम्। एक तिब्बतन मंत्र है। इसमें सवाल अर्थ का नहीं है। ओम में भी सवाल अर्थ का नहीं है। इसमें कोई अर्थ नहीं है। ध्वनिगत चोट है। और उसके परिणाम हैं। ध्वनिगत चोट है, उसके परिणाम हैं। अब जब कोई साधक ओम मणि पद्मे हुम का आवर्तन करता है बार-बार, तो उसके शरीर के विभिन्न चक्रों पर चोट पड़नी शुरू होती है और वे चक्र सक्रिय होने शुरू होते हैं। इसमें क्या अर्थ है, यह सवाल नहीं है। इसकी क्या युटिलिटी,

उपयोगिता है, यह सवाल है। इसको ख्याल में ले लेना जरूरी है कि पुराने शास्त्र अर्थ पर जोर नहीं देते, उपादेयता पर जोर देते हैं--उपयोगिता क्या है? उपयोग क्या है?
बुद्ध से किसी ने पूछा है कि सत्य क्या है? तो बुद्ध ने कहा, जो उपयोग में आ सके। सत्य की परिभाषा--जो उपयोग में आ सके! विज्ञान भी यही करेगा सत्य की परिभाषा। विज्ञान भी यही करता है। प्रैग्मेटिक परिभाषा करेगा। वह यह नहीं कहेगा कि सत्य क्या है, जिसको आप सिद्ध कर दें, यह सवाल नहीं है। सत्य क्या है, जो उपयोग में आ सके। आप उपयोग करके दिखा दें।
आप कहते हैं, हाइड्रोजन-आक्सीजन मिल कर पानी बनते हैं। हमें फिक्र नहीं है कि सत्य है या असत्य है। आप पानी बना कर दिखा दें तो सत्य हो जाएगा, न बन सके पानी तो असत्य है। हाइड्रोजन और आक्सीजन मिल कर पानी बनते हैं कि नहीं, यह कोई लाजिकल, कोई तर्कगत इसकी वैलिडिटी नहीं है। बनते हों तो बना कर दिखा दें। बन जाएं तो सत्य है, न बनते हों तो सिद्ध हो जाएगा कि असत्य है। विज्ञान ने अब जाकर वही व्याख्या पकड़ी है सत्य की, जो पांच हजार साल पहले धर्म की व्याख्या थी। धर्म कहता था, जो उपयोग में आ जाए। जिसका आप उपयोग कर सकें।
तो ओम का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है; कोई मीनिंग नहीं है, यूटिलिटी है। मंदिर का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है। और उपयोग में लाना एक कला है। और सभी कलाओं के साथ एक खराबी है--सभी कलाओं के साथ एक खराबी है--कि उनका जीवंत हस्तांतरण ही हो सकता है।
इधर मैं पढ़ता था, चीन में कोई पंद्रह सौ साल पहले एक सम्राट है। वह मांस का बहुत शौकीन है, और इतना शौकीन है कि वह अपने सामने ही गाय-बैल को कटवाता है। तो जो उसका कसाई है वह पंद्रह साल से नियमित सुबह आकर उसके सामने जानवर काटता है।
एक दिन वह सम्राट पूछता है कि यह तू जो फरसा लाता है काटने को, इसे मैंने तुझे कभी बदलते नहीं देखा। पंद्रह साल हो गए, इसकी धार मरती नहीं? तो वह कसाई कहता है कि इसकी धार नहीं मरती। धार तभी मरती है जब कसाई कुशल न हो। धार तभी मरती है जब कसाई कुशल न हो, धार तभी मरती है जब कसाई को पता न हो कि कहां ठीक जगह है, जहां से फरसा आर-पार हो जाता है और दो हड्डियों के बीच में नहीं आता--ज्वाइंट्स कहां हैं। और यह मेरी पुश्तैनी कला है। इस फरसे की धार तो मरती ही नहीं, बल्कि रोज जानवर काट कर इसकी धार लग जाती है।
तो उस सम्राट ने कहा, क्या तू यह कला मुझे भी सिखा सकता है? कसाई ने कहा कि यह बहुत कठिन है। यह बहुत कठिन है। यह तो मैं अपने बाप के पास, जब से मुझे होश है, तब से मैं खड़ा रहा। इसको मैंने इंबाइब किया है, इसको मैंने सीखा नहीं। इसको मैं पी गया हूं; इसको मैंने सीखा नहीं है किसी से। मैं बाप के पास खड़ा रहता था। रोज-रोज यही हो रहा था, दिन भर जानवर कट रहे थे, मैं पास खड़ा रहता था। कभी उसका फरसा उठा कर लाता था, कभी जानवर के कटे हुए अंगों को उठा कर रखता था। बस मैं पी गया। अगर तुम भी इतने के लिए राजी हो तो मेरे पास खड़े रहो, कभी उठा कर लाओ, कभी रखो, कभी बैठो, देखते रहो। इसको पी सको तो। नहीं तो मैं सिखा नहीं सकता।
साइंस सिखाई जा सकती है, आर्ट सिखाया नहीं जा सकता। विज्ञान हम सिखा सकते हैं, पढ़ा सकते हैं। कला हम सिखा नहीं सकते, कला को तो इंबाइब करना पड़ता है।
ये सारे मंत्र अर्थ नहीं रखते, इनका कलात्मक उपयोग है। तो छोटे-छोटे बच्चों को हम इंबाइब करवा देते थे। वे मंदिर की कला सीख जाते थे। उन्हें कभी पता भी नहीं चलता था कि वे क्या सीख गए हैं! वे मंदिर में जाने की कला सीख जाते थे। वे मंदिर में बैठने की कला सीख जाते थे। वे मंदिर का उपयोग सीख जाते थे। जब भी मुसीबत में जिंदगी होती, वे भागे मंदिर चले जाते थे। मंदिर से वे शांत होकर लौट आते थे। चूकना मुश्किल था; रोज सबेरे वे मंदिर चले आते थे। क्योंकि जो मंदिर में मिलता था वह कहीं भी मिलना मुश्किल था। पर वह इतने बचपन से पकड़ती थी बात कि उन्हें हमने कभी सिखाया, ऐसा नहीं था-- इंबाइब कर गए वे, पी गए। बहुत सी चीजें हैं जो सिखाई नहीं जा सकतीं। जहां भी कला है वहीं सिखाना मुश्किल है।

इस मंदिर की, इन मंदिरों के बीच ध्वनि की जो सारी की सारी संयोजना थी उसकी, एक प्रायोगिक व्यवस्था है। और जब तक मंत्र का ठीक ध्वनिगत रूप ख्याल में न हो... । इसलिए मंत्र गुरु के द्वारा दिया जाए, इस पर जोर था। वह मंत्र आप जानते रहे हैं सदा। हो सकता है गुरु आपके कान में कहेः राम-राम का जाप करो। और आप हैरान होंगे कि कहा है कि गुरु के बिना मंत्र नहीं मिलेगा? यह तो दुनिया जानती है कि राम-राम कहो। और इस आदमी ने कान में कहा कि राम राम कहो। यह तो पागलपन की बात है।
नहीं लेकिन राम के ध्वनिगत रूप पर जोर होगा, जो कि दुनिया नहीं जानती।
और राम के भी पचासों प्रयोग हैं। अब वाल्मीकि की सारी कथा हमने सुनी है, लेकिन वह कथा बचकानी हो गई। कथा ऐसी हो गई कि हम समझने लगे कि वह नासमझ था, गैर पढ़ा-लिखा था, गंवार था। तो भूल गया कि गुरु ने कहा था कि राम-राम का पाठ करना, तो वह मरा-मरा का करने लगा। और मरा-मरा का पाठ करते हुए ज्ञान को उपलब्ध हो गया। ये चाबियां जब खो जाती हैं तो ऐसी गड़बड़ खड़ी हो जाती है। सच बात यह है कि राम के मंत्र के एक रूप का यही हिस्सा है, कि राम-राम कहते- कहते जब आपके भीतर से मरा-मरा निकलने लगे, तभी वर्तुल बना। राम-राम गति से कहते हुए, जब बिल्कुल स्थिति उलटी हो जाए और मरा-मरा निकलने लगे, तब ठीक ध्वनिगत हो गया। और जब मरा-मरा निकलेगा तब एक अदभुत घटना घटती है। और वह घटना यह है कि आप नहीं रहे, आप मर गए। और जब आप मर गए होते हैं, वही क्षण आपके जप के पूरे होने का है। वही क्षण अनुभव का है, जब आप नहीं हैं, मिट गए। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह प्रक्रिया ठीक से की जाए, तो राम का पाठ आप शुरू करेंगे, बहुत शीघ्र वह घड़ी आ जाएगी जब राम की जगह मरा-मरा निकलने लगेगा और आप चाहेंगे भी कहना कि राम कहूं तो न कह पाएंगे। सारा व्यक्तित्व मरा कहेगा। उस वक्त आपकी मृत्यु घटित होगी, जो कि ध्यान का पहला चरण है। और जब आपकी मृत्यु पूरी घटित हो जाएगी तो आप अचानक फिर पाएंगे कि मरा-मरा राम में रूपांतरित होने लगा। फिर आपके भीतर से राम की ध्वनि निकलनी शुरू होगी। और जब राम की ध्वनि अब निकलेगी आपके भीतर से, तब आपको राम का साक्षात्कार होगा, इसके पहले नहीं होगा। बीच में मरा की ध्वनि में रूपांतरण अनिवार्य है।
इसके तीन हिस्से हुए। राम से आप शुरू करेंगे, मरा में आप मिटेंगे, और राम पर फिर पूरा होगा। और जब तक बीच में मरा-मरा की प्रक्रिया पकड़ न ले आपको, तब तक असली राम की प्रक्रिया जो तीसरे चरण में पूरी होने वाली है, वह नहीं होगी। अगर आप राम-राम कहते ही गए, और मरा-मरा नहीं आया बीच में, तो आपको पता ही नहीं है--उसके फोनेटिक एम्फेसिस का पता नहीं है। तो उसका ध्वनिगत जो जोर है उस जोर को अगर ठीक से आपने दिया--अगर आपने र जोर से कहा और म धीमे कहा तो ही मरा बनेगा बाद में, नहीं तो नहीं बनेगा। र पर सारी ताकत लगाई और म को ढीला छोड़ दिया, तो म गड्ढे की तरह हो जाएगा, र शिखर की तरह हो जाएगा। र एक उत्तुंग चोटी हो जाएगा और म एक खाई हो जाएगा। और इस स्थिति में--राम--म को छोटा करते आप चले जाएं, तो बहुत शीघ्र आप पाएंगे कि रूपांतरण हुआ। म शिखर बन जाएगा और र खाई बन जाएगा। मरा शुरू हो जाएगा। जैसे लहरें हैं, हर शिखर के बाद खाई, हर खाई के बाद शिखर! और अभी जो शिखर था वह थोड़ी देर में खाई हो जाएगा, जो खाई थी वह शिखर बन जाएगी--ठीक लहर की तरह। ध्वनि की भी लहरें हैं। ठीक ध्वनि के भी उतार-चढ़ाव हैं, आरोह-अवरोह हैं।
तो ठीक ध्वनि की अगर व्यवस्था ज्ञात न हो तो आप राम-राम कहते रहें, कोई परिणाम न होगा। अब जिन्होंने भी वाल्मीकि के संबंध में यह कहानी प्रचलित की कि वह नासमझ था, बेपढ़ा-लिखा था, गंवार था। ये सब बातें सच हैं कि वह नासमझ था, बेपढ़ा-लिखा था, गंवार था। लेकिन यह बात सच नहीं है कि इसलिए वह मरा-मरा कहने लगा। जहां तक इस सूत्र का संबंध है, इस मामले में तो वह पूरा होशियार था। उसे ठीक पूरे गणित का पता था। इतने मामले का तो उसे पूरा पता था कि राम कैसे कहना है कि मरा बन जाए। जब मरा बन जाए तभी आप संक्रमण से गुजरे, और फिर राम पैदा होगा। वह राम आपके द्वारा कहा हुआ राम नहीं होगा फिर। आप तो मर गए। वह राम जन्मेगा आपके भीतर, वह अजपा हो जाएगा। आप उसका जाप नहीं कर रहे, वह हो रहा है जाप।

ध्वनिगत जोर की वजह से श्रुति! और उसे कोई जानने वाला, जो ध्वनियों को जानता हो। और जानने का एक ही उपाय था कि वह किसी से जानता हो। जानने वाला ही उसे किसी को दे। वही शब्द होंगे, जो किताब में लिखे होंगे, सबको मालूम होंगे, फिर भी उनका गणित अलग हो जाएगा। और गणित में ही सारा खेल है। वह ध्वनि का जो गणित है, आरोह-अवरोह के जो अंतर हैं, उनका ही सारा खेल है।
तो एक पूरा मंत्र-शास्त्र था, और मंदिर उनकी एक प्रयोगशाला थी। यह उसका आंतरिक मूल्य था, साधक का। और मंदिर में जितने लोगों को परमात्मा का अनुभव हुआ, मंदिर के बाहर नहीं हो सका--यह जानते हुए कि परमात्मा मंदिर के बाहर भी है। आज मंदिर में भी नहीं हो रहा है। लेकिन मंदिर के भीतर जितने लोगों को अनुभव हुआ उतने लोगों को कभी मंदिर के बाहर नहीं हुआ। या जिन लोगों को मंदिर के बाहर प्रयोग करने पड़े--जैसे महावीर--तो फिर उनको, जो मंदिर में हो रहा था, उसके लिए दूसरा उपकरण खोजना पड़ा, जो कि ज्यादा जटिल है।
महावीर को उन आसनों को साधना पड़ा वर्षों तक, जिनसे कि वर्तुल भीतर बन जाए। जिनसे कि वर्तुल भीतर बन जाए, वह जो मंदिर का सहारा था, न लिया जाए। लेकिन वह वर्षों की प्रक्रिया है, और महावीर जैसे संकल्पी के लिए ही संभव है। बाकी अति कठिन हो जाएगी। बुद्ध ने भी मंदिर का सहारा नहीं लिया। लेकिन महावीर के मरने के थोड़े ही दिन बाद मंदिर बनाना शुरू करना पड़ा, और बुद्ध के मरने के बाद भी बनाना शुरू करना पड़ा। क्योंकि जो मंदिर दे सकता है बिल्कुल सामान्य जन को, वह बुद्ध और महावीर नहीं दे सकते। बुद्ध और महावीर जो कह रहे हैं करने को, वह सामान्य जन नहीं कर पाएगा।
आज तो अगर इस विज्ञान को हम पूरा समझ लें तो मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण खोजे जा सकते हैं। और अभी इस पर थोड़ा काम चलता है। मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण खोजे जा सकते हैं अब, क्योंकि अब हम विद्युत के संबंध में ज्यादा जानते हैं। और अभी इस तरह के बहुत से प्रयोग, जो खतरे में भी ले जा सकते हैं, भयानक भी हैं, लेकिन ठीक उपयोग किया जाए तो जो मंदिर करता था उसकी हम साइंटिफिक व्यवस्था कर सकते हैं। क्योंकि मंदिर में जो वर्तुल पैदा होता था वह वर्तुल अब और तरह से भी पैदा किया जा सकता है। आप जेब में छोटा सा यंत्र भी रख सकते हैं कल, जो आपके भीतर विद्युत का वर्तुल बनाता हो। आप उस विद्युत के यंत्र में उन ध्वनियों को भी रिकार्डेड रख सकते हैं जो आपके भीतर ध्वनियों का वर्तुल बना दे।
अभी इस पर कुछ काम चलता है। और बहुत हैरानी का काम है। अमरीका में कोई सात-आठ वैज्ञानिक एक बहुत अदभुत काम में लगे हुए हैं। और वह काम यह है कि हमारे जितने सुख-दुख के अनुभव हैं, सभी हमारे शरीर के किन्हीं केंद्रों पर विद्युत के प्रवाह के अनुभव हैं, और कुछ भी नहीं।
जैसे आपके अगर शरीर में सुई चुभाई जाए पूरे शरीर में, तो सब जगह आपको सुई की चुभन पता नहीं चलेगी। कुछ डेड स्पाट्स हैं आपके शरीर में, जहां आपकी पीठ में हम सुई चुभाते रहेंगे और आपसे पूछेंगे कि सुई चुभ रही है? आप कहेंगे कि नहीं। किसी की भी पीठ में चुभा कर आप दस-बीस जगह देखें तो आपको दो-चार डेड स्पाट मिल जाएंगे, जहां आप चुभाएंगे और वह कहेगा चुभ ही नहीं रही है। ठीक वैसे ही दस-पांच ऐसी जगहें हैं जहां आप जरा ही चुभाएंगे, वह कहेगा कि बहुत चुभ रही है। ठीक ऐसे ही मस्तिष्क के सेंस की बहुत सी ग्रंथियां हैं, लाखों की संख्या में। और प्रत्येक ग्रंथि का अनुभव है। जब आप कहते हैं मुझे सुख हो रहा है, तब आपके मस्तिष्क की किसी खास ग्रंथि में से विद्युत बहती है।
समझें आप अपनी प्रेयसी के पास बैठे हैं। उसका हाथ हाथ में लिए हैं और कहते हैं मुझे सुख हो रहा है। जहां तक वैज्ञानिक का संबंध है वह आपकी खोपड़ी में बताएगा कि फलां जगह से विद्युत बह रही है। और इस स्त्री के साथ सिर्फ दिमाग का एसोसिएशन है आपका कि इसके पास बैठने से सुख मिलता है, तो उस सहयोग-साहचर्य की धारणा की वजह से खास बिंदु से आपके धारा बहनी शुरू हो जाती है। लेकिन दो-चार महीने बाद नहीं मिलेगा सुख। क्योंकि अगर किसी बिंदु से आपने बहुत ज्यादा विद्युत की धारा बहाई तो वह इनसेंसिटिव हो जाता है, उसकी संवेदनशीलता मर जाती है।

ठीक है, अब एक ही जगह हम कांटा चुभाए जाएं बार-बार, तो आज जितना आपको दर्द होगा, कल नहीं होगा, परसों और नहीं होगा। और चुभाए चले जाएं तो वह जगह ग्रंथि बना लेगी, और कांटे को झेल जाएगी, और दर्द बिल्कुल नहीं होगा। अब जो लोग सितार बजाते हैं तो अंगुली कट जाती है, पहले बहुत तकलीफ होती है। फिर बजाते ही चले जाते हैं तो अंगुली संवेदनहीन हो जाती है। फिर कितना ही तार-वार खींचते रहें, कोई अंगुली को पता नहीं चलता।
तो आपका जो प्रेम क्षीण हो जाता है--कि भई तीन महीने बाद प्रेम क्षीण
हो गया, बड़ा कच्चा प्रेम था--उसका और कोई कारण नहीं है। जिस बिंदु से आपका सुख का प्रवाह हो रहा था वह आदी हो गया। यही स्त्री दो-चार-दस साल आपसे छूट जाए तो फिर सुख दे सकती है, फिर सुख दे सकती है।
यह जो वैज्ञानिकों का काम है इसमें अभी तो उनके जो प्राथमिक प्रयोग
थे वे पशुओं पर थे। चूहों पर अभी उनका एक प्रयोग चलता था जिसने कि उनको भी घबरा दिया। चूहा जब संभोग में रत होता है तो उसके मस्तिष्क को उन्होंने खोल कर रखा हुआ था। खिड़की खुली हुई थी उसके मस्तिष्क की, ताकि उसके पूरे मस्तिष्क की जांच हो सके कि जब वह संभोग में जाता है, जब उसका वीर्य क्षरण होता है, तो उसके मस्तिष्क में कहां से विद्युत बहती है।
तो उसके मस्तिष्क की विद्युत की स्थिति उन्होंने पकड़ ली कि यहां से विद्युत बहती है। तब वहां उन्होंने इलेक्ट्रोड लगा दिया, मस्तिष्क बंद कर दिया और इलेक्ट्रोड से जुड़ा हुआ तार एक मशीन में लगा दिया। उस मशीन से उसी मात्रा की, उसी अनुपात की विद्युत बहेगी, जितनी अनुपात की विद्युत उसके वीर्य-क्षरण में बहती थी। और सामने उसके बटन लगी हुई है। और उस चूहे को बटन दबाना एक-दो दफे बता दिया। जैसे ही बटन दबाई कि उस चूहे को वही आनंद आया, जो उसको संभोग में आया था।
आप हैरान होंगे कि चूहे ने फिर कोई काम ही नहीं किया चौबीस घंटे तक।
एक घंटे में छह-छह हजार बार वह बटन दबाता रहा। खाना-पीना बंद! जब तक इलेक्ट्रोड काट नहीं दिया उसका, तब तक न खाया, न पीया, न सोया, न इधर-उधर देखे, बस वह एक ही काम--पूरे चौबीस घंटे, सतत! थक कर गिर पड़ा बिल्कुल, लेकिन वह थकते वक्त तक उसको दबाए चला गया।
वह वैज्ञानिक जो उस पर प्रयोग कर रहा था, उसका कहना है कि उस चूहे ने जितना संभोग का रस जाना, आज तक पृथ्वी पर किसी चूहे ने नहीं जाना। हालांकि संभोग वह कर नहीं रहा था, सिर्फ उस जगह से विद्युत प्रवाहित थी। उस वैज्ञानिक का दावा है कि बहुत जल्दी ही सेक्स बहुत साधारण सुख रह जाएगा। जिस दिन हम आदमी को इलेक्ट्रोड दे देंगे, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा जो सेक्स के लिए राजी हो जाए। क्योंकि बहुत शक्ति गंवा कर कुछ खास पाता नहीं। हम उसके खीसे में एक बैटरी से लगा हुआ छोटा सा यंत्र दे सकते हैं। वह अपने खीसे में जब भी चाहे दबा ले बटन--सरसराहट फैलेगी, जो कि सेक्स में फैलती है। उसमें और कोई भेद भी नहीं है।
यह खतरनाक भी है। क्योंकि एक बार मनुष्य के मस्तिष्क की सारी व्यवस्था पता चल जाए, तो उसमें कौन सा हिस्सा संदेह करता है वह काट कर फेंका जा सकता है, कौन सा हिस्सा क्रोध करता है वह अलग किया जा सकता है। या उसके सारे संबंध तोड़े जा सकते हैं, कि उससे आपके शरीर की विद्युत न जुड़ पाए, बस फिर आप क्रोध नहीं कर पाएंगे। कौन सा हिस्सा बगावती है, उसके सारे संबंध, उसके सारे तार डिसकनेक्ट किए जा सकते हैं। सरकारें उसका खतरनाक उपयोग कर सकती हैं।
लेकिन मनुष्य को सुख देने की दिशा में भी उनसे बहुत उपयोग हो सकते हैं। उनको तो पता नहीं है, लेकिन मैं मानता हूं कि हम मनुष्य को मंदिर भी दे सकते हैं उस व्यवस्था से। वह और भी सरल होगा, इस मंदिर से भी सरल होगा। इस मंदिर में आपको घंटों, महीनों, वर्षों ध्वनि का जो आघात पैदा करके ध्वनि जब वापस आप पर लौटेगी और आपके मस्तिष्क से टकराएगी, तो जो स्थितियां बनाएगी, वे स्थितियां और भी सरलता से पैदा की जा सकती हैं।
तो मंदिर मेरे हिसाब से एक बहुत वैज्ञानिक प्रक्रिया थी और ध्वनि के माध्यम से आपके भीतर सुखद, शांतिदायी, आनंददायी, प्रीतिकर भाव को जगाने का अदभुत काम करती रही है। और उस भाव की उपस्थिति में आपका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण बदलता है।

इस बात में खतरे हैं, वैज्ञानिक जो कर रहे हैं इसमें खतरे हैं। खतरा
एक ही है कि विज्ञान जो भी करता है वह टेक्नालाजिकल हो जाता है, तकनीकी हो जाता है, चेतना की उसमें बहुत जरूरत नहीं रह जाती। तो हो सकता है कि ठीक मंदिर जैसी स्थिति भी विद्युत के प्रभाव से पैदा कर दी जाए, लेकिन चेतना के जो चारित्रिक परिवर्तन होते थे वे न हों। जो चेतना को ऊंचाइयां मिलती थीं, जो रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन होता था, वह न हो। वह आदमी को बटन दबाने से जो मिल जाए उससे कोई बहुत मूल रूपांतरण नहीं हो सकते। वे एक उपकरण होंगे। इसलिए मंदिर की जरूरत समाप्त होगी, ऐसा मैं नहीं मानता हूं।
और आप पूछते हैं कि क्या आज भी वे वापस इस परिवर्तित समय में उपयोग में लाए जा सकते हैं?
वे लाए जा सकते हैं। लेकिन पुराना पुरोहित मंदिर में जो बैठा है वह उसको उपयोग में लाने के लिए लोगों को नहीं समझा पाएगा। उसके पास चाबी है, लेकिन उसके पास चाबी के पीछे कोई व्यवस्था नहीं है। मंदिर की पूरी दृष्टि और पूरे दर्शन को पुनर्स्थापित करना आज भी काम में आ सकता है। और पुराने से भी बेहतर हम मंदिर आज बना सकते हैं, क्योंकि आज सब साधन हमारे पास ज्यादा बेहतर हैं। ज्यादा बेहतर सामान का उपयोग किया जा सकता है जो ध्वनि को हजार गुना कर दे, मैग्नीफाई कर दे। इतनी संवेदनशील दीवारें बनाई जा सकती हैं कि आप एक बार ओम कहें और दीवारें लाख बार ओम दोहरा दें। आज हमारे पास सारे उपकरण ज्यादा बेहतर हो सकते हैं, एक दफा कुंजी ख्याल में हो। उन दिनों तो हमें एक दरवाजा रखना ही पड़ता था, अब हम बिल्कुल बिना दरवाजे के रख सकते हैं। उसको हम बिल्कुल ही बंद कर सकते हैं।
आज हमारे पास ज्यादा बेहतर उपकरण हैं, ज्यादा बेहतर मंदिर बनाया जा सकता है। जिन लोगों ने मंदिर बनाए थे वे बिल्कुल झोपड़े में रह रहे थे, उनके पास कोई उपकरण नहीं थे। मिट्टी-गारे से जो वे कर सकते थे, जो संभव था उस सीमा के भीतर, वह उन्होंने वह किया। फिर भी अदभुत किया! और हमारे पास आज बहुत अदभुत उपकरण हैं, लेकिन हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।
यह तो उसकी अंतर्वस्तु है, मंदिर की। उसकी बहिर्वस्तु भी है। उसका बाह्य उपयोग भी है। यह तो साधक की बात हुई जो मंदिर जाएगा, और साधेगा, और व्यवस्था में गहरा उतरेगा, साधना में डूबेगा, डुबकी लेगा उसकी। लेकिन जो मंदिर के पास से गुजरेगा उसको भी फर्क पड़ता था। पड़ता नहीं है अब। अब तो भीतर जाने वाले पर भी नहीं पड़ता। वह पड़ता था उसी दिन जब भीतर जाने वाला सच में भीतर कुछ कर रहा था। जब एक मंदिर में निरंतर दिन में पच्चीसों, सैकड़ों साधक आकर एक विशेष ध्वनि-व्यवस्था का संचरण करते हैं तो मंदिर चार्ज्ड हो जाता है। मंदिर फिर भीतर ही ध्वनि नहीं फेंकता, मंदिर बाहर भी बहुत सूक्ष्म ध्वनियां फेंकना शुरू कर देता है। जीवित हो जाता है। जीवित मंदिर का अर्थ यही था। जीवित प्रतिमा का भी अर्थ यही था। जिस प्रतिमा से ऐसे व्यक्ति को भी संस्पर्श हो जाए जो उससे संस्पर्श करने आया नहीं था। जो उत्तर दे सके, जो कुछ कर सके।
मंदिर जीवित वही कहा जाता था जिस मंदिर के पास से आप अनजाने गुजर रहे हों, और एकदम आपको लगे कि हवा बदल गई, एकदम आपको लगे कि कुछ वातावरण और हो गया। आपको पता भी न हो कि मंदिर है पड़ोस में, आप अंधेरी रात में गुजर रहे हों, और मंदिर के पास आकर आपको भीतर लगे कि जैसे कोई चीज बदल गई। आप जो सोच रहे थे वह धारा टूट गई, आप कुछ और सोचने लगे। हत्या की सोच रहे थे और एकदम दया से भर गए।
लेकिन यह तभी हो सकता है जब मंदिर चार्ज्ड हो। वहां हर जर्रा-जर्रा, मंदिर की ईंट-ईंट का टुकड़ा-टुकड़ा, द्वार-दरवाजे सब आविष्ट हो गए हों। मंदिर अब जीवित ध्वनियों का हो गया होता है।
वह जो हर मंदिर के सामने लटका हुआ घंटा है वह उसे चार्ज करने के लिए बड़े अदभुत ढंग से प्रयोग होता है। जो आदमी मंदिर में प्रवेश करे वह घंटा बजाएगा। वह मंदिर में आने की अपनी सूचना दे रहा है। लेकिन कभी मंदिर में जाकर घंटा बजाएं, बहुत अलस, सोए मन से नहीं, बहुत होशपूर्वक घंटा बजाएं! घंटा बजाते ही से आपके विचार में डिसकंटीन्युटी पैदा होती है। आप जो सोचते आ रहे थे, उसमें ब्रेक लगता है। वह घंटे की आवाज अस्तव्यस्त कर जाती है भीतर। आपको नया होने का एक क्षण है। और घंटे की जो आवाज है, उस आवाज में,

ओम की आवाज में आंतरिक संबंध है। तो घंटे की आवाज मंदिर को चार्ज करती जाती है दिन भर। ओम की आवाज चार्ज करती जाती है।
मंदिर में जितनी चीजें उपयोग की जाती थीं, चाहे घी से जलने वाला दीया हो, चाहे जलती हुई सुगंध हो, चंदन हो, फूल हों। और हर देवता के लिए विशेष फूल प्रिय थे। कोई देवता के लिए प्रिय होने का सवाल न था, लेकिन हर मंदिर की अपनी ध्वनि-संचरण व्यवस्था थी। उसमें कौन सी ध्वनि हार्मोनियस है कौन सी सुगंध के साथ, इस पर पूरा-पूरा ध्यान था, पूरा-पूरा ध्यान था। सिर्फ वही फूल अंदर लाना है मंदिर के जो मंदिर में पैदा होने वाली ध्वनि के साथ हार्मनी रखते हों, वही सुगंध। अन्यथा दूसरा फूल अंदर नहीं लाना है। मस्जिद में लोबान जलाया जाएगा, मंदिर में अगरबत्ती जलेगी, धूप जलेगी।
उन सबका ध्वनियों से संबंध था। अल्लाह का जो उच्चार है, उसका जो सघन रूप है, उस रूप के साथ लोबान की सुगंध का तालमेल है। और ये तालमेल बड़ी भीतरी खोज से मिले थे। ये ऐसे नहीं सोच लिए गए थे। ऊपर से सोचा भी नहीं जा सकता।
इनके खोजने की बात आपसे कह दूं।
अगर आप अल्लाह का उच्चार करते जाएं--अपने घर में बैठ जाएं, और कभी जहां लोबान नहीं लाया गया है--कमरा बंद कर लें और अल्लाह का उच्चारण करें। अल्लाह का उच्चारण भी सिर्फ अल्लाह नहीं, अल्लाहू! ठीक उसका जो उच्चारण है--अल्लाहू। हू पर जोर होना चाहिए। धीरे-धीरे अल्लाह छूटता जाएगा और हू शेष रह जाएगा, अपने आप। और जिस दिन हू का ही उच्चार रह जाएगा उस दिन आप अचानक पाएंगे कि आपके कमरे में लोबान की गंध फैल गई है।
यह आपके भीतर से आती हुई गंध होगी। लोबान सिर्फ पैरेलल गंध है जो बाद में बाजार में खोजी गई। हू के उच्चार से आपके भीतर से जो गंध आनी शुरू होती है वह गंध फिर बाद में बाजार में बड़ी मुश्किल से खोजी गई कि उससे कोई तालमेल खाती गंध मिल जाए जो हम मस्जिद में जला दें। क्योंकि वहां हू का उच्चार करने वाले को वह सहयोगी हो जाएगी। दोहरा प्रयोग हो जाएगा। उसके भीतर से जब उठेगी तब उठेगी, हम उसके बाहर पैदा कर दें।
ओम के साथ कभी भी भूल कर किसी को लोबान का स्मरण नहीं आता। उसकी चोट अलग जगह है, जहां से वह गंध नहीं निकल सकती।
और हमारे शरीर में गंध के भी क्षेत्र हैं और हमारे मनोभावों से गंध के संबंध हैं। इसलिए जैन कहते हैं कि महावीर के शरीर से गंध नहीं निकलती, दुर्गंध नहीं निकल सकती, सुगंध ही निकलती है--और एक विशेष सुगंध ही। उस सुगंध के आधार पर तीर्थंकर पहचाना जाता रहा है। महावीर के वक्त में आठ लोगों का दावा था कि वे तीर्थंकर हैं, लेकिन सुगंध ने साथ नहीं दिया। आठ लोग दावेदार थे। महावीर से कोई कम नहीं था उन आठ में। महावीर से कम कोई आदमी नहीं था उनमें; ठीक उसी हैसियत के लोग थे। लेकिन उस मंत्र की धारा के लोग नहीं थे जिससे वह सुगंध निकले। उस वजह से वे दावे गलत हो गए।
बुद्ध के बाबत भी लोगों का दावा था कि वे भी तीर्थंकर हैं। और महावीर
से कम उनकी हैसियत जरा भी न थी। उसी हैसियत के आदमी थे; वही स्थिति थी उनकी। लेकिन उस मंत्र-परंपरा के नहीं थे। इसलिए महावीर का शरीर जो गंध दे पाता था वह बुद्ध का शरीर नहीं दे सकता था। डिसीजन गंध से हुआ अंततः। महावीर के पास जाते ही एक विशेष गंध आनी शुरू हो जाती थी। अभी ऐसे लोग जिंदा थे जिन्होंने कहा कि ठीक यही पार्श्वनाथ के शरीर से भी गंध आती थी। अभी ज्यादा दिन पार्श्वनाथ को मरे हुए नहीं हुए थे। गंध की यह स्मृतिसूचक व्यवस्था थी कि जब भी तीर्थंकर पैदा होगा, यही गंध होगी। एक विशेष मंत्र की जो अंतिम प्रक्रिया है उसके बाद ही तीर्थंकर हो सकता है। और उससे यह गंध निकलेगी ही। वह उसका प्रमाण होगी, उसका दावा नहीं होगा। इसलिए महावीर ने कोई दावा नहीं किया, और वे तीर्थंकर हो गए। मक्खली गोशाल ने बहुत दावा किया, लेकिन तीर्थंकर नहीं हो सका।
अब यह आपको हैरानी मालूम होगी कि सूंघ कर तीर्थंकर तय होते थे। मगर आसान नहीं था मामला। और उतनी ही गहरी परीक्षा चाहिए थी, शब्द कुछ कह नहीं सकते थे। पूरा व्यक्तित्व गंध देना चाहिए कि उस व्यक्ति के भीतर वह फूल खिला है! उस मंत्र की अंतिम प्रक्रिया पूरी हो गई, जहां से तीर्थंकर जन्मता है। नहीं तो उसको तीर्थंकर नहीं मानते थे। मक्खली गोशाल कह रहा था, अजित केशकंबल कह रहा था, संजय वेलट्ठिपुत्त था, ये सब बड़े लोग थे, इन सबके

नाम खो गए। उस वक्त ये सब महावीर की हैसियत के लोग थे। इनके लाखों शिष्य थे और उनका दावा था कि हमारा आदमी तीर्थंकर है। और महावीर चुप, इस मामले में कभी उन्होंने दावा नहीं किया। और अंततः लोगों ने कहा कि नहीं, तीर्थंकर तो वही आदमी है। क्योंकि गंध उसका शरीर दे रहा है।
प्रत्येक मंत्र से होने वाली अपनी गंध है। ओम का जिन्होंने पाठ किया
है उन्होंने गंध जानी है। प्रत्येक मंत्र से भीतर पैदा होने वाले प्रकाश का अनुभव है। उस प्रकाश के आधार पर मंदिर में कितना प्रकाश हो, उसका इंतजाम किया गया है, उससे ज्यादा नहीं।
तो आज जो बिजली के बल्ब मंदिर में लगा कर बैठे हैं उनके पागलपन का कोई अंत नहीं है। इससे कोई लेना-देना नहीं है। क्योंकि वह तो बिल्कुल ठीक अंतर-आकाश में जितना प्रकाश होता था, उतनी ही प्रकाश की व्यवस्था मंदिर में करनी थी। बहुत मद्धिम, अनाक्रामक प्रकाश! इसलिए घी को चुना। बहुत अनाक्रामक, चोट करता हुआ नहीं आंख को।
अब यह एकदम से ख्याल नहीं आएगा, क्योंकि हमने कभी प्रकाश पर आंख को टिकाने का कोई अभ्यास नहीं किया है। मिट्टी के तेल का दीया जला लें, और उस पर घंटे भर आंख को रोक कर बैठ जाएं। फिर घी का दीया जलाएं, उस पर घंटे भर आंख को रोक कर बैठ जाएं। मिट्टी के तेल के दीये पर घंटे भर के बाद आंख जलेगी, और दुख पाएगी, और थक जाएगी। और घी के दीये पर घंटे भर में आपकी आंख की ज्योति बढ़ेगी और आंख ज्यादा शांत और स्निग्ध हो जाएगी।
पर ये तो हजारों-हजारों लोगों के अंतर-अनुभव थे, जिनको बाहर व्यवस्था
दी गई थी। पैरेलल थे बाहर के, कोई बाहर हम ठीक वह दीया नहीं खोज सकते जो भीतर हो सकता है, लेकिन निकटतम, एप्रोक्सिमेट जो हो सकता था उस वक्त वह उन्होंने खोज लिया था। बाहर हम ठीक वह सुगंध नहीं खोज सकते जो भीतर पैदा होगी मंत्र के उच्चार से, लेकिन फिर भी निकटतम हम खोज ले सकते हैं।
चंदन सारे मंदिरों में प्रीतिकर हो गया। और चंदन का टीका ठीक हम जहां लगाते हैं वह आज्ञाचक्र है। मंत्र हैं, जिनके अनुभव से भीतर चंदन की सुगंध पैदा होनी शुरू होती है। लेकिन उस सुगंध का स्रोत सदा ही आज्ञाचक्र होता है। जब भी वह अनुभव आता है तो ऐसा ही लगता है कि आज्ञाचक्र से सुगंध निकल रही है और चारों तरफ फैल रही है। पैरेलल प्रतीक हमने चंदन घिस कर और आज्ञाचक्र पर लगाया। जब भीतर आज्ञाचक्र पर सुगंध पैदा होती है तो इतनी शीतलता का अनुभव होता है कि जैसे बर्फ का टुकड़ा रख दिया है। उस समय हमारे पास जो शीतलतम चीज थी... ।
ध्यान रहे, शीतल और ठंडी चीज में फर्क है। ठीक वैसा ही फर्क जैसे कि मिट्टी के तेल के दीये में और घी के तेल के दीये में है। बर्फ ठंडा जरूर है, शीतल नहीं है। इसलिए बर्फ का थोड़ी देर के बाद का अनुभव गर्मी का होगा, उत्ताप का होगा। ठंडा जरूर है, शीतल नहीं है। तो जो अंतिम फलश्रुति निकलेगी वह तो उससे उत्ताप ही निकलने वाली है। आप और गर्म हो गए होंगे। लेकिन चंदन शीतल है, ठंडा नहीं है--सिर्फ शीतल है। और एक बहुत आर्द्र शीतलता है, और जिसमें डेप्थ है।
आपके सिर को हम बर्फ से छुआ दें तो वह सिर्फ सतह को छूता है। और चंदन
को लगा कर देखें। आज्ञाचक्र पर बर्फ को लगा कर देखें थोड़ी देर, फिर बर्फ को अलग रख दें, तो आप पाएंगे कि एक सतह पर उसने छुआ, चमड़ी के पार वह नहीं गया। वहां उत्ताप पैदा कर गया। फिर चंदन को लगाएं, थोड़ी ही देर में आपको लगेगा कि चमड़ी के पार उसकी शीतलता उतरी जा रही है--चमड़ी के पार! चमड़ी के पार न पहुंचे तो बेकार है, क्योंकि वह जो चक्र है वह तो चमड़ी के पार है। पैरेलल! जिन लोगों को आज्ञाचक्र की गति का अनुभव हुआ और उन्होंने वहां शीतलता जानी, उन्होंने चंदन को खोज लिया। और उसकी सुगंध भी ठीक वैसी है जैसी भीतर अनुभव हुई।
ये सारे के सारे उपकरण समानांतर हैं। और जब मंदिर इन सबसे भरा होता है
तो आविष्ट होता है। इसलिए मंदिर में कोई गैर-स्नान करके न जाए। हम उसके व्यक्तित्व को, क्षण भर को ही सही, उसके पुराने तारतम्य को तोड़ना चाहते हैं। बिना घंटा बजाए न जाए, बासे कपड़े पहने न जाए। सच तो यह है कि ठीक मंदिर में कपड़े पहनने के लिए जो व्यवस्था थी, वह रेशम की थी। कोई भी कपड़े पहन कर भीतर न चले जाएं। क्योंकि रेशम शरीर की विद्युत को पैदा करने में बड़ा

अदभुत है और उसको संरक्षित करने में भी। और कितना ही पहनें, बासेपन का ख्याल नहीं पकड़ता। किसी गहरे अर्थ में ताजा बना रहता है।
इस सारी व्यवस्था से अगर कोई मंदिर चलता हो तो वह मंदिर चार्ज्ड, आविष्ट हो जाता है। उसके पास से भी कोई गुजरेगा, तो उस मंदिर का फील्ड पैदा हो जाता है।
महावीर के बाबत कहा जाता है कि महावीर जहां चलते उससे इतनी-इतनी सीमा
के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वह उनका चार्ज्ड फील्ड था। इतनी-इतनी सीमा के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वे जहां से गुजरेंगे तो उनका फील्ड उनके साथ चलेगा। वे चलते हुए मंदिर हैं। तो इतनी सीमा के भीतर कुछ भी हो रहा हो, वह तत्काल बदल जाएगा। पूरा नूह-स्फियर हो जाएगा। तिलार चार्जिन ने नया एक शब्द गढ़ा हैः नूह-स्फियर, एटमास्फियर की जगह। एटमास्फियर का तो मतलब होता है वातावरण। नूह-स्फियर को हिंदी में हम कह सकते हैंः विचार-आवरण, मनस-आवरण। एक मन का भी एक आवरण है। उस फील्ड में अब ऐसी घटनाएं नहीं घटतीं। इसलिए पुराने गुरु के आश्रम में अगर कोई गलत काम हो जाए तो शिष्यों को सजा नहीं दी जाती थी, गुरु अपने को सजा दे देता था। उसका मतलब है कि फील्ड नहीं रहा। इसका कोई कारण नहीं है कि शिष्य को कुछ कहा जाए। व्यर्थ है कहना उसको। उसका मतलब यह है कि गुरु ही नहीं है। नहीं तो एक विशेष सीमा के भीतर तो वह नहीं हो सकता था जो हुआ है। दोष दिए जाने का किसी को कोई कारण नहीं है। उससे गुरु पश्चात्ताप करेगा, तपश्चर्या करेगा, उपवास करेगा, आत्मशुद्धि करेगा।
मगर गांधीजी ने उसको बहुत गलत पकड़ा। वह आत्मशुद्धि दूसरे के लिए प्रताड़ना नहीं है। वह इसलिए नहीं है कि इस तरह हम अपने को सताएं, तो उससे दूसरे पर दबाव डाल देंगे और उसका अंतःकरण बदल लेंगे। वे समझ नहीं पाए। उनको उसका पता भी नहीं था। वह जो गुरु ऐसा करता था, वह उसको बदलने के लिए नहीं करता था, वह सिर्फ जो फील्ड है उसके आस-पास, उसको बदलने के लिए करता था। और अगर वह फील्ड बदलता है, वह विचार-आवरण बदलता है, तो वह आदमी बदलेगा। वह उसको दबाने के लिए, उसको सताने के लिए--कि मैं अपने को सता रहा हूं तो तू अब बदल! ऐसा उसके अंतःकरण-शुद्धि का सवाल नहीं है। अंतःकरण का सवाल नहीं है, चारों तरफ की हवा बदल जाने की बात है। वह एक मैगनेटिक फील्ड है, जो हर ऐसा व्यक्ति लेकर चलता है।
तो मंदिर... व्यक्ति तो चलते हुए थे। महावीर जैसे व्यक्तियों को हम एक जगह नहीं बिठा सकते। सदा के लिए नहीं बिठा सकते। हमें कुछ ज्यादा स्थिर, जो गांव की जिंदगी का केंद्र बन जाए, जिसके आस-पास गांव बदलता रहे। जिसके आस-पास निरंतर हम कुछ डालते रहें मंदिर में जाकर, और मंदिर से हम लेते रहें। जिसका हमें पता भी न चले, यह सब अनजान चुपचाप होता रहे। मंदिर के पास से निकलें तो कुछ हो जाए। कोई भी निकले मंदिर के पास से तो कुछ हो जाए।
तो एक बहुत मैगनेटिक फील्ड है मंदिर की--बाहर के लिए मैं कह रहा हूं--
एक बाहरी प्रयोग के लिए उसको खड़ा किया था। जैसे कि चुंबक के पास लोहा भी आए तो चुंबकीय मालूम पड़ने लगे, और मंदिर के पास कोई आए तो मंदिर उसे घेर ले और छा ले। तो मंदिर का क्षेत्र था।
मूसा के जीवन में उल्लेख है कि जब मूसा पहाड़ पर गया, उसने पहाड़ पर दिव्य अग्नि जलते देखी। एक झाड़ी में आग लगी है। पूरी झाड़ी जलती है, चारों तरफ आग है, फिर भी बीच में झाड़ी में फूल खिले हैं और झाड़ी में हरे पत्ते हैं। मूसा परमात्मा की खोज में है, वह एकदम आगे बढ़ा, तो झाड़ी से जोर से आवाज आई कि नासमझ, जूते सीमा के बाहर छोड़ दे!
सीमा वहां कोई न थी, खुला जंगल था। सीमा वहां कोई न थी, खुला जंगल था;
तो मूसा ने चल कर देखा कि सीमा कहां है? और जब उसे अनुभव हो गया कि सीमा यहां है--जहां तक मूसा मूसा रहा, और जहां से एक कदम आगे बढ़ा और उसे लगा कि कुछ बदला--वहां उसने जूते बाहर रख दिए। यह मैगनेटिक फील्ड! उसने जूते बाहर रख दिए और माफी मांगी कि मुझे क्षमा कर देना, मैं पवित्र भूमि में जूता लिए आ गया था।
मंदिर का एक वर्तुल है, उसके अपने आविष्ट क्षेत्र का, जो बहुत जीवंत है। उस जीवंत वर्तुल का पूरे गांव के लिए उपयोग था। और उसने परिणाम लाए थे। हजारों-हजारों साल तक भारत के गांव की जो निर्दोषता और पवित्रता थी,

उसके लिए गांव कम जिम्मेवार था, उस गांव का मंदिर आविष्ट था, वही ज्यादा जिम्मेवार था। तो जिस गांव में मंदिर नहीं था, उससे दीन गांव नहीं था। कितना ही गरीब गांव हो, मंदिर तो उसका होना ही था। मंदिर के बिना तो सब अस्तव्यस्त था। हजारों वर्ष तक गांव ने एक तरह की पवित्रता कायम रखी थी। उस पवित्रता के बड़े अदृश्य स्रोत थे। और पूरब की संस्कृति को तोड़ने के लिए जो सबसे बड़ा काम हो सकता था वह मंदिर के आविष्ट रूप को तोड़ देना था। मंदिर का आविष्ट रूप टूट जाए तो पूरब की पूरी संस्कृति का जो आत्मस्रोत है वह बिखर जाता है।
इसलिए मंदिर पर भारी संदेह है। और जो भी पढ़ा-लिखा हुआ थोड़ा, जिसे मंदिर के जीवंत रूप का कोई अनुभव नहीं रहा और जिसने केवल शब्द और तर्क सीखे स्कूल और कालेज में, जिसके पास सिर्फ बुद्धि रही और हृदयगत कोई द्वार न रहा, उसे मंदिर के पास जाकर कुछ दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा, कुछ भी नहीं है। धीरे-धीरे वह मंदिर का अर्थ टूटता चला गया।
भारत पुनः कभी भारत नहीं हो सकता जब तक उसका मंदिर जीवंत न हो जाए--कभी पुनः भारत नहीं हो सकता। उसकी सारी कीमिया, सारी अल्केमी ही मंदिर में थी, जहां से उसने सब कुछ लिया था। चाहे बीमार हुआ हो तो मंदिर भाग कर गया था, चाहे दुखी हुआ हो तो मंदिर भाग कर गया था, चाहे सुखी हुआ हो तो मंदिर धन्यवाद देने गया था। घर में खुशी आई हो तो मंदिर में प्रसाद चढ़ा आया था; घर में तकलीफ आई हो तो मंदिर में निवेदन कर आया था। सब कुछ उसका मंदिर था। सारी आशाएं, सारी आकांक्षाएं, सारी अभीप्साएं उसके मंदिर के आस-पास थीं। खुद कितना ही दीन रहा हो, मंदिर को उसने सोने और हीरे-जवाहरातों से सजा रखा था।
आज जब हम सिर्फ सोचने बैठते हैं तो यह बिल्कुल पागलपन मालूम पड़ता है
कि आदमी भूखा मर रहा है--यह मंदिर को हटाओ, एक अस्पताल बना दो। एक स्कूल खोल दो। इसमें शरणार्थी ही ठहरा दो। इस मंदिर का कुछ उपयोग कर लो। क्योंकि मंदिर का उपयोग हमें पता नहीं है, इसलिए वह बिल्कुल निरुपयोगी मालूम हो रहा है, उसमें कुछ भी तो नहीं है। और मंदिर में क्या जरूरत है सोने की, और मंदिर में क्या जरूरत है हीरों की, जब कि लोग भूखे मर रहे हैं!
लेकिन भूखे मरने वाले लोगों ने ही मंदिर में हीरा और सोना बहुत दिन से लगा रखा था। उसके कुछ कारण थे। जो भी उनके पास श्रेष्ठ था वह मंदिर में रख आए थे। क्योंकि जो भी उन्होंने श्रेष्ठ जाना था वह मंदिर से ही जाना था। इसके उत्तर में उनके पास कुछ देने को नहीं था। न सोना कुछ उत्तर था, न हीरे कोई उत्तर थे। लेकिन जो मिला था मंदिर से, उसका हम कुछ और भी तो वहां नहीं दे सकते थे, वहां कुछ धन्यवाद देने को भी नहीं था। तो जो भी था वह हम वहां रख आए थे। अकारण नहीं था वह। लाखों साल तक अकारण कुछ नहीं चलता। इस मंदिर के बाहर ये तो उसके आविष्ट रूप के अदृश्य परिणाम थे, जो चौबीस घंटे तरंगायित होते रहते थे। उसके चेतन परिणाम भी थे। उसके चेतन परिणाम बहुत सीधे-साफ थे।
आदमी को निरंतर विस्मरण है। वह सब जो महान है, विस्मृत हो जाता है; और
जो सब क्षुद्र है, चौबीस घंटे याद आता है। परमात्मा को याद रखना पड़ता है, वासना को याद रखना नहीं पड़ता, वह याद आती है। गड्ढे में उतर जाने में कोई कठिनाई नहीं होती, पहाड़ चढ़ने में कठिनाई होती है। तो मंदिर गांव के बीच में निर्मित करते थे कि दिन में दस बार आते-जाते मंदिर किसी और एक आकांक्षा को भी जगाए रखे। और ध्यान रहे, हममें से बहुत कम ऐसे हैं जिनकी आकांक्षा सहज आंतरिक रूप से जगती है। हममें से बहुतों की आकांक्षाएं तो सिर्फ चीजों को देख कर ही जगती हैं।
अगर हवाई जहाज नहीं था दुनिया में तो आपको हवाई जहाज में उड़ने की कोई आकांक्षा नहीं जगती थी। हां, किसी राइट ब्रदर को जगती थी। वह एकाध आदमी है जो हवाई जहाज बनाता है। उसको जगती है उड़ने की आकांक्षा, तो हवाई जहाज बनाता है। लेकिन आपको कभी नहीं जगती। आप हवाई जहाज देखते हैं तो जगती है। हमें चीजें दिखाई पड़ती हैं तो हमारे भीतर उन्हें पाने की आकांक्षा जगती है।
तो परमात्मा का कहीं न कहीं कोई साकार रूप, जो हमें दिखाई पड़ सके, जो
हम अंधों के मन में कहीं प्रवेश कर सके, जो कि निराकार के लिए आतुर नहीं हो

सकते। जो हो सकते हैं उनके लिए तो कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए जो हो सकते थे उन्होंने कई लिहाज से मंदिर को नुकसान पहुंचा दिया। उसमें भूल हुई। जो हो सकते थे निराकार से आविष्ट, उन्होंने कहाः बेकार है, हटा दो।
मैं खुद ही निरंतर कहा हूं कि बेकार है, हटा दो। लेकिन धीरे-धीरे मुझे ख्याल में आया कि यह जो मैं कह रहा हूं, और यह मंदिर हट गया, तो जिनको आकार से कुछ स्मरण नहीं आया उनको निराकार से आ सकेगा? तो कई बार कठिनाई हुई है। महावीर अगर अपनी हैसियत से बोलेंगे तो कहेंगे हटा दो। क्योंकि महावीर को कोई जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन कभी आपका ख्याल आ जाए तो इसे रोक लेना पड़ेगा। इसे रोक लेना पड़ेगा। यह आपके लिए चौबीस घंटे आकांक्षा का एक नया स्रोत बना रहता है।
एक और द्वार भी है जीवन में--दुकान और घर ही नहीं, धन और स्त्री ही नहीं--एक और द्वार भी है जीवन में, जो न बाजार का हिस्सा है, न वासना का हिस्सा है; न धन मिलता है वहां, न यश मिलता है वहां, न काम-तृप्ति होती है वहां। एक जगह और भी है, एक जगह और भी है--यह गांव में ही नहीं है, जीवन में एक जगह और है--इसके लिए धीरे-धीरे यह मंदिर रोज आपको याद दिलाता है। और ऐसे क्षण हैं जब बाजार से भी आप ऊब जाते हैं। और ऐसे क्षण हैं जब घर से भी ऊब जाते हैं। तब मंदिर का द्वार खुला है। ऐसे क्षण में तत्काल आप मंदिर में सरक जाते हैं। मंदिर सदा तैयार है।
जहां मंदिर गिर गया वहां फिर बड़ी कठिनाई है, विकल्प नहीं है। घर से ऊब जाएं तो होटल हो सकता है, रेस्तरां हो सकता है। बाजार से ऊब जाएं। पर जाएं कहां? कोई अलग डायमेंशन, कोई अलग आयाम नहीं है। बस वही है, वहीं के वहीं घूमते रहते हैं।
मंदिर एक बिल्कुल अलग डायमेंशन है जहां लेन-देन की दुनिया नहीं है। इसलिए जिन्होंने मंदिर को लेन-देन की दुनिया बनाया, उन्होंने मंदिर को गिराया। जिन्होंने मंदिर को बाजार बनाया, उन्होंने मंदिर को नष्ट किया।
जिन्होंने मंदिर को भी दुकान बना लिया, उन्होंने मंदिर को नष्ट कर दिया।
मंदिर लेन-देन की दुनिया नहीं है। सिर्फ एक विश्राम है। एक विराम है, जहां आप सब तरफ से थके-मांदे चुपचाप वहां सिर छिपा सकते हैं।
और वहां की कोई शर्त नहीं है कि आप इस शर्त से आओ। इतना धन हो तो आओ, इतना ज्ञान हो तो आओ, कि इतनी प्रतिष्ठा हो तो आओ, कि ऐसे कपड़े पहन कर आओ, कि मत आओ। वहां की कोई शर्त नहीं है। आप जैसे हो, मंदिर आपको स्वीकार कर लेगा। कहीं कोई जगह है, जैसे आप हो वैसे ही आप स्वीकृत हो जाओगे, ऐसा भी शरण-स्थल है।
और आपकी जिंदगी में हर वक्त ऐसे मौके आएंगे जब कि जो जिंदगी है तथाकथित, उससे आप ऊबे होंगे, उस क्षण प्रार्थना का दरवाजा खुला है! और एक दफे भी वह दरवाजा आपके भीतर भी खुल जाए तो फिर दुकान में भी खुला रहेगा, मकान में भी खुला रहेगा। वह तत्काल निरंतर पास होना चाहिए, जब आप चाहो वहां पहुंच सको। क्योंकि आपके बीच जिसको हम विराट का क्षण कहें वह बहुत अल्प है। कभी क्षण भर को होता है। जरूरी नहीं कि आप तीर्थ जा सको, जरूरी नहीं कि महावीर को खोज सको, कि बुद्ध को खोज सको। वह इतना अल्प है, उस क्षण बिल्कुल निकटतम आपके कोई जगह होनी चाहिए जहां आप प्रवेश कर सकें। स्मृति के भी अदभुत परिणाम हैं। और छोटे बच्चे--और हम सभी छोटे बच्चे थे, और जो भी होगा वह छोटा बच्चा होगा।
वैज्ञानिक कहते हैं कि सात साल में बच्चा करीब-करीब जो भी आधारभूत है,
वह सीख लेता है। फिर इसी आधारभूत पर फैलाव हो सकता है। लेकिन नया बहुत कम जोड़ा जाता है। जुड़ता है, उसी में। कुछ नया नहीं जोड़ा जाता। अगर हमने सात साल के बच्चे तक की जिंदगी में मंदिर नहीं जोड़ा, तो आप दोबारा नहीं जोड़ पाएंगे। बहुत कठिन हो जाएगा। बहुत कठिन हो जाएगा, और कितना ही जोड़ने की मेहनत की जाए वह कभी गहरा नहीं हो पाएगा, ऊपर-ऊपर से रह जाएगा।
तो बच्चा पहले दिन पैदा हुआ, और मंदिर। पहली स्मृति हम मंदिर की बनाना चाहते थे। वह मंदिर के पास ही बड़ा हो, वह मंदिर को जानता हुआ बड़ा हो, वह मंदिर को पहचानता हुआ बड़ा हो। मंदिर उसके अंतरंग का हिस्सा बन जाए। जब वह जिंदगी में प्रवेश करे तो उसके भीतर मंदिर की एक जगह बन जाए। क्योंकि अंततः वही जगह उसका विश्रामस्थल बनेगी जीवन के अंत में! सारी दौड़-धूप के

बाद वही कोना उसका आखिरी घर और निवास होने वाला है। वह हमें पहले ही बना देना है। एक दफा वह नहीं बना तो फिर बहुत कठिनाई हो जाती है। व्यर्थ की कठिनाई हो जाती है। और जो इतनी सरलता से बन सकता है वह फिर बहुत कठिनता से भी नहीं बन पाता।
वह जगह निर्मित हो जाए। बाहर जो भी लोग जी रहे हैं, मंदिर के प्रतिबिंब उनके चित्त में उतरते चले जाएं। वे उनके अचेतन में इतने गहरे उतर जाएं कि सोच-विचार का भी हिस्सा न रह जाएं, वे उनके हिस्से ही हो जाएं। इसलिए सारी पृथ्वी पर, चाहे रूप कोई भी रहे हों, अलग-अलग रूप रहे, लेकिन मंदिर अनिवार्य था, मनुष्य जिस सभ्यता और संस्कृति में जीया, उसका।
अब हम जो दुनिया बनाने जा रहे हैं उसमें मंदिर अनिवार्य नहीं रह गया है। कुछ और चीजें अनिवार्य हो गई हैं--स्कूल है, अस्पताल है, पुस्तकालय है। पर ये सब अति लौकिक हैं, इनसे कुछ पार का, बियांड का कोई संबंध नहीं जुड़ता है। सदा ही, वह जो अतिक्रमण कर जाता है जीवन का, उसकी तरफ इशारा बना रहे। सुबह हमारी आंख खुलें तो मंदिर की घंटी बजती हुई सुनाई पड़े। रात हम सोने जाते हों तो मंदिर का भजन हमें सुनाई पड़ जाए। हम न भी करें, तो भी मंदिर का भजन हमारे कान में पड़ जाए।
महावीर के जीवन में एक कथा है कि एक आदमी है चोर। मर रहा है, तो अपने बेटे को उसने कहा है... बेटे ने पूछा है कि कोई आखिरी शिक्षा? तो उसने कहा, एक ही शिक्षा है कि यह जो महावीर नाम का आदमी है इसके पास भी मत खड़े होना। यह अगर तुम्हारे गांव में बोलता हो, दूसरे गांव में भाग जाना। यह अगर रास्ते से गुजरता हो, फौरन गली-कूचे में कहीं भी निकल कर छिप जाना। अगर पता न चले और तुम ऐसी जगह पहुंच जाओ जहां उसकी आवाज सुनाई पड़ रही हो, फौरन अपने कान बंद करके, आंख बंद करके दौड़ आना। इस आदमी से बचना।
उस चोर के लड़के ने कहा, लेकिन इतना डरने की इस आदमी से क्या जरूरत है? उसने कहा, मैं तुमसे कहता हूं, वह मानो। ऐसे आदमियों के पास गए तो अपना धंधा सदा खतरे में है, फिर हम नहीं जी सकते। इनसे बचना।
फिर बड़ी मजेदार कथा है। वह बचता है जिंदगी भर। भागता रहा, जहां महावीर आएं वह वहां से भाग जाता। लेकिन एक दिन कुछ भूल-चूक हो गई। एक रास्ते से गुजरता था, आम्रवन में महावीर बैठे थे, उसे कुछ पता न था। बोल नहीं रहे थे, जब वह आया था पास तब बोल नहीं रहे थे, अचानक उन्होंने बोलना शुरू किया तो आधा वाक्य उसको सुनाई पड़ गया। तब उसने कान बंद किए और भागा। लेकिन आधा वाक्य सुनाई पड़ गया। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आधा वाक्य!
पुलिस उसके पीछे थी, राज्य उसके पीछे था, कोई दस-पंद्रह दिन बाद वह पकड़ा गया। लेकिन इतना कुशल चोर था, पीढ़ी दर पीढ़ी का उसका धंधा था। इतना कुशल चोर था कि राज्य के पास कोई भी प्रमाण न थे। जाहिर था सब कि चोर वही है, जाहिर था बड़ी चोरियां उसी ने की हैं। सबको पता था। इसमें छिपा भी कुछ न था, जाहिर रहस्य था। लेकिन फिर भी प्रमाण कुछ न थे; कुशल ऐसा था। लोगों के घरों में खबर करके चोरी कर लेता था, पर प्रमाण नहीं थे कोई। तो सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं था कि कोई प्रमाण उससे ही निकलवाए जाएं।
तो उसे गहरा नशा करके बेहोश किया, इतना बेहोश रखा उसे दो-तीन दिन, बिल्कुल होश में नहीं आने दिया। दो-तीन दिन के बाद वह होश में आया। उसने आंख खोलीं, तो तीन दिन की बेहोशी थी, खुमारी थी। देखा चारों तरफ, अप्सराएं खड़ी हैं। उसने पूछा, मैं कहां हूं?
तुम मर गए हो और तुम्हें स्वर्ग या नरक ले जाने की तैयारी की जा रही है। हम सिर्फ ले जाने वाले हैं। तुम होश में आ जाओ, इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तो तुमसे पूछ लें। अगर तुमने जो-जो पाप किए हैं वह तुम कह दो, तो स्वर्ग जा सकते हो, और न कहो तो नरक। सत्य बोल दो, बस इतना काफी पुण्य है। उसका मन हुआ कि बोल दे सत्य, स्वर्ग जाने का मौका न चूके। और जब मर ही गया तो अब क्या डर है? लेकिन तभी उसे महावीर का वह आधा वचन याद आया। जब वह गुजर रहा था उस वक्त महावीर कुछ देवताओं और प्रेतों के संबंध में बोल रहे थे। मृत्यु के पार जो यम ले जाते हैं उनके संबंध में कुछ इशारे थे। आधा ही वाक्य उसने सुना था। उसमें महावीर कह रहे थे कि वे जो ले जाते हैं मृत्यु के बाद, उनके पैर उलटे होते हैं।

तो उसने उनके पैर देख लिए, वे सब तो सीधे थे। वह सजग हो गया। उसने कहा
कि इस झंझट में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। सजग हो गया और समझ गया कि यह कुछ गड़बड़ मामला है। होश आ गया। उसने कुछ कहा नहीं। उसने कहा कि पाप तो कुछ किए नहीं, तो वक्तव्य क्या दूं! नरक ही ले चलो। पाप मैंने कुछ किए नहीं तो नरक तुम ले जाओगे कैसे?
वह सब योजना व्यर्थ हो गई। वह भागा हुआ महावीर के पास पहुंचा, जाकर उनका पैर पकड़ लिया और कहा कि पूरा वाक्य करो, आधे वाक्य ने बचा लिया। अब तुम्हारा पूरा वाक्य सुन लूं। मैं तो भाग रहा था। आधा ऐसे ही सुन लिया था भागते-भागते। उसने बचा ली जिंदगी, नहीं तो फांसी लग गई होती! अब तुम पूरा कह दो, क्या कहना है। नहीं तो फांसी कभी न कभी लगेगी। अब मैं आ गया तुम्हारी शरण!
तो महावीर अक्सर कहा करते थे कि आधा वाक्य भागते हुए जबरदस्ती सुना गया भी कभी काम का हो जाता है।
तो मंदिर के पास से कभी भागता हुआ आदमी भी, ऐसे अकारण गुजरता हुआ आदमी भी, कभी उसके भीतर से उठती हुई ध्वनि को, कभी उसके भीतर से आती सुगंध को ऐसे ही सुन ले, तो भी काम आ सकती है।
"गहरे पानी पैठ" : अंतरंग चर्चा

मैं कहता आंखन देखी
छठवां प्रवचन

तीर्थ: परम की गुह्य यात्रा

कुछ चीजें हैं जिनका कभी अर्थ था पर अब व्यर्थ हो गई हैं। उन्हें समझाने की कृपा करें और बताएं कि क्या ये साधना के बाह्य उपकरण थे? स्मरण की मात्र बाह्य व्यवस्था थी जो समय की तीव्र गति के साथ पूरी की पूरी उखड़ गई? अथवा भीतर से भी इनके कुछ अंतर्संबंध थे?

एक छोटे से द्वीप पर, ईस्टन आईलैंड में, एक हजार बड़ी मूर्तियां हैं। कोई भी मूर्ति बीस फीट से छोटी नहीं है। और निवासियों की कुल संख्या दो सौ है। और एक हजार, बीस फीट से बड़ी विशाल मूर्तियां हैं! तो जब पहली दफा इस छोटे से द्वीप का पता लगा तो बड़ी कठिनाई हुई। कठिनाई यह हुई कि इतने थोड़े से लोगों के लिए... और ऐसा भी नहीं है कि कभी उस द्वीप की आबादी इससे ज्यादा हो सकी हो। क्योंकि उस द्वीप की सामर्थ्य ही नहीं है इससे ज्यादा लोगों के लिए; जो पैदावार हो सकती है वह इससे ज्यादा लोगों को पाल भी नहीं सकती। तो जहां दो सौ लोग रह सकते हों, वहां एक हजार मूर्तियां विशाल पत्थर की खोदने का प्रयोजन नहीं मालूम पड़ता। एक आदमी के पीछे पांच मूर्तियां हो गईं। और इतनी बड़ी मूर्तियां ये दो सौ लोग खोदना भी चाहें तो नहीं खोद सकते। इतना महंगा काम ये गरीब आदिवासी करना भी चाहें तो भी नहीं कर सकते। इनकी जिंदगी तो सुबह से सांझ तक रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाती है। और इन मूर्तियों को बनाने में हजारों वर्ष लगेंगे!
क्या होगा प्रयोजन इतनी मूर्तियों का? किसने इन मूर्तियों को बनाया होगा? क्यों बनाया होगा? तो इतिहासविद के सामने बहुत से सवाल थे।
ऐसी ही एक जगह मध्य एशिया में है। और जब तक हवाई जहाज नहीं उपलब्ध था,
तब तक उस जगह को समझना बहुत मुश्किल पड़ा। हवाई जहाज के बन जाने के बाद ही यह ख्याल में आया कि वह जगह कभी जमीन से हवाई जहाज उड़ने के लिए एयरपोर्ट का काम करती रही होगी। उस तरह की जगह के बनाने का और कोई प्रयोजन नहीं हो सकता, सिवाय इसके कि वह हवाई जहाज के उड़ने या उतरने के काम में आती रही हो। फिर वह जगह नयी नहीं है। उसको बने हुए अंदाजन बीस हजार और पंद्रह हजार वर्ष के बीच का वक्त हुआ होगा। लेकिन जब तक हवाई जहाज नहीं बने थे तब तक तो हमारी समझ के बाहर थी। हवाई जहाज बने और हमने एयरपोर्ट बनाए, तब हमारी समझ में आया कि वह कभी एयरपोर्ट का काम की होगी जगह। जब तक यह नहीं था, तब तक तो सवाल भी नहीं उठता था। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि तीर्थ को हम न समझ पाएंगे, जब तक कि तीर्थ पुनः आविष्कृत न हो जाए।
अब जाकर, वे जो ईस्टन आईलैंड की मूर्तियां हैं, उनके जो एयरव्यू--आकाश
से हवाई जहाज के द्वारा जो चित्र लिए गए हैं--उनसे अंदाज लगता है कि वे इस ढंग से बनाई गई हैं और इस विशेष व्यवस्था में बनाई गई हैं कि किन्हीं खास रातों में चांद पर से देखी जा सकें। वे जिस ज्यामिति के जिन कोणों में खड़ी की गई हैं, वे कोण बनाती हैं पूरा का पूरा। और अब जो लोग उस संबंध में खोज करते हैं, उनका ख्याल यह है कि यह पहला मौका नहीं है कि हमने दूसरे ग्रहों पर जो जीवन है, उससे संबंध स्थापित करने की कामना की है। इसके पहले भी जमीन पर बहुत से प्रयोग किए गए, जिनसे हम दूसरे ग्रहों पर अगर कोई जीवन, कोई प्राणी हों, तो उनसे हमारा संबंध स्थापित हो सके। और दूसरे प्राणी-लोकों से भी पृथ्वी तक संबंध स्थापित हो सके, इसके बहुत से सांकेतिक इंतजाम किए गए।
ये जो बीस-तीस फीट ऊंची मूर्तियां हैं, ये अपने आप में अर्थपूर्ण नहीं हैं; लेकिन जब ऊपर से उड़ कर इनके पूरे पैटर्न को देखा जाए, तब इनका पैटर्न किसी संकेत की सूचना देता है। वह संकेत चांद से पढ़ा जा सकता है। पर जिन लोगों ने वह बनाया होगा... जब तक हम हवाई जहाज में उड़ कर न देख सके, तब तक हम कल्पना भी न कर सके, तब तक वे हमारे लिए मूर्तियां थीं। ऐसे ही इस पृथ्वी पर बहुत सी चीजें हैं, जिनके संबंध में तब तक हम कुछ भी नहीं जान पाते, जब

तक कि किसी रूप में हमारी सभ्यता उस घटना का पुनआर्विष्कार न कर ले। तब तक हम कुछ भी नहीं जान पाते।
अभी मैं दो-तीन दिन पहले ही बात कर रहा था। तेहरान में एक छोटा सा लोहे
का डिब्बा मिला था। फिर वह ब्रिटिश म्यूजियम में पड़ा रहा। ये कोई वर्षों उसने प्रतीक्षा की उस डिब्बे ने। यह तो अभी-अभी जाकर पता लगा कि वह बैट्री है, जो दो हजार साल पहले तेहरान में उपयोग आती रही। मगर उसकी बनावट का ढंग ऐसा था कि ख्याल में नहीं आ सका। लेकिन अब तो उसकी पूरी खोजबीन हो गई। और तेहरान में दो हजार साल पहले बैट्री हो सकती है, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते! इसलिए कभी सोचा नहीं उस तरफ। लेकिन अब तो उसमें पूरा साफ हो गया है कि वह बैट्री ही है। पर अगर हमारे पास बैट्री न होती तो हम किसी भी तरह से इस डिब्बे में बैट्री खोज ही नहीं पाते। ख्याल भी नहीं आता, धारणा भी नहीं बनती।
तो तीर्थ पुरानी सभ्यता के खोजे हुए बहुत-बहुत गहरे, सांकेतिक, और बहुत अनूठे आविष्कार हैं। लेकिन हमारी सभ्यता के पास उनको समझने के सब रूप खो गए हैं। सिर्फ एक मुर्दा व्यवस्था रह गई है। हम उसको ढोए चले जाते हैं बिना यह जाने कि वे क्यों निर्मित हुए, क्या उनका उपयोग किया जाता रहा, किन लोगों ने उन्हें बनाया, क्या प्रयोजन था। और जो ऊपर से दिखाई पड़ता है वही सब कुछ नहीं है, भीतर कुछ और भी है जो ऊपर से कभी भी दिखाई नहीं पड़ता। तो पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि हमारी सभ्यता ने तीर्थ का अर्थ
खो दिया है। इसलिए जो आज तीर्थ जाते हैं वे भी करीब-करीब व्यर्थ जाते हैं; जो उसका विरोध करते हैं वे भी करीब-करीब व्यर्थ करते हैं। बल्कि विरोध करने वाला ही ठीक मालूम पड़ेगा, यद्यपि उसे भी कुछ पता नहीं है। वह जिस तीर्थ का विरोध कर रहा है वह तीर्थ की धारणा नहीं है। यद्यपि वह तीर्थ जाने वाला जिस तीर्थ में जा रहा है वह भी तीर्थ की धारणा नहीं है। तो चार-पांच चीजें पहले ख्याल में ले लेनी चाहिए।
एक तो जैसे कि जैनों का तीर्थ है--सम्मेत शिखर। तो जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में से बाईस तीर्थंकरों का समाधि-स्थल है वह। चौबीस में से बाईस तीर्थंकर सम्मेत शिखर पर शरीर-विसर्जन किए हैं। आयोजित थी यह व्यवस्था। अन्यथा एक जगह पर जाकर इतने तीर्थंकरों का, चौबीस में से बाईस का, जीवन अंत होना आसान मामला नहीं है बिना आयोजन के। एक ही स्थान पर, हजारों साल के लंबे फासले में--अगर हम जैनों का हिसाब मानें, और मैं मानता हूं कि हमें जहां तक बन सके जिसका हिसाब हो उसका मानने की पहले कोशिश करनी चाहिए--तब तो लाखों वर्षों का फासला है उनके पहले तीर्थंकर में और चौबीसवें तीर्थंकर में। लाखों वर्षों के फासले पर एक ही स्थान पर बाईस तीर्थंकरों का जाकर अपने शरीर को छोड़ना विचारणीय है।
मुसलमानों का तीर्थ है--काबा। काबा में मोहम्मद के वक्त तक तीन सौ पैंसठ मूर्तियां थीं। और हर दिन की एक अलग मूर्ति थी। वे तीन सौ पैंसठ मूर्तियां हटा दी गईं, फेंक दी गईं। लेकिन जो केंद्रीय पत्थर था मूर्तियों का, जो मंदिर का केंद्र था, वह नहीं हटाया गया। तो काबा मुसलमानों से बहुत ज्यादा पुरानी जगह है। मुसलमानों की तो उम्र बहुत लंबी नहीं है, चौदह सौ वर्ष है। लेकिन काबा लाखों वर्ष पुराना पत्थर है--वह जो काला पत्थर है।
और भी दूसरी एक मजे की बात है कि वह पत्थर जमीन का नहीं है। वह पत्थर जमीन का पत्थर नहीं है। अब तक तो वैज्ञानिक... क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था, वह जमीन का पत्थर नहीं है यह तो तय है। तो एक ही उपाय था हमारे पास कि वह उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर है। जो पत्थर जमीन पर गिरते हैं, और थोड़े पत्थर नहीं गिरते, रोज दस हजार पत्थर जमीन पर गिरते हैं चौबीस घंटे में। जो आपको रात तारे गिरते हुए दिखाई पड़ते हैं वे तारे नहीं होते, वे उल्काएं हैं, पत्थर हैं, जो जमीन पर गिरते हैं। लेकिन जोर से घर्षण खाकर हवा का, वे जल उठते हैं। अधिकतर तो बीच में ही राख हो जाते हैं, कोई-कोई जमीन तक पहुंच जाता है। कभी-कभी जमीन पर बहुत बड़े पत्थर पहुंच जाते हैं। उन पत्थरों की बनावट और निर्मिति सारी भिन्न होती है।
यह जो काबा का पत्थर है, यह जमीन का पत्थर नहीं है। तो सीधी व्याख्या
तो यह है कि वह उल्कापात में गिरा होगा। लेकिन जो और गहरे जानते हैं, उनका

मानना है, वह उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर नहीं है। जैसे हम आज जाकर चांद पर जमीन के चिह्न छोड़ आए हैं। समझ लें कि एक लाख साल बाद यह पृथ्वी नष्ट हो चुकी हो, इसकी आबादी खो चुकी हो--कोई आश्चर्य नहीं है, कल अगर तीसरा महायुद्ध हो जाए तो यह पृथ्वी सूनी हो जाएगी--पर चांद पर जो हम चिह्न छोड़ आए हैं, हमारे अंतरिक्ष यात्री चांद पर जो वस्तुएं छोड़ आए हैं, वे बनी रहेंगी सुरक्षित। उनको बनाया इस ढंग से गया है कि वे लाखों वर्षों तक सुरक्षित रह सकें।
अगर कभी कोई भी जीवन चांद पर विकसित हुआ, या किसी और ग्रह से चांद पर पहुंचा, और वे चीजें मिलेंगी, तो उनके लिए भी कठिनाई होगी कि वे कहां से आई हैं? उनके लिए भी कठिनाई होगी! काबा का जो पत्थर है वह सिर्फ उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर नहीं है, वह पत्थर पृथ्वी पर किन्हीं और ग्रहों के यात्रियों द्वारा छोड़ा गया पत्थर है। और उस पत्थर के माध्यम से उस ग्रह के यात्रियों से संबंध स्थापित किए जा सकते थे। लेकिन पीछे सिर्फ उसकी पूजा रह गई। उसका पूरा-पूरा विज्ञान खो गया; उससे कैसे संबंध स्थापित किए जा सकें, वह सारी बात खो गई; सिर्फ पूजा रह गई।
रूस का एक अंतरिक्ष यान, जिसमें कोई मनुष्य यात्री नहीं था, खो गया। क्योंकि उसकी जो रेडियो व्यवस्था थी हमसे, वह टूट गई। उसका रेडियो खराब हो गया। जैसे ही उसका रेडियो खराब हुआ, हम यह भी पता न लगा सके कि वह कहां गया। वह कहां गया, कहां है, बचा, जला, समाप्त हुआ, हम कुछ भी पता न लगा सके। इस अनंत अंतरिक्ष में अब हम उसका कभी पता न लगा सकेंगे; क्योंकि उससे संबंध के सब सूत्र खो गए।
वह अगर किसी ग्रह पर गिर जाए तो उस ग्रह के यात्री भी क्या करेंगे? अगर उनके पास इतनी वैज्ञानिक उपलब्धि हो कि उसके रेडियो को ठीक कर सकें, तो हमसे संबंध स्थापित हो सकता है। अन्यथा उसको तोड़-फोड़ करके वह उनके पास अगर कोई म्यूजियम होगा तो उसमें रख लेंगे और किसी तरह की व्याख्या करेंगे कि वह क्या है। अगर रेडियो तक उनका विकास हुआ हो तो उन्हें व्याख्या करने की जरूरत न पड़ेगी। तब वे उसके राज को खोल लेंगे। अगर वैसा न हुआ हो तो वे भयभीत हो सकते हैं उससे, डर सकते हैं, अभिभूत हो सकते हैं, आश्चर्यचकित हो सकते हैं, पूजा कर सकते हैं।
काबा का पत्थर उन छोटे से उपकरणों में से एक है जो कभी दूसरे अंतरिक्ष
के यात्रियों ने छोड़ा और जिनसे संबंध स्थापित हो सकते थे।
यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं आपको, क्योंकि तीर्थ हमारी ऐसी व्यवस्थाएं हैं जिससे हम अंतरिक्ष के जीवन से संबंध स्थापित नहीं करते, बल्कि इस पृथ्वी पर ही जो चेतनाएं विकसित होकर विदा हो गईं, उनसे पुनः- पुनः संबंध स्थापित कर सकते हैं। और इस संभावनाओं को बढ़ाने के लिए, जैसे कि सम्मेत शिखर पर बहुत गहरा प्रयोग हुआ--बाईस तीर्थंकरों का सम्मेत शिखर पर जाकर समाधि लेना, गहरा प्रयोग था। वह इस चेष्टा में था कि उस स्थल पर इतनी सघनता हो जाए कि संबंध स्थापित करने आसान हो जाएं। उस स्थान से इतनी चेतनाएं यात्रा करें दूसरे लोक में कि उस स्थान और दूसरे लोक के बीच सुनिश्चित मार्ग बन जाए।
वह सुनिश्चित मार्ग रहा है। और जैसे जमीन पर सब जगह एक सी वर्षा नहीं होती। घनी वर्षा के स्थल हैं, विरल वर्षा के स्थल हैं; रेगिस्तान हैं जहां कोई वर्षा नहीं होती, और ऐसे स्थान हैं जहां पांच सौ इंच वर्षा होती है। ऐसी जगहें हैं जहां ठंडा है सब और बर्फ के सिवाय कुछ भी नहीं बनता, और ऐसे स्थान हैं जहां सब गर्म है और बर्फ भर नहीं बन सकता। ठीक वैसे ही पृथ्वी पर चेतना की डेंसिटी और नॉन-डेंसिटी के स्थल हैं। और उनको बनाने की कोशिश की गई है, उनको निर्मित करने की कोशिश की गई है। क्योंकि वे अपने आप निर्मित नहीं होंगे, वे मनुष्य की चेतना से निर्मित होंगे।
जैसे सम्मेत शिखर पर बाईस तीर्थंकरों का यात्रा करके, और समाधि में प्रवेश करना, और उसी एक जगह से शरीर को छोड़ना; उस जगह पर इतनी घनी चेतना का प्रयोग है कि वह जगह चार्ज्ड हो जाएगी विशेष अर्थों में। और वहां कोई भी व्यक्ति बैठे उस जगह पर और उन विशेष मंत्रों का प्रयोग करे जिन मंत्रों को उन बाईस लोगों ने दिया है, तो तत्काल उसकी चेतना शरीर को छोड़ कर यात्रा

करनी शुरू कर देगी। वह प्रक्रिया वैसी ही विज्ञान की है जैसी कि और विज्ञान की सारी प्रक्रियाएं हैं।
तो तीर्थों को बनाने का एक तो प्रयोजन यह था कि हम इस तरह के चार्ज्ड, ऊर्जा से भरे हुए स्थल पैदा कर लें जहां से कोई भी व्यक्ति सुगमता से यात्रा कर सके। करीब-करीब ऐसे ही जैसे कि एक तो होता है कि हम नाव में पतवार लगा कर और नाव को खेवें; दूसरा यह होता है कि हम पतवार तो चलाएं ही न, नाव के पाल खोल दें और उचित समय पर और उचित हवा की दिशा में नाव को बहने दें। तो तीर्थ वैसी जगह थी जहां से कि चेतना की एक धारा अपने आप प्रवाहित हो रही है, जिसको प्रवाहित करने के लिए सदियों ने मेहनत की है। आप सिर्फ उस धारा में खड़े हो जाएं, तो आपकी चेतना का पाल तन जाए और आप एक यात्रा पर निकल जाएं। जितनी मेहनत आपको अकेले में करनी पड़े, उससे बहुत अल्प मेहनत में यात्रा संभव हो सकती है।
विपरीत स्थल पर खड़े होकर यात्रा अत्यंत कठिन भी हो सकती है। हवाएं जब उलटी तरफ बह रही हों और आप पाल खोल दें, तो बजाय इसके कि आप पहुंचें, और भटक जाएं, इसकी पूरी संभावना है।
अब जैसे, अगर आप किसी ऐसी जगह में ध्यान कर रहे हैं जहां चारों ओर नकारात्मक भावावेश प्रवाहित होते हैं, निगेटिव इमोशंस प्रवाहित होते हैं। समझ लें कि आप एक जगह बैठ कर ध्यान कर रहे हैं और आपके चारों तरफ हत्यारे बैठे हुए हैं। तो आपको कल्पना भी नहीं हो सकती कि ध्यान करने के क्षण में आप इतने रिसेप्टिव हो जाते हैं कि आस-पास जो भी हो रहा है वह तत्काल आप में प्रवेश कर जाता है। ध्यान एक रिसेप्टिविटी है, एक ग्राहकता है। ध्यान में आप वलनरेबल हो जाते हैं, खुल जाते हैं, और कोई भी चीज आप में प्रवेश कर सकती है।
तो ध्यान के क्षण में, आस-पास कैसी तरंगें हैं चेतना की, वह विचार कर लेना बहुत उपयोगी है। अगर ऐसी तरंगें आपके चारों तरफ हैं, जो कि आपको गलत तरफ झुका सकती हैं, तो ध्यान महंगा भी पड़ सकता है। और या फिर ध्यान एक जद्दोजहद और एक संघर्ष बन जाएगा। जब कभी ध्यान में आपको अचानक ऐसे ख्याल आने लगते हैं जो आपको कभी भी नहीं आए थे, जब ध्यान के क्षण में आपको एक क्षण भी शांत होना मुश्किल होने लगता है और कभी-कभी ऐसा लगता है कि इससे ज्यादा शांत तो आप बिना ध्यान के ही रहते हैं, तब आपको कभी ख्याल न आया होगा कि ध्यान के क्षण में, आस-पास जो भी प्रवाहित होता है, वह आप में सुगमता से प्रवेश पा जाता है।
तो कारागृह में बैठ कर भी ध्यान किया जा सकता है, पर बड़ा सबल व्यक्तित्व चाहिए। और कारागृह में बैठ कर ध्यान करना हो तो प्रक्रियाएं भिन्न चाहिए। ऐसी प्रक्रियाएं चाहिए जो पहले आपके चारों तरफ अवरोध की एक सीमा-रेखा निर्मित कर दें, जिसके भीतर कुछ प्रवेश न कर सके।
पर तीर्थ में वैसे अवरोध की कोई जरूरत नहीं है। तीर्थ में ऐसी ध्यान
की प्रक्रिया चाहिए जो आपके आस-पास का सब अवरोध, सब रेसिस्टेंस, सब द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दें! हवाएं वहां बह रही हैं। सैकड़ों लोगों ने उस जगह से अनंत में प्रवाहित होकर एक मार्ग निर्मित किया है। ठीक मार्ग ही कहना चाहिए। जैसे कि हम रास्ते बनाते हैं सड़कों पर, एक जंगल में हम एक रास्ता बना लेते हैं। दरख्त गिरा देते हैं और एक पक्का रास्ता बना लेते हैं, और दूसरे पीछे चलने वाले यात्री को बड़ी सुगमता हो जाती है। ठीक आत्मिक अर्थों में भी इस तरह के रास्ते निर्मित करने की कोशिश की गई है। कमजोर आदमियों को जिस तरह की भी सहायता पहुंचाई जा सके, उस तरह की सहायता, जो शक्तिशाली थे, उन्होंने सदा पहुंचाने की कोशिश की है। तीर्थ उनमें एक बहुत बड़ा प्रयोग है।
तो पहला तो तीर्थ का प्रयोजन यह है कि आपको जहां हवाएं शरीर से आत्मा
की तरफ बह ही रही हैं, जहां पूरा तरंगायित है वायुमंडल, जहां से लोग ऊर्ध्वगामी हुए हैं, जहां बैठ कर लोग समाधिस्थ हुए हैं, जहां बैठ कर लोगों ने परमात्मा का दर्शन पाया है, जहां यह अनूठी घटना घटती रही है सैकड़ों वर्षों तक, वह जगह एक विशेष आविष्ट जगह हो गई है। उस आविष्ट जगह में आप अपने पाल को भर खुला छोड़ दें, कुछ और न करें, तो भी आपकी यात्रा शुरू होगी। तो तीर्थ का पहला प्रयोग तो यह था।

इसलिए सभी धर्मों ने तीर्थ निर्मित किए। उन धर्मों ने भी तीर्थ निर्मित किए जो मंदिर के पक्ष में नहीं थे। अब यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि मंदिर के पक्ष में कोई तीर्थ निर्मित करे धर्म, समझ में आता है। लेकिन जो धर्म मंदिर के पक्ष में न थे, जो धर्म मूर्ति के विरोधी थे, उनको भी तीर्थ तो निर्मित करना ही पड़ा। मूर्ति का विरोध आसान हुआ, मूर्ति हटा दी वह भी कठिन न हुआ, लेकिन तीर्थ को हटाया नहीं जा सका। क्योंकि तीर्थ का और भी व्यापक उपयोग था जिसको कोई धर्म इनकार न कर सका।
जैसे कि जैन भी मूलतः मूर्तिपूजक नहीं हैं, मुसलमान मूर्तिपूजक नहीं हैं, सिक्ख मूर्तिपूजक नहीं हैं, बुद्ध मूर्तिपूजक नहीं थे प्रारंभ में, लेकिन इन सबने भी तीर्थ निर्मित किए हैं। तीर्थ निर्मित करने ही पड़े। सच तो यह है कि बिना तीर्थ के धर्म का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। बिना तीर्थ के धर्म का कोई अर्थ नहीं रह जाता। बिना तीर्थ के धर्म फिर ठीक है, एक-एक व्यक्ति जो कर सकता है करे। लेकिन फिर समूह में खड़े होने का कोई प्रयोजन, कोई अर्थवत्ता नहीं है।
तीर्थ शब्द का अर्थ होता है घाट। उसका अर्थ होता है ऐसी जगह जहां से
हम उस अनंत सागर में उतर सकते हैं। जैनों का शब्द तीर्थंकर तीर्थ से ही बना है, उसका अर्थ है तीर्थ को बनाने वाला, और कोई अर्थ नहीं है उसका। तीर्थंकर का अर्थ है तीर्थ को बनाने वाला। असल में उसको ही तीर्थंकर कहा जा सकता है जिसने ऐसा तीर्थ निर्मित किया हो जहां साधारणजन खड़े होते से पाल खोलते से ही यात्रा पर संलग्न हो जाएं। अवतार न कह कर तीर्थंकर कहा, और अवतार से बड़ी घटना तीर्थंकर है। क्योंकि परमात्मा आदमी में अवतरित हो, यह तो एक बात है; लेकिन आदमी परमात्मा में प्रवेश का तीर्थ बना ले, यह और भी बड़ी बात है।
जैन, परमात्मा में भरोसा करने वाला धर्म नहीं है, आदमी की सामर्थ्य में भरोसा करने वाला धर्म है। इसलिए तीर्थ और तीर्थंकर का जितना गहरा उपयोग जैन कर पाए उतना कोई भी नहीं कर पाया। क्योंकि यहां तो कोई ईश्वर की कृपा पर उनको ख्याल नहीं है। ईश्वर कोई सहारा दे सकता है, इसका कोई ख्याल नहीं है। आदमी अकेला है, और आदमी को अपनी ही मेहनत से यात्रा करनी है। लेकिन दो रास्ते हो सकते हैं। एक-एक आदमी अपनी-अपनी मेहनत करे। पर तब शायद कभी करोड़ों में एक आदमी उपलब्ध हो पाएगा। चप्पू से भी नाव चला कर यात्रा तो की ही जा सकती है, लेकिन तब कभी कोई एकाध पार हो पाएगा। लेकिन हवाओं का सहारा लेकर यात्रा बड़ी आसान हो सकती है। तो क्या आध्यात्मिक हवाएं संभव हैं? उस पर ही तीर्थ का सब कुछ निर्भर है। क्या यह संभव है कि जब महावीर जैसा एक व्यक्ति खड़ा होता है तो उसके आस-पास किसी अनजाने आयाम में कोई प्रवाह शुरू होता है? क्या वह किसी एक ऐसी दिशा में बहाव को निर्मित करता है कि उस बहाव में कोई पड़ जाए तो बह जाए? वही बहाव तीर्थ है। इस पृथ्वी पर तो उसके जो निशान हैं वे भौतिक निशान हैं, लेकिन वे स्थान न खो जाएं इसलिए उन भौतिक निशानों की बड़ी सुरक्षा की गई है। मंदिर बनाए गए हैं उन जगहों पर, या पैरों के चिह्न बनाए गए हैं उन जगहों पर, या मूर्तियां खड़ी की गई हैं उन जगहों पर, और उन जगहों को हजारों वर्षों तक वैसा का वैसा रखने की चेष्टा की गई है। इंच भर भी वह जगह न हिल जाए जहां घटना घटी है कभी!
बड़े-बड़े खजाने गड़ाए गए हैं, आज भी उनकी खोज चलती है। आज भी उनकी खोज चलती है। जैसे कि रूस के आखिरी.जार का खजाना अमरीका में कहीं गड़ा है, जो कि पृथ्वी का सबसे बड़ा खजाना है, और आज भी खोज चलती है। वह खजाना है, यह पक्का है। क्योंकि बहुत दिन नहीं हुए अभी, उन्नीस सौ सत्रह को घटे बहुत दिन नहीं हुए। उसका इंच-इंच हिसाब भी रखा गया है कि वह कहां होगा। लेकिन डिकोड नहीं हो पा रहा है, वह जो हिसाब रखा गया है उसको समझा नहीं जा पा रहा है कि एक्जैक्ट जगह क्या है। जैसे कि ग्वालियर में एक बड़ा खजाना ग्वालियर फेमिली का है, जिसका फेमिली के पास सारा का सारा हिसाब है, लेकिन फिर भी जगह नहीं पकड़ी जा पा रही है अभी कि वह जगह कहां है, वह डिकोड नहीं हो रहा है। नक्शा जो है--इस तरह के सब नक्शे गुप्त भाषा में ही निर्मित किए जाते हैं, अन्यथा कोई भी डिकोड कर लेगा। सामान्य भाषा में वे नहीं लिखे जाते।

इन तीर्थों का भी पूरा का पूरा सूचन है। इसलिए जरूरी नहीं है, जैसा कि
आम लोग समझ लेते हैं, और वह आम लोग गड़बड़ न कर पाएं इसलिए बड़े उपाय किए जाते हैं। अब वह मैं आपको कहूं तो बहुत हैरानी होगी। जैसे जहां आप जाते हैं और आपसे कहा जाता है कि यह जगह है जहां महावीर निर्वाण को उपलब्ध हुए--बहुत संभावना तो यह है कि वह जगह नहीं होगी। उससे थोड़ा हट कर वह जगह होगी जहां उनका निर्वाण हुआ। उस जगह पर तो प्रवेश उनको ही मिल सकेगा जो सच में ही पात्र हैं और उस यात्रा पर निकल सकते हैं। एक फाल्स जगह, एक झूठी जगह आम आदमी से बचाने के लिए खड़ी की जाएगी, जिस पर तीर्थयात्री जाता रहेगा, नमस्कार करता रहेगा और लौटता रहेगा। वह जगह तो उनको ही बताई जाएगी जो सचमुच उस जगह आ गए हैं जहां से वे सहायता लेने के योग्य हैं या उनको सहायता मिलनी चाहिए। ऐसी बहुत सी जगह हैं।
अरब में एक गांव है जिसमें आज तक किसी सभ्य आदमी को प्रवेश नहीं मिल सका--आज तक, अभी भी! चांद पर आप प्रवेश कर गए हैं, लेकिन छोटे से गांव अल्कुफा में आज तक किसी यात्री को प्रवेश नहीं मिल सका। सच तो यह है कि आज तक यह ठीक हो नहीं सका कि वह कहां है! और वह गांव है, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। क्योंकि हजारों साल से इतिहास उसकी खबर देता है। किताबें उसकी खबर देती हैं। उसके नक्शे हैं।
वह गांव कुछ बहुत प्रयोजन से छिपा कर रखा गया है। और सूफियों में जब कोई बहुत गहरी अवस्था में होता है तभी उसको उस गांव में प्रवेश मिलता है। उसकी सीक्रेट "की" है। अल्कुफा के गांव में उसी सूफी को प्रवेश मिलता है जो ध्यान में उसका रास्ता खोज लेता है, अन्यथा नहीं। उसकी "की" है। फिर तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता। अन्यथा कोई उपाय नहीं है। नक्शे हैं, सब तैयार है, लेकिन फिर भी उसका कोई पता नहीं लगता कि वह कहां है। वह सब एक अर्थ में नक्शे थोड़े से झूठ हैं और भटकाने के लिए हैं। उन नक्शों को मान कर जो चलेगा वह अल्कुफा कभी नहीं पहुंच पाएगा।
इसलिए बहुत यात्री, योरोप के पिछले तीन सौ वर्षों में सैकड़ों यात्री अल्कुफा को ढूंढने गए हैं। उनमें से कुछ तो कभी लौटे ही नहीं, मर गए! जो लौटे वे कभी कहीं पहुंचे नहीं। वे सिर्फ चक्कर मार कर वापस आ गए हैं। सब तरह से कोशिश की जा चुकी है। पर उसकी कुंजी है। और वह कुंजी एक विशेष ध्यान है; और उस विशेष ध्यान में ही अल्कुफा पूरा का पूरा प्रकट होता है। और वह सूफी उठता है और चल पड़ता है। और जब इतनी योग्यता हो तभी उस गांव से गति है। वह एक सीक्रेट तीर्थ है जो इसलाम से बहुत पुराना है। लेकिन उसको गुप्त रखा गया है।
इन तीर्थों में भी जो जाहिर हैं, इन तीर्थों में भी जो जाहिर दिखाई पड़ते हैं, वे असली तीर्थ नहीं हैं। आस-पास असली तीर्थ हैं।
इसलिए एक मजेदार घटना घटी। विश्वनाथ के मंदिर में, काशी में, जब विनोबा हरिजनों को लेकर प्रवेश कर गए, तो करपात्री ने कहा कि कोई हर्ज नहीं, हम दूसरा मंदिर बना लेंगे। और दूसरा मंदिर बनाना शुरू कर दिया। वह मंदिर तो बेकार हो गया। तो दूसरा मंदिर बनाना शुरू कर दिया।
साधारणतः देखने में विनोबा ज्यादा समझदार आदमी मालूम पड़ते हैं करपात्री से। असलियत ऐसी नहीं है। साधारणतः देखने में करपात्री निपट पुराणपंथी, नासमझ, आधुनिक जगत और ज्ञान से वंचित मालूम पड़ते हैं। यह थोड़ी दूर तक सच है बात। लेकिन फिर भी जिस गहरी बात की वह ताईद कर रहे हैं उसके मामले में वह ज्यादा जानकार हैं।
सच बात यह है कि विश्वनाथ का यह मंदिर भी असली नहीं है और वह जो दूसरा बनाएंगे वह भी असली नहीं होगा। असली मंदिर तो तीसरा है। लेकिन उसकी जानकारी सीधी नहीं दी जा सकती। और असली मंदिर को छिपा कर रखना पड़ेगा, नहीं तो कभी भी कोई भी धर्म-सुधारक और समाज-सुधारक उसको भ्रष्ट कर सकता है। इसलिए अभी जो विश्वनाथ का मंदिर है खड़ा हुआ, इसको तो नष्ट किया जा चुका है, इसमें कोई उपाय नहीं है। इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है, नष्ट कर दो। वह जो दूसरा बनाया जा रहा है वह भी फाल्स है। लेकिन एक फाल्स बनाए ही रखना पड़ेगा, ताकि असली पर नजर न जाए। और असली को छिपा कर रखना पड़ेगा।
विश्वनाथ के मंदिर में प्रवेश की कुंजियां हैं, जैसी अल्कुफा में प्रवेश की कुंजियां हैं। उसमें कभी कोई सौभाग्यशाली संन्यासी प्रवेश

पाता है। उसमें कोई गृहस्थ कभी प्रवेश नहीं पाया और कभी पा नहीं सकेगा। सभी संन्यासी भी उसमें प्रवेश नहीं पाते, कभी कोई सौभाग्यशाली संन्यासी ही उसमें प्रवेश पाता है। पर उसे सब भांति छिपा कर रखा जाएगा। उसके मंत्र हैं और जिनके प्रयोग से उसका द्वारा खुलेगा, नहीं तो उसका द्वार नहीं खुलेगा। उसका बोध ही नहीं होगा, उसका ख्याल ही नहीं आएगा।
काशी में जाकर इस मंदिर की लोग पूजा-प्रार्थना करके वापस लौट आएंगे। मगर इस मंदिर की भी अपनी एक सेंक्टिटी बन गई थी। यह झूठा था, लेकिन फिर भी लाखों वर्षों से उसको सच्चा मान कर चला जा रहा था। उसमें भी एक तरह की पवित्रता आ गई थी।
सारे धर्मों ने कोशिश की है कि उनके मंदिर में या उनके तीर्थ में दूसरे धर्म का व्यक्ति प्रवेश न करे। आज हमें बेहूदी लगती है यह बात। क्योंकि हम कहेंगे, इससे क्या मतलब है? लेकिन जिन्होंने व्यवस्था की थी, उनके कुछ कारण थे। यह करीब-करीब मामला ऐसा ही है जैसे कि एटामिक इनर्जी की एक लेबोरेटरी है और अगर यह लिखा हो कि यहां सिवाय एटामिक साइंटिस्ट के कोई प्रवेश नहीं करेगा, तो हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। तो हम कहेंगे, बिल्कुल ठीक है, बिल्कुल दुरुस्त है। खतरे से खाली नहीं है दूसरे आदमी का भीतर प्रवेश करना! लेकिन यही बात हम मंदिर या तीर्थ के संबंध में मानने को राजी नहीं हैं, क्योंकि हमें यह ख्याल ही नहीं है कि मंदिर और तीर्थ की भी अपनी साइंस है। और वह विशेष लोगों के प्रवेश के लिए है।
आज भी एक मरीज बीमार पड़ा है और उसके चारों तरफ डाक्टर खड़े होकर बात करते रहते हैं। मरीज सुनता है, समझ तो कुछ नहीं पाता। क्योंकि डाक्टर एक कोड लैंग्वेज में बात कर रहे हैं। वे लैटिन या ग्रीक शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। वे जो बोल रहे हैं, मरीज सुन रहा है, लेकिन समझ नहीं सकता। मरीज के हित में नहीं है कि वह समझे।
इसलिए सारे धर्मों ने अपनी कोड लैंग्वेज विकसित की थी। उसके गुप्त तीर्थ थे, उसकी गुप्त भाषाएं थीं, उसके गुप्त शास्त्र थे। और आज भी जिनको हम तीर्थ समझ रहे हैं उनमें बहुत कम संभावना है सही होने की। और जिनको हम शास्त्र समझ रहे हैं उनमें भी बहुत कम संभावना है सही होने की। वह जो सीक्रेट ट्रेडीशन है, उसे तो छिपाने की निरंतर कोशिश की जाती है। क्योंकि जैसे ही वह आम आदमी के हाथ में पड़ती है, उसके विकृत हो जाने का डर है। और आम आदमी उससे परेशान ही होगा, लाभ नहीं उठा सकता। जैसे अगर सूफियों के गांव अल्कुफा में अचानक आपको प्रवेश करवा दिया जाए तो आप पागल हो जाएंगे। अल्कुफा की यह परंपरा है कि वहां अगर कोई आदमी आकस्मिक प्रवेश कर जाए तो वह पागल होकर लौटेगा--वह लौटेगा ही! इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। क्योंकि अल्कुफा इस तरह की पूरे के पूरे मनस-तरंगों से निर्मित है कि आपका मन उसको झेल नहीं पाएगा। आप विक्षिप्त हो जाएंगे। उतनी सामर्थ्य और पात्रता के बिना उचित नहीं है कि वहां प्रवेश हो।
जैसे अल्कुफा के बाबत कुछ बातें ख्याल में ले लें तो और तीर्थों का ख्याल में आ जाएगा। जैसे अल्कुफा में नींद असंभव है, कोई आदमी सो नहीं सकता। तो आप पागल हो ही जाएंगे जब तक कि आपने जागरण का गहन प्रयोग न किया हो। इसलिए सूफी फकीर की सबसे बड़ी जो साधना है वह रात्रि-जागरण है, रात भर जागते रहना! और एक सीमा के बाद... यह बहुत सोचने जैसी बात है। एक आदमी नब्बे दिन तक खाना न खाए तो भी सिर्फ दुर्बल होगा, मर नहीं जाएगा! पागल नहीं हो जाएगा! साधारण स्वस्थ आदमी आसानी से नब्बे दिन बिना खाना खाए रह सकता है। लेकिन साधारण स्वस्थ आदमी इक्कीस दिन भी बिना सोए नहीं रह सकता। तीन महीने बिना खाए रह सकता है, तीन सप्ताह बिना सोए नहीं रह सकता। तीन सप्ताह तो मैं बहुत ज्यादा कह रहा हूं, एक सप्ताह भी बिना सोए रहना कठिन मामला है। पर अल्कुफा में नींद असंभव है।
एक बौद्ध भिक्षु को सीलोन से किसी ने मेरे पास भेजा। उसकी तीन साल से नींद खो गई। तो उसकी जो हालत हो सकती थी वह हो गई। पूरे वक्त हाथ-पैर कंपते रहेंगे, पसीना छूटता रहेगा, घबराहट होती रहेगी। एक कदम भी उठाएगा तो डरेगा, भरोसा अपने पर सब खो गया। नींद आती नहीं है; बिल्कुल विक्षिप्त और अजीब सी हालत है। उसने बहुत इलाज करवाया, क्योंकि वह यहां... सब तरह के इलाज उसने करवा लिए, कुछ फायदा हुआ नहीं; कोई ट्रैंक्वेलाइजर उसको सुला नहीं

सकता। उसे गहरे से गहरे ट्रैंक्वेलाइजर दिए गए तो भी उसने कहा कि मैं बाहर से सुस्त होकर पड़ जाता हूं, लेकिन भीतर तो मुझे पता चलता ही रहता है कि मैं जगा हुआ हूं।
उसे किसी ने मेरे पास भेजा। मैंने उसको कहा कि तुम्हें कभी नींद आएगी नहीं, ट्रैंक्वेलाइजर से या और किसी उपाय से। तुम बुद्ध का अनापानसती योग तो नहीं कर रहे हो? क्योंकि बौद्ध भिक्षु के लिए वह अनिवार्य है। उसने कहा कि वह तो मैं कर ही रहा हूं। उसके बिना तो नहीं... । फिर मैंने कहा कि तुम नींद का ख्याल छोड़ दो।
अनापानसती योग का प्रयोग ऐसा है कि नींद खो जाएगी। मगर वह प्राथमिक प्रयोग है। और जब नींद खो जाए तब दूसरा प्रयोग तत्काल जोड़ा जाना चाहिए। अगर उसको ही करते रहे तो पागल हो जाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। वह सिर्फ प्राथमिक प्रयोग है, वह सिर्फ नींद हटाने का प्रयोग है। और एक दफा भीतर से नींद हट जाए तो आपके भीतर इतना फर्क पड़ता है चेतना में कि उस क्षण का उपयोग करके आगे गति की जा सकती है।
तो मैंने कहा कि दूसरी प्रक्रिया तुझे मालूम है? उसने कहा, मुझे दूसरी प्रक्रिया तो किसी ने कोई बताई नहीं। बस अनापानसती!
अनापानसती किताब में लिखी हुई है, और सबको मालूम है। और खतरनाक है उसका किताब में लिखना! क्योंकि उसको करके कोई भी आदमी नींद से वंचित हो सकता है। और जब नींद से वंचित हो जाएगा, तो दूसरी प्रक्रिया का कोई पता नहीं! इसलिए सदा बहुत सी चीजें गुप्त रखी गईं। गुप्त रखने का और कोई कारण नहीं था, किसी से छिपाने का कोई और कारण नहीं था। जिनको हम लाभ पहुंचाना चाहते हैं उनको नुकसान पहुंच जाए तो कोई अर्थ नहीं है।
तो वास्तविक तीर्थ छिपे हुए और गुप्त हैं। तीर्थ जरूर हैं, पर वास्तविक तीर्थ छिपे हुए और गुप्त हैं। करीब-करीब निकट हैं उन्हीं तीर्थों के, जहां आपके फाल्स तीर्थ खड़े हुए हैं। और वे जो फाल्स तीर्थ हैं, वे जो झूठे तीर्थ हैं, धोखा देने के लिए खड़े किए गए हैं। वे इसीलिए खड़े किए गए हैं कि ठीक पर कहीं गलत आदमी न पहुंच जाए। और ठीक आदमी तो ठीक पर पहुंच ही जाता है।
और हरेक तीर्थ की अपनी कुंजियां हैं। इसलिए अगर सूफियों का तीर्थ खोजना है तो जैनियों के तीर्थ की कुंजी से नहीं खोजा जा सकता। अगर जैनियों का तीर्थ खोजना है तो सूफियों की कुंजी से नहीं खोजा जा सकता। सबकी अपनी कुंजियां हैं। और उन कुंजियों का उपयोग करके तत्काल खोजा जा सकता है-- तत्काल! नाम नहीं लेता, किसी के तीर्थ की एक कुंजी आपको बताता हूं।
एक विशेष यंत्र, जैसे कि तिब्बतन्स के होते हैं, खास तरह की आकृतियां बनी होती हैं--वे यंत्र कुंजियां हैं। जैसे हिंदुओं के पास "श्री" यंत्र हैं, और हजार यंत्र हैं। आप घरों में भी "शुभ लाभ" बना कर कभी-कभी आंकड़े लिख कर और यंत्र बना लेते हैं, बिना जाने कि किसलिए बना रहे हैं, क्यों लिख रहे हैं यह। आपको ख्याल भी नहीं हो सकता कि आप अपने मकान में एक ऐसा यंत्र बनाए हुए हैं जो किसी तीर्थ की कुंजी हो सकती है। मगर बाप-दादे आपके बनाते रहे तो आप बनाए चले जा रहे हैं।
एक विशेष आकृति पर ध्यान करने से आपकी चेतना विशेष आकृति लेती है। हर आकृति आपके भीतर चेतना को आकृति देती है। जैसे कि अगर आप बहुत देर तक खिड़की पर आंख लगा कर देखते रहें, फिर आंख बंद कर लें, तो खिड़की का निगेटिव चौखटा आपकी आंख के भीतर बन जाता है, वह निगेटिव है। अगर किसी यंत्र पर आप ध्यान करें तो उससे ठीक उलटा निगेटिव चौखटा और निगेटिव आंकड़े आपके भीतर निर्मित होते हैं। वह विशेष ध्यान के बाद आपको भीतर दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जब वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, तब विशेष आवाहन करने से तत्काल आपकी यात्रा शुरू हो जाती है।
नसरुद्दीन के जीवन में एक कहानी है। नसरुद्दीन का गधा खो गया। वह उसकी संपत्ति है सब कुछ। सारा गांव खोज डाला, सारे गांव के लोग खोज-खोज कर परेशान हो गए, कहीं कोई पता नहीं चलता। फिर लोगों ने कहा, ऐसा मालूम होता है कि किन्हीं तीर्थयात्रियों के साथ--यात्री निकल रहे हैं, तीर्थ का महीना है--और गधा दिखता है कि किन्हीं तीर्थयात्रियों के साथ निकल गया! गांव में तो नहीं है, गांव के आस-पास भी नहीं है, सब जगह खोज डाला गया।

नसरुद्दीन से लोगों ने कहा कि अब तुम माफ करो, समझो कि खो गया, अब वह मिलेगा नहीं।
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं आखिरी उपाय और कर लूं। वह खड़ा हो गया, आंख उसने बंद कर ली। थोड़ी देर में वह झुक गया चारों हाथ-पैर से, और उसने चलना शुरू कर दिया। और वह उस मकान का चक्कर लगा कर और उस बगीचे का चक्कर लगा कर उस जगह पहुंच गया जहां एक खड्डे में उसका गधा गिर पड़ा था। लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन हद कर दी तुमने! और तुम्हारी खोजने की तरकीब क्या है? उसने कहा, फिर मैंने सोचा कि जब आदमी नहीं खोज सका, तो मतलब यह है कि गधे की कुंजी आदमी के पास नहीं है। मैंने सोचा कि मैं गधा बन जाऊं। तो मैंने अपने मन में सिर्फ यही भावना की कि मैं गधा हो गया। अगर मैं गधा होता तो कहां जाता खोजने? गधे को खोजने कहां जाता? फिर कब मेरे हाथ झुक कर जमीन पर लग गए और कब मैं गधे की तरह चलने लगा, मुझे पता नहीं। कैसे मैं चल कर वहां पहुंच गया, वह मुझे पता नहीं। लेकिन जब मैंने आंख खोली तो मैंने देखा कि मेरा गधा जो है वह गड्ढे में पड़ा हुआ है।
नसरुद्दीन तो एक सूफी फकीर है। यह कहानी तो कोई भी पढ़ लेगा और मजाक समझ कर छोड़ देगा। लेकिन इसमें एक "की" है--इस छोटी सी कहानी में। इसमें "की" है खोज की। खोजने का एक ढंग वह भी है। और आत्मिक अर्थों में तो ढंग वही है। तो प्रत्येक तीर्थ की कुंजियां हैं, यंत्र हैं। और तीर्थों का पहला प्रयोजन तो यह है कि आपको उस आविष्ट धारा में खड़ा कर दें जहां धारा बह रही है और आप उसमें बह जाएं--एक।
दूसरी बात, मनुष्य के जीवन में जो भी है वह सब पदार्थ से निर्मित है।
सब पदार्थ से निर्मित है मनुष्य के जीवन में जो है, सिर्फ उसकी आंतरिक चेतना को छोड़ कर। लेकिन आंतरिक चेतना का तो आपको कोई पता नहीं है। पता तो आपको सिर्फ शरीर का है, और शरीर के सारे संबंध पदार्थ से हैं। थोड़ी सी अल्केमी समझ लें तो दूसरा तीर्थ का अर्थ ख्याल में आ जाए।
अल्केमिस्ट्स की प्रक्रियाएं हैं, वे सब गहरी धर्म की प्रक्रियाएं हैं। अब अल्केमिस्ट कहते हैं कि अगर पानी को एक बार भाप बनाया जाए और फिर पानी बनाया जाए, फिर भाप बनाया जाए उसको, फिर पानी बनाया जाए--ऐसा एक हजार बार किया जाए--तो उस पानी में विशेष गुण आ जाते हैं जो साधारण पानी में नहीं हैं। इसको पहले मजाक समझा जाता था बात को। क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ेगा? आप एक दफा पानी को डिस्टिल्ड कर लें, फिर दोबारा उस पानी को भाप बना कर फिर डिस्टिल्ड कर लें, फिर तीसरी बार कर लें, फिर चौथी बार, क्या फर्क पड़ेगा? पानी डिस्टिल्ड ही रहेगा। लेकिन अब विज्ञान ने स्वीकार किया कि उसमें क्वालिटी बदलती है। अब विज्ञान ने स्वीकार किया कि वह एक हजार बार प्रयोग करने पर उस पानी में विशिष्टता आ जाती है।
अब वह कहां से आती है अब तक साफ नहीं है, लेकिन वह पानी विशेष हो जाता है। लाख बार भी उसको करने के प्रयोग हैं और तब वह और विशेष हो जाता है। अब आदमी के शरीर में, हैरान होंगे जान कर आप, कि पचहत्तर प्रतिशत पानी है। थोड़ा बहुत नहीं, पचहत्तर प्रतिशत! और जो पानी है उसका जो केमिकल ढंग है वह वही है जो समुद्र के पानी का है। इसलिए नमक के बिना आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। आपके शरीर के भीतर जो पानी है उसमें नमक की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए जितनी समुद्र के पानी में है। अगर इस पानी की व्यवस्था को भीतर बदला जा सके तो आपकी चेतना की व्यवस्था को बदलने में सुविधा होती है। तो लाख बार डिस्टिल किया हुआ पानी अगर पिलाया जा सके, तो आपके भीतर बहुत सी वृत्तियों में एकदम परिवर्तन होगा।
अब ये अल्केमिस्ट हजारों प्रयोग ऐसे कर रहे थे। अब एक लाख दफा पानी को डिस्टिल करने में सालों लग जाते थे और एक आदमी चौबीस घंटे यही काम कर रहा था। इसके दोहरे परिणाम होते थे। एक तो उस आदमी का चंचल मन ठहर जाता था। क्योंकि यह ऐसा काम था जिसमें चंचल होने का उपाय नहीं था। रोज सुबह से सांझ तक वह यही कर रहा था। थक कर मर जाता था, और दिन भर उसने किया क्या? हाथ में कुल इतना है कि वह पानी को उसने पच्चीस दफा डिस्टिल कर लिया। सो वर्षों बीत जाते, वह आदमी पानी ही डिस्टिल करता रहता।
हमें सोचने में कठिनाई होगी, पहले थोड़े दिन में हम ऊब जाएंगे, ऊबेंगे
तो हम बंद कर देंगे। यह मजे की बात है कि जहां भी ऊब आ जाए वहीं टर्निंग

प्वांइट होता है। अगर आपने बंद कर दिया तो आप अपनी पुरानी स्थिति में लौट जाते हैं, और अगर जारी रखा तो आप नयी चेतना को जन्म दे लेते हैं।
जैसे रात को आपको नींद आती है। रोज आप दस बजे सोते हैं, दस बजे नींद आने लगेगी। अगर आप टिक जाएं दस बजे और सोने से मना कर दें, तो आप आधा घंटे में--होना तो यह चाहिए था कि नींद और जोर से आए--लेकिन आधा घंटे में यह होगा कि अचानक आप पाएंगे कि आप सुबह से भी ज्यादा फ्रेश हो गए हैं, और अब नींद आना मुश्किल हो जाएगी। वह जो प्वाइंट था, जहां से आप अपनी स्थिति में वापस गिर सकते थे, अगर सो गए होते तो आप कंटीन्यु रखे होते। आपने भीतर की व्यवस्था तोड़ दी तो शरीर से नयी शक्ति वापस आ गई। शरीर ने देख लिया कि आप सोने की तैयारी नहीं दिखा रहे हैं, जागना ही पड़ेगा। तो शरीर के पास जो रिजर्वायर हैं, जहां वह शक्ति संरक्षित रखता है, जरूरत के वक्त के लिए, वह उसने छोड़ दी, आप ताजे हो गए। इतने ताजे जितने आप सुबह भी ताजे नहीं होते। अब एक आदमी ऊब गया है, एक हजार दफे पानी को बदल चुका है। कहते हैं, उसका गुरु कह रहा है, लाख दफे बदलना है--दस साल लगें, कि पंद्रह साल लगें, कि कितने ही साल लगें। ऊब गया है, लेकिन बदले चला जा रहा है, बदले चला जा रहा है। एक घड़ी आएगी जब कि उसे ऐसा लगेगा कि अब अगर मैंने एक दफा और बदला तो मैं गिर कर मर ही जाऊंगा। अब बहुत हो गया। इसको अब मैं न सह सकूंगा। लेकिन उसका गुरु कह रहा है कि बदले जाओ। और वह बदलता ही चला जाता है, और लौटता नहीं है। यह पानी तो इधर परिवर्तित हो ही रहा है, उसकी चेतना भीतर परिवर्तित होती है। और फिर इस विशिष्ट पानी के प्रयोग से चेतना में परिणाम होते हैं। जैसे गंगा का जो पानी है, अभी तक साफ नहीं हो सका है वैज्ञानिक को, उसमें बहुत सी विशेषताएं हैं, जो दुनिया की किसी नदी के पानी में नहीं हैं। और दुनिया की नदियों के पानी में न हों, लेकिन ठीक गंगा के बगल से भी जो नदी निकलती है उसके पानी में भी नहीं हैं, ठीक उसी पहाड़ से जो नदी निकलती है उसके पानी में भी नहीं हैं। एक ही बादल दोनों नदियों में पानी गिराता है और एक ही पहाड़ का बर्फ पिघल कर दोनों नदियों में जाता है, फिर भी उस पानी में वह क्वालिटी नहीं है जो गंगा के पानी में है।
अब इस बात को सिद्ध करना मुश्किल होगा--कुछ बातें हैं जिनको सिद्ध करना एकदम मुश्किल है--लेकिन पूरी की पूरी गंगा अल्केमिस्ट का प्रयोग है, पूरी की पूरी गंगा! इसको सिद्ध करना मुश्किल होगा, मैं आपसे कहता हूं। और बहुत सी बातें जो मैं कह रहा हूं उनमें से बहुत सी बातें सिद्ध करना मुश्किल होगा। लेकिन पूरी की पूरी गंगा साधारण नदी नहीं है। एक पूरी की पूरी गंगा को अल्केमिकली शुद्ध करने की चेष्टा की गई है। और इसलिए हिंदुओं ने सारे तीर्थ अपने, गंगा के किनारे निर्मित किए। एक महान प्रयोग था गंगा को एक विशिष्टता देने का, जो कि दुनिया की किसी नदी में नहीं है। अब तो केमिस्ट भी राजी हैं कि गंगा का पानी विशेष है। किसी भी नदी का पानी रख लें, सड़ जाएगा; गंगा का पानी वर्षों नहीं सड़ेगा। सड़ेगा ही नहीं, सड़ता ही नहीं। इसलिए गंगाजल आप मजे से रख सकते हैं। उसके पास ही आप दूसरी किसी बोतल में पानी भर कर रख दें, वह पंद्रह दिन में सड़ जाएगा। और गंगाजल अपनी पवित्रता और शुद्धता को पूरा कायम रखेगा। किसी भी जल में, किसी भी नदी में आप लाशें डाल दें, वह नदी गंदी हो जाएगी। गंगा कितनी ही लाशों को हजम कर जाएगी और कभी गंदी नहीं होगी।
एक और हैरानी की बात है, कि हड्डी साधारणतः नहीं गलती, सिर्फ गंगा में
गल जाती है। गंगा पूरा पचा डालती है आदमी को, कुछ नहीं बचता उसमें से। सभी लीन हो जाता है पंच तत्वों में। इसलिए गंगा में फेंकने का लाश को, आग्रह बना। क्योंकि बाकी सब जगह से पूरे पंच तत्वों में लीन होने में सैकड़ों, हजारों और कभी लाखों वर्ष लग जाते हैं। गंगा का समस्त तत्वों में वापस लौटा देने के लिए बिल्कुल केमिकल काम है उसका। वह निर्मित इसलिए की गई थी। वह पूरी की पूरी नदी साधारण पहाड़ से बही हुई नदी नहीं है; बहाई गई नदी है। पर वह हमारे ख्याल में नहीं हो सकता।
और गंगोत्री बहुत छोटी सी जगह है, जहां से गंगा बहती है। और बड़े मजे की बात यह है कि जहां गंगोत्री पर यात्री नमस्कार करके लौट आते हैं, वह फाल्स गंगोत्री है। वह सही गंगोत्री नहीं है। सही को तो बचाना पड़ता है सदा। सही को सदा बचाना पड़ता है। वह सिर्फ शो है, वह सिर्फ दिखावा है, जहां से यात्री

को लौटा दिया जाता है, वहां से वह नमस्कार करके लौट आता है। सही गंगोत्री को तो हजारों साल से बचाया गया है। और इस तरह निर्मित किया गया है कि वहां साधारणतः पहुंचना संभव नहीं है। सिर्फ एस्ट्रल ट्रैवलिंग हो सकती है सही गंगोत्री पर, सशरीर पहुंचना संभव नहीं है।
जैसा मैंने कहा कि सूफियों का यह नगर है। इसमें सशरीर पहुंचा जा सकता है। इसलिए कभी कोई भूल-चूक से भी पहुंच सकता है। यानी कोई खोजने वाला चाहे न पहुंच सके, क्योंकि खोजने वाले को आप धोखा दे सकते हैं, गलत नक्शे पकड़ा सकते हैं। लेकिन जो खोजने नहीं निकला है, अकारण पहुंच जाए, तो उसको आप नहीं धोखा दे सकते। वह पहुंच सकता है।
तो गंगोत्री पर पहुंचने के लिए, सिर्फ सूक्ष्म शरीर ही पहुंचा जा सकता है, इस शरीर से नहीं पहुंचा जा सकता, इस तरह का सारा इंतजाम है। तो गंगोत्री का दर्शन सशरीर कभी नहीं हो सकता, वह एस्ट्रल ट्रैवलिंग है। ध्यान में इस शरीर को यहीं छोड़ कर यात्रा की जा सकती है। और जब कोई गंगोत्री को देख ले, एस्ट्रल ट्रैवलिंग में, तब उसको पता चले कि इस गंगा का पूरा राज क्या है। इसलिए मैंने कहा कि सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। जिस जगह से वह गंगा बह रही है वह जगह बहुत ही विशिष्ट रूप से निर्मित है। और वहां से जो पानी प्रवाहित हो रहा है वह अल्केमिकल है। और वह अल्केमिकल धारा के दोनों तरफ हिंदुओं ने अपने तीर्थ खड़े किए।
अब यह जान कर हैरान होंगे कि हिंदुओं के सब तीर्थ नदी के किनारे हैं
और जैनों के सब तीर्थ पहाड़ों पर हैं। और जैन उस पहाड़ पर ही तीर्थ बनाएंगे जो बिल्कुल रूखा हो, जिस पर हरियाली भी न हो, हरियाली वाले पहाड़ को वे न चुनेंगे। हिमालय जैसा बढ़िया पहाड़ जैनों ने बिल्कुल छोड़ दिया। अगर पहाड़ ही चुनना था तो हिमालय से बेहतर कुछ भी न था। पर हिमालय को बिल्कुल छोड़ दिया। सूखा पहाड़ चाहिए, खुला पहाड़ चाहिए, कम से कम हरियाली हो, कम से कम पानी हो। क्योंकि जैन जो प्रयोग कर रहे थे, जैन जिस अल्केमी पर प्रयोग कर रहे थे, वह अल्केमी शरीर के भीतर जो अग्नि तत्व है उससे संबंधित है। और हिंदू जो प्रयोग कर रहे थे, वह अल्केमी शरीर के भीतर जो पानी तत्व है उससे संबंधित है। दोनों की अपनी कुंजियां हैं और अलग हैं।
हिंदू तो सोच ही नहीं सकता कि नदी के बिना और कैसे तीर्थ हो सकता है? नदी के बिना तीर्थ होने का कोई अर्थ हिंदू की समझ में नहीं आ सकता। हरियाली और सौंदर्य और इस सबके बिना तीर्थ हो सकता है, यह उसकी समझ में नहीं आ सकता। वह जो काम कर रहा था जिस तत्व पर, वह जल है। और उसके सब तीर्थ जो हैं वे जल-आधारित हैं, वे जल से निर्मित हैं।
जैन जो मेहनत कर रहा था उसका मूल तत्व अग्नि है, जिस पर वह काम कर रहा था, इसलिए तप पर बहुत जोर है। हिंदू शास्त्र और हिंदू साधु का जोर बहुत भिन्न है। हिंदू साधना का सूत्र यह है कि संन्यासी को, योगी को दूध, घी, दही, इनकी पर्याप्त मात्रा का उपयोग करना चाहिए। ताकि भीतर आर्द्रता रहे, सूखापन न आ जाए भीतर। सूखापन आएगा तो उनकी "की" काम नहीं कर सकेगी। आर्द्र रहे।
जैन की सारी की सारी चेष्टा यह है कि भीतर सब सूख जाए, सब सूख जाए भीतर, आर्द्रता रहे ही नहीं। इसलिए अगर जैन मुनि ने स्नान भी बंद कर दिया, तो उसके कारण हैं सब। उतना भी नहीं पानी का उपयोग करना है। अब आज वह सिवाय गंदगी के कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा। वह जैन मुनि भी नहीं बता सकता कि वह किसलिए नहीं नहा रहा है। वह किसलिए नहीं नहा रहा है, काहे के लिए वह परेशान है बिना नहाये, या क्यों चोरी से स्पंज कर रहा है, यह उसको कुछ पता नहीं है। लेकिन जल से उनकी "की" नहीं है, उनकी कुंजी नहीं है। वह जो पांच महाभूतों में जिस पर उनकी कुंजी है, वह है तप, वह है अग्नि। तो सब तरफ से भीतर अग्नि को जगाना है। अब ऊपर से पानी डाला तो वह अग्नि को जगाने में बाधा पड़ेगी। उसको सब तरफ से जगाना है। इसलिए सूखे पहाड़ पर, जहां हरियाली नहीं, पानी नहीं, जहां सब तप्त है, वहां जैन साधक खड़ा रहेगा। वह धीरे-धीरे पत्थरों में ही खड़ा रहेगा। जहां सब बाहर भी सूखा हुआ है।
दुनिया में सब जगह उपवास हैं, लेकिन सिर्फ जैनों को छोड़ कर उपवास में पानी लेने की मनाही कोई नहीं करेगा। सब दुनिया में उपवास हैं, सब चीजें

बंद कर दो, पानी जारी रखो। सिर्फ जैन हैं जो उपवास में पानी का भी निषेध करेंगे कि पानी नहीं! साधारण गृहस्थ के लिए भी कहेंगे कि और नहीं हो सकता तो कम से कम रात का पानी त्याग कर दो। वह साधारण गृहस्थ यही समझता है कि रात्रि पानी इसलिए त्याग करवाया जा रहा है कि कहीं पानी में कोई कीड़ा- मकोड़ा न मिल जाए, कुछ फलां न हो जाए। उससे कोई लेना-देना नहीं। असल में अग्नि तत्व की कुंजी के लिए तैयारी करवाई जा रही है।
और बड़े मजे की बात है कि अगर पानी कम लिया जाए, अगर कम से कम, न्यूनतम, जितना महावीर की चेष्टा है उतना पानी लिया जाए, तो ब्रह्मचर्य के लिए अनूठी सहायता मिलती है। क्योंकि वीर्य सूखना शुरू हो जाता है, और अंतर-अग्नि के जलाने के उनके जो इसके संयुक्त प्रयोग हैं वे बिल्कुल सुखा डालते हैं। जरा सी भी आर्द्रता वीर्य को प्रवाहित करती है, उनकी कुंजी जो है।
तो उन्होंने सारा का सारा निर्माण नदियों से दूर किया। फिर नकल में कुछ पीछे के तीर्थ खड़े कर लिए हैं, उनका कोई प्रयोजन नहीं है, वे आथेंटिक नहीं हैं। जैन आथेंटिक तीर्थ पहाड़ पर होगा। हिंदू आथेंटिक तीर्थ नदी के किनारे होगा, हरियाली में होगा, सुंदर जगह चुनेंगे। जैन जो भी पहाड़ चुनेंगे वह कई हिसाब से कुरूप होगा। क्योंकि पहाड़ का सौंदर्य उसकी हरियाली के साथ खो जाता है। स्नान नहीं करेंगे, दतौन नहीं करेंगे। इतना कम पानी का उपयोग करना है कि दतौन भी नहीं करेंगे। और अगर यह पूरी बात समझ ली जाए उनकी, तो फिर उनके जो सूत्र हैं वे कारगर होंगे, नहीं तो नहीं कारगर होंगे। क्योंकि वह जब भीतर की अग्नि भड़कती है, और भीतर की अग्नि के भड़काने का यह निगेटिव उपाय है कि पानी का संतुलन तोड़ दिया जाए।
इन सारे तत्वों का भीतर एक बैलेंस है। इस मात्रा में भीतर पानी, इस मात्रा में अग्नि, इन सबका बैलेंस है। अगर आपको एक तत्व से यात्रा करनी है तो बैलेंस तोड़ देना पड़ेगा और विपरीत से तोड़ना पड़ेगा। तो जो भी अग्नि पर मेहनत करेगा वह पानी का दुश्मन हो जाएगा। क्योंकि वह पानी जो है वह जितना कम हो जाए उसके भीतर, उतना उसका अग्नि का संचार हो जाए।
तो गंगा एक अल्केमिक प्रयोग है, एक बहुत गहरा रासायनिक प्रयोग है। इसमें स्नान करके व्यक्ति तीर्थ में प्रवेश करेगा। इसमें स्नान के साथ ही उसके शरीर के भीतर के पानी का जो तत्व है वह रूपांतरित होता है। वह रूपांतरण थोड़ी देर ही टिकेगा। लेकिन उस थोड़ी देर में, अगर ठीक प्रयोग किए जाएं, तो गति शुरू हो जाएगी। रूपांतरण तो थोड़ी देर में विदा हो जाएगा, लेकिन गति शुरू हो जाएगी। और जिसने एक बार गंगा के पानी को ही पीकर जीना शुरू कर दिया, वह फिर दूसरा पानी नहीं पी सकेगा। फिर बहुत कठिनाई हो जाएगी। क्योंकि दूसरा पानी फिर उसके लिए हजार तरह की अड़चनें पैदा करेगा। और भी बहुत जगह इस तरह गंगा जैसी गंगा पैदा करने की कोशिशें की गईं लेकिन कोई भी सफल नहीं हुईं। बहुत नदियों में प्रयोग किए गए हैं, वे सफल नहीं हो सके, क्योंकि पूरी कुंजियां खो गई हैं। छोटा-मोटा लोगों को ख्याल है कि क्या किया गया होगा, वह भी मैं नहीं जानता कितने लोगों को ख्याल है। शायद ही दो-चार आदमी हों जिनको ख्याल हो कि अल्केमी का इतना बड़ा प्रयोग हो सकता है।
गंगा में स्नान, तत्काल प्रार्थना या पूजा, या मंदिर में प्रवेश, या तीर्थ में प्रवेश, यह पदार्थ का उपयोग है अंतर्यात्रा के लिए। तीर्थ में और सब तरह के पदार्थों का भी उपयोग है। सब तीर्थ बहुत ख्याल से बनाए गए हैं। अब जैसे कि इजिप्त में पिरामिड हैं। वे इजिप्त की पुरानी खो गई सभ्यता के तीर्थ हैं। और एक बड़ी मजे की बात है कि इन पिरामिड्स में अंदर, क्योंकि ये पिरामिड्स जब बने तब वैज्ञानिकों का ख्याल है इलेक्ट्रिसिटी तो हो नहीं सकती आदमी के पास, बिजली नहीं हो सकती। ऐसा वैज्ञानिकों का ख्याल है कि बिजली नहीं हो सकती। बिजली का आविष्कार कहां? कोई दस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है, कोई बीस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है। वहां बिजली का तो कोई उपाय नहीं। और इनके अंदर इतना अंधेरा है कि इनके अंदर अंधेरे में जाने का कोई उपाय नहीं है।
तो या तो लोग मशाल ले जाते हों, या दीये ले जाते हों। लेकिन धुएं का एक
भी निशान नहीं है इतने पिरामिड्स में कहीं। इसलिए बड़ी मुश्किल है। अगर

मशालें लोग ले गए हों, तो एक छोटा सा दीया घर में जलाइए तो पता चल जाता है। अगर लोग मशालें भीतर ले गए हों तो इन पत्थरों पर कहीं न कहीं धुएं के निशान होने चाहिए! और इतने लंबे अंदर रास्ते हैं कि इनमें अंधेरे में जाया नहीं जा सकता। इतने मोड़ वाले रास्ते हैं और गहन अंधकार है!
तो दो ही उपाय हैं, या तो हम मानें कि बिजली रही होगी। लेकिन बिजली की किसी तरह की फिटिंग का कहीं कोई निशान नहीं है। बिजली पहुंचाने का कुछ तो इंतजाम होना चाहिए। या फिर और जो भी आदमी सोच सकता है--तेल, घी, उन सबसे किसी न किसी तरह के धुएं के निशान पड़ते हैं, वे कहीं भी नहीं हैं। वे इतने साफ-सुथरे हैं अंदर पत्थर कि उनमें कभी कोई धुआं नहीं पड़ा है। फिर क्या? उनके भीतर आदमी कैसे जाता रहा? कोई कहे, नहीं जाता रहा होगा। तो इतने रास्ते बनाने की कोई जरूरत नहीं है। सीढ़ियां हैं, रास्ते हैं, द्वार हैं, दरवाजे हैं, अंदर सब चलने-फिरने का बड़ा इंतजाम है। एक-एक पिरामिड में बहुत से लोग प्रवेश कर सकते हैं, बैठने के स्थान हैं अंदर। ये सब किसलिए होंगे? वह पहेली बनी रह गई है, वह उनको साफ नहीं हो पाएगी कभी भी। वह उनको कभी साफ न हो पाएगी, क्योंकि पिरामिड को वे समझ रहे हैं कि--वह समझ भी नहीं है साफ कि ये किसलिए बनाए गए--वे समझते हैं किसी सम्राट का फितूर होगा, कुछ होगा!
ये तीर्थ हैं। और इन पिरामिड्स में प्रवेश का सूत्र ही यही है कि जब कोई अंतर-अग्नि पर ठीक से प्रयोग करता है तो उसका शरीर आभा फेंकने लगता है, और वह अंधेरे में प्रवेश कर सकता है। तो न तो यहां बिजली उपयोग की गई है, न यहां कभी दीये उपयोग किए गए हैं, न कभी मशाल उपयोग की गई है, सिर्फ शरीर की दीप्ति उपयोग की गई है। लेकिन वह शरीर की दीप्ति विशेष अग्नि के प्रयोग से ही हो सकती है। और इसलिए इनका कोई उपाय नहीं। इनमें प्रवेश ही वही करेगा जो इस अंधकार में मजे से चल सके। वह उसकी कसौटी भी है, परीक्षा भी है, और उसके प्रवेश का हक भी है, वह हकदार भी है।
जब पहली दफा उन्नीस सौ पांच या दस में एक पिरामिड खोजा जा रहा था, तो
जो वैज्ञानिक उस पर काम कर रहा था उसका सहयोगी अचानक खो गया। बहुत तलाश की गई, कुछ पता न चले। यही डर हुआ कि वह किसी गलियारे में अंदर... । तो बहुत प्रकाश और सर्चलाइट ले जाकर खोजा, उसका कोई पता न चले।
वह कोई चौबीस घंटे खोया रहा। चौबीस घंटे बाद वह कोई रात दो बजे भागा हुआ आया, करीब-करीब पागल हालत में! उसने कहा कि मैं ऐसा टटोल कर अंदर जा रहा था, कहीं मुझे दरवाजा मालूम पड़ा, मैं अंदर गया, और फिर ऐसा लगा कि पीछे कोई चीज बंद हो गई। और मैंने लौट कर देखा तो दरवाजा तो बंद हो चुका था! जब मैं आया तब खुला था, पर दरवाजा भी नहीं था कोई, सिर्फ खुला था। जब मैं अंदर गया तो कोई चट्टान सरक कर बंद हो गई। फिर मैं बहुत चिल्लाया, लेकिन कोई उपाय नहीं था। फिर इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था कि मैं और आगे चला जाऊं। और मैं ऐसी अदभुत चीजें देख कर लौटा हूं जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है।
वह इतनी देर गुम रहा, यह पक्का है; वह इतना परेशान लौटा है, यह पक्का है; लेकिन जो बातें वह कह रहा है वे भरोसे की नहीं हैं कि ये चीजें होंगी। फिर बहुत खोजबीन की गई उस दरवाजे की, लेकिन वह दरवाजा दुबारा नहीं मिल सका। वह दरवाजा दुबारा नहीं मिल सका, न तो वह यह बता पाया कि वह कहां से प्रवेश किया, न वह यह बता पाया कि वह कहां से निकला। तो समझा कि या तो वह बेहोश हो गया, या उसने कोई सपना देखा, या वह कहीं सो गया। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था। लेकिन जो चीजें उसने कही थीं वे सब नोट कर ली गईं, जो-जो उसने देखीं।
फिर खुदाई में पुस्तकें मिलीं जिनमें उन चीजों का वर्णन भी मिला, तब बहुत मुसीबत हो गई, कि वे चीजें किसी कमरे में वहां बंद हैं। लेकिन उस कमरे का द्वार किसी विशेष मनोदशा में खुलता है। अब इस बात की संभावना है कि यह सांयोगिक घटना थी कि इसकी मनोदशा वैसी रही हो। इसकी मनोदशा वैसी रही हो यह सांयोगिक घटना है। क्योंकि इसे तो कुछ पता नहीं था, लेकिन द्वार खुला।
तो जिन गुप्त तीर्थों की मैं बात कर रहा हूं उनके द्वार हैं, उन तक पहुंचने की व्यवस्थाएं हैं, लेकिन उन सबके आंतरिक सूत्र हैं। इन तीर्थों में ऐसा सारा इंतजाम है कि जिनका उपयोग करके चेतना गतिमान हो सके। जैसे कि पिरामिड्स के सारे कमरे, उनका आयतन... ।

कभी आपने ख्याल किया हो, छप्पर बहुत नीचा हो, यद्यपि आपके सिर को नहीं
छू रहा होता है, यही छप्पर थोड़ा सरक कर नीचे आने लगे, हमको दबाएगा नहीं, हम से अभी दो फीट ऊंचा है, लेकिन हमारे भीतर कोई चीज दबने लगेगी। यह छप्पर नीचे आने लगे, यह अभी हमारे सिर पर नहीं आ गया है, लेकिन हमारे भीतर कोई चीज दबने लगेगी। जब आप एक नीचे छप्पर के भीतर प्रवेश करते हैं तो आपके भीतर कोई चीज सिकुड़ती है। और जब आप एक बड़े छप्पर के नीचे प्रवेश करते हैं तो आपके भीतर कोई चीज फैलती है।
बाहर के कमरे का आयतन इस ढंग से निर्मित किया जा सकता है, ठीक उतना किया जा सकता है जितने में आपके भीतर ध्यान आसान हो जाए। सरलतम हो जाए आपके भीतर, उतना आयतन निर्मित किया जा सकता है, उतना आयतन खोज लिया गया था। उस आयतन का उपयोग किया जा सकता है आपके भीतर सिकुड़ने और फैलने के लिए। उस कमरे के भीतर रंग, उस कमरे के भीतर गंध, उस कमरे के भीतर ध्वनि--इन सबका इंतजाम किया जा सकता है जो आपको ध्यान के लिए साथी हो जाएं।
सब तीर्थों का अपना संगीत था। सच तो यह है कि सब संगीत तीर्थों में पैदा हुआ। और सब संगीत साधकों ने पैदा किया। सब संगीत किसी दिन मंदिर में पैदा हुआ, सब नृत्य किसी दिन मंदिर में पैदा हुए। सब सुगंध पहली दफे मंदिर में उपयोग की गई। और जब एक दफे यह बात पता चल गई कि संगीत के माध्यम से कोई व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा सकता है, तो संगीत के माध्यम से परमात्मा के विपरीत जा सकता है, यह भी ख्याल में आ गया। और तब बाद में दूसरे संगीत खोजे गए। और किसी गंध से व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा सकता है, तो किसी गंध से कामुकता की तरफ जा सकता है, वे गंधें भी खोज ली गईं। किसी विशेष आयतन में ध्यानस्थ हो सकता है, तो किसी विशेष आयतन में ध्यान से रोका जा सकता है, वह भी खोज लिया गया।
जैसे अभी चीन में ब्रेनवाश के लिए जहां वे कैदियों को खड़ा करते हैं, उसका एक विशेष आयतन है, उस कोठरी का। उस विशेष आयतन में खड़ा करते हैं। और उन्होंने अनुभव किया कि उस आयतन में कमी-बेशी करने से ब्रेनवाश करने में मुसीबत पड़ती है। तो एक निश्चित आयतन, हजारों प्रयोग करके तय हो गया कि इतनी ऊंची, इतनी चौड़ी, इतने आयतन की कोठरी में कैदी को खड़ा कर दो, तो वह कितनी देर में डिटेरिओरेट हो जाएगा, कितनी देर में खो देगा अपने दिमाग को। फिर उसमें एक विशेष ध्वनि भी पैदा करो तो वह और जल्दी खो देगा। खास जगह उसके मस्तिष्क पर हैमरिंग करो तो और जल्दी खो देगा।
तो कुछ नहीं करते, एक मटका ऊपर रख देते हैं कि एक-एक बूंद पानी टिप-टिप उसकी खोपड़ी पर टपकता रहता है। पर उसकी अपनी लय है, रिदम है उसकी। बस टिप-टिप, टिप-टिप, वह पानी सिर पर टपकता रहेगा चौबीस घंटे। अब वह आदमी खड़ा है, बैठ नहीं सकता, हिल नहीं सकता, आयतन इतना है कोठरी का, लेट नहीं सकता। वह खड़ा रहेगा और मस्तिष्क में वह टिप-टिप पानी गिरता रहेगा। एक आधा घंटा पूरे होते-होते, तीस मिनट पूरे होते-होते सिवाय टिप-टिप की आवाज के कुछ नहीं बचेगा। और तब आवाज इतनी जोर से मालूम होने लगेगी, जैसे पहाड़ गिर रहा हो। अकेली आवाज रह जाएगी उस आयतन में। और चौबीस घंटे में वे आपके दिमाग को अस्तव्यस्त कर देंगे। चौबीस घंटे के बाद जब आपको बाहर निकालेंगे तो आप वही आदमी नहीं हैं! उन्होंने आपको सब तरह से तोड़ दिया भीतर।
पर ये सारे के सारे प्रयोग पहली दफे तीर्थों में खोजे गए, मंदिरों में खोजे गए, जहां से आदमी को सहायता पहुंचाई जा सके। मंदिर के घंटे हैं, मंदिर की ध्वनियां हैं, धूप है, गंध है, फूल हैं, सब नियोजित था। और एक सातत्य रखने की कोशिश की गई। कंटिन्युटी न टूटे, बीच में कहीं कोई व्यवधान न पड़े, तो अहर्निश धारा जारी रहेगी। तो सुबह इतने वक्त आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मंत्र के साथ होगी; दोपहर आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मंत्र के साथ होगी; सांझ आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मंत्र के साथ चलेगी। यह सातत्य ध्वनियों का उस कोठरी में गूंजता रहेगा। पहला सातत्य टूटे, उसके पहले दूसरा रिप्लेस हो जाएगा। यह हजारों साल तक चलेगा।
तो जैसा मैंने कहा कि पानी को अगर लाख दफा पुनः-पुनः पानी बनाया जाए भाप बना कर तो जैसे उसकी क्वालिटी बदलती है, अल्केमी के हिसाब से एक ध्वनि को लाखों दफा पैदा किया जाए एक कमरे में, उस कमरे की पूरी तरंग-गुणवत्ता बदल जाती है, उसकी पूरी क्वालिटी बदल जाती है। उसके बीच व्यक्ति को खड़ा कर

देना, उसके पास खड़ा कर देना, उसके रूपांतरित होने के लिए आसानी जुटा देता है। और चूंकि हमारा सारा का सारा व्यक्तित्व पदार्थ से निर्मित है, पदार्थ में जो भी फर्क होते हैं वे हमारे व्यक्तित्व को बदलने लगते हैं। और आदमी इतना बाहर है कि पहले बाहर से ही फर्क उसको आसान पड़ते हैं, भीतर के फर्क तो पहले बहुत कठिन पड़ते हैं।
तो दूसरा उपाय थाः पदार्थ के द्वारा सारी ऐसी व्यवस्था दे देना कि आपके शरीर को जो-जो सहयोगी हो वह हो जाए।
और तीसरी बात थी। यह हमारा भ्रम ही है आमतौर से कि हम व्यक्ति हैं। यह बड़ा थोथा भ्रम है। यहां हम इतने लोग बैठे हैं, अगर हम शांत होकर बैठें तो यहां इतने लोग नहीं रह जाते, एक ही व्यक्तित्व रह जाता है। एक शांति का व्यक्तित्व रह जाता है। और हम सब की चेतनाएं एक-दूसरे में तरंगित और प्रवाहित होने लगती हैं।
तो तीर्थ जो है वह मास एक्सपेरिमेंट है। तो एक वर्ष में विशेष दिन करोड़ों लोग एक तीर्थ पर इकट्ठे हो जाएंगे; एक ही आकांक्षा, एक ही अभीप्सा से सैकड़ों मील की यात्रा करके आ जाएंगे। एक विशेष घड़ी में, एक विशेष तारे के साथ, एक विशेष नक्षत्र में एक जगह इकट्ठे हो जाएंगे।
इसमें कई बातें हैं। पहली बात जो समझ लेने की है वह यह कि ये जो करोड़ लोग इकट्ठे हो गए हैं एक अभीप्सा और एक आकांक्षा से, एक प्रार्थना से, एक ध्वनि, एक धुन करते हुए आ गए हैं, यह एक पूल बन गया चेतना का। यह एक करोड़ लोगों का पूल हो गया चेतना का। यहां अब व्यक्ति नहीं हैं।
अगर कुंभ में देखें तो व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता। भीड़, निपट भीड़, जहां कोई चेहरा नहीं है। चेहरा बचेगा कहां इतनी भीड़ में? निपट भीड़ रह गई, फेसलेस। एक करोड़ आदमी इकट्ठा हैं। कौन कौन है, अब कोई अर्थ नहीं रह गया। कौन राजा है, कौन रंक है, अब कोई मतलब नहीं रह गया। कौन गरीब है, कौन अमीर है, कोई मतलब नहीं रह गया, फेसलेस हो गया सब। और ये एक करोड़ आदमी एक ही अभीप्सा से एक विशेष घड़ी में इकट्ठे हुए हैं--एक ही प्रार्थना से, एक ही आकांक्षा से। इन सबकी चेतनाएं एक-दूसरे के भीतर प्रवाहित होनी शुरू होंगी। अगर एक करोड़ लोगों की चेतना का पूल बन सके, एक इकट्ठा रूप बन जाए, तो इस चेतना के भीतर परमात्मा का प्रवेश जितना आसान है उतना आसान एक-एक व्यक्ति के भीतर नहीं है। यह बड़ा कांटैक्ट फील्ड है।
नीत्से ने कहीं लिखा है--वह सुबह एक बगीचे में गुजर रहा है। एक छोटा सा लंबा कीड़ा है, उस पर उसका पैर लग जाता है तो वह कीड़ा जल्दी से सिकुड़ कर गोल घुंडी बना कर बैठ जाता है। तो नीत्से बड़ा हैरान हुआ। उसने कई दफे यह बात देखी है कि कीड़ों को जरा चोट लग जाए तो वे तत्काल सिकुड़ कर क्यों बैठ जाते हैं? फिर उसने अपनी डायरी में लिखा कि बहुत सोच कर मुझे ख्याल में आया है कि वे कांटैक्ट फील्ड कम कर लेते हैं, बचाव का ज्यादा उपाय हो गया। कीड़ा अगर पूरा लंबा है, तो उस पर पैर पड़ सकता है, ज्यादा जगह वह घेर रहा है। वह सिकुड़ कर जल्दी से छोटी जगह में सिकुड़ गया, अब उस पर पैर पड़ने की संभावना अनुपात में कम हो गई। तो वह सुरक्षा कर रहा है अपनी, वह अपना कांटैक्ट फील्ड छोटा कर रहा है। और जो कीड़ा जितनी जल्दी यह कांटैक्ट फील्ड छोटा कर लेता है, वह उतना बचाव कर लेता है।
आदमी की चेतना कितना बड़ा कांटैक्ट फील्ड निर्मित करती है, परमात्मा
का अवतरण उतना आसान हो जाता है। क्योंकि वह इतनी बड़ी घटना है! उस बड़ी घटना के लिए, जितनी जगह हम बना सकें उतनी उपयोगी है। इंडिविजुअल प्रेयर तो बहुत बाद में पैदा हुई--व्यक्तिगत प्रार्थना। प्रार्थना का मूल रूप तो समूहगत है। वैयक्तिक प्रार्थना तो तब पैदा हुई जब एक-एक आदमी को भारी अहंकार पकड़ना शुरू हो गया। और किसी के साथ पूल-अप होना मुश्किल हो गया कि किसी के साथ हम एक हो जाएं। और इसलिए जब से इंडिविजुअल प्रेयर दुनिया में शुरू हुई तब से प्रेयर का फायदा खो गया। असल में प्रेयर इंडिविजुअल नहीं हो सकती। हम इतनी बड़ी शक्ति का आवाहन कर रहे हैं कि हम जितना बड़ा क्षेत्र दे सकें उसके अवतरण के लिए, उतना ही सुगम होगा।
तो तीर्थ उस बड़े क्षेत्र को निर्मित करते हैं। फिर खास घड़ी में करते हैं, खास नक्षत्र में करते हैं, खास दिन पर करते हैं, खास वर्ष में करते

हैं। वे सब सुनिश्चित विधियां थीं। यानी उस घड़ी में, उस नक्षत्र में पहले भी कांटैक्ट हुआ है; और जीवन की सारी व्यवस्था पीरियाडिकल है।
इसे भी समझ लेना चाहिए। जीवन की सारी व्यवस्था पीरियाडिकल है। जैसे
कि वर्षा आती है, एक खास दिन पर आ जाती है। और अगर आज नहीं आती खास दिन पर, तो उसका कारण यह है कि हमने छेड़छाड़ की है। अन्यथा दिन बिल्कुल तय थे, घड़ी तय थी, सब तय था, वह उस वक्त आ जाती थी। गर्मी आती थी खास वक्त, सर्दी आती थी खास वक्त, बसंत आता था खास वक्त--सब बंधा था। शरीर भी बिल्कुल वैसा ही काम करता है। स्त्रियों का मासिक धर्म है, वह ठीक चांद के साथ चलता रहता है। ठीक अट्ठाइस दिन में उसे लौट आना चाहिए। अगर बिल्कुल ठीक है, शरीर स्वस्थ है, तो वह अट्ठाइस दिन में लौट आना चाहिए। वह चांद के साथ यात्रा करता है। वह अट्ठाइस दिन में नहीं लौटता, तो क्रम टूट गया है व्यक्तित्व का, भीतर कहीं कोई गड़बड़ हो गई है। सारी घटनाएं एक क्रम में आवर्तित होती हैं।
तो अगर किसी एक घड़ी में परमात्मा का अवतरण हो गया, तो उस घड़ी को हम अगले वर्ष के लिए फिर नोट कर सकते हैं। और संभावना उस घड़ी की बढ़ गई, वह घड़ी जो है वह ज्यादा पोटेंशियल हो गई, उस घड़ी में परमात्मा की धारा पुनः प्रवाहित हो सकती है। इसलिए पुनः-पुनः उस घड़ी में तीर्थ पर लोग इकट्ठे होते रहेंगे सैकड़ों वर्षों तक।
और अगर यह कई बार हो चुका तो वह घड़ी सुनिश्चित होती जाएगी, वह बिल्कुल
तय हो जाएगी। अब जैसे कि कुंभ के मेले पर गंगा में कौन पहले उतरे, वह भारी दंगे का कारण हो जाता है। क्योंकि इतने लोग इकट्ठे नहीं उतर सकते एक घड़ी में, और वह घड़ी तो बहुत सुनिश्चित है, बहुत बारीक है। तो उसमें कौन उतरे उस पहली घड़ी में, वह सुनिश्चित हो गया है। जिन्होंने वह घड़ी खोजी है या जिनकी परंपरा और जिनकी धारा में उस घड़ी का पहले अवतरण हुआ है, वे उसके मालिक हैं। वे उस घड़ी में पहले उतर जाएंगे। और कभी-कभी इंच का फर्क हो जाता है। परमात्मा का अवतरण करीब-करीब बिजली की कौंध जैसा है--कौंधा, और खो गया। उस क्षण में आप खुले रहे, जगे रहे, तो घटना घट जाए। उस क्षण में आंख बंद हो गई, सोए रहे, तो घटना खो जाए।
तो तीर्थ का तीसरा महत्व थाः मास एक्सपेरिमेंट, समूह प्रयोग, अधिकतम विराट पैमाने पर उतारा जा सके। और सरल जब लोग थे तो यह घटना बड़ी आसानी से घटती थी। ऐसा नहीं था, उस दिन तीर्थ बड़े सार्थक थे। तीर्थ से कभी कोई खाली नहीं लौटता था। इसलिए तो आज भी खाली लौट आता है, फिर भी आदमी फिर दोबारा चला जाता है। उस दिन कोई खाली नहीं लौटता था; वह ट्रांसफार्म होकर लौटता ही था। पर वह बहुत सरल और इनोसेंट समाज की घटनाएं हैं। क्योंकि जितना सरल समाज हो और जहां व्यक्तित्व का बोध जितना कम हो, वहां तीर्थ का यह तीसरा प्रयोग काम करेगा, अन्यथा नहीं करेगा। जैसे आज भी अगर आदिवासियों में जाएं तो व्यक्तित्व का बोध नहीं है। मैं का ख्याल कम है, हम का ख्याल ज्यादा है। कुछ तो भाषाएं हैं ऐसी जिनमें "मैं" नहीं है, "हम" ही है। आदिवासी कबीलों की ढेर भाषाएं हैं जिनमें मैं शब्द नहीं है। जब आदिवासी बोलता है, तो बोलता है हम। ऐसा नहीं है कि भाषा ही है, वह मैं का कंसेप्ट ही पैदा नहीं हुआ है। और वह इतना जुड़ा हुआ है कि कई दफे तो बहुत अनूठे परिणाम उससे निकले हैं।
सिंगापुर के पास एक छोटे से द्वीप पर जब पहली दफा पश्चिमी लोगों ने हमला किया, तो वे बड़े हैरान हुए। क्योंकि जो चीफ था, उसका जो प्रमुख था कबीले का, वह आया किनारे पर, और जो हमलावर थे उनसे उसने कहा कि हम तो निहत्थे लोग हैं, पर हम परतंत्र नहीं हो सकते। तो उन्होंने कहा कि वह तो होना ही पड़ेगा। क्योंकि साज-सामान तो उनके पास कुछ भी नहीं है। उन्होंने कहा, हमारे पास तो कुछ नहीं है लड़ाई का उपाय, लेकिन हम मरना जानते हैं--हम मर जाएंगे।
उन्हें भरोसा नहीं आया कि कोई ऐसे मरता है! लेकिन बड़ी अदभुत घटना-- ऐतिहासिक घटनाओं में एक घटना घटी--कि जब वे राजी नहीं हुए और उन्होंने कदम रख दिए, द्वीप पर उतर गए, तो पूरा कबीला इकट्ठा हुआ, कोई पांच सौ लोग तट पर इकट्ठे हुए, और वे देख कर दंग रह गए कि उनका प्रमुख पहले मर कर गिर गया, और फिर दूसरे लोग मर कर गिरने लगे। मर कर गिरने लगे, बिना किसी छुरा भोंकने

के! वे घबरा गए, वापस लौट गए, यह देख कर। पहले तो उन्होंने समझा कि ये लोग ऐसे ही गिर गए होंगे, लेकिन देखा कि वे तो आदमी खत्म ही हो गए।
अभी तक साफ नहीं हो सका कि यह क्या घटना घटी। असल में हम की कांशसनेस अगर बहुत ज्यादा हो तो मृत्यु ऐसी संक्रामक हो सकती है। एक के मरते ही फैल सकती है। कई जानवर मर जाते हैं। भेड़ें मर जाती हैं। एक भ.ेड मरी, कि मरना फैल जाता है। भेड़ के पास मैं का बोध बहुत कम है, हम का बोध है। इसलिए भेड़ों को चलते भी देखें तो मालूम पड़ेगा कि "हम" चल रहा है। सब सटी हैं एक-दूसरे से, एक ही जीवन जैसे सरकता हो। एक भेड़ मरी, तो दूसरी भेड़ को मरने जैसा हो जाएगा, मृत्यु फैल जाएगी भीतर।
तो जब समाज बहुत हम के बोध से भरा था और मैं का बोध बहुत कम था, तब तीर्थ बड़ा कारगर था, बहुत कारगर था। अब उसकी उपयोगिता उसी मात्रा में कम हो जाएगी, जिस मात्रा में मैं का बोध बढ़ जाएगा।
और आखिरी बात जो तीर्थ के बाबत ख्याल में ले लेनी चाहिए, वह यह कि सिंबालिक एक्ट का, प्रतीकात्मक कृत्य का मूल्य है भारी। जैसे जीसस के पास कोई आता है और कहता है, मैंने ये-ये पाप किए हैं। वह जीसस के सामने कन्फेस कर देता है, सब बता देता है, मैंने ये पाप किए, मैंने ये पाप किए, मैंने ये पाप किए। और जीसस उसके सिर पर हाथ रख कर कह देते हैं कि जा तुझे माफ किया। अब इस आदमी ने पाप किए हैं, जीसस के कहने से माफ कैसे हो जाएंगे? और जीसस कौन हैं? और उनके हाथ रखने से माफ हो जाएंगे? तो इस आदमी ने खून किया, उसका क्या होगा?
या हमने कहा कि आदमी पाप करे और गंगा में स्नान कर ले और मुक्त हो जाएगा।
बिल्कुल पागलपन मालूम होता है। क्योंकि इसने हत्या की है, चोरी की है, बेईमानी की है, गंगा में स्नान करके मुक्त कैसे हो जाएगा?
तो अब यहां दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो यह कि पाप असली घटना नहीं है, स्मृति असली घटना है--मेमोरी। पाप नहीं, एक्ट नहीं, असली घटना जो आप में चिपकी रह जाती है वह स्मृति है। आपने हत्या की है, यह उतना बड़ा सवाल नहीं है आखिर में। आपने हत्या की है, यह स्मृति कांटे की तरह पीछा करेगी। जो जानते हैं, वे तो जानते हैं कि हत्या की है कि नहीं की है, वह नाटक
का हिस्सा है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। न कोई मरता है यहां, न कभी मार सकता है कोई। मगर यह स्मृति आपका पीछा करेगी कि मैंने हत्या की, मैंने चोरी की। यह पीछा करेगी, और यह पत्थर की तरह आपकी छाती पर पड़ी रहेगी। वह कृत्य तो गया, अनंत में खो गया। वह कृत्य तो अनंत ने सम्हाल लिया। सच तो यह है कि सब कृत्य अनंत के हैं; आप नाहक उसके लिए परेशान हैं। अगर चोरी भी हुई है आपसे तो भी अनंत के ही द्वारा आपसे हुई है। और हत्या भी हुई है तो भी अनंत के द्वारा आपसे हुई है। आप नाहक बीच में अपनी स्मृति लेकर खड़े हैं कि मैंने किया। अब यह मैंने किया और यह स्मृति आपकी छाती पर बोझ है।
तो क्राइस्ट कहते हैं, तुम कन्फेस कर दो, मैं तुम्हें माफ किए देता हूं। और जो क्राइस्ट पर भरोसा करता है वह पवित्र होकर लौटेगा। असल में क्राइस्ट पाप से तो मुक्त नहीं कर सकते, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकते हैं। स्मृति ही असली सवाल है। गंगा पाप से मुक्त नहीं कर सकती, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकती है। अगर कोई भरोसा लेकर गया है कि गंगा में डुबकी लगाते ही से सारे पाप से बाहर हो जाऊंगा, और ऐसा अगर उसके चित्त में और कलेक्टिव अनकांशस में है उसके समाज के, करोड़ों वर्ष की धारणा है कि गंगा में डुबकी लगाने से पाप से छुटकारा हो जाएगा। पाप से छुटकारा नहीं होगा, चोरी को अब कुछ और नहीं किया जा सकता, हत्या जो हो गई, हो गई। लेकिन यह व्यक्ति पानी के बाहर जब निकलेगा तो सिंबालिक एक्ट हो गया।
क्राइस्ट कितने दिन दुनिया में रहेंगे? कितने पापियों से मिलेंगे? कितने पापी कन्फेस कर पाएंगे? इसलिए हिंदुओं ने ज्यादा स्थायी व्यवस्था खोजी है। व्यक्ति से नहीं बांधा, एक नदी से बांधा। वह नदी कन्फेशन लेती रहेगी, वह नदी माफ करती रहेगी। और यह अनंत तक रहेगी, और यह धारा स्थायी हो जाएगी। क्राइस्ट कितने दिन रहेंगे?
मुश्किल से क्राइस्ट तीन साल काम कर पाए, कुल तीन साल। तीस से लेकर तैंतीस साल की उम्र तक, तीन साल में कितने पापी कन्फेस करेंगे? कितने पापी

उनके पास आएंगे? कितने लोगों के सिर पर हाथ रखेंगे? क्या होगा? इसलिए व्यक्ति से नहीं बांधा, अव्यक्ति धारा से बांध दिया।
तो तीर्थ है, वहां जाएगा कोई, वह मुक्त होकर लौटेगा। वह स्मृति से मुक्त होगा। स्मृति ही तो बंधन है। वह स्वप्न जो आपने देखा है, आपका पीछा कर रहा है। असली सवाल वही है, असली सवाल वही है। और निश्चित ही उससे छुटकारा हो सकता है। लेकिन उस छुटकारे में दो बातें जरूरी हैं। बड़ी बात तो यह जरूरी है कि आपकी ऐसी निष्ठा हो कि मुक्ति हो जाएगी। और आपकी निष्ठा कैसे होगी? आपकी निष्ठा तभी हो सकती है जब आपको ऐसा ख्याल हो कि लाखों वर्ष से ऐसा वहां होता रहा है। और कोई उपाय नहीं है। यहां होता रहा है लाखों वर्षों से।
इसलिए कुछ तीर्थ तो बिल्कुल सनातन हैं। जैसे काशी, वह सनातन है। सच बात यह है कि पृथ्वी पर कोई ऐसा समय नहीं रहा जब काशी तीर्थ नहीं थी। कोई ऐसा समय नहीं रहा जब काशी तीर्थ नहीं थी। वह एक अर्थ में सनातन है, बिल्कुल सनातन है। यानी आदमी का पुराने से पुराना तीर्थ है। उसका मूल्य बढ़ जाता है, क्योंकि उतनी बड़ी धारा, सजेशन देती है। वहां कितने लोग मुक्त हुए, वहां कितने लोग शांत हुए, वहां कितने लोगों ने पवित्रता को अनुभव किया, वहां कितने लोगों के पाप झड़ गए--वह एक लंबी धारा है। वह सुझाव गहरा होता चला जाता है, वह सरल चित्त में जाकर निष्ठा बन जाता है। और वह निष्ठा बन जाए तो तीर्थ कारगर हो जाता है। वह निष्ठा न बन पाए तो तीर्थ बेकार हो जाता है। तीर्थ आपके बिना कुछ नहीं कर सकता, आपका कोआपरेशन चाहिए पड़ेगा। लेकिन आप भी कोआपरेशन तभी देते हैं जब तीर्थ की एक धारा हो, एक इतिहास हो।
तो हिंदू कहते हैं कि यह काशी जो है वह इस जमीन का हिस्सा नहीं है, इस पृथ्वी का हिस्सा नहीं है। वह अलग ही टुकड़ा है। वह शिव की नगरी अलग ही है, वह सनातन है। सब नगर बनेंगे, बिगड़ेंगे, वह बनी रहेगी।
और सच में कई दफे हैरानी होती है, व्यक्ति तो खो जाते हैं! बुद्ध काशी आए--खो गए। जैनों के तीर्थंकर काशी में पैदा हुए--खो गए। काशी ने सब को देखा। शंकराचार्य आए--खो गए। कबीर बसे--खो गए। काशी ने तीर्थंकर देखे, अवतार देखे, संत देखे--सब खोते चले गए। उनका तो कहीं कोई निशान नहीं रह जाता। लेकिन काशी बनी रहती है। उन सब की पवित्रता को, उन सारे लोगों के पुण्य को, उन सारे लोगों की जीवन-धारा को, उनकी सब सुगंध को आत्मसात कर लेती है और बनी रहती है।
यह जो स्थिति है, यह निश्चित ही पृथ्वी से अलग हो जाती है-- मेटाफोरिकली। यह बिल्कुल अलग हो जाती है। इसका अपना एक शाश्वत रूप हो गया, इसका अपना व्यक्तित्व हो गया--इस नगर का। इस नगर पर से बुद्ध गुजरे हैं, इसकी गलियों में बैठ कर कबीर ने चर्चा की है। वह सब कहानी हो गई, वह सब स्वप्न हो गया। पर यह नगर उन सबको आत्मसात किए चलता जाता है। और अगर कभी कोई निष्ठा से इस नगर में प्रवेश करे तो वह फिर से बुद्ध को चलता हुआ देख सकता है, वह फिर से पार्श्वनाथ को गुजरते हुए देख सकता है। वह फिर से देखेगा तुलसीदास को, वह फिर से देखेगा कबीर को।
अगर कोई निष्ठा से, सहानुभूति से इस काशी के निकट जाए, तो यह काशी साधारण नगर न रह जाएगी लंदन या बंबई जैसा, एक असाधारण चिन्मय रूप ले लेगी। और इसकी चिन्मयता बड़ी शाश्वत है और बड़ी पुरातन है। इतिहास खो जाते हैं, सभ्यताएं बनती और बिगड़ती हैं, आती हैं और चली जाती हैं, और यह अपनी एक अंतःधारा को संजोए हुए चलती रहती है। इसके रास्ते पर खड़ा होना, इसके घाट पर स्नान करना, इसमें बैठ कर ध्यान करने के प्रयोजन हैं। आप भी हिस्सा हो गए एक अनंत धारा के।
यह भरोसा कि मैं ही सब कुछ कर लूंगा, खतरनाक है। प्रभु का सहारा लिया
जा सकता है, अनेक रूपों में--उसके तीर्थों में, उसके मंदिरों में उसका सहारा लिया जा सकता है। उस सब सहारे के लिए वह सारा आयोजन है।
ये तो कुछ बातें जो ठीक से समझ में आ सकें, वे मैंने कहीं। जो ठीक से समझ में आ सकें, बुद्धि जिनको देख पाए, समझ पाए। पर ये पर्याप्त नहीं हैं। बहुत सी बातें हैं तीर्थ के साथ, जो समझ में नहीं आ सकेंगी, पर घटित होती हैं। जिनको बुद्धि साफ-साफ नहीं बिठा पाएगी, और जिनका गणित नहीं बनाया जा सकेगा, लेकिन घटित होती हैं।

दो-तीन बातें सिर्फ उल्लेख कर दूं, क्योंकि वे घटित होती हैं। जैसे कि
आप कहीं भी जाकर एकांत में बैठ कर साधना करें तो बहुत कम संभावना है कि आपको अपने आस-पास किन्हीं आत्माओं की उपस्थिति का अनुभव हो, लेकिन तीर्थ में करें तो बहुत जोर से होगा। कहीं भी करें, वह अनुभव नहीं होगा; लेकिन तीर्थ में आपको प्रेजेंस मालूम पड़ेगी--थोड़ी बहुत नहीं, बहुत गहन। कभी इतनी गहन हो जाती है कि आप मालूम पड़ेंगे कि कम हैं, और दूसरे की प्रेजेंस ज्यादा है।
जैसे कैलाश है। कैलाश हिंदुओं का भी तीर्थ रहा है और तिब्बतन बौद्धों
का भी। पर कैलाश बिल्कुल निर्जन है, वहां कोई आवास नहीं है। कोई पुजारी नहीं है, कोई पंडा नहीं है, कोई प्रकट आवास नहीं है कैलाश पर। लेकिन जो भी कैलाश पर जाकर ध्यान का प्रयोग करेगा वह कैलाश को पूरी तरह बसा हुआ पाएगा। जैसे ही कैलाश पर पहुंचेगा, अगर थोड़ी भी ध्यान की क्षमता है, तो कैलाश से कभी कोई यह खबर लेकर नहीं लौटेगा कि वह निर्जन है। इतना सघन बसा है, इतने लोग हैं, और इतने अदभुत लोग हैं। लेकिन ऐसे कोई बिना ध्यान के कैलाश जाएगा तो कैलाश खाली है।
इसलिए चांद के संबंध में जो लोग और तरह से खोज करते हैं, उनका ख्याल नहीं है कि चांद निर्जन है। और जिन्होंने कैलाश को अनुभव किया है वे कभी नहीं मानेंगे कि चांद निर्जन है। लेकिन आपके यात्री को चांद पर कोई नहीं मिलेगा। जरूरी नहीं है इससे कि कोई न हो। आपके यात्री को कोई नहीं मिलेगा। इसलिए बेचारे जैन, उनके ग्रंथों में बहुत वर्णन है कि चांद पर किस-किस तरह के देवता हैं, क्या हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, वहां कोई नहीं है! और उनके साधु-संन्यासी बड़ी मुश्किल में हैं। तो वे बेचारे एक ही उपाय कर सकते हैं, उनको कुछ और तो पता नहीं है, वे यही कह सकते हैं कि तुम असली चांद पर पहुंचे ही नहीं। वे इसके सिवाय और क्या कहेंगे? तो अभी गुजरात में कोई मुझे कह रहा था कि कोई जैन मुनि पैसा इकट्ठा कर रहे हैं यह सिद्ध करने के लिए कि तुम असली चांद पर नहीं पहुंचे।
यह वे कभी सिद्ध न कर पाएंगे। आदमी असली चांद पर पहुंच गया है। लेकिन उनकी कठिनाई यह है कि उनकी किताब में लिखा है कि वह आवास है वहां! वहां इस-इस तरह के देवता रहते हैं! पर उनकी किताब में लिखा है और उनको तो कुछ पता नहीं है। तो वह किताब है और अब वैज्ञानिक की रिपोर्ट है कि वहां कोई भी नहीं है। अब क्या करना? तो साधारण बुद्धि जो कर सकती है वह यह कि फिर तुम उस चांद पर नहीं पहुंचे। एक तो यह, और अगर नहीं सिद्ध कर पाए तो फिर मानना पड़ेगा कि हमारा शास्त्र गलत हुआ। तो जब तक जिद बांध रखेंगे बांध रखेंगे कि नहीं, तुम उस जगह नहीं पहुंचे।
तो एक जैन मुनि ने तो यह कहा कि आप वहां नहीं पहुंचे।
अब इनकार भी नहीं कर सकते, पहुंचे तो जरूर हैं, तो फिर कहां पहुंच गए हैं? तो उन्होंने क्या कहा! कभी-कभी हास्यास्पद और रिडीकुलस हो जाती हैं बातें! उन्होंने कहा कि वहां देवताओं के जो विमान ठहरे रहते हैं चारों तरफ, आप किसी विमान पर उतर गए। वे बड़े विराट विमान हैं। किसी पर उतर कर आप लौट आए हैं, चांद पर आप ठीक चांद की भूमि पर नहीं उतर सके हैं।
अब यह सब पागलपन है, लेकिन इस पागलपन के पीछे कुछ कारण है। वह कारण यह
है कि एक धारा है, कोई अंदाजन बीस हजार वर्ष से जैनों की धारा है कि चांद पर आवास है। पर अब वह उनको ख्याल में नहीं है कि वह आवास किस तरह का है। वह आवास कैलाश जैसा आवास है, वह आवास तीर्थों जैसा आवास है।
जब आप तीर्थ पर जाएंगे तो एक तीर्थ तो वह काशी है जो दिखाई पड़ती है। जहां आप ट्रेन से उतर जाएंगे स्टेशन पर, एक तो काशी वह है। इसलिए काशी के दो रूप हैं--तीर्थ के दो रूप हैं। एक तो मृण्मय रूप है, वह जो दिखाई पड़ रहा है, जहां कोई भी जाएगा सैलानी और घूम कर लौट आएगा। और एक उसका चिन्मय रूप है, जहां वही पहुंच पाएगा जो अंतरस्थ होगा, जो ध्यान में प्रवेश करेगा, तो काशी बिल्कुल और हो जाएगी। तो काशी के सौंदर्य का इतना वर्णन है, और इस काशी को देखो तो फिर लगता है कि वह कवि की कल्पना है। इससे ज्यादा गंदी कोई बस्ती नहीं है, यह काशी जिसको हम देख कर आ जाते हैं। पर किस काशी की बातें कर रहे हो तुम? किस काशी की बात हो रही है? किस काशी के सौंदर्य की?

अपूर्व! ऐसा कोई नगर नहीं है इस जगत में! यह सब तुम किसकी बात कर रहे हो? यह काशी अगर है, तब फिर यह सब कवि-कल्पना हो गई!
नहीं, पर वह काशी भी है। और एक कांटैक्ट फील्ड है यह काशी, जहां उस काशी और इस काशी का मिलन होता है। तो यह जो यात्री सिर्फ ट्रेन में बैठ कर गया है, वह इस काशी से वापस लौट आता है। वह जो ध्यान में भी बैठ कर गया है, वह उस काशी से भी संपर्क साध पाता है। तब इसी काशी के निर्जन घाट पर उनसे भी मिलना हो जाता है जिनसे मिलने की आपको कभी कोई कल्पना नहीं हो सकती, उनसे मिलना हो जाता है।
तो कैलाश पर अलौकिक निवास है। करीब-करीब नियमित रूप से, नियम कैलाश का रहा है कि कम से कम पांच सौ बुद्ध-सिद्ध तो वहां रहें ही, उससे कम नहीं। पांच सौ बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति कैलाश पर रहेंगे ही। और जब भी एक उनमें से विदा होगा किसी और यात्रा पर, तो दूसरा जब तक न हो तब तक विदा नहीं हो सकता। पांच सौ की संख्या वहां पूरी रहेगी ही। उनकी पांच सौ की मौजूदगी कैलाश को तीर्थ बनाती है। लेकिन यह बुद्धि से समझने की बात नहीं है इसलिए मैंने पीछे छोड़ रखी। उन पांच सौ की उपस्थिति कैलाश को तीर्थ बनाती है। काशी का भी नियमित आंकड़ा है कि उतने संत वहां रहेंगे ही। उनमें से कभी कमी नहीं होगी। उनमें से एक को विदा तभी मिलेगी जब दूसरा उस जगह स्थापित हो जाएगा। असली तीर्थ वही हैं। और उनसे जब मिलन होता है तो आप तीर्थ में प्रवेश करते हैं।
पर उनके मिलन का कोई भौतिक स्थल भी चाहिए। आप उनको कहां खोजते फिरेंगे! उस अशरीरी घटना को आप न खोज सकेंगे, इसलिए भौतिक स्थल चाहिए। जहां बैठ कर आप ध्यान कर सकें और उस अंतर्जगत में भी प्रवेश कर सकें, और वहां संबंध सुनिश्चित है।
एक तो यह, जो बुद्धि से ख्याल में नहीं आएगा, बुद्धि से उसका कोई संबंध नहीं है। तो तीर्थ का--ठीक तीर्थ का--अर्थ, जो दिखाई पड़ जाता है वह नहीं है; छिपा है, उसी स्थान पर छिपा है। दूसरी बात, इस जमीन से जब भी कोई व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध होकर विदा होता है, तो उसकी करुणा उसे कुछ चिह्न छोड़ देने को कहती है। क्योंकि जिनको उसने रास्ता बताया, जो उसकी बात मान कर चले, जिन्होंने संघर्ष किया, जिन्होंने श्रम उठाया, उनमें से बहुत से होंगे जो अभी नहीं पहुंच पाए। और उनके पास कुछ संकेत चाहिए, जिनसे कभी भी जरूरत पड़ जाए तो वे संपर्क पुनः साध सकें।
इस जगत में कोई आत्मा कभी खोती नहीं, पर शरीर तो खो जाते हैं। तो उनसे संपर्क साधने के लिए सूत्र चाहिए। उन सूत्रों के लिए भी तीर्थों ने ठीक वैसे ही काम किया जैसे कि आज हमारे राडार काम कर रहे हैं। जहां तक आंखें नहीं पहुंचतीं वहां तक राडार पहुंच जाते हैं। जो आंखों से कभी नहीं देखे गए तारे, वे राडार देख लेते हैं। तो तीर्थ बिल्कुल आध्यात्मिक राडार का इंतजाम है। जो हमसे छूट गए, जिनसे हम छूट गए, उनसे भी संबंध स्थापित किए जा सकते हैं।
इसलिए प्रत्येक तीर्थ निर्मित तो किया गया उन लोगों के द्वारा, जो अपने पीछे कुछ लोग छोड़ गए हैं, जो अभी रास्ते पर हैं, जो पहुंच भी नहीं गए और जो अभी भटक सकते हैं। और जिन्हें बार-बार जरूरत पड़ जाएगी कि वे कुछ पूछ लें, कुछ जान लें, कुछ आवश्यक हो जाएगा। और छोटी सी जानकारी उन्हें भटका दे सकती है। क्योंकि भविष्य उन्हें बिल्कुल ज्ञात नहीं है, आगे का रास्ता उन्हें बिल्कुल पता नहीं है। तो उन सबने सूत्र छोड़े हैं। और उन सूत्रों को छोड़ने के लिए विशेष तरह की व्यवस्थाएं की हैं--तीर्थ खड़े किए, मंदिर खड़े किए, मंत्र निर्मित किए, मूर्तियां बनाईं, और सबका आयोजन किया। और सबका आयोजन एक सुनिश्चित प्रक्रिया है। रिचुअल जिसे हम कहते हैं, वह एक सुनिश्चित प्रक्रिया है।
अब अगर एक जंगली आदिवासी को हम ले आएं और वह आकर देखे कि जब भी प्रकाश करना होता है, तो आप अपनी कुर्सी से उठते हैं, दस कदम चल कर बाईं दीवार के पास पहुंचते हैं, वहां एक बटन को दबाते हैं, और बिजली जल जाती है।
वह आदिवासी किसी भी तरह न सोच पाएगा कि इस बटन में और इस दीवार के भीतर
और इस बिजली के बल्ब में कोई तार जुड़ा हुआ है। इसके सोचने का कोई उपाय नहीं है! उसे यह एक रिचुअल मालूम पड़ेगा कि यह कोई तरकीब है यहां से उठना, ठीक जगह

पर--ठीक जगह पर, हर कहीं दीवार पर नहीं चले जाते--ठीक जगह पर दीवार पर जाते हैं; ठीक--हर कोई बटन नहीं दबा देते--नंबर एक की बटन दबाते हैं; जब नंबर दो की दबाते हैं तो पंखा घूमने लगता है; जब नंबर तीन की दबाते हैं तो रेडियो बोलने लगता है। और खास दीवार के कोने में जाकर कुछ तरकीब करते हैं और वहां से कुछ होता है और यह सब चलने लगता है। उसे यह रिचुअल मालूम पड़ेगा--एक क्रिया-कांड।
और समझ लें कि आप नहीं हैं घर में और बिजली चली गई है और वह उठा और उसने जाकर पूरा रिचुअल किया, लेकिन बिजली न जली, पंखा न चला, रेडियो न चला। तो वह समझेगा कि रिचुअल में कोई भूल हो रही है। अपने क्रिया-कांड में कुछ भूल हो रही है। शायद अपन ठीक कदम नहीं उठाए। बाएं कदम से जाना था? कौन से कदम से पहले वह आदमी गया था! पता नहीं अंदर-अंदर कोई मंत्र भी पढ़ता हो मन में और बटन दबाता हो! क्योंकि हम बटन वही दबाए हैं और बिजली नहीं जल रही है। उसके लिए तो बिजली के पूरे फैलाव का कोई अंदाज नहीं हो सकता।
करीब-करीब धर्म के संबंध में, जिनको भी हम क्रिया-कांड कहते हैं, वे सब धर्म के हमारे द्वारा, जो बिल्कुल कुछ नहीं जानते भीतरी व्यवस्था को, पकड़ लिए गए ऊपरी कृत्य हैं। उनको हम पूरा भी कर लेते हैं, और फिर पाते हैं कि कुछ नहीं हो रहा है। या कभी हो जाता है, कभी नहीं होता, तो बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। कभी हो जाता है, इससे शक भी होता है कि शायद होता होगा। फिर कभी नहीं होता तो फिर यह शक होता है कि शायद संयोग से हो गया होगा। क्योंकि अगर होना चाहिए तो हमेशा होना चाहिए। और हमें भीतरी व्यवस्था का कोई भी पता नहीं है।
जिस चीज को आप नहीं जानते उसको ऊपर से देखने पर वह रिचुअल मालूम पड़ेगी। और ऐसा छोटे-मोटे आदमियों के साथ होता हो ऐसा नहीं, जिनको हम बहुत बुद्धिमान कहते हैं उनके साथ भी यही होगा, क्योंकि बुद्धि ही बचकानी चीज है। बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी एक अर्थ में जुवेनाइल है, बचकाना ही होता है। क्योंकि बुद्धि कोई बहुत गहरे ले जाने वाली चीज नहीं है।
जब पहली दफा ग्रामोफोन बना, और फ्रांस की साइंस एकेडमी में, वह जिस वैज्ञानिक ने ग्रामोफोन बनाया और वह लेकर गया, तो बड़ी ऐतिहासिक घटना घटी तीन सौ साल पहले, ढाई सौ साल पहले। फ्रेंच एकेडमी में सारे फ्रांस के बड़े से बड़े वैज्ञानिक सदस्य थे, वही हो सकते थे सदस्य। कोई सौ वैज्ञानिक घटना देखने आए थे। उस आदमी ने ग्रामोफोन का रिकार्ड चालू किया, तो जो प्रेसिडेंट था फ्रेंच एकेडमी का, वह थोड़ी देर तो देखता रहा, फिर उचक कर उस आदमी की उसने गर्दन पकड़ ली--उस आदमी की जो वह ग्रामोफोन लाया था। क्योंकि उसने समझा कि यह कोई ट्रिक कर रहा है गले की। यानी यह हो कैसे सकता है कि रिकार्ड है और आवाज निकल रही है! यह कोई हरकत कर रहा है। यह कोई गले में अंदर हरकत कर रहा है, कोई तरकीब इसने लगाई हुई है। उसने उचक कर... यह ऐतिहासिक घटना बन गई, क्योंकि एक वैज्ञानिक से ऐसी आशा नहीं हो सकती थी। उसने जाकर उसकी गर्दन पकड़ ली।
वह आदमी तो घबराया, उसने कहा कि आप यह क्या करते हैं? उसने कहा कि तुम रुको, तुम मुझको धोखा न दे पाओगे। वह उसका गला दबाए रहा, लेकिन तब भी उसने देखा कि आवाज आ रही है। तब तो वह बहुत घबराया। उस आदमी को कहा कि तुम बाहर जाओ। उसको बाहर ले गए, लेकिन तब भी आवाज आ रही है। तो वे सौ के सौ वैज्ञानिक सकते में आ गए और उनमें से एक ने खड़े होकर कहा कि इसमें कोई शैतानी है, कोई चाल होनी चाहिए। इसको छूना-ऊना मत, इसमें कुछ न कुछ डेविल जरूर है, शैतान इसमें हाथ बंटा रहा है। क्योंकि यह हो ही कैसे सकता है? आज हमें हंसी आती है, क्योंकि अब हो गया इसलिए हमको परिचित है। अभी भी जो नहीं हो सकता हम उसमें भी वैसी ही परेशानी में पड़ जाएंगे।
अगर किसी दिन सब खो जाए फिर यह सभ्यता हमारी, एटम गिरे दुनिया पर और यह
सब खो जाए, और किसी आदिवासी के पास एक ग्रामोफोन बच जाए, तो उसके गांव के लोग उसको मार डालेंगे। ग्रामोफोन बजा दे अगर वह तो गांव के लोग उसको मार डालेंगे, क्योंकि वह एक्सप्लेन तो नहीं कर पाएगा, वह बता तो नहीं पाएगा कि यह रिकार्ड कैसे बोल रहा है। यह तो आप भी नहीं बता पाओगे।
यह बड़े मजे की बात है कि सब सभ्यताएं बिलीफ से जीती हैं, दो-चार आदमियों के पास कुंजियां होती हैं, बाकी तो भरोसा होता है। आप भी न बता

पाओगे कि यह कैसे बोल रहा है। सुन लेते हैं, मालूम है कि ठीक है बोलता है, भर लिया जाता है। बाकी आप भी न बता पाओगे कि कैसे बोल रहा है! बटन दबा देते हैं, बिजली जल जाती है, रोज जला लेते हैं। पर आप भी न बता पाओगे कि कैसे जल रही है। कुंजियां तो दो-चार आदमियों के पास होती हैं सभ्यता की, बाकी सारे लोग तो काम चला लेते हैं बस। जो काम चलाने वाले हैं, जिस दिन कुंजियां खो जाएं, उसी दिन मुश्किल में पड़ जाएंगे। उसी दिन उनका आत्मविश्वास डगमगा जाएगा। उसी दिन वे घबराने लगेंगे। और फिर अगर एक दफा बिजली न जली, तो कठिन हो जाएगा।
तीर्थ है, मंदिर है, उनका सारा का सारा विज्ञान है। और उस पूरे विज्ञान की अपनी सूत्रबद्ध प्रक्रिया है। एक कदम उठाने से दूसरा कदम उठता है, दूसरा उठाने से तीसरा उठता है, तीसरा से चौथा उठता है और परिणाम होता है। एक भी कदम बीच में खो जाए, एक भी सूत्र बीच में खो जाए, तो परिणाम नहीं होता। एक और बात इस संबंध में ख्याल ले लेनी चाहिए कि जब भी कोई सभ्यता बहुत विकसित हो जाती है और जब भी कोई विज्ञान बहुत विकसित हो जाता है, तो रिचुअल सिंप्लीफाइड हो जाता है, कांप्लेक्स नहीं रह जाता। जब भी कोई विज्ञान पूरी तरह विकसित हो जाता है... जब वह कम विकसित होता है तब उसकी प्रक्रिया बहुत जटिल होती है। जब वह पूरी तरह विकसित हो जाता है, और जब पूरी बात पता चल जाती है, तो उसे क्रियान्वित करने की जो व्यवस्था है वह बिल्कुल सिंप्लीफाइड और सरल हो जाती है।
अब इससे सरल क्या होगा कि आप बटन दबा देते हैं और बिजली जल जाती है। इससे सरल और क्या होगा! लेकिन क्या आप सोचते हैं जिसने बिजली बनाई, उसने बटन दबा कर बिजली जला ली थी?
अब इससे सरल क्या होगा कि मैं बोल रहा हूं वह रिकार्ड हो रहा है। कुछ
भी तो नहीं करना पड़ रहा है हमें। लेकिन क्या आप सोचते हैं कि इस तरह वह टेप रिकार्डर बन गया है? अब अगर मुझसे कोई पूछे कि क्या करना पड़ता है? तो मैं कहूंगा, बोल दो और रिकार्ड हो जाता है। लेकिन इस तरह वह बन नहीं गया है। जितना विज्ञान विकसित होता है, उतनी ही सिंप्लीफाइड प्रोसेस, उतनी ही सरल प्रक्रिया हो जाती है। तभी तो जनता के हाथ में पहुंचती है, नहीं तो जनता के हाथ में कभी पहुंच न सकेगी। जनता के हाथ में तो सिर्फ आखिरी नतीजे पहुंचते हैं, जिनसे वे काम करना शुरू कर देते हैं।
धर्म के मामले में भी यही होता है। जब धर्म की कोई खोज होती है, जब महावीर कोई सूत्र खोजते हैं तो आप ऐसा मत सोचना कि सरलता से मिल जाता है। महावीर का तो पूरा जीवन दांव पर लगता है। लेकिन जब आपको मिलता है तब बिल्कुल सरलता से मिल जाता है। तब तो आपको भी बटन दबाने जैसा ही मामला हो जाता है। और यही कठिनाई भी है, क्योंकि आखिर में खोजने वाले का तो सारा खो जाता है, और बटन आपके हाथ में रह जाती है, जिसको आप एक्सप्लेन नहीं कर पाते। फिर आप नहीं बता पाते कि यह कैसे करेगा, इससे काम होगा कैसे।
अभी रूस और अमरीका दोनों के वैज्ञानिक इस बात में उत्सुक हैं कि किसी
भी तरह बिना किसी माध्यम के विचार-संक्रमण, टेलीपैथी के सूत्र खोज लिए जाएं। क्योंकि जब से लूना खो गया उसके रेडियो के बंद हो जाने से, तब से यह खतरा खड़ा हो गया है कि मशीन पर अंतरिक्ष में भरोसा नहीं किया जा सकता। अगर रेडियो बंद हो गया तो हमारे यात्री सदा के लिए खो जाएंगे, फिर उनसे हम कभी संबंध ही न बना पाएंगे। हो सकता है कि वे कोई ऐसी चीजें भी जान लें जो हमें बताना चाहें, लेकिन फिर हमसे कोई संबंध नहीं हो पाएगा। तो आल्टरनेट सिस्टम की जरूरत है कि जब मशीन बंद हो जाए तो भी विचार का संक्रमण हो सके। इसलिए रूस और अमरीका दोनों के वैज्ञानिक टेलीपैथी के लिए भारी रूप से उत्सुक हैं। तो अमरीका ने एक छोटा सा कमीशन बनाया जो तीन साल, चार साल सारी दुनिया में घूमा। उस कमीशन ने जो रिपोर्ट दी वह बहुत घबड़ाने वाली है, लेकिन वह सब रिचुअल मालूम होता है। क्योंकि उसने देखा कि ऐसी घटना घटती है; लेकिन कैसे घटती है, यह वह करने वाले नहीं बता सकते।
अब उसने लिखा है कि अमेजान का एक छोटा सा कबीला बड़ी हैरानी का काम करता है। हर गांव में एक छोटा सा वृक्ष होता है एक खास जाति का, जिससे मैसेज भेजने का काम लिया जाता है--वृक्ष से! पति गांव गया हुआ है बाजार सामान लेने, पत्नी को कुछ ख्याल आ गया कि वह फलां सामान तो भूल ही गए, तो वह

जाकर उस वृक्ष को कह देती है कि देखो, वह फलाना सामान जरूर ले आना। वह मैसेज डिलीवर हो जाती है। वह आदमी जब शाम को लौटता है, फलां सामान ले आता है। जब यह कमीशन के लोगों ने यह देखा, तो वह तो घबराने जैसी बात थी।
हम फोन देख कर नहीं घबड़ाते। हम फोन पर बात करते नहीं घबड़ाते। एक आदिवासी देख कर घबड़ा जाता है कि यह क्या मामला है! आप किससे बातें कर रहे हैं? क्योंकि हमें पूरे सिस्टम का ख्याल है इसलिए हम नहीं घबड़ाते। वायरलेस से भी हम बात करते हैं तो भी हम नहीं घबड़ाते, क्योंकि सिस्टम का हमें पता है और वह परिचित है।
अब इस वृक्ष से कैसे संवाद हो रहा है? और जब उस कमीशन के लोगों ने दो- चार दिन सब तरह के प्रयोग करके देख लिए; उन स्त्रियों से पूछा, गांव के लोगों से पूछा। उन्होंने कहा, यह तो हमें पता नहीं है, लेकिन ऐसा सदा होता है। ऐसा सदा होता है। यह वृक्ष साधारण नहीं है, यह वृक्ष बड़ी पूजा से स्थापित किया गया है। इस वृक्ष को हम कभी मरने नहीं देते, इसी वृक्ष की शाखा को लगाते चले जाते हैं, यह सनातन है यह जो वृक्ष है। इसको हमारे बाप-दादों ने और उनके बाप-दादों ने, सबने इसका उपयोग किया है। यह सदा से यह काम दे रहा है। क्या होता होगा?
अब यह वैज्ञानिक की पकड़ के एकदम बाहर बात है। और जो कर रहा है, उसको भी पता नहीं है; क्योंकि उसके पास सिंप्लीफाइड प्रोसेस है। इस वृक्ष की प्राण-ऊर्जा का टेलीपैथी के लिए उपयोग किया जा रहा है। वह कैसे किया गया शुरू, और यह वृक्ष कैसे राजी हुआ, और कैसे इस वृक्ष ने काम करना शुरू कर दिया, और यह हजारों साल से कर रहा है काम, अब उस गांव के लोगों को कुछ पता ही नहीं है। वह "की" तो खो गई है, जिसने किया होगा इस वृक्ष को राजी उसने किया होगा। पर वे काम ले रहे हैं उस वृक्ष से, वे उस वृक्ष को लगाए चले जा रहे हैं।
अब बुद्ध के बोधि-वृक्ष को बौद्ध नहीं मरने देते। तो इस वृक्ष की बात समझ कर आपको ख्याल में आ सकेगा कि उसका कुछ उपयोग है। जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसको मरने नहीं दिया गया है। असली सूख गया, तो उसकी शाखा अशोक ने भेज दी थी लंका में, तो वह वहां वृक्ष था। अभी उसकी शाखा को फिर लाकर पुनः आरोपित कर दिया। लेकिन वही वृक्ष कंटिन्युटी में रखा गया। अब इस बोधगया के तीर्थ का उपयोग है, वह इस बोधि-वृक्ष पर निर्भर है सब कुछ।
इस वृक्ष के नीचे बुद्ध ने बैठ कर ज्ञान पाया है। और जब बुद्ध जैसे ज्ञान की घटना घटती है, तो अगर जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध बैठे थे वह वृक्ष बुद्ध के बुद्धत्व को पी गया हो तो बहुत हैरानी नहीं है! यह जो घटना है, यह जो बुद्ध का बुद्धत्व है, यह जो आलोकित हो जाना है इस व्यक्ति का, यह जो कौंध बिजली की पैदा हुई होगी! अगर आकाश से बिजली चमकती है और वृक्ष सूख जाता है, तो कोई कारण तो नहीं है कि बुद्ध में चेतना की बिजली चमके और वृक्ष किन्हीं नये अर्थों में जीवंत न हो जाए! जो कि दूसरा वृक्ष नहीं है। तो बुद्ध के गुप्त संदेश थे कि इस वृक्ष को कभी नष्ट न होने दिया जाए।
और बुद्ध ने कहा था कि मेरी पूजा मत करना, इस वृक्ष की पूजा से काम चल जाएगा। इसलिए पांच सौ साल तक बुद्ध की मूर्ति नहीं बनाई गई। सिर्फ बोधि- वृक्ष की ही मूर्ति बना कर पूजा चलती थी। तो पांच सौ साल बाद तक के बुद्ध के जितने मंदिर हैं वे बोधि-वृक्ष की ही पूजा करते रहे हैं। जो चित्र हैं, उनमें बुद्ध नहीं हैं नीचे, सिर्फ ऑरा है; बुद्ध का प्रकाश है, बोधि-वृक्ष है। और कुछ नहीं है वहां। असल में यह जो वृक्ष है यह आत्मसात कर गया, यह पी गया उस घटना को, यह चार्ज्ड हो गया। अब इस वृक्ष का जो उपयोग जानते हैं, वे आज भी इस वृक्ष के द्वारा बुद्ध से संबंध स्थापित कर सकते हैं।
तो बोधगया नहीं है मूल्यवान, मूल्यवान वह बोधि-वृक्ष है। उस बोधि- वृक्ष के नीचे वर्षों तक बुद्ध चक्रमण करते रहे हैं। उनके पैर के पूरे निशान बना कर रखे हैं, जहां वे ध्यान करते-करते थक जाते तो उस वृक्ष के पास घूमने लगते। वे घंटों उस वृक्ष के पास घूमते रहते। बुद्ध किसी के साथ इतने ज्यादा नहीं रहे जितने उस वृक्ष के साथ रहे। उस वृक्ष से ज्यादा बुद्ध के साथ कोई नहीं रहा। और उतनी सरलता से तो कोई आदमी रह भी नहीं सकता जितनी सरलता से वह वृक्ष रहा है। बुद्ध उसके नीचे सोए भी हैं। बुद्ध उसके नीचे

उठे भी हैं, बैठे भी हैं। बुद्ध उसके आस-पास चले भी हैं। बुद्ध ने उससे बातें भी की होंगी, बुद्ध उससे बोले भी होंगे। उस वृक्ष की ऊर्जा, जीवन-ऊर्जा, बुद्ध से आविष्ट है।
तो जब अशोक ने भेजा अपने बेटे महेंद्र को लंका, तो उसके बेटे ने कहा कि मैं भेंट क्या ले जाऊं? तो उन्होंने कहा, और तो कोई भेंट हो भी नहीं सकती इस जगत में, एक ही भेंट हमारे पास है कि तुम इसकी एक शाखा ले जाओ वृक्ष की। तो उस शाखा को लगाया, आरोपित किया और उस शाखा को भेज दिया। दुनिया में कभी किसी सम्राट ने किसी वृक्ष की शाखा किसी को भेंट नहीं भेजी है। यह कोई भेंट है! मगर सारा लंका आंदोलित हुआ उस शाखा के पहुंचने से। और लोग समझते हैं कि महेंद्र ने लंका को बौद्ध बनाया, वह गलत समझते हैं। वह शाखा! महेंद्र की कोई हैसियत न थी। महेंद्र साधारण हैसियत का आदमी था। और अशोक की लड़की भी साथ थी, संघमित्रा, उन दोनों की कोई इतनी बड़ी हैसियत न थी। लंका का कनवर्शन जो है वह उस बोधि-वृक्ष की शाखा के द्वारा किया गया कनवर्शन है। और ये बुद्ध के ही सीक्रेट संदेश थे कि लंका इस वृक्ष की शाखा पहुंचा दी जाए। ठीक समय की प्रतीक्षा की जाए और ठीक व्यक्ति की। और जब ठीक व्यक्ति आ जाए तो इसको पहुंचा दिया जाए। क्योंकि इसी से वापस किसी दिन हिंदुस्तान में फिर इस वृक्ष को लेना पड़ेगा।
अब ये सारी की सारी अंतर-कथाएं हैं, जिसको कहना चाहिए गुप्त इतिहास,
जो इतिहास के पीछे चलता है। और ठीक व्यक्तियों का उपयोग करना पड़ता है। अब संघमित्रा और महेंद्र दोनों बौद्ध भिक्षु थे बुद्ध के जीवन में। तो हर किसी के हाथ से नहीं भेजी जा सकती थी वह वृक्ष की शाखा। जिसने बुद्ध के पास जीया हो, जाना हो, और जो उस शाखा को वृक्ष की शाखा मान कर न ले जा सके, जीवंत बुद्ध मान कर ले जा सके, उसके ही हाथ में दी जा सकती थी। हर किसी के हाथ से वह नहीं भेजी जा सकती थी। फिर लौटने के लिए भी प्रतीक्षा करनी जरूरी थी। ठीक लोगों के हाथ से वह वापस आना चाहिए। ठीक लोगों के द्वारा वापस आना चाहिए।
कभी इतिहास के पीछे जो इतिहास है वह बात करने जैसा है। असली इतिहास वही है, जहां घटनाओं के मूल स्रोत घटित होते हैं, जहां जड़ें होती हैं। फिर तो एक घटनाओं का जाल है, जो ऊपर चलता है। वह असली इतिहास नहीं है। जो अखबार में छपता है और किताब में लिखा जाता है, वह असली इतिहास नहीं है। पर कभी असली इतिहास पर हमारी दृष्टि हो जाए तो फिर इन सारी चीजों का राज समझना ज्यादा आसान हो जाए।
"गहरे पानी पैठ" : अंतरंग चर्चा

मैं कहता आंखन देखी
सातवां प्रवचन

तिलक-टीकेः तृतीय नेत्र की अभिव्यंजना

ओशो, दो विषयों पर तो चर्चा हो चुकी है। निवेदन करूंगा कि तिलक, टीके
और माला के संबंध में आज इस चर्चा को आरंभ करें।

तिलक के संबंध में समझने के पहले दो छोटी सी घटनाएं आपसे कहूंगा, फिर आसान हो सकेगा। दो ऐतिहासिक तथ्य।
अठारह सौ अट्ठासी में दक्षिण के एक छोटे से परिवार में एक व्यक्ति पैदा हुआ--फिर पीछे तो वह विश्वविख्यात हुआ, रामानुजम--बहुत गरीब ब्राह्मण के घर में, बहुत थोड़ी सी शिक्षा मिली। लेकिन उस छोटे से गांव में ही बिना किसी विशेष शिक्षा के रामानुजम की प्रतिभा गणित के साथ अनूठी थी। जो लोग गणित जानते हैं, उनका कहना है कि मनुष्य-जाति के इतिहास में रामानुजम से बड़ा और विशिष्ट गणितज्ञ नहीं हुआ। बहुत बड़े-बड़े गणितज्ञ हुए हैं, पर वे सब सुशिक्षित थे, उन्हें गणित का प्रशिक्षण मिला था, बड़े गणितज्ञों का साथ-सत्संग मिला था, वर्षों की उनकी तैयारी थी। रामानुजम की न कोई तैयारी थी, न कोई साथ मिला, न कोई शिक्षा मिली, मैट्रिक भी रामानुजम पास नहीं हुआ। और एक छोटे से दफ्तर में मुश्किल से क्लर्की का काम मिला।
लेकिन अचानक खबर लोगों में फैलने लगी कि उसकी गणित के संबंध में कुशलता अदभुत है। और किसी ने उसे सुझाव दिया कि कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में उस समय विश्व के बड़े से बड़े गणितज्ञों में एक हार्डी प्रोफेसर थे, उनको लिखो। उसने पत्र तो नहीं लिखा, ज्यामिति की डेढ़ सौ थ्योरम बना कर भेज दीं। हार्डी तो चकित रह गया। उतनी कम उम्र के व्यक्ति से उस तरह के ज्यामिति के सिद्धांतों का अनुमान भी नहीं लग सकता था। उसने तत्काल रामानुजम को यूरोप बुलाया। और जब रामानुजम कैम्ब्रिज पहुंचा तो हार्डी, जो कि बड़े से बड़ा गणितज्ञ था उस समय के विश्व का, वह अपने को बिल्कुल बच्चा समझने लगा रामानुजम के सामने।
रामानुजम की क्षमता ऐसी थी जिसका मस्तिष्क से संबंध नहीं मालूम पड़ता। अगर आपसे कोई गणित करने को कहा जाए तो समय लगेगा। बुद्धि ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकती जिसमें समय न लगे। बुद्धि सोचेगी, हल करेगी, समय व्यतीत होगा। लेकिन रामानुजम को समय ही नहीं लगता था। यहां आप तख्ते पर सवाल लिखेंगे, वहां रामानुजम उत्तर देना शुरू कर देगा। आप बोल भी न पाएंगे पूरा, और उत्तर आ जाएगा। बीच में समय का कोई व्यवधान न होगा।
बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई थी। क्योंकि जिस सवाल को हल करने में बड़े से बड़े गणितज्ञ को छह घंटे लगेंगे ही, फिर भी जरूरी नहीं है कि सही हो, उत्तर सही है या नहीं इसे जांचने में फिर छह घंटे उसे गुजारने पड़ेंगे। रामानुजम को सवाल दिया गया और वह उत्तर देगा, जैसे सवाल में और उत्तर के बीच में कोई समय का क्षण भी व्यतीत नहीं होता है।
इससे एक बात तो सिद्ध हो गई थी कि रामानुजम बुद्धि के माध्यम से उत्तर नहीं दे रहा है। बुद्धि बहुत बड़ी थी भी नहीं उसके पास, मैट्रिक में वह फेल हुआ था, कोई बुद्धिमत्ता का और लक्षण भी न था। सामान्य जीवन में किसी चीज में भी कोई ऐसी बुद्धिमत्ता नहीं मालूम पड़ती थी। लेकिन बस गणित के संबंध में वह एकदम अतिमानवीय, मनुष्य से बहुत पार की घटना उसके जीवन में घटती थी।
जल्दी मर गया रामानुजम। उसे क्षय रोग हो गया, वह छत्तीस साल की उम्र में मर गया। जब वह बीमार होकर अस्पताल में पड़ा था तो हार्डी और दो-तीन गणितज्ञ मित्रों के साथ उसे देखने गया था। उसके दरवाजे पर ही हार्डी ने कार रोकी और भीतर गया। कार के पीछे का नंबर रामानुजम को दिखाई पड़ा। उसने हार्डी से कहा, आश्चर्यजनक है! आपकी कार का जो नंबर है, ऐसा कोई आंकड़ा ही नहीं है मनुष्य की गणित की व्यवस्था में। यह आंकड़ा बड़ा खूबी का है। उसने चार विशेषताएं उस आंकड़े की बताईं।

रामानुजम तो मर गया। हार्डी को छह महीने लगे वह पूरी विशेषता सिद्ध करने में। वे जो चार उसने विशेषताएं उस आंकड़े की बताई थीं--आकस्मिक, नजर पड़ गई थी--हार्डी को छह महीने लगे, तब भी वह तीन ही सिद्ध कर पाया, चौथी असिद्ध रह गई बात। हार्डी वसीयत छोड़ कर मरा कि मेरे मरने के बाद वह चौथी की खोज जारी रखी जाए, क्योंकि रामानुजम ने कहा है तो वह ठीक तो होगी ही।
हार्डी के मर जाने के बाईस साल बाद वह चौथी घटना सही सिद्ध हो पाई कि उसने ठीक कहा था, उस आंकड़े में यह खूबी है!
रामानुजम को जब भी यह गणित की स्थिति घटती थी, तब उसकी दोनों आंखों के बीच में कुछ होना शुरू हो जाता था। उसकी दोनों आंखों की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती थीं। योग, जिस जगह रामानुजम की आंखें चढ़ जाती थीं, उसको तृतीय नेत्र कहता है, उसको तीसरी आंख कहता है। और अगर वह तीसरी आंख शुरू हो जाए--तीसरी आंख सिर्फ उपमा की दृष्टि से, सिर्फ इस खयाल से कि वहां से भी कुछ दिखाई पड़ना शुरू होता है--कोई दूसरा ही जगत शुरू हो जाता है। जैसे कि किसी आदमी के मकान में एक छोटा सा छेद हो, वह खुल जाए, और आकाश दिखाई पड़ने लगे। और जब तक वह छेद न खुला हो तो आकाश दिखाई न पड़ रहा हो। करीब-करीब हमारी दोनों आंखों के बीच में जो भ्रू-मध्य जगह है, वहां वह छेद है जहां से हम इस लोक के बाहर देखना शुरू कर देते हैं। एक बात तय थी कि जब भी रामानुजम को कुछ ऐसा होता था, तो उसकी दोनों पुतलियां चढ़ जाती थीं। हार्डी नहीं समझ पाया, पश्चिम के गणितज्ञ नहीं समझ पाए, और अभी गणितज्ञ आगे भी नहीं समझ पाएंगे। एक दूसरी घटना और, और तब मैं आपको तिलक के संबंध में कुछ कहूं, तब आपकी समझ में आना आसान होगा; क्योंकि तिलक का संबंध उस तीसरी आंख से है। उन्नीस सौ पैंतालीस में एक आदमी मरा अमरीका में--एडगर कायसी। चालीस साल पहले उन्नीस सौ पांच में वह बीमार पड़ा और बेहोश हो गया। और तीन दिन कोमा में पड़ा रहा। चिकित्सकों ने आशा छोड़ दी, और चिकित्सकों ने कहा कि हमें इसे कोमा के बाहर, बेहोशी के बाहर लाने का कोई उपाय नहीं सूझता। और बेहोशी इतनी गहन है कि अब यह शायद ही वापस लौट सके।
तीसरे दिन सारी आशा छोड़ दी गई; सब दवाइयां, सब इलाज कर लिए गए, लेकिन होश का कोई लक्षण नहीं था। तीसरे दिन शाम को चिकित्सकों ने कहा कि अब हम विदा होते हैं, क्योंकि अब हमारे वश के बाहर है। यह चार-छह घंटे में युवक मर जाएगा। और अगर बच गया तो सदा के लिए पागल हो जाएगा, जो कि मरने से भी बुरा सिद्ध होगा। क्योंकि इतनी देर में इसके मस्तिष्क के जो सूक्ष्म तंतु हैं, वे विसर्जित हो रहे हैं, डिसइंटीग्रेट हो रहे हैं।
अचानक चिकित्सक हैरान हुए। वह जो बेहोश कायसी पड़ा था बोला! वह बेहोश
था तीन दिन से, वह बोला। जैसे कि कोई गहरी नींद से अचानक बोल उठे। हैरानी और ज्यादा हो गई, क्योंकि उसका कोमा जारी था। उसका शरीर अभी भी पूरी तरह कोमा में था। उसके हाथ में आप छुरी भी भोंक दो तो पता नहीं चलती थी। लेकिन वाणी आ गई, और कायसी ने कहा कि शीघ्रता करो! मैं एक वृक्ष से गिर पड़ा था, और मेरी रीढ़ में पीछे चोट लग गई है, और उसी चोट के कारण मैं बेहोश हूं। और अगर छह घंटे में मुझे ठीक नहीं किया गया तो बीमारी का जहर मेरे मस्तिष्क तक पहुंच जाएगा, फिर मेरे जिंदा बचने का कोई अर्थ नहीं है। और इस-इस नाम की जड़ी-बूटियां ले आओ और उनको इस तरह से तैयार करके मुझे पिला दो, मैं बारह घंटे के भीतर ठीक हो जाऊंगा। और कायसी फिर बेहोश हो गया।
जो नाम उसने लिए थे जड़ी-बूटियों के, आशा भी नहीं हो सकती थी कि कायसी
को उनका पता हो, क्योंकि वह किसी चिकित्सा से कभी कोई उसका संबंध नहीं था। चिकित्सकों ने कहा, और तो करने का कोई उपाय नहीं है, यह निपट पागलपन मालूम पड़ता है, क्योंकि ये जड़ी-बूटियां इस तरह का काम करेंगी, यह हमको भी पता नहीं है। लेकिन जब कोई उपाय न हो, तो हर्ज कुछ भी नहीं है। वे जड़ी-बूटियां खोजी गईं। जैसा बताया था कायसी ने, वैसा बना कर उसे दिया गया। बारह घंटे में वह होश में आ गया, और बिल्कुल ठीक हो गया। और होश में आकर वह न बता सका कि उसने ऐसी कोई बात कही थी या उन दवाइयों के नाम भी न पहचान सका, वे जो जड़ी- बूटियां उसने कही थीं, कि मैं इनके नाम भी पहचानता हूं। उसने कहा, यह हो ही कैसे सकता है? मुझे तो कुछ पता नहीं।
और तब एक बहुत अनूठी घटना की शुरुआत हुई। फिर तो कायसी इसमें कुशल हो गया, और उसने अमरीका में तीस हजार लोगों को अपने पूरे जीवन में ठीक किया।

और जो भी निदान उसने किया वह सदा ठीक निकला, और जो मरीज उससे निदान लिया वह सदा ठीक हुआ, निरपवाद रूप से। लेकिन कायसी खुद भी नहीं समझा सकता था कि उसे होता क्या है। इतना ही कह सकता था कि जब भी मैं आंख बंद करता हूं कोई निदान खोजने के लिए, मेरी दोनों आंखें ऊपर चढ़ जाती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि कोई मेरी पुतलियों को ऊपर खींचे जा रहा है। और फिर मेरी दोनों आंखें भ्रू-मध्य में ठहर जाती हैं। और तब मैं इस लोक को भूल जाता हूं। फिर मुझे पता नहीं क्या होता है। इसे मैं भूलता हूं, इसका मुझे पता है। दूसरा क्या होता है, उसका मुझे कोई पता नहीं। लेकिन जब तक मैं इसको नहीं भूल जाता, तब तक वह जो निदान मैं देता हूं वह नहीं आता है। निदान उसने ऐसे-ऐसे दिए कि एक-दो निदान सोच लेने जैसे हैं।
रथचाइल्ड अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति, अरबपति परिवार है। उस परिवार की एक महिला बीमार थी और कोई इलाज नहीं बचा था, सब इलाज हो गए थे। फिर कायसी के पास उसको लाया गया। कायसी ने एक दवा का नाम दिया अपनी बेहोशी में। हमारी तरफ से हम कहेंगे बेहोशी, जो जानते हैं उनकी तरफ से तो वह हमसे बड़े होश में है, जो जानते हैं उनके लिहाज से तो हम बेहोश हैं। सच तो यह है कि जब तक तीसरी आंख तक ज्ञान न पहुंचे, तब तक बेहोशी जारी रहती है। पर हमारी तरफ से कायसी ने आंख बंद कीं, वह बेहोश हुआ, और उसने एक दवा का नाम बताया।
रथचाइल्ड तो अरबपति परिवार था। सारे अमरीका में खोजबीन की गई, वह दवा कहीं मिली नहीं। कोई यह भी न बता सका कि इस तरह की कोई दवा है भी। फिर सारी दुनिया के अखबारों में विज्ञापन दिया गया कि कहीं से भी इस नाम की दवा मिले। कोई बीस दिन बाद स्वीडन से एक आदमी ने जवाब दिया कि इस नाम की दवा है नहीं; बीस साल पहले मेरे पिता ने इस नाम की दवा पेटेंट करवाई थी, लेकिन फिर कभी बनाई नहीं। वह सिर्फ पेटेंट है, कभी बाजार में आई नहीं। दवा भी हमारे पास नहीं है, पिता मर चुके हैं, और वह प्रयोग कभी सफल हुआ नहीं। सिर्फ फार्मूला हमारे पास है, वह हम पहुंचा देते हैं। वह फार्मूला पहुंचाया गया, वह दवा बनी, और वह स्त्री ठीक हो गई। लेकिन वह दवा कहीं थी नहीं दुनिया के बाजार में कि जिसका कायसी को पता हो सके।
दूसरी एक घटना में उसने एक दवा का नाम लिया। बहुत खोजबीन की गई, वह दवा नहीं मिल सकी। साल भर बाद अखबारों में उस दवा का विज्ञापन निकला। वह दवा उस वक्त बन रही थी किसी प्रयोगशाला में जब उसने कहा था, तब तक उसका नाम भी तय नहीं हुआ था। पर जो नाम उसने साल भर पहले दिया था उस नाम की दवा साल भर बाद बाहर आई। और उसी दवा से वह मरीज ठीक हुआ।
और कई बार तो उसने दवाएं बताईं जो खोजी नहीं जा सकीं और मरीज मर गए। और
वह भी कहता था, मैं कुछ कर नहीं सकता, मेरे हाथ की बात नहीं है। मुझे पता नहीं कि जब मैं बेहोश होता हूं तब कौन बोलता है, कौन देखता है, मुझे कुछ पता नहीं। मुझमें और उस व्यक्तित्व में कोई भी संबंध नहीं है। पर एक बात तय थी कि कायसी जब भी बोलता तब उसकी दोनों आंखें चढ़ गई होती थीं।
आप भी जब गहरी नींद में सोते हैं तो आपकी दोनों आंखें, जितनी गहरी नींद होती है, उतनी ऊपर चली जाती हैं। अब अभी तो बहुत से मनोवैज्ञानिक नींद पर बहुत से प्रयोग कर रहे हैं। तो आपकी आंख की पुतली कितनी ऊपर गई है, इससे ही तय किया जाता है कि आप कितनी गहरी नींद में हैं। जितनी आंख की पुतली नीचे होती है उतनी गतिमान होती है ज्यादा, मूवमेंट होता है। और आंख की पुतलियों में जितनी गति होती है उतनी तेजी से आप सपना देख रहे होते हैं।
यह सब सिद्ध हो चुका है वैज्ञानिक परीक्षणों से। उसको वैज्ञानिक कहते हैं आर ई एम, रैम, रैपिड आई मूवमेंट। तो रैम की कितनी मात्रा है, उससे ही तय होता है कि आप कितनी गति का सपना देख रहे हैं। और आंख की पुतली जितनी नीची होती है, रैम की मात्रा उतनी ही ज्यादा होती है; जितनी ऊपर चढ़ने लगती है, रैम, वह जो आंख की तीव्र गति है पुतलियों की, वह कम होने लगती है। और जब बिल्कुल थिर हो जाती है आंख वहां जाकर जहां कि दोनों आंखें मध्य में देखती हैं ऐसी प्रतीत होती हैं, वहां जाकर रैम बिल्कुल ही बंद हो जाता है, बिल्कुल! पुतली में कोई तरह की गति नहीं रह जाती।

वह जो अगति है पुतली की वही गहन से गहन निद्रा है। योग कहता है कि गहरी सुषुप्ति में हम वहीं पहुंच जाते हैं जहां समाधि में। फर्क इतना ही होता है कि सुषुप्ति में हमें पता नहीं होता, समाधि में हमें पता होता है। गहरी सुषुप्ति में आंख जहां ठहरती है वहीं गहरी समाधि में भी ठहरती है।
ये दोनों घटनाएं मैंने आपसे कहीं यह इंगित करने को कि आपकी दोनों आंखों के बीच में एक बिंदु है जहां से यह संसार नीचे छूट जाता है और दूसरा संसार शुरू होता है। वह बिंदु द्वार है। उसके इस पार, जिस जगत से हम परिचित हैं वह है, उसके उस पार एक अपरिचित और अलौकिक जगत है। इस अलौकिक जगत के प्रतीक की तरह सबसे पहले तिलक खोजा गया।
तो तिलक हर कहीं लगा देने की बात नहीं है। वह तो जो व्यक्ति हाथ रख कर आपका बिंदु खोज सकता है वही आपको बता सकता है कि तिलक कहां लगाना है। हर कहीं तिलक लगा लेने से कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है।
फिर प्रत्येक व्यक्ति का बिंदु भी एक ही जगह नहीं होता। यह जो दोनों आंखों के बीच तीसरी आंख है, यह प्रत्येक व्यक्ति की बिल्कुल एक जगह नहीं होती, अंदाजन दोनों आंखों के बीच में ऊपर होती है, पर फर्क होते हैं। अगर किसी व्यक्ति ने पिछले जन्मों में बहुत साधना की है और समाधि के छोटे-मोटे अनुभव पाए हैं तो उसी हिसाब से वह बिंदु नीचे आता जाता है। अगर इस तरह की कोई साधना नहीं की है तो वह बिंदु काफी ऊपर होता है। उस बिंदु की अनुभूति से यह भी जाना जा सकता है कि आपके पिछले जन्मों की साधना कुछ है समाधि की दिशा में? आपने तीसरी आंख से कभी दुनिया को देखा है? कभी भी आपके किसी जन्म में ऐसी कोई घटना घटी है? तो आपका वह बिंदु, उसका स्थान बताएगा कि ऐसी घटना घटी है या नहीं घटी है। अगर ऐसी घटना बहुत घटी है तो वह बिंदु बहुत नीचे आ जाएगा। वह करीब-करीब दोनों आंखों के समतुल भी आ जाता है, उससे नीचे नहीं आ सकता। और अगर बिल्कुल समतुल बिंदु हो, दोनों आंखों के बिल्कुल बीच में आ गया हो, तो जरा से इशारे से आप समाधि में प्रवेश कर सकते हैं। इतने छोटे इशारे से कि जिसको हम कह सकते हैं इशारा बिल्कुल असंगत है।
इसलिए बहुत दफे जब कुछ लोग बिल्कुल ही अकारण समाधि में प्रवेश कर जाते हैं तो हमें बड़ी अजीब सी बात मालूम पड़ती है। जैसे कि झेन साध्वी के जीवन में कथा है। लौटती थी कुएं से पानी भर कर, घड़ा गिर गया। और घड़े के गिरने के साथ समाधि लग गई, और पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हुआ। बिल्कुल फिजूल की बात है! घड़े का गिरना या घड़े का फूट जाना और समाधि का लगना, कोई संगति नहीं है। लाओत्से के जीवन में उल्लेख है कि वृक्ष के नीचे बैठा था, पतझड़ के दिन थे। और वृक्ष से पत्ते नीचे गिरने लगे, और लाओत्से परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। अब वृक्ष से गिरते हुए पत्तों का कोई भी तो संबंध नहीं है। कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन यह घटना तब घट सकती है जब कि पिछले जन्मों में यात्रा इतनी हो चुकी हो कि वह तीसरा बिंदु दोनों आंखों के बिल्कुल बीच में आ गया हो। तब यह घटना घट सकती है, क्योंकि शायद आखिरी तिनके की जरूरत है और तराजू बैठ जाए। आखिरी तिनका कोई भी चीज बन सकती है।
तो पुराने दिनों में जब भी दीक्षा दी जाती, और दीक्षा वही दे सकता है
जो आपकी समस्त जन्मों की सार-संपदा क्या है उसे समझ पाता हो, अन्यथा नहीं दे सकता। अन्यथा देने का कोई मतलब नहीं है। क्योंकि जहां तक आप पहुंच गए हैं उसके आगे यात्रा करनी है। तो वह जो तिलक है अगर ठीक-ठीक लगाया जाए, तो वह कई अर्थों का सूचक था। वे सारे अर्थ समझने पड़ेंगे।
पहला तो वह इस बात का सूचक था कि जब एक बार गुरु ने बता दिया कि तिलक यहां लगाना है ठीक जगह और आपको भी जब उस ठीक जगह का अनुभव होने लगा, क्योंकि तिलक लगाने का पहला प्रयोजन यही है। आपने कभी खयाल न किया होगा कि अगर आप आंख बंद करके भी बैठ जाएं, और कोई व्यक्ति आपकी बंद आंख में भी आपकी दोनों आंखों के बीच में सिर के पास अंगुली ले जाए, तो बंद आंख में भी आपको भीतर एहसास होना शुरू हो जाएगा कि कोई आंख की तरफ अंगुली किए हुए है। वह तीसरी आंख की प्रतीति है।
तो अगर ठीक तीसरी आंख पर तिलक लगा दिया जाए, और उसी मात्रा का, उतने ही अनुपात का तिलक लगा दिया जाए जितनी बड़ी तीसरी आंख की स्थिति है, तो आपको पूरे शरीर को छोड़ कर उसी का स्मरण चौबीस घंटे रहने लगेगा। वह स्मरण पहला तो यह काम करेगा कि आपका शरीर-बोध कम होता जाएगा, और तिलक-बोध बढ़ता जाएगा।

एक क्षण ऐसा आ जाता है जब कि पूरे शरीर में सिर्फ तिलक ही स्मरण रह जाता है, बाकी सारा शरीर भूल जाता है। और जिस दिन ऐसा हो जाए, उसी दिन आप उस आंख को खोलने में समर्थ हो सकते हैं।
तो तिलक के साथ जुड़ी हुई साधनाएं थीं कि पूरे शरीर को भूल जाओ, सिर्फ तिलक-मात्र की जगह याद रह जाए। उसका अर्थ यह हुआ कि सारी चेतना सिकुड़ कर फोकस्ड हो जाए तीसरी आंख पर और तीसरी आंख के खोलने की जो कुंजी है वह फोकस्ड कांशसनेस है। उस पर चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी हो जाए, सारे शरीर से सिकुड़ कर उस छोटे से स्थान पर लग जाए। बस, उसकी मौजूदगी से काम हो जाएगा।
जैसे कि हम सूरज की किरणों को एक छोटे से लेंस के द्वारा एक कागज पर गिरा लें। इकट्ठी हो गई किरणें आग पैदा कर देंगी। वे ही किरणें सिर्फ धूप पैदा कर रही थीं, उनसे आग पैदा नहीं होती थी। वे ही किरणें आग पैदा कर सकती हैं--संगृहीत। चेतना शरीर पर बंटी रहती है तो सिर्फ जीवन का कामचलाऊ उपयोग उससे होता है। चेतना अगर तीसरे नेत्र के पास पूरी इकट्ठी हो जाए, तो वह जो तीसरे नेत्र में बाधा है, वह जो द्वार है, जो बंदपन है, वह टूट जाता है, जल जाता है, राख हो जाता है, और हम उस आकाश को देखने में समर्थ हो जाते हैं जो हमारे ऊपर फैला है।
तो तिलक का पहला उपयोग तो यह था कि आपको ठीक-ठीक जगह बता दी जाए शरीर में कि चौबीस घंटे इस जगह का स्मरण रखना है। सब तरफ से चेतना को सिकोड़ कर इस जगह ले आना है। एक! और दूसरा यह था प्रयोग कि गुरु को रोज-रोज देखने की जरूरत न पड़े, रोज आपके माथे पर हाथ रखने की भी जरूरत न पड़े; क्योंकि जैसे- जैसे वह बिंदु नीचे सरकेगा वैसे-वैसे आपको एहसास होगा, और आपके तिलक को भी नीचे होते जाना है। आपको रोज तिलक लगाते वक्त ठीक वहीं तिलक लगाना है जहां वह बिंदु आपको एहसास होता है।
तो हजार शिष्य हैं एक गुरु के। वह शिष्य आता है, झुकता है, तभी वह देख लेता है कि तिलक कहां है। इसकी बात करने की जरूरत नहीं रह जाती। वह देख लेता है कि तिलक नीचे सरक रहा है कि नहीं सरक रहा है? तिलक उसी जगह है कि तिलक में कोई अंतर पड़ रहा है? वह कोड है। दिन में दो-चार दफे शिष्य आएगा और वह देख पाएगा कि तिलक! रोज सुबह शिष्य उसके चरण छूने आएगा और वह देख पाएगा कि वह तिलक गतिमान है? वह आगे गति कर रहा है? रुका हुआ है? ठहरा हुआ है? और किसी दिन वह शिष्य के माथे पर हाथ रख कर पुनः देख पाएगा। अगर शिष्य को पता नहीं चल रहा है हटने का, तो उसका मतलब है कि चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी नहीं की जा रही है। अगर वह तिलक गलत जगह लगाए हुए है और बिंदु दूसरी जगह है, तो उसका मतलब है कि उसकी कांशसनेस, उसकी रिमेंबरिंग, उसकी स्मृति ठीक बिंदु को नहीं पकड़ पा रही है। वह भी उसे पता चल जाएगा।
जैसे-जैसे यह तिलक नीचे आता जाएगा वैसे-वैसे प्रयोग बदलने पड़ेंगे साधना के। यह करीब-करीब वैसा ही काम करेगा जैसे कि अस्पताल में मरीज के पास लटका हुआ चार्ट काम करता है। वह नर्स आकर, देख कर चार्ट पर लिख जाती है--कितना है ताप, कितना है ब्लडप्रेशर, क्या है, क्या नहीं है। डाक्टर को आकर देखने की जरूरत नहीं होती, वह चार्ट पर एक क्षण नजर डाल लेता है, बात पूरी हो जाती है। पर इससे भी अदभुत था यह प्रयोग कि माथे पर पूरा का पूरा इंगित लगा था, यह सब तरह की खबर देता। और अगर ठीक-ठीक इसका प्रयोग किया जाता तो गुरु को पूछने की कभी जरूरत न पड़ती कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। वह जानता है कि क्या हो रहा है। और क्या सहायता पहुंचानी है, वह भी जानता है। क्या प्रयोग बदलना है, कौन सी विधि रूपांतरित करनी है, वह भी जानता है।
एक तो साधना की दृष्टि से तिलक का ऐसा मूल्य था। दूसरा, जो हमारी तीसरी आंख का बिंदु है, वह हमारे संकल्प का भी बिंदु है। उसको योग में आज्ञाचक्र कहते हैं। आज्ञाचक्र इसीलिए कहते हैं कि हमारे जीवन में जो कुछ भी अनुशासन है वह उसी चक्र से पैदा होता है। हमारे जीवन में जो भी व्यवस्था है, जो भी आर्डर है, जो भी संगति है, वह उसी बिंदु से पैदा होती है।
इसे ऐसा समझें। हम सबके शरीर में सेक्स का सेंटर है। सेक्स से समझना आसान पड़ जाएगा, क्योंकि वह हम सबका परिचित है, यह आज्ञा का चक्र तो हम सबका

परिचित नहीं है। हमारे जीवन की सारी वासना और कामना सेक्स के चक्र से पैदा होती है। जब तक वह चक्र सक्रिय नहीं होता तब तक कामवासना पैदा नहीं होती।
कामवासना लेकर बच्चा पैदा होता है, कामवासना का पूरा यंत्र लेकर पैदा होता है, कोई कमी नहीं होती।
कुछ मामले में तो बहुत हैरानी की बात है। स्त्रियां तो अपने जीवन के सारे रजकण भी लेकर पैदा होती हैं, फिर कोई नया रजकण पैदा नहीं होता। प्रत्येक स्त्री कितने बच्चों को जन्म दे सकती है, वह सब के अंडे लेकर पैदा होती है--करोड़ों। पहले दिन की बच्ची भी जब मां के पेट से पैदा होती है, तो अपने जीवन के समस्त अंडों की संख्या अपने भीतर लिए हुए पैदा होती है। हर महीना एक अंडा उसके कोष से निकल कर सक्रिय हो जाएगा। अगर वह अंडा पुरुष वीर्य से मिल जाए, संयुक्त हो जाए, तो बच्चे का जन्म हो जाएगा। एक भी नया अंडा स्त्री में पैदा नहीं होता। सारे अंडे लेकर पैदा होती है। लेकिन फिर भी कामवासना नहीं पैदा होती तब तक, जब तक कि कामवासना का चक्र शुरू न हो जाए। वह चक्र जब तक अगति में पड़ा है, ठहरा हुआ है, तब तक--काम का पूरा यंत्र है, काम की पूरी आयोजना है, शरीर के पास काम की पूरी शक्ति है--लेकिन फिर भी कामवासना पैदा नहीं होगी। कामवासना पैदा होगी, जैसे ही काम का सेंटर गतिमान होगा, गत्यात्मक होगा। चौदह वर्ष की उम्र में या तेरह वर्ष की उम्र में वह गतिमान हो जाएगा। गतिमान होते ही से जो यंत्र पड़ा था बंद बिल्कुल, वह पूरी सक्रियता ले लेगा।
एक ही चक्र से आमतौर से हम परिचित हैं। और वह भी हम इसीलिए परिचित हैं क्योंकि उसे हम शुरू नहीं करते, उसे प्रकृति शुरू करती है। अगर हमें ही उसे भी शुरू करना हो तो इस जगत में थोड़े से ही लोग कामवासना से परिचित हो पाएंगे। वह तो प्रकृति शुरू करती है, इसलिए हमें पता चलता है कि वह है। कभी आपने सोचा है, जरा सा विचार वासना का, और जननेंद्रिय का पूरा यंत्र सक्रिय हो जाता है। विचार चलता है मस्तिष्क में, यंत्र होता है बहुत दूर! कभी आपने सोचा है कि जरा सा कामवासना का मन में, जरा सी झलक, और तत्काल चक्र सक्रिय हो जाता है। असल में आपके चित्त में कामवासना का कोई भी विचार उठे वह तत्काल जो सेक्स का सेंटर है उसे अपनी ओर खींच लेता है। कहीं भी उठे शरीर में, तत्काल वह अपने सेंटर पर चला जाएगा। उसे जाना ही पड़ेगा, उसे जाने की और कोई जगह नहीं है। जैसे पानी गड्ढे में चला जाता है, ऐसा प्रत्येक संबंधित विचार अपने चक्र पर चला जाता है।
दोनों आंखों के बीच में जो तीसरे नेत्र की मैं बात कर रहा हूं, वही जगह आज्ञाचक्र की है। इस आज्ञा के संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी जरूरी है।
जिन लोगों के जीवन में भी यह चक्र प्रारंभ नहीं होगा, वे हजार तरह की गुलामियों में बंधे रहेंगे, वे गुलाम ही रहेंगे। इस चक्र के बिना कोई स्वतंत्रता नहीं है। यह बहुत हैरानी की बात मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमने बहुत तरह की स्वतंत्रताएं सुनी हैं--राजनैतिक, आर्थिक। वे कोई स्वतंत्रताएं वास्तविक नहीं हैं। क्योंकि जिस व्यक्ति का आज्ञाचक्र सक्रिय नहीं है, वह किसी न किसी तरह की गुलामी में रहेगा। एक गुलामी से छूटेगा दूसरी में पड़ेगा, दूसरी से छूटेगा तीसरी में पड़ेगा, वह गुलाम रहेगा ही। उसके पास मालिक होने का तो अभी चक्र ही नहीं है, जहां से मालकियत की किरणें पैदा होती हैं। उसके पास संकल्प जैसी, विल जैसी कोई चीज ही नहीं है। वह अपने को आज्ञा दे सके ऐसी उसकी सामर्थ्य ही नहीं है, बल्कि उसका शरीर और उसकी इंद्रियां ही उसको आज्ञा दिए चली जाती हैं। पेट कहता है भूख लगी है, तो उसको भूख लगती है। कामवासना का बिंदु कहता है वासना जगी, तो उसे वासना जगती है। शरीर कहता है बीमार हूं, तो वह बीमार हो जाता है। शरीर कहता है बूढ़ा हो गया, तो वह बूढ़ा हो जाता है। शरीर आज्ञा देता है, आदमी आज्ञा मान कर चलता रहता है।
यह जो आज्ञाचक्र है, इसके जगते ही शरीर आज्ञा देना बंद कर देता है और आज्ञा लेना शुरू करता है। पूरा का पूरा आयोजन बदल जाता है और उलटा हो जाता है। वैसा आदमी अगर खून--बहते हुए खून--को कह दे कि रुक जाओ, तो वह बहता हुआ खून रुक जाएगा। वैसा आदमी कह दे हृदय की धड़कन को कि ठहर जा, तो हृदय की धड़कन ठहर जाएगी। वैसा आदमी कहे अपनी नब्ज से कि मत चल, तो नब्ज चल न सकेगी। वैसा आदमी अपने शरीर, अपने मन, अपनी इंद्रियों का मालिक हो जाता है। पर इस चक्र

के बिना शुरू हुए मालिक नहीं होता। इस चक्र का स्मरण जितना ज्यादा रहे, उतनी ही ज्यादा आपके भीतर, जिसको कहें स्वयं की मालिकी, पैदा होनी शुरू होती है। आप गुलाम की जगह मालिक बनना शुरू होते हैं।
तो योग ने इस चक्र को जगाने के बहुत-बहुत प्रयोग किए हैं। उसमें तिलक
भी एक प्रयोग है। स्मरणपूर्वक, अगर कोई चौबीस घंटे इस चक्र पर बार-बार ध्यान को ले जाता रहे--और अगर तिलक लगा हुआ है तो बार-बार ध्यान जाएगा। तिलक के लगते ही वह स्थान पृथक हो गया। और बहुत सेंसिटिव स्थान है। अगर तिलक ठीक जगह लगा है तो आप हैरान होंगे कि आपको उसकी याद करनी ही पड़ेगी, वह बहुत संवेदनशील जगह है। संभवतः शरीर में सर्वाधिक संवेदनशील जगह है। उसकी संवेदनशीलता को स्पर्श करना, और वह भी खास चीजों से स्पर्श करने की बात थी।
जैसे चंदन का तिलक लगाना। अब यह सैकड़ों और हजारों प्रयोगों के बाद तय किया था कि चंदन का क्यों प्रयोग करना। एक तरह की रेजोनेंस है चंदन में और संवेदनशीलता में। वह चंदन का तिलक उस बिंदु की संवेदनशीलता को और गहन करता है, और घना कर जाता है। हर कोई तिलक नहीं कर जाएगा। कुछ चीजों के तिलक तो उसकी संवेदनशीलता को मार देंगे, बुरी तरह मार देंगे। जैसे आज स्त्रियां टीका लगा रही हैं बहुत से। बाजारू हैं वे, उनकी कोई वैज्ञानिकता नहीं है, उनका योग से कोई लेना-देना नहीं है। वे बाजारू टीके नुकसान करेंगे। वे नुकसान करेंगे इसलिए क्योंकि सवाल यह है कि वे संवेदनशीलता को बढ़ाते हैं या घटाते हैं? अगर घटाते हैं संवेदनशीलता को तो नुकसान करेंगे, अगर बढ़ाते हैं तो फायदा करेंगे। और प्रत्येक चीज के अलग-अलग परिणाम हैं। इस जगत में छोटे से फर्क से सारा फर्क पड़ता है। तो कुछ विशेष चीजें खोजी गई थीं, जिनका ही उपयोग किया जाए।
आज्ञा का चक्र संवेदनशील हो सके, सक्रिय हो सके, तो आपके व्यक्तित्व में गरिमा और इंटिग्रिटी आनी शुरू होती है, एक समग्रता पैदा होती है। आप एकजुट होने लगते हैं, कोई चीज आपके भीतर इकट्ठी हो जाती है; खंड-खंड नहीं, अखंड हो जाती है।
इस संबंध में टीके के लिए भी पूछा है तो वह भी खयाल में ले लेना चाहिए। तिलक से थोड़ा हट कर टीके का प्रयोग शुरू हुआ। विशेषकर स्त्रियों के लिए शुरू हुआ। उसका कारण वही था लेकिन, योग का ही अनुभव काम कर रहा था। असल में स्त्रियों का आज्ञाचक्र बहुत कमजोर चक्र है। होगा ही। क्योंकि स्त्री का सारा व्यक्तित्व निर्मित किया गया समर्पण के लिए, उसके सारे व्यक्तित्व की खूबी समर्पण है। आज्ञाचक्र अगर उसका बहुत मजबूत हो तो समर्पण करना मुश्किल हो जाएगा। तो स्त्री के पास आज्ञा का चक्र बहुत कमजोर है, असाधारण रूप से कमजोर है। इसलिए स्त्री सदा ही किसी न किसी का सहारा मांगती रहेगी। वह किसी रूप में हो। अपने पर खड़े हो जाने का पूरा साहस न जुटा पाएगी। कोई सहारा, किसी के कंधे पर हाथ, कोई आगे हो जाए, कोई आज्ञा दे और वह मान ले, इसमें उसे सुख मालूम पड़ेगा।
स्त्री के आज्ञाचक्र को सक्रिय बनाने की अकेली कोशिश इस मुल्क में हुई है, और कहीं भी नहीं हुई। और वह कोशिश इसलिए थी कि अगर स्त्री का आज्ञाचक्र सक्रिय नहीं होता तो परलोक में उसकी कोई गति नहीं हो सकती, साधना में उसकी कोई गति नहीं हो सकती। उसके आज्ञाचक्र को तो स्थिर रूप से मजबूत करने की जरूरत है। लेकिन अगर यह आज्ञाचक्र साधारण रूप से मजबूत किया जाए तो उसके स्त्रैण होने में कमी पड़ेगी; अगर यह साधारण रूप से आज्ञाचक्र मजबूत किया जाए तो उसमें पुरुषत्व के गुण आने शुरू हो जाएंगे और स्त्रैण होने में कमी पड़ेगी।
इसलिए इस टीके को अनिवार्य रूप से उसके पति से जोड़ने की चेष्टा की गई। इसको जोड़ने का कारण है। इस टीके को सीधा नहीं रख दिया गया उसके माथे पर, नहीं तो उसमें स्त्रीत्व कम होगा। वह जितनी स्वनिर्भर होने लगेगी, उतना ही उसकी जो स्त्रैण कोमलता है, उसका जो कौमार्य है, वह नष्ट होगा। वह दूसरे का सहारा खोजती है, इससे उसमें एक तरह की कोमलता है। और जब वह अपने सहारे खड़ी होगी तो एक तरह की कठोरता अनिवार्य हो जाएगी।
तो बड़ी बारीकी से खयाल किया गया कि उसको सीधा टीका लगा दिया जाए, तो उसके स्त्रैण तत्व में नुकसान पहुंचेगा, उसके व्यक्तित्व में, उसके मां

होने में बाधा पड़ेगी, उसके समर्पण में बाधा पड़ेगी। इसलिए उसकी आज्ञा को उसके पति से ही जोड़ने का समग्र प्रयास किया गया। इस तरह दोहरे फायदे होंगे। उसके स्त्रैण होने में कोई अंतर नहीं पड़ेगा, वह अपने पति के प्रति ज्यादा अनुगत हो पाएगी, और फिर भी उसकी आज्ञा का चक्र सक्रिय हो सकेगा। इसे ऐसा समझें, आज्ञा का चक्र जिससे भी संबंधित कर दिया जाए उसके विपरीत कभी नहीं जाता--जिससे भी संबंधित कर दिया जाए उसके विपरीत कभी नहीं जाता। चाहे गुरु से संबंधित कर दिया जाए तो गुरु के विपरीत कभी नहीं जाता, चाहे पति से संबंधित कर दिया जाए तो पति से विपरीत कभी नहीं जाता। आज्ञाचक्र जिससे भी संबंधित कर दिया जाए उसके विपरीत व्यक्तित्व नहीं जाता। तो अगर एक स्त्री के माथे पर ठीक जगह पर टीका है तो वह सिर्फ पति के प्रति तो अनुगत हो सकेगी, शेष सारे जगत के प्रति वह सबल हो जाएगी। यह करीब-करीब स्थिति वैसी है कि अगर आप सम्मोहन के संबंध में कुछ समझते हैं तो इसे जल्दी समझ जाएंगे।
अगर आपने किसी सम्मोहक को लोगों को सम्मोहित करते, हिप्नोटाइज करते देखा है, तो आप एक चीज देख कर जरूर ही चौंके होंगे। और वह चीज यह कि अगर सम्मोहन करने वाला व्यक्ति किसी को सम्मोहित कर दे--कोई मैक्सकोल या कोई भी या आप खुद किसी को सम्मोहित कर दें--तो आपके सम्मोहित कर देने के बाद वह व्यक्ति किसी दूसरे की आवाज नहीं सुनेगा, सिर्फ आपकी सुन सकेगा। यह बहुत मजे की घटना घटती है। सम्मोहित कर देने के बाद सारे हाल में यहां हजारों लोग चिल्लाते रहें, बात करते रहें, वह जो बेहोश पड़ा हुआ आदमी है, वह सुनेगा नहीं। लेकिन जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी बोले, तो भी सुनेगा। यह करीब-करीब, जो मैं आपको टीका समझा रहा हूं, उससे जुड़ी हुई घटना है। वह व्यक्ति जैसे ही सम्मोहित किया गया वैसे ही सम्मोहित करने वाले के प्रति ही सिर्फ उसकी ओपनिंग और खुलापन रह गया, बाकी सबके लिए क्लोज हो गया। आप उसको कुछ नहीं कह सकते। आप उसके कान के पास कितना ही चिल्लाएं, वह बिल्कुल नहीं सुनेगा, नगाड़े बजाएं तो नहीं सुनेगा। और जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी आवाज दे कि खड़े हो जाओ, तो वह तत्काल खड़ा हो जाएगा। उसकी चेतना में सिर्फ एक द्वार रह गया है, बाकी सब तरफ से बंद हो गई है। जिसने सम्मोहित किया है, आज्ञाचक्र उससे बंध गया, बाकी सब तरफ से बंद हो गया। ठीक इसी सजेस्टिबिलिटी का, इसी मंत्र का उपयोग स्त्री के टीके में किया गया है। उसको उसके पति के साथ जोड़ देना है। वह एक ही तरफ उसका अनुगत भाव रह जाएगा, एक तरफ वह समर्पित हो पाएगी और शेष सारे जगत के प्रति वह मुक्त और स्वतंत्र हो जाएगी। तो उसके स्त्री होने पर कोई बाधा नहीं पड़ेगी। और इसीलिए जैसे ही पति मर जाए, टीका हटा देना है। जैसे ही पति मर जाए, टीका हटा देना है। वह इसीलिए हटा देना है कि अब किसी के प्रति अनुगत होने का कोई सवाल नहीं रहा।
लोगों को खयाल नहीं है, उनको तो खयाल है कि टीका पोंछ दिया, क्योंकि विधवा हो गई स्त्री। पोंछने का प्रयोजन है। अब उसको अनुगत होने का कोई सवाल नहीं रहा। सच तो यह है कि अब उसको पुरुष की भांति ही जीना पड़ेगा। अब उसमें जितनी स्वतंत्रता आ जाए, उतनी उसके जीवन के लिए हितकर होगी। एक जरा सा भी छिद्र वलनरेबिलिटी का, एक जरा सा भी छेद जहां से वह अनुगत हो सके, वह हट जाए।
टीके का प्रयोग एक बहुत ही गहरा प्रयोग है। लेकिन ठीक जगह पर हो, ठीक वस्तु का हो, ठीक नियोजित ढंग से लगाया गया हो। अन्यथा बेमानी है। सजावट हो किशृंगार हो, तो उसका कोई मूल्य नहीं है, उसका कोई अर्थ नहीं है। तब वह सिर्फ एक औपचारिक घटना है। इसलिए पहली बार जब टीका लगाया जाए तो उसका पूरा अनुष्ठान है। और पहली दफे जब गुरु तिलक दे तब उसका पूरा अनुष्ठान है। उस पूरे अनुष्ठान से ही लगाया जाए तो ही परिणामकारी होगा, अन्यथा परिणामकारी नहीं होगा।
आज सारी चीजें हमें व्यर्थ मालूम पड़ने लगी हैं, उसका कारण है। आज तो व्यर्थ हैं। आज व्यर्थ हैं, क्योंकि उनके पीछे का कोई भी वैज्ञानिक रूप नहीं है। सिर्फ ऊपरी खोल रह गई है, जिसको हम घसीट रहे हैं, जिसको हम खींच रहे हैं बेमन से, जिसके पीछे मन का भी कोई लगाव नहीं रह गया है, आत्मा का कोई भाव नहीं रह गया है, और उसके पीछे की पूरी वैज्ञानिकता का कोई सूत्र भी

मौजूद नहीं है। यह जो आज्ञाचक्र है, इस संबंध में दो-तीन बातें और समझ लेनी चाहिए, क्योंकि यह काम पड़ सकता है, इसका उपयोग किया जा सकता है।
इस चक्र की जो रेखा है, आज्ञाचक्र की, इस रेखा से ही जुड़ा हुआ हमारे मस्तिष्क का वह भाग है... इससे ही हमारा मस्तिष्क शुरू होता है। लेकिन अभी भी हमारे मस्तिष्क का आधा हिस्सा बेकार पड़ा हुआ है साधारणतः। हमारा जो प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है, जिसको हम जीनियस कहें, उसका भी केवल आधा ही मस्तिष्क काम करता है, आधा तो काम नहीं करता। और वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं, फिजियोलाजिस्ट बहुत परेशान हैं कि यह आधी खोपड़ी का जो हिस्सा है, यह किसी भी काम नहीं आता! अगर आपके आधे हिस्से को काट कर निकाल दिया जाए तो आपको पता भी नहीं चलेगा। आपको पता ही नहीं चलेगा कि कोई चीज कमी हो गई। क्योंकि उसका तो कभी कोई उपयोग ही नहीं हुआ है, वह न होने के बराबर है।
लेकिन वैज्ञानिक जानते हैं कि प्रकृति कोई भी चीज व्यर्थ निर्मित नहीं करती। भूल होती हो, एकाध आदमी के साथ हो सकती है। यह निरंतर हर आदमी के साथ आधा मस्तिष्क खाली पड़ा हुआ है! बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा हुआ है, उसमें कभी कोई चहल-पहल भी नहीं हुई है।
योग का कहना है कि वह जो आधा मस्तिष्क है वह आज्ञाचक्र के चलने के बाद शुरू होता है। आधा जो मस्तिष्क है वह आज्ञाचक्र के नीचे के चक्रों से जुड़ा हुआ है और आधा जो मस्तिष्क है वह आज्ञाचक्र के ऊपर के चक्रों से जुड़ा हुआ है। नीचे के चक्र शुरू होते हैं तो आधा मस्तिष्क काम करता रहता है, और जब आज्ञा के ऊपर काम शुरू होता है तब शेष आधा मस्तिष्क काम शुरू करता है।
इस संबंध में, हमें खयाल भी नहीं आता जब तक कोई चीज सक्रिय न हो जाए, हम सोच भी नहीं सकते। सोचने का भी कोई उपाय नहीं है। जब कोई चीज सक्रिय होती है तभी हमें पता चलता है।
स्वीडन में एक आदमी गिर पड़ा ट्रेन से। और गिरने के बाद जब वह अस्पताल में भर्ती किया गया तो उसे दस मील के भीतर की आस-पास की रेडियो की आवाजें पकड़ने लगीं, उसके कान में। पहले तो वह समझा कि उसका दिमाग कुछ खराब हो रहा है। पहले तो साफ भी नहीं था, गुनगुनाहट मालूम होती थी। लेकिन दो-तीन दिन में ही चीजें साफ होने लगीं। तब उसने घबरा कर डाक्टर को कहा कि यह मामला क्या है? मुझे तो ऐसा सुनाई पड़ता है जैसे कि कोई रेडियो मेरे कान के पास लगाए हुए है। यहां तो कोई लगाए हुए नहीं है! डाक्टर ने पूछा, तुम्हें क्या सुनाई पड़ रहा है? तो उसने जो गीत की कड़ी बताई वह डाक्टर अभी अपने रेडियो से सुन कर आ रहा है। उसने कहा, यह मुझे अभी थोड़ी देर पहले सुनाई पड़ी। और फिर तो स्टेशन बंद हो गया टाइम बता कर, कि इतना टाइम है। तब तो रेडियो लाकर, लगा कर, जांच-पड़ताल की गई। और पाया गया कि उस आदमी का कान ठीक रेडियो की तरह रिसेप्टिव का काम कर रहा है, उतना ही ग्राहक हो गया है।
आपरेशन करना पड़ा। नहीं तो आदमी पागल हो जाए। क्योंकि ऑन-ऑफ का तो कोई उपाय नहीं था, वह चौबीस घंटे चल रहा था। जब तक स्टेशन चलेगा तब तक वह आदमी चल रहा था। लेकिन एक बात जाहिर हो गई कि यह भी कान की संभावना हो सकती है। और यह भी तय हो गया उसी दिन कि इस सदी के पूरे होते-होते हम कान का ही उपयोग करेंगे रेडियो के लिए। इतने-इतने बड़े यंत्रों को बनाने की और ढोने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। लेकिन तब एक छोटी सी व्यवस्था, जो कान पर लगाई जा सके और जिससे ऑन-ऑफ किया जा सके, पर्याप्त होगा। सिर्फ ऑन-ऑफ किया जा सके, उतनी व्यवस्था! पर उस आदमी की आकस्मिक घटना से यह एक खयाल पकड़ा, बिल्कुल आकस्मिक!
इस जगत में जो-जो नयी घटनाएं घटती हैं या नये दृष्टिकोण खुलते हैं, वे हमेशा एक्सीडेंटल और आकस्मिक होते हैं। क्योंकि हम पिछले ज्ञान से तो उनका कोई अनुमान ही नहीं लगा सकते। अब हम कभी सोच ही नहीं सकते कि कान भी कभी रेडियो का काम कर सकता है। लेकिन क्यों नहीं कर सकता? कान सुनने का काम करता है, रेडियो सुनने का काम करता है। कान रिसेप्टिविटी है पूरी, रेडियो रिसेप्टिविटी है। सच तो यह है कि रेडियो कान के ही आधार पर निर्मित है। मॉडल का काम तो कान ने ही किया है। कान की और क्या-क्या संभावनाएं हो सकती हैं, ये जब तक अचानक उदघाटित न हो जाएं तब तक पता भी नहीं चल सकता।

ठीक वैसी घटना दूसरे महायुद्ध में एक और घटी। एक आदमी घायल हुआ, बेहोश हुआ, और जब होश में आया तो उसे दिन में आकाश के तारे दिखाई पड़ने लगे। तारे तो दिन में होते ही हैं, तारे तो कहीं चले नहीं जाते। तारे तो आकाश में होते ही हैं, सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से दिखाई पड़ने बंद हो जाते हैं। सूरज की रोशनी बीच में आ जाती है, तारे पीछे पड़ जाते हैं। सूरज की रोशनी बहुत तेज है, तारे बहुत दूर हैं, उनकी टिमटिमाती रोशनी खो जाती है। यद्यपि वे सूरज से छोटे नहीं हैं, उनमें से कोई सूरज से हजार गुना बड़ा है, कोई दस हजार गुना बड़ा है, कोई लाख गुना बड़ा है, पर फासला बहुत है।
सूरज से किरण हम तक आती है तो उसको नौ मिनट लगते हैं। और जो सबसे करीब
का तारा है, उससे जो किरण आती है, उसको चालीस साल लगते हैं। फासला बहुत है-- नौ मिनट और चालीस साल! और किरण बहुत तेज चलती है, एक लाख छियासी हजार मील चलती है एक सेकेंड में। सूरज से पहुंचने में नौ मिनट लगते हैं, निकटतम तारे से पहुंचने में चालीस साल लगते हैं। और ऐसे तारे हैं कि जिनसे चार हजार साल भी लगते हैं, चार लाख साल भी लगते हैं, चार करोड़ साल भी लगते हैं, चार अरब साल भी लगते हैं। चार अरब साल के ऊपर का हम हिसाब नहीं रख सकते, क्योंकि हमारी पृथ्वी को बने चार अरब साल हुए।
वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हमारी पृथ्वी नहीं बनी थी, तब जो किरणें चली होंगी, एक दिन जब हमारी पृथ्वी समाप्त हो चुकी होगी तब पार होंगी। उन किरणों को कभी पता ही नहीं चलेगा कि बीच में यह पृथ्वी के होने की घटना घट गई। जब पृथ्वी नहीं थी तब वे चलीं और जब पृथ्वी नहीं हो चुकी होगी तब वे पार हो जाएंगी। उनको कभी पता नहीं चलेगा। उन किरणों पर अगर कोई यात्री सवार होकर चले तो पृथ्वी कभी थी, इसका कोई भी पता नहीं चलेगा।
दिन में वे तारे हैं अपनी जगह। उस आदमी को दिन में भी दिखाई पड़ने शुरू
हो गए। उसकी आंख को क्या हो गया? उसकी आंख ने एक नया सिलसिला शुरू किया। आपरेशन करना पड़ा उसकी आंख का, क्योंकि वह आदमी सामान्य नहीं रह गया। वह आदमी बेचैनी में पड़ गया, वह आदमी कठिनाई में पड़ गया। पर एक बात साफ हुई कि आंख दिन में भी तारों को देख सकती है। अगर आंख दिन में भी तारों को देख सकती है तो आंख की बहुत सी संभावनाएं हैं जो सुप्त पड़ी हैं।
हमारी प्रत्येक इंद्रिय की बहुत सी संभावनाएं हैं जो सुप्त पड़ी हैं।
इस जगत में जो हमें चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, वे सुप्त पड़ी संभावनाओं का कहीं से टूट पड़ना है, बस! कोई सुप्त संभावना कहीं से प्रकट हो जाती है, हम चमत्कृत हो जाते हैं। वह मिरेकल नहीं है। उतना ही चमत्कार हमारे भीतर भी दबा पड़ा है। पर अप्रकट है, वह प्रकट नहीं हो पा रहा है, वह खुल नहीं पा रहा है। कहीं कोई दरवाजे पर ताला पड़ा है और वह नहीं टूट पा रहा है।
योग की दृष्टि... और योग की दृष्टि कोई एक-दो दिन, वर्ष दो वर्ष की धारणा की नहीं है, कम से कम बीस हजार साल से योग की यह परिपुष्ट दृष्टि है। विज्ञान की किसी दृष्टि पर तो भरोसा नहीं किया जा सकता बहुत, क्योंकि जो विज्ञान छह महीने पहले कह रहा था, छह महीने बाद बदलेगा। लेकिन योग की एक परिपुष्ट दृष्टि है, जो बीस हजार साल--कम से कम। क्योंकि हम जिस सभ्यता में रह रहे हैं वह सभ्यता किसी भी हालत में बीस हजार साल से पुरानी नहीं है। यद्यपि यह हमारा भ्रम है कि हमारी सभ्यता पृथ्वी पर पहली सभ्यता है। हमसे पहले सभ्यताएं हो चुकी हैं और नष्ट हो चुकी हैं। और हमसे पहले आदमी करीब-करीब हमारी ही ऊंचाइयों पर और कभी-कभी हमसे भी ज्यादा ऊंचाइयों पर पहुंच गया और खो गया।
उन्नीस सौ चौबीस में एक घटना घटी। उन्नीस सौ चौबीस में जर्मनी में अणुविज्ञान के संबंध में जो शोध का पहला संस्थान निर्मित हुआ, अचानक एक दिन सुबह एक आदमी, जिसने अपना नाम फल्कानेली बताया, एक कागज लिख कर वहां दे गया। और उस कागज में एक छोटी सी सूचना दे गया कि मुझे कुछ बातें ज्ञात हैं, और कुछ और लोगों को भी ज्ञात हैं, जिनके आधार पर मैं यह खबर देता हूं कि अणु के साथ खोज में मत पड़ना, क्योंकि हमारी सभ्यता के पहले और भी सभ्यताएं इस खोज में पड़ कर नष्ट हो चुकी हैं। इस खोज को बंद ही कर देना। बहुत खोजबीन की गई, उस आदमी का कुछ पता न चला।
उन्नीस सौ चालीस में हेजेनबर्ग--एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था जर्मनी का, जिसने कि बड़े से बड़ा काम अणु की खोज में किया--उस आदमी के घर फिर एक आदमी

उपस्थित हुआ, जिसने फिर उसे एक चिट्ठी दी, उस पर भी फल्कानेली के ही दस्तखत थे। वह नौकर को चिट्ठी देकर बाहर ही चला गया। उस चिट्ठी में उसने हेजेनबर्ग को सूचना दी थी कि तुम पापी होने का जिम्मा मत लो, क्योंकि यह सभ्यता पहली नहीं है जो कि अणु के साथ उपद्रव में पड़ी हो। इसके पहले बहुत बार सभ्यताएं अणु के साथ खेल में पड़ीं और नष्ट हुईं। मगर फिर भी उस आदमी का कोई पता नहीं चल सका।
और उन्नीस सौ पैंतालीस में जब पहली दफा हिरोशिमा पर एटम गिरा, तो दुनिया के बारह बड़े वैज्ञानिकों को, जिनका कि हाथ था एटम के बनाने में, फल्कानेली के दस्तखत से पत्र मिले जिसमें उसने कहा था कि देखो, अभी भी रुक जाओ। हालांकि तुमने पहला कदम उठा लिया है, और पहला कदम उठाने के बाद आखिरी कदम बहुत दूर नहीं रहता। ओपनहीमर, जो अमरीका का सबसे बड़ा अणुशास्त्री था, जिसने कि अणु बनाने में बड़े से बड़ा भाग बंटाया, उसने तत्काल उस पत्र के मिलते ही से अणु आयोग से इस्तीफा दिया और उसने एक वक्तव्य दिया कि वी हैव सिंड, हमने पाप किया है। और यह आदमी हर वक्त खबर देता रहा। पर यह आदमी कौन है, इसका कोई पता नहीं लग सका कि यह आदमी कौन है! इस बात की पूरी संभावना है कि वह जो कह रहा है, ठीक कह रहा है। अणु के साथ खिलवाड़ सभ्यताएं पहले भी कर चुकी हैं।
हमने भी महाभारत में अणु के साथ खिलवाड़ कर लिया है। और उसके साथ हम बर्बाद हुए। असल में करीब-करीब ऐसा है जैसे कि एक व्यक्ति बच्चा होता है, जवान होता है, और जवानी में वही भूलें करता है जो उसके बाप ने की थीं। हालांकि बाप बूढ़ा होकर उसको समझाता है कि इन भूलों में मत पड़ना, यह सब गड़बड़ है। लेकिन उसके बाप ने भी इस बूढ़े को समझाई थीं यही बातें। और ऐसा नहीं है कि इस बूढ़े के बूढ़े बाप को समझाने वाला बाप नहीं था, उसने भी समझाया था। बाकी जवानी में वही भूलें होती हैं, फिर बुढ़ापे में वही समझाहट होती है। बच्चा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है--जैसे व्यक्ति एक चक्र में दौड़ कर विघटित हो जाता है, ऐसे ही हर सभ्यता भी करीब-करीब एक से स्टेप उठा कर नष्ट होती है। सभ्यताएं भी बचपन में होती हैं, जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं और मरती हैं।
यह जो योग की बीस हजार साल की... बीस हजार साल की मैं इसलिए कहता हूं कि बीस हजार साल का हिसाब थोड़ा साफ है। वैसे इसे और भी साफ करना हो तो बीस हजार साल के पहले जो सभ्यताएं रही हैं, उनको बिना जाने साफ नहीं किया जा सकता। एक आदमी की जवानी ठीक से समझनी हो तो दस आदमियों की जवानी समझनी जरूरी है, अकेली नहीं समझी जा सकती। कोई रिफरेंस नहीं होता, कोई संदर्भ नहीं होता। कैसे समझा जाए वह क्या कर रहा है? ठीक कर रहा है कि गलत कर रहा है? एक आदमी का बुढ़ापा समझना हो तो पच्चीस बूढ़ों पर नजर डालनी जरूरी है। नहीं तो अधूरा-अधूरा होगा। एक-एक व्यक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं बता पाता है। एक-एक घटना कुछ नहीं कहती। लेकिन बीस हजार साल का इतिहास साफ है। इस बीस हजार साल में योग निरंतर एक बात कहता रहा है कि आज्ञाचक्र के साथ जुड़ा हुआ आधा मस्तिष्क है जो बंद पड़ा है, अगर तुम्हें संसार के पार कुछ जानना है तो उस आधे मस्तिष्क को सक्रिय करना जरूरी है। अगर परमात्मा के संबंध में कोई यात्रा करनी है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। अगर पदार्थ के पार देखना है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। उसका द्वार है आज्ञा। वह जहां आप तिलक लगाते हैं, वह तो कॉरस्पांडिंग हिस्सा है आपकी चमड़ी के ऊपर। उससे अंदाजन डेढ़ इंच भीतर--अंदाजन कहता हूं, क्योंकि किसी का थोड़ा ज्यादा, किसी का थोड़ा कम--अंदाजन डेढ़ इंच भीतर वह बिंदु है जो द्वार का काम करता है, पदार्थ-अतीत, भावातीत जगत के लिए। तिब्बत ने तो, जैसा हमने तिलक आविष्कृत किया, तिब्बत ने तो ठीक आपरेशंस भी आविष्कृत किए। और तिब्बत ही कर सकता था। क्योंकि तिब्बत ने जितनी मेहनत की है मनुष्य के तीसरे नेत्र पर, वह थर्ड आई पर, उतनी किसी और सभ्यता ने नहीं की है। सच तो यह है कि तिब्बत का पूरा का पूरा विज्ञान और पूरी समझ, जीवन के अनेक आयामों की समझ, उस तीसरे नेत्र की ही समझ पर आधारित है।
जैसा मैंने कायसी का आपके लिए कहा, तो कायसी तो एक व्यक्ति है, तिब्बत में तो सैकड़ों साल से, व्यक्ति जब तक समाधि में न जाए तब तक दवा का कोई पता

ही नहीं लगाते रहे हैं। यह पूरी सभ्यता ही वह काम करती रही है। समाधिस्थ व्यक्ति से ही दवा पूछेंगे। उसकी दवा का ही उपयोग है। बाकी तो सब अंधेरे में टटोलना है।
उन्होंने तो आपरेशंस भी विकसित किए। ठीक इस डेढ़ इंच के भीतर जो जगह है, उस पर आपरेशंस भी करने के प्रयोग किए। उसको बाहर से भी तोड़ने की कोशिश की। वह टूट जाती है, बाहर से भी टूट जाती है। लेकिन बाहर से टूटने में और भीतर से टूटने में एक फर्क है, इसलिए भारत ने कभी उसको बाहर से तोड़ने की कोशिश नहीं की। वह मैं आपको खयाल में दे दूं।
उसे बाहर से तोड़ने पर भी आधा मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है। बहुत संभावना यह है कि वह अपने इस नये आधे मस्तिष्क की सक्रियता का दुरुपयोग करेगा। उसकी चेतना में कोई अंतर नहीं हुए हैं, वह आदमी वही का वही है। उसकी चेतना में कोई साधनागत अंतर नहीं हुए हैं, और उसके मस्तिष्क में नये काम शुरू हो गए। अगर वह आदमी आज दीवार के पार देख सकता है, तो इस बात की बहुत कम संभावना है कि वह कुएं में किसी गिरे आदमी को देख कर निकालने जाएगा। इस बात की बहुत संभावना है कि किसी के गड़े हुए खजाने को खोदने जाएगा। अगर वह आदमी यह देख सकता है कि उसके भीतरी इशारे से आपको आज्ञा दी जा सकती है, तो इस बात की बहुत कम संभावना है कि आपसे वह कोई अच्छा काम करवाएगा। इस बात की बहुत संभावना है कि आपसे वह कोई बुरा काम करवाएगा।
आपरेशन हो सकता था, भारत को भी उसके सूत्र पता थे, पर उसका कभी प्रयोग नहीं किया। नहीं प्रयोग किया इसीलिए कि जब तक व्यक्ति की चेतना भी भीतर से इतनी विकसित न हो कि नयी शक्तियों का उपयोग करने में समर्थ हो जाए, तब तक उसे नयी शक्तियां देना खतरनाक है। बच्चे के हाथ में जैसे हम तलवार दे दें। बहुत डर तो यह है कि वह दो-चार को काटेगा, डर यह भी है कि वह अपने को भी काटेगा। और बच्चे के हाथ में दी गई तलवार से किसी का भी मंगल हो सकेगा, इसकी आशा करना दुराशा मात्र है। चेतना के तल पर अगर व्यक्ति के भीतर की चेतना विकसित न हो, उसके हाथ में नयी शक्तियां देना खतरनाक है।
तिब्बत में, जहां हम तिलक लगाते रहे हैं, वहां ठीक भीतर तक भी छेद करने
की कोशिश की है भौतिक उपकरणों से। इसलिए तिब्बत बहुत सी बातें जान पाया, बहुत से अनुभव कर पाया, लेकिन फिर भी तिब्बत कोई नैतिक अर्थों में महान देश नहीं बन पाया। यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। तिब्बत बहुत काम कर पाया, लेकिन फिर भी नैतिक अर्थों में वह एक बुद्ध भी पैदा नहीं कर पाया। उसकी जानकारी बढ़ी, उसकी शक्ति बढ़ी, अनूठी बातों का उसे पता चला; लेकिन उन सबका उपयोग बहुत छोटी बातों में हुआ, उनका बहुत बड़ी बातों में उपयोग नहीं हो सका।
भारत ने कोई सीधा भौतिक प्रयोग करने की कभी चेष्टा नहीं की। चेष्टा
यह की कि भीतर से चेतना को इकट्ठा करके इतना कनसनट्रेट, इतना एकाग्र किया जाए कि चेतना की शक्ति से ही वह तीसरा नेत्र खुल जाए, उसके ही प्रवाह में खुल जाए। क्योंकि उसके प्रवाह को तीसरे नेत्र तक लाना एक बड़ा नैतिक उपक्रम है। उसे इतना ऊपर चढ़ाना! क्योंकि साधारणतः हमारा मन नीचे की तरफ बहता है।
सच तो यह है कि हमारा मन सेक्स-सेंटर की तरफ ही बहता रहता है। हम कुछ
भी करते हों--हम चाहे धन कमाते हों, चाहे पद की चेष्टा करते हों, चाहे कुछ भी करते हों--हमारे सब करने के पीछे कहीं गहरे में कामवासना हमें खींचती रहती है। धन भी हम कमाते हैं तो इसी आशा में कि उससे काम खरीदा जा सके; और पद की भी हम इच्छा करते हैं इसी आशा में कि पद पर बैठ कर हम ज्यादा शक्तिशाली हो जाएंगे काम को खरीद लेने में।
इसलिए अगर पुराने दिनों में राजा की इज्जत का पता इससे चलता था कि कितनी रानियां उसके पास हैं, तो वह ठीक मेजरमेंट था। क्योंकि पद का और कोई मूल्य क्या है? पद का करोगे क्या? कितनी स्त्रियां तुम्हारे हरम में हैं, उससे पता चल जाएगा कि तुम कितने बड़े पद पर हो। पद का भी उपयोग, धन का भी उपयोग घूम कर तो कामवासना के लिए ही होना है।
हम जो भी करेंगे, हमारी सारी शक्ति काम के केंद्र की तरफ दौड़ती रहेगी।
और जब तक शक्ति काम के केंद्र की तरफ दौड़ रही है तभी तक व्यक्ति अनैतिक हो सकता है। अगर शक्ति को ऊपर की तरफ दौड़ाना है तो काम की यात्रा रूपांतरित

करनी पड़ेगी। अगर आज्ञाचक्र की तरफ शक्ति को ले चलना है तो काम की यात्रा को बदलना पड़ेगा--रुख, पूरा ध्यान, पीठ ही फेर लेनी पड़ेगी नीचे की तरफ और मुंह करना पड़ेगा ऊपर की तरफ, ऊर्ध्वमुखी होना पड़ेगा।
यह जो ऊर्ध्वगमन है, यह यात्रा बड़ी नैतिक होगी। इसमें इंच-इंच संघर्ष होगा, इसमें एक-एक कदम कुर्बानी होगी। इसमें जो क्षुद्र है उसे खोने की तैयारी दिखानी पड़ेगी, ताकि विराट मिल सके। इसमें कीमत चुकानी पड़ेगी। और इतनी सारी कीमत चुका कर जो व्यक्ति आज्ञाचक्र तक पहुंचता है, उसे जो विराट शक्ति उपलब्ध होती है, वह उसका दुरुपयोग कैसे कर पाएगा? दुरुपयोग का कोई सवाल नहीं उठता। दुरुपयोग करने वाला तो इस मंजिल तक पहुंचने के पहले समाप्त हो गया होता है।
इसलिए तिब्बत में ब्लैक मैजिक पैदा हुआ, यह आपरेशन की वजह से। तिब्बत में अध्यात्म कम पैदा हुआ, और जिसको हम कहें कि शैतानी ढंग का उपद्रव ज्यादा पैदा हुआ, ब्लैक मैजिक पैदा हुआ। इस तरह की ताकत हाथ में आनी शुरू हो गई... ।
सूफियों में एक कहानी है, जीसस के बाबत। ईसाइयों में उसका कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए मैं सूफियों से कहता हूं। जीसस की बहुत सी कहानियां सूफियों के पास हैं, ईसाइयों के पास नहीं हैं। कई बार तो बहुत महत्वपूर्ण घटनाएं मुसलमानों के पास हैं, ईसाइयों के पास नहीं हैं, जीसस के जीवन में। यह घटना भी उनमें से एक है, कि जीसस के तीन शिष्य जीसस के पीछे पड़े हैं। और उनसे कहते हैं कि हमने सुना है और देखा भी, कि आप मुर्दे को कहते हैं कि उठ जाओ, और वह उठ जाता है। हमें तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहिए, हमें तुम्हारा स्वर्ग नहीं चाहिए, हमें तो सिर्फ यह तरकीब सिखा दो--यह मरा हुआ आदमी कैसे जिंदा हो जाता है? जीसस उनसे कहते हैं, लेकिन इस मंत्र का उपयोग तुम स्वयं पर कभी न कर पाओगे। क्योंकि तुम मर चुके होओगे, फिर मंत्र का उपयोग कैसे करोगे? और दूसरे को जिलाने से तुम्हें क्या फायदा होगा? मैं तुम्हें वह तरकीब बताता हूं जिससे कि तुम मरो ही न! लेकिन वे कहते हैं, हमें इससे कोई... । आप हमें बहलाएं मत, हमें तो यह मुद्दे की बात बता दें। यह चीज जानने जैसी है।
वे इतने पीछे पड़े हैं कि जीसस ने कहा कि ठीक है। जीसस ने उन्हें वह सूत्र बता दिया, जिस सूत्र के उपयोग से मरा हुआ जिंदा हो जाता है।
अब वे तीनों भागे। उसी दिन जीसस को छोड़ कर भाग गए, मुर्दे की तलाश में।
अब देर करनी उचित नहीं, मंत्र में कोई शब्द भूल जाए, कोई गड़बड़ हो जाए, इसका जल्दी प्रयोग करके देख लें। दुर्भाग्य, गांव में गए, कोई मुर्दा नहीं! दूसरे गांव की तरफ निकले तो बीच में अस्थिपंजर पड़ा हुआ मिल गया। तो उन्होंने कहा कि ठीक। मुर्दा भी नहीं मिला, अब चलो यही ठीक है। मंत्र पढ़ा। जल्दी थी बहुत। वे शेर के अस्थिपंजर थे। शेर उठ कर खड़ा हो गया, वह उन तीनों को खा गया।
सूफी कहते हैं कि यही होगा। वह जो कुतूहल--और अनैतिक चित्त का कुतूहल खतरे में ले जाता है। तो बहुत बार बहुत से सूत्र जान कर भी छिपा लिए गए बार-बार कि वे गलत आदमी के हाथ में न पड़ जाएं। सामान्य आदमी को भी खबर दी गई तो उसे इस ढंग से दिया गया कि जब वह योग्य हो जाए तभी उसे पता चल पाए। सोचेंगे आप, तिलक के संबंध में मैं यह क्यों कह रहा हूं?
हर बच्चे के माथे पर तिलक लगा दिया, जब कि उसे कुछ पता नहीं है। कभी उसे पता होगा, कभी उसे पता चलेगा, तब वह इस तिलक के राज को समझ पाएगा। इशारा कर दिया गया है किसी जगह का, ठीक जगह पर निशान बना दिया गया है। कभी जब उसकी चेतना इतनी समर्थ होगी, तब वह इस निशान का उपयोग कर पाएगा। कोई फिक्र नहीं, सौ आदमियों पर लगाया गया निशान, और निन्यानबे के लिए काम नहीं पड़ा। कोई फिक्र नहीं, एक को भी काम पड़ जाए तो कम नहीं है। इस आशा में सौ पर लगा दिया गया है कि कभी किसी क्षण में, कभी किसी क्षण में, उसका स्मरण आ जाएगा तो पता चल जाएगा।
तिलक के लिए इतना मूल्य, इतना सम्मान कि जब भी कुछ विशेष घटना हो, शादी
हो रही हो तो तिलक हो, कोई जीत कर लौट आए तो तिलक हो! कभी आपने सोचा कि हर सम्मान की घटना के साथ तिलक, यह सिर्फ लॉ ऑफ एसोसिएशन का उपयोग है। क्योंकि हमारे चित्त में एक बड़े मजे का मामला है। हमारा चित्त दुख को

भूलना चाहता है और सुख को याद रखना चाहता है। हमारा चित्त लंबे अर्से में दुख को भूल जाता है और सुख को याद रखता है। इसीलिए तो हमें पीछे के दिन अच्छे मालूम पड़ते हैं। बूढ़ा कहता है, बचपन बहुत सुखद था। कोई और बात नहीं है, दुख को ड्राप कर देता है मन हमारा, सुख कीशृंखला को कायम रखता है। जब लौट कर पीछे देखता है तो सुख ही सुख दिखाई पड़ता है। बीच-बीच में जो दुख थे, उनको हम गिरा आए रास्ते में। कोई बच्चा नहीं कहता कि बचपन सुखद है। बच्चे जल्दी से जल्दी बड़े होना चाहते हैं। और सब बूढ़े कहते हैं बचपन बहुत सुखद है।
जरूर कहीं न कहीं कोई भूल हो रही है। अब ये जितने बच्चे हैं, उनको खड़े करके पूछो कि तुम क्या होना चाहते हो? वे कहेंगे, हम बड़े होना चाहते हैं। और जितने बूढ़े हैं, उनसे पूछो, क्या होना चाहते हो? वे कहेंगे, हम बच्चे होना चाहते हैं। मगर एक बच्चा गवाही नहीं देता तुम्हारे साथ। बच्चा जितने जल्दी बड़ा हो जाए! इसलिए कई दफे तो वह ऐसी कोशिश करता है बड़े होने की कि जिसका कोई हिसाब नहीं। सिगरेट पीने लगता है, इसलिए कि वह देखता है कि सिगरेट जो है सिंबल है बड़े आदमी का। कोई और कारण से नहीं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों में सौ में से सत्तर प्रतिशत बच्चे इसलिए सिगरेट पीते हैं कि सिगरेट जो है प्रेस्टिज का प्रतीक है। उसको ताकतवर, बड़े लोग, प्रतिष्ठा वाले लोग पीते हैं। वह भी पीकर धुआं जब उड़ाता है, तो भीतर उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है--मैं भी कुछ हूं, समबडी। उसको मालूम पड़ता है कि मैं भी कोई ऐसा-वैसा नहीं हूं।
किसी फिल्म पर लिख दें कि इसको सिर्फ अडल्ट देख सकते हैं। बच्चे सब नकली मूंछ लगा कर फिल्म के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। क्यों? बड़ा होने की बड़ी तीव्र आकांक्षा है, जल्दी। मगर सब बूढ़े कहते हैं कि बचपन बड़ा सुखद था। कहीं कोई बात हो रही है। बात कुल इतनी ही है कि मन दुख को भुला देता है, गिरा देता है। दुख याद रखने जैसी चीज भी नहीं है।
एक बहुत हैरानी का सूत्र पियागेट नाम के मनोवैज्ञानिक ने बताया, जिसने चालीस साल तक बच्चों पर मेहनत की है। उसका कहना है कि पांच साल से पहले की किसी बच्चे को स्मृति नहीं रहती बाद में, उसका कुल कारण यह है कि पांच साल की जिंदगी इतनी दुखद है कि उसको याद नहीं रखा जा सकता। यह हम सोच न सकेंगे! पर पियागेट ठीक कहता है, अनुभव से कहता है, भारी अनुभव से कहता है।
आपको अगर कहा जाए कि आपको कब तक की याद है? तो आप ज्यादा से ज्यादा पांच साल, चार साल लौट पाते हैं। फिर क्यों नहीं लौटते पीछे और? क्या उस वक्त मेमोरी नहीं बनती थी? बनती थी। क्या उस वक्त घटना नहीं घटती थीं? घटती थीं। क्या उस वक्त किसी ने गाली नहीं दी और किसी ने प्रेम नहीं किया? सब हुआ है। पर मामला क्या है? चार साल के पहले की स्मृति का कोई रिकार्ड क्यों नहीं है आपके पास?
पियागेट कहता है कि वे दिन इतने दुख में बीतते हैं, क्योंकि बच्चा अपने को इतना दीन, इतना कमजोर, इतना हीन, सबसे दबा हुआ, इतना असहाय अनुभव करता है कि उसका कुछ भी याद रखना उसको पसंद नहीं है। वह उसको ड्राप कर देता है, भूल ही जाता है। वह कहता है, चार साल से पहले का तो मुझे कुछ याद ही नहीं है। कुछ याद नहीं है, क्योंकि बाप ने कहा बैठ, तो उसको बैठना पड़ा था। मां ने कहा उठो, तो उसको उठना पड़ा था। सब बड़े थे, बड़े शक्तिशाली थे, उसकी अपनी कोई सामर्थ्य न थी, वह बिल्कुल हवा में उड़ता हुआ पत्ता जैसा था। जो कोई कुछ कह दे, सब पर निर्भर था। जरा सी आंख का इशारा और उसको डर जाना पड़ेगा, उसके हाथ में कुछ भी सामर्थ्य न थी। उसने उसको बंद कर दिया, वह खयाल ही छोड़ दिया कि मैं कभी था ऐसा, बात खत्म हो गई। वह चार साल के पहले की याद ही नहीं करता। मजे की बात है--हिप्नोटाइज करके आपको याद करवाई जा सकती है! चार साल के पहले की ही नहीं, मां के पेट में भी जब आप थे, तब की भी स्मृति बनती है। अगर मां गिर पड़ी हो आपकी, तो बच्चे को उसके पेट में स्मृति बनती है कि चोट पहुंची, वह भी याद करवाई जा सकती है। लेकिन साधारणतः होश में नहीं रहती। तो इस तिलक को सुख के साथ जोड़ने का उपाय कारण पूर्वक है। जब भी सुख की कोई घटना घटे, तिलक कर दो। सुख याद रहेगा, साथ में तिलक भी याद रह जाएगा। और

धीरे-धीरे सुख अगर तीसरी आंख से संयुक्त हो जाए--यह लॉ ऑफ एसोसिएशन को थोड़ा समझ लें।
पावलफ ने बहुत से प्रयोग किए। इस सदी में रूसी वैज्ञानिक पावलफ एसोसिएशन के ऊपर सर्वाधिक काम किया है। उसका कहना है, कोई भी चीज जोड़ी जा सकती है, सब जोड़ सहयोग के हैं। जैसे उसका प्रयोग सबको पता है, तो वह एक कुत्ते को खाना देगा, तो रोटी सामने रखेगा तो लार टपकेगी। तभी वह घंटी बजाता रहेगा। अब घंटी से लार टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। कितनी ही घंटी बजाइए, लार कैसे टपकेगी कुत्ते की? लेकिन रोटी रखी, लार टपकी, तब घंटी बजाई। पंद्रह दिन वह रोटी के साथ घंटी बजेगी, सोलहवें दिन रोटी तो हटा ली, सिर्फ घंटी बजाई--लार टपकने लगी। क्या हुआ क्या कुत्ते को? घंटी से लार का कोई भी नैसर्गिक संबंध नहीं है। लेकिन अब संबंध जुड़ गया। रोटी के साथ घंटी एक हो गई, घंटी का बजना रोटी की याद बन गई। रोटी की याद, चक्र शुरू हो गया उसके मन में रोटी का, लार टपकनी शुरू हो गई। घंटी प्रतीक की तरह आ गई, वह रोटी का सिंबल हो गई।
इस कानून का उपयोग तिलक में किया गया है। आपके सुख के साथ तिलक को सदा जोड़ा। जब भी सुख की कोई घटना घटी--तिलक और सुख को एक किया। धीरे-धीरे तिलक और सुख इतने एक हो जाएं कि तिलक को कभी भूला न जा सके--एक। वह आपके स्मरण में टंक जाए, बैठ जाए; और जब भी सुख की याद आए, तब आज्ञाचक्र की याद आए। जब भी सुख की याद आए, तब जो पहली याद आए वह आज्ञाचक्र की याद आए।
और सुख की हमें बहुत याद आती है। सुख में ही तो हम, चाहे हुआ हो या न हुआ हो, उसकी याद में तो जीते हैं। जितना होता है उससे ज्यादा बड़ा करके याद करते रहते हैं पीछे-पीछे। फिर धीरे-धीरे तो उसको इतना बड़ा कर लेते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। सुख को हम बड़ा करते रहते हैं, मैग्नीफाई करते रहते हैं। दुख को छोटा करते रहते हैं, एक ही नियम के अनुसार। सुख को बड़ा करते रहते हैं।
आपकी प्रेयसी मिली थी, कितना सुख आया था? आज सोचेंगे तो बहुत बड़ा मालूम पड़ेगा। अभी मिल जाए तो पता चले! एकदम छोटा हो जाएगा, सिकुड़ जाएगा। और कल हो सकता है फिर चौबीस घंटे बाद आप मैग्नीफाई करें कि अहा, कितना आनंद था!
वह पीछे हमारा मन सुख को बड़ा करता जाता है। असल में इतना दुख है जीवन में कि अगर हम सुख को बड़ा न कर पाएं तो जीना बहुत मुश्किल है। उसको बड़ा करके, रस ले-ले कर चलाते हैं। इधर पीछे बड़ा कर लेते हैं, उधर आगे आशा में बड़ा कर लेते हैं, और चलते हैं।
तिलक के साथ सुख को जोड़ने का प्रयोजन है कि जब सुख बड़ा हो तो तिलक भी बड़ा हो जाए। और जब सुख की याद आए तो तिलक की भी याद आए। और यह चोट जो है याद की, धीरे-धीरे सुख आज्ञाचक्र से जुड़ जाए, कि जब भी जीवन में सुख आए तो आज्ञाचक्र का स्मरण आए। और यह हो जाता है। और जब यह हो जाता है तो आपने सुख का उपयोग किया तीसरी आंख को जगाने के लिए। सब सुख की स्मृतियां आज्ञा के चक्र से जुड़ गईं। अब यह हम सुख की धारा का उपयोग कर रहे हैं उसको चोट करने के लिए। यह चोट जितने मार्गों से पड़ सके उतना उपयोगी है।
जिन मुल्कों में तिलक का उपयोग नहीं हुआ वे वे ही मुल्क हैं जिनको थर्ड आई का कोई पता नहीं है, यह आपको खयाल होना चाहिए। जिन-जिन मुल्कों को तीसरी आंख का थोड़ा भी अनुमान हुआ, उन्होंने तिलक का उपयोग किया। जिन मुल्कों को कोई पता नहीं है, वे तिलक नहीं खोज पाए। तिलक खोजने का कोई आधार नहीं था। समझ लें थोड़ा। यह आकस्मिक नहीं है कि कोई समाज एकदम से उठ आए और एक टीका लगा कर बैठ जाए। पागल नहीं है। अकारण, माथे के इस बीच के बिंदु पर ही तिलक लगाने की सूझ का कोई कारण भी तो नहीं है, यह कहीं और भी तो लगाया जा सकता था। आकस्मिक नहीं हो सकता, उसके पीछे कारण हो तो टिक सकता है।
और भी आपको दो-तीन बातें इस संबंध में कहूं। एक, आपने कभी खयाल न किया होगा, जब भी आप चिंता में होते हैं तब आपकी तीसरी आंख पर जोर पड़ता है, इसीलिए माथा पूरा का पूरा सिकुड़ता है। उसी जगह जोर पड़ता है, जहां तिलक है। बहुत चिंता करने वाले, बहुत विचार करने वाले लोग, बहुत मननशील लोग, अनिवार्य रूप से माथे पर बल डाल कर उस जगह की खबर देते हैं।

और जिन लोगों ने, जैसा मैंने पीछे कहा, जिन लोगों ने पिछले जन्मों में कुछ भी तीसरी आंख पर जोर किया है, उनके जन्म के साथ ही उनके माथे पर अगर आप हाथ फिराएं तो आपको तिलक की प्रतीति होगी। उतना हिस्सा थोड़ा सा धंसा हुआ होगा--थोड़ा सा, किंचित, ठीक तिलक जैसा धंसा हुआ होगा। दोनों तरफ के हिस्से थोड़े उभरे हुए होंगे, ठीक उस जगह पर जहां पिछले जन्मों में मेहनत की गई है वहां थोड़ा सा हिस्सा धंसा हुआ होगा। और वह आप अंगुली-अंगूठा लगा कर भी, आंख बंद करके भी पहचान सकते हैं। वह जगह आपको अलग मालूम पड़ जाएगी। तिलक हो या टीका--टीका उसका ही विशेष उपयोग है तिलक का--लेकिन दोनों के पीछे तीसरी आंख छिपी हुई है।
हिप्नोटिस्ट एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। चारकाट फ्रांस में एक बहुत बड़ा मनसविद हुआ, जिसने इस बात पर बहुत काम किए। आप भी छोटा सा प्रयोग करेंगे तो आपको चारकाट की बात खयाल में आ जाएगी। अगर आप किसी के सामने उसके माथे पर दोनों आंखें गड़ा कर देखें, तब तो वह आदमी आपको गड़ाने न देगा। अगर आप किसी के माथे पर दोनों आंखें गड़ा कर देखें तो वह आदमी जितना क्रुद्ध होगा उतना किसी और चीज से नहीं हो सकता। इसलिए वह तो अशिष्ट व्यवहार है, वह तो आप कर नहीं पाएंगे। पर सामने से तो बहुत निकट है वह, सिर्फ डेढ़ इंच के फासले पर है, अगर आप किसी के माथे पर पीछे से भी दृष्टि रखें तो भी आप हैरान हो जाएंगे।
रास्ते पर आप चल रहे हैं, और कोई आदमी आपके आगे चल रहा है। आप ठीक जहां माथे पर यह बिंदु है तिलक का, ठीक इसके आर-पार अगर हम एक छेद करें तो पीछे जहां से छेद निकलता हुआ मालूम पड़ेगा, अनुमान करके उस जगह दोनों आंखें गड़ा दें। और आप कुछ ही सेकेंड आंख गड़ा पाएंगे कि वह आदमी लौट कर आपको देखेगा। सिर्फ होटल के बैरे भर नहीं देखेंगे। उन पर भर आप प्रयोग मत करना किसी होटल में बैठ कर। उसका कारण है। सिर्फ वे लोग नहीं देखेंगे--जैसे मैंने होटल के बैरे का आपको कहा, वह जान कर कहा ताकि आपको खयाल में आ जाए। होटल का बैरा भर, आप कितना ही उसके पीछे माथे पर आंखें गड़ाएं, नहीं देखेगा। क्योंकि वह पूरे वक्त ग्राहकों से बचने की कोशिश में है। जैसे ही उसको पता चल जाए कि कोई उसमें उत्सुक है, वह और ज्यादा दूसरी टेबलों के आस-पास चक्कर मारने लगता है। इसलिए वह भर आपको नहीं देखेगा, बाकी कोई भी देखेगा।
अगर आप ठीक से थोड़े दिन अभ्यास करें और उस आदमी को सुझाव दें तो सुझाव
भी वह आदमी मानेगा। समझ लें कि किसी आदमी के माथे के पीछे आप देखते हैं गड़ा कर आंख, पलक नहीं झपें, कुछ सेकेंड बिना पलक झपे देखते रहें, वह आदमी पीछे लौट कर देखेगा। अगर वह आदमी लौट कर देखता है तब आप उसको आज्ञा भी दे सकते हैं। फिर दोबारा उस आदमी को आप कहें, बाएं घूम जाओ! तो वह आदमी बाएं घूमेगा, और बड़ी बेचैनी अनुभव करेगा। हो सकता है उसको दाएं जाना हो! यह आप थोड़ा प्रयोग करके देखेंगे तो हैरान हो जाएंगे।
मगर यह तो पीछे से, जहां से कि फासला बहुत ज्यादा है। सामने से तो बहुत हैरानी के परिणाम होते हैं। बहुत हैरानी के परिणाम होते हैं। जितने लोग भी हलके किस्म का शक्तिपात करते रहते हैं वह आपके इसी चक्र के कारण, और कुछ कारण नहीं होता। कोई साधु, कोई संन्यासी अगर शक्तिपात के प्रयोग करते रहते हैं लोगों पर, तो वह यही कि आपको आंख बंद करके सामने बिठा लिया है। आप समझ रहे हैं वह कुछ कर रहे हैं। वह कुछ नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ आपके माथे के इस बिंदु पर दोनों आंखें गड़ा कर बैठे हैं। लेकिन आप तो आंख बंद किए बैठे हैं। और इस बिंदु पर जो भी आपको सुझाव दिया जाएगा, वह आपको भ्रांति प्रतीति फौरन हो जाएगी। अगर कहा जाए कि भीतर प्रकाश ही प्रकाश है! आपके भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा। बाकी इधर से आप गए कि वह विदा हो जाएगा। दो-चार दिन उसकी हलकी झलक रह सकती है, फिर समाप्त हो जाएगा। वह कोई शक्तिपात वगैरह नहीं है, वह सिर्फ आपके आज्ञाचक्र का थोड़ा सा उपयोग है। यह तृतीय नेत्र की अनूठी संपदा है, और अपरिसीम उपयोग हैं। उसके लिए सिर्फ सिंबालिक तिलक है। जब यहां दक्षिण में पहली दफा ईसाई फकीर आए तो कुछ ईसाई फकीरों ने तो आकर तिलक लगाना शुरू कर दिया। आज से एक हजार साल पहले वेटिकन की अदालत में मुकदमे की हालत आ गई। क्योंकि यहां जिन ईसाई फकीरों को भेजा था, उन्होंने यहां आकर जनेऊ भी पहन लिया, और तिलक भी लगाया, और खड़ाऊं भी डाल ली, और वे हिंदू संन्यासी की तरह रहने लगे। तो वेटिकन की

अदालत तक मामला गया वह कि यह तो बात गलत है। तो जिन फकीरों ने यह किया था, उन्होंने उत्तर दिए। उन्होंने कहा कि यह गलत नहीं है। यह तिलक लगाने से हम हिंदू नहीं हो रहे हैं। यह तिलक लगाने से तो हमें सिर्फ एक रहस्य का पता चला है, जिसका आपको पता नहीं था। इस खड़ाऊं को पहन कर हम हिंदू नहीं हो रहे हैं। यह तो हमें पहली दफे हिंदुओं की समझ का पता चला है कि ध्यान करते वक्त अगर लकड़ी पैर के नीचे हो, तो बिना लकड़ी के जो काम महीनों में होगा, वह लकड़ी के साथ दिनों में हो सकता है। हम हिंदू नहीं हो गए हैं, लेकिन अगर हिंदू कुछ जानते हैं तो हम नासमझ होंगे कि हम उसका उपयोग न करें।
और निश्चित ही हिंदू कुछ जानते हैं। कोई भी कौम जो बीस हजार साल से निरंतर धर्म के संबंध में खोज कर रही हो और कुछ भी न जानती हो, यही चमत्कार की बात होगी कि कुछ भी न जानती हो! बीस हजार साल से जिसके मनीषी पूरे जीवन को लगा कर एक ही दिशा में काम करते रहे हों, जिसके सारे मनीषी, हजार-हजार साल तक जिसके सारे बुद्धिमान लोग एक ही दिशा में लगे रहे हों, एक ही जिनकी आकांक्षा रही हो कि किस भांति संसार में जो छिपा हुआ सत्य है, उसका पता चल जाए! वह जो अदृश्य है, वह दिखाई पड़ जाए! वह जो अरूप है, उससे पहचान हो जाए! वह जो निराकार है, उसमें प्रवेश हो जाए! बीस हजार साल तक जिनकी सारी मेधा ने, सारी प्रतिभा ने एक ही चेष्टा की हो, उनको कुछ भी पता न हो, यही बात आश्चर्य की है! कुछ पता हो, यह बात बहुत आश्चर्य की नहीं है। इसमें क्या आश्चर्य की बात है! यह पता होना बिल्कुल स्वाभाविक है।
लेकिन पिछले दो सौ साल में एक घटना घटी, जिससे हमको परेशानी हुई है। पिछले दो सौ साल में एक घटना घटी। और वह घटना हमारे खयाल में न आए तो वह परेशानी जारी रहेगी। इस देश के ऊपर सैकड़ों बार हमले हुए हैं, लेकिन कोई हमलावर ठीक जगह पर हमला नहीं कर पाया। किसी ने धन लूट लिया, किसी ने जमीन पर कब्जा कर लिया, किसी ने मकान और महल ले लिए। लेकिन ठीक जो हमारा अंतस्तल था, उस पर कोई हमला नहीं कर पाया। उस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया। पहली बार पश्चिमी सभ्यता ने इस मुल्क के अंतस्तल पर चोट करनी शुरू की। और वह चोट करने का जो सुगमतम उपाय था वह यह था कि आपके पूरे इतिहास को आपसे विच्छिन्न कर दिया जाए। आपके इतिहास में और आपके बीच में एक खाई पैदा हो जाए। बस फिर आप बिना जड़ के हो जाएंगे, अपरूटेड हो जाएंगे। फिर आपकी कोई ताकत न रह जाएगी।
अगर आज पश्चिम की सभ्यता को नष्ट करना हो तो सारे पश्चिम के मकान गिराने की जरूरत नहीं है, और न सिनेमाघर गिराने की जरूरत है, और न पश्चिम की होटलें गिराने की जरूरत है। सिर्फ पश्चिम की पांच यूनिवर्सिटीज को नष्ट कर दिया जाए, पश्चिम का कल्चर नष्ट हो जाएगा। पश्चिम की जो संस्कृति है, वह कोई सिनेमाघर में, और कोई होटल में, और कोई नाइट क्लब में नहीं है। वे चलते रहें, उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। सिर्फ पश्चिम की पांच केंद्रीय बड़ी यूनिवर्सिटियां नष्ट कर दी जाएं, पश्चिम एकदम खो जाएगा। क्योंकि दुनिया में बहुत बड़ा असली जो आधार होता है संस्कृति का, वह उसके ज्ञान के सूत्र होते हैं। उसकी जड़ें होती हैंशृंखला में। ज्यादा देर की जरूरत नहीं है, सिर्फ दो पीढ़ी को इतिहास से वंचित कर दिया जाए, आगे का मामला टूट जाएगा।
आदमी और जानवर में वही फर्क है। जानवर कोई विकास नहीं कर पाते। क्या बात है? कुल इतनी सी बात है कि जानवरों के पास कोई स्कूल नहीं है। और कोई बात नहीं है। और जानवर के पास कोई उपाय नहीं है कि अपनी नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी का ज्ञान दे सके, बस और कोई बात नहीं है। तो जानवर का बच्चा जब पैदा होता है तो उसको वहीं से जिंदगी शुरू करनी पड़ती है जहां उसके बाप ने शुरू की थी। जब उसका बच्चा पैदा होगा, वह भी वहीं शुरू करेगा जहां उसके बाप ने शुरू की है। आदमी शिक्षा के माध्यम से अपने बच्चे को वहां से जिंदगी शुरू करवा देता है जहां खुद समाप्त करता है। इसलिए विकास होता है।
सारा विकास पुरानी पीढ़ी के द्वारा नयी पीढ़ी को अपना संचित अनुभव देने में निर्भर है। तो सोचें, बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें कि हम बच्चों को कुछ न बताएंगे। तो आप समझते हैं, बीस साल का नुकसान नहीं होगा, बीस हजार साल में जो इकट्ठा हुआ है उसका नुकसान हो जाएगा। अगर बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें, पिछली पीढ़ी तय कर ले कि नयी पीढ़ी को अब कुछ नहीं बताना है। तो आप

यह मत सोचना कि यह बीस साल का ही नुकसान होगा और इसको बीस साल में पूरा किया जा सकेगा। नहीं, बीस साल में जो नुकसान होगा उसको पूरा करने में बीस हजार साल लगेंगे। क्योंकि गैप खड़ा हो गया, पुरानी पीढ़ियों का सब का सब डूब जाएगा।
इन दो सौ साल में भारत के लिए भारी गैप पैदा हुआ। जिसमें उसकी जो भी जानकारी थी उससे उसके सारे संबंध टूट गए। और उसके सारे संबंध एक नयी जानकारी से जोड़े गए जिसका पुरानी जानकारी से कोई संबंध नहीं था। तो हम सोचते ही हैं आज कि हम बहुत पुरानी कौम हैं। सच बात यह है कि अब हम दो सौ साल से ज्यादा पुरानी कौम नहीं हैं--अब। हमसे अंग्रेज ज्यादा पुराने हैं अब। अब हमारे पास जो जानकारी है वह कचरा है, उच्छिष्ट। वह भी जो पश्चिम हमको दे दे वह हमारी जानकारी है। दो सौ साल के पहले हम जो भी जानते थे वह सब का सब एकबारगी खो गया। और जब कोई चीज के सूत्र खो जाएं तो मूढ़ता मालूम पड़ने लगती है।
अब अगर आप ऐसे टीका लगा कर जाएं तो शर्म लगती है। कोई भी पूछ ले कि क्या किया? ये कैसे टीका लगाए हुए हो? तो ऐसे ही, कुछ नहीं, पिताजी नहीं माने, या क्या किया जाए बस ठीक है, किसी तरह चलाना पड़ता है! आज आनंद और प्रफुल्लता से टीका लगाना बहुत मुश्किल है। हां, बुद्धि बिल्कुल न हो तो लगा सकते हैं, फिर तो कोई डर ही नहीं है। पर उसका भी कारण यह नहीं है कि आपको पता है इसलिए लगा रहे हैं।
ज्ञान के सूत्र जब गिर जाते हैं और उनका ऊपरी ढांचा रह जाता है तो ढोना बड़ा कठिन हो जाता है। और तब एक दुर्घटना घटती है कि जो सबसे कम बुद्धिमान होते हैं, वे उसको ढोते हैं; और जो बुद्धिमान होते हैं, दूर खड़े हो जाते हैं। एक दुर्घटना घटती है! जब कि बुद्धिमान ही जब तक किसी चीज को लेकर चलता है, तभी तक वह सार्थक रहती है। और यह बड़े मजे की बात है कि जब भी दुर्घटना घटती है और ज्ञान के सूत्र खोते हैं तो बुद्धिमान सबसे पहले छंट कर अलग हो जाते हैं, क्योंकि वे बुद्धू बनने के लिए राजी नहीं हैं। हां, जो बुद्धू है वह जारी रखता है। मगर वह बचा नहीं सकता। उसका कोई उपाय नहीं है। वह कुछ दिन खींचेगा और समाप्त हो जाएगा।
तो कई बार ऐसी घटना घटती है कि बड़ी कीमत की चीजें, जो नासमझ हैं वे बचाए रखते हैं, और जो समझदार हैं पहले छोड़ कर खड़े हो जाते हैं। जिंदगी में बड़े दांव-पेंच हैं। अगर ठीक से हमें भारत का यह दो सौ साल का जो अंतराल पड़ गया है वह पूरा करना हो, तो भारत में आज जो-जो काम बुद्धिहीन कर रहे हैं उसको वापस सोचने की जरूरत है--एक-एक बिंदु को। क्योंकि वे अकारण नहीं कर रहे हैं, उनके साथ बीस हजार साल की लंबी घटना है। वे नहीं बता सकते कि क्यों कर रहे हैं। इसलिए उन पर नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है। किसी दिन हमको उन्हें धन्यवाद भी देना पड़ सकता है कि कम से कम तुमने प्रतीक तो बचाया था, जो कि पुनः खोज की जा सके।
तो आज भारत में जो बिल्कुल ग्रामीण और नासमझ, जिसको कुछ समझ नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है, जिसको हम मूढ़ कह सकते हैं, वह जो-जो कर रहा हो, उसको फिर से उठा कर और दो सौ साल पहले के सूत्रों से जोड़ने की, और बीस हजार साल की समझ के साथ पुनरुज्जीवित करने की जरूरत है। और तब आप चकित हो जाएंगे। तब आप चकित हो जाएंगे। तब आप बिल्कुल हैरान हो जाएंगे कि हम किस बड़े आत्मघात में लगे हैं!
"गहरे पानी पैठ" : अंतरंग चर्चा

मैं कहता आंखन देखी
आठवां प्रवचन

मूर्ति-पूजाः मूर्त से अमूर्त की ओर

ओशो से निवेदन करूंगा कि मूर्ति-पूजा पर हमारा मार्ग-दर्शन करें।

डाक्टर फ्रेंक रुडोल्फ ने अपना पूरा जीवन एक बहुत ही अनूठी प्रक्रिया
की खोज में लगाया है। उस प्रक्रिया के संबंध में थोड़ा आपसे कहूं तो मूर्ति-पूजा को समझना आसान हो जाएगा।
पृथ्वी पर जितनी भी जंगली जातियां हैं, आदिवासी हैं, वे सब एक छोटे से प्रयोग से सदा से परिचित रहे हैं। उस प्रयोग की खबरें कभी-कभी तथाकथित सभ्य लोगों तक भी पहुंच जाती हैं। रुडोल्फ ने उसी संबंध में अपना पूरा जीवन लगाया और जिस नतीजों पर वह खोजी पहुंचा है वे बड़े अदभुत हैं। आदिवासियों में प्रचलित है यह बात कि किसी भी व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बना कर उस व्यक्ति को कोई भी बीमारी भेजी जा सकती है। बीमारी ही नहीं, उसकी मृत्यु भी उसे भेजी जा सकती है। रुडोल्फ फ्रेंक ने अपने जीवन के तीस वर्ष इस खोज में लगाए कि इस बात में कितनी सच्चाई है? क्या यह हो सकता है कि एक व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बनाई जाए और उसे कोई भी बीमारी भेजी जा सके? या उसकी मौत भी भेजी जा सके?
अत्यंत संदेह से भरा हुआ चित्त लेकर, वैज्ञानिक की बुद्धि लेकर यह व्यक्ति अमेजान के आदिवासियों के बीच वर्षों तक रहा। बड़ी कठिनाई में पड़ गया, क्योंकि घटना को सैकड़ों बार आंखों के सामने घटते देखा। हजारों मील दूर भी वह व्यक्ति हो, तो भी उसकी मिट्टी की प्रतिमा बना कर उस तक विशेष बीमारियां और उसकी मौत भी भेजी जा सकती है! वर्षों के अध्ययन के बाद यह तो तय हो गया कि यह घटना घटती है। लेकिन कैसे घटती है? इसके पीछे राज क्या है? इसके पीछे प्रक्रिया क्या है?
रुडोल्फ ने लिखा है कि प्रक्रिया के संबंध में जो बातें मुझे पता चल सकीं और जिन पर मैंने स्वयं प्रयोग करके देख लिया है, वे तीन हैं। एक, मिट्टी की प्रतिमा जरूरी नहीं है कि उस व्यक्ति की शक्ल से बिल्कुल मिलती- जुलती बने। बनाना भी कठिन है, अति मुश्किल है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि वह शक्ल से मिले, महत्वपूर्ण यह है कि उस मिट्टी की प्रतिमा में उस व्यक्ति की शक्ल को प्रतिष्ठित किया जा सके।
जैसे अगर कोई मिट्टी की प्रतिमा बनाए आपकी, तो वह तो कोई बहुत बड़ा मूर्तिकार हो तब आप से मिला पाए, तब भी पूरा न मिला पाए। अब एक साधारण आदमी मिट्टी की प्रतिमा आपकी बनाएगा, तो वह सिर्फ प्रतीक होगी। चेहरा तो नहीं होगा--सिर होगा, हाथ-पैर होंगे, एक दूर का प्रतीक भर होगा। लेकिन रुडोल्फ का कहना है कि अगर वह व्यक्ति आंख बंद करके और आपकी पूरी की पूरी प्रतिमा को मन में पूरा स्मरण कर सके और उसको इस मिट्टी की प्रतिमा पर आरोपित कर सके, तो यह प्रतिमा आपका प्रतीक बन कर सक्रिय हो जाएगी। उसे प्रतिस्थापित करने की भी व्यवस्था है।
मैंने पीछे तिलक के संबंध में आपसे कहा कि आपकी दोनों आंखों के बीच में तीसरी आंख की संभावना के संबंध में योग का निष्कर्ष है। वह जो तीसरी आंख है आपकी, वह बहुत बड़ी आज्ञा की शक्ति रखती है अपने में। और ऐसा समझ सकते हैं कि बहुत बड़ा ट्रांसमिशन का केंद्र है।
अगर आप अपने बेटे को या अपने नौकर को या किसी को कोई आज्ञा देते हैं-- बाप अपने बेटे को कहता है कि फलां काम कर लाओ, और वह बेटा इनकार करता है--तो आप थोड़ा प्रयोग करके देखना। अगर आप दोनों आंखों के बीच में अपने ध्यान को केंद्रित करके बेटे को कहें कि फलां काम कर ला, तब आप देखना कि दस में से नौ मौकों पर इनकार करना असंभव हो जाएगा। और इससे उलटा करके आप देखना कि आंखों के बीच में ध्यान को केंद्रित मत करना, तो दस में से नौ मौकों पर इनकार करना संभव हो जाएगा।
अगर आप अपनी दोनों आंखों के बीच में ध्यान को केंद्रित करके कोई भी बात फेंकें तो वह साधारण शक्ति की नहीं, असाधारण शक्ति लेकर गतिमान हो

जाती है। अगर किसी व्यक्ति की प्रतिमा को मन में रख कर, और उसकी छोटी प्रतिमा को ध्यान में लेकर आज्ञा के चक्र से अगर गीली मिट्टी के बनाए हुए लोंदे पर फेंक दिया जाए, तो वह गीली मिट्टी का लोंदा साधारण मिट्टी का लोंदा नहीं रह जाता, वह आपकी आज्ञा से संक्रामित और आविष्ट हो जाता है। और अगर उस मिट्टी की प्रतिमा के दोनों आंखों के बीच में आप ध्यान करके कोई भी बीमारी का स्मरण कर सकें, सिर्फ एक मिनट, तो वह व्यक्ति उस बीमारी से संक्रामित हो जाएगा। वह कितनी ही दूर हो, इससे कोई सवाल नहीं उठता। उसकी मृत्यु तक घटित हो सकती है।
रुडोल्फ ने अपने पूरे जीवन के अध्ययन के बाद यह लिखा है कि यह बात सुनने में हैरानी की लगती थी, लेकिन जब मैंने इसके प्रयोग देखे तो मैं चकित रह गया! वृक्षों की प्रतिमा बना कर, आदिवासियों ने उसके सामने वृक्षों को तत्काल सूखने पर मजबूर कर दिया। वह वृक्ष जो अभी हरा-भरा था, उसके पत्ते कुम्हला गए। वह वृक्ष जो अभी जीवित मालूम पड़ता था, मरने की प्रक्रिया पर रुग्ण हो गया। पानी डालते रहे, पानी सींचते रहे, किसी तरह का नुकसान वृक्ष को बाहर से नहीं पहुंचने दिया गया; लेकिन महीने भर में वृक्ष सूख कर नष्ट हो गया। जो वृक्ष पर हो सकता है, वह व्यक्ति पर हो सकता है। रुडोल्फ की इस प्रक्रिया से इसलिए मैं बात करना चाहता हूं कि मूर्ति- पूजा भी इसी प्रक्रिया का और एक विराट आयाम में प्रयोग है। अगर हम व्यक्तियों को बीमार कर सकते हैं, व्यक्तियों की मृत्यु ला सकते हैं, तो कोई भी कारण नहीं है कि हम, जो व्यक्ति मृत्यु के पार जा चुके हैं, उनसे पुनः संबंध स्थापित न कर सकें। और कोई कारण नहीं है कि इस जगत में जो विराट व्याप्त है उस विराट के निकट हम पहुंचने के लिए कोई छलांग मूर्ति से न ले सकें!
मूर्ति-पूजा का सारा आधार इस बात पर है कि आपके मस्तिष्क में और विराट परमात्मा के मस्तिष्क में संबंध हैं। दोनों के संबंध को जोड़ने वाला बीच में एक सेतु चाहिए। संबंधित हैं आप, सिर्फ एक सेतु चाहिए। वह सेतु निर्मित हो सकता है, उसके निर्माण का प्रयोग ही मूर्ति है। और निश्चित ही वह सेतु मूर्त ही होगा, क्योंकि आप अमूर्त से सीधा कोई संबंध स्थापित न कर पाएंगे। आपको अमूर्त का तो कोई पता ही नहीं है। चाहे कोई कितनी ही बात करता हो निराकार परमात्मा की, अमूर्त परमात्मा की, वह बात ही रह जाती है, आपको कुछ ख्याल में नहीं आता।
असल में आपके मस्तिष्क के पास जितने अनुभव हैं वे सभी मूर्त के अनुभव हैं, आकार के अनुभव हैं। निराकार का आपको एक भी अनुभव नहीं है। जिसका कोई भी अनुभव नहीं है उस संबंध में कोई भी शब्द आपको कोई स्मरण न दिला पाएगा। और निराकार की बात आप करते रहेंगे और आकार में जीते रहेंगे। अगर उस निराकार से भी कोई संबंध स्थापित करना हो, तो कोई ऐसी चीज बनानी पड़ेगी जो एक तरफ से आकार वाली हो और दूसरी तरफ से निराकार वाली हो। यही मूर्ति का रहस्य है।
इसे मैं फिर से समझा दूं आपको। कोई ऐसा सेतु बनाना पड़ेगा जो हमारी तरफ आकार वाला हो और परमात्मा की तरफ निराकार हो जाए। हम जहां खड़े हैं वहां उसका एक छोर तो मूर्त हो, और जहां परमात्मा है, दूसरा छोर उसका अमूर्त हो जाए, तो ही सेतु बन सकता है। अगर वह मूर्ति बिल्कुल मूर्ति है तो फिर सेतु नहीं बनेगा, अगर वह मूर्ति बिल्कुल अमूर्त है तो भी सेतु नहीं बनेगा। मूर्ति को दोहरा काम करना पड़ेगा। हम जहां खड़े हैं वहां उसका छोर दिखाई पड़े, और जहां परमात्मा है वहां निराकार में खो जाए।
इसलिए यह मूर्ति-पूजा शब्द बहुत अदभुत है। और जो अर्थ मैं आपसे कहूंगा, वह आपके ख्याल में कभी भी नहीं आया होगा। अगर मैं ऐसा कहूं कि मूर्ति-पूजा शब्द बड़ा गलत है, तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। असल में मूर्ति- पूजा शब्द बिल्कुल ही गलत है। गलत इसलिए है कि जो व्यक्ति पूजा करना जानता है उसके लिए मूर्ति मिट जाती है! जो व्यक्ति पूजा करना जानता है उसके लिए मूर्ति मिट जाती है, और जिसके लिए मूर्ति दिखाई पड़ती है उसने कभी पूजा की नहीं है, उसे पूजा का कोई पता नहीं है। और मूर्ति-पूजा शब्द में हम दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं--एक पूजा का और एक मूर्ति का--ये दोनों एक ही व्यक्ति के अनुभव में कभी नहीं आते। इनमें मूर्ति शब्द तो उन लोगों का है

जिन्होंने कभी पूजा नहीं की; और पूजा उनका है जिन्होंने कभी मूर्ति नहीं देखी।
अगर इसे और दूसरी तरह से कहा जाए तो ऐसा कहा जा सकता है कि पूजा जो है
वह मूर्ति को मिटाने की कला है। वह जो मूर्ति है आकार वाली उसको मिटाने की कला का नाम पूजा है। उसके मूर्त हिस्से को गिराते जाना है, गिराते जाना है! थोड़ी ही देर में वह अमूर्त हो जाती है। थोड़ी ही देर में, इस तरफ जो मूर्त हिस्सा था वहां से शुरुआत होती है पूजा की, और जब पूजा पकड़ लेती है साधक को तो थोड़ी ही देर में वह छोर खो जाता है और अमूर्त प्रकट हो जाता है। मूर्ति-पूजा शब्द सेल्फ कंट्राडिक्टरी है। इसीलिए जो पूजा करता है
वह हैरान होता है कि मूर्ति कहां? और जिसने कभी पूजा नहीं की वह कहता है कि इस पत्थर को रख कर क्या होगा? इस मूर्ति को रख कर क्या होगा? ये दो तरह के लोगों के अनुभव हैं, जिनका कहीं तालमेल नहीं हुआ है। और इसलिए दुनिया में बड़ी तकलीफ हुई।
आप मंदिर के पास से गुजरेंगे तो मूर्ति दिखाई पड़ेगी, क्योंकि पूजा के पास से गुजरना आसान नहीं है। तो आप कहेंगे, इन पत्थर की मूर्तियों से क्या होगा? लेकिन जो उस मंदिर के भीतर कोई एक मीरा अपनी पूजा में लीन हो गई है, उसे वहां कोई भी मूर्ति नहीं बची। पूजा घटित होती है, मूर्ति विदा हो जाती है। मूर्ति सिर्फ प्रारंभ है। जैसे ही पूजा शुरू होती है, मूर्ति खो जाती है।
तो वह जो हमें दिखाई पड़ती है वह इसीलिए दिखाई पड़ती है कि हमें पूजा का कोई पता नहीं है। और दुनिया में जैसे-जैसे पूजा कम होती जाएगी, वैसे-वैसे मूर्तियां बहुत दिखाई पड़ेंगी। और जब बहुत मूर्तियां दिखाई पड़ेंगी और पूजा कम हो जाएगी तो मूर्तियों को हटाना पड़ेगा, क्योंकि पत्थरों को रख कर क्या करिएगा? उनका कोई प्रयोजन नहीं है। साधारणतः लोग सोचते हैं कि जितना पुराना आदमी होता है, जितना आदिम, उतना मूर्तिपूजक होता है। जितना आदमी बुद्धिमान होता चला जाता है, उतना ही मूर्ति को छोड़ता चला जाता है। सच नहीं है यह बात। असल में पूजा का अपना विज्ञान है। वह जितना ही हम उससे अपरिचित होते चले जाते हैं, उतनी ही कठिनाई होती चली जाती है।
इस संबंध में एक बात और आपको कह देना उचित होगा। हमारी यह दृष्टि नितांत ही भ्रांत और गलत है कि आदमी ने सभी दिशाओं में विकास कर लिया है। जब हम कहते हैं विकास, तो उससे ऐसा भ्रम पैदा होता है कि सभी दिशाओं में विकास हो गया होगा, इवोल्यूशन हो गई होगी। आदमी की जिंदगी इतनी बड़ी चीज है कि अगर आप एकाध चीज में विकास कर लेते हैं तो आपको पता ही नहीं चलता कि आप किसी दूसरी चीज में पीछे छूट जाते हैं।
अगर आज विज्ञान पूरी तरह विकसित है, तो धर्म के मामले में हम बहुत पीछे छूट गए हैं। कभी धर्म विकसित होता है, तो विज्ञान के मामले में पीछे छूट जाते हैं। कभी ऐसा होता है कि एक आयाम में हम कुछ जान लेते हैं, दूसरे आयाम को भूल जाते हैं।
अठारह सौ अस्सी में यूरोप में अल्टामीरा की गुफाएं मिलीं। उन गुफाओं में बीस हजार साल पुराने चित्र हैं, और रंग ऐसा है जैसे कल सांझ को चित्रकार ने किया हो। डान मार्सिलानो ने, जिसने वे गुफाएं खोजीं, उस पर सारे यूरोप में बदनामी हुई उसकी। लोगों ने यह शक किया कि ये अभी इसने पुतवा कर रंग तैयार करवा लिए हैं, ये अभी गुफा में रंग पोते गए हैं। और जो भी चित्रकार देखने गया उसी ने कहा कि यह मार्सिलानो की धोखाधड़ी है, इतने ताजे रंग पुराने तो हो ही नहीं सकते।
उन चित्रकारों का कहना भी ठीक ही था, क्योंकि वानगाग के चित्र सौ साल पुराने नहीं हैं, लेकिन सब फीके पड़ गए हैं। और पिकासो ने अपनी जवानी में जो चित्र रंगे थे, उसके बूढ़े होने के साथ वे चित्र भी बूढ़े हो गए हैं। आज सारी दुनिया में किसी भी कोने में, चित्रकार जिन रंगों का प्रयोग करते हैं, उनकी उम्र सौ साल से ज्यादा नहीं है रंगों की। सौ साल में वे फीके हो ही जाने वाले हैं।
लेकिन जब मार्सिलानो की खोज पूरी तरह सिद्ध हुई, और उन गुफाओं का निर्णायक रूप से निष्कर्ष निकल गया कि वे बीस हजार साल पुरानी हैं, तो बड़ी मुश्किल हो गई। क्योंकि जिन लोगों ने वे रंग बनाए होंगे, रंग बनाने के

संबंध में वे हम से बहुत विकसित रहे होंगे। हम आज चांद पर पहुंच सकते हैं, लेकिन सौ साल से ज्यादा चलने वाला रंग बनाने में हम अभी समर्थ नहीं हैं। यह थोड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है। और बीस हजार साल पहले जिन लोगों ने वे रंग बनाए होंगे, वे कुछ कीमिया जानते थे, जो हमें बिल्कुल पता नहीं है। इजिप्त की ममीज हैं कोई दस हजार साल पुरानी! आदमी के शरीर हैं, वे जरा
भी नहीं खराब हुए हैं। वे ऐसे ही रखे हैं जैसे कल रखे गए हों। और आज तक भी राज नहीं खोला जा सका है कि किन रासायनिक द्रव्यों का उपयोग किया गया था जिससे कि लाशें इतनी सुरक्षित दस हजार साल तक रह सकी हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि वे ठीक वैसी ही हैं जैसे कल आदमी मरा हो। किसी तरह का डिटीरिओरेशन, किसी तरह का उनमें ह्नास नहीं हुआ है। पर हम साफ नहीं कर पाए अभी तक कि कौन से द्रव्यों का उपयोग हुआ है।
इजिप्त के पिरामिडों पर जो पत्थर चढ़ाए गए हैं, अभी भी हमारे पास कोई क्रेन नहीं है जिनसे हम उन्हें चढ़ा सकें। आदमी के तो वश की बात ही नहीं है। लेकिन जिन लोगों ने वे चढ़ाए थे पत्थर उनके पास क्रेन रही होगी, इसकी संभावना कम मालूम होती है। तो जरूर उनके पास कोई और टेक्नीक, और तरकीबें रही होंगी जिनसे वे पत्थर चढ़ाए गए हैं, जिनका हमें कोई अंदाज नहीं है।
और जीवन के सत्य बहुआयामी हैं। एक ही काम बहुत तरह से किया जा सकता है। और एक ही काम तक पहुंचने की बहुत सी टेक्नीक और बहुत सी विधियां हो सकती हैं। और फिर जीवन इतना बड़ा है कि जब हम एक दिशा में लग जाते हैं तो हम दूसरी दिशाओं को भूल जाते हैं।
मूर्ति बहुत विकसित लोगों ने पैदा की थी। सोचने जैसा है। क्योंकि मूर्ति का संबंध है, वह जो कास्मिक फोर्स है, हमारे चारों तरफ जो ब्रह्म शक्ति है, उससे संबंधित होने का सेतु है वह। जिन लोगों ने भी मूर्ति विकसित की होगी, उन लोगों ने जीवन के परम रहस्य के प्रति सेतु बनाया था। हम कहते हैं कि हमने बिजली खोज ली है। निश्चित ही हम उन कौमों से ज्यादा सभ्य हैं जो बिजली नहीं खोज सकीं। निश्चित ही हमने रेडियो वेव्स खोज ली हैं और हम क्षणों में एक खबर को दूसरे मुल्क तक पहुंचा पाते हैं। निश्चित ही जो लोग सिर्फ अपनी आवाज पर निर्भर करते हैं और चिल्ला कर फर्लांग दो फर्लांग तक आवाज पहुंचा पाते हैं, उनसे हम ज्यादा विकसित हैं। लेकिन जिन लोगों ने जीवन की परम सत्ता के साथ संबंध जोड़ने का सेतु खोज लिया था, उनके सामने हम बहुत बच्चे हैं। हमारी बिजली, और हमारा रेडियो, और हमारा सब खिलौने हैं। जीवन के परम रहस्य से जुड़ने की जो कला है, उसकी खोज, किसी एक दिशा में जिन लोगों ने बहुत मेहनत की थी, उसका परिणाम थी।
मूर्ति का प्रयोजन हैः हमारी तरफ, मनुष्य की तरफ आकार हो उसमें, और उस आकार में से कहीं एक द्वार खुलता हो जो निराकार में ले जाता हो। जैसे मेरे घर की खिड़की है। घर की खिड़की तो आकार वाली ही होगी। जब घर ही आकार वाला है, तो खिड़की निराकार नहीं हो सकती। लेकिन खिड़की खोल कर जब आकाश में झांकने कोई जाए तो निराकार में प्रवेश हो जाता है। और अगर मैं किसी को कहूं कि मैं अपने घर की खिड़की को खोल कर निराकार के दर्शन कर लेता हूं, और अगर उस आदमी ने कभी खिड़की से झांक कर आकाश को न देखा हो, तो वह कहेगा, कैसे पागलपन की बात है! इतनी छोटी सी खिड़की से निराकार का दर्शन कैसे होता होगा? इतनी छोटी सी खिड़की से जिसका दर्शन होता होगा वह ज्यादा से ज्यादा इतनी खिड़की के बराबर ही हो सकता है, इससे बड़ा कैसे होगा? और उसकी बात तर्कयुक्त है। और अगर उसने खिड़की पर जाकर कभी आकाश नहीं देखा है तो उसको राजी करना कठिन होगा। हम उसे समझा न पाएंगे कि छोटी सी खिड़की भी निराकार आकाश में खुल सकती है। खिड़की का कोई बंधन उस पर नहीं लगता जिस पर वह खुलती है।
मूर्ति का कोई बंधन अमूर्त के ऊपर नहीं है, मूर्ति तो सिर्फ द्वार बन जाती है अमूर्त के लिए। इसलिए जिन लोगों ने भी समझा कि मूर्ति अमूर्त के लिए बाधा है, उन्होंने दुनिया में बड़ी नासमझी पैदा करवाई है। और जिन्होंने यह सोचा कि हम खिड़की को तोड़ कर आकाश को तोड़ देंगे, वे तो फिर निपट ही पागल हैं। मूर्ति को तोड़ कर हम अमूर्त को तोड़ देंगे, वह तो फिर उनके पागलपन का कोई हिसाब ही नहीं है! लेकिन मूर्ति को तोड़ने का ख्याल उठेगा, अगर पूजा की कला और कीमिया का पता न हो।

दूसरी बात, पूजा कुछ ऐसी चीज है, सब्जेक्टिव, आंतरिक, निजी, कि उसकी कोई अभिव्यक्ति और कोई प्रदर्शन नहीं हो सकता। जो भी निजी है इस जगत में और आंतरिक है, उसका कोई प्रदर्शन संभव नहीं है। मेरे हृदय को काट कर देखा जा सकता है, तो प्रेम उसमें नहीं मिलेगा, क्रोध भी नहीं मिलेगा, घृणा भी नहीं मिलेगी, क्षमा भी नहीं मिलेगी, करुणा भी नहीं मिलेगी। फेफड़ा मिलेगा, सिर्फ फुफ्फुस मिलेगा जो हवा को पंप करने का काम करता है। और अगर आपरेशन की टेबल पर रख कर मेरे हृदय की सब जांच-पड़ताल करके डाक्टर यह सर्टिफिकेट दे दें कि इस आदमी ने कभी प्रेम का अनुभव नहीं किया, घृणा का अनुभव नहीं किया, क्योंकि हम आपरेशन की टेबल पर सब जांच-पड़ताल कर लिए हैं, सिवाय हवा को फेंकने के पंप के और कुछ भी नहीं है भीतर, तो क्या मेरे पास कोई उपाय होगा कि मैं सिद्ध कर सकूं कि मैंने प्रेम किया है? या मेरी बात वे टेबल के आस-पास खड़े हुए डाक्टर मानने को राजी होंगे?
कठिन है मामला! डाक्टर इतना ही कह सकते हैं कि आपको भ्रम पैदा हुआ होगा। इतना ही कह सकते हैं कि आपको भ्रम पैदा हुआ होगा। मैं उनसे यह जरूर पूछ सकता हूं कि आपको कभी प्रेम और घृणा का अनुभव हुआ है? अगर वे तर्कयुक्त हैं तो वे कहेंगे कि हमें भी इस तरह के भ्रम हुए हैं--भ्रम, इल्यूजंस हुए हैं। बाकी टेबल पर जो रखा है वह तो वास्तविक तथ्य है। यहां सिर्फ हवा को फेंकने का फुफ्फुस है भीतर, हृदय जैसी कोई भी तो चीज नहीं है। आंख का आपरेशन करके सारा उपाय कर लिया जाए तो भी इसका तो कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने देखे गए होंगे। अगर हम एक आदमी की आंख का पूरा यंत्र भी खोल कर टेबल पर रख लें, तो भी हमें अनंत काल तक खोज करने पर भी इसका पता नहीं चलेगा कि इस आंख ने रात को बंद हालत में कोई सपने भी देखे होंगे। लेकिन हम सबने सपने देखे हैं। उन सपनों का अस्तित्व कहां है? या तो हमने झूठे सपने देखे। लेकिन झूठे सपने कहने से क्या मतलब होता है? झूठे हों तो भी देखे तो हैं ही। वे घटे तो हैं ही। कितने ही असत्य रहे हों, तो भी वह घटना तो हमारे भीतर हुई है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, जब जोर से घबराहट पैदा हो गई है और जाग कर पाया है तो हृदय धड़कता हुआ पाया है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, अगर उसमें रोए हैं और आंख खोल कर देखी है तो आंख में आंसू पाए हैं। कुछ भीतर घटा तो है ही। लेकिन आंख के कण-कण को भी तोड़ कर देख लेने पर इसका कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने जैसी कोई घटना घटती है। सब्जेक्टिव है, आंतरिक है, कोई बाह्य प्रदर्शन संभव नहीं है।
मूर्ति तो दिखाई पड़ती है, उसका बाह्य प्रदर्शन हो सकता है, वह आंख की तरह है, वह फेफड़े की तरह है। पूजा दिखाई नहीं पड़ सकती। वह प्रेम की तरह है, वह भीतर देखे गए स्वप्न की तरह है। इसलिए जब आप मंदिर के पास से जाते हैं तो आपको मूर्ति दिखाई पड़ती है, पूजा तो कभी दिखाई नहीं पड़ती। और इसलिए अगर मीरा को आपने किसी मूर्ति के आगे नाचते देखा है तो सोचा होगा, पागल है। स्वभावतः, क्योंकि पूजा तो दिखाई नहीं पड़ती, इसलिए किसी भ्रम में है, पत्थर के सामने नाचती है, पागल है!
रामकृष्ण को पहली दफा जब दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी की तरह रखा गया, तो दो-चार-आठ दिन में ही बड़ी-बड़ी चर्चाएं कलकत्ते में फैलनी शुरू हो गईं। और कमेटी के पास लोग गए, ट्रस्टियों के पास लोग गए और कहा इस आदमी को अलग कर दो। क्योंकि हमने बड़ी गलत बातें सुनी हैं। हमने सुना है कि वह फूल को पहले सूंघ लेता है, फिर मूर्ति को चढ़ाता है। और हमने यह भी सुना है कि प्रसाद को पहले चख लेता है, और फिर प्रसाद चढ़ाता है। यह तो पूजा भ्रष्ट हो गई!
रामकृष्ण को कमेटी ने बुलाया और कहा कि यह क्या कर रहे हैं आप? हमने सुना है कि फूल आप पहले सूंघ लेते हैं, फिर परमात्मा को चढ़ाते हैं! और भोग आप पहले खुद लगा लेते हैं, फिर परमात्मा को चढ़ाते हैं! रामकृष्ण ने कहा, हां। क्योंकि मैंने मेरी मां को देखा है, वह खाना बनाती थी तो पहले खुद चख लेती थी, फिर मुझे देती थी; क्योंकि वह कहती थी कि पता नहीं तुझे देने योग्य बना भी कि नहीं! तो मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकूंगा। और फूल जब तक मैं न सूंघ लूं तो मैं कैसे चढ़ाऊं? पता नहीं सुगंधित है भी या नहीं!
पर उन्होंने कहा, यह तो सब पूजा का विधान टूट जाएगा! रामकृष्ण ने कहा, कैसी बात करते हैं! पूजा का कोई विधान होता है? प्रेम का कोई विधान होता

है? कोई कांस्टीट्यूशन होता है? कोई विधि होती है? जहां विधि हो जाती है, वहीं पूजा मर जाती है। जहां विधान हो जाता है, वहीं प्रेम मर जाता है। यह तो आंतरिक उदभाव है, अत्यंत निजी है, अत्यंत वैयक्तिक है! और फिर भी उसमें एक यूनिवर्सल, एक सार्वभौम तथ्य है जो पहचाना जा सकता है।
जब एक प्रेमी प्रेम करता है और जब दूसरा प्रेमी प्रेम करता है तो दोनों ही प्रेम करते हैं, फिर भी दो ढंग से करते हैं। उनमें बड़े गहरे फर्क होते हैं और फिर भी गहराई में एक समानता होती है। उन दोनों के प्रेम की अपनी निजता, इंडिविजुएलिटी होती है, और फिर भी दोनों के प्रेम के भीतर कहीं एक ही आत्मा का वास होता है।
पर पूजा तो दिखाई नहीं पड़ेगी, मूर्ति दिखाई पड़ेगी। और हम एक शब्द बनाए हैं, मूर्ति-पूजा, जो बिल्कुल ही--बिल्कुल ही--गलत है। पूजा है मूर्ति को मिटाने का ढंग! अब यह बात बड़ी अजीब लगती है। क्योंकि भक्त पहले मूर्ति बनाता है, और फिर भक्त मूर्ति मिटाता है। मिटाता है बड़े चिन्मय अर्थों में, बनाता है बड़े मृण्मय अर्थों में। बनाता है मिट्टी में और मिटाता है परम सत्ता में।
इसलिए एक और आपको ख्याल दिला दूं। इस देश में हजारों साल तक हमने मूर्तियां बनाईं और विसर्जित कीं। अब भी हम मूर्तियां बनाते और विसर्जित करते हैं। और कई दफे मन को बड़ी हैरानी होती है। न मालूम कितने लोगों ने मुझे आकर कहा होगा--इतनी सुंदर काली की प्रतिमा बनाते हैं और फिर इसको पानी में डाल आते हैं! गणेश को बिठाते हैं, बनाते हैं, सजाते हैं, इतना प्रेम प्रकट करते हैं, और फिर एक दिन उठा कर तालाब में डुबा देते हैं! पागलपन ही हुआ न निपट? पर इस विसर्जन के पीछे एक बड़ा ख्याल है।
असल में पूजा का रहस्य ही यह है कि बनाओ और विसर्जित करो। इधर बनाओ मूर्ति आकार में, और मिटाओ निराकार में। यह तो प्रतीक है सिर्फ। काली को बनाया है, पूजा है, फिर नदी में डाल आए हैं। आज हमें तकलीफ होती है डाल आने में। क्योंकि हमें पता ही नहीं है इस बात का कि बना कर अगर हमने पूजा की होती, तो हमने एक और गहरे अर्थों में पहले ही विसर्जन कर दिया होता। लेकिन वह तो हमने की नहीं है। मूर्ति बना कर रखी, सजाई, बहुत सुंदर बनाई; फिर तब पीड़ा होती है उसको डुबाने जब जाते हैं, क्योंकि बीच में जो असली काम था वह तो हुआ नहीं।
नहीं, अगर बीच में पूजा की घटना घट जाती तो मूर्ति बनी रहती और हमारे हृदय ने उसे विसर्जित कर दिया होता परमात्मा में! और तब जब हम डुबाने जाते नदी में तो वह चली हुई कारतूस की तरह होती; उसके भीतर कुछ भी न था, काम तो उसका हो चुका था। लेकिन आज जब आप मूर्ति को डुबाने जाते हैं तो वह चली हुई कारतूस नहीं होती, भरी हुई कारतूस होती है। कुछ नहीं चला। सिर्फ भर कर रख ली थी कारतूस और डुबाने जा रहे हैं, तो पीड़ा होनी स्वाभाविक है।
जो लोग उसको डुबा आए थे इक्कीस दिन के बाद, उन्होंने इक्कीस दिन में कारतूस चला ली थी। वे इक्कीस दिन में उसको विसर्जित कर चुके थे। पूजा है विसर्जन। मूर्ति का छोर तो हमारी तरफ है, जहां से हम यात्रा शुरू करेंगे। और पूजा वह विधि है, जहां से हम आगे बढ़ेंगे। मूर्ति पीछे छूट जाएगी और शेष पूजा रह जाएगी। मूर्ति पर जो रुक गया, उसने पूजा नहीं जानी; पूजा पर जो चला गया, उसने मूर्ति को पहचाना।
इस मूर्ति के पीछे, इस मूर्ति के प्रयोग में, इस पूजा में क्या मूल आधार-सूत्र हैं?
एक, जिस परम सत्य की आप खोज में चले हैं, या परम शक्ति की खोज में चले हैं, उसमें छलांग लगाने के लिए कोई जंपिंग बोर्ड, कोई जगह, जहां से आप छलांग लगाएंगे! उसके लिए कोई जगह की जरूरत नहीं है, पर आपको तो खड़े होने के लिए जगह की जरूरत पड़ेगी, जहां से आप छलांग लगाएंगे। माना कि सागर में कूदने चले हैं, लेकिन सागर है अनंत, पर आप तो तट के किसी किनारे पर खड़े होकर ही छलांग लेंगे न! छलांग लेने तक तो तट पर ही होंगे न! छलांग लेते ही तट के बाहर हो जाएंगे। लेकिन पीछे लौट कर तट को इतना धन्यवाद तो देंगे न कि तुझसे ही हमने अनंत में छलांग ली थी!
उलटा दिखता है। साकार से निराकार में छलांग हो सकती है?

अगर तर्क में सोचने जाएंगे तो गलत है बात। साकार से निराकार में छलांग कैसे होगी? साकार तो और साकार में ही ले जाएगा। कृष्णमूर्ति से पूछेंगे तो वे कहेंगे, नहीं होगी छलांग। साकार से निराकार में छलांग कैसे होगी? शब्द से निःशब्द में कैसे कूदिएगा?
नहीं पर सब छलांग साकार से निराकार में होती है! क्योंकि गहरे में साकार निराकार के विपरीत नहीं, निराकार का ही एक हिस्सा है और अविभाजित हिस्सा है। विभाजित हमें दिखाई पड़ता है, हमारी देखने की क्षमता सीमित है इसलिए, अन्यथा अविभाज्य है!
जब हम सागर के किनारे खड़े होते हैं और तट को देखते हैं, तो स्वभावतः हमें लगता है कि तट सागर से अलग है। वह जो दूसरा तट है सागर के उस पार, बहुत-बहुत दूर, वह अलग है। तो फिर हमें पता नहीं है। तो थोड़ा हमें सागर में नीचे उतर कर देखना चाहिए। तो हम पाएंगे, यह तट और दूसरा तट नीचे से जुड़े हैं। अगर हम वैज्ञानिक की भाषा में सोचें, ठीक-ठीक भाषा में सोचें, तो एक बहुत मजेदार घटना पता चलेगीः सागर में मिट्टी है पूरी तरह, और मिट्टी में सागर सब जगह छिपा है। जहां गड्ढा खोदिए वहीं पानी निकल आता है। सागर में गड्ढा खोदिए, मिट्टी निकल आएगी। अगर इसको ठीक वैज्ञानिक भाषा में कहें तो इसका मतलब हुआ कि सागर में मिट्टी की मात्रा जरा कम और पानी की मात्रा जरा ज्यादा है। और जमीन में मिट्टी की मात्रा जरा ज्यादा और पानी की मात्रा जरा कम है। फर्क मात्रा का है, डिग्रीज का है। और दोनों अलग जरा भी नहीं हैं, सब संयुक्त है।
जिसको हम साकार कहते हैं, वह भी निराकार से संयुक्त है। जिसको हम निराकार कहते हैं, वह साकार से संयुक्त है। और हम साकार में खड़े हैं। मूर्ति की दृष्टि इस सत्य को स्वीकार करके चलती है कि हम साकार में खड़े हैं, वह हमारी स्थिति है। उसको इनकार करने का उपाय नहीं है। और हम जहां खड़े हैं, वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है।
ध्यान रहे, हमें जहां होना चाहिए वहां से यात्रा शुरू नहीं हो सकती;
हम जहां हैं वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है। बड़ी तार्किक दृष्टियां वहां से शुरू करती हैं यात्रा जहां हमें होना चाहिए। जहां हम हैं ही नहीं वहां से यात्रा शुरू नहीं होगी। जहां हम हैं वहीं से यात्रा शुरू होगी।
हम कहां हैं? हम मूर्त में जी रहे हैं। हमारी सारी अनुभव की संपदा मूर्त की संपदा है। हमने कुछ भी ऐसा नहीं जाना जो मूर्त न हो, आकार वाला न हो। हमने सब आकार में जाना है। प्रेम किया है तो आकार को, और घृणा की है तो आकार को; आसक्त हुए हैं तो आकार में और अनासक्ति साधी है तो आकार से; मित्र बने हैं तो आकार में और शत्रु बनाए हैं तो आकार में। हमने जो भी किया है वह आकार है। मूर्ति इस सत्य को स्वीकार करती है। और इसलिए अगर हमें निराकार की यात्रा पर निकालना है तो हमें निराकार के लिए भी आकार देना पड़ेगा। निश्चित ही ये आकार अपनी-अपनी प्रीति के आकार होंगे। किसी ने महावीर में निराकार को अनुभव किया है, किसी ने कृष्ण में निराकार को अनुभव किया है, किसी ने जीसस में निराकार के दर्शन किए हैं। तो जिसने जीसस में निराकार के दर्शन किए हैं, जिसने जीसस की आंखों में झांका और वह दरवाजा मिल गया उसे जिससे खुला आकाश दिखाई पड़ता है, जिसने जीसस का हाथ पकड़ा और थोड़ी देर में हाथ मिट गया और अनंत का हाथ हाथ में आ गया, जिसने जीसस की वाणी सुनी, और शब्द नहीं, शब्द के जो पार है उसकी प्रतिध्वनि हृदय में गूंज गई, वह अगर जीसस की मूर्ति बना कर पूजा में लग सके तो निराकार में छलांग के लिए उसे इससे ज्यादा आसान कोई और बात न हो सकेगी।
किसी को कृष्ण में दिखाई पड़ा है, किसी को बुद्ध में, किसी को महावीर में। जहां से भी... और सबसे पहले हमें किसी में ही दिखाई पड़ेगा, यह स्मरण रखें। सबसे पहले हमें सीधा, शुद्ध निराकार दिखाई नहीं पड़ जाएगा। शुद्ध निराकार को देखने की हमारी क्षमता और पात्रता नहीं है। निराकार भी बंध कर ही आएगा कहीं, तभी हमें दिखाई पड़ेगा।
अवतार का यही अर्थ हैः निराकार का बंधा हुआ रूप, निराकार की सीमा। उलटा लगता है, पर यही अर्थ है अवतार का। एक झरोखा, जहां से बड़ा आकाश दिखाई पड़ जाता है। एक झलक! निराकार से सीधी मुलाकात नहीं होगी। पहले तो उसे कहीं

आकार में ही उसकी प्रतीति होगी। फिर जिस आकार में उसकी प्रतीति हो जाए, उस आकार से बार-बार उसी प्रतीति में उतरना आसान हो जाएगा।
अब बुद्ध को जिसने देखा है, बुद्ध की प्रतिमा को देखते ही प्रतिमा भूल जाएगी और बुद्ध सजीव हो उठेंगे। जिसने बुद्ध को चाहा है और प्रेम किया है, ज्यादा देर नहीं लगेगी कि यह पत्थर की प्रतिमा विलीन हो जाए और सजीव व्यक्तित्व स्थापित हो जाए। ज्यादा देर नहीं लगेगी।
तो बुद्ध हों, कि महावीर हों, कि कृष्ण हों, कि क्राइस्ट हों, वे सब अपने पीछे व्यवस्थाएं छोड़ गए हैं, जिन व्यवस्थाओं से उनको चाहने वाला व्यक्ति कभी भी उनसे पुनः संबंधित हो जाए। और आकार बहुत बड़ी व्यवस्था है। और मूर्ति को बनाने की जो कला है या विज्ञान है, उसमें बहुत सी बातों का ख्याल और हिसाब रखा गया है। अगर उतनी सारी बातों के हिसाब और ख्याल से मूर्ति बनाई गई हो तो गहरे परिणाम ले आएगी।
जैसे, दो-तीन बातें ख्याल कर लेने जैसी हैं। अगर आपने बुद्ध की प्रतिमाएं देखी हैं तो बुद्ध की प्रतिमाओं को, हजारों प्रतिमाओं को देख कर भी एक बात पक्की अनुभव में आ जाएगी कि प्रतिमाएं व्यक्ति की कम और किसी भाव-दशा की ज्यादा हैं। बुद्ध की हजार प्रतिमाएं रखी हों तो व्यक्ति की कम, किसी भाव-दशा की, स्टेट ऑफ माइंड की प्रतिमाएं हैं। अगर बुद्ध को गौर से देखेंगे, बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करेंगे, तो थोड़ी ही देर में एहसास होना शुरू हो जाएगा एक अदभुत अनुकंपा का, एक महाकरुणा का! जो आपको चारों तरफ से घेरने लगेगी। बुद्ध का उठा हुआ हाथ, या बुद्ध की आधी मुंदी हुई पलकें, बुद्ध के चेहरे का अनुपात, बुद्ध के बैठने का ढंग, बुद्ध के मुड़े हुए पैर, बुद्ध की सारी की सारी जो आनुपातिक व्यवस्था है, वह व्यवस्था किसी गहरे में आपके भीतर करुणा से संबंध जोड़ने का उपाय है।
कोई पूछ रहा था फ्रांस के एक बहुत बड़े चित्रकार सेजां से कि तुम ये चित्र बनाते हो, किसलिए? तो सेजां ने कहा कि इसलिए चित्र बनाता हूं कि मेरे हृदय में जो भाव था, खोजता हूं कि उस भाव के लिए आकार क्या होगा? और आकार बना देता हूं। अगर कोई उस आकार पर ठीक से ध्यान करे तो वह उस भाव को उपलब्ध हो जाएगा जो मेरे भीतर था।
आप जब किसी चित्रकार का चित्र देखते हैं तो सिर्फ आकार देखते हैं, आपको ख्याल भी नहीं होता इस बात का कि तब आप चित्रकार की आत्मा को न समझ पाएंगे। एक कागज पर कोई आड़ी-टेढ़ी लकीरें खींच दें, तो सिर्फ आड़ी-टेढ़ी लकीरें नहीं होती हैं। अगर आप उन पर ध्यान करें तो आपके भीतर भी चित्त उतना ही आड़ा-टेढ़ा हो जाएगा। क्योंकि चित्त का एक नियम है कि वह जो देखता है उसके अनुरूप प्रतिध्वनित होता है, रिजोनेट होता है। अगर उतनी ही लकीरें आड़ी-टेढ़ी न खींची जाएं, एक विशेष अनुपात में खींची जाएं, तो आपका चित्त उनको देख कर उस विशेष अनुपात को उपलब्ध होता है।
एक फूल को देख कर आपको जो खुशी उपलब्ध होती है, आपको पता भी नहीं होगा
कि वह फूल की कम, फूल की पंखुड़ियों के अनुपात की है। फूल के होने का जो ढंग है वह आपके भीतर आपके हृदय को भी फूल के होने का ढंग देता है।
अगर एक सुंदर व्यक्ति के चेहरे को देख कर आपको आकर्षण पैदा होता है तो आपको कुल कारण इतना ही नहीं है कि उस व्यक्ति का चेहरा किसी हिसाब से सुंदर है। गहरे में असली कारण यह है कि उस व्यक्ति का सुंदर चेहरा आपके भीतर सौंदर्य का रिजोनेंस पैदा करता है। आपके भीतर भी कोई चीज उस सुंदर के साथ सुंदर हो उठती है, और कुरूप के साथ कुरूप हो जाती है। कुरूप व्यक्ति के पास बैठ कर आपको जो परेशानी होती है वह क्या परेशानी है? सुंदर व्यक्ति के पास बैठ कर आपको जो सुखद प्रतीति होती है वह कौन सी प्रतीति है? असल में सुंदर अनुपात आपके भीतर भी सौंदर्य की धारा को बहाता है और आपको सुंदर बना जाता है। कुरूप का अर्थ ही केवल इतना है, गैर-आनुपातिक, नॉन-प्रपोर्शनेट, आड़ा-तिरछा, जिससे भीतर कोई सम-ध्वनि पैदा नहीं होती, संगीत पैदा नहीं होता, विशृंखलता पैदा होती है, अराजकता पैदा होती है, भीतर सब कंपित हो जाता है। जर्मनी का एक चित्रकार, नृत्यकार, पीछे आत्महत्या करके मरा। निजिंस्की उसका नाम था। और जब उसने आत्महत्या की और उसके घर की जांच-पड़ताल हुई तो जो लोग भी उसके घर में गए वे दस-पंद्रह मिनट के बाद बाहर आ जाएं और

उन्होंने कहा कि उसके घर में जाना ठीक नहीं है। वहां कोई भी आदमी इतने दिन रुक जाए तो आत्महत्या कर लेगा।
बड़ी अजीब सी बात थी। उस घर के भीतर क्या होगा?
निजिंस्की ने एक-एक दीवार को इस तरह से चित्रित किया था--सिर्फ दो ही रंगों का उपयोग करता था वह अपने आखिरी दो साल में--लाल सुर्ख और काला। बस दो ही रंग का उपयोग करता था। एक-एक दीवार, फर्श, छत, सब पुती हुई थीं--काला और लाल। दो साल वह यही काम कर रहा था उधर भीतर। पागल हो गया था, आश्चर्य नहीं है! और अगर आत्महत्या कर ली तो आश्चर्य नहीं है।
जिन लोगों ने उसके मकान को देखा, बाद में उन सभी लोगों ने कहा कि उस मकान के भीतर दो साल कोई भी रह जाए तो पागल होकर रहेगा। और आत्महत्या, दो साल तक भी बच जाए करने से, यह भी काफी मालूम पड़ता है। निजिंस्की अदभुत हिम्मत का आदमी रहा होगा। सारा का सारा वातावरण पूरा का पूरा इतना अराजक कि जिसका कोई हिसाब नहीं।
आप जो भी देखते हैं उसकी प्रतिध्वनि भीतर होती है और आप किसी गहरे अर्थों में उसी जैसे हो जाते हैं। बुद्ध की सारी मूर्तियां करुणा के आस-पास निर्मित हैं, क्योंकि करुणा बुद्ध का आंतरिक संदेश है, कम्पैशन! और करुणा आ जाए, तो बुद्ध कहते हैं, सब आ गया।
करुणा का क्या अर्थ है? प्रेम नहीं है करुणा का अर्थ। प्रेम तो हम सबको आता है और चला जाता है। करुणा ऐसे प्रेम का नाम है जो आती तो है लेकिन फिर जाती नहीं। और प्रेम में तो दूसरे से कुछ न कुछ पाने की गहरे में कुछ न कुछ सूक्ष्म आकांक्षा होती है। करुणा में इस बात का बोध होता है कि किसी के पास कुछ देने को ही नहीं है तो कोई देगा कैसे? प्रत्येक इतना दीन है कि देने को तो किसी के पास कुछ भी नहीं है, इसीलिए करुणा है। करुणा में कोई मांग नहीं है, क्योंकि किससे मांगें, किसी के पास कुछ भी नहीं है। दान का कोई ख्याल नहीं है, लेकिन इतनी महाकरुणा में अपने आप हृदय के द्वार खुल जाते हैं और कुछ बंटना शुरू हो जाता है।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था कि तुम ध्यान करो, पूजा करो, प्रार्थना करो; लेकिन स्मरण रखना, पूजा और प्रार्थना और ध्यान के बाद तुम्हें जो शांति मिले, तत्क्षण उसे बांट देना, एक क्षण भी अपने पास मत रखना। तुम्हें मैं अधार्मिक कहूंगा, अगर तुमने एक क्षण भी अपने पास रखा। जब तुम्हें आनंद का अनुभव हो ध्यान के बाद, तत्क्षण प्रार्थना करना कि हे प्रभु, उन सबको मिल जाए जिन्हें आवश्यकता है। खोल देना अपना द्वार हृदय का और बह जाने देना जहां-जहां गड्ढे हैं वहां-वहां! एक क्षण भी रोकना मत, नहीं तो मैं तुम्हें अधार्मिक कहूंगा।
यह जो महाकरुणा है, इसको बुद्ध ने महामुक्ति कहा है। तो बुद्ध की सारी प्रतिमाएं इस अनुपात में निर्मित की गई हैं कि उनकी पूजा करने वाला व्यक्ति उनके सान्निध्य में बैठ कर उस रिजोनेंस को, प्रतिध्वनि को उपलब्ध हो जाए जहां वह करुणा का प्रवाह अनुभव करने लगे।
अब अगर बुद्ध की प्रतिमा के पास बैठ कर पूजा करेंगे तो कैसे करेंगे?
मैं उदाहरण एक ले रहा हूं, ताकि आपको और भी ख्याल आ सके।
अगर बुद्ध की प्रतिमा पर पूजा करनी है, तो पूजा का जो केंद्र है वह बुद्ध का हृदय बनाना पड़ेगा। जिसको यह पता नहीं है, वह बुद्ध की मूर्ति से कभी परिचित नहीं हो पाएगा। क्योंकि बुद्ध की मूर्ति का जो निहित ध्येय है वह आपके भीतर महाकरुणा का जन्म है। और करुणा का जो केंद्र है वह हृदय है। इसलिए बुद्ध की मूर्ति पर ध्यान करते वक्त हृदय पर, बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा। एक तरफ बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा और दूसरी तरफ अपने हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा। दोनों के हृदय एक साथ धड़क रहे हैं, इसकी प्रतीति में गहरा उतरना पड़ेगा। और एक क्षण आएगा कि अपना ही हृदय धड़कता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा, बल्कि अपने ही हृदय से जैसे एक धागा जुड़ा हो, और बुद्ध की प्रतिमा के भीतर भी हृदय धड़कता हो। यह सिर्फ मालूम ही नहीं पड़ेगा, बुद्ध की प्रतिमा पर ठीक हृदय की धड़कन खुली आंख से भी अनुभव होने लगेगी। और जब ऐसी धड़कन बुद्ध की प्रतिमा पर अनुभव हो, तो समझना कि बुद्ध में प्राण की प्रतिष्ठा हुई। नहीं तो प्राण की प्रतिष्ठा नहीं है तो पूजा का कोई अर्थ नहीं है। यह नियम है कि जब बुद्ध का हृदय--पत्थर की मूर्ति का

हृदय--जब आपको बिल्कुल धड़कता हुआ मालूम पड़ने लगे! और यह बिल्कुल मालूम पड़ सकता है, पड़ता है। अगर आपके हृदय की धड़कन पर ठीक ध्यान किया गया और बुद्ध के हृदय पर ध्यान किया गया तो दोनों में संयोग स्थापित हो जाता है। और तब आपका ही हृदय बुद्ध की प्रतिमा में भी धड़कता है! जैसे कि दर्पण में आपकी ही प्रतिछवि दिखाई पड़ती हो!
दर्पण में आपने ख्याल किया कभी? दर्पण में आपकी जो तस्वीर दिखाई पड़ती
है उसका हृदय धड़कता है या नहीं धड़कता है? पर दर्पण में धड़कता है तो हम कहते हैं, ठीक है, दर्पण तो दर्पण है।
मूर्ति एक गहरे अर्थों में दर्पण है, एक आध्यात्मिक अर्थों में दर्पण है। और ठीक ऐसे ही मूर्ति में हृदय धड़कता हुआ मालूम पड़ने लगेगा। और जब हृदय धड़कता हुआ मालूम पड़े तब पूजा की शुरुआत होगी। जब तक मूर्ति में हृदय न धड़के तब तक पूजा की शुरुआत नहीं हो सकती, क्योंकि मूर्ति तब तक पत्थर है, तब तक मूर्ति नहीं बनी। यह भी ख्याल में ले लें कि तब तक मूर्ति पत्थर है, तब तक मूर्ति नहीं बनी, जब तक कि जीवंत न हो गई हो, जब तक कि उसमें प्राण-प्रतिष्ठा न हो गई हो।
अब अगर बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो हृदय पर करना पड़ेगा। अगर महावीर की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो दूसरा केंद्र है। अगर क्राइस्ट की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो तीसरा केंद्र है। अगर कृष्ण की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो चौथा केंद्र है। और दुनिया में जितनी प्रतिमाएं हैं, प्रत्येक प्रतिमा किसी पृथक केंद्र पर निर्मित है।
और बड़ी हैरानी की बात यह है कि उन प्रतिमाओं को हजारों साल तक एक समाज पूजता रहेगा और उसे कुछ पता ही नहीं होगा कि वह किस केंद्र की प्रतिमा को पूज रहा है! और अगर केंद्र का पता नहीं है तो आपका प्रतिमा से कभी कोई संबंध नहीं होगा। आप फूल रख कर आ जाएंगे, धूप जला आएंगे, हाथ जोड़ कर घर लौट आएंगे, आप पत्थर के सामने से ही लौट आए। क्योंकि ध्यान रहे, पत्थर को प्रतिमा बनाना पड़ता है! वह मूर्तिकार नहीं बनाएगा, वह आपको बनाना पड़ेगा! मूर्तिकार तो सिर्फ आकार देगा पत्थर को। पर उसको प्राण कौन देगा? उसको तो प्राण पूजा करने वाला देगा!
मूर्ति को प्राण दिए बिना वह पत्थर है। और प्राण दिए जाने के बाद पूजा
का प्रारंभ होता है। पूजा क्या है? अगर आप किसी मूर्ति को प्राण देने में समर्थ हो जाएं तो फिर पूजा क्या? फिर पूजा क्या होगी?
जैसे ही मूर्ति को प्राण दिया जा सके वैसे ही वह जीवंत व्यक्तित्व हो गया। इसको थोड़ा समझना जरूरी होगा। जैसे ही कोई चीज जीवंत हो जाए, उसमें आकार और निराकार दोनों समाविष्ट हो जाते हैं। क्योंकि देह तो आकार है और जीवन निराकार है। जीवन का कोई आकार नहीं है, देह का आकार है।
इसलिए मेरा हाथ कोई काट दे तो मेरा जीवन नहीं कटता। और अगर मेरी आंखें बंद हों और मेरे पूरे शरीर से मेरे संबंध तोड़ दिए गए हों और मेरा हाथ काट दिया जाए, तो मुझे पता भी नहीं चलेगा। ऐसा किया जा सकता है कि मेरे मस्तिष्क को पूरा का पूरा निकाल लिया जाए बाहर, और उसे बिल्कुल पता न चले कि शरीर अलग हो गया। क्योंकि जीवन का कोई आकार नहीं है, जीवन निराकार है। जहां भी जीवन है वहां आकार और निराकार का मिलन है। पदार्थ का आकार है, चेतना का कोई आकार नहीं है।
तो जब तक मूर्ति पत्थर है, तब तक आकार है। और जैसे ही उसको प्राण दिया, प्रतिष्ठा हुई, और भक्त ने अपने हृदय को मूर्ति में धड़काया। ध्यान रहे, जो भक्त अपने हृदय को मूर्ति में न डाल सकेगा वह भक्त परमात्मा के हृदय को अपने में डालने की पात्रता न पा सकेगा। पात्रता ही यही है। जैसे ही भक्त अपने हृदय को मूर्ति में डाल पाता है और मूर्ति जीवंत हो जाती है, वैसे ही मूर्ति दोनों बातें हो गई--एक तरफ आकार रहा और दूसरी तरफ से निराकार का द्वार खुल गया! अब उस द्वार से यात्रा करने का नाम पूजा है।
पूजा के संबंध में पहली बात तो यह कि वह है मूर्त से अमूर्त की यात्रा। उसके एक-एक कदम हैं। बुनियादी आधारभूत कदम जो है पूजा का वह यह है कि व्यक्ति सेल्फ-सेंट्रिक है, स्वकेंद्रित है। हमारे जीने की सारी व्यवस्था ऐसी है कि जैसे मैं सारी दुनिया का केंद्र हूं। ऐसे हम जीते हैं सब। चांद-तारे मेरे लिए घूम रहे हैं, पक्षी मेरे लिए उड़ रहे हैं, सूरज मेरे

लिए निकलता है। इस सारे जगत का केंद्र हूं मैं। साधारण व्यक्ति, जिसने पूजा को नहीं जाना, स्वकेंद्रित होकर जीता है। कुछ भी हो, मैं केंद्र पर हूं, बाकी सारा विश्व मेरी परिधि है। यह हमारी दृष्टि है।
पूजा में इस दृष्टि के विपरीत चलना पड़ेगा। केंद्र कहीं और है और मैं परिधि हूं। पूजा का सार सूत्र हैः केंद्र कहीं और है, मैं परिधि हूं। अधार्मिक आदमी का सार सूत्र हैः मैं केंद्र हूं और सब जगह परिधि है। अगर परमात्मा भी कहीं होगा तो वह परिधि पर है, केंद्र मैं हूं। वह भी मेरे लिए है--कि जब मैं बीमार हो जाऊं तो मेरी बीमारी ठीक कर दे, कि मेरे लड़के को नौकरी न मिले तो नौकरी लगवा दे, कि किसी मुसीबत में पड़ जाऊं तो मेरा सहारा बन जाए--वह भी मेरे लिए है। ध्यान रहे, जिस आदमी ने इस भांति सोचा हो कि परमात्मा मेरे लिए है, उसकी आस्तिकता नास्तिकता से ज्यादा बदतर है। उसे ख्याल ही नहीं वह क्या कह रहा है!
पूजा का अर्थ है, प्रार्थना का अर्थ है, धार्मिक भाव का अर्थ है कि अब
तू केंद्र हुआ और मैं परिधि हूं। जैसे ही मूर्ति जीवंत हो गई और उसका हृदय धड़कने लगा, जैसे ही यह प्रतीत हुआ कि मूर्ति में प्राण आ गए, निराकार प्रवेश कर गया, वैसे ही जो दूसरा बुनियादी सूत्र है वह यह है कि अब मैं परिधि पर हूं, तू केंद्र पर है। अब मैं तेरे लिए नाचूंगा, तेरे लिए गाऊंगा, तेरे लिए जीऊंगा, तेरे लिए श्वास लूंगा। अब जो कुछ भी होगा तेरे लिए होगा। रामकृष्ण के पास एक बहुत बड़ा ज्ञानी ठहरा हुआ था, तोतापुरी। तोतापुरी
ने रामकृष्ण से कहा कि तू कब तक मूर्ति में उलझा रहेगा? अब निराकार की यात्रा पर निकलो! तो रामकृष्ण ने कहा कि जरूर निकलूंगा। रामकृष्ण सबसे सीखने को सदा तैयार थे, जो भी सिखाने आ जाता था उससे सीखने को तैयार थे। रामकृष्ण ने कहा, जरूर निकलूंगा, लेकिन जरा रुको, मैं जरा मां को भीतर जाकर पूछ आऊं। तोतापुरी ने कहा, कौन मां? रामकृष्ण ने कहा, काली है न जो, उनसे मैं जरा पूछ आऊं। उस तोतापुरी ने कहा, यही तो मैं तुम्हें रोकने को कह रहा हूं कि पत्थर में कब तक उलझे रहोगे? और तुम वहीं पूछने जा रहे हो? तो रामकृष्ण ने कहा, बिना पूछे तो कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिस दिन पूजा शुरू हुई थी उस दिन मैं परिधि पर हो गया हूं और उनको केंद्र पर रख लिया है। अब तो बिना पूछे कोई उपाय नहीं है, अब तो मैं हूं ही नहीं। अब तो मैं जो भी कर सकता हूं वह उन्हीं के लिए है। उनकी आज्ञा हो गई तो ठीक और उनकी आज्ञा नहीं हुई तो ठीक। उनकी बिना आज्ञा के मोक्ष भी अब व्यर्थ है और उनकी आज्ञा के साथ नरक के लिए भी अब मैं राजी हूं। क्योंकि जिस दिन पूजा की थी उस दिन इसी शर्त पर तो पूजा शुरू हुई थी कि मैं परिधि हो गया, तुम केंद्र हो। तो उनसे बिना पूछे तो अब कुछ भी नहीं हो सकता।
तोतापुरी के तो समझ के बाहर पड़ी बात। मूर्ति-पूजा छोड़ने के लिए मूर्ति से पूछने जाएंगे रामकृष्ण, तो कैसे छूटेगी मूर्ति-पूजा? जिसको छोड़ना है उससे पूछना क्या है? और छोड़ने के लिए पूछना पड़ता है? पर रामकृष्ण तब तक भीतर चले गए हैं, तोतापुरी पीछे-पीछे जाकर खड़े हो गए हैं। देखा कि रामकृष्ण की आंखों से तरल आंसुओं की धार बहती है। वे रो रहे हैं और बार-बार कह रहे हैं कि नहीं, आज्ञा दे दे। फिर रोते हैं, कहते हैं, नहीं, आज्ञा दे दे। तोतापुरी राह देखते होंगे, आज्ञा दे दे। फिर प्रसन्न हो गए हैं, फिर नाचने लगे हैं।
तोतापुरी ने कहा कि क्या हुआ?
कहा, आज्ञा मिल गई है, अब राजी हूं! अब कोई सवाल नहीं है।
केंद्र पर रखने का अर्थ है, अब से मेरा जीवन समर्पित जीवन होगा। पूजा
का अर्थ है, समर्पित जीवन। पूजा का अर्थ है, अब मैं ऐसे जीऊंगा जैसे परमात्मा के लिए जी रहा हूं। उठूंगा-बैठूंगा उसके लिए, खाऊंगा-पीऊंगा उसके लिए, बोलूंगा-चुप होऊंगा उसके लिए।
केंद्र पर जैसे ही किसी ने निराकार को रखा, वैसे ही एक अदभुत प्रवाह शुरू होता है, एक फैलाव शुरू होता है। हम अपने ही हाथ से सिकुड़ कर बैठे हैं। बीज टूट जाता है और वृक्ष बनने लगता है। हम सिकुड़ कर बैठे हैं, सब तरफ से दबा कर बैठे हैं--मैं--वह टूट जाता है। तो फिर बड़े अंकुर निकलते हैं और फैलने शुरू हो जाते हैं। फिर वे इतने अंकुर फैल सकते हैं कि इस पूरे विराट को घेर लें। और बड़े आश्चर्य की बात तो यही है--और धर्म ऐसे बहुत से

आश्चर्यों से भरा हुआ है--कि जो व्यक्ति अपने को बचाता है वह मिटा लेता है और जो अपने को खो देता है पूजा में वह अपने को पा लेता है।
यह तो पूजा का आधार हैः परमात्मा को रखना है केंद्र पर, स्वयं को रख देना है परिधि पर!
बहुत कठिन है। हमें ख्याल ही नहीं होता कि यह कैसे हो सकेगा? हम पैदा होते से ही अपने को केंद्र मान कर जीते हैं।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि तुम जाकर कुछ दिन मरघट में रह आओ। तीन महीने तो अनिवार्य था। कोई भी भिक्षु संन्यास ले, तो उसे तीन महीने मरघट में रहना पड़े। भिक्षु कहते भी कि हम आपके पास सीखने आए हैं, मरघट से क्या होगा? बुद्ध कहते, तुम मरघट में रह आओ, तीन महीने बाद तुम आ जाना। उससे तुम्हारे मैं का केंद्र थोड़ा शिथिल हो जाए तो आसानी होगी। तीन महीने, रोज सुबह-सांझ कोई आएगा, कोई मरेगा, कोई जलेगा, और तुम देखते रहोगे... देखते रहोगे... । कभी तो तीन महीने में एकाध दिन ख्याल आएगा कि तुम्हारे लिए यह जगत नहीं चल रहा है। तुम नहीं थे, तब भी चल रहा था। यह आदमी जो तुम्हारे सामने जल रहा है, यह भी अभी थोड़ी देर पहले इसी ख्याल में था कि जगत मेरे लिए चल रहा है। जगत को पता भी नहीं चला, यह आदमी समाप्त हो गया है! सागर को खबर भी नहीं हुई और लहर मिट गई! तुम देखो और देखते रहना। किसी दिन, तुम्हें जिस दिन ख्याल आ जाए कि यह जगत तुम्हारे लिए नहीं चल रहा है, तुम आ जाना! उसी दिन आराधना शुरू हो सकेगी, उसी दिन साधना शुरू हो सकेगी। जब तक तुम केंद्र पर हो तब तक पूजा का, प्रार्थना का, ध्यान का कोई भी उपाय नहीं है। भ्रांति है लेकिन, बहुत मजबूत है। पूजा शुरू होती है इस भ्रांति के विसर्जन से। इसलिए पूजा में मैं शब्द गिर जाता है और तू शब्द महत्वपूर्ण हो जाता है। तू ही है, वह महत्वपूर्ण हो जाता है; और मैं शब्द गिर जाता है। ध्यान रहे, पहले भक्त मूर्ति को मिटाता है और अमूर्त का द्वार खोलता है। फिर अपने को मिटाता है और पूजा में प्रवेश होता है। पहले भक्त मूर्ति को मिटाता है, अमूर्त का द्वार खोलता है। और जैसे ही अमूर्त का द्वार खुलता है, अपने को मिटाता है। और मूर्ति के भीतर से अमूर्त का द्वार खोल लेने पर स्वयं को मिटाना सरल हो जाता है। सरल इसलिए हो जाता है कि जैसे ही यह दिखाई पड़ता है कि यह पत्थर की मूर्ति भी अमूर्त के लिए द्वार बन गई और निराकार को दिखाने लगी, तो मेरा यह शरीर भी तो निराकार के लिए द्वार बन सकता है! लेकिन मूर्ति को भूला तो निराकार दिखाई पड़ा, अब स्वयं को भूलूं तो और भी गहरी छलांग लग सकती है।
ध्यान रहे, दो आकारों में तो भेद होता है, लेकिन दो निराकारों में कोई भेद नहीं होता। सच तो यह है कि दो का शब्द आकार के लिए ही प्रयोग करना ठीक है, निराकार के लिए दो कहने का कोई अर्थ नहीं, निराकार एक ही होता है। जब मूर्ति निराकार हो गई और भक्त भी निराकार हो गया तो दो निराकार नहीं बचते, एक ही निराकार हो जाता है। निराकार में तो दो और तीन का सवाल नहीं है, संख्या का उपाय नहीं है।
यह तो आधार है, लेकिन आधार को व्यवहृत करने की, उसको प्रयोग में लाने
की अनेक विधियां हैं। दो-चार सूत्र समझ लेने जैसे हैं। जैसे सूफियों ने पूजा के लिए नृत्य को गहरा मूल्य दिया। भक्तों ने भी दिया। मीरा ने, चैतन्य ने बहुत-बहुत मूल्य दिया। नृत्य की कुछ खूबियां हैं, जिनके कारण अनेक-अनेक भक्ति की साधनाओं ने नृत्य को चुना। नृत्य की पहली खूबी तो यह है कि नृत्य करते समय अधिकतम यह प्रतीति होती है कि आप शरीर नहीं हो। नृत्य की जो गति है, जो मूवमेंट है, उस तीव्र गति में, थोड़ी ही देर में आप और आपके शरीर का साथ छूट जाता है।
असल में आपकी चेतना और आपके शरीर का साथ, एक एडजेस्टमेंट है, एक संयोजित व्यवस्था है। आप जो काम दिन-रात करते रहते हो सुबह से सांझ तक, उस काम करने में वह संयोग कभी नहीं टूटता, वह व्यवस्थित है।
गुरजिएफ कहा करता था, जैसे किसी डिब्बे में बहुत सी चीजें रखी हों और कोई जोर से डिब्बे को हिला दे, तो उसके भीतर का सब अरेंजमेंट, जो भीतर की सारी व्यवस्था है, वह अस्तव्यस्त हो जाती है। कोई पत्थर का टुकड़ा नीचे था वह ऊपर आ जाता है, कोई ऊपर था वह बीच में चला जाता है, कोई बीच में था वह किनारे चला जाता है। उस डिब्बे के भीतर चीजों का जो समायोजन था वह सब

अस्तव्यस्त हो जाता है। और अगर उस डिब्बे के पत्थरों को एक ही तरह से रहने की आदत से कोई अहंकार पैदा हो गया--हो कि हम हैं--वह टूट जाता है। उनको पता चलता है कि मैं नहीं हूं, यह तो सब टूट गया! यह तो सिर्फ व्यवस्था थी, यह एक अरेंजमेंट था।
तो सूफियों ने, चैतन्य ने, मीरा ने नृत्य का गहरा उपयोग किया। और दरवेश नृत्य तो बहुत ही गहरे हैं। इतने जोर से गति देना है शरीर को, कि फकीर की जितनी सामर्थ्य हो, जितनी ऊर्जा हो, जितनी शक्ति हो, पूरी दांव पर लगा देनी है, कि शरीर का रोआं-रोआं नाचने और कांपने लगे। उस स्थिति में, जो हमारी चेतना और शरीर के बीच में संबंध स्थापित हो गया है, वह टूट जाता है। अचानक, सडनली पता चलता है कि शरीर अलग है और मैं अलग हूं। पूजा के लिए इसका उपयोग कीमती हो जाता है।
ईसाइयों के दो संप्रदाय हुए हैं। एक संप्रदाय अब भी काफी बड़ी प्रभावशाली शक्ति रखता है, क्वेकर्स! एक दूसरा संप्रदाय था शेकर्स। ये नाम सूचक हैं। शेकर्स उस संप्रदाय का नाम था जो शरीर को शेक, इतने जोर से शरीर को कंपाते थे पूजा के वक्त, कि उनका नाम शेकर्स पड़ गया। शरीर को इतने जोर से कंपाना था कि रोआं-रोआं कंपन बन जाए, ट्रेंबलिंग हो जाए--घंटों। पसीना-पसीना हो जाएगा साधक। मूर्ति के सामने खड़ा है और सारे शरीर को कंपन दे रहा है। कंपन इतना तीव्र है कि थोड़ी ही देर में सारे शरीर से पसीने की धाराएं बहने लगेंगी और वह घटना घटेगी जहां शरीर से चेतना अलग मालूम पड़ेगी। और अलग मालूम पड़े तो पूजा पर चली आ सकती है। क्वेकर्स नाम भी इसीलिए पड़ा। क्वेकिंग का अर्थ भी वही होता है। तो भूकंप को कहते हैं न आप अर्थक्वेक। इतने जोर से शरीर में भूकंप पैदा करना है कि शरीर के भीतर का जो आयोजन है वह टूट जाए।
तो नृत्य का उपयोग किया गया पूजा में अनेक-अनेक प्रकारों से। और नृत्य ने भारी सहायता पहुंचाई स्वयं के भीतर निराकार को अलग कर लेने के लिए। संगीत, भजन और कीर्तन का उपयोग हुआ है। ध्वनिशास्त्र का कुछ थोड़ा सा रूप ख्याल में ले लेना जरूरी है।
फिजिक्स आज, भौतिकशास्त्र जैसा मानता है, उसके हिसाब से, जीवन की जो आखिरी इकाई है वह विद्युत है। लेकिन भारतीय और पूर्वीय मनीषी जैसा मानते रहे हैं वह यह कि पदार्थ की जो अंतिम इकाई है वह ध्वनि है, विद्युत नहीं! आधुनिक विज्ञान मानता है कि विद्युत पदार्थ की अंतिम रचना का आखिरी हिस्सा है जिससे सारी चीजें बनी हैं--विद्युत, इलेक्ट्रांस। पूर्वीय मनीषी मानते हैं कि ध्वनि समस्त पदार्थ का आधारभूत हिस्सा है।
दोनों में से कुछ भी सच हो, लेकिन दोनों के बीच एक गहरा संबंध है, वह ख्याल में ले लेना चाहिए। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि ध्वनि विद्युत का एक रूप है और भारतीय मनीषी कहते हैं कि विद्युत ध्वनि का एक रूप है; ये दोनों बातें कितनी ही पृथक मालूम पड़ती हों, लेकिन इस दूसरी सच्चाई की घोषणा से दोनों बातों में पृथकता न के बराबर रह जाती है। वैज्ञानिक कहते हैं, ध्वनि विद्युत का एक रूप है--ए मोड ऑफ इलेक्ट्रिसिटी। भारतीय मनीषी कहते हैं, विद्युत ध्वनि का रूप है--ए मोड ऑफ साउंड। संभावना यह हो सकती है कि ये दोनों ही बातें सच हों, एक ही साथ सच हों। और संभावना यह है कि ये दोनों ही बातें सच होंगी और आज नहीं कल हम उस असली तत्व को खोज लेंगे, जिसका एक रूप ध्वनि है और दूसरा रूप विद्युत है, जो इन दोनों के बीच का लिंक है।
शायद अध्यात्म की तरफ से खोज करने के कारण भारतीय मनीषी ध्वनि पर पहुंचा, और पदार्थ की खोज करने के कारण पश्चिमी मनीषी विद्युत पर पहुंचा। ध्यान रहे, स्वयं के भीतर खोज की है भारत के मनीषी ने, पदार्थ के भीतर नहीं। तो स्वयं के भीतर आपका जो स्वयं का बोध है, वह ध्वनि का आखिरी हिस्सा है। जब तक आपको अपना बोध रहेगा, आपके भीतर ध्वनि का बोध रहेगा। जितने आप भीतर गहरे उतरेंगे उतनी ध्वनि सूक्ष्म होती जाएगी... सूक्ष्म होती जाएगी... सूक्ष्म होती जाएगी। एक घड़ी आखिरी जब बिल्कुल शून्य रह जाएगा, तो उस शून्य की भी ध्वनि है--साउंडलेस साउंड। उसको भारतीय मनीषी अनाहत नाद कहते रहे हैं। वह जो नाद है, जब कि ऐसा मालूम पड़ता है जैसे शून्य आ गया, लेकिन शून्य का भी अपना सन्नाटा है, उसकी भी अपनी ध्वनि है। उस शून्य के सन्नाटे की

आखिरी पकड़ है; मनुष्य की चेतना में खोज करने की वजह से जो आखिरी चीज मिलती है निराकार में उतरने के पहले वह ध्वनि है। इसलिए उनका कहना बिल्कुल ठीक ही था कि अंतिम तत्व ध्वनि होनी चाहिए।
वैज्ञानिक पदार्थ की खोज करके जिस आखिरी तत्व पर पहुंचते हैं, जिसके आगे सब खो जाता है, निराकार आ जाता है, वह विद्युत कण है। सोचने जैसा यह है कि पदार्थ का जो आखिरी कण है, क्या चेतना का आखिरी कण उससे पहले होगा या पीछे और आगे होगा?
निश्चित ही चेतना पदार्थ से ज्यादा गहन वस्तु है। निश्चित ही चेतना पदार्थ से ज्यादा रहस्यमय वस्तु है। और संभावना यही है कि चेतना का जो अंतिम कण हो वह पदार्थ के अंतिम कण से आगे हो। इसलिए भारतीय मनीषी ध्वनि को विद्युत कण से आगे रखने की दृष्टि प्रस्तावित किए हैं।
जो भी हो। संगीत, कीर्तन, भजन, प्रार्थना, मंत्र, ध्वनि के उपयोग हैं।
और प्रत्येक ध्वनि के साथ आपके भीतर एक स्थिति पैदा होती है। ऐसी कोई भी ध्वनि नहीं है जो आपके भीतर कोई स्थिति पैदा न कर जाती हो। सब ध्वनियां आपके भीतर स्थिति पैदा करती हैं। और अब तो साउंड इलेक्ट्रानिक्स पर काम करने वाले वैज्ञानिकों का ख्याल है कि अब तक हम इनकार किए वह ठीक न था। अब तो बात जाहिर और साफ हो गई है कि जिस पौधे में फूल महीने भर बाद आने वाले हैं, उसके पास अगर विशेष प्रकार का वाद्य बजाया जाए तो फूल महीने भर पहले आ जाते हैं; जो गाय सेर भर दूध देती है, उसके पास विशेष ध्वनि बजाई जाए तो उसका दूध बिल्कुल खो जाता है, या दुगुना भी हो जाता है। असल में ध्वनि का आघात है आपकी चेतना पर। ध्वनि आघात करती है आपके भीतर जाकर। हम तलवार से आपकी गर्दन काट सकते हैं, लेकिन ध्वनि की तलवार से आपके मन को काट सकते हैं। तलवार आपके मन को न काट पाएगी, लेकिन ध्वनि की धार ज्यादा तीक्ष्ण है और मन को भी काट जाएगी।
तो ऐसी ध्वनि की तीव्र धारों के प्रयोग किए गए, जिनसे मन कट जाए, और साधक मिट जाए, भक्त मिट जाए और अनंत की यात्रा पर निकल जाए। सभी धर्मों ने विशेष ध्वनियों के प्रयोग किए हैं। और विशेष ध्वनियों पर हजारों वर्ष की साधना से बड़े परिष्कार किए हैं।
अभी एक साधक मेरे पास जापान से था। तो वह जिस संप्रदाय में दो वर्ष साधना करके आ रहा था, वह है सोटो झेन। उसमें साधक को मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ, इस तरह की आवाज करवाई जाती है--चौबीस घंटे। साधक खाना खा लेता है, विश्राम कर लेता है, बस इतना छोड़ कर, तीन बजे रात उठ आता है, स्नान करके बैठ जाता है, मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ बोलता रहता है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, आप कल्पना नहीं कर सकते कि क्या होगा, क्योंकि कभी इतना एक ध्वनि का प्रयोग नहीं किया है।
तीन दिन के बाद उस साधक के भीतर विचार क्षीण हो जाते हैं। मूंऽऽ और मूंऽऽ की ही आवाज भीतर गूंजने लगती है। एक तूफान भीतर पैदा हो जाता है-- मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ! सारे शब्द गिर जाते हैं। मूंऽऽ की ध्वनि तलवार बन जाती है तीन दिन में और सब विचारों को काट कर गिरा देती है।
सात दिन पूरे होते-होते उस साधक को मूंऽऽ की आवाज करनी नहीं पड़ती, वह चाहे बैठा हो, चाहे चल रहा हो, मूंऽऽ की आवाज चलने लगती है। वह उसके रोएं- रोएं में व्याप्त हो जाती है। खाना खाना मुश्किल हो जाता है उसको, क्योंकि जब वह खाना खा रहा है तब भी मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ की आवाज चल रही है। नींद सात दिन के बाद कठिन हो जाती है, क्योंकि वह सो रहा है लेकिन ओंठ उसके मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ... । नींद में पकड़ी है आवाज, वह भीतर घुसती जा रही है। इक्कीस दिन पूरे होते-होते वह साधक शेरों की तरह दहाड़ने लगता है-- मूंऽऽऽऽऽऽऽ... ! वह चिल्लाने लगता है। उसकी आंखें बदल जाती हैं। उसका चेहरा बदल जाता है। उसका ढंग बदल जाता है। वह बिल्कुल रोरिंग, सिंहनाद करने लगता है मूंऽऽ का। और गुरु उसको लगाए रहता है कि वह जारी रखे। जैसे ही सिंहनाद शुरू होता है वैसे ही गुरु उससे कहता है, और जोर से! फिर खाना, पीना, सोना बंद हो जाता है। खा ही नहीं सकता, गैप ही नहीं बचता, मूंऽऽ की आवाज चलती ही रहती है।
चौथे सप्ताह में उसकी नींद, उसका भोजन, उसका स्नान सब विदा हो जाता है, सिर्फ मूंऽऽ की आवाज चलती रहती है। वह बिल्कुल पागल हो जाता है। ठीक उस

जगह पहुंच जाता है जहां पागल आदमी मुश्किल से कभी पहुंचता है। उस किनारे पर, जहां उसको अब कोई होश नहीं है, सिर्फ एक आवाज मूंऽऽ रह गई है। उससे पूछो, नाम तुम्हारा? वह कहेगा, मूंऽऽ... । एक महीना निरंतर! उसे अपने शरीर का बोध नहीं रह जाता, बल्कि एक ध्वनि का बोध भर रह जाता है। मैं कौन हूं, उसे पता नहीं रहता। उस पर सब पाबंदी रखनी पड़ती है, उसको रोक कर रखना पड़ता है, वह कहीं भी जा सकता है, वह कुछ भी कर सकता है। अब उसे कुछ भी पता नहीं है, अब उस पर चौबीस घंटे विजिल, पहरा रखना पड़ता है। जिस दिन से उसमें सिंह की आवाज शुरू होती है और खाना-पीना और नींद बंद हो जाती है, उस दिन से उस पर पूरा पहरा रखना पड़ता है।
अचानक आखिरी क्षणों में वह आखिरी आवाजें लगाता है। इतनी भयंकर आवाजें लगाता है कि जिसका कोई हिसाब हम नहीं लगा सकते। जितनी शक्ति होती है वह सारी आवाज में ही निकलती है। जैसे भीतर कोई घाव खुल गया या भीतर कोई प्रेत जग गया है, और वह आवाजें लगाए चला जाता है। और आखिरी हुंकार जैसे ही उसकी हो जाती है वैसे ही सब शांत हो जाता है। जैसे लहर उठी तूफान की आखिरी छलांग लेकर, और गिर गई। जैसे आखिरी क्लाइमेक्स आ गया, आखिरी चरम स्थिति आ गई, और फिर सब चीजें बिखर गईं। फिर वह आदमी गिर जाता है।
कभी सात दिन, कभी पंद्रह दिन, और कभी इक्कीस दिन भी वह बिल्कुल शांत पड़ा रहता है। हाथ-पैर भी नहीं हिलाता, सब शांत हो जाता है। और जब सात दिन, या चौदह दिन, या पंद्रह दिन बाद वह आदमी वापस लौटता है तो वह वही आदमी नहीं होता, वह दूसरा ही आदमी होता है। तब वे कहते हैं, दि ओल्ड मैन हैज डाइड, वह पुराना आदमी मर गया, यह तो नया आदमी है। इसमें कुछ भी पुराना नहीं खोजा जा सकता--न इसका क्रोध, न इसका काम, न इसका लोभ, इसका कुछ भी पुराना अब नहीं खोजा जा सकता। यह बिल्कुल नया आदमी है। डिसकंटिन्युअस है, पुराने से इसका सातत्य टूट गया।
अब यह मूंऽऽ के प्रयोग से, ध्वनि के इतने तीव्र आवाहन से, पूरी चेतना
का रूपांतरण है। ओम भी वैसी ही ध्वनि है। सारी दुनिया के सब धर्मों के पास अपनी ध्वनियां हैं जो पूजा में उपयोग की जाती हैं। और उनकी पूजा में जैसे- जैसे गहराई बढ़ती जाती है वैसे-वैसे भीतर ध्वनि की चोट से रूपांतरण होने शुरू हो जाते हैं। भजन, कीर्तन भी विशेष ध्वनियों के आघात हैं।
और इसीलिए पुनरुक्ति पर जोर है। अगर आपने एक भजन एक दिन किया, और दूसरे दिन दूसरा भजन किया, और तीसरे दिन तीसरा भजन किया, तो परिणाम नहीं होंगे। सतत चोट चाहिए, एक ही केंद्र पर सतत चोट चाहिए! जैसे कि कोई आदमी एक हथौड़ी से एक जगह ठोंक दे, फिर दूसरी जगह ठोंक दे, फिर तीसरी जगह ठोंक दे, तो उससे कोई कील ठुंकने वाली नहीं है। एक आदमी एक जगह कुआं खोद ले दो फीट, और दो फीट दूसरी जगह खोद ले, और तीसरा तीसरी जगह खोद ले, उससे कोई कुआं खुदने वाला नहीं है। सतत एक ही बिंदु पर। इसलिए पुनरुक्ति पर इतना आग्रह रहा है। इतना आग्रह कि एक महीने भर आदमी मूंऽऽ और मूंऽऽ की पुनरुक्ति कर रहा है, या ओम की ध्वनि लगा रहा है, एक ही गीत की कड़ी को दोहराए चला जा रहा है, एक ही धुन को किए चला जा रहा है।
इसमें खतरा है। अगर इसको मैकेनिकल, यांत्रिक ढंग से किया तो बेकार मेहनत चली जाएगी। लेकिन अगर इसको पूरे प्राण डाल कर किया... । अगर यह आदमी ऐसा बैठा हुआ मूंऽऽ... मूंऽऽ... मूंऽऽ करता रहे, जैसे एक काम कर रहा है, तो कुछ नहीं परिणाम होगा। नहीं, यह मूंऽऽ इसका प्राण बन जाए, जीवन-मरण का सवाल बन जाए, यह दांव लगा दे अपना सब, यह आवाज ऐसे ही मुंह से न कर दे। इस आवाज में इसके शरीर का रोआं-रोआं सम्मिलित हो जाए, इसके एक-एक सेल, एक-एक कोष्ठ की ऊर्जा इसमें लग जाए, इसकी एक-एक हड्डी, मांस-पेशी, एक-एक स्नायु इसमें संयुक्त हो जाए; खून इसका पुकारने लगे, हड्डियां चिल्लाने लगें; इसका पूरा का पूरा अस्तित्व मूंऽऽ की आवाज बन जाए, तो ध्वनि के द्वारा परिणाम हो पाएगा।
तो भक्त है कि एक ही कड़ी दोहराए चला जा रहा है वर्षों तक। वह एक ही कड़ी दोहराने का प्रयोजन है। चोट करनी है एक ही जगह, और चोट करते ही चले जाना है जब तक कि द्वार खुल ही न जाए। और द्वार खुल जाता है।
तो पूजा में ध्वनि का, नृत्य का, कीर्तन का, उन सबका उपयोग हुआ है। और
उन सबका उपयोग मूर्ति के सामने है। ताकि किसी भी क्षण यह ख्याल न भूल जाए।

क्योंकि अकेला नृत्य एक बात है, वह तो नर्तक भी कर रहा है, नर्तकी भी कर रही है। उसको तो कोई परम ज्ञान उपलब्ध नहीं हो जाता। वह नृत्य के लिए ही नृत्य कर रहा है, तब कोई परम ज्ञान से संबंध न होगा। यह तो मूर्ति के सामने चल रहा है सारा क्रम। यह तो उस मूर्ति के सामने चल रहा है जिसमें अपने प्राण डाल दिए हैं। और वह मूर्ति चौबीस घंटे स्मरण दिलाती रहेगी कि यह नृत्य के लिए नृत्य नहीं है, यह तो नृत्य परिधि पर है, केंद्र तो वहां है--केंद्र तो तू है, उसके लिए सारा नृत्य चल रहा है।
यह स्मरण बना ही रहे पूरे वक्त कि यह नृत्य मूर्ति के आस-पास चल रहा है। यह नृत्य के लिए नृत्य नहीं है, यह किसी परम सत्ता में छलांग लेने की तैयारी है। वह मूर्ति स्मरण दिलाती रहे, तो ही। अन्यथा तो नाच नाचने वाले हैं, गीत गाने वाले हैं, वे भक्तों से बहुत अच्छा गीत गा लेते हैं। उससे कुछ भी न होगा। गाने वाला गाने के लिए गाता है--प्रयोजन गीत है, या प्रयोजन संगीत है। भक्त को संगीत से प्रयोजन नहीं है, भक्त को गीत से प्रयोजन नहीं है, भक्त को राग बिठालने से प्रयोजन नहीं है, भक्त को क्रम में नाचने से प्रयोजन नहीं है। भक्त को प्रयोजन कुछ और है। वह प्रयोजन यह है कि वह इतना मस्त हो जाए, इतना छोड़ पाए अपने को, कि कोई भी रौ, कोई भी धारा उसे बहा ले जाए अनंत की तरफ। वह परिधि बन जाए और केंद्र कोई और बन जाए; और वह बह सके, प्रवाहित हो सके। यह सब प्रवाहित होने की एक लिक्विडिटी पैदा हो सके उसमें, सब तरल हो जाए और बहने लगे।
तो अक्सर भक्त रोता हुआ मिल जाएगा। दुख से नहीं रोता है, आनंद से ही रोता है। और आंसू, भीतर जब कुछ तरल होता है तभी बहते हैं। चाहे दुख में तरल हो जाए, चाहे सुख में तरल हो जाए, भीतर जब कुछ तरल हो जाता है तो आंसू बहने शुरू हो जाते हैं।
अभी तक वैज्ञानिक ठीक से नहीं बता पाए हैं कि आंसुओं का प्रयोजन क्या
है आदमी के शरीर में? ज्यादा से ज्यादा जो खोज पाए हैं वह इतना ही खोज पाए हैं कि आंख पर जो धूल वगैरह जम जाती है, उसकी सफाई का प्रयोजन दिखाई पड़ता है। और कोई प्रयोजन नहीं दिखाई पड़ता इन ग्रंथियों का। आंख के भीतर जो आंसुओं की ग्रंथियां हैं उनका एक ही प्रयोजन मालूम पड़ता है कि आंख की सफाई कर सकें।
लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि आंख की सफाई की जरूरत तभी पड़ती है जब कोई आनंद में होता है या दुख में होता है! बाकी समय आंख पर धूल नहीं जमती? बाकी समय आंख की सफाई की कोई जरूरत नहीं पड़ती? जब भी कोई चीज भीतर ओवरफ्लोइंग होती है, कुछ अतिरेक हो जाता है--चाहे दुख, चाहे सुख--तभी आंसू बहने लगते हैं।
नहीं, ये आंसू की ग्रंथियां तभी खुलती हैं जब भीतर कुछ तरल हो जाता है
और बहना शुरू हो जाता है। भक्त भी रोए हैं, पर भक्तों का रोना बहुत अलग है। कोई गैर-भक्त नहीं जान सकता कि भक्त क्यों रोए हैं! क्या हुआ उनके भीतर कि वे रो रहे हैं!
आप देखेंगे, गुजरेंगे तो शायद लगेगा कि रो रहे होंगे कि बहुत कोई तकलीफ है जीवन में, तो भगवान के सामने हाथ जोड़ कर बैठ कर रो रहे हैं कि तकलीफ है कोई।
जो तकलीफ से भगवान के सामने रो रहा है वह तो अभी केंद्र खुद है, वह अभी भक्त नहीं है, अभी उसे पूजा का कोई पता नहीं है।
नहीं लेकिन एक क्षण ऐसा आता है जब चेतना बिल्कुल तरल हो जाती है भीतर,
सब ठोसपन, फ्रोजननेस, जहां-जहां जम गए हैं भीतर हम, वह सब मिट जाता है, सब पिघल जाता है। बर्फ के टुकड़े नहीं रह जाते भीतर, तरल पानी हो जाता है, बहाव आ जाता है भीतर। तब आंसुओं की अविरल धारा शुरू हो जाती है। और वे आंसू किसी परम अनुकंपा को धन्यवाद देने के लिए ही बहते हैं--किसी परम प्रसाद को, किसी ग्रेस को, कुछ जो उतरना शुरू हुआ है, उसको देने के लिए हमारे पास और कुछ भी नहीं बचता। वह जो हमें मिला है उसकी कोई पात्रता नहीं है! जो आनंद उतरना शुरू हुआ है उसको सम्हालने की भी हमारे पास कोई जगह नहीं है! जो बरस रहा है हमारे ऊपर वह हम कभी सोच भी नहीं सकते थे सपने में भी कि हमें कभी मिल पाएगा। अब उसको धन्यवाद देने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है, न शब्द

धन्यवाद दे पाएंगे। कुछ भी नहीं बचा है। उस वक्त आंख एक अलग ही ढंग से रोती है।
भक्त की आंख जैसी रोई है वैसी कभी किसी की आंख नहीं रोई है। प्रेमी की
भी आंख जब रोती है तो भी उसमें वह बात नहीं होती। प्रेमी की आंख में भी बहुत तरह की क्षुद्रताएं इकट्ठी हो जाती हैं। लेकिन भक्त की आंख अकारण ही रोती है। कोई प्रयोजन नहीं है। सिर्फ अब कोई उपाय नहीं है, निरुपाय है भक्त। वह परमात्मा को धन्यवाद देना चाहे तो मुंह से शब्द नहीं निकलता। और जब मुंह नहीं बोलता तब आंख अपने ढंग से बोलना शुरू करती है। पूजा की पूर्णता आंसुओं में है! पूजा की पूर्णता आंसू में है! तरलता में है, बह जाने में है!
बहुत ढंगों से, बहुत प्रकारों से मूर्ति का उपयोग इस परम अनुभूति के लिए किया गया है। जो मूर्ति के खिलाफ बोलते हैं उन्हें पूजा का कोई पता नहीं होता। और तब ठीक है, उनके बोलने का उतना ही उपयोग है जितना किसी भी अज्ञानी के बोलने का कोई उपयोग हो सकता है। लेकिन इस सदी में उस तरह की बातें बहुत प्रभावी हो गई हैं, क्योंकि और लोगों को भी कोई पता नहीं है। और जब किसी को भी कोई पता न हो तो जो भी हमें कहा जाए उसे स्वीकार करने के सिवाय कोई चारा नहीं रह जाता है।
और मन का एक नियम है कि निषेध की बात को जल्दी स्वीकार कर लेता है, क्योंकि निषेध की बात में कुछ सिद्ध नहीं करना पड़ता। एक आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है। तो उसे कुछ भी सिद्ध नहीं करना रहता। वह सदा कह सकता है कि जो कहता है कि है, वह सिद्ध करके बता दे। नहीं है कहने के लिए कोई भी तो सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती। है--तो फिर सिद्ध करने की चेष्टा करनी पड़ती है! निषेध को स्वीकार करने के लिए मन बड़ी जल्दी राजी हो जाता है। विधेय को स्वीकार करने के लिए मन बड़ी बाधा डालता है, क्योंकि मन को फिर बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। पूजा तो एक विधेय है, मूर्ति भी एक विधेय है। इनकार करना हो, कोई कठिनाई नहीं है, कह दो कि नहीं है।
तुर्गनेव ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। लिखा है कि गांव में एक आदमी था--बहुत बुद्धिमान आदमी था, बहुत प्रतिभाशाली आदमी था। और उसी गांव में एक बहुत महामूढ़ भी था। उस महामूढ़ ने इस बुद्धिमान आदमी से जाकर पूछा कि मुझे भी बुद्धिमान होने का कोई रास्ता बता दें। तो उस बुद्धिमान आदमी ने पूछा कि तुझे बुद्धिमान दिखना है कि होना है? क्योंकि होने का रास्ता तो बहुत लंबा है; दिखना हो तो बहुत आसान है मामला। उसने कहा कि आसान ही बताइए, कठिन अपने से न हो सकेगा। होने की झंझट छोड़िए, दिखना काफी है, दिखने से काम चल जाएगा।
और उस बुद्धिमान आदमी ने कहा कि होने में तो कभी भूल-चूक भी हो सकती है, लेकिन दिखने में कभी भूल-चूक नहीं होती। तो उसने कहा, फिर और भी अच्छा है, आप देर न करिए। तो उस बुद्धिमान आदमी ने उसके कान में एक मंत्र बोल दिया। और उस दिन से गांव में खबर होनी शुरू हो गई कि वह आदमी बुद्धिमान हो गया। सच ही सारे गांव में खबर फैलने लगी। दूसरे दिन से ही सुबह से चर्चा गांव में चलने लगी। क्या मंत्र फूंक दिया? एक छोटा सा मंत्र, एक निषेध का सूत्र उसे दे दिया।
उससे कहा कि जब भी कोई कुछ कहे, फौरन इनकार करो। जैसे कोई कहे कि मूर्ति-पूजा में कुछ है। कहो, कुछ भी नहीं है। बोलो, कहां है?
उस आदमी ने पूछा, अगर मुझे पता भी न हो?
कहा, तू पते की फिक्र ही मत कर। तू सिर्फ इनकार करते जाना। कोई कहे कि कालिदास की फलां किताब बहुत अदभुत है। तू कहना, कचरा है! क्या है उसमें? सिद्ध करो! कोई कहे, बीथोवन का संगीत परम स्वर्गीय है। तू कहना कि नरक में भी ऐसा ही संगीत बजता है। तुम सिद्ध करो कि यह स्वर्ग का कैसे है! तू बस एक बात याद रख, इनकार करना! और जो गड़बड़ करे उससे कहना, सिद्ध करो!
पंद्रह दिन में वह आदमी गांव भर में महाबुद्धिमान हो गया। लोगों ने कहा, उसका ओर-छोर पाना कठिन है। कोई कह रहा था कि शेक्सपीयर ने इतने सुंदर गीत लिखे। उसने कहा, क्या रखा है! कचरा है। स्कूल के बच्चे लिख सकते हैं। और जो कह रहा था वह डर गया। क्योंकि कुछ भी सिद्ध करना कठिन बात है। और कुछ भी असिद्ध करने से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है।

हमारी यह सदी बहुत अर्थों में कई तरह की मूढ़ताओं की सदी है। और हमारी मूढ़ता का जो सबसे बड़ा आधार है वह निषेध है। पूरी सदी कुछ भी इनकार किए चली जाती है। और दूसरे भी सिद्ध नहीं कर पाते, तब फिर वे भी निषेध की धारा में खड़े हो जाते हैं।
लेकिन ध्यान रहे, जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतना ही क्षुद्र हो जाएगा। क्योंकि इस जगत का कोई भी सत्य विधेयक हुए बिना उपलब्ध नहीं होता है। जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतना बुद्धिमान भला दिखाई पड़े, भीतर बहुत बुद्धिहीन हो जाएगा। जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतनी ही सत्य की, सौंदर्य की, आनंद की किसी अनुभूति की किरण भी नहीं उतरेगी। क्योंकि कोई भी महत्तर अनुभव विधायक चित्त में अवतरित होता है। निषेधात्मक चित्त में कोई भी महत्वपूर्ण अनुभव अवतरित नहीं होता।
असल में जिसने कहा, नहीं। उसका मन बंद हो जाता है। कभी इस शब्द का ख्याल किया आपने? अपने कमरे में बंद करके जोर से कह कर देखना, नहीं! तब आपको पता चलेगा, सारा हृदय सिकुड़ कर बंद हो गया। और उसी कमरे में जोर से कहना, हां! और आपको पता लगेगा, सारे हृदय ने पंख खोल कर जैसे आकाश में उड़ान ली।
शब्द ऐसे ही निर्मित नहीं होते हैं। उनकी समानांतर घटना भीतर घटती है। नहीं कहते ही भीतर कोई चीज बंद हो जाती है और सिकुड़ जाती है। और हां कहते ही कोई चीज खुल जाती है।
संत अगस्तीन से किसी ने पूछा, क्या है तेरी प्रार्थना? क्या है तेरी पूजा?
तो संत अगस्तीन ने कहा, यस, यस, यस माई लार्ड! इतनी ही मेरी पूजा है। हां, हां, हां मेरे प्रभु! इतनी ही मेरी पूजा है। इतनी ही मेरी प्रार्थना है।
वह तो नहीं समझा होगा कि वह क्या कह रहा है। लेकिन जो हृदय इस पूरे जीवन को हां कहने के लिए तैयार हो जाए वह आस्तिक है। आस्तिकता का अर्थ ईश्वर को हां कहना नहीं, हां कहने की क्षमता है। नास्तिक का अर्थ ईश्वर को इनकार करना नहीं, नास्तिक का अर्थ न के अतिरिक्त किसी भी क्षमता का न होना है। बस एक ही क्षमता, नहीं। तो ठीक है, वैसा आदमी सिकुड़ता जाएगा, सिकुड़ता जाएगा और सड़ जाएगा। हां--और वैसा आदमी खुलता है, खुलता है, फैलता है, और विराट तक उसकी उड़ान संभव हो पाती है।
मूर्ति-पूजा एक बहुत विधायक विधि, एक पाजिटिव उपाय है। पर इतनी बातें सोच कर, समझ कर उतरेंगे तब आपको पता चलेगा कि मूर्ति में, पूजा में, मूर्ति- पूजा में मूर्ति तो कहां है? पूजा ही है! मूर्ति तो बस शुरुआत है। और पूजा भी--परमात्मा की है, यह तो ठीक ही है--लेकिन गहरे में तो अपने को ही रूपांतरण है। परमात्मा तो बहाना है। उस बहाने अपने को बदलने में सुविधा मिल जाती है।
जिस डाक्टर रुडोल्फ की मैं बात कर रहा था शुरू में, इस आदमी ने एक और महत्वपूर्ण नियम खोजा है, वह मैं आपसे कहूं, जो इसके लिए उपयोगी होगा। जब भी हमारे मस्तिष्क में कोई विचार पैदा होता है तो उस विचार को यात्रा करनी पड़ती है स्नायुओं से, मांसपेशियों से, शरीर के तंत्र से। समझ लो कि मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि मैं आपको प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं। मेरे मस्तिष्क में यह विचार पैदा होता है, फिर यह यात्रा शुरू करता है और मेरे शरीर के बहुत से यांत्रिक ढांचे को पार करके और मेरी हाथ की अंगुलियों तक आता है। रुडोल्फ ने मनुष्य के स्नायुओं पर महत्वपूर्ण खोज करके यह पता लगाया है कि जब विचार पैदा होता है कि मैं प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं, तब अगर उसको हम मान लें कि उसमें सौ शक्ति है, सौ की पोटेंशियलिटी है, तो अंगुली तक पहुंचते-पहुंचते एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है। अगर हम सौ शक्ति मान लें उसमें, तो अंगुली तक आते-आते उसमें एक शक्ति... निन्यानबे की शक्ति, इस बीच की स्नायुओं में जो ट्रांसफर होने की यात्रा है, उसमें खो जाती है। सभी विचार हमारे व्यक्तित्व की बाहरी पर्त तक आते-आते बिल्कुल निर्जीव हो जाते हैं।
इसीलिए तो जब मन में हम सोचते हैं कि किसी का हाथ प्रेम से हाथ में ले लें तब जितना सुखद मालूम पड़ता है, उतना सुखद तब नहीं मालूम पड़ता जब हाथ में

हाथ लेते हैं। तब ऐसा लगता है कि कुछ खास न हुआ। बात क्या हो गई? यह कुछ खास क्यों न हुआ?
एक आदमी संभोग के संबंध में सोचता रहता है, बड़ा सुख मन में पाता है। लेकिन संभोग के कृत्य में जाकर सिर्फ डिप्रेस्ड होकर लौटता है। पीछे से लगता है कि इसमें कुछ हुआ क्यों नहीं? बात क्या हो गई?
मस्तिष्क में जो विचार था वह सौ की पोटेंशियलिटी का था। जब तक वह शरीर
की परिधि तक आता है तब तक एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है। और कभी-कभी एक की भी नहीं रह जाती। और कभी-कभी निगेटिव पोटेंशियलिटी भी हो जाती है। अगर रुग्ण शरीर हो तो शरीर की यात्रा में इतनी शक्ति पी जाता है वह विचार कि पहुंचते-पहुंचते वह निगेटिव हो जाता है। यानी कई बार ऐसा हो जाता है कि जिसका हाथ हाथ में लेकर सोचा था सुख मिलेगा, हाथ लेकर सिर्फ दुख मिलता है, ऋणात्मक हो जाता है।
रुडोल्फ का कहना है कि अगर यही स्थिति है तब तो आदमी कभी सुख न पा सकेगा। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि विचार मेरे मस्तिष्क से सीधी छलांग लगा कर आपके मस्तिष्क में प्रवेश कर जाए?
धर्म कहता है, ऐसा उपाय है। और रुडोल्फ भी कहता है--उसके अपने हजारों प्रयोगों के आधार पर--कि विचार सीधी छलांग भी लगा सकते हैं। सीधी छलांग! तब, मेरे मन में जो विचार उठा है वह मेरे पूरे शरीर की यात्रा करके मेरे शरीर के माध्यम से आप तक जाए, इस पूरी चैनल का, इस पूरे यंत्र का उपयोग नहीं किया जाता। तब मैं अपने विचार को अपने आज्ञाचक्र पर आंख बंद करके रोकता हूं और सीधा उसे छलांग लगा कर आपके आज्ञाचक्र में पहुंचाता हूं।
सारी टेलीपैथी, सारा विचार का संक्रमण इसी कला पर निर्भर है। रुडोल्फ
ने एक हजार मील दूर तक विचार संक्रमित करके बताए। दूसरे प्रयोगों में भी रूस में, हार्वर्ड में, और दूसरे प्रयोगों में भी दूसरे लोगों ने भी बहुत दूर तक विचार का संक्रमण करके बताया है। तब कुछ नहीं, अपने विचार को सिकोड़ कर अपने आज्ञाचक्र पर इकट्ठा कर लेना है, जैसे कि कोई घूमता हुआ छोटा सा सूर्य आपके विचार का बन गया और आपके मस्तिष्क में घूमने लगा है भीतर।
उसे छोटा करते जाना है, कनसनट्रेट, कनसनट्रेट, छोटा, ताकि वह ज्यादा पोटेंशियल हो जाए। शरीर पर फैलता है तो पोटेंशियलिटी कम हो जाती है। इकट्ठा करते जाना है। एक छोटा सा बिंदु रह जाए प्रकाश का। ऐसा अनुभव कर लेना है कि मेरा विचार एक प्रकाश का छोटा सा बिंदु रह गया। जितना छोटा कर सकें उसे छोटा करते जाना है। और एक घड़ी आती है, जब वह इतना छोटा हो जाता है कि उसके आगे छोटा नहीं हो सकता, वही घड़ी छलांग लगवा देने की घड़ी है! तब सिर्फ इतना ख्याल करना है कि वह मस्तिष्क से छलांग लगा कर दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में चला गया है। वह चाहे दूसरा व्यक्ति कितनी ही दूर हो, सिर्फ आपकी कल्पना में होना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रवेश कर गया, उसके आज्ञाचक्र पर चला गया। वह ट्रांसफर हो जाएगा! टेलीपैथी, विचार का संक्रमण बिना माध्यम के, इस कला पर ही निर्भर है। इसलिए बिंदु की साधना धर्म ने बहुत-बहुत रूपों में की है। वह बिंदु की साधना का यही वैज्ञानिक रूप है। इसको व्यक्ति में भी उपयोग कर सकते हैं और इसको हम परमात्मा के लिए भी उपयोग कर सकते हैं।
जैसे महावीर की मूर्ति रख कर आप बैठे हैं। महावीर की तो चेतना खो गई अनंत में। तो मूर्ति रखे आप बैठे हैं। लेकिन इस मूर्ति के सामने बैठ कर अगर आप अपनी पूरी की पूरी प्राणों की ऊर्जा को आज्ञाचक्र पर इकट्ठा करके छलांग लगवा दें मूर्ति के मस्तिष्क में, तो तत्क्षण वह विचार महावीर की चेतना तक संक्रमित हो जाएगा। और इस माध्यम से न मालूम कितने लोगों ने न मालूम कितने पीछे आने वाले लोगों को हजारों वर्ष तक सहायता पहुंचाई है। और उनके लिए फिर बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट मरे हुए व्यक्ति नहीं रहते, जीवित व्यक्ति रहते हैं--अभी और यहीं। उनके लिए बात सीधी सामने होती है। और इसका प्रयोग सीधा परमात्म-शक्ति में छलांग लगाने के लिए भी किया जा सकता है। लेकिन परमात्मा का केंद्र आप कहां खोजेंगे? इस अपने मस्तिष्क में इकट्ठे हुए बिंदु को आप कहां छलांग लगा कर भेजेंगे?
सरल पड़ेगा एक मूर्ति के माध्यम से इसे संक्रमित कर देना। इसको अनंत में सीधा फेंकने में बड़ी कठिनाई होगी। फेंका जा सकता है अनंत में भी सीधा,

लेकिन उसके अलग टेक्नीक हैं। और जिन धर्मों ने मूर्ति का प्रयोग नहीं किया उन धर्मों ने उन टेक्नीकों का प्रयोग किया है जिनसे अनंत में सीधी छलांग लगाई जा सकती है। लेकिन अति कठिन है। और इसलिए जो धर्म भी मूर्ति का प्रयोग नहीं करते, वे थोड़े-बहुत दिन में घूम-फिर कर मूर्ति का प्रयोग शुरू कर देते हैं।
अब जैसे कि इसलाम ने मूर्ति का प्रयोग नहीं किया। लेकिन मस्जिद का प्रयोग शुरू हो गया। फकीरों की मजारें बन गईं, फकीरों की समाधियां बन गईं-- उनका प्रयोग शुरू हो गया। आज भी मुसलमान दुनिया के किसी भी कोने में प्रार्थना करता है तो काबा के पत्थर की तरफ चेहरा करता है, अभी भी। वह काबा का जो पत्थर है वह इस बिंदु को उछालने के लिए काम में लाया जाने लगा--जो जानते हैं! जो नहीं जानते वे तो सिर्फ मुंह करके खड़े हो जाते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि काबा के पत्थर पर बिंदु को फेंका जाए कि किसी मूर्ति पर फेंका जाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मूर्ति के चरण चूमे जाएं कि काबा के पत्थर का जाकर बोसा लिया जाए। कोई फर्क नहीं पड़ता, एक ही बात है।
मोहम्मद का कोई चित्र नहीं रखा, मोहम्मद की कोई मूर्ति नहीं बनाई। पर उससे क्या फर्क पड़ता है? दूसरा काम करना पड़ा। अब यह बड़े मजे की बात है कि मोहम्मद का चित्र नहीं बनाया, मूर्ति नहीं बनाई, तो फिर बहुत छोटे फकीरों की मजारों पर फूल चढ़ाने पड़ते हैं। मोहम्मद के बराबर भी सब्स्टीट्यूट नहीं खोजा जा सका फिर।
तो अगर कृष्ण आज्ञा देते हों कि कोई फिक्र नहीं, मेरी मूर्ति के चरणों में तू आ जा, तो मैं मानता हूं कि बहुत दूरगामी है। क्योंकि कृष्ण की समझ यह है कि आदमी मूर्ति से तो बच न सकेगा। अनंत में सीधी छलांग लगानी इतनी दुष्कर है कि कभी करोड़ में एक आदमी लगाएगा; बाकी करोड़ का क्या होगा? अगर कृष्ण की मूर्ति न मिली तो क ख ग की मूर्ति मिलेगी जो बिल्कुल ही साधारण होंगे।
मोहम्मद की मूर्ति से बचने का परिणाम क्या हुआ है? परिणाम यह हुआ है
कि गांव में एक फकीर मर जाता है तो उसकी मजार पर मुसलमान इकट्ठा होने लगते हैं। उसमें मुसलमान का कसूर नहीं है, उसमें मनुष्य की वह जो आंतरिक सुविधा है, वही है कारण। मैं भी मानता हूं कि मोहम्मद की मूर्ति से जो फायदा हो सकता था वह इस मजार से नहीं हो सकता। हालांकि मोहम्मद जो कह रहे थे, बिल्कुल ठीक कह रहे थे। मूर्ति की कोई जरूरत नहीं है। मगर करोड़ में एकाध आदमी के लिए वह बात ठीक है। और जिस आदमी के लिए वह बात ठीक है उस आदमी के लिए किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। मूर्ति की ही नहीं, उसके लिए काबा की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए कुरान की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए इसलाम की भी कोई जरूरत नहीं, गीता की भी कोई जरूरत नहीं, कृष्ण की, बुद्ध की, किसी की कोई जरूरत नहीं। उस आदमी के लिए तो सभी कुछ बेकार है। वह सीधा ही जा सकता है।
पर बाकी सबके लिए? बाकी सबके लिए सबकी जरूरत है! और उचित होगा कि श्रेष्ठतम मिले उन्हें। जब जरूरत ही है तो उचित होगा कि बजाय हम किसी फकीर की मूर्ति बनाएं, गांव के एक अच्छे आदमी की मूर्ति और मजार पूजें, उससे बेहतर है कि बुद्ध या कृष्ण या मोहम्मद या महावीर जैसे व्यक्ति की मूर्ति से यात्रा हो। जब जाना ही है सागर में, तो गांव की बनी डोंगी में यात्रा करना खतरे से खाली नहीं है। तब तो फिर विशाल पोत में, बड़े जहाज में ही यात्रा की जा सकती है। जब बुद्ध की नाव उपलब्ध होती हो, तो किसी आदमी ने गांव में ताबीज निकाल दिए हों, या किसी आदमी के आशीर्वाद से कोई बीमार ठीक हो गया हो, उसकी मजार पर इकट्ठा होना बिल्कुल पागलपन है। लेकिन अगर बुद्ध की मूर्ति उपलब्ध न होगी तो आदमी की जरूरत है भीतरी कि वह कोई दूसरा सब्स्टीट्यूट खोजेगा।
तो ऊपर से दिखाई पड़ता है कि जिन लोगों ने इनकार कर दिया उन्होंने बड़ी ऊंची बात की। लेकिन हजारों-लाखों साल का अनुभव था, जिन्होंने इनकार नहीं किया, उनके साथ भी। उनके साथ भी अनुभव था कि आदमी को जरूरत पड़ेगी ही। वह आदमी की भीतरी कठिनाई है कि वह अनंत पर सीधा नहीं जा सकता, उसे एक बीच में पड़ाव चाहिए। तो वह पड़ाव जितना श्रेष्ठतम मिल सके उतना बेहतर है।

मूर्ति, दुनिया में ऐसा कोई समाज नहीं रहा आज तक अस्तित्व में, जहां निर्मित न हुई हो। एक भी ऐसा मनुष्य-जाति का कोई कबीला नहीं रहा कहीं, किसी भी कोने में, जहां किसी न किसी रूप में मूर्ति निर्मित न हुई हो। स्वभावतः इससे पता चलता है कि मनुष्य की, मनुष्यता की, कोई आंतरिक जरूरत मूर्ति से पूरी होती है। सिर्फ हमारी सदी है जिसे मूर्ति का ख्याल टूटना शुरू हुआ है इन दो सौ, ढाई सौ वर्षों में। मूर्ति, ऐसा मालूम होने लगी है कि वह व्यर्थ का बोझ है, उसे हटा दिया जाए। लेकिन हटाने के पहले अगर मूर्ति-पूजा का पूरा ख्याल साफ हो जाए तो मैं नहीं सोचता हूं कि इस जगत में कोई बुद्धिमान आदमी उसे हटाने को राजी होगा। हां, अगर मूर्ति-पूजा का विज्ञान ही ख्याल में न रह जाए तो मूर्ति हटानी ही पड़ेगी, उसे बचाया नहीं जा सकता है। वह अपने आप ही गिर जाएगी।
आज लोग पूजा भी कर रहे हैं बिना जाने, मूर्ति के सामने हाथ भी जोड़ रहे हैं बिना जाने। कोई हृदय का भाव नहीं रह गया है, औपचारिकता है। ये औपचारिक लोग ही मूर्ति को मिटवाने का कारण बनेंगे! क्योंकि ये मूर्ति भी पूज आते हैं और इनकी जिंदगी में तो कोई फर्क पैदा नहीं होता! ये ही खबर लाते हैं कि बेकार है। एक आदमी चालीस साल से मूर्ति-पूजा कर रहा है और कुछ भी नहीं हो रहा है। वह अपने बेटे को कह रहा है कि तू भी मंदिर चल। अब वह बेटा पूछने लगा है कि आपको कुछ भी नहीं हुआ चालीस साल में, आप मुझे कहां और किसलिए ले जाना चाहते हैं? कोई जवाब भी नहीं है उनके पास, क्योंकि हुआ हो तो जवाब की जरूरत नहीं रहती है।
सुना है मैंने, ईसप की कथा है एक छोटी सी, कि एक सिंह जंगल में एक-एक जानवर से पूछ रहा है। पूछता है एक भालू से कि क्या ख्याल है तुम्हारा? जंगल का मैं राजा हूं न? भालू कहता है, बिल्कुल ही, निश्चित ही। कौन इस पर शक कर सकता है? और पूछता है एक चीते से। चीता थोड़ा सा संकोच खाता है। कहता है कि नहीं, ठीक ही है बात, बिल्कुल ठीक ही है। आप राजा हैं। पूछता है एक हाथी से। हाथी उसे उठाता है अपनी सूंड में और लपेट कर बहुत दूर फेंक देता है। वह नीचे गिर कर वहां से कहता है कि महाशय, अगर आपको जवाब का पता नहीं है तो सीधा मना क्यों नहीं कर देते हैं, फेंकने की क्या जरूरत है? सीधे ही कह दिए होते, इतनी तकलीफ की क्या जरूरत है? कि आपको मालूम नहीं है, मैं चला जाता!
मगर जो हाथी फेंक सकता है उठा कर, वह इसको जवाब देने बैठे! कौन राजा है, इसके जवाब थोड़े ही देने होते हैं।
तो वह जो मूर्ति को पूज रहा है उसको जवाब न देना पड़े, अगर उसको पूजा का पता हो। उसकी जिंदगी जवाब हो। उसकी आंख, उसका उठना, उसका बैठना, वह जवाब बन जाए। लेकिन उसको जवाब देने पड़ते हैं। जवाब देने पड़ते हैं, क्योंकि जवाब कुछ भी नहीं हैं। वही जो मूर्ति को पूज रहे हैं, मूर्ति को हटवाने का कारण बन गए हैं। पूजा का ही पता नहीं है, बस हाथ में मूर्ति रह गई है, कुछ पूजा नहीं है।
इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही, कि उसे समझ लें, तो वह इनर टोटल ट्रांसफार्मेशन है! अंतर समग्रता से परिवर्तन की व्यवस्था है! मूर्ति तो सिर्फ बहाना है, जैसे किसी खूंटी पर कोई कोट टांग दे, टांगना है कोट! आप मुझे देख लें कि मैं एक खूंटी पर कोट टांग रहा हूं, और आप मुझसे कहने लगें कि यह क्या पागलपन है, इस खूंटी से क्या होगा? तो मैं आपसे कहूंगा कि खूंटी से कोई प्रयोजन ही नहीं है। यह तो कोट टांगने की व्यवस्था है। खूंटी नहीं होती तो फिर किसी कीली पर टांगते, दरवाजे की नोक पर टांगते। वह कोट तो टांगना पड़ेगा। लेकिन कोट टांगते वक्त आपको कोट दिखाई पड़ता है, खूंटी दिखाई नहीं पड़ती, इसलिए आप झंझट खड़ी नहीं करते और सवाल नहीं उठाते। मूर्ति तो खूंटी है, पूजा है असली चीज। लेकिन मूर्ति-पूजा के वक्त आपको पूजा तो दिखाई नहीं पड़ती, कोट तो दिखाई नहीं पड़ता, खूंटी दिखाई पड़ती है। आप कहते हैं, यह क्या कर रहे हैं? क्यों दीवार खराब कर रखी है? किसलिए यहां रोक रखा है इस खूंटी को? कोट हो गया अदृश्य, खूंटी रह गई है दृश्य। पूजा का कोई भी पता नहीं है आस-पास, मूर्ति बैठी रह गई है। तो मूर्ति बड़ी असहाय हो गई है फिर और बड़ी पराजित हो गई है। और बच न सकेगी, क्योंकि पूजा का प्राण ही उसे बचा सकता है। इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही।

मैं कहता आंखन देखी
नौवां प्रवचन

ज्योतिषः अद्वैत का विज्ञान

ओशो, के चरणों में निवेदन करूंगा कि हम एक नये विषय पर ओशो से मार्ग-दर्शन चाहेंगे और वह विषय है ज्योतिष। यह अछूता विषय है, ओशो के श्रीमुख से इस पर कभी चर्चा नहीं हुई है। तो ओशो के श्रीचरणों में पुनः निवेदन करूंगा कि आज ज्योतिष के संबंध में हमारा मार्ग-दर्शन करें।

ज्योतिष शायद सबसे पुराना विषय है और एक अर्थ में सबसे ज्यादा तिरस्कृत विषय भी है। सबसे पुराना इसलिए कि मनुष्य-जाति के इतिहास की जितनी खोजबीन हो सकी है उसमें ज्योतिष, ऐसा कोई भी समय नहीं था, जब मौजूद न रहा हो। जीसस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व सुमेर में मिले हुए हड्डी के अवशेषों पर ज्योतिष के चिह्न अंकित हैं। पश्चिम में पुरानी से पुरानी जो खोजबीन हुई है, वह जीसस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व इन हड्डियों की है, जिन पर ज्योतिष के चिह्न और चंद्र की यात्रा के चिह्न अंकित हैं। लेकिन भारत में तो बात और भी पुरानी है।
ऋग्वेद में, पंचानबे हजार वर्ष पूर्व ग्रह-नक्षत्रों की जैसी स्थिति थी, उसका उल्लेख है। इसी आधार पर लोकमान्य तिलक ने यह तय किया था कि ज्योतिष नब्बे हजार वर्ष से ज्यादा पुराने तो निश्चित ही होने चाहिए। क्योंकि वेद में यदि पंचानबे हजार वर्ष पहले जैसी नक्षत्रों की स्थिति थी उसका उल्लेख है, तो वह उल्लेख इतना पुराना तो होगा ही। क्योंकि उस समय जो स्थिति थी नक्षत्रों की उसे बाद में जानने का कोई भी उपाय नहीं था। अब हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो सके हैं कि हम जान सकें अतीत में कि नक्षत्रों की स्थिति कब कैसी रही होगी।
ज्योतिष की सर्वाधिक गहरी मान्यताएं भारत में पैदा हुईं। सच तो यह है
कि ज्योतिष के कारण ही गणित का जन्म हुआ। ज्योतिष की गणना के लिए ही सबसे पहले गणित का जन्म हुआ। और इसीलिए अंकगणित के जो अंक हैं वे भारतीय हैं, सारी दुनिया की भाषाओं में। एक से लेकर नौ तक जो गणना के अंक हैं, वे समस्त भाषाओं में जगत की, भारतीय हैं। और सारी दुनिया में नौ डिजिट, नौ अंक स्वीकृत हो गए, उसका भी कुल कारण इतना है कि वे नौ अंक भारत में पैदा हुए और धीरे-धीरे सारे जगत में फैल गए।
जिसे आप अंग्रेजी में नाइन कहते हैं वह संस्कृत के नौ का ही रूपांतरण है। जिसे आप एट कहते हैं वह संस्कृत के अष्ट का ही रूपांतरण है। एक से लेकर नौ तक जगत की समस्त सभ्य भाषाओं में गणित के जो अंकों का प्रचलन है वह भारतीय ज्योतिष के प्रभाव में हुआ।
भारत से ज्योतिष की पहली किरणें सुमेर की सभ्यता में पहुंचीं। सुमेरियंस ने सबसे पहले, ईसा से छह हजार वर्ष पूर्व, पश्चिम के जगत के लिए ज्योतिष का द्वार खोला। सुमेरियंस ने सबसे पहले नक्षत्रों के वैज्ञानिक अध्ययन की आधारशिलाएं रखीं। उन्होंने बड़े ऊंचे, सात सौ फीट ऊंचे मीनार बनाए। और उन मीनारों पर सुमेरियन पुरोहित चौबीस घंटे आकाश का अध्ययन करते थे--दो कारणों से। एक तो सुमेरियंस को इस गहरे सूत्र का पता चल गया था कि मनुष्य के जगत में जो भी घटित होता है, उस घटना का प्रारंभिक स्रोत नक्षत्रों से किसी न किसी भांति संबंधित है।
जीसस से छह हजार वर्ष पहले सुमेरियंस की यह धारणा कि पृथ्वी पर जो भी बीमारी पैदा होती है, जो भी महामारी पैदा होती है, वह सब नक्षत्रों से संबंधित है। अब तो इसके लिए वैज्ञानिक आधार मिल गए हैं। और जो लोग आज के विज्ञान को समझते हैं वे कहते हैं सुमेरियंस ने मनुष्य-जाति का असली इतिहास प्रारंभ किया। इतिहासज्ञ कहते हैं कि सब तरह का इतिहास सुमेर से शुरू होता है।
उन्नीस सौ बीस में चीजेवस्की नाम के एक रूसी वैज्ञानिक ने इस बात की खोजबीन की कि जब भी सूरज पर--सूरज पर हर ग्यारह वर्षों में पीरियाडिकली बहुत बड़ा विस्फोट होता है। सूर्य पर हर ग्यारह वर्ष में आणविक विस्फोट

होता है। और चीजेवस्की ने यह खोजबीन की कि जब भी सूरज पर ग्यारह वर्षों में आणविक विस्फोट होता है तभी पृथ्वी पर युद्ध और क्रांतियों के सूत्रपात होते हैं। और उसने कोई सात सौ वर्ष के लंबे इतिहास में सूर्य पर जब भी दुर्घटना घटती है, तभी पृथ्वी पर दुर्घटना घटती है, इसका इतना वैज्ञानिक विश्लेषण किया कि स्टैलिन ने उसे उन्नीस सौ बीस में उठा कर जेल में डाल दिया। वह स्टैलिन के मरने के बाद ही चीजेवस्की छूट सका। क्योंकि स्टैलिन के लिए तो अजीब बात हो गई! मार्क्स का और कम्युनिस्टों का ख्याल है कि पृथ्वी पर जो क्रांतियां होती हैं उनका कारण मनुष्य के बीच आर्थिक वैभिन्य है। और चीजेवस्की कहता है कि क्रांतियों का कारण सूरज पर हुए विस्फोट हैं।
अब सूरज पर हुए विस्फोट और मनुष्य के जीवन की गरीबी और अमीरी का क्या संबंध? अगर चीजेवस्की ठीक कहता है तो मार्क्स की सारी की सारी व्याख्या मिट्टी में चली जाती है। तब क्रांतियों का कारण वर्गीय नहीं रह जाता, तब क्रांतियों का कारण ज्योतिषीय हो जाता है। चीजेवस्की को गलत तो सिद्ध नहीं किया जा सका, क्योंकि सात सौ साल की जो गणना उसने दी थी वह इतनी वैज्ञानिक थी और सूरज में हुए विस्फोटों के साथ इतना गहरा संबंध उसने पृथ्वी पर घटने वाली घटनाओं का स्थापित किया था कि उसे गलत सिद्ध करना तो कठिन था। लेकिन उसे साइबेरिया में डाल देना आसान था।
स्टैलिन के मर जाने के बाद ही चीजेवस्की को ख्रुश्चेव साइबेरिया से मुक्त कर पाया। इस आदमी के जीवन के कीमती पचास साल साइबेरिया में नष्ट हुए। छूटने के बाद भी वह चार-छह महीने से ज्यादा जीवित नहीं रह सका। लेकिन छह महीने में भी वह अपनी स्थापना के लिए और नये प्रमाण इकट्ठे कर गया है। पृथ्वी पर जितनी महामारियां फैलती हैं, उन सबका संबंध भी वह सूरज से जोड़ गया है।
सूरज, जैसा हम साधारणतः सोचते हैं, ऐसा कोई निष्क्रिय अग्नि का गोला नहीं है, अत्यंत सक्रिय है। और प्रतिपल सूरज की तरंगों में रूपांतरण होते रहते हैं। और सूरज की तरंगों का जरा सा रूपांतरण भी पृथ्वी के प्राणों को कंपित करता है। इस पृथ्वी पर कुछ भी ऐसा घटित नहीं होता जो सूरज पर घटित हुए बिना घटित हो जाता हो। जब सूर्य का ग्रहण होता है तो पक्षी जंगलों में गीत गाना चौबीस घंटे पहले से बंद कर देते हैं। पूरे ग्रहण के समय तो सारी पृथ्वी मौन हो जाती है, पक्षी गीत गाना बंद कर देते हैं, सारे जंगलों के जानवर भयभीत हो जाते हैं, किसी बड़ी आशंका से पीड़ित हो जाते हैं। बंदर वृक्षों को छोड़ कर नीचे आ जाते हैं। भीड़ लगा कर किसी सुरक्षा का उपाय करने लगते हैं। और एक आश्चर्य कि बंदर, जो निरंतर बातचीत और शोरगुल में लगे रहते हैं, सूर्यग्रहण के वक्त बंदर इतने मौन हो जाते हैं जितने साधु और संन्यासी भी नहीं होते!
चीजेवस्की ने ये सारी की सारी बातें स्थापित की हैं। सुमेर में सबसे पहले यह ख्याल पैदा हुआ। उसके बाद स्विस पैरासेलीसस नाम का एक चिकित्सक, उसने एक बहुत अनूठी मान्यता स्थापित की। और वह मान्यता आज नहीं कल सारे मेडिकल साइंस को बदलने वाली सिद्ध होगी। अब तक उस मान्यता पर बहुत जोर नहीं दिया जा सका, क्योंकि ज्योतिष तिरस्कृत विषय है--सर्वाधिक पुराना, लेकिन सर्वाधिक तिरस्कृत, यद्यपि सर्वाधिक मान्य भी।
अभी फ्रांस में पिछले वर्ष गणना की गई तो सैंतालीस प्रतिशत लोग ज्योतिष में विश्वास करते हैं कि वह विज्ञान है--फ्रांस में! अमरीका में मौजूद पांच हजार बड़े ज्योतिषी दिन-रात काम में लगे रहते हैं और उनके पास इतने कस्टमर्स हैं कि वे काम निपटा नहीं पाते। करोड़ों डालर अमरीका प्रतिवर्ष ज्योतिषियों को चुकाता है। अंदाज है कि सारी पृथ्वी पर कोई अठहत्तर प्रतिशत लोग ज्योतिष में विश्वास करते हैं। लेकिन वे अठहत्तर प्रतिशत लोग सामान्य हैं। वैज्ञानिक, विचारक, बुद्धिवादी ज्योतिष की बात सुन कर ही चौंक जाते हैं।
सी जी जुंग ने कहा है कि तीन सौ वर्षों से विश्वविद्यालयों के द्वार ज्योतिष के लिए बंद हैं, यद्यपि आने वाले तीस वर्षों में ज्योतिष तुम्हारे दरवाजों को तोड़ कर विश्वविद्यालयों में पुनः प्रवेश पाकर रहेगा। पाकर रहेगा प्रवेश इसलिए कि ज्योतिष के संबंध में जो-जो दावे किए

गए थे उनको अब तक सिद्ध करने का उपाय नहीं था, लेकिन अब उनको सिद्ध करने का उपाय है।
पैरासेलीसस ने एक मान्यता को गति दी और वह मान्यता यह थी कि आदमी तभी बीमार होता है जब उसके और उसके जन्म के साथ जुड़े हुए नक्षत्रों के बीच का तारतम्य टूट जाता है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। उससे बहुत पहले पाइथागोरस ने यूनान में, कोई ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व, यानी आज से कोई पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व पाइथागोरस ने प्लेनेटरी हार्मनी, ग्रहों के बीच एक संगीत का संबंध है, इसके संबंध में एक बहुत बड़े दर्शन को जन्म दिया था।
और पाइथागोरस ने जब यह बात कही थी तब वह भारत और इजिप्ट इन दो मुल्कों
की यात्रा करके वापस लौटा था। और पाइथागोरस जब भारत आया तब भारत बुद्ध और महावीर के विचारों से तीव्रता से आप्लावित था। पाइथागोरस हिंदुस्तान से वापस लौट कर जो बातें कहा है उसमें उसने महावीर और विशेषकर जैनों के संबंध में बहुत सी बातें महत्वपूर्ण कही हैं। उसने जैनों को जैनोसोफिस्ट कह कर पुकारा है। सोफिस्ट का मतलब होता है दार्शनिक और जैनो का मतलब तो जैन! तो जैन दार्शनिक को पाइथागोरस ने जैनोसोफिस्ट कहा है। नग्न रहते हैं, यह सारी बात की है।
पाइथागोरस मानता था कि प्रत्येक नक्षत्र या प्रत्येक ग्रह या उपग्रह
जब यात्रा करता है अंतरिक्ष में, तो उसकी यात्रा के कारण एक विशेष ध्वनि पैदा होती है। प्रत्येक नक्षत्र की गति एक विशेष ध्वनि पैदा करती है। और प्रत्येक नक्षत्र की अपनी व्यक्तिगत निजी ध्वनि है। और इन सारे नक्षत्रों की ध्वनियों का एक तालमेल है, जिसे वह विश्व की संगीतबद्धता, हार्मनी कहता था। जब कोई मनुष्य जन्म लेता है तब उस जन्म के क्षण में इन नक्षत्रों के बीच जो संगीत की व्यवस्था होती है वह उस मनुष्य के प्राथमिक, सरलतम, संवेदनशील चित्त पर अंकित हो जाती है। वही उसे जीवन भर स्वस्थ और अस्वस्थ करती है। जब भी वह अपनी उस मौलिक जन्म के साथ पाई गई संगीत-व्यवस्था के साथ तालमेल बना लेता है तो स्वस्थ हो जाता है। और जब उसका तालमेल छूट जाता है तो अस्वस्थ हो जाता है।
पैरासेलीसस ने इस संबंध में बड़ा महत्वपूर्ण काम किया। वह किसी मरीज
को दवा नहीं देता था जब तक उसकी जन्मकुंडली न देख ले। और बड़ी हैरानी की बात है कि पैरासेलीसस ने जन्मकुंडलियां देख कर ऐसे मरीजों को ठीक किया जिनको कि चिकित्सक कठिनाई में पड़ गए थे और ठीक नहीं कर पाते थे। उसका कहना था, जब तक मैं यह न जान लूं कि यह व्यक्ति किन नक्षत्रों की स्थिति में पैदा हुआ है तब तक इसके अंतर्संगीत के सूत्र को भी पकड़ना संभव नहीं है। और जब तक मैं यह न जान लूं कि इसके अंतर्संगीत की व्यवस्था क्या है तो इसे कैसे हम स्वस्थ करें? क्योंकि स्वास्थ्य का क्या अर्थ है, इसे थोड़ा समझ लें!
अगर साधारणतः हम चिकित्सक से पूछें कि स्वास्थ्य का क्या अर्थ है तो
वह इतना ही कहेगाः बीमारी का न होना। पर उसकी परिभाषा निगेटिव है, नकारात्मक है। और यह दुखद बात है कि स्वास्थ्य की परिभाषा हमें बीमारी से करनी पड़े। स्वास्थ्य तो पाजिटिव चीज है, बीमारी निगेटिव है, नकारात्मक है। स्वास्थ्य तो स्वभाव है, बीमारी तो आक्रमण है। तो स्वास्थ्य की परिभाषा हमें बीमारी से करनी पड़े, यह बात अजीब है। घर में रहने वाले की परिभाषा मेहमान से करनी पड़े, तो बात अजीब है। स्वास्थ्य तो हमारे साथ है, बीमारी कभी होती है। स्वास्थ्य तो हम लेकर पैदा होते हैं, बीमारी उस पर आती है। पर हम स्वास्थ्य की परिभाषा अगर चिकित्सकों से पूछें तो वे यही कह पाते हैं कि बीमारी नहीं है तो स्वस्थ हैं।
पैरासेलीसस कहता था, यह व्याख्या गलत है। स्वास्थ्य की पाजिटिव डेफिनीशन होनी चाहिए। पर उस पाजिटिव डेफिनीशन को, उस विधायक व्याख्या को कहां से पकड़ेंगे? तो पैरासेलीसस कहता था, जब तक हम तुम्हारे अंतर्निहित संगीत को न जान लें--वही तुम्हारा स्वास्थ्य है--तब तक हम ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी बीमारियों से तुम्हारा छुटकारा करवा सकते हैं। लेकिन हम एक बीमारी से तुम्हें छुड़ाएंगे और तुम दूसरी बीमारी को तत्काल पकड़ लोगे। क्योंकि तुम्हारे भीतरी संगीत के संबंध में कुछ भी नहीं किया जा सका।
असली बात तो वही थी कि तुम्हारा भीतरी संगीत स्थापित हो जाए।

इस संबंध में--पैरासेलीसस को हुए तो कोई पांच सौ वर्ष होते हैं, उसकी बात भी खो गई थी--लेकिन अब पिछले बीस वर्षों में, उन्नीस सौ पचास के बाद दुनिया में ज्योतिष का पुनआर्विर्भाव हुआ है। और आपको जान कर हैरानी होगी कि कुछ नये विज्ञान पैदा हुए हैं जिनके संबंध में कुछ आपसे कह दूं तो फिर पुराने विज्ञान को समझना आसान हो जाएगा। उन्नीस सौ पचास में एक नयी साइंस का जन्म हुआ। उस साइंस का नाम है कास्मिक केमिस्ट्री, ब्रह्म-रसायन। उसको जन्म देने वाला आदमी है, जियॉजारजी जिऑरडी। यह आदमी इस सदी के कीमती से कीमती थोड़े से आदमियों में एक है। इस आदमी ने वैज्ञानिक आधारों पर प्रयोगशालाओं में अनंत प्रयोगों को करके यह सिद्ध किया है कि जगत, पूरा जगत, एक आर्गेनिक यूनिटी है। पूरा जगत एक शरीर है।
और अगर मेरी अंगुली बीमार पड़ जाती है तो मेरा पूरा शरीर प्रभावित होता है। शरीर का अर्थ होता है कि टुकड़े अलग-अलग नहीं हैं, संयुक्त हैं, जीवंत रूप से इकट्ठे हैं। अगर मेरी आंख में तकलीफ होती है तो मेरे पैर का अंगूठा भी अनुभव करता है। और अगर मेरे पैर को चोट लगती है तो मेरे हृदय को भी खबर मिलती है। और अगर मेरा मस्तिष्क रुग्ण हो जाता है तो मेरा शरीर पूरा का पूरा बेचैन हो जाएगा। और अगर मेरा पूरा शरीर नष्ट कर दिया जाए तो मेरे मस्तिष्क को खड़े होने के लिए जगह मिलनी मुश्किल हो जाएगी। मेरा शरीर एक आर्गेनिक यूनिटी है--एक एकता है जीवंत। उसमें कोई भी एक चीज को छुओ तो सब प्रवाहित होता है, सब प्रभावित हो जाता है।
कास्मिक केमिस्ट्री कहती है कि पूरा ब्रह्मांड एक शरीर है। उसमें कोई
भी चीज अलग-अलग नहीं है, सब संयुक्त है। इसलिए कोई तारा कितनी ही दूर क्यों न हो, वह भी जब बदलता है तो हमारे हृदय की गति को बदल जाता है। और सूरज चाहे कितने ही फासले पर क्यों न हो, जब वह ज्यादा उत्तप्त होता है तो हमारे खून की धाराएं बदल जाती हैं। हर ग्यारह वर्षों में... ।
पिछली बार जब सूरज पर बहुत ज्यादा गतिविधि चल रही थी और अग्नि के विस्फोट चल रहे थे, तो एक जापानी चिकित्सक तोमातो बहुत हैरान हुआ। वह चिकित्सक स्त्रियों के खून पर निरंतर काम कर रहा था बीस वर्षों से। स्त्रियों के खून की एक विशेषता है जो पुरुषों के खून की नहीं है। उनके मासिक धर्म के समय उनका खून पतला हो जाता है। और पुरुष का खून पूरे समय एक सा रहता है। स्त्रियों का खून मासिक धर्म के समय पतला हो जाता है, या गर्भ जब उनके पेट में होता है तब उनका खून पतला हो जाता है। पुरुष और स्त्री के खून में एक बुनियादी फर्क तोमातो अनुभव कर रहा था।
लेकिन जब सूरज पर बहुत जोर से तूफान चल रहे थे आणविक शक्तियों के--हर ग्यारह वर्ष में चलते हैं--तो वह चकित हुआ कि पुरुषों का खून भी पतला हो जाता है। जब सूरज पर आणविक तूफान चलता है तब पुरुष का खून भी पतला हो जाता है। यह बड़ी नयी घटना थी, यह इसके पहले कभी रिकार्ड नहीं की गई थी कि पुरुष के खून पर सूरज पर चलने वाले तूफान का कोई प्रभाव पड़ेगा। और अगर खून पर प्रभाव पड़ सकता है तो फिर किसी भी चीज पर प्रभाव पड़ सकता है।
एक दूसरा अमरीकन विचारक है फ्रेंक ब्राउन। वह अंतरिक्ष यात्रियों के लिए सुविधाएं जुटाने का काम करता रहा है। उसकी आधी जिंदगी, अंतरिक्ष में जो मनुष्य यात्रा करने जाएंगे उनको तकलीफ न हो, इसके लिए काम करने की रही है। सबसे बड़ी विचारणीय बात यही थी कि पृथ्वी को छोड़ते ही अंतरिक्ष में न मालूम कितने प्रभाव होंगे, न मालूम कितनी धाराएं होंगी रेडिएशन की, किरणों की--वे आदमी पर क्या प्रभाव करेंगी?
लेकिन दो हजार साल से ऐसा समझा जाता रहा है अरस्तू के बाद, पश्चिम में,
कि अंतरिक्ष शून्य है, वहां कुछ है ही नहीं। दो सौ मील के बाद पृथ्वी पर हवाएं समाप्त हो जाती हैं, और फिर अंतरिक्ष शून्य है। लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों की खोज ने सिद्ध किया कि वह बात गलत है। अंतरिक्ष शून्य नहीं है, बहुत भरा हुआ है। और न तो शून्य है, न मृत है; बहुत जीवंत है। सच तो यह है कि पृथ्वी की दो सौ मील की हवाओं की पर्तें सारे प्रभावों को हम तक आने से रोकती हैं। अंतरिक्ष में तो अदभुत प्रवाहों की धाराएं बहती रहती हैं। उनको आदमी सह पाएगा या नहीं?
तो आप जान कर हैरान होंगे और हंसेंगे भी कि आदमी को भेजने के पहले ब्राउन ने आलू भेजे अंतरिक्ष में। क्योंकि ब्राउन का कहना है कि आलू और

आदमी में बहुत भीतरी फर्क नहीं है। अगर आलू सड़ जाएगा तो आदमी नहीं बच सकेगा; और अगर आलू बच सकता है तो ही आदमी बच सकेगा। आलू बहुत मजबूत प्राणी है। और आदमी तो बहुत संवेदनशील है। अगर आलू भी नहीं बच सकता अंतरिक्ष में और सड़ जाएगा तो आदमी के बचने का कोई उपाय नहीं है। अगर आलू लौट आता है जीवंत, मरता नहीं है, और उसे जमीन में बोने पर अंकुर निकल आता है, तो फिर आदमी को भेजा जा सकता है। तब भी डर है कि आदमी सह पाएगा या नहीं।
इससे एक और हैरानी की बात ब्राउन ने सिद्ध की कि आलू जमीन के भीतर पड़ा हुआ, या कोई भी बीज जमीन के भीतर पड़ा हुआ भी बढ़ता है सूरज के ही संबंध में! सूरज ही उसे जगाता, उठाता है। उसके अंकुर को पुकारता और ऊपर उठाता है। ब्राउन एक दूसरे शास्त्र का अन्वेषक है। और उस शास्त्र को अभी ठीक-ठीक नाम मिलना शुरू हो रहा है। लेकिन अभी उसे कहते हैं प्लेनेटरी हेरिडिटी, उपग्रही वंशानुक्रम। अंग्रेजी में शब्द है, होरोस्कोप। वह यूनानी होरोस्कोपस का रूप है। होरोस्कोपस, यूनानी शब्द का अर्थ होता हैः मैं देखता हूं जन्मते हुए ग्रह को। शब्द का अर्थ होता है।
असल में जब एक बच्चा पैदा होता है तब उसी समय पृथ्वी के चारों ओर क्षितिज पर अनेक नक्षत्र जन्म लेते हैं, उठते हैं। जैसे सूरज उठता है सुबह। जैसे सुबह सूरज उगता है, सांझ डूबता है, ऐसे ही चौबीस घंटे अंतरिक्ष में नक्षत्र उगते हैं और डूबते हैं। जब एक बच्चा पैदा हो रहा है--समझें सुबह छह बजे बच्चा पैदा हो रहा है--वही वक्त सूरज भी पैदा हो रहा है। उसी वक्त और कुछ नक्षत्र पैदा हो रहे हैं, कुछ नक्षत्र डूब रहे हैं। कुछ नक्षत्र ऊपर हैं, कुछ नक्षत्र उतार पर चले गए, कुछ नक्षत्र चढ़ाव पर हैं। यह बच्चा जब पैदा हो रहा है तब अंतरिक्ष की, अंतरिक्ष में नक्षत्रों की एक स्थिति है।
अब तक ऐसा समझा जाता था, और अभी भी अधिक लोग जो बहुत गहराई से परिचित नहीं हैं वे ऐसा ही सोचते हैं, कि चांद-तारों से आदमी के जन्म का क्या लेना- देना! चांद-तारे कहीं भी हों, इससे एक गांव में बच्चा पैदा हो रहा है, इससे क्या फर्क पड़ेगा!
फिर वे यह भी कहते हैं कि एक ही बच्चा पैदा नहीं होता, एक तिथि में, एक नक्षत्र की स्थिति में लाखों बच्चे पैदा होते हैं। उनमें से एक प्रेसिडेंट बन जाता है किसी मुल्क का, बाकी तो नहीं बन पाते। एक उनमें से सौ वर्ष का होकर मरता है, दूसरा दो दिन का ही मर जाता है। एक उनमें से बहुत बुद्धिमान होता है और एक निर्बुद्धि रह जाता है।
तो साधारण देखने पर पता चलता है कि इन ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का किसी के बच्चे के पैदा होने से, होरोस्कोप से क्या संबंध हो सकता है? यह तर्क इतना सीधा और साफ मालूम होता है कि ये चांद-तारे एक बच्चे के जन्म की चिंता भी नहीं करते हैं। और फिर एक बच्चा ही पैदा नहीं होता, एक स्थिति में लाखों बच्चे पैदा होते हैं, पर लाखों बच्चे एक से नहीं होते। इन तर्कों से ऐसा लगने लगा था--तीन सौ वर्षों से ये तर्क दिए जा रहे हैं--कि कोई संबंध नक्षत्रों से व्यक्ति के जन्म का नहीं है।
लेकिन ब्राउन, पिकॉडी, और इन सारे लोगों की, तोमातो, इन सबकी खोज का एक अदभुत परिणाम हुआ है। और वह यह कि ये वैज्ञानिक कहते हैं, अभी हम यह तो नहीं कह सकते कि व्यक्तिगत रूप से कोई बच्चा प्रभावित होता होगा, लेकिन अब हम यह पक्के रूप से कह सकते हैं कि जीवन प्रभावित होता है। एक बात, व्यक्तिगत रूप से बच्चा प्रभावित होता होगा, हम अभी नहीं कह सकते हैं, लेकिन जीवन निश्चित रूप से प्रभावित होता है। और अगर जीवन प्रभावित होता है तो हमारी खोज जैसे-जैसे सूक्ष्म होगी वैसे-वैसे हम पाएंगे कि व्यक्ति भी प्रभावित होता है।
इसमें एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। जैसा सोचा जाता रहा है--
वह तथ्य नहीं है--ऐसा सोचा जाता रहा है कि ज्योतिष विकसित विज्ञान नहीं है। प्रारंभ उसका हुआ और फिर वह विकसित नहीं हो सका। लेकिन मेरे देखे स्थिति उलटी है। ज्योतिष किसी सभ्यता के द्वारा बहुत बड़ा विकसित विज्ञान है, फिर वह सभ्यता खो गई और हमारे हाथ में ज्योतिष के अधूरे सूत्र रह गए। ज्योतिष कोई नया विज्ञान नहीं है जिसे विकसित होना है, बल्कि कोई विज्ञान है जो पूरी तरह विकसित हुआ था और फिर जिस सभ्यता ने उसे विकसित किया वह खो

गई। और सभ्यताएं रोज आती हैं और खो जाती हैं। फिर उनके द्वारा विकसित चीजें भी अपने मौलिक आधार खो देती हैं, सूत्र भूल जाते हैं, उनकी आधारशिलाएं खो जाती हैं।
विज्ञान आज इसे स्वीकार करने के निकट पहुंच रहा है कि जीवन प्रभावित होता है। और एक छोटे बच्चे के जन्म के समय उसके चित्त की स्थिति ठीक वैसी होती है जैसे बहुत सेंसिटिव फोटो प्लेट की। इस पर दो-तीन बातें और ख्याल में ले लें, ताकि समझ में आ सके कि जीवन प्रभावित होता है। और अगर जीवन प्रभावित होता है तो ही ज्योतिष की कोई संभावना निर्मित होती है, अन्यथा निर्मित नहीं होती। जुड़वां बच्चों को समझने की थोड़ी कोशिश करें।
दो तरह के जुड़वां बच्चे होते हैं। एक तो जुड़वां बच्चे होते हैं जो एक
ही अंडे से पैदा होते हैं। और दूसरे जुड़वां बच्चे होते हैं जो होते तो जुड़वां हैं लेकिन दो अंडों से पैदा होते हैं। मां के पेट में दो अंडे होते हैं, दो बच्चे पैदा होते हैं। कभी-कभी एक ही अंडा होता है और एक अंडे के भीतर दो बच्चे होते हैं। एक अंडे से जो दो बच्चे पैदा होते हैं वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि उनके जन्म का क्षण बिल्कुल एक होता है। दो अंडों से जो बच्चे पैदा होते हैं उन्हें जुड़वां हम कहते जरूर हैं, लेकिन उनके जन्म का क्षण एक नहीं होता।
और एक बात समझ लें कि जन्म दोहरी बात है। जन्म का पहला अर्थ तो है गर्भाधारण। ठीक जन्म तो उस दिन होता है जिस दिन मां के पेट में गर्भ आरोपित होता है--ठीक जन्म! जिसको आप जन्म कहते हैं वह नंबर दो का जन्म है जब बच्चा मां के पेट से बाहर आता है। अगर हमें ज्योतिष की पूरी खोजबीन करनी हो--जैसे कि हिंदुओं ने की थी, अकेले हिंदुओं ने की थी और उसके बड़े उपयोग किए थे--तो असली सवाल यह नहीं है कि बच्चा कब पैदा होता है, असली सवाल यह है कि बच्चा कब गर्भ में प्रारंभ करता है अपनी यात्रा, गर्भ कब निर्मित होता है! क्योंकि ठीक जन्म वही है। इसलिए हिंदुओं ने तो यह भी तय किया था कि ठीक जिस भांति के बच्चे को जन्म देना हो उस भांति के ग्रह-नक्षत्र में यदि संभोग किया जाए और गर्भाधारण हो जाए तो उस तरह का बच्चा पैदा होगा। अब इसमें मैं थोड़ा पीछे आपको कुछ कहूंगा, क्योंकि इस संबंध में भी काफी काम इधर हुआ है और बहुत सी बातें साफ हुई हैं। साधारणतः हम सोचते हैं कि एक बच्चा सुबह छह बजे पैदा होता है, तो छह बजे पैदा होता है इसलिए छह बजे प्रभात में जो नक्षत्रों की स्थिति होती है उससे प्रभावित होता है। लेकिन ज्योतिष को जो गहरा जानते हैं वे कहते हैं कि वह छह बजे पैदा होने की वजह से ग्रह-नक्षत्र उस पर प्रभाव डालते हैं, ऐसा नहीं! वह जिस तरह के प्रभावों के बीच पैदा होना चाहता है उस घड़ी और नक्षत्र को जन्म के लिए चुनता है। यह बिल्कुल भिन्न बात है। बच्चा जब पैदा हो रहा है, ज्योतिष की गहन खोज करने वाले लोग कहेंगे कि वह अपने ग्रह-नक्षत्र चुनता है कि कब उसे पैदा होना है।
और गहरे जाएंगे तो वह अपना गर्भाधारण भी चुनता है। प्रत्येक आत्मा अपना गर्भाधारण चुनती है कि कब उसे गर्भ स्वीकार करना है, किस क्षण में। क्षण छोटी घटना नहीं है। क्षण का अर्थ है कि पूरा विश्व उस क्षण में कैसा है! और उस क्षण में पूरा विश्व किस तरह की संभावनाओं के द्वार खोलता है! जब एक अंडे में दो बच्चे एक साथ गर्भाधारण लेते हैं तो उनके गर्भाधारण का क्षण एक ही होता है और उनके जन्म का क्षण भी एक होता है। अब यह बहुत मजे की बात है कि एक ही अंडे से पैदा हुए दो बच्चों का जीवन इतना एक जैसा होता है, इतना एक जैसा होता है कि यह कहना मुश्किल है कि जन्म का क्षण प्रभाव नहीं डालता। एक अंडे से पैदा हुए दो बच्चे, उनका आई.क्यू., उनका बुद्धि-माप करीब-करीब बराबर होता है। और जो थोड़ा सा भेद दिखता है, वे जो जानते हैं वे कहते हैं कि वह हमारी मेजरमेंट की गलती के कारण है। अभी तक हम ठीक मापदंड विकसित नहीं कर पाए हैं जिनसे हम बुद्धि का अंक नाप सकें। थोड़ा सा जो भेद कभी पड़ता है वह हमारे तराजू की भूल-चूक है।
अगर एक अंडे से पैदा हुए दो बच्चों को बिल्कुल अलग-अलग पाला जाए तो भी उनके बुद्धि-अंक में कोई फर्क नहीं पड़ता। एक को हिंदुस्तान में पाला जाए और एक को चीन में पाला जाए और कभी एक-दूसरे को पता भी न चलने दिया जाए! ऐसी

कुछ घटनाएं घटी हैं जब दोनों बच्चे अलग-अलग पले, बड़े हुए। लेकिन उनके बुद्धि-अंक में कोई फर्क नहीं पड़ता।
बड़ी हैरानी की बात है, बुद्धि-अंक तो ऐसी चीज है कि जन्म की पोटेंशियलिटी से जुड़ी है। लेकिन वह जो चीन में जुड़वां बच्चा है एक ही अंडे का, जब उसको जुकाम होगा, तब जो भारत में बच्चा है उसको भी जुकाम हो जाएगा। आमतौर से एक अंडे से पैदा हुए बच्चे एक ही साल में मरते हैं। ज्यादा से ज्यादा उनकी मृत्यु में फर्क तीन महीने का होता है और कम से कम तीन दिन का, पर वर्ष वही होता है। अब तक ऐसा नहीं हो सका कि एक ही अंडे से पैदा हुए दो बच्चों की मृत्यु के बीच वर्ष का फर्क पड़ा हो। तीन महीने से ज्यादा का फर्क नहीं पड़ता है। अगर एक बच्चा मर गया है तो हम मान सकते हैं कि तीन दिन के बाद और तीन महीने के बीच दूसरा बच्चा मर जाएगा। इनके रुझान, इनके ढंग, इनके भाव समानांतर होते हैं। और करीब-करीब ऐसा मालूम पड़ता है कि ये दोनों एक ही ढंग से जीते हैं। एक-दूसरे की कापी की भांति होते हैं। इनका इतना एक जैसा होना और बहुत सी बातों से सिद्ध होता है।
हम सबकी चमड़ियां अलग-अलग हैं, इंडिविजुअल हैं। अगर मेरा हाथ टूट जाए
और मेरी चमड़ी बदलनी पड़े तो आपकी चमड़ी मेरे हाथ के काम नहीं आएगी। मेरे ही शरीर की चमड़ी उखाड़ कर लगानी पड़ेगी। इस पूरी जमीन पर कोई आदमी नहीं खोजा जा सकता जिसकी चमड़ी मेरे काम आ जाए।
क्या बात है? फिजियोलाजिस्ट से हम पूछें कि दोनों की चमड़ी की बनावट में कोई भेद है? चमड़ी के रसायन में कोई भेद है? चमड़ी में जो तत्व निर्मित करते हैं चमड़ी को, उसमें कोई भेद है?
तो कोई भेद नहीं है! मेरी चमड़ी और दूसरे आदमी की चमड़ी को अगर हम रख दें
एक वैज्ञानिक को जांच करने के लिए तो वह यह न बता पाएगा कि ये दो आदमियों की चमड़ियां हैं। चमड़ियों में कोई भेद नहीं है, लेकिन फिर भी हैरानी की बात है कि मेरी चमड़ी पर दूसरे की चमड़ी नहीं बिठाई जा सकती। मेरा शरीर उसे इनकार कर देता है। वैज्ञानिक जिसे नहीं पहचान पाते कि कोई भेद है, लेकिन मेरा शरीर पहचानता है। मेरा शरीर इनकार कर देता है कि इसे स्वीकार नहीं करेंगे।
हां, एक ही अंडे से पैदा हुए दो बच्चों की चमड़ी ट्रांसप्लांट हो सकती
है सिर्फ! एक-दूसरे की चमड़ी को एक-दूसरे पर बिठाया जा सकता है, शरीर इनकार नहीं करेगा। क्या कारण होगा? क्या वजह होगी? अगर हम कहें, एक ही मां-बाप के बेटे हैं। तो दो भाई भी एक ही मां-बाप के हैं, उनकी चमड़ी नहीं बदली जा सकती। सिवाय इसके कि ये दोनों बेटे एक क्षण में निर्मित हुए हैं और कोई इनमें समानता नहीं है। क्योंकि उसी बाप और उसी मां से पैदा हुए दूसरे भाई भी हैं, उन पर चमड़ी काम नहीं करती है। उनकी चमड़ी एक-दूसरे पर नहीं बदली जा सकती। सिर्फ इनका बर्थ मोमेंट--बाकी तो सब एक है, वही मां-बाप हैं--सिर्फ एक बात बड़ी भिन्न है और वह है इनके जन्म का क्षण!
क्या जन्म का क्षण इतने महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है कि उम्र
भी दोनों की करीब-करीब, बुद्धि-माप करीब-करीब, दोनों की चमड़ियों का ढंग एक सा, दोनों के शरीर के व्यवहार करने की बात एक सी, दोनों बीमार पड़ते हैं तो एक सी बीमारियों से, दोनों स्वस्थ होते हैं तो एक सी दवाओं से--क्या जन्म का क्षण इतना प्रभावी हो सकता है?
ज्योतिष कहता रहा है, इससे भी ज्यादा प्रभावी है जन्म का क्षण।
लेकिन आज तक ज्योतिष के लिए वैज्ञानिक सहमति नहीं थी। पर अब सहमति बढ़ती जाती है। इस सहमति में कई नये प्रयोग सहयोगी बने हैं। एक तो, जैसे ही हमने आर्टीफीशियल सैटेलाइट्स, हमने कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़े वैसे ही हमें पता चला कि सारे जगत से, सारे ग्रह-नक्षत्रों से, सारे ताराओं से निरंतर अनंत प्रकार की किरणों का जाल प्रवाहित होता है जो पृथ्वी पर टकराता है। और पृथ्वी पर कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो उससे अप्रभावित छूट जाए।
हम जानते हैं कि चांद से समुद्र प्रभावित होता है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि समुद्र में पानी और नमक का जो अनुपात है वही आदमी के शरीर में पानी और नमक का अनुपात है--दि सेम प्रपोर्शन। और आदमी के शरीर में पैंसठ प्रतिशत पानी है; और नमक और पानी का वही अनुपात है जो अरब की खाड़ी में है।

अगर समुद्र का पानी प्रभावित होता है चांद से तो आदमी के शरीर के भीतर का पानी क्यों प्रभावित नहीं होगा?
अभी इस संबंध में जो खोजबीन हुई उसमें दो-तीन तथ्य ख्याल में ले लेने जैसे हैं, वह यह कि पूर्णिमा के निकट आते-आते सारी दुनिया में पागलपन की संख्या बढ़ती है। अमावस के दिन दुनिया में सबसे कम लोग पागल होते हैं, पूर्णिमा के दिन सर्वाधिक। चांद के बढ़ने के साथ अनुपात पागलों का बढ़ना शुरू होता है। पूर्णिमा के दिन पागलखानों में सर्वाधिक लोग प्रवेश करते हैं और अमावस के दिन पागलखानों से सर्वाधिक लोग बाहर जाते हैं। अब तो इसके स्टेटिसटिक्स उपलब्ध हैं।
अंग्रेजी में शब्द है, लूनाटिक। लूनाटिक का मतलब होता है, चांदमारा। लूनार! हिंदी में भी पागल के लिए चांदमारा शब्द है। बहुत पुराना शब्द है।
और लूनाटिक भी कोई तीन हजार साल पुराना शब्द है। कोई तीन हजार साल पहले भी आदमियों को ख्याल था कि चांद पागल के साथ कुछ न कुछ करता है।
लेकिन अगर पागल के साथ करता है तो गैर-पागल के साथ नहीं करता होगा? आखिर मस्तिष्क की बनावट, आदमी के शरीर के भीतर की संरचना तो एक जैसी है। हां, यह हो सकता है कि पागल पर थोड़ा ज्यादा करता होगा, गैर-पागल पर थोड़ा कम कर सकता होगा। यह मात्रा का भेद होगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि गैर-पागल पर बिल्कुल नहीं करता होगा। अगर ऐसा होगा तब तो कोई पागल कभी पागल न हो, क्योंकि सब गैर-पागल ही पागल होते हैं। पहले तो काम गैर-पागल पर ही करना पड़ता होगा चांद को।
प्रोफेसर ब्राउन ने एक अध्ययन किया है। वह खुद ज्योतिष में विश्वासी आदमी नहीं थे; अविश्वासी थे; और अपने पिछले लेखों में उन्होंने बहुत मजाक उड़ाई है। लेकिन पीछे उन्होंने सिर्फ खोजबीन के लिए एक काम शुरू किया, कि मिलिट्री के बड़े-बड़े जनरल्स की उन्होंने जन्मकुंडलियां इकट्ठी कीं-- डाक्टर्स की, अलग-अलग प्रोफेशंस की। बड़ी मुश्किल में पड़ गए इकट्ठी करके। क्योंकि पाया कि प्रत्येक प्रोफेशन के आदमी एक विशेष ग्रह में पैदा होते हैं, एक विशेष नक्षत्र-स्थिति में पैदा होते हैं।
जैसे जितने भी बड़े प्रसिद्ध जनरल्स हैं, मिलिट्री के सेनापति हैं, योद्धा हैं, उनके जीवन में मंगल का भारी प्रभाव है। वही प्रभाव प्रोफेसर्स की जिंदगी में बिल्कुल नहीं है। ब्राउन ने जो अध्ययन किया कोई पचास हजार व्यक्तियों का, जो भी सेनापति हैं उनके जीवन में मंगल का प्रभाव भारी है। आमतौर से जब वे पैदा होते हैं तब मंगल जन्म ले रहा होता है। उनके जन्म की घड़ी मंगल के जन्म की घड़ी होती है। ठीक उससे विपरीत जितने पैसिफिस्ट हैं दुनिया में, जितने शांतिवादी हैं, वे कभी मंगल के जन्म के साथ पैदा नहीं होते। एकाध मामले में यह संयोग हो सकता है, लेकिन लाखों मामलों में संयोग नहीं हो सकता। गणितज्ञ एक खास नक्षत्र में पैदा होते हैं, कवि उस नक्षत्र में कभी पैदा नहीं होते। कवि उस नक्षत्र में कभी पैदा नहीं होते! यह कभी एकाध के मामले में संयोग हो सकता है, लेकिन बड़े पैमाने पर संयोग नहीं हो सकता।
असल में कवि के ढंग और गणितज्ञ के ढंग में इतना भेद है कि उनके जन्म के क्षण में भेद होना ही चाहिए। ब्राउन ने कोई दस अलग-अलग व्यवसाय के लोगों का, जिनके बीच तीव्र फासले हैं, जैसे कवि है और गणितज्ञ है; या युद्धखोर सेनापति है और एक शांतिवादी बर्ट्रेंड रसल है; एक आदमी जो कहता है विश्व में शांति होनी चाहिए और एक आदमी नीत्से जैसा, जो कहता है जिस दिन युद्ध न होंगे उस दिन दुनिया में कोई अर्थ न रह जाएगा; इनके बीच बौद्धिक विवाद ही है सिर्फ या नक्षत्रों का भी विवाद है? इनके बीच केवल बौद्धिक फासले हैं या इनकी जन्म की घड़ी भी हाथ बंटाती है?
जितना अध्ययन बढ़ता जाता है उतना ही पता चलता है कि प्रत्येक आदमी जन्म के साथ विशेष क्षमताओं की सूचना देता है। ज्योतिष के साधारण जानकार कहते हैं कि वह इसलिए ऐसा करता है क्योंकि वह विशेष नक्षत्रों की व्यवस्था में पैदा हुआ है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि वह विशेष नक्षत्रों में पैदा होने को उसने चुना। वह जैसा होना चाह सकता था, जो उसके होने की आंतरिक संभावना थी, जो उसके पिछले जन्मों का पूरा का पूरा रूप था, जो उसकी संयोजित अर्जित चेतना थी, वह इस नक्षत्र में ही पैदा होगी।

हर बच्चा, हर आने वाला नया जीवन इनसिस्ट करता है अपनी घड़ी के लिए, अपनी घड़ी में ही पैदा होना चाहता है, अपनी ही घड़ी में गर्भाधान लेना चाहता है-- दोनों अन्योन्याश्रित हैं, इंटर डिपेंडेंट हैं।
मैंने आपसे कहा कि जैसे समुद्र का पानी प्रभावित होता है, सारा जीवन पानी से निर्मित है। पानी के बिना कोई जीवन की संभावना नहीं है। इसलिए यूनान में पुराने दार्शनिक कहते थे, पानी से जीवन! या पुरानी भारतीय और चीनी और दूसरी दुनिया की माइथोलाजीस भी कहती हैं, पानी से जीवन का जन्म! आज इवोल्यूशन को मानने वाले, विकास को मानने वाले वैज्ञानिक भी कहते हैं कि जीवन का जन्म पानी से है। शायद पहला जीवन काई, वह जो पानी पर जम जाती है, वही जीवन का पहला रूप है, फिर आदमी तक विकास। जो लोग पानी के ऊपर गहन शोध करते हैं, वे कहते हैं, पानी सर्वाधिक रहस्यमय तत्व है। और जगत से, अंतरिक्ष से तारों का जो भी प्रभाव आदमी तक पहुंचता है उसमें मीडियम, माध्यम पानी है। आदमी के शरीर के जल को ही प्रभावित करके कोई भी रेडिएशन, कोई भी विकीर्णन मनुष्य में प्रवेश करता है।
जल पर बहुत काम हो रहा है और जल के बहुत से मिस्टीरियस, रहस्यमय गुण ख्याल में आ रहे हैं। सर्वाधिक रहस्यमय गुण तो जल का जो ख्याल में अभी दस वर्षों में वैज्ञानिकों को आया है वह यह है कि सर्वाधिक संवेदनशीलता जल के पास है, सबसे ज्यादा सेंसिटिव है। और हमारे जीवन में चारों ओर से जो भी इनफ्लुएंस गति करता है भीतर वह जल को ही कंपित करके गति करता है। हमारा जल ही सबसे पहले प्रभावित होता है। और एक बार हमारा जल प्रभावित हुआ तो फिर हमारा प्रभावित होने से बचना बहुत कठिन हो जाएगा।
मां के पेट में बच्चा जब तैरता है, तब भी आप जान कर हैरान होंगे कि वह ठीक ऐसे ही तैरता है जैसे सागर के जल में। और मां के पेट में जिस जल में बच्चा तैरता है उसमें भी नमक का वही अनुपात होता है जो सागर के जल में है। और मां के शरीर से जो-जो प्रभाव बच्चे तक पहुंचते हैं उनमें कोई सीधा संबंध नहीं होता। यह जान कर आप हैरान होंगे कि मां और उसके पेट में बनने वाले गर्भ का कोई सीधा संबंध नहीं होता, दोनों के बीच में जल है और मां से जो भी प्रभाव पहुंचते हैं बच्चे तक वे जल के ही माध्यम से पहुंचते हैं। सीधा कोई संबंध नहीं होता। फिर जीवन भर भी हमारे शरीर में जल का वही काम है जो सागर में काम है।
सागर में बहुत सी मछलियों का अध्ययन किया गया है। ऐसी मछलियां हैं, जो
जब सागर का पूर उतार पर होता है, जब सागर उतरता है, तभी सागर के तट पर आकर अंडे रख जाती हैं। सागर उतर रहा है वापस। मछलियां रेत में आएंगी सागर की लहरों पर सवार होकर, अंडे देंगी, सागर की लहरों पर वापस लौट जाएंगी। पंद्रह दिन में सागर की लहरें फिर उस जगह आएंगी, तब तक अंडे फूट कर उनके चूजे बाहर आ गए होंगे, आने वाली लहरें उन चूजों को वापस सागर में ले जाएंगी।
जिन वैज्ञानिकों ने इन मछलियों का अध्ययन किया है वे बड़े हैरान हुए हैं। क्योंकि मछलियां सदा ही उस समय अंडे देने आती हैं जब सागर का तूफान उतरता होता है। अगर वे चढ़ते तूफान में अंडे दे दें तो अंडे तो तूफान में बह जाएंगे। वे अंडे तभी देती हैं जब तूफान उतरता होता है, एक-एक स्टेप सागर की लहरें पीछे हटती जाती हैं। वे जहां अंडे देती हैं वहां लहर दुबारा नहीं आती फिर, नहीं तो लहर अंडे बहा ले जाएगी। वैज्ञानिक बहुत परेशान रहे हैं कि इन मछलियों को कैसे पता चलता है कि सागर अब उतरेगा? सागर के उतरने की घड़ी आ गई? क्योंकि जरा सी भी भूल-चूक समय की, और अंडे तो सब बह जाएंगे! और उन्होंने भूल-चूक कभी नहीं की लाखों साल में, नहीं तो वे खत्म हो गई होतीं मछलियां। उन्होंने कभी भूल की ही नहीं।
पर इन मछलियों के पास क्या उपाय है जिनसे ये जान पाती हैं? इनके पास कौन सी इंद्रिय है जो इनको बताती है कि अब सागर उतरेगा? लाखों मछलियां एक क्षण में पूरे किनारे पर इकट्ठी हो जाएंगी। इनके पास जरूर कोई संकेत-लिपि, इनके पास कोई सूचना का यंत्र होना ही चाहिए। करोड़ों मछलियां दूर-दूर हजारों मील के सागर-तट पर इकट्ठी होकर अंडे रख जाएंगी एक खास घड़ी में।
जो अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं कि चांद के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। चांद से इनको जो संवेदनाएं मिलती हैं, मछलियों को उन संवेदनाओं

से पता चलता है कि कब उतार पर, कब चढ़ाव पर। चांद से जो उन्हें धक्के मिलते हैं, उन्हीं धक्कों के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है कि उनको पता चल जाए।
यह भी हो सकता है--कुछ का ख्याल था--कि सागर की लहरों से ही कुछ पता चलता होगा। तो वैज्ञानिकों ने इन मछलियों को ऐसी जगह रखा जहां सागर की लहर ही नहीं है। झील पर रखा, अंधेरे कमरों में पानी में रखा। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है। जब चांद ठीक घड़ी पर आया, और अंधेरे में बंद हैं मछलियां, उनको चांद का कोई पता नहीं, आकाश का कोई पता नहीं, जब चांद ठीक जगह पर आया, जब समुद्र की मछलियां जाकर तट पर अंडे देने लगीं, तब उन मछलियों ने पानी में ही अंडे दे दिए। उनका पानी में ही अंडे छोड़ देना--क्योंकि कोई तट नहीं, कोई किनारा नहीं, तब तो लहरों का कोई सवाल न रहा!
अगर कोई कहता हो कि दूसरी मछलियों को देख कर यह दौड़ पैदा हो जाती होगी। वह भी सवाल न रहा। अकेली मछलियों को रख कर भी देखा। ठीक जब करोड़ों मछलियां सागर के तट पर आएंगी... । इनके दिमाग को सब तरह से गड़बड़ करने की कोशिश की मछलियों के। चौबीस घंटे अंधेरे में रखा, ताकि उन्हें पता न चले कि कब सुबह होती है, कब रात होती है। चौबीस घंटे उजाले में भी रख कर देखा, ताकि उनको पता ही न चले कि कब रात होती है। झूठे चांद की रोशनी पैदा करके देखी कि रोज रोशनी को कम करते जाओ, बढ़ाते जाओ। लेकिन मछलियों को धोखा नहीं दिया जा सका। ठीक चांद जब अपनी जगह पर आया तब मछलियों ने अंडे दे दिए। जहां भी थीं, वहीं उन्होंने अंडे दे दिए।
हजारों-लाखों पक्षी हर साल यात्रा करते हैं हजारों मील की। सर्दियां आने वाली हैं, बर्फ पड़ेगी, तो बर्फ के इलाके से पक्षी उड़ना शुरू हो जाएंगे। हजारों मील दूर किसी दूसरी जगह वे पड़ाव डालेंगे। वहां तक पहुंचने में अभी उन्हें दो महीने लगेंगे, महीना भर लगेगा। अभी बर्फ गिरनी शुरू नहीं हुई, महीने भर बाद गिरेगी। ये पक्षी कैसे हिसाब लगाते हैं कि अब महीने भर बाद बर्फ गिरेगी? क्योंकि अभी हमारी मौसम को बताने वाली जो वेधशालाएं हैं वे भी पक्की खबर नहीं दे पाती हैं। मैंने तो सुना है कि कुछ मौसम की खबर देने वाले लोग पहले ज्योतिषियों से पूछ जाते हैं सड़कों पर बैठे हुए कि आज क्या ख्याल है--पानी गिरेगा कि नहीं?
आदमी ने अभी जो-जो व्यवस्था की है वह बचकानी मालूम पड़ती है। ये पक्षी एक-डेढ़ महीने, दो महीने पहले पता करते हैं कि अब बर्फ कब गिरेगी। और हजारों प्रयोग करके देख लिया गया है कि जिस दिन पक्षी उड़ते हैं, हर पक्षी की जाति का निश्चित दिन है। हर वर्ष बदल जाता है वह निश्चित दिन, क्योंकि बर्फ का कोई ठिकाना नहीं है। लेकिन हर पक्षी का तय है कि वह बर्फ गिरने के एक महीने पहले उड़ेगा, तो हर वर्ष वह एक महीने पहले उड़ता है। बर्फ दस दिन बाद गिरे तो वह दस दिन बाद उड़ता है; बर्फ दस दिन पहले गिरे तो वह दस दिन पहले उड़ता है। यह बर्फ के गिरने का कुछ निश्चय तो नहीं है, ये पक्षी कैसे उड़ जाते हैं महीने भर पहले पता लगा कर?
जापान में एक चिड़िया होती है जो भूकंप आने के चौबीस घंटे पहले गांव खाली कर देती है। साधारण गांव की चिड़िया है। हर गांव में बहुत होती हैं। भूकंप आने के चौबीस घंटे पहले चिड़िया गांव खाली कर देती है। अभी भी वैज्ञानिक दो घंटे के पहले भूकंप का पता नहीं लगा पाते। और दो घंटे पहले भी अनसर्टेंटी होती है, पक्का नहीं होता है। सिर्फ प्रोबेबिलिटी होती है, संभावना होती है कि भूकंप हो सकता है। लेकिन चौबीस घंटे पहले! तो जापान में तो भूकंप का फौरन पता चल जाता है। जिस गांव से चिड़िया उड़ जाती है उस गांव के लोग समझ जाते हैं कि भाग जाओ। चौबीस घंटे का वक्त है, वह चिड़िया हट गई है, गांव में दिखाई नहीं पड़ती। इस चिड़िया को कैसे पता चलता होगा? वैज्ञानिक अभी दस वर्षों में एक नयी बात कह रहे हैं और वह यह कि प्रत्येक प्राणी के पास कोई ऐसी अंतर-इंद्रिय है जो जागतिक प्रभावों को अनुभव करती है। शायद मनुष्य के पास भी है, लेकिन मनुष्य ने अपनी बुद्धिमानी में उसे खोया है। मनुष्य अकेला प्राणी है जगत में जिसके पास बहुत सी चीजें हैं जो उसने बुद्धिमानी में खो दी हैं; और बहुत सी चीजें जो उसके पास नहीं थीं उसने बुद्धिमानी में उनको पैदा करके खतरा मोल ले लिया है। जो है उसे खो दिया है, जो नहीं है उसे बना लिया है।

लेकिन छोटे से छोटे प्राणी के पास भी कुछ संवेदना के अंतर-स्रोत हैं।
और अब इसके लिए वैज्ञानिक आधार मिलने शुरू हो गए हैं कि अंतर-स्रोत हैं।
ये अंतर-स्रोत इस बात की खबर लाते हैं कि इस पृथ्वी पर जो जीवन है वह आइसोलेटेड नहीं है, वह सारे ब्रह्मांड से संयुक्त है। और कहीं भी कुछ घटना घटती है तो उसके परिणाम यहां होने शुरू हो जाते हैं।
जैसा मैं आपसे कह रहा था पैरासेलीसस के संबंध में, आधुनिक चिकित्सक
भी इस नतीजे पर पहुंच रहे हैं कि जब भी सूर्य पर... सूर्य पर अनेक बार धब्बे प्रकट होते हैं। ऐसे भी सूर्य पर कुछ धब्बे, डाट्स, स्पाट्स होते हैं। कभी वे बढ़ जाते हैं, कभी वे कम हो जाते हैं। जब सूर्य पर स्पाट्स बढ़ जाते हैं तो जमीन पर बीमारियां बढ़ जाती हैं। और जब सूर्य पर स्पाट्स कम हो जाते हैं तो जमीन पर बीमारियां कम हो जाती हैं। और जमीन से हम बीमारियां कभी न मिटा सकेंगे, जब तक सूर्य के स्पाट्स कायम हैं।
हर ग्यारह वर्ष में सूरज पर भारी उत्पात होता है, बड़े विस्फोट होते हैं। और जब ग्यारह वर्ष में सूरज पर विस्फोट होते हैं और उत्पात होते हैं तो पृथ्वी पर युद्ध और उत्पात होते हैं। पृथ्वी पर युद्धों का जो क्रम है वह हर दस वर्ष का है। महामारियों का जो क्रम है वह दस और ग्यारह वर्ष के बीच का है। क्रांतियों का जो क्रम है वह दस और ग्यारह वर्ष के बीच का है। एक बार ख्याल में आना शुरू हो जाए कि हम अलग और पृथक नहीं हैं, संयुक्त हैं, आर्गेनिक हैं, तो फिर ज्योतिष को समझना आसान हो जाएगा। इसलिए मैं ये सारी बातें आपसे कह रहा हूं। कुछ आदमी को ऐसा ख्याल पैदा हो गया था--अब भी है--कि ज्योतिष एक सुपरस्टीशन, एक अंधविश्वास है। बहुत दूर तक यह बात सच भी मालूम पड़ती है। असल में वही चीज अंधविश्वास मालूम पड़ने लगती है जिसके पीछे हम वैज्ञानिक कारण बताने में असमर्थ हो जाएं। वैसे ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक है। और विज्ञान का अर्थ ही होता है कि कॉज और एफेक्ट के बीच, कार्य और कारण के बीच संबंध की तलाश!
ज्योतिष कहता यही है कि इस जगत में जो भी घटित होता है उसके कारण हैं। हमें ज्ञात न हों, यह हो सकता है। ज्योतिष यह कहता है कि भविष्य जो भी होगा वह अतीत से विच्छिन्न नहीं हो सकता, उससे जुड़ा हुआ होगा। आप कल जो भी होंगे वह आज का ही जोड़ होगा। आज तक आप जो हैं वह बीते हुए कल का जोड़ है। ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक चिंतन है। वह यह कहता है कि भविष्य अतीत से ही निकलेगा। आपका आज कल से निकला है, आपका आने वाला कल आज से निकलेगा। और ज्योतिष यह भी कहता है कि जो कल होने वाला है वह किसी सूक्ष्म अर्थों में आज भी हो जाना चाहिए।
अब इसे थोड़ा समझें। अब्राहम लिंकन ने मरने के तीन दिन पहले एक सपना देखा, जिसमें उसने देखा कि उसकी हत्या कर दी गई है और व्हाइट हाउस के एक खास कमरे में उसकी लाश पड़ी हुई है। उसने नंबर भी कमरे का देखा। उसकी नींद खुल गई। वह हंसा, उसने अपनी पत्नी को कहा कि मैंने एक सपना देखा है कि मेरी हत्या कर दी गई है और फलां-फलां नंबर--उसी मकान में तो वह सोया हुआ है व्हाइट हाउस के--इस मकान के फलां नंबर के कमरे में मेरी लाश पड़ी है। मेरे सिरहाने तू खड़ी हुई है और आस-पास फलां-फलां लोग खड़े हुए हैं। हंसी हुई, बात हुई; लिंकन सो गया, पत्नी सो गई। तीन दिन बाद लिंकन की हत्या हुई और उसी नंबर के कमरे में और उसी जगह उसकी लाश तीन दिन बाद पड़ी थी और उसी क्रम में आदमी खड़े थे।
अगर तीन दिन बाद जो होने वाला है वह किसी अर्थों में आज ही न हो गया हो
तो उसका सपना कैसे निर्मित हो सकता है? उसकी सपने में झलक भी कैसे मिल सकती है? सपने में झलक तो उसी बात की मिल सकती है जो किसी अर्थ में अभी भी कहीं मौजूद हो। तो हम उसकी एक ग्लिम्प्स, खिड़की खोलें और हमें दिखाई पड़ जाए। लेकिन खिड़की के बाहर मौजूद हो! लेकिन कहीं मौजूद हो।
ज्योतिष का मानना है कि भविष्य हमारा अज्ञान है इसलिए भविष्य है। अगर हमें ज्ञान हो तो भविष्य जैसी कोई घटना नहीं है। वह अभी भी कहीं मौजूद है। महावीर के जीवन में एक घटना का उल्लेख है, और जिस पर एक बहुत बड़ा विवाद चला। और महावीर के सामने ही महावीर के अनुयायियों का एक वर्ग टूट गया। और पांच सौ महावीर के मुनियों ने अलग पंथ का निर्माण कर लिया उसी बात से।

महावीर कहते थे, जो हो रहा है वह एक अर्थ में हो ही गया। जो हो रहा है
वह एक अर्थ में हो ही गया। अगर आप चल पड़े तो एक अर्थ में पहुंच ही गए। अगर आप बूढ़े हो रहे हैं तो एक अर्थ में बूढ़े हो ही गए। महावीर कहते थे, जो हो रहा है, जो क्रियमाण है, वह हो ही गया।
महावीर का एक शिष्य वर्षाकाल में महावीर से दूर था, बीमार था। उसने अपने एक शिष्य को कहा कि मेरे लिए चटाई बिछा दो। उसने चटाई बिछानी शुरू की। मुड़ी हुई, गोल लिपटी हुई चटाई को उसने थोड़ा सा खोला, तब महावीर के उस शिष्य को ख्याल आया कि ठहरो, महावीर कहते हैं--जो हो रहा है वह हो ही गया! तू आधे में रुक जा! चटाई खुल तो रही है, लेकिन खुल नहीं गई--रुक जा! उसे अचानक ख्याल हुआ कि यह तो महावीर बड़ी गलत बात कहते हैं। चटाई आधी खुली है, लेकिन खुल कहां गई! उसने चटाई वहीं रोक दी। वह लौट कर वर्षाकाल के बाद महावीर के पास आया और उसने कहा कि आप गलत कहते हैं कि जो हो रहा है वह हो ही गया! क्योंकि चटाई अभी भी आधी खुली रखी है--खुल रही थी, लेकिन खुल नहीं गई! तो मैं आपकी बात गलत सिद्ध करने आया हूं।
महावीर ने उससे जो कहा, वह नहीं समझ पाया होगा, क्योंकि वह बहुत बाल-बुद्धि का रहा होगा, अन्यथा ऐसी बात लेकर नहीं आता। महावीर ने कहा, तूने रोका, रोक ही रहा था, और रुक ही गया! वह जो चटाई तू रोका, रोक रहा था, रुक गया! तूने सिर्फ चटाई रुकते देखी, एक और क्रिया भी साथ चल रही थी, वह हो गई! और फिर कब तक तेरी चटाई रुकी रहेगी? खुलनी शुरू हो गई है, खुल ही जाएगी। तू लौट कर जा! वह जब लौट कर गया तो देखा, एक आदमी खोल कर उस पर लेटा हुआ है। विश्राम कर रहा था। इस आदमी ने सब गड़बड़ कर दिया। पूरा सिद्धांत ही खराब कर दिया।
महावीर जब यह कहते थे कि जो हो रहा है वह हो ही गया, तो वे यह कहते थे,
जो हो रहा है वह तो वर्तमान है, जो हो ही गया वह भविष्य है। कली खिल रही है-- खिल ही गई--खिल ही जाएगी। वह फूल तो भविष्य में बनेगी, अभी तो खिल ही रही है, अभी तो कली ही है, लेकिन जब खिल ही रही है तो खिल जाएगी। उसका खिल जाना भी कहीं घटित हो गया।
अब इसे हम जरा और तरह से देखें, थोड़ा कठिन पड़ेगा।
हम सदा अतीत से देखते हैं। कली खिल रही है। हमारा जो चिंतन है, आमतौर
से वह पास्ट ओरिएंटेड है, वह अतीत से बंधा है। कहते हैं, कली खिल रही है, फूल की तरफ जा रही है, कली फूल बनेगी। लेकिन इससे उलटा भी हो सकता है! यह ऐसा है जैसे मैं आपको पीछे से धक्का दे रहा हूं, आपको आगे सरका रहा हूं। ऐसा भी हो सकता है, कोई आपको आगे से खींच रहा है। गति दोनों तरह हो सकती है। मैं आपको पीछे से धक्का दे रहा हूं, आप आगे जा रहे हैं। ऐसा भी हो सकता है, कोई आपको आगे से खींच रहा है, पीछे से कोई धक्का नहीं दे रहा है, और आप आगे जा रहे हैं।
ज्योतिष का मानना है कि यह अधूरी दृष्टि है कि अतीत धक्का दे रहा है
और भविष्य हो रहा है। पूरी दृष्टि यह है कि अतीत धक्का दे रहा है और भविष्य खींच रहा है। कली फूल बन रही है, इतना ही नहीं; फूल कली को फूल बनने के लिए पुकार भी रहा है, खींच भी रहा है! अतीत पीछे है, भविष्य आगे है, अभी वर्तमान के क्षण में एक कली है। पूरा अतीत धक्का दे रहा है, खुल जाओ! पूरा भविष्य आवाहन दे रहा है, खुल जाओ! अतीत और भविष्य दोनों के दबाव में कली फूल बनेगी। अगर कोई भविष्य न हो तो अतीत अकेला फूल न बना पाएगा। क्योंकि भविष्य में अवकाश चाहिए फूल बनने के लिए। भविष्य में जगह चाहिए, स्पेस चाहिए। भविष्य स्थान दे तो ही कली फूल बन पाएगी।
अगर कोई भविष्य न हो तो अतीत कितना ही सिर मारे, कितना ही धकाए--मैं आपको पीछे से कितना ही धक्का दूं, लेकिन सामने एक दीवार हो तो मैं आपको आगे न हटा पाऊंगा। आगे जगह चाहिए। मैं धक्का दूं और आगे की जगह आपको स्वीकार कर ले, आमंत्रण दे दे कि आ जाओ, अतिथि बना ले, तो ही मेरा धक्का सार्थक हो पाए। मेरे धक्के के लिए भविष्य में जगह चाहिए। अतीत काम करता है, भविष्य जगह देता है।
ज्योतिष की दृष्टि यह है कि अतीत पर खड़ी हुई दृष्टि अधूरी है, आधी वैज्ञानिक है! भविष्य पूरे वक्त पुकार रहा है, पूरे वक्त खींच रहा है। हमें पता नहीं है, हमें दिखाई नहीं पड़ता। यह हमारी आंख की कमजोरी है, यह

हमारी दृष्टि की कमजोरी है। हम दूर नहीं देख पाते। हमें कल कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।
कृष्णमूर्ति की जन्मकुंडली देखें कभी तो हैरान होंगे। अगर एनी बीसेंट ने और लीड बीटर ने फिक्र की होती और कृष्णमूर्ति की जन्मकुंडली देख ली होती तो भूल कर भी कृष्णमूर्ति के साथ मेहनत नहीं करनी चाहिए थी। क्योंकि जन्मकुंडली में साफ है बात कि कृष्णमूर्ति जिस संगठन से संबंधित होंगे, उस संगठन को नष्ट करने वाले होंगे; जिस संस्था से संबंधित होंगे, उस संस्था को विसर्जित करवा देंगे; जिस संगठन के सदस्य बनेंगे, वह संगठन मर जाएगा।
लेकिन एनी बीसेंट भी मानने को तैयार नहीं होती। कोई सोच भी नहीं सकता था। लेकिन हुआ यही। थियोसाफी ने उन्हें खड़ा करने की कोशिश की। थियोसाफी को उनकी वजह से इतना धक्का लगा कि वह सदा के लिए मर गया आंदोलन। फिर एनी बीसेंट ने "स्टार ऑफ दि ईस्ट" नाम की बड़ी संस्था खड़ी की। फिर एक दिन कृष्णमूर्ति उस संस्था को विसर्जित करके अलग हो गए। एनी बीसेंट ने पूरा जीवन उस संस्था को खड़ा करने में समर्पित किया और नष्ट किया अपने को। लेकिन उसमें कृष्णमूर्ति का भी कुछ बहुत हाथ नहीं है। वे जिन नक्षत्रों की छाया में पैदा हुए हैं उन नक्षत्रों की सीधी सूचना है कि वे किसी संस्था में भी डिस्ट्रक्टिव सिद्ध होंगे। किसी भी संस्था के भीतर वे विघटनकारी सिद्ध होंगे।
भविष्य एकदम अनिश्चित नहीं है। हमारा ज्ञान अनिश्चित है। हमारा अज्ञान भारी है। भविष्य में हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हम अंधे हैं। भविष्य का हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता है इसलिए हम कहते हैं कि निश्चित नहीं है। लेकिन भविष्य में दिखाई पड़ने लगे... और ज्योतिष भविष्य में देखने की प्रक्रिया है!
तो ज्योतिष सिर्फ इतनी ही बात नहीं है कि ग्रह-नक्षत्र क्या कहते हैं? उनकी गणना क्या कहती है? यह तो सिर्फ ज्योतिष का एक डायमेंशन, एक आयाम है। फिर भविष्य को जानने के और आयाम भी हैं। मनुष्य के हाथ पर खिंची हुई रेखाएं हैं, मनुष्य के माथे पर खिंची हुई रेखाएं हैं, मनुष्य के पैर पर खिंची हुई रेखाएं हैं। पर ये भी बहुत ऊपरी हैं। मनुष्य के शरीर में छिपे हुए चक्र हैं। उन सब चक्रों का अलग-अलग संवेदन है। उन सब चक्रों की प्रतिपल अलग-अलग गति है, फ्रीक्वेंसी है। उनकी जांच है। मनुष्य के पास छिपा हुआ अतीत का पूरा संस्कार-बीज है।
रान हुब्बार्ड ने एक नया शब्द और एक नयी खोज पश्चिम में शुरू की है। पूरब के लिए तो बहुत पुरानी है! वह खोज है--टाइम ट्रेक। हुब्बार्ड का ख्याल है कि प्रत्येक व्यक्ति जहां भी जीया है--इस पृथ्वी पर या कहीं और किसी ग्रह पर, आदमी की तरह या जानवर की तरह या पौधे की तरह या पत्थर की तरह--आदमी जहां भी जीया है अनंत यात्रा में, वह पूरा का पूरा टाइम ट्रेक, समय की पूरी की पूरी धारा उसके भीतर अभी भी संरक्षित है। और वह धारा खोली जा सकती है। और उस धारा में आदमी को पुनः प्रवाहित किया जा सकता है।
हुब्बार्ड की खोजों में यह खोज बड़ी कीमत की है। इस टाइम ट्रेक पर हुब्बार्ड ने कहा है कि आदमी के भीतर इनग्रेंस है। एक तो हमारे पास स्मृति है जिसमें हम याद रखते हैं कि कल क्या हुआ, परसों क्या हुआ। यह स्मृति कामचलाऊ है, यह रोजमर्रा की है। जैसे हर आदमी दुकान पर या आफिस में रोजमर्रा की बही रखता है। वह कामचलाऊ होती है। वह रोज बेकार हो जाती है। वह असली नहीं है। वह स्थायी भी नहीं है। यह हमारी कामचलाऊ की स्मृति है जिसमें हम रोज काम करते हैं, फिर रोज फेंक देते हैं। पर इससे गहरी एक स्मृति है जो कामचलाऊ नहीं है, जिसमें हमारे जीवन के समस्त अनुभवों का सार, अनंत-अनंत जीवन-पथों पर लिए गए अनुभवों का सार इकट्ठा है।
उसे हुब्बार्ड ने इनग्रेन कहा है। वह हमारे भीतर इनग्रेंड हो गई है।
वह भीतर गहरे में दबी हुई पड़ी है पूरी की पूरी। जैसे कि एक टेप बंद आपके खीसे में पड़ा हो। उसे खोला जा सकता है। और जब उसे खोला जाता है तो महावीर उसको कहते थे जाति-स्मरण, हुब्बार्ड कहता है टाइम ट्रेक--पीछे लौटना समय में। जब उसे खोला जाता है तो ऐसा नहीं होता कि आपको अनुभव हो कि आप रिमेंबर कर रहे हैं। ऐसा नहीं होता है कि आप याद कर रहे हैं। यू री-लिव! जब वह खुलती

है, जब टाइम ट्रेक खुलता है, तो आपको ऐसा अनुभव नहीं होता कि मुझे याद आ रहा है! न, आप पुनः जीते हैं।
समझ लें, अगर टाइम ट्रेक आपका खोला जाए, जो कि खोलना बहुत कठिन नहीं है, और ज्योतिष उसके बिना अधूरा है। तो ज्योतिष की बहुत गहनतम जो पकड़ है वह तो आपके अतीत को खोलने की है, क्योंकि आपका अतीत अगर पूरा पता चल जाए तो आपका पूरा भविष्य पता चलता है। क्योंकि आपका भविष्य आपके अतीत से जन्मेगा। आपके भविष्य को आपके अतीत को जाने बिना नहीं जाना जा सकता। क्योंकि आपका भविष्य आपके अतीत का बेटा होने वाला है, उसी से पैदा होगा। तो पहले तो आपके अतीत की पूरी स्मृति-रेखा को खोलना पड़े।
अगर आपकी स्मृति-रेखा को खोल दिया जाए--जिसकी प्रक्रियाएं हैं और विधियां हैं--तो आप अगर समझ लें कि आपको याद आ रहा है कि आप छह वर्ष के बच्चे हैं और आपके पिता ने चांटा मारा है। तो आपको ऐसा याद नहीं आएगा कि आपको याद आ रहा है कि आप छह वर्ष के बच्चे हैं और पिता चांटा मार रहे हैं; यू विल री-लिव इट। आप इसको पुनः जीएंगे। और जब आप इसको जी रहे होंगे, अगर उस वक्त मैं आपको पूछूं कि तुम्हारा नाम? तो आप कहेंगे, बबलू। आप नहीं कहेंगे, पुरुषोत्तमदास। छह वर्ष का बच्चा उत्तर देगा। आप री-लिव कर रहे हैं उस वक्त, आप स्मरण नहीं कर रहे हैं, पुरुषोत्तमदास स्मरण नहीं कर रहे हैं कि जब मैं छह वर्ष का था। न, पुरुषोत्तमदास छह वर्ष के हो गए हैं! वे कहेंगे, बबलू! उस वक्त वे जो जवाब देंगे वह छह वर्ष का बच्चा बोलेगा।
अगर आपको पिछले जन्म में ले जाया गया है और आप याद कर रहे हैं कि आप एक सिंह हैं, तो अगर उस वक्त आपको छेड़ दिया जाए तो आप बिल्कुल सिंह की तरह गर्जना कर पड़ेंगे। आप आदमी की तरह नहीं बोलेंगे। हो सकता है आप नाखून-पंजों से हमला बोल दें। अगर आप याद कर रहे हैं कि आप एक पत्थर हैं और आपसे कुछ पूछा जाए, तो आप बिल्कुल मौन रह जाएंगे, आप बोल नहीं सकेंगे। आप पत्थर की तरह ही रह जाएंगे।
हुब्बार्ड ने हजारों लोगों की सहायता की है। जैसे एक आदमी है जो ठीक
से नहीं बोल पाता, हुब्बार्ड का कहना है कि वह बचपन की किसी स्मृति पर स्टक हो गया, उसके आगे नहीं बढ़ पाया। तो वह उसके टाइम ट्रेक पर उसको वापस ले जाएगा। उसके इनग्रेन को तोड़ेगा और जब वह छह वर्ष का हो जाएगा, जहां रुक गई थी, जहां से वह आगे नहीं बढ़ा, फिर वह वहां वापस पहुंच जाएगा, टूट जाएगी धारा, वह आदमी वापस लौट आएगा। तब वह तीस साल का हो जाएगा। वह जो बीच में फासला था चौबीस साल का, वह उसको पार कर लेगा। और हैरानी की बात है कि हजारों दवाइयां उस आदमी को बोलने में समर्थ नहीं बना पाई थीं, लेकिन यह टाइम ट्रेक पर लौट कर जाना और पुनः वापस लौट आना, वह आदमी बोलने में समर्थ हो जाएगा!
आपको बहुत दफे जो बीमारियां आती हैं, वे केवल टाइम ट्रेक की वजह से आती हैं। बहुत सी बीमारियां हैं, जैसे दमा। दमा के मरीज की तारीख भी तय रहती है। हर साल ठीक वक्त पर ठीक तारीख पर उसका दमा लौट आता है। और इसलिए दमा के लिए कोई चिकित्सा नहीं हो पाती। क्योंकि दमा असल में शरीर की बीमारी नहीं है, टाइम ट्रेक की बीमारी है, कहीं स्टक हो गई, कहीं मेमोरी अटक गई है। और जब फिर वही आदमी उस समय को स्मरण कर लेता है--बारह तारीख, बरसा का दिन--उसको बारह तारीख आई, बरसा का दिन आया, अब वह तैयारी कर रहा है, अब वह घबरा रहा है कि अब होने वाला है।
आप हैरान होंगे कि इस बार उसको जो दमा होगा, ही इ.ज री-लिविंग। वह दमा नहीं है; वह सिर्फ पिछले साल की बारह तारीख को री-लिव कर रहा है। मगर अब उसका आप इलाज करेंगे, आप उसको झंझट में डाल रहे हैं। उसका इलाज करने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि वह एक साल पहले वाला आदमी अब है ही नहीं जिसका इलाज किया जा सके। आप दवाएं बेकार खो रहे हैं, क्योंकि दवाएं उस आदमी में जा रही हैं जो अभी है और बीमार वह आदमी है जो एक साल पहले था। इन दोनों के बीच कोई तारतम्य नहीं है, कोई संबंध नहीं है। आपकी हर दवा की असफलता उसके दमा को मजबूत कर जाएगी और कह जाएगी कि कुछ नहीं होने वाला है। वह अगले साल की तैयारी फिर कर रहा है। सौ में से सत्तर बीमारियां टाइम ट्रेक पर घटित हो गई, पकड़ गई, जकड़ गई बातें हैं, जो हम लौट-लौट कर जी लेते हैं।

ज्योतिष सिर्फ नक्षत्रों का अध्ययन नहीं है। वह तो है ही! तो वह तो हम बात करेंगे। साथ ही ज्योतिष और अलग-अलग आयामों से मनुष्य के भविष्य को टटोलने की चेष्टा है कि वह भविष्य कैसे पकड़ा जा सके। उसे पकड़ने के लिए अतीत को पकड़ना जरूरी है। उसे पकड़ने के लिए अतीत के जो चिह्न आपके शरीर पर और आप के मन पर छूट गए हैं, उन्हें पहचानना जरूरी है।
आपके शरीर पर भी चिह्न हैं, आपके मन पर भी चिह्न हैं। और जब से ज्योतिषी शरीर के चिह्नों पर बहुत अटक गए हैं तब से ज्योतिष की गहराई खो गई। क्योंकि शरीर के चिह्न बहुत ऊपरी हैं। आपके हाथ की रेखा तो आपके मन के बदलने से इसी वक्त भी बदल सकती है। आपकी जो आयु की रेखा है, अगर आपको भरोसा दिलवा दिया जाए हिप्नोटाइज करके कि आप पंद्रह दिन बाद मर जाओगे, और आपको पंद्रह दिन तक रोज बेहोश करके यह भरोसा पक्का बिठा दिया जाए कि आप पंद्रह दिन बाद मर जाओगे, आप चाहे मरो या न मरो, आपकी उम्र की रेखा पंद्रह दिन के समय पर पहुंच कर टूट जाएगी। आपकी उम्र की रेखा में गैप आ जाएगा। शरीर स्वीकार कर लेगा कि ठीक है, मौत आती है।
शरीर पर जो रेखाएं हैं वे तो बहुत ऊपरी घटनाएं हैं; भीतर गहरे में मन है। और जिस मन को आप जानते हैं वही गहरे में नहीं है, वह तो बहुत ऊपर है; बहुत गहरे में तो वह मन है जिसका आपको पता नहीं है। इस शरीर में भी गहरे में जो चक्र हैं, जिनको योग चक्र कहता है, वे चक्र आपकी जन्मों-जन्मों की संपदा का संगृहीत रूप है। आपके चक्र पर हाथ रख कर जो जानता है वह जान सकता है कि कितनी गति है उस चक्र की। आपके सातों चक्रों को छूकर जाना जा सकता है कि आपने कुछ अनुभव किए हैं कभी या नहीं।
अब मैं सैकड़ों लोगों के चक्रों पर प्रयोग किया हूं। तो मैं हैरान हुआ
कि एकाध या ज्यादा से ज्यादा दो चक्रों के सिवाय आमतौर से तीसरा चक्र शुरू ही नहीं होता, वह गति ही नहीं की है उसने कभी, वह बंद ही पड़ा है। उसका कभी आपने उपयोग ही नहीं किया।
तो वह आपका अतीत है। उसे जान कर अगर एक आदमी मेरे पास आए और मैं देखूं
कि उसके सातों चक्र चल रहे हैं, तो उससे कहा जा सकता है कि यह तुम्हारा अंतिम जीवन है, अगला जीवन नहीं होगा। क्योंकि सात चक्र चल गए हों तो अगले जीवन का अब कोई उपाय नहीं है। इस जीवन में निर्वाण हो जाएगा, मुक्ति हो जाएगी।
महावीर के पास कोई आता तो वे फिक्र करते इस बात की कि उस आदमी के कितने चक्र चल रहे हैं? उसके साथ कितनी मेहनत करनी उचित है, क्या हो सकेगा उसके साथ? मेहनत करने का कोई परिणाम होगा या नहीं होगा? या कब हो पाएगा? या कितने जन्म लगेंगे?
भविष्य को टटोलने की चेष्टा है ज्योतिष--अनेक-अनेक मार्गों से। उनमें
एक मार्ग, जो सर्वाधिक प्रचलित हुआ, वह ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव मनुष्य के ऊपर। उसके लिए वैज्ञानिक आधार रोज-रोज मिलते चले जाते हैं। इतना तय हो गया है कि जीवन प्रभावित है। और जीवन अप्रभावित नहीं हो सकता है।
दूसरी बात ही कठिनाई की रह गई हैः क्या व्यक्तिगत रूप से? एक-एक इंडिविजुअल प्रभावित है? यह जरा चिंता वैज्ञानिकों को लगती है कि एक-एक व्यक्ति? तीन अरब, साढ़े तीन अरब, चार अरब आदमी हैं जमीन पर, क्या एक-एक आदमी अलग-अलग ढंग से?
लेकिन उनको कहना चाहिए, यह इतनी परेशानी की बात क्या है! अगर प्रकृति एक-एक आदमी को अलग-अलग ढंग का अंगूठा दे सकती है इंडिविजुअल, और रिपीट नहीं करती। इतनी बारीकी से हिसाब रख सकती है प्रकृति कि एक-एक आदमी को जो अंगूठा देती है, वह इंडिविजुअल, कि उसकी छाप किसी दूसरे आदमी की छाप फिर कभी नहीं होती। अभी ही नहीं, कभी नहीं होती! जमीन पर अरबों आदमी रहे हैं और अरबों आदमी रहेंगे, लेकिन मेरे अंगूठे की जो छाप है वह दोबारा फिर नहीं होगी।
आप हैरान होंगे कि मैंने एक अंडे के दो जुड़वां बच्चों की बात कही। उनके भी दोनों अंगूठे एक नहीं होते। उनके भी दोनों अंगूठों की छाप अलग होती है। अगर प्रकृति एक-एक आदमी को इतना व्यक्तित्व दे पाती है कि अंगूठे जैसी बेकार चीज को, हम सबको जो बेकार ही है, कुछ खास प्रयोजन का नहीं मालूम

पड़ता, उसको इतनी विशिष्टता दे पाती है, तो एक-एक व्यक्ति को आत्मा और जीवन विशिष्ट न दे पाए, कोई कारण नहीं मालूम होता।
पर विज्ञान बहुत धीमी गति से चलता है। और ठीक है, वैज्ञानिक होने के लिए उतनी धीमी गति ठीक है। जब तक तथ्य पूरी तरह सिद्ध न हो जाएं तब तक इंच भी आगे सरकना उचित नहीं है। प्रोफेट्स, पैगंबर तो छलांगें भर लेते हैं। वे हजारों-लाखों साल बाद जो तय होगी, उसको कह देते हैं। विज्ञान तो एक-एक इंच सरकता है। और प्राइमरी स्कूल के बच्चे के दिमाग में जो बात आ सके, वही बात! वह बात नहीं जो कि प्रोफेट्स और वि.जनरी.ज, सपने देखने वाले लोग जो दूर-दूर की चीजें देख लेते हैं उनकी समझ में आ सके, उतनी बात। नहीं, उससे विज्ञान का उतना प्रयोजन नहीं है।
ज्योतिष मूलतः चूंकि भविष्य की तलाश है, और विज्ञान चूंकि मूलतः अतीत
की तलाश है। विज्ञान इसी बात की खोज है कि कॉज क्या है, कारण क्या है? और ज्योतिष इसी बात की खोज है कि इफेक्ट क्या होगा, परिणाम क्या होगा? इन दोनों के बीच बड़ा भेद है। लेकिन फिर भी विज्ञान को रोज-रोज अनुभव होता है, और कुछ बातें जो अनहोनी लगती थीं, लगती थीं कभी सही नहीं हो सकतीं, वे सही होती हुई मालूम पड़ती हैं।
जैसा मैंने पीछे आपको कहा, अब वैज्ञानिक इसको स्वीकार कर लिए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के साथ बिल्ट-इन अपना व्यक्तित्व लेकर पैदा होता है। इसको पहले वे नहीं मानने को राजी थे। ज्योतिष इसे सदा से कहता रहा है। जैसे समझें एक बीज है, आम का बीज है। आम के बीज के भीतर किसी न किसी रूप में, जब हम आम के बीज को बो देंगे तो जो वृक्ष पैदा होता है, उसका बिल्ट-इन प्रोग्राम होना चाहिए, उसका ब्लू-प्रिंट होना चाहिए। नहीं तो यह आम का बीज बेचारा, न कोई विशेषज्ञों की सलाह लेता है, न किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा पाता है, यह आम के वृक्ष को कैसे पैदा कर लेता है! फिर इसमें वैसे ही पत्ते लग जाते हैं, फिर इसमें वैसे ही आम लग जाते हैं। इस बीज की गुठली के भीतर छिपा हुआ कोई पूरा का पूरा प्रोग्राम चाहिए। नहीं तो बिना प्रोग्राम के यह बीज क्या कर पाएगा? इसके भीतर सब मौजूद चाहिए। जो भी वृक्ष में होगा वह कहीं न कहीं छिपा ही होना चाहिए। हमें दिखाई नहीं पड़ता, काट-पीट कर हम देख लेते हैं, कहीं दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन होना तो चाहिए ही। अन्यथा आम के बीज से फिर नीम निकल सकती थी। भूल-चूक हो जाती। लेकिन कभी भूल होती नहीं दिखाई पड़ती। वह आम ही निकल आता है। सब रिपीट हो जाता है, फिर वही पुनरुक्त कर जाता है।
इस छोटे से बीज में अगर सारी की सारी सूचनाएं छिपी हुई नहीं हैं कि इस बीज को क्या करना है--कैसे अंकुरित होना है, कैसे पत्ते, कैसी शाखाएं, कितना बड़ा वृक्ष, कितनी उम्र का वृक्ष, कितना ऊंचा उठेगा--यह सब इसमें छिपा होना चाहिए। कितने फल लगेंगे, कितने मीठे होंगे, पकेंगे कि नहीं पकेंगे-- यह सब इसके भीतर छिपा होना चाहिए। अगर आम के बीज के भीतर यह सब छिपा है तो आप जब मां के पेट में आते हैं तो आपके बीज में सब छिपा नहीं होगा?
अब वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि आंख का रंग छिपा होगा, बाल का रंग छिपा होगा, शरीर की ऊंचाई छिपी होगी, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की संभावनाएं छिपी होंगी, बुद्धि का अंक छिपा होगा। क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि आप विकसित कैसे होंगे; आपके पास प्रोग्राम चाहिए। कोई हड्डी कैसे हाथ बन जाएगी, कोई हड्डी कैसे पैर बन जाएगी! चमड़ी का एक हिस्सा आंख बन जाएगा, एक कान बन जाएगा। एक हड्डी सुनने लगेगी, एक हड्डी देखने लगेगी। यह सब कैसे होगा?
वैज्ञानिक पहले कहते थे, सब संयोग है। लेकिन संयोग शब्द बहुत अवैज्ञानिक मालूम पड़ता है। संयोग का मतलब है चांस। तो फिर कभी पैर देखने लगे और कभी हाथ सुनने लगे। पर इतना संयोग नहीं मालूम पड़ता! इतना व्यवस्थित मालूम पड़ता है! ज्योतिष ज्यादा वैज्ञानिक बात कहता है। ज्योतिष कहता है कि सब बीज को उपलब्ध है। हम अगर बीज को पढ़ पाएं, अगर हम डिकोड कर पाएं, अगर हम बीज से पूछ सकें कि तेरे इरादे क्या हैं, तो हम आदमी के बाबत घोषणाएं कर सकते हैं!
वृक्षों के बाबत तो वैज्ञानिक घोषणा करने लगे हैं। बीस साल में आदमी
के बाबत बहुत सी घोषणाएं वे करने लगेंगे। और अब तक हम सब समझते रहे कि

सुपरस्टीटस है ज्योतिष, अगर घोषणा विज्ञान करेगा तो वह ज्योतिष हो जाएगा। विज्ञान घोषणा करने लगेगा।
बहुत पुराने ज्योतिषी, ज्योतिष का पुराने से पुराना इजिप्शियन एक ग्रंथ है, जिसको पाइथागोरस ने पढ़ कर और यूनान में ज्योतिष को पहुंचाया। वह ग्रंथ कहता हैः काश, हम सब जान सकें, तो भविष्य बिल्कुल नहीं है। चूंकि हम सब नहीं जानते, कुछ ही जानते हैं, इसलिए जो हम नहीं जानते, वह भविष्य बन जाता है। हमें कहना पड़ता है, शायद ऐसा हो! क्योंकि बहुत कुछ है जो अनजाना है। अगर सब जाना हुआ हो तो हम कह सकते हैं, ऐसा ही होगा। फिर इसमें रत्ती भर फर्क नहीं होगा।
आदमी के बीज में भी अगर सब छिपा है... आज मैं जो बोल रहा हूं, किसी न किसी रूप में मेरे बीज में यह संभावना होनी चाहिए थी। अन्यथा मैं यह कैसे बोलता? अगर किसी दिन यह संभावना हो सकी और हम आदमी के बीज को देख सके, तो मेरे बीज को देख कर, मैं क्या बोल सकूंगा जीवन में, उसकी घोषणा की जा सकती थी। क्या हो सकूंगा, क्या नहीं हो सकूंगा, क्या बनूंगा, क्या नहीं बनूंगा, क्या घटित होगा, उस सबकी सूचना हो सकती थी। कोई आश्चर्य नहीं है कि हम आज नहीं कल आदमी के बीज में झांकने में समर्थ हो जाएं।
जन्मकुंडली या होरोस्कोप उसका ही टटोलना है। हजारों वर्ष से हमारी कोशिश यही है कि जो बच्चा पैदा हो रहा है वह क्या हो सकेगा? हमें कुछ तो अंदाज मिल जाए! तो शायद हम उसे सुविधा दे पाएं। शायद हम उससे आशाएं बांध पाएं। जो होने वाला है, उसके साथ हम राजी हो जाएं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने जीवन के अंत में कहा है कि मैं सदा दुखी था; फिर एक दिन मैं अचानक सुखी हो गया। गांव भर के लोग चकित हो गए कि जो आदमी सदा दुखी था और जो आदमी सदा हर चीज का अंधेरा पहलू देखता था, वह अचानक प्रसन्न कैसे हो गया! जो हमेशा पेसिमिस्ट था, जो हमेशा देखता था कि कांटे कहां-कहां हैं!
एक बार नसरुद्दीन के बगीचे में बहुत अच्छी फसल आ गई। सेव बहुत लगे, ऐसे कि वृक्ष लद गए! तो पड़ोस के एक आदमी ने पूछा--सोचा उसने कि अब तो नसरुद्दीन कोई शिकायत न कर सकेगा--कहा कि इस बार तो फसल ऐसी है कि सोना बरस जाएगा, क्या ख्याल है नसरुद्दीन! नसरुद्दीन ने बड़ी उदासी से कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन जानवरों को खिलाने के लिए सड़े सेव कहां से लाओगे? उदास बैठा है वह। जानवरों को खिलाने के लिए सड़े सेव कहां से लाओगे? सब सेव अच्छे हैं, कोई सड़ा हुआ ही नहीं! एक मुसीबत है।
वह आदमी एक दिन अचानक प्रसन्न हो गया तो गांव के लोगों को हैरानी हुई। गांव के लोगों ने पूछा कि तुम प्रसन्न! क्या राज है? तो नसरुद्दीन ने कहा, आई हैव लर्न्ट टु कोआपरेट विद दि इनएवीटेबल। वह जो अनिवार्य है, उसके साथ सहयोग करना सीख गया। बहुत दिन लड़ कर देख लिया। अब मैंने यह तय कर लिया है कि जो होना है, होना है! अब मैं सहयोग करता हूं इनएवीटेबल के साथ। वह जो अनिवार्य है उसके साथ अब मैं सहयोग करता हूं। अब दुख का कोई कारण न रहा। अब मैं सुखी हूं।
ज्योतिष बहुत बातों की खोज थी। उसमें जो अनिवार्य है, उसके साथ सहयोग। वह जो होने ही वाला है, उसके साथ व्यर्थ का संघर्ष नहीं। जो नहीं होने वाला है, उसकी व्यर्थ की मांग नहीं, उसकी आकांक्षा नहीं! ज्योतिष मनुष्य को धार्मिक बनाने के लिए, तथाता में ले जाने के लिए, परम स्वीकार में ले जाने के लिए उपाय था। उसके बहु आयाम हैं।
तो हम धीरे-धीरे एक-एक आयाम पर बात करेंगे। आज तो इतनी बात, कि जगत एक जीवंत शरीर है, आर्गेनिक यूनिटी है। उसमें कुछ भी अलग-अलग नहीं है; सब संयुक्त है। दूर से दूर जो है वह भी निकट से निकट से जुड़ा है; अजुड़ा कुछ भी नहीं है। इसलिए कोई इस भ्रांति में न रहे कि वह आइसोलेटेड आइलैंड है। कोई इस भ्रांति में न रहे कि कोई एक द्वीप है छोटा सा अलग-थलग।
नहीं, कोई अलग-थलग नहीं है, सब संयुक्त है। और हम पूरे समय एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और एक-दूसरे से प्रभावित हो रहे हैं। सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर भी, जब आप उसके पास से गुजरते हैं तो आपकी तरफ अपनी किरणें फेंक रहा है। फूल भी फेंक रहा है। और आप भी ऐसे ही नहीं गुजर रहे हैं, आप भी अपनी किरणें फेंक रहे हैं। मैंने कहा कि चांद-तारों से हम प्रभावित होते हैं।

ज्योतिष का दूसरा और गहरा ख्याल है कि चांद-तारे भी हमसे प्रभावित होते हैं। क्योंकि प्रभाव कभी भी एकतरफा नहीं होता। जब कभी बुद्ध जैसा आदमी जमीन पर पैदा होता है तो चांद यह न सोचे कि चांद पर उनकी, बुद्ध की, वजह से कोई तूफान नहीं उठते, कि बुद्ध की वजह से चांद पर कोई तूफान शांत नहीं होते! अगर सूरज पर धब्बे आते हैं और सूरज पर अगर तूफान उठते हैं और जमीन पर बीमारियां फैल जाती हैं, तो जब जमीन पर बुद्ध जैसे व्यक्ति पैदा होते हैं और शांति की धारा बहती है और ध्यान का गहन रूप पृथ्वी पर पैदा होता है तो सूरज पर भी तूफान फैलने में कठिनाई होती है। सब संयुक्त है!
एक छोटा सा घास का तिनका भी सूरज को प्रभावित करता है और सूरज भी घास
के तिनके को प्रभावित करता है। न तो घास का तिनका इतना छोटा है कि सूरज कहे कि तेरी हम फिक्र नहीं करते और न सूरज इतना बड़ा है कि यह कह सके कि घास का तिनका मेरे लिए क्या कर सकता है। जीवन संयुक्त है! यहां छोटा-बड़ा कोई भी नहीं है, एक आर्गेनिक यूनिटी है--एकात्म है। इस एकात्म का बोध अगर आए ख्याल में तो ही ज्योतिष समझ में आ सकता है, अन्यथा ज्योतिष समझ में नहीं आ सकता। तो एक तो मैंने यह बात आज कही, कल और आयामों पर हम धीरे-धीरे बात करेंगे।
"ज्योतिषः अद्वैत का विज्ञान" : प्रश्नोत्तर चर्चा

मैं कहता आंखन देखी
दसवां प्रवचन

ज्योतिष अर्थात अध्यात्म

सूर्य के संबंध में कुछ बातें जान लेनी जरूरी हैं। सबसे पहली तो यह बात जान लेनी जरूरी है कि वैज्ञानिक दृष्टि से सूर्य से समस्त सौर परिवार का--मंगल का, बृहस्पति का, चंद्र का, पृथ्वी का जन्म हुआ है। ये सब सूर्य के ही अंग हैं। फिर पृथ्वी पर जीवन का जन्म हुआ--पौधों से लेकर मनुष्य तक। मनुष्य पृथ्वी का अंग है, पृथ्वी सूरज का अंग है। अगर हम इसे ऐसा समझें--एक मां है, उसकी एक बेटी है और उसकी एक बेटी है। उन तीनों के शरीर में एक ही रक्त प्रवाहित होता है, उन तीनों के शरीर का निर्माण एक ही तरह के सेल्स से, एक ही तरह के कोष्ठों से होता है।
और वैज्ञानिक एक शब्द का प्रयोग करते हैं एम्पैथी का। जो चीजें एक से
ही पैदा होती हैं उनके भीतर एक अंतर-समानुभूति होती है। सूर्य से पृथ्वी पैदा होती है, पृथ्वी से हम सबके शरीर निर्मित होते हैं। थोड़ा ही दूर फासले पर सूरज हमारा महापिता है। सूर्य पर जो भी घटित होता है वह हमारे रोम-रोम में स्पंदित होता है। होगा ही। क्योंकि हमारा रोम-रोम भी सूर्य से ही निर्मित है। सूर्य इतना दूर दिखाई पड़ता है, इतना दूर नहीं है। हमारे रक्त के एक-एक कण में और हड्डी के एक-एक टुकड़े में सूर्य के ही अणुओं का वास है। हम सूर्य के ही टुकड़े हैं। और यदि सूर्य से हम प्रभावित होते हों तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं--एम्पैथी है, समानुभूति है।
समानुभूति को भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है, तो ज्योतिष के एक आयाम में प्रवेश हो सकेगा।
कल मैंने जुड़वां बच्चों की बात आपसे की। अगर एक ही अंडे से पैदा हुए
दो बच्चों को दो कमरों में बंद कर दिया जाए--और इस तरह के बहुत से प्रयोग पिछले पचास वर्षों में किए गए हैं। एक ही अंडज जुड़वां बच्चों को दो कमरों में बंद कर दिया गया है, फिर दोनों कमरों में एक साथ घंटी बजाई गई है और दोनों बच्चों को कहा गया है, उनको जो पहला ख्याल आता हो वे उसे कागज पर लिख लें, या जो पहला चित्र उनके दिमाग में आता हो वे उसे कागज पर बना लें।
और बड़ी हैरानी की बात है कि अगर बीस चित्र बनवाए गए हैं दोनों बच्चों
से तो उसमें नब्बे प्रतिशत दोनों बच्चों के चित्र एक जैसे हैं। उनके मन में जो पहली विचारधारा पैदा होती है, जो पहला शब्द बनता है या जो पहला चित्र बनता है, ठीक उसके ही करीब वैसा ही विचार और वैसा ही शब्द दूसरे जुड़वां बच्चे के भीतर भी बनता और निर्मित होता है।
इसे वैज्ञानिक कहते हैं एम्पैथी। इन दोनों के बीच इतनी समानता है कि
ये एक से प्रतिध्वनित होते हैं। इन दोनों के भीतर अनजाने मार्गों से जैसे जोड़ है, कोई कम्युनिकेशन है।
सूर्य और पृथ्वी के बीच ऐसा ही कम्युनिकेशन है, ऐसा ही संवाद है प्रतिपल। और पृथ्वी और मनुष्य के बीच भी इसी तरह का संवाद है प्रतिपल। तो सूर्य, पृथ्वी और मनुष्य, उन तीनों के बीच निरंतर संवाद है, एक निरंतर डायलाग है। लेकिन वह जो संवाद है, डायलाग है, वह बहुत गुह्य है और बहुत आंतरिक है और बहुत सूक्ष्म है। उसके संबंध में थोड़ी सी बातें समझेंगे तो ख्याल में आएगा।
अमरीका में एक रिसर्च सेंटर है--ट्री रिंग रिसर्च सेंटर। वृक्षों में जो, वृक्ष आप काटें तो वृक्ष के तने में आपको बहुत से रिंग्स, बहुत से वर्तुल दिखाई पड़ेंगे। फर्नीचर पर जो सौंदर्य मालूम पड़ता है वह उन्हीं वर्तुलों के कारण है। पचास वर्ष से यह रिसर्च केंद्र, वृक्षों में जो वर्तुल बनते हैं उन पर काम कर रहा है। तो प्रोफेसर डगलस अब उसके डायरेक्टर हैं, जिन्होंने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा, वृक्षों में जो वर्तुल बनते हैं, चक्र बन जाते हैं, उन पर ही पूरा व्यय किया है। बहुत से तथ्य हाथ लगे हैं। पहला तथ्य तो सभी को ज्ञात है साधारणतः कि वृक्ष की उम्र उसमें बने हुए रिंग्स के द्वारा जानी जा सकती है, जानी जाती है। क्योंकि प्रतिवर्ष एक रिंग वृक्ष में निर्मित होता है। एक छाल वृक्ष छोड़ देता है, अपनी चमड़ी

छोड़ देता है, और एक रिंग निर्मित हो जाता है। वृक्ष की कितनी उम्र है, उसके भीतर कितने रिंग बने हैं, इनसे तय हो जाता है। अगर वह पचास साल पुराना है, उसने पचास पतझड़ देखे हैं, तो पचास रिंग उसके तने में निर्मित हो जाते हैं। और हैरानी की बात यह है कि इन तनों पर जो रिंग निर्मित होते हैं वे मौसम की भी खबर देते हैं!
अगर मौसम बहुत गर्म और गीला रहा हो तो जो रिंग है वह चौड़ा निर्मित होता है। अगर मौसम बहुत सर्द और सूखा रहा हो तो जो रिंग है वह बहुत संकरा निर्मित होता है। हजारों साल पुरानी लकड़ी को काट कर पता लगाया जा सकता है कि उस वर्ष जब यह रिंग बना था तो मौसम कैसा था। बहुत वर्षा हुई थी या नहीं हुई थी। सूखा पड़ा था या नहीं पड़ा था। अगर बुद्ध ने कहा है कि इस वर्ष बहुत वर्षा हुई, तो जिस बोधिवृक्ष के नीचे वे बैठे थे वह भी खबर देगा कि वर्षा हुई कि नहीं हुई। बुद्ध से भूल-चूक हो जाए, वह जो वृक्ष है, बोधिवृक्ष, उससे भूल-चूक नहीं होती। उसका रिंग बड़ा होगा, छोटा होगा।
डगलस इन वर्तुलों की खोज करते-करते एक ऐसी जगह पहुंच गया जिसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसने अनुभव किया कि प्रत्येक ग्यारहवें वर्ष पर रिंग जितना बड़ा होता है उतना फिर कभी बड़ा नहीं होता। और वह ग्यारह वर्ष वही वर्ष है जब सूरज पर सर्वाधिक गतिविधि होती है। हर ग्यारहवें वर्ष पर सूरज में एक रिद्म, एक लयबद्धता है, हर ग्यारह वर्ष पर सूरज बहुत सक्रिय हो जाता है। उस पर रेडियो एक्टिविटी बहुत तीव्र होती है। सारी पृथ्वी पर उस वर्ष सभी वृक्ष मोटा रिंग बनाते हैं। एकाध जगह नहीं, एकाध जंगल में नहीं--सारी पृथ्वी पर, सारे वृक्ष उस वर्ष उस रेडियो एक्टिविटी से अपनी रक्षा करने के लिए मोटा रिंग बनाते हैं। वह जो सूरज पर तीव्र घटना घटती है ऊर्जा की, उससे बचाव के लिए उनको मोटी चमड़ी बनानी पड़ती है उस वर्ष, हर ग्यारह वर्ष।
इससे वैज्ञानिकों में एक नया शब्द और एक नयी बात शुरू हुई। मौसम सब जगह अलग होते हैं। यहां सर्दी है, कहीं गर्मी है, कहीं वर्षा है, कहीं शीत है--सब जगह मौसम अलग हैं। इसलिए अब तक कभी पृथ्वी का मौसम, क्लाइमेट ऑफ दि अर्थ--ऐसा कोई शब्द प्रयोग नहीं होता था। लेकिन अब डगलस ने इस शब्द का प्रयोग करना शुरू किया है--क्लाइमेट ऑफ दि अर्थ। ये सब छोटे-मोटे फर्क तो हैं ही, लेकिन पूरी पृथ्वी पर भी सूरज के कारण एक विशेष मौसम चलता है। जो हम नहीं पकड़ पाते, लेकिन वृक्ष पकड़ते हैं। हर ग्यारहवें वर्ष पर वृक्ष मोटा रिंग बनाते हैं, फिर रिंग छोटे होते जाते हैं। फिर पांच साल के बाद बड़े होने शुरू होते हैं, फिर ग्यारहवें साल पर जाकर पूरे बड़े हो जाते हैं। अगर वृक्ष इतने संवेदनशील हैं और सूरज पर होती हुई कोई भी घटना को इतनी व्यवस्था से अंकित करते हैं, तो क्या आदमी के चित्त में भी कोई पर्त होगी, क्या आदमी के शरीर में भी कोई संवेदना का सूक्ष्म रूप होगा, क्या आदमी भी कोई रिंग और वर्तुल निर्मित करता होगा अपने व्यक्तित्व में?
अब तक साफ नहीं हो सका। अभी तक वैज्ञानिकों को साफ नहीं है कोई बात कि आदमी के भीतर क्या होता है। लेकिन यह असंभव मालूम पड़ता है कि जब वृक्ष भी सूर्य पर घटती घटनाओं को संवेदित करते हों तो आदमी किसी भांति संवेदित न करता हो।
ज्योतिष, जो जगत में कहीं भी घटित होता है वह मनुष्य के चित्त में भी घटित होता है, इसकी ही खोज है। इस पर हम पीछे बात करेंगे कि मनुष्य भी वृक्षों जैसी ही खबरें अपने भीतर लिए चलता है, लेकिन उसे खोलने का ढंग उतना आसान नहीं है जितना वृक्ष को खोलने का ढंग आसान है। वृक्ष को काट कर जितनी सुविधा से हम पता लगा लेते हैं उतनी सुविधा से आदमी को काट कर पता नहीं लगा सकते हैं। आदमी को काटना सूक्ष्म मामला है। और आदमी के पास चित्त है, इसलिए आदमी का शरीर उन घटनाओं को नहीं रिकार्ड करता, चित्त रिकार्ड करता है। वृक्षों के पास चित्त नहीं है, इसलिए शरीर ही उन घटनाओं को रिकार्ड करता है।
एक और बात इस संबंध में ख्याल ले लेने जैसी है। जैसा मैंने कहा कि प्रति ग्यारह वर्ष में सूरज पर तीव्र रेडियो एक्टिविटी, तीव्र वैद्युतिक तूफान चलते हैं, ऐसा प्रति ग्यारह वर्ष पर एक रिद्म है। ठीक ऐसा ही एक दूसरा बड़ा रिद्म भी पता चलना शुरू हुआ है, वह है नब्बे वर्ष का, सूरज के ऊपर। और वह और हैरान करने वाला है। और यह जो मैं कह रहा हूं ये सब

वैज्ञानिक तथ्य हैं। ज्योतिषी इस संबंध में कुछ नहीं कहते हैं। लेकिन मैं इसलिए यह कह रहा हूं कि इनके आधार पर ज्योतिष को वैज्ञानिक ढंग से समझना आपके लिए आसान हो सकेगा। नब्बे वर्ष का एक दूसरा वर्तुल है जो कि अनुभव किया गया है। उसके अनुभव की कथा बड़ी अदभुत है।
फैरोह ने इजिप्त में आज से चार हजार साल पहले अपने वैज्ञानिकों को कहा कि नील नदी में जब भी पानी घटता है, बढ़ता है, उसका पूरा ब्योरा रखा जाए। और अकेली नील एक ऐसी नदी है, जिसकी चार हजार वर्ष की बायोग्राफी है। और किसी नदी की कोई बायोग्राफी नहीं है। उसकी जीवन-कथा है पूरी। कब उसमें इंच भर पानी बढ़ा है, तो उसका पूरा रिकार्ड है--चार हजार वर्ष, फैरोह के जमाने से लेकर आज तक।
फैरोह का अर्थ होता है सूर्य, इजिप्त की भाषा में। फैरोह, जो इजिप्त
का सम्राट अपना नाम रखता था, वह सूर्य के आधार पर था। और इजिप्त में ऐसा ख्याल था कि सूर्य और नदी के बीच निरंतर संवाद है। तो फैरोह, जो कि सूर्य का भक्त था, उसने कहा कि नील का पूरा रिकार्ड रखा जाए। सूर्य के संबंध में तो हमें अभी कुछ पता नहीं है, लेकिन कभी तो सूर्य के संबंध में भी पता हो जाएगा, तब यह रिकार्ड काम दे सकेगा। तो चार हजार साल की पूरी कथा है नील नदी की। उसमें इंच भर पानी कब बढ़ा, इंच भर कब कम हुआ; कब उसमें पूर आया, कब पूर नहीं आया; कब नदी बहुत तेजी से बही और कब नदी बहुत धीमी बही, इसका चार हजार वर्ष का लंबा इतिहास इंच-इंच उपलब्ध है।
इजिप्त के एक विद्वान तस्मान ने पूरे नील की कथा लिखी। और अब सूर्य के संबंध में वे बातें ज्ञात हो गईं जो फैरोह के वक्त ज्ञात नहीं थीं और जिनके लिए फैरोह ने कहा था प्रतीक्षा करना! इन चार हजार साल में जो कुछ भी नील नदी में घटित हुआ है वह सूरज से संबंधित है। और नब्बे वर्ष की रिद्म का पता चलता है। हर नब्बे वर्ष में सूर्य पर एक अभूतपूर्व घटना घटती है। वह घटना ठीक वैसी ही है जिसे हम मृत्यु कह सकते हैं--या जन्म कह सकते हैं। ऐसा समझ लें कि सूर्य नब्बे वर्ष में पैंतालीस वर्ष तक जवान होता है
और पैंतालीस वर्ष तक बूढ़ा होता है। उसके भीतर जो ऊर्जा के प्रवाह बहते हैं वे पैंतालीस वर्ष तक जो जवानी की तरफ बढ़ते हैं, क्लाइमेक्स की तरफ जाते हैं, सूरज जैसे जवान होता चला जाता है। और पैंतालीस साल के बाद ढलना शुरू हो जाता है, उसकी उम्र जैसे नीचे गिरने लगती है, और नब्बे वर्ष में सूर्य बिल्कुल बूढ़ा हो जाता है। नब्बे वर्ष में जब सूर्य बूढ़ा होता है तब सारी पृथ्वी भूकंपों से भर जाती है। भूकंपों का संबंध नब्बे वर्ष के वर्तुल से है। सूर्य उसके बाद फिर जवान होना शुरू होता है। वह बड़ी भारी घटना है; क्योंकि सूरज पर इतना परिवर्तन होता है कि पृथ्वी उससे कंपित हो जाए, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन जब पृथ्वी जैसी महाकाय वस्तु भूकंपों से भर जाती है तो आदमी जैसी छोटी सी काया में कुछ नहीं होता होगा? पृथ्वी जैसी महाकाय वस्तु, जब सूरज पर परिवर्तन होते हैं तो कंपित हो जाती है, भूकंपों से भर जाती है, तो आदमी जैसी छोटी सी काया में कुछ भी न होता होगा! ज्योतिषी सिर्फ यही पूछते रहे हैं। वे कहते हैं, यह असंभव है। पता हो तुम्हें या न पता हो, लेकिन आदमी की काया भी अछूती नहीं रह सकती।
पैंतालीस वर्ष जब सूरज जवान होता है, उस वक्त जो बच्चे पैदा होते हैं उनका स्वास्थ्य अदभुत रूप से अच्छा होगा। और जब पैंतालीस वर्ष सूरज बूढ़ा होता है, उस वक्त जो बच्चे पैदा होंगे उनका स्वास्थ्य कभी भी अच्छा नहीं हो पाता। जब सूरज खुद ही ढलाव पर होता है तब जो बच्चे पैदा होते हैं उनकी हालत ठीक वैसी है जैसे पूरब को नाव ले जानी हो और पश्चिम को हवा बहती हो। तो फिर बहुत डांड चलाने पड़ते हैं, फिर पतवार बहुत चलानी पड़ती है और पाल काम नहीं करते। फिर पाल खोल कर नाव नहीं ले जाई जा सकती, क्योंकि उलटे बहना पड़ता है। जब सूरज ही बूढ़ा होता है, सूरज जो कि प्राण है सारे सौर परिवार का, तब जिसको भी जवान होना है उसे उलटी धारा में तैरना पड़ता है--हवा के खिलाफ। उसके लिए संघर्ष भारी है। जब सूरज ही जवान हो रहा होता है तो पूरा सौर परिवार शक्तियों से भरा होता है और उठान की तरफ होता है। तब जो पैदा होता है, वह जैसे पाल वाली नाव में बैठ गया। पूरब की तरफ हवाएं बह रही हैं, उसे डांड भी नहीं चलानी है, पतवार भी नहीं चलानी है, श्रम भी नहीं करना है, नाव खुद बह जाएगी। पाल खोल देना है, हवाएं नाव को ले जाएंगी।

इस संबंध में अब वैज्ञानिकों को भी शक होने लगा है कि सूरज जब अपनी चरम अवस्था में जाता है तब पृथ्वी पर कम से कम बीमारियां होती हैं। और जब सूरज अपने उतार पर होता है तब पृथ्वी पर सर्वाधिक बीमारियां होती हैं। पृथ्वी पर पैंतालीस साल बीमारियों के होते हैं और पैंतालीस साल कम बीमारियों के होते हैं।
नील ठीक चार हजार वर्षों में हर नब्बे वर्ष में इसी तरह जवान और बूढ़ी होती रही है। जब सूरज जवान होता है तो नील में सर्वाधिक पानी होता है। वह पैंतालीस वर्ष तक उसमें पानी बढ़ता चला जाता है। और जब सूरज ढलने लगता है, बूढ़ा होने लगता है, तो नील का पानी नीचे गिरता चला जाता है, वह शिथिल होने लगती है और बूढ़ी हो जाती है।
आदमी इस विराट जगत में कुछ अलग-थलग नहीं है। इस सबका इकट्ठा जोड़ है।
अब तक हमने जो भी श्रेष्ठतम घड़ियां बनाई हैं वे कोई भी उतनी टु दि टाइम, उतना ठीक से समय नहीं बतातीं जितनी पृथ्वी बताती है। पृथ्वी अपनी कील पर तेईस घंटे छप्पन मिनट में एक चक्कर पूरा करती है। उसी के आधार पर चौबीस घंटे का हमने हिसाब तैयार किया हुआ है और हमने घड़ी बनाई हुई है। और पृथ्वी काफी बड़ी चीज है। अपनी कील पर वह ठीक तेईस घंटे छप्पन मिनट में एक चक्र पूरा करती है। और अब तक कभी भी ऐसा नहीं समझा गया था कि पृथ्वी कभी भी भूल करती है एक सेकेंड की भी। लेकिन कारण कुल इतना था कि हमारे पास जांचने के बहुत ठीक उपाय नहीं थे। और हमने साधारण जांच की थी।
लेकिन जब नब्बे वर्ष का वर्तुल पूरा होता है सूर्य का तो पृथ्वी की घड़ी एकदम डगमगा जाती है। उस क्षण में पृथ्वी ठीक अपना वर्तुल पूरा नहीं कर पाती। ग्यारह वर्ष में जब सूरज पर उत्पात होता है तब भी पृथ्वी डगमगा जाती है, उसकी घड़ी गड़बड़ हो जाती है। जब भी पृथ्वी रोज अपनी यात्रा में नये-नये प्रभावों के अंतर्गत आती है, जब भी कोई नया प्रभाव, कोई नया कास्मिक इनफ्लुएंस, कोई महातारा करीब हो जाता है--और करीब का मतलब, इस महा आकाश में बहुत दूर होने पर भी चीजें बहुत करीब हैं--जरा सा करीब आ जाता है। हमारी भाषा बहुत समर्थ नहीं है, क्योंकि जब हम कहते हैं जरा सा करीब आ जाता है तो हम सोचते हैं कि शायद जैसे हमारे पास कोई आदमी आ गया। नहीं, फासले बहुत बड़े हैं। उन फासलों में जरा सा अंतर पड़ जाता है, जो कि हमें कहीं पता भी नहीं चलेगा, तो भी पृथ्वी की कील डगमगा जाती है।
पृथ्वी को हिलाने के लिए बड़ी शक्ति की जरूरत है--इंच भर हिलाने के लिए भी। तो महाशक्तियां जब गुजरती हैं पृथ्वी के पास से, तभी वह हिल पाती है। लेकिन वे महाशक्तियां जब पृथ्वी के पास से गुजरती हैं तो हमारे पास से भी गुजरती हैं। और ऐसा नहीं हो सकता कि जब पृथ्वी कंपित होती है तो उस पर लगे हुए वृक्ष कंपित न हों। और ऐसा भी नहीं हो सकता कि जब पृथ्वी कंपित होती है तो उस पर जीता और चलता हुआ मनुष्य कंपित न हो। सब कंप जाता है।
लेकिन कंपन इतने सूक्ष्म हैं कि हमारे पास कोई उपकरण नहीं थे अब तक कि
हम जांच करते कि पृथ्वी कंप जाती है। लेकिन अब तो उपकरण हैं। सेकेंड के हजारवें हिस्से में भी कंपन होता है तो हम पकड़ लेते हैं। लेकिन आदमी के कंपन को पकड़ने के उपकरण अभी भी हमारे पास नहीं हैं। वह मामला और भी सूक्ष्म है। आदमी इतना सूक्ष्म है, और होना जरूरी है, अन्यथा जीना मुश्किल हो जाए। अगर चौबीस घंटे आपको चारों तरफ के प्रभावों का पता चलता रहे तो आप जी न पाएं। आप जी सकते हैं तभी जब कि आपको आस-पास के प्रभावों का कोई पता नहीं चलता।
एक और नियम है। वह नियम यह है कि न तो हमें अपनी शक्ति से छोटे प्रभावों का पता चलता है और न अपनी शक्ति से बड़े प्रभावों का पता चलता है।
हमारे प्रभाव के पता चलने का एक दायरा है।
जैसे समझ लें कि बुखार चढ़ता है, तो अट्ठानबे डिग्री हमारी एक सीमा है।
और एक सौ दस डिग्री हमारी दूसरी सीमा है। बारह डिग्री में हम जीते हैं। नब्बे डिग्री नीचे गिर जाए तापमान तो हम समाप्त हो जाते हैं। उधर एक सौ दस डिग्री के बाहर चला जाए तो हम समाप्त हो जाते हैं। लेकिन क्या आप समझते हैं, दुनिया में गर्मी बारह डिग्रियों की ही है? आदमी बारह डिग्री के भीतर जीता है। दोनों सीमाओं के इधर-उधर गया कि खो जाएगा। उसका एक बैलेंस है, अट्ठानबे और एक सौ दस के बीच में उसको अपने को सम्हाले रखना है।

ठीक ऐसा बैलेंस सब जगह है। मैं आपसे बोल रहा हूं, आप सुन रहे हैं। अगर मैं बहुत धीमे बोलूं तो ऐसी जगह आ सकती है कि मैं बोलूं और आप न सुन पाएं। लेकिन यह आपको ख्याल में आ जाएगा कि बहुत धीमे बोला जाए तो सुनाई नहीं पड़ेगा, लेकिन आपको यह ख्याल में न आएगा कि इतने जोर से बोला जाए कि आप न सुन पाएं। तो आपको कठिन लगेगा, क्योंकि जोर से बोलेंगे तब तो सुनाई पड़ेगा ही। नहीं, वैज्ञानिक कहते हैं, हमारे सुनने की भी डिग्री है। उससे नीचे भी
हम नहीं सुन पाते, उसके ऊपर भी हम नहीं सुन पाते। हमारे आस-पास भयंकर आवाजें गुजर रही हैं। लेकिन हम सुन नहीं पाते। एक तारा टूटता है आकाश में, कोई नया ग्रह निर्मित होता है या बिखरता है, तो भयंकर गर्जना वाली आवाजें हमारे चारों तरफ से गुजरती हैं। अगर हम उनको सुन पाएं तो हम तत्काल बहरे हो जाएं। लेकिन हम सुरक्षित हैं, क्योंकि हमारे कान सीमा में ही सुनते हैं। जो सूक्ष्म है उसको भी नहीं सुनते, जो विराट है उसको भी नहीं सुनते। एक दायरा है, बस उतने को सुन लेते हैं।
देखने के मामले में भी हमारी वही सीमा है। हमारी सभी इंद्रियां एक दायरे के भीतर हैं, न उसके ऊपर, न उसके नीचे। इसीलिए आपका कुत्ता है, वह आपसे ज्यादा सूंघ लेता है। उसका दायरा सूंघने का आपसे बड़ा है। जो आप नहीं सूंघ पाते, कुत्ता सूंघ लेता है। जो आप नहीं सुन पाते, आपका घोड़ा सुन लेता है। उसके सुनने का दायरा आपसे बड़ा है। एक-डेढ़ मील दूर सिंह आ जाए तो घोड़ा चौंक कर खड़ा हो जाता है। डेढ़ मील के फासले पर उसे गंध आती है। आपको कुछ पता नहीं चलता। अगर आपको सारी गंध आने लगें जितनी गंध आपके चारों तरफ चल रही हैं, तो आप विक्षिप्त हो जाएं। मनुष्य एक कैप्सूल में बंद है, उसकी सीमांत है, उसकी बाउंड्रीज हैं।
आप रेडियो लगाते हैं और आवाज सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है। क्या आप सोचते हैं, जब रेडियो लगाते हैं तब आवाज आनी शुरू होती है?
आवाज तो पूरे समय बहती ही रहती है, आप रेडियो लगाएं या न लगाएं। लगाते हैं तब रेडियो पकड़ लेता है, बहती तो पूरे वक्त रहती है। दुनिया में जितने रेडियो स्टेशन हैं, सबकी आवाजें अभी इस कमरे से गुजर रही हैं। आप रेडियो लगाएंगे तो पकड़ लेंगे। आप रेडियो नहीं लगाते हैं तब भी गुजर रही हैं, लेकिन आपको सुनाई नहीं पड़ रही हैं। आपको सुनाई नहीं पड़ रही हैं।
जगत में न मालूम कितनी ध्वनियां हैं जो चारों तरफ हमारे गुजर रही हैं। भयंकर कोलाहल है। वह पूरा कोलाहल हमें सुनाई नहीं पड़ता, लेकिन उससे हम प्रभावित तो होते ही हैं। ध्यान रहे, वह हमें सुनाई नहीं पड़ता, लेकिन उससे हम प्रभावित तो होते ही हैं। वह हमारे रोएं-रोएं को स्पर्श करता है। हमारे हृदय की धड़कन-धड़कन को छूता है। हमारे स्नायु-स्नायु को कंपा जाता है। वह अपना काम तो कर ही रहा है। उसका काम तो जारी है। जिस सुगंध को आप नहीं सूंघ पाते उसके अणु भी आपके चारों तरफ अपना काम तो कर ही जाते हैं। और अगर उसके अणु किसी बीमारी को लाए हैं तो वे आपको दे जाते हैं। आपकी जानकारी आवश्यक नहीं है किसी वस्तु के होने के लिए।
ज्योतिष का कहना है कि हमारे चारों तरफ ऊर्जाओं के क्षेत्र हैं, एनर्जी फील्ड्स हैं, और वे पूरे समय हमें प्रभावित कर रहे हैं। जैसा मैंने कल कहा कि जैसे ही बच्चा जन्म लेता है, तो जन्म को वैज्ञानिक भाषा में हम कहें एक्सपोजर, जैसे कि फिल्म को हम एक्सपोज करते हैं कैमरे में। जरा सा शटर आप दबाते हैं, एक क्षण के लिए कैमरे की खिड़की खुलती है और बंद हो जाती है। उस क्षण में जो भी कैमरे के समक्ष आ जाता है वह फिल्म पर अंकित हो जाता है। फिल्म एक्सपोज हो गई। अब दुबारा उस पर कुछ अंकित न होगा--अंकित हो गया। और अब यह फिल्म उस आकार को सदा अपने भीतर लिए रहेगी।
जिस दिन मां के पेट में पहली दफा गर्भाधान होता है तो पहला एक्सपोजर होता है। जिस दिन मां के पेट से बच्चा बाहर आता है, जन्म लेता है, उस दिन दूसरा एक्सपोजर होता है। और ये दोनों एक्सपोजर उस संवेदनशील चित्त पर फिल्म की भांति अंकित हो जाते हैं। पूरा जगत उस क्षण में बच्चा अपने भीतर अंकित कर लेता है। और उसकी सिम्पैथीज निर्मित हो जाती हैं।
ज्योतिष इतना ही कहता है कि यदि वह बच्चा जब पैदा हुआ है तब अगर रात है... और जान कर आप हैरान होंगे कि सत्तर से लेकर नब्बे प्रतिशत तक बच्चे रात में पैदा होते हैं! यह थोड़ा हैरानी का है। क्योंकि आमतौर से पचास

प्रतिशत होने चाहिए। चौबीस घंटे का हिसाब है, इसमें कोई हिसाब भी न हो, बेहिसाब भी बच्चे पैदा हों, तो बारह घंटे रात, बारह घंटे दिन, साधारण संयोग और कांबिनेशन से ठीक है पचास-पचास प्रतिशत हो जाएं! कभी भूल-चूक दो-चार प्रतिशत इधर-उधर हो। लेकिन नब्बे प्रतिशत तक बच्चे रात में जन्म लेते हैं; दस प्रतिशत बच्चे मुश्किल से जन्म दिन में लेते हैं। अकारण नहीं हो सकती यह बात, इसके पीछे बहुत कारण हैं।
समझें, एक बच्चा रात में जन्म लेता है। तो उसका जो एक्सपोजर है, उसके चित्त की जो पहली घटना है इस जगत में अवतरण की, वह अंधेरे से संयुक्त होती है, प्रकाश से संयुक्त नहीं होती। यह सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं, क्योंकि बात तो और विस्तीर्ण है। सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। उसके चित्त पर जो पहली घटना है वह अंधकार है। सूर्य अनुपस्थित है। सूर्य की ऊर्जा अनुपस्थित है। चारों तरफ जगत सोया हुआ है। पौधे अपनी पत्तियों को बंद किए हुए हैं। पक्षी अपने पंखों को सिकोड़ कर आंखें बंद किए हुए अपने घोंसलों में छिप गए हैं। सारी पृथ्वी पर निद्रा है। हवा के कण-कण में चारों तरफ नींद है। सब सोया हुआ है। जागा हुआ कुछ भी नहीं है। यह पहला इंपैक्ट है बच्चे पर।
अगर हम बुद्ध और महावीर से पूछें तो वे कहेंगे कि अधिक बच्चे इसलिए रात में जन्म लेते हैं क्योंकि अधिक आत्माएं सोई हुई हैं, एस्लीप हैं। दिन को वे नहीं चुन सकते पैदा होने के लिए। दिन को चुनना कठिन है। और हजार कारण हैं, और हजार कारण हैं, एक कारण महत्वपूर्ण यह भी है--अधिकतम लोग सोए हुए हैं, अधिकतम लोग तंद्रित हैं, अधिकतम लोक निद्रा में हैं, अधिकतम लोग आलस्य में, प्रमाद में हैं। सूर्य के जागने के साथ उनका जन्म ऊर्जा का जन्म होगा, सूर्य के डूबे हुए अंधेरे की आड़ में उनका जन्म नींद का जन्म होगा।
रात में एक बच्चा पैदा हो रहा है तो एक्सपोजर एक तरह का होने वाला है। जैसे कि हमने अंधेरे में एक फिल्म खोली हो या प्रकाश में एक फिल्म खोली हो, तो एक्सपोजर भिन्न होने वाले हैं। एक्सपोजर की बात थोड़ी और समझ लेनी चाहिए, क्योंकि वह ज्योतिष के बहुत गहराइयों से संबंधित है।
जो वैज्ञानिक एक्सपोजर के संबंध में खोज करते हैं वे कहते हैं कि एक्सपोजर की घटना बहुत बड़ी है, छोटी घटना नहीं है। क्योंकि जिंदगी भर वह आपका पीछा करेगी। एक मुर्गी का बच्चा पैदा होता है। पैदा हुआ कि भागने लगता है मुर्गी के पीछे। हम कहते हैं कि मां के पीछे भाग रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं, नहीं। मां से कोई संबंध नहीं है; एक्सपोजर! हम कहते हैं, अपनी मां के पीछे भाग रहा है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, नहीं! पहले हम भी ऐसा ही सोचते थे कि मां के पीछे भाग रहा है, लेकिन बात ऐसी नहीं है। और जब सैकड़ों प्रयोग किए गए तो बात सही हो गई है।
वैज्ञानिकों ने सैकड़ों प्रयोग किए। मुर्गी का बच्चा जन्म रहा है, अंडा फूट रहा है, चूजा बाहर निकल रहा है, तो उन्होंने मुर्गी को हटा लिया और उसकी जगह एक रबर का गुब्बारा रख दिया। बच्चे ने जिस चीज को पहली दफा देखा वह रबर का गुब्बारा था, मां नहीं थी। आप चकित होंगे यह जान कर कि वह बच्चा एक्सपोज्ड हो गया। इसके बाद वह रबर के गुब्बारे को ही मां की तरह प्रेम कर सका। फिर वह अपनी मां को नहीं प्रेम कर सका। रबर का गुब्बारा हवा में इधर-उधर जाएगा तो वह पीछे भागेगा। उसकी मां भागती रहेगी तो उसकी फिक्र ही नहीं करेगा। रबर के गुब्बारे के प्रति वह आश्चर्यजनक रूप से संवेदनशील हो गया। जब थक जाएगा तो गुब्बारे के पास टिक कर बैठ जाएगा। गुब्बारे को प्रेम करने की कोशिश करेगा। गुब्बारे से चोंच लड़ाने की कोशिश करेगा-- लेकिन मां से नहीं।
इस संबंध में बहुत काम लारेंज नाम के एक वैज्ञानिक ने किया है और उसका कहना है कि वह जो फर्स्ट मोमेंट एक्सपोजर है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। वह मां से इसीलिए संबंधित हो जाता है--मां होने की वजह से नहीं, फर्स्ट एक्सपोजर की वजह से। इसलिए नहीं कि वह मां है इसलिए उसके पीछे दौड़ता है; इसलिए कि वही सबसे पहले उसको उपलब्ध होती है इसलिए पीछे दौड़ता है।
अभी इस पर और काम चला है। जिन बच्चों को मां के पास बड़ा न किया जाए वे किसी स्त्री को जीवन में कभी प्रेम करने में समर्थ नहीं हो पाते--एक्सपोजर

ही नहीं हो पाता। अगर एक बच्चे को उसकी मां के पास बड़ा न किया जाए तो स्त्री का जो प्रतिबिंब उसके मन में बनना चाहिए वह बनता ही नहीं। और अगर पश्चिम में आज होमोसेक्सुअलिटी बढ़ती हुई है तो उसके एक बुनियादी कारणों में वह कारण है। हेट्रोसेक्सुअल, विजातीय यौन के प्रति जो प्रेम है वह पश्चिम में कम होता चला जा रहा है। और सजातीय यौन के प्रति प्रेम बढ़ता चला जा रहा है, जो विकृति है। लेकिन वह विकृति होगी। क्योंकि दूसरे यौन के प्रति जो प्रेम है--पुरुष का स्त्री के प्रति और स्त्री का पुरुष के प्रति--वह बहुत सी शर्तों के साथ है। पहला तो एक्सपोजर जरूरी है। बच्चा पैदा हुआ है तो उसके मन पर क्या एक्सपोज हो!
अब यह बहुत सोचने जैसी बात है। दुनिया में स्त्रियां तब तक सुखी न हो पाएंगी जब तक उनका एक्सपोजर मां के साथ हो रहा है। उनका एक्सपोजर पिता के साथ होना चाहिए। पहला इंपैक्ट लड़की के मन पर पिता का पड़ना चाहिए। तो ही वह किसी पुरुष को भरपूर मन से प्रेम करने में समर्थ हो पाएगी। अगर पुरुष स्त्री से जीत जाता है तो उसका कुल कारण इतना है कि लड़के और लड़कियां दोनों ही मां के पास बड़े होते हैं। तो लड़के का एक्सपोजर तो बिल्कुल ठीक होता है स्त्री के प्रति, लेकिन लड़की का एक्सपोजर बिल्कुल ठीक नहीं होता। इसलिए जब तक दुनिया में लड़की को पिता का एक्सपोजर नहीं मिलता तब तक स्त्रियां कभी भी पुरुष के समकक्ष खड़ी नहीं हो सकेंगी--न राजनीति के द्वारा, न नौकरी के द्वारा, न आर्थिक स्वतंत्रता के द्वारा। क्योंकि मनोवैज्ञानिक अर्थों में एक कमी उनमें रह जाती है। वह अब तक की पूरी संस्कृति उस कमी को पूरा नहीं कर पाई है।
अगर यह छोटा सा गुब्बारा, या मुर्गी, या मां, इनका एक्सपोजर प्रभावी
हो जाता है इतना ज्यादा कि चित्त सदा के लिए उससे निर्मित हो जाता है! ज्योतिष कहता है कि जो भी चारों तरफ मौजूद है, दि होल यूनिवर्स, वह सभी का सभी उस एक्सपोजर के क्षण में, उस चित्त के खुलने के क्षण में भीतर प्रवेश कर जाता है और जीवन भर की सिम्पैथीज और एंटीपैथीज निर्मित हो जाती हैं। उस क्षण जो नक्षत्र पृथ्वी को चारों तरफ से घेरे हुए हैं--नक्षत्र घेरे हुए हैं, उसका कुल मतलब इतना कि उस क्षण पृथ्वी के ऊपर जिन नक्षत्रों की रेडियो एक्टिविटी का प्रभाव पड़ रहा है।
अब वैज्ञानिक मानते हैं कि प्रत्येक ग्रह की रेडियो एक्टिविटी अलग है। जैसे वीनस; उससे जो रेडियो सक्रिय तत्व हमारी तरफ आते हैं वे चांद के रेडियो सक्रिय तत्वों से भिन्न हैं। या जैसे ज्युपिटर; उससे जो रेडियो तत्व हम तक आते हैं वे सूर्य के रेडियो तत्वों से भिन्न हैं। क्योंकि इन प्रत्येक ग्रहों के पास अलग तरह की गैसों और अलग तरह के तत्वों का वातावरण है। उन सबसे अलग-अलग प्रभाव पृथ्वी की तरफ आते हैं। और जब एक बच्चा पैदा हो रहा है तो पृथ्वी के चारों तरफ क्षितिज को घेर कर खड़े हुए जो भी नक्षत्र हैं--ग्रह हैं, उपग्रह हैं, दूर आकाश में महातारे हैं--वे सब के सब उस एक्सपोजर के क्षण में बच्चे के चित्त पर गहराइयों तक प्रवेश कर जाते हैं। फिर उसकी कमजोरियां, उसकी ताकतें, उसका सामर्थ्य, सब सदा के लिए प्रभावित हो जाता है।
अब जैसे हिरोशिमा में एटम बम के गिरने के बाद पता चला, उसके पहले पता नहीं था। हिरोशिमा में एटम जब तक नहीं गिरा था तब तक इतना ख्याल था कि एटम गिरेगा तो लाखों लोग मरेंगे; लेकिन यह पता नहीं था कि पीढ़ियों तक आने वाले बच्चे प्रभावित हो जाएंगे। हिरोशिमा और नागासाकी में जो लोग मर गए, मर गए! वह तो एक क्षण की बात थी, समाप्त हो गए। लेकिन हिरोशिमा में जो वृक्ष बच गए, जो जानवर बच गए, जो पक्षी बच गए, जो मछलियां बच गईं, जो आदमी बच गए, वे सदा के लिए प्रभावित हो गए।
अब वैज्ञानिक कहते हैं कि दस पीढ़ियों में हमें पूरा अंदाज लग पाएगा
कि क्या-क्या परिणाम हुए। क्योंकि इनका सब कुछ रेडियो एक्टिविटी से प्रभावित हो गया। अब जो स्त्री बच गई है उसके शरीर में जो अंडे हैं वे प्रभावित हो गए। अब वे अंडे, कल उनमें से एक अंडा बच्चा बनेगा, वह बच्चा वैसा ही बच्चा नहीं होगा जैसा साधारणतः होता है। क्योंकि एक विशेष तरह की रेडियो सक्रियता उस अंडे में प्रवेश कर गई है। वह लंगड़ा हो सकता है, लूला हो सकता है, अंधा हो सकता है। उसकी चार आंखें भी हो सकती हैं, आठ हाथ भी हो

सकते हैं। कुछ भी हो सकता है! अभी हम कुछ भी नहीं कह सकते कि वह कैसा होगा।
उसका मस्तिष्क बिल्कुल रुग्ण भी हो सकता है, प्रतिभाशाली भी हो सकता है।
वह जीनियस भी पैदा हो सकता है, जैसा जीनियस कभी पैदा न हुआ हो। अभी हमें कुछ भी पता नहीं कि वह क्या होगा। इतना पक्का पता है कि जैसा होना चाहिए था साधारणतः आदमी, वैसा वह नहीं होगा।
अगर एटम... एटम बहुत छोटी ताकत है। हमारे लिए बहुत बड़ी ताकत है। एक एटम
एक लाख बीस हजार आदमियों को मार पाया हिरोशिमा और नागासाकी में। वह बहुत छोटी ताकत है। सूर्य के ऊपर जो ताकत है उसका हम इससे कोई हिसाब नहीं लगा सकते। जैसे अरबों एटम बम एक साथ फूट रहे हों! उतनी रेडियो एक्टिविटी सूरज के ऊपर है। और असाधारण है यह! क्योंकि सूरज चार अरब वर्षों से तो पृथ्वी को ही गर्मी दे रहा है, और उससे पहले से है। और अभी भी वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम चार हजार वर्ष तक तो ठंडे होने की कोई संभावना नहीं है। प्रतिदिन इतनी गर्मी! और सूरज दस करोड़ मील दूर है पृथ्वी से। हिरोशिमा में जो घटना घटी उसका प्रभाव दस मील से ज्यादा दूर नहीं पड़ सका। दस करोड़ मील दूर सूरज है, चार अरब वर्षों से तो वह हमें सारी गर्मी दे रहा है, फिर भी अभी रिक्त नहीं हुआ है। पर यह सूरज कुछ भी नहीं है, इससे महासूर्य हैं, ये सब तारे हैं जो आकाश के। और इन प्रत्येक तारों से अपनी व्यक्तिगत और निजी क्षमता की सक्रियता हम तक प्रवाहित होती है।
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, जो अंतरिक्ष में फैलती ऊर्जाओं के संबंध में अध्ययन कर रहा है, गाकलिन, उसका कहना है कि जितनी ऊर्जाएं हमें अनुभव में आ रही हैं उनमें से हम एक प्रतिशत के संबंध में भी पूरा नहीं जानते। जब से हमने कृत्रिम उपग्रह छोड़े हैं पृथ्वी के बाहर, तब से उन्होंने हमें इतनी खबरें दी हैं कि हमारे पास न शब्द हैं उन खबरों को समझने के लिए, न हमारे पास विज्ञान है। और इतनी ऊर्जाएं, इतनी एनर्जीज चारों तरफ बह रही होंगी, इसकी हमें कल्पना ही नहीं थी।
इस संबंध में एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। इस जगत में, जैसा मैंने कल कहा, लोग सोचते हैं कि ज्योतिष कोई विकसित होता हुआ विज्ञान है। मैंने आपसे कहा, हालत उलटी है।
ताजमहल अगर आपने देखा हो तो यमुना के उस पार कुछ दीवारें आपको उठी हुई दिखाई पड़ी होंगी। कहानी यह है कि शाहजहां ने मुमताज के लिए तो ताजमहल बनवाया और अपने लिए, जैसा संगमरमर का ताजमहल है, ऐसा ही अपनी कब्र के लिए संगमूसा का, काले पत्थर का महल वह यमुना के उस पार बना रहा था। लेकिन वह पूरा नहीं हो पाया। ऐसी कथा सदा से प्रचलित थी। लेकिन अभी इतिहासज्ञों ने खोज की है तो पता चला कि वह जो उस तरफ दीवारें उठी खड़ी हैं वे किसी बनने वाले महल की दीवारें नहीं हैं, वे किसी बहुत बड़े महल की, जो गिर चुका, खंडहर हैं! पर उठती दीवारें और खंडहर एक से मालूम पड़ सकते हैं। एक नये मकान की दीवार उठ रही है, अधूरी है अभी, मकान बना नहीं। हजारों साल बाद तय करना मुश्किल हो जाएगा कि यह नये मकान की बनती हुई दीवार है या किसी बने-बनाए मकान की, जो गिर चुका, उसकी बची-खुची अवशेष है, खंडहर है।
पिछले तीन-चार सौ, पांच सौ सालों से यही समझा जाता था कि वह जो दूसरी तरफ महल खड़ा हुआ है, वह शाहजहां बनवा रहा था, वह पूरा नहीं हो पाया। लेकिन अभी जो खोजबीन हुई है उससे पता चलता है कि वह महल पूरा था। और न केवल यह पता चलता है कि वह महल पूरा था, बल्कि यह भी पता चलता है कि ताजमहल शाहजहां ने खुद कभी नहीं बनवाया। वह भी हिंदुओं का बहुत पुराना महल है, जिसको सिर्फ कनवर्ट किया, जिसको सिर्फ थोड़ा सा फर्क किया। क्योंकि... और कई दफे इतनी हैरानी होती है कि जिन बातों को हम सुनने के आदी हो जाते हैं, फिर उनसे भिन्न बात को हम सोचते भी नहीं! ताजमहल जैसी एक भी कब्र दुनिया में किसी ने नहीं बनाई है। कब्र ऐसी बनाई ही नहीं जाती। कब्र ऐसी बनाई ही नहीं जाती! ताजमहल के चारों तरफ सिपाहियों के खड़े होने के स्थान हैं, बंदूकें और तोपें लगाने के स्थान हैं। कब्रों की बंदूकें और तोपें लगा कर कोई रक्षा नहीं करनी पड़ती। वह महल है पुराना, उसको सिर्फ कनवर्ट किया गया है कब्र में। वह दूसरी तरफ भी एक पुराना महल है जो गिर गया, जिसके खंडहर शेष रह गए। ज्योतिष भी खंडहर की तरह है। वह बहुत बड़ा महल था, पूरा विज्ञान था, जो
ढह गया। कोई नयी चीज नहीं है, कोई नया उठता हुआ मकान नहीं है। लेकिन जो

दीवारें रह गई हैं उनसे कुछ पता नहीं चलता कि कितना बड़ा महल उसकी जगह रहा होगा। बहुत बार सत्य मिलते हैं और खो जाते हैं।
अरिस्टीकारस नाम के एक यूनानी ने जीसस से दो सौ, तीन सौ वर्ष पूर्व यह सत्य खोज निकाला था कि सूर्य केंद्र है, पृथ्वी केंद्र नहीं है। अरिस्टीकारस का यह सूत्र, हेलियो सेंट्रिक, कि सूरज केंद्र पर है, जीसस से तीन सौ वर्ष पहले खोज निकाला गया था। लेकिन जीसस के सौ वर्ष बाद टोलिमी ने इस सूत्र को उलट दिया और पृथ्वी को फिर केंद्र बना दिया। और फिर दो हजार साल लग गए केपलर और कोपरनिकस को खोजने में वापस कि सूर्य केंद्र है, पृथ्वी केंद्र नहीं है। दो हजार साल तक अरिस्टीकारस का सत्य दबा पड़ा रहा। दो हजार साल बाद जब कोपरनिकस ने फिर से कहा तब अरिस्टीकारस की किताबें खोजी गईं। लोगों ने कहा, यह तो हैरानी की बात है!
अमरीका कोलंबस ने खोजा, ऐसा पश्चिम के लोग कहते हैं। एक बहुत प्रसिद्ध मजाक प्रचलित है। आस्कर वाइल्ड अमरीका गया हुआ था। उसकी मान्यता थी कि अमरीका और भी बहुत पहले खोजा जा चुका है। और यह सच है। यह सच्चाई है कि अमरीका बहुत दफे खोजा जा चुका और पुनः-पुनः खो गया। उससे संबंध-सूत्र टूट गए। एक व्यक्ति ने आस्कर वाइल्ड को पूछा कि हम सुनते हैं कि आप कहते हैं, अमरीका पहले भी खोजा जा चुका है। तो क्या आप नहीं मानते कि कोलंबस ने पहली खोज की? और अगर कोलंबस ने पहली खोज नहीं की तो अमरीका बार-बार क्यों खो गया?
तो आस्कर वाइल्ड ने मजाक में कहा कि कोलंबस ने पुनः खोज की है, ही रि- डिसकवर्ड अमेरिका। इट वा.ज डिसकवर्ड सो मेनी टाइम्स, बट एवरी टाइम हश्ड-अप। हर बार दबा कर इसको चुप रखना पड़ा, क्योंकि यह उपद्रव, इसको बार-बार हश्ड-अप!
महाभारत अमरीका की चर्चा करता है। अर्जुन की एक पत्नी मेक्सिको की लड़की है। मेक्सिको में जो मंदिर हैं वे हिंदू मंदिर हैं, जिन पर गणेश की मूर्ति तक खुदी हुई है।
बहुत बार सत्य खोज लिए जाते हैं, खो जाते हैं। बहुत बार हमें सत्य पकड़ में आ जाता है, फिर खो जाता है। ज्योतिष उन बड़े से बड़े सत्यों में से एक है जो पूरा का पूरा ख्याल में आ चुका और खो गया। उसे फिर से ख्याल में लाने के लिए बड़ी कठिनाई है। इसलिए मैं बहुत सी दिशाओं से आपसे बात कर रहा हूं। क्योंकि ज्योतिष पर सीधी बात करने का अर्थ होता है कि वह जो सड़क पर ज्योतिषी बैठा है, शायद मैं उसके संबंध में कुछ कह रहा हूं। जिसको आप चार आने देकर और अपना भविष्य-फल निकलवा आते हैं, शायद उसके संबंध में या उसके समर्थन में कुछ कह रहा हूं।
नहीं, ज्योतिष के नाम पर सौ में से निन्यानबे धोखाधड़ी है। और वह जो सौवां आदमी है, निन्यानबे को छोड़ कर उसे समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह कभी इतना डागमेटिक नहीं हो सकता कि कह दे कि ऐसा होगा ही। क्योंकि वह जानता है कि ज्योतिष बहुत बड़ी घटना है। इतनी बड़ी घटना है कि आदमी बहुत झिझक कर ही वहां पैर रख सकता है। जब मैं ज्योतिष के संबंध में कुछ कह रहा हूं तो मेरा प्रयोजन है कि मैं उस पूरे-पूरे विज्ञान को आपको बहुत तरफ से उसके दर्शन करा दूं उस महल के। तो फिर आप भीतर बहुत आश्वस्त होकर प्रवेश कर सकें। और मैं जब ज्योतिष की बात कर रहा हूं तो ज्योतिषी की बात नहीं कर रहा हूं। उतनी छोटी बात नहीं है। पर आदमी की उत्सुकता उसी में है कि उसे पता चल जाए कि उसकी लड़की की शादी इस साल होगी कि नहीं होगी।
इस संबंध में यह भी आपको कह दूं कि ज्योतिष के तीन हिस्से हैं।
एक--जिसे हम कहें अनिवार्य, एसेंशियल, जिसमें रत्ती भर फर्क नहीं होता। वही सर्वाधिक कठिन है उसे जानना। फिर उसके बाहर की परिधि है--नॉन एसेंशियल, जिसमें सब परिवर्तन हो सकते हैं। मगर हम उसी को जानने को उत्सुक होते हैं। और उन दोनों के बीच में एक परिधि है--सेमी एसेंशियल, अर्द्ध अनिवार्य, जिसमें जानने से परिवर्तन हो सकते हैं, न जानने से कभी परिवर्तन नहीं होंगे। तीन हिस्से कर लें। एसेंशियल--जो बिल्कुल गहरा है, अनिवार्य, जिसमें कोई अंतर नहीं हो सकता। उसे जानने के बाद उसके साथ सहयोग करने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। धर्मों ने इस अनिवार्य तथ्य की खोज के लिए ही ज्योतिष की ईजाद की, उस तरफ गए। उसके बाद दूसरा हिस्सा है--सेमी एसेंशियल,

अर्द्ध अनिवार्य। अगर जान लेंगे तो बदल सकते हैं, अगर नहीं जानेंगे तो नहीं बदल पाएंगे। अज्ञान रहेगा, तो जो होना है वही होगा। ज्ञान होगा, तो आल्टरनेटिव्स हैं, विकल्प हैं, बदलाहट हो सकती है। और तीसरा सबसे ऊपर का सरफेस, वह है--नॉन एसेंशियल। उसमें कुछ भी जरूरी नहीं है। सब सांयोगिक है। लेकिन हम जिस ज्योतिषी की बात समझते हैं, वह नॉन एसेंशियल का ही मामला है। एक आदमी कहता है, मेरी नौकरी लग जाएगी या नहीं लग जाएगी? चांद-तारों के प्रभाव से आपकी नौकरी के लगने, न लगने का कोई भी गहरा संबंध नहीं है। एक आदमी पूछता है, मेरी शादी हो जाएगी या नहीं हो जाएगी? शादी के बिना भी समाज हो सकता है। एक आदमी पूछता है कि मैं गरीब रहूंगा कि अमीर रहूंगा? एक समाज कम्युनिस्ट हो सकता है, कोई गरीब और अमीर नहीं होगा। ये नॉन एसेंशियल हिस्से हैं जो हम पूछते हैं। एक आदमी पूछता है कि अस्सी साल में मैं सड़क पर से गुजर रहा था और एक संतरे के छिलके पर पैर पड़ कर गिर पड़ा, तो मेरे चांद-तारों का इसमें कोई हाथ है या नहीं है? अब कोई चांद-तारे से तय नहीं किया जा सकता कि फलां-फलां नाम के संतरे से और फलां-फलां सड़क पर आपका पैर फिसलेगा। यह निपट गंवारी है।
लेकिन हमारी उत्सुकता इसमें है कि आज हम निकलेंगे सड़क पर से तो कोई छिलके पर पैर पड़ कर फिसल तो नहीं जाएगा। यह नॉन एसेंशियल है। यह हजारों कारणों पर निर्भर है, लेकिन इसके होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। इसका बीइंग से, आत्मा से कोई संबंध नहीं है। यह घटनाओं की सतह है। ज्योतिष से इसका कोई लेना-देना नहीं है। और चूंकि ज्योतिषी इसी तरह की बात-चीत में लगे रहते हैं इसलिए ज्योतिष का भवन गिर गया। ज्योतिष के भवन के गिर जाने का कारण यह हुआ कि ये बातें बेवकूफी की हैं। कोई भी बुद्धिमान आदमी इस बात को मानने को राजी नहीं हो सकता कि मैं जिस दिन पैदा हुआ उस दिन लिखा था कि मरीन ड्राइव पर फलां-फलां दिन एक छिलके पर मेरा पैर पड़ जाएगा और मैं फिसल जाऊंगा। न तो मेरे फिसलने का चांद-तारों से कोई प्रयोजन है, न उस छिलके का कोई प्रयोजन है। इन बातों से संबंधित होने के कारण ज्योतिष बदनाम हुआ। और हम सबकी उत्सुकता यही है कि ऐसा पता चल जाए। इससे कोई संबंध नहीं है। सेमी एसेंशियल कुछ बातें हैं। जैसे जन्म-मृत्यु सेमी एसेंशियल हैं। अगर आप इसके बाबत पूरा जान लें तो इसमें फर्क हो सकता है; और न जानें तो फर्क नहीं होगा। चिकित्सा की हमारी जानकारी बढ़ जाएगी तो हम आदमी की उम्र को लंबा कर लेंगे--कर रहे हैं। अगर हमारी एटम बम की खोजबीन और बढ़ती चली गई तो हम लाखों लोगों को एक साथ मार डालेंगे--मारा है। यह सेमी एसेंशियल, अर्द्ध अनिवार्य जगत है। जहां कुछ चीजें हो सकती हैं, नहीं भी हो सकती हैं। अगर जान लेंगे तो अच्छा है; क्योंकि विकल्प चुने जा सकते हैं। इसके बाद एसेंशियल का, अनिवार्य का जगत है। वहां कोई बदलाहट नहीं होती। लेकिन हमारी उत्सुकता पहले तो नॉन एसेंशियल में रहती है। कभी शायद किसी की सेमी एसेंशियल तक जाती है। वह जो एसेंशियल है, अनिवार्य है, अपरिहार्य है, जिसमें कोई फर्क होता ही नहीं, उस केंद्र तक हमारी पकड़ नहीं जाती, न हमारी इच्छा जाती है।
महावीर एक गांव के पास से गुजर रहे हैं। और महावीर का एक शिष्य गोशालक उनके साथ है, जो बाद में उनका विरोधी हो गया। एक पौधे के पास से दोनों गुजरते हैं। गोशालक महावीर से कहता है कि सुनिए, यह पौधा लगा हुआ है। क्या सोचते हैं आप, यह फूल तक पहुंचेगा या नहीं पहुंचेगा? इसमें फूल लगेंगे या नहीं लगेंगे? यह पौधा बचेगा या नहीं बचेगा? इसका भविष्य है या नहीं? महावीर आंख बंद करके उसी पौधे के पास खड़े हो जाते हैं। गोशालक पूछता
है कि कहिए! आंख बंद करने से क्या होगा? टालिए मत।
उसे पता भी नहीं कि महावीर आंख बंद करके क्यों खड़े हो गए हैं। वे एसेंशियल की खोज कर रहे हैं। इस पौधे के बीइंग में उतरना जरूरी है, इस पौधे की आत्मा में उतरना जरूरी है। बिना इसके नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा। आंख खोल कर महावीर कहते हैं कि यह पौधा फूल तक पहुंचेगा। गोशालक उनके सामने ही पौधे को उखाड़ कर फेंक देता है, और खिलखिला कर हंसता है, क्योंकि इससे ज्यादा और अतर्क्य प्रमाण क्या होगा? महावीर के लिए कुछ कहने की अब और जरूरत क्या है? उसने पौधे को उखाड़ कर फेंक दिया, और उसने कहा कि देख

लें। वह हंसता है, महावीर मुस्कुराते हैं। और दोनों अपने रास्ते चले आते हैं।
सात दिन बाद वे वापस उसी रास्ते पर लौट रहे हैं। जैसे ही महावीर और वे दोनों अपने आश्रम में पहुंचे जहां उन्हें ठहर जाना है, बड़ी भयंकर वर्षा हुई। सात दिन तक मूसलाधार पानी पड़ता रहा। सात दिन तक निकल नहीं सके। फिर लौट रहे हैं। जब लौटते हैं तो ठीक उस जगह आकर महावीर खड़े हो गए हैं जहां वे सात दिन पहले आंख बंद करके खड़े थे। देखा कि वह पौधा खड़ा है। जोर से वर्षा हुई, उसकी जड़ें वापस गीली जमीन को पकड़ गईं, वह पौधा खड़ा हो गया।
महावीर फिर आंख बंद करके उसके पास खड़े हो गए, गोशालक बहुत परेशान हुआ।
उस पौधे को फेंक गए थे। महावीर ने आंख खोली। गोशालक ने पूछा कि हैरान हूं! आश्चर्य! इस पौधे को हम उखाड़ कर फेंक गए थे, यह तो फिर खड़ा हो गया है! महावीर ने कहा, यह फूल तक पहुंचेगा। और इसीलिए मैं आंख बंद करके खड़े होकर इसे देखा! इसकी आंतरिक पोटेंशिएलिटी, इसकी आंतरिक संभावना क्या है? इसकी भीतर की स्थिति क्या है? तुम इसे बाहर से फेंक दोगे उठा कर तो भी यह अपने पैर जमा कर खड़ा हो सकेगा? यह कहीं आत्मघाती तो नहीं है, सुसाइडल इंस्टिंक्ट तो नहीं है इस पौधे में, कहीं यह मरने को उत्सुक तो नहीं है! अन्यथा तुम्हारा सहारा लेकर मर जाएगा। यह जीने को तत्पर है? अगर यह जीने को तत्पर है तो... मैं जानता था कि तुम इसे उखाड़ कर फेंक दोगे।
गोशालक ने कहा, आप क्या कहते हैं?
महावीर ने कहा कि जब मैं इस पौधे को देख रहा था तब तुम भी पास खड़े थे और तुम भी दिखाई पड़ रहे थे। और मैं जानता था कि तुम इसे उखाड़ कर फेंकोगे। इसलिए ठीक से जान लेना जरूरी है कि पौधे की खड़े रहने की आंतरिक क्षमता कितनी है? इसके पास आत्म-बल कितना है? यह कहीं मरने को तो उत्सुक नहीं है कि कोई भी बहाना लेकर मर जाए! तो तुम्हारा बहाना लेकर भी मर सकता है। और अन्यथा तुम्हारा उखाड़ कर फेंका गया पौधा पुनः जड़ें पकड़ सकता है।
गोशालक की दुबारा उस पौधे को उखाड़ कर फेंकने की हिम्मत न पड़ी; डरा। पिछली बार गोशालक हंसता हुआ गया था, इस बार महावीर हंसते हुए आगे बढ़े। गोशालक रास्ते में पूछने लगा, आप हंसते क्यों हैं? महावीर ने कहा कि मैं सोचता था कि देखें, तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है! अब तुम दुबारा इसे उखाड़ कर फेंकते हो या नहीं? गोशालक ने पूछा कि आपको तो पता चल जाना चाहिए कि मैं उखाड़ कर फेंकूंगा या नहीं! तो महावीर ने कहा, वह गैर अनिवार्य है। तुम उखाड़ कर फेंक भी सकते हो, नहीं भी फेंक सकते हो। अनिवार्य यह था कि पौधा अभी जीना चाहता था, उसके पूरे प्राण जीना चाहते थे। वह अनिवार्य था; वह एसेंशियल था। यह तो गैर अनिवार्य है, तुम फेंक भी सकते हो, नहीं भी फेंक सकते हो--तुम पर निर्भर है। लेकिन तुम पौधे से कमजोर सिद्ध हुए हो, हार गए हो।
महावीर से गोशालक के नाराज हो जाने के कुछ कारणों में एक कारण यह पौधा
भी था--महावीर को छोड़ कर चले जाने में।
ज्योतिष का--जिस ज्योतिष की मैं बात कर रहा हूं--उसका संबंध अनिवार्य से, एसेंशियल से, फाउंडेशनल से है। आपकी उत्सुकता ज्यादा से ज्यादा सेमी एसेंशियल तक जाती है। पता लगाना चाहते हैं कि कितने दिन जीऊंगा? मर तो नहीं जाऊंगा? जीकर क्या करूंगा, जी ही लूंगा तो क्या करूंगा, इस तक आपकी उत्सुकता ही नहीं पहुंचती। मरूंगा तो मरते में क्या करूंगा, इस तक आपकी उत्सुकता नहीं पहुंचती। घटनाओं तक पहुंचती है, आत्माओं तक नहीं पहुंचती। जब मैं जी रहा हूं, तो यह तो घटना है सिर्फ। जीकर मैं क्या कर रहा हूं, जीकर मैं क्या हूं, वह मेरी आत्मा है! जब मैं मरूंगा, वह तो घटना होगी। लेकिन मरते क्षण में मैं क्या होऊंगा, क्या करूंगा, वह मेरी आत्मा होगी। हम सब मरेंगे। मरने के मामले में सब की घटना एक सी घटेगी। लेकिन मरने के संबंध में, मरने के क्षण में हमारी स्थिति सब की भिन्न होगी। कोई मुस्कुराते हुए मर सकता है!
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है जब वह मरने के करीब है। उससे कोई पूछ रहा है कि आपका क्या ख्याल है मुल्ला, लोग जब पैदा होते हैं तो कहां से आते हैं? जब मरते हैं तो कहां जाते हैं? मुल्ला ने कहा, जहां तक अनुभव की बात है, मैंने लोगों को पैदा होते वक्त भी रोते ही पैदा होते देखा और मरते

वक्त भी रोते ही जाते देखा है। अच्छी जगह से न आते हैं, न अच्छी जगह जाते हैं। इनको देख कर जो अंदाज लगता है, न अच्छी जगह से आते हैं, न अच्छी जगह जाते हैं। आते हैं तब भी रोते हुए मालूम पड़ते हैं, जाते हैं तब भी रोते हुए मालूम पड़ते हैं।
लेकिन नसरुद्दीन जैसा आदमी हंसता हुआ मर सकता है। मौत तो घटना है, लेकिन हंसते हुए मरना आत्मा है। तो आप कभी ज्योतिषी से पूछे कि मैं हंसते हुए मरूंगा कि रोते हुए? नहीं पूछा होगा। पूरी पृथ्वी पर एक आदमी ने नहीं पूछा ज्योतिषी से जाकर कि मैं मरते वक्त हंसते हुए मरूंगा कि रोते हुए मरूंगा? यह पूछने जैसी बात है, लेकिन यह एसेंशियल एस्ट्रोलाजी से जुड़ी हुई बात है।
आप पूछते हैं, कब मरूंगा? जैसे मरना अपने आप में मूल्यवान है बहुत! कब
तक जीऊंगा? जैसे बस जी लेना काफी है! किसलिए जीऊंगा, क्यों जीऊंगा, जीकर क्या करूंगा, जीकर क्या हो जाऊंगा, कोई पूछने नहीं जाता! इसलिए महल गिर गया। क्योंकि वह महल गिर जाएगा जिसके आधार नॉन एसेंशियल पर रखे हों। गैर-जरूरी चीजों पर जिसकी हमने दीवारें खड़ी कर दी हों वह कैसे टिकेगा! आधारशिलाएं चाहिए।
मैं जिस ज्योतिष की बात कर रहा हूं, और आप जिसे ज्योतिष समझते रहे हैं, उससे गहरी है, उससे भिन्न है, उससे आयाम और है। मैं इस बात की चर्चा कर रहा हूं कि कुछ आपके जीवन में अनिवार्य है। और वह अनिवार्य आपके जीवन में और जगत के जीवन में संयुक्त और लयबद्ध है, अलग-अलग नहीं है। उसमें पूरा जगत भागीदार है। उसमें आप अकेले नहीं हैं।
जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो बुद्ध ने दोनों हाथ जोड़ कर पृथ्वी पर सिर टेक दिया। कथा है कि आकाश से देवता बुद्ध को नमस्कार करने आए थे कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। बुद्ध को पृथ्वी पर हाथ टेके सिर रखे देख कर वे चकित हुए। उन्होंने पूछा कि तुम और किसको नमस्कार कर रहे हो? क्योंकि हम तो तुम्हें नमस्कार करने स्वर्ग से आते हैं। और हम तो नहीं जानते कि बुद्ध भी किसी को नमस्कार करे ऐसा कोई है। बुद्धत्व तो आखिरी बात है।
तो बुद्ध ने आंखें खोलीं और बुद्ध ने कहा, जो भी घटित हुआ है उसमें मैं अकेला नहीं हूं, सारा विश्व है। तो इस सबको धन्यवाद देने के लिए सिर टेक दिया है।
यह एसेंशियल एस्ट्रोलाजी से बंधी हुई बात है। सारा जगत... ।
इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे कि जब भी तुम्हें कुछ भी भीतरी आनंद मिले, तत्क्षण अनुगृहीत हो जाना समस्त जगत के। क्योंकि तुम अकेले नहीं हो। अगर सूरज न निकलता, अगर चांद न निकलता, अगर एक रत्ती भर भी घटना और घटी होती तो तुम्हें यह नहीं होने वाला था जो हुआ है। माना कि तुम्हें हुआ है, लेकिन सबका हाथ है। सारा जगत उसमें इकट्ठा है।
एक कास्मिक, जागतिक अंतर-संबंध का नाम ज्योतिष है।
तो बुद्ध ऐसा नहीं कहेंगे कि मुझे हुआ है। बुद्ध इतना ही कहते हैं कि जगत को मेरे मध्य हुआ है। यह जो घटना घटी है एनलाइटेनमेंट की, यह जो प्रकाश का आविर्भाव हुआ है, यह जगत ने मेरे बहाने जाना है। मैं सिर्फ एक बहाना हूं, एक क्रास रोड, जहां सारे जगत के रास्ते आकर मिल गए हैं।
कभी आपने ख्याल किया है कि चौराहा बड़ा भारी होता है। लेकिन चौराहा अपने में कुछ नहीं होता, वे जो चार रास्ते आकर मिले होते हैं उन चारों को हटा लें तो चौराहा विदा हो जाता है। हम सब क्रिसक्रास प्वाइंट्स हैं, जहां जगत की अनंत शक्तियां आकर एक बिंदु को काटती हैं; वहां व्यक्ति निर्मित हो जाता है, इंडिविजुअल बन जाता है।
तो वह जो सारभूत ज्योतिष है उसका अर्थ केवल इतना ही है कि हम अलग नहीं हैं। एक, उस एक ब्रह्म के साथ हैं, उस एक ब्रह्मांड के साथ हैं। और प्रत्येक घटना भागीदार है।
तो बुद्ध ने कहा है कि मुझसे पहले जो बुद्ध हुए उनको नमस्कार करता हूं, और मेरे बाद जो बुद्ध होंगे उनको नमस्कार करता हूं।
किसी ने पूछा कि आप उनको नमस्कार करें जो आपके पहले हुए, समझ में आता है। क्योंकि हो सकता है, उनसे कोई जाना-अनजाना ऋण हो। क्योंकि जो आपके

पहले जान चुके हैं उनके ज्ञान ने आपको साथ दिया हो। लेकिन जो अभी हुए ही नहीं, उनसे आपको क्या लेना-देना है? उनसे आपको कौन सी सहायता मिली है?
तो बुद्ध ने कहा, जो हुए हैं उनसे भी मुझे सहायता मिली है, जो अभी नहीं हुए हैं उनसे भी मुझे सहायता मिली है। क्योंकि जहां मैं खड़ा हूं वहां अतीत और भविष्य एक हो गए हैं। वहां जो जा चुका है वह उससे मिल रहा है जो अभी आने को है। वहां जो जा चुका उससे मिलन हो रहा है उसका जो अभी आने को है। वहां सूर्योदय और सूर्यास्त एक ही बिंदु पर खड़े हैं। तो मैं उन्हें भी नमस्कार करता हूं जो होंगे; उनका भी मुझ पर ऋण है। क्योंकि अगर वे भविष्य में न हों तो मैं आज न हो सकूंगा।
इसको समझना थोड़ा कठिन पड़ेगा। यह एसेंशियल एस्ट्रोलाजी की बात है। कल
जो हुआ है अगर उसमें से कुछ भी खिसक जाए तो मैं न हो सकूंगा, क्योंकि मैं एकशृंखला में बंधा हूं। यह समझ में आता है। अगर मेरे पिता न हों जगत में तो मैं न हो सकूंगा। यह समझ में आता है। क्योंकि एक कड़ी अगर विदा हो जाएगी तो मैं नहीं हो सकूंगा। अगर मेरे पिता के पिता न हों तो मैं न हो सकूंगा, क्योंकि कड़ी विसर्जित हो जाएगी। लेकिन मेरा भविष्य अगर उसमें कोई कड़ी न हो तो मैं न हो सकूंगा, समझना बहुत मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि उससे क्या लेना-देना, मैं तो हो ही गया हूं!
लेकिन बुद्ध कहते हैं कि अगर भविष्य में भी जो होने वाला है, वह न हो,
तो मैं न हो सकूंगा। क्योंकि भविष्य और अतीत दोनों के बीच की मैं कड़ी हूं। कहीं भी कोई बदलाहट होगी तो मैं वैसा ही नहीं हो सकूंगा जैसा हूं। कल ने भी मुझे बनाया, आने वाला कल भी मुझे बनाता है। यही ज्योतिष है! बीता कल ही नहीं, आने वाला कल भी; जा चुका ही नहीं, जो आ रहा है वह भी; जो सूरज पृथ्वी पर उगे वे ही नहीं, जो उगेंगे वे भी, वे भी भागीदार हैं। वे भी आज के क्षण को निर्मित कर रहे हैं। क्योंकि यह जो वर्तमान का क्षण है यह हो ही न सकेगा अगर भविष्य का क्षण इसके आगे न खड़ा हो! उसके सहारे ही यह हो पाता है।
हम सब के हाथ भविष्य के कंधे पर रखे हुए हैं। हम सब के पैर अतीत के कंधों पर पड़े हुए हैं। हम सब के हाथ भविष्य के कंधों पर रखे हुए हैं। नीचे तो हमें दिखाई पड़ता है कि अगर मेरे नीचे जो खड़ा है वह न हो तो मैं गिर जाऊंगा। लेकिन भविष्य में मेरे जो फैले हाथ हैं, वे जो कंधों को पकड़े हुए हैं, अगर वे भी न हों तो भी मैं गिर जाऊंगा।
जब कोई व्यक्ति अपने को इतनी आंतरिक एकता में अतीत और भविष्य के बीच जुड़ा हुआ पाता है तब वह ज्योतिष को समझ पाता है। तब ज्योतिष धर्म बन जाता है, तब ज्योतिष अध्यात्म हो जाता है। और नहीं तो, वह जो नॉन एसेंशियल है, गैर-जरूरी है, उससे जुड़ कर ज्योतिष सड़क की मदारीगिरी हो जाता है, उसका फिर कोई मूल्य नहीं रह जाता। श्रेष्ठतम विज्ञान भी जमीन पर पड़ कर धूल की कीमत के हो जाते हैं। हम उनका क्या उपयोग करते हैं इस पर सारी बात निर्भर है। इसलिए मैं बहुत द्वारों से एक तरफ आपको धक्का दे रहा हूं कि आपको यह ख्याल में आ सके कि सब संयुक्त है--संयुक्तता, इस जगत का एक परिवार होना या एक आर्गेनिक बॉडी होना, एक शरीर की तरह होना।
मैं सांस लेता हूं तो पूरा शरीर प्रभावित होता है। सूरज सांस लेता है
तो पृथ्वी प्रभावित होती है। और दूर के महासूर्य हैं, वे भी कुछ करते हैं तो पृथ्वी प्रभावित होती है। और पृथ्वी प्रभावित होती है तो हम प्रभावित होते हैं। सब चीज, छोटा सा रोआं तक महान सूर्यों के साथ जुड़ कर कंपता है, कंपित होता है। यह ख्याल में आ जाए तो हम सारभूत ज्योतिष में प्रवेश कर सकें। और असारभूत ज्योतिष की जो व्यर्थताएं हैं उनसे भी बच सकें। क्षुद्रतम बातें हम ज्योतिष से जोड़ कर बैठ गए हैं। अति क्षुद्र! जिनका कहीं भी कोई मूल्य नहीं है। और उनको जोड़ने की वजह से बड़ी कठिनाई होती है। जैसे हमने जोड़ रखा है कि एक आदमी गरीब पैदा होगा या एक आदमी अमीर पैदा होगा तो इसका संबंध ज्योतिष से होगा। नहीं, गैर-जरूरी बात है। अगर आप नहीं जानते हैं तो ज्योतिष से संबंध जुड़ा रहेगा; अगर आप जान लेते हैं तो आपके हाथ में आ जाएगा।
एक बहुत मीठी कहानी आपको कहूं तो ख्याल में आए। जिंदगी ऐसा ही बैलेंस
है, ऐसा ही संतुलन है। मोहम्मद का एक शिष्य है, अली। और अली मोहम्मद से पूछता है कि बड़ा विवाद है सदा से कि मनुष्य स्वतंत्र है अपने कृत्य में या

परतंत्र! बंधा है कि मुक्त! मैं जो करना चाहता हूं वह कर सकता हूं या नहीं कर सकता हूं!
सदा से आदमी ने यह पूछा है। क्योंकि अगर हम कर ही नहीं सकते कुछ, तो फिर किसी आदमी को कहना कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, ईमानदार बनो, नासमझी है! एक आदमी अगर चोर होने को ही बंधा है, तो यह समझाते फिरना कि चोरी मत करो, नासमझी है! या फिर यह हो सकता है कि एक आदमी के भाग्य में बदा है कि वह यही समझाता रहे कि चोरी न करो--जानते हुए कि चोर चोरी करेगा, बेईमान बेईमानी करेगा, असाधु असाधु होगा, हत्या करने वाला हत्या करेगा, लेकिन अपने भाग्य में यह बदा है कि अपन लोगों को कहते फिरो कि चोरी मत करो!
एब्सर्ड है! अगर सब सुनिश्चित है तो समस्त शिक्षाएं बेकार हैं; सब प्रोफेट और सब पैगंबर और सब तीर्थंकर व्यर्थ हैं। महावीर से भी लोग पूछते हैं, बुद्ध से भी लोग पूछते हैं कि अगर होना है, वही होना है, तो आप समझा क्यों रहे हैं? किसलिए समझा रहे हैं?
मोहम्मद से भी अली पूछता है कि आप क्या कहते हैं?
अगर महावीर से पूछा होता अली ने तो महावीर ने जटिल उत्तर दिया होता। अगर बुद्ध से पूछा होता तो बड़ी गहरी बात कही होती। लेकिन मोहम्मद ने वैसा उत्तर दिया जो अली की समझ में आ सकता था। कई बार मोहम्मद के उत्तर बहुत सीधे और साफ हैं। अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग कम पढ़े-लिखे हैं, ग्रामीण हैं, उनके उत्तर सीधे और साफ होते हैं। जैसे कबीर के, या नानक के, या मोहम्मद के, या जीसस के। बुद्ध और महावीर के और कृष्ण के उत्तर जटिल हैं। वह संस्कृति का मक्खन है। जीसस की बात ऐसी है जैसे किसी ने लट्ठ सिर पर मार दिया हो। कबीर तो कहते ही हैंः कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ। लट्ठ लिए बाजार में खड़े हैं! कोई आए हम उसका सिर खोल दें!
मोहम्मद ने कोई बहुत मेटाफिजिकल बात नहीं कही। मोहम्मद ने कहा, अली,
एक पैर उठा कर खड़ा हो जा! अली ने कहा कि हम पूछते हैं कि कर्म करने में आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र! मोहम्मद ने कहा, तू पहले एक पैर उठा! अली बेचारा एक पैर--बायां पैर--उठा कर खड़ा हो गया। मोहम्मद ने कहा, अब तू दायां भी उठा ले। अली ने कहा, आप क्या बातें करते हैं! तो मोहम्मद ने कहा कि अगर तू चाहता पहले तो दायां भी उठा सकता था। अब नहीं उठा सकता। तो मोहम्मद ने कहा कि एक पैर उठाने को आदमी सदा स्वतंत्र है। लेकिन एक पैर उठाते ही तत्काल दूसरा पैर बंध जाता है।
वह जो नॉन एसेंशियल हिस्सा है हमारी जिंदगी का, जो गैर-जरूरी हिस्सा है, उसमें हम पूरी तरह पैर उठाने को स्वतंत्र हैं। लेकिन ध्यान रखना, उसमें उठाए गए पैर भी एसेंशियल हिस्से में बंधन बन जाते हैं। वह जो बहुत जरूरी है वहां भी फंसाव पैदा हो जाता है। गैर-जरूरी बातों में पैर उठाते हैं और जरूरी बातों में फंस जाते हैं।
मोहम्मद ने कहा कि तू उठा सकता था पहला पैर भी, दायां भी उठा सकता था, कोई मजबूरी न थी। लेकिन अब चूंकि तू बायां उठा चुका इसलिए अब दायां उठाने में असमर्थता हो गई। आदमी की सीमाएं हैं। सीमाओं के भीतर स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता सीमाओं के बाहर नहीं है।
तो बहुत पुराना संघर्ष है आदमी के चिंतन का कि अगर आदमी पूरी तरह परतंत्र है, जैसा ज्योतिषी साधारणतः कहते हुए मालूम पड़ते हैं। साधारण ज्योतिषी कहते हुए मालूम पड़ते हैं कि सब सुनिश्चित है, जो विधि ने लिखा है वह होकर रहेगा। तो फिर सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है। और या फिर जैसा कि तथाकथित तर्कवादी, बुद्धिवादी कहते हैं कि सब स्वच्छंद है, कुछ बंधा हुआ नहीं है, कुछ होने का निश्चित नहीं है, सब अनिश्चित है। तो जिंदगी एक केआस और एक अराजकता और एक स्वच्छंदता हो जाती है। फिर तो यह भी हो सकता है कि मैं चोरी करूं और मोक्ष पा जाऊं, हत्या करूं और परमात्मा मिल जाए। क्योंकि जब कुछ भी बंधा हुआ नहीं है और किसी भी कदम से कोई दूसरा कदम बंधता नहीं है और जब कहीं भी कोई नियम और सीमा नहीं है... ।
मुल्ला का फिर मुझे ख्याल आता है। मुल्ला नसरुद्दीन एक मस्जिद के नीचे से गुजर रहा है। और एक आदमी मस्जिद के ऊपर से गिर पड़ा। नमाज या अजान पढ़ने चढ़ा था मीनार पर, ऊपर से गिर पड़ा। मुल्ला के कंधे पर गिरा। मुल्ला की कमर टूट गई। अस्पताल में मुल्ला भर्ती किए गए, उनके शिष्य उनको मिलने गए।

और शिष्यों ने कहा, मुल्ला, इससे क्या मतलब निकलता है? हाऊ डू यू इंटरप्रीट इट? इस घटना की व्याख्या क्या है? क्योंकि मुल्ला हर घटना से व्याख्या निकालता था।
मुल्ला ने कहा, इससे साफ जाहिर होता है कि कर्म का और फल का कोई संबंध नहीं है। कोई आदमी गिरता है, किसी की कमर टूट जाती है। इसलिए अब तुम कभी सैद्धांतिक विवाद में मत पड़ना। यह बात सिद्ध होती है कि गिरे कोई, कमर किसी की टूट सकती है। वह आदमी तो मजे में है--वह इसके ऊपर सवार हो गया था ऊपर से--हम मर गए! न हम अजान पढ़ने चढ़े, न हम मीनार पर चढ़े। हम अपने घर लौट रहे थे, हमारा कोई संबंध ही न था। इसलिए, मुल्ला ने कहा, आज से सब सिद्धांत की बातचीत बंद! कुछ भी हो सकता है! कुछ भी हो सकता है, कोई कानून नहीं है, अराजकता है। नाराज था। स्वाभाविक था, उसकी कमर टूट गई थी।
दो विकल्प सीधे रहे हैं। एक विकल्प तो यह है कि ज्योतिषी साधारणतः जैसे सड़क पर बैठने वाला ज्योतिषी कहता है। वह चाहे गरीब आदमी का ज्योतिषी हो और चाहे मोरारजी देसाई का ज्योतिषी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह सड़क छाप ही है ज्योतिषी, जिससे कोई नॉन एसेंशियल पूछने जाता है कि इलेक्शन में जीतेंगे कि हार जाएंगे? जैसे कि आपके इलेक्शन से चांद-तारों का कोई लेना-देना है। वह कहता है, सब बंधा हुआ है; कुछ इंच भर यहां-वहां नहीं हो सकता। वह भी गलत कहता है।
और दूसरी तरफ तर्कवादी है, बुद्धिवादी है। वह कहता है, किसी चीज का कोई संबंध नहीं है। कुछ भी घट रहा है, सांयोगिक है, चांस है, कोइंसीडेंस है, संयोग है। यहां कोई नियम नहीं है। सब अराजकता है। वह भी गलत कहता है। यहां नियम है। क्योंकि वह बुद्धिवादी कभी बुद्ध की तरह आनंद से भरा हुआ नहीं मिलता। वह बुद्धिवादी धर्म और ईश्वर को और आत्मा को तर्क से इनकार तो कर लेता है, लेकिन कभी महावीर की प्रसन्नता को उपलब्ध नहीं होता। जरूर महावीर कुछ करते हैं जिससे उनकी प्रसन्नता फलित होती है। और बुद्ध कुछ करते हैं जिससे उनकी समाधि निकलती है। और कृष्ण कुछ करते हैं जिससे उनकी बांसुरी के स्वर अलग हैं।
स्थिति तीसरी है। और तीसरी स्थिति यह है कि जो बिल्कुल सारभूत है, जो अंतरतम है, वह बिल्कुल सुनिश्चित है। जितना हम अपने केंद्र की तरफ आते हैं उतना निश्चय के करीब आते हैं। जितना हम अपनी परिधि की तरफ, सरकमफेरेंस की तरफ जाते हैं, उतना संयोग के करीब जाते हैं। जितना हम बाहर की घटना की बात कर रहे हैं उतनी सांयोगिक बात है। जितनी हम भीतर की बात कर रहे हैं उतनी ही नियम और विज्ञान पर, उतनी ही सुनिश्चित बात हो जाती है। दोनों के बीच में भी जगह है जहां बहुत रूपांतरण होते हैं। जहां जानने वाला आदमी विकल्प चुन लेता है। नहीं जानने वाला अंधेरे में वही चुन लेता है जो भाग्य है। जो अंधेरा, जो संयोग उसको पकड़ा देता है।
तीन बातें हुईं। ऐसा क्षेत्र है जहां सब सुनिश्चित है। उसे जानना सारभूत ज्योतिष को जानना है। ऐसा क्षेत्र है जहां सब अनिश्चित है। उसे जानना व्यावहारिक जगत को जानना है। और ऐसा क्षेत्र है जो दोनों के बीच में है। उसे जान कर आदमी, जो नहीं होना चाहिए उससे बच जाता है, जो होना चाहिए उसे कर लेता है। और अगर परिधि पर और परिधि और केंद्र के मध्य में आदमी इस भांति जीये कि केंद्र पर पहुंच पाए तो उसकी जीवन की यात्रा धार्मिक हो जाती है। और अगर इस भांति जीये कि केंद्र पर कभी न पहुंच पाए तो उसके जीवन की यात्रा अधार्मिक हो जाती है।
जैसे एक आदमी चोरी करने खड़ा है। चोरी करना कोई नियति नहीं है। चोरी करनी ही पड़ेगी, ऐसा कोई सवाल नहीं है। स्वतंत्रता पूरी मौजूद है। हां, करने के बाद एक पैर उठ जाएगा, दूसरा पैर फंस जाएगा। करने के बाद न करना मुश्किल हो जाएगा। करने के बाद बचना मुश्किल हो जाएगा। किए हुए का सारा का सारा प्रभाव व्यक्तित्व को ग्रसित कर लेगा। लेकिन जब तक नहीं किया है तब तक विकल्प मौजूद है। हां और न के बीच में आदमी का चित्त डोल रहा है। अगर वह न कर दे तो केंद्र की तरफ आ जाएगा। अगर वह हां कर दे तो परिधि पर चला जाएगा। वह जो मध्य में है चुनाव, वहां अगर वह गलत को चुन ले तो परिधि पर फेंक दिया जाता है और अगर सही को चुन ले तो केंद्र की तरफ आ जाता है।

तो उस ज्योतिष की तरफ, जो हमारे जीवन का सारभूत है, कुछ बातें मैंने कही हैं। आज मैंने एक बात आपसे कही और वह यह कि सूर्य के हम फैले हुए हाथ हैं। सूर्य से जन्मती है पृथ्वी, पृथ्वी से जन्मते हैं हम। हम अलग नहीं हैं, हम जुड़े हैं। हम सूर्य की ही दूर तक फैली हुई शाखाएं और पत्ते हैं। सूर्य की जड़ों में जो होता है वह हमारे पत्तों के रोएं-रोएं, रेशे-रेशे तक फैल जाता है और कंपित कर जाता है। यदि यह ख्याल में हो तो हम जगत के बीच एक पारिवारिक बोध को उपलब्ध हो सकते हैं। तब हमें स्वयं की अस्मिता और अहंकार में जीने का कोई प्रयोजन नहीं है।
और ज्योतिष की सबसे बड़ी चोट अहंकार पर है। अगर ज्योतिष सही है तो अहंकार गलत है, ऐसा समझें। और अगर ज्योतिष गलत है तो फिर अहंकार के अतिरिक्त कुछ सही होने को नहीं बचता। अगर ज्योतिष सही है तो जगत सही है और मैं गलत हूं अकेले की तरह। जगत का एक टुकड़ा ही हूं, एक हिस्सा ही हूं; और कितना नाचीज टुकड़ा, जिसकी कोई गणना भी नहीं हो सकती। अगर ज्योतिष सही है तो मैं नहीं हूं; शक्तियों का एक प्रवाह है, उसी में एक छोटी लहर मैं हूं। किसी बड़ी लहर पर सवार कभी-कभी भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं भी हूं। वह बड़ी लहर का ख्याल नहीं रह जाता, और बड़ी लहर भी किसी सागर पर सवार है उसका तो बिल्कुल ख्याल नहीं रह जाता।
नीचे से सागर हाथ अलग कर लेता है, बड़ी लहर बिखरने लगती है; बड़ी लहर बिखरती है, मैं खो जाता हूं। अकारण दुख ले लेता हूं कि मिट रहा हूं, क्योंकि अकारण मैंने सुख लिया था कि हूं। अगर उसी वक्त देख लेता कि मैं नहीं हूं, बड़ी लहर है, बड़ा सागर है। सागर की मर्जी उठता हूं, सागर की मर्जी खो जाता हूं। अगर ऐसी भाव-दशा बन जाती कि अनंत की मर्जी का मैं एक हिस्सा हूं, तो कोई दुख न था। हां, वह तथाकथित सुख भी फिर नहीं हो सकता जो हम लेते रहते हैं। मैंने जीता, मैंने कमाया, वह सुख भी नहीं रह जाएगा। वह दुख भी नहीं रह जाएगा कि मैं मिटा, मैं बर्बाद हुआ, मैं टूट गया, मैं नष्ट हो गया, हार गया, पराजित हुआ, वह दुख भी नहीं रह जाएगा। और जब ये दोनों सुख और दुख नहीं रह जाते हैं तब हम उस सारभूत जगत में प्रवेश करते हैं जहां आनंद है। ज्योतिष आनंद का द्वार बन जाता है, अगर हम ऐसा देखें कि वह हमारी अस्मिता को गलाता है, हमारा अहंकार बिखेरता है, हमारी ईगो को हटा देता है। लेकिन जब हम बाजार में सड़क पर ज्योतिषी के पास जाते हैं तो अपने अहंकार की सुरक्षा के लिए पूछने, कि घाटा तो नहीं लगेगा? यह लाटरी मिल जाएगी? नहीं मिलेगी? यह धंधा हाथ में लेते हैं, सफलता निश्चित है? अहंकार के लिए हम पूछने जाते हैं। और मजा यह है कि ज्योतिष पूरा का पूरा अहंकार के विपरीत है। ज्योतिष का अर्थ ही यह है कि आप नहीं हो, जगत है। आप नहीं हो, ब्रह्मांड है। विराट शक्तियों का प्रभाव है, आप कुछ भी नहीं हो।
इस ज्योतिष की तरफ ख्याल आए, और वह तभी आ सकता है जब हम इस विराट जगत के बीच अपने को एक हिस्से की तरह देखें। इसलिए मैंने कहा कि सूर्य से किस भांति यह सारा का सारा संयुक्त और जुड़ा हुआ है। अगर सूर्य से हमें पता चल जाए कि हम जुड़े हुए हैं तो फिर हमको पता चलेगा कि सूर्य और महासूर्यों से जुड़ा हुआ है।
कोई चार अरब सूर्य हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं कि इन सभी सूर्यों का जन्म किसी महासूर्य से हुआ है। अब तक हमें उसका कोई अंदाज नहीं वह कहां होगा। जैसे पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है और साथ ही सूरज का चक्कर लगाती है, ऐसे ही सूरज अपनी कील पर घूमता है और किसी बिंदु का चक्कर लगा रहा है। उस बिंदु का ठीक-ठीक पता नहीं है कि वह बिंदु क्या है जिसका सूरज चक्कर लगा रहा है। विराट चक्कर जारी है। जिस बिंदु का सूरज चक्कर लगा रहा है वह बिंदु और सूरज का पूरा का पूरा सौर परिवार भी किसी और महाबिंदु के चक्कर में संलग्न है।
मंदिरों में परिक्रमा बनी है। वह परिक्रमा इसका प्रतीक है कि इस जगत में सारी चीजें किसी की परिक्रमा कर रही हैं। प्रत्येक अपने में घूम रहा है और फिर किसी की परिक्रमा कर रहा है। फिर वे दोनों मिल कर किसी और बड़े की परिक्रमा कर रहे हैं। फिर वे तीनों मिल कर और किसी की परिक्रमा कर रहे हैं। वह जो अल्टीमेट है जिसकी सभी परिक्रमा कर रहे हैं, उसको ज्ञानियों ने

ब्रह्म कहा है--उस अंतिम को, जो किसी की परिक्रमा नहीं कर रहा है, जो अपने में भी नहीं घूम रहा है और किसी की परिक्रमा भी नहीं कर रहा है।
ध्यान रखें, जो अपने में घूमेगा वह किसी की परिक्रमा जरूर करेगा। जो अपने में भी नहीं घूमेगा वह फिर किसी की परिक्रमा नहीं करता। वह शून्य और शांत है। वह धुरी, वह कील जिस पर सारा ब्रह्मांड घूम रहा है, जिससे सारा ब्रह्मांड फैलता है और सिकुड़ता है।
हिंदुओं ने तो सोचा है कि जैसे कली फूल बनती है, फिर बिखर जाती है; ऐसे
ही यह पूरा जगत खिलता है, फैलता है, एक्सपैंड होता है, फिर प्रलय को उपलब्ध हो जाता है। जैसे दिन होता है और रात होती है, ऐसे ही सारे जगत का दिन है और फिर सारे जगत की रात हो जाती है। जैसा मैंने कहा कि ग्यारह वर्ष की एक लय है, नब्बे वर्ष की एक लय है। ऐसा हिंदू विचार का ख्याल है कि अरबों-खरबों वर्ष की भी एक लय है। उस लय में जगत उठता है, जवान होता है। पृथ्वियां पैदा होती हैं, चांद-तारे फैलते हैं, बस्तियां बसती हैं। लोग जन्मते हैं, करोड़ों-करोड़ों प्राणी पैदा होते हैं। और कोई एक अकेली पृथ्वी पर हो जाते हैं, ऐसा नहीं।
अब वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार ग्रहों पर जीवन होना चाहिए, कम से कम! यह मिनिमम है, इतना तो होगा ही, इससे ज्यादा हो सकता है। इतने बड़े विराट जगत में अकेली पृथ्वी पर जीवन हो, यह संभव नहीं मालूम होता। पचास हजार ग्रहों पर, पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। अनंत फैलाव है। फिर सब सिकुड़ जाता है।
यह पृथ्वी सदा नहीं थी, यह सदा नहीं होगी। जैसे मैं सदा नहीं था, सदा नहीं होऊंगा। वैसे ही यह पृथ्वी सदा नहीं थी, सदा नहीं होगी। यह सूरज भी सदा नहीं था, सदा नहीं होगा। ये चांद-तारे भी सदा नहीं थे, सदा नहीं होंगे। इनके होने और न होने का वर्तुल घूमता रहता है। उस विराट पहिए में हम भी कहीं एक पहिए की किसी धुरी पर न होने जैसे कहीं हैं। और अगर हम सोचते हों कि हम अलग हैं तो हमारी स्थिति वैसी ही है जैसे कोई आदमी ट्रेन में बैठा हो... ।
मैंने सुना है कि एक आदमी एक हवाई जहाज में सवार हुआ। और जल्दी पहुंच जाए इसलिए तेजी से हवाई जहाज के भीतर चलने लगा--जल्दी पहुंच जाने के ख्याल से! स्वाभाविक तर्क है कि अगर जल्दी चलिएगा तो जल्दी पहुंच जाइएगा। यात्रियों ने उसे पकड़ा और कहा कि आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि मैं थोड़ा जल्दी में हूं।
जमीन पर उसका जो तर्क था--वह पहली दफे ही हवाई जहाज में सवार हुआ था-- जमीन पर वह जानता था कि जल्दी चलिए तो जल्दी पहुंच जाते हैं। हवाई जहाज पर भी वह जल्दी चल रहा था, इसका बिना ख्याल किए कि उसका चलना अब इररेलेवेंट है, अब असंगत है। अब हवाई जहाज चल ही रहा है। वह चल कर सिर्फ अपने को थका ले सकता है; जल्दी नहीं पहुंचेगा, यह हो सकता है कि पहुंचते-पहुंचते इतना थक जाए कि उठ भी न पाए। उसे विश्राम कर लेना चाहिए। उसे आंख बंद करके लेट जाना चाहिए।
धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूं जो इस जगत की विराट गति के भीतर विश्राम को उपलब्ध है। जो जानता है कि विराट चल रहा है, जल्दी नहीं है। मेरी जल्दी से कुछ होगा नहीं। अगर मैं इस विराट की लयबद्धता में एक बना रहूं, वही काफी है, वही आनंदपूर्ण है।
ज्योतिष के लिए मैं इसीलिए आपसे इतनी बातें कहा हूं। यह ख्याल में आ जाए तो ज्योतिष आपके लिए अध्यात्म का द्वार सिद्ध हो सकता है।
"ज्योतिष अर्थात अध्यात्म" : प्रश्नोत्तर चर्चा

मैं कहता आंखन देखी
ग्यारहवां प्रवचन

मैं कौन हूं?

एक रात्रि की बात है। पूर्णिमा थी, मैं नदी तट पर था, अकेला आकाश को देखता था। दूर-दूर तक सन्नाटा था।
फिर किसी के पैरों की आहट पीछे सुनाई पड़ी। लौट कर देखा, एक युवा साधु खड़े थे। उनसे बैठने को कहा। बैठे तो देखा कि वे रो रहे हैं। आंखों से झर-झर आंसू गिर रहे हैं। उन्हें मैंने निकट ले लिया। थोड़ी देर तक उनके कंधे पर हाथ रखे मैं मौन बैठा रहा। न कुछ कहने को था, न कहने की स्थिति ही थी, किंतु प्रेम से भरे मौन ने उन्हें आश्वस्त किया।
ऐसे कितना समय बीता कुछ याद नहीं। फिर अंततः उन्होंने कहा, मैं ईश्वर
के दर्शन करना चाहता हूं। कहिए क्या ईश्वर है या कि मैं मृगतृष्णा में पड़ा हूं?
मैं क्या कहता? उन्हें और निकट ले लिया। प्रेम के अतिरिक्त तो किसी और परमात्मा को मैं जानता नहीं हूं।
प्रेम को न खोज कर जो परमात्मा को खोजता है, वह भूल में ही पड़ जाता है। प्रेम के मंदिर को छोड़ कर जो किसी और मंदिर की खोज में जाता है, वह परमात्मा से और दूर ही निकल जाता है।
किंतु यह सब तो मेरे मन में था। वैसे मुझे चुप देख कर उन्होंने फिर कहा, कहिए--कुछ तो कहिए। मैं बड़ी आशा से आपके पास आया हूं। क्या आप मुझे ईश्वर के दर्शन नहीं करा सकते?
फिर भी मैं क्या कहता? उन्हें और निकट लेकर उनकी आंसुओं से भरी आंखें चूम लीं। उन आंसुओं में बड़ी आकांक्षा थी, बड़ी अभीप्सा थी। निश्चय ही वे आंखें परमात्मा के दर्शन के लिए बड़ी आकुल थीं। लेकिन परमात्मा क्या बाहर है कि उसके दर्शन किए जा सकें? परमात्मा इतना भी तो पराया नहीं है कि उसे देखा जा सके!
अंततः मैंने उनसे कहा, जो तुम मुझसे पूछते हो, वही किसी ने श्री रमण से पूछा था। श्री रमण ने कहा था, ईश्वर के दर्शन? नहीं, नहीं, दर्शन नहीं हो सकते; लेकिन चाहो तो स्वयं ईश्वर अवश्य हो सकते हो। यही मैं तुमसे कहता हूं। ईश्वर को पाने और जानने की खोज बिल्कुल ही अर्थहीन है। जिसे खोया ही नहीं है, उसे पाओगे कैसे? और जो तुम स्वयं ही हो, उसे जानोगे कैसे? वस्तुतः जिसे हम देख सकते हैं, वह हमारा स्वरूप नहीं हो सकता। दृश्य बन जाने के कारण ही वह हमसे बाहर और पर हो जाता है। परमात्मा है हमारा स्वरूप और इसलिए उसका दर्शन असंभव है। मित्र, परमात्मा के नाम से जो दर्शन होते हैं, वे हमारी ही कल्पनाएं हैं। मनुष्य का मन किसी भी कल्पना को आकार देने में समर्थ है। किंतु इन कल्पनाओं में खो जाना सत्य से भटक जाना है।
यह घटना मुझे अनायास याद हो आई है, क्योंकि आप भी तो ईश्वर के दर्शन करना चाहते हैं। उसी संबंध में कुछ कहूं, इसलिए ही आप यहां एकत्र हुए हैं। मैं स्वयं भी ऐसे ही खोजता था। फिर खोजते-खोजते, खोज की व्यर्थता ज्ञात हुई। ज्ञात हुआ कि जो खोज रहा है, जब मैं उसे ही नहीं जानता हूं तो इस अज्ञान में डूबे रह कर सत्य को कैसे जान सकूंगा?
सत्य को जानने के पूर्व स्वयं को जानना तो अनिवार्य ही है।
और स्वयं को जानते ही जाना जाता है कि अब कुछ और जानने को शेष नहीं है। आत्मज्ञान की कुंजी के पाते ही सत्य का ताला खुल जाता है।
सत्य तो सब जगह है। समग्र सत्ता में वही है। किंतु उस तक पहुंचने का निकटतम मार्ग स्वयं में ही है। स्वयं की सत्ता ही चूंकि स्वयं के सर्वाधिक निकट है, इसलिए उसमें खोजने से ही खोज होनी संभव है।
और जो स्वयं में ही खोजने में असमर्थ है, जो निकट ही नहीं खोज पाता है,
तो दूर कैसे खोज पाएगा? दूर की खोज का विचार निकट की खोज से बचने का उपाय भी हो सकता है।

संसार की खोज चलती है ताकि स्वयं से बचा जा सके और फिर ईश्वर की खोज चलने लगती है। क्या स्वयं के अतिरिक्त शेष सब खोजें स्वयं से पलायन की ही विधियां नहीं हैं?
भीतर देखें। वहां क्या दिखता है? अंधकार, अकेलापन, रिक्तता? क्या इस अंधकार, इस अकेलेपन, इस रिक्तता से भाग कर ही हम कहीं शरण लेने को नहीं भागते रहते हैं? किंतु इस भांति के भगोड़ेपन से दुख के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लगता है। स्वयं से भागे हुए के लिए विफलता ही भाग्य है। क्योंकि जो खोज स्वयं से पलायन है, वह कहीं भी नहीं ले जा सकती है।
और दो ही विकल्प हैंः स्वयं से भागो या स्वयं में जागो। भागने के लिए बाहर लक्ष्य चाहिए और जागने के लिए बाहर के सभी लक्ष्यों की सार्थकता का भ्रम-भंग।
ईश्वर जब तक बाहर है, तब तक वह भी संसार है, वह भी माया है, वह भी मूर्च्छा है। उसका आविष्कार भी मनुष्य ने स्वयं से बचने और भागने के लिए ही किया है।
मित्र, इसलिए पहली बात तो मुझे यही कहनी है कि ईश्वर, सत्य, निर्वाण, मोक्ष--यह सब न खोजें। खोजें उसे जो यह सब खोज रहा है। उसकी खोज ही अंततः ईश्वर की, सत्य की और निर्वाण की खोज सिद्ध होती है। आत्मानुसंधान के अतिरिक्त और कोई खोज धार्मिक खोज नहीं है।
लेकिन आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आदि शब्द बड़े भ्रामक हैं। क्योंकि स्वयं
का ज्ञान कैसे हो सकता है? ज्ञान के लिए द्वैत चाहिए, दुई चाहिए। जहां दो नहीं हैं, वहां ज्ञान कैसे होगा? दर्शन कैसे होगा? साक्षात कैसे होगा? वस्तुतः ज्ञान, दर्शन आदि सभी शब्द द्वैत के जगत के हैं। और जहां अद्वैत है, जहां एक ही है, वहां वे एकदम अर्थहीन हो जाते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरे देखे, आत्मदर्शन असंभावना है, वह शब्द ही असंगत है।
मैं भी कहता हूंः स्वयं को जानो। सुकरात ने यही कहा है; बुद्ध और महावीर ने भी यही कहा है; क्राइस्ट और कृष्ण ने भी यही कहा है। फिर भी स्मरण रहे कि जो जाना जा सकता है, वह स्व कैसे होगा? वह तो पर ही हो सकता है। जानना तो पर का ही हो सकता है। स्व तो वह है जो जानता है। स्व अनिवार्य रूप से ज्ञाता है। उसे किसी भी उपाय से ज्ञेय नहीं बनाया जा सकता। तो फिर उसका ज्ञान कैसे होगा? ज्ञान तो ज्ञेय का होता है। ज्ञाता का ज्ञान कैसे होगा? जहां ज्ञान है, वहां कोई ज्ञाता है, कुछ ज्ञेय है। वहां कुछ जाना जाता है और कोई जानता है। अब ज्ञाता को ही जानने की चेष्टा क्या आंख को उसी आंख से देखने के प्रयास की भांति नहीं है? क्या कुत्तों को स्वयं अपनी ही पूंछ को पकड़ने की असफल चेष्टा करते आपने कभी देखा है? वे जितनी तीव्रता से झपटते हैं, पूंछ उतनी ही शीघ्रता से हट जाती है। इस प्रयास में वे पागल भी हो जावें तो भी क्या उन्हें पूंछ की प्राप्ति हो सकती है? किंतु हो सकता है कि वे अपनी पूंछ पकड़ लें, लेकिन स्वयं को ज्ञेय बनाना तो संभव नहीं है। मैं सबको जान सकता हूं लेकिन उसी भांति स्वयं को नहीं। शायद इसीलिए आत्मज्ञान जैसी सरल घटना कठिन और दुरूह बनी रहती है।
फिर हम आत्मज्ञान का क्या अर्थ करें? निश्चय ही वह वही ज्ञान नहीं है, जिससे कि हम परिचित हैं। वह ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध नहीं है। इसलिए चाहें तो उसे परम ज्ञान कहें, क्योंकि फिर और कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है, या चाहें तो परम अज्ञान, क्योंकि वहां जानने को ही कुछ नहीं होता है। पदार्थ-ज्ञान विषय-विषयी का संबंध है, आत्मज्ञान विषय-विषयी का अभाव। पदार्थ-ज्ञान में ज्ञाता है और ज्ञेय है; आत्मज्ञान में न ज्ञेय है और न ज्ञाता। वहां तो मात्र ज्ञान है। वह शुद्ध ज्ञान है।
जगत की सारी वस्तुएं ज्ञेय की भांति जानी जाती हैं। असल में जो ज्ञेय है, ज्ञेय बनती है, वही है वस्तु; जो जानता है, ज्ञाता है, वही है अवस्तु।
ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध है पदार्थ-ज्ञान। किंतु जहां न ज्ञेय है, न कोई ज्ञाता--क्योंकि जहां ज्ञेय नहीं, वहां ज्ञाता कैसे होगा--वहां जो शेष रह जाता है, जो ज्ञान शेष रह जाता है, वही है आत्मज्ञान।
ज्ञान की पूर्ण शुद्ध अवस्था का नाम ही है आत्मज्ञान।

और भी उचित है कि हम उसे ज्ञान ही कहें, क्योंकि वहां न कोई आत्म है और
न अनात्म। बुद्ध ने ठीक ही किया कि उसे आत्मा नहीं कहा। क्योंकि उस शब्द में अहंता की ध्वनि है। और जहां तक अहंता है, वहां तक आत्मा कहां?
इस ज्ञान को पाने की विधि क्या है? मार्ग क्या है? द्वार क्या है?
मैं एक घर में अतिथि था। उस घर में इतना सामान था कि हिलने-डुलने की भी जगह न थी। घर तो बड़ा था, किंतु सामान की अधिकता से बिल्कुल छोटा हो गया था। वस्तुतः वहां सामान ही सामान था और घर था। नहीं ही क्योंकि घर तो दीवारों से घिरे रिक्त स्थान का ही नाम है। दीवारें नहीं, वह रिक्त स्थान ही गृह है। क्योंकि दीवारों में नहीं, रहना उस रिक्त स्थान में ही होता है। रात में गृहपति ने मुझसे कहा, घर में जगह बिल्कुल नहीं है, लेकिन जगह लाएं भी कहां से? उनकी बात सुन मैं हंसने लगा। मैंने फिर उनसे कहा, रिक्त स्थान आपके घर में पर्याप्त है। वह यहीं है, और कहीं गया नहीं, केवल सामान से आपने उसे ढांक लिया है। कृपा कर सामान बाहर करें तो आप पाएंगे कि वह भीतर आ गया है। वह तो भीतर ही है, सामान के डर से दुबक गया है। सामान हटावें और वह अभी और यहीं है।
आत्मज्ञान की विधि भी यही है।
मैं तो निरंतर हूं। सोते-जागते, उठते-बैठते, सुख में, दुख में--मैं तो हूं ही। ज्ञान हो, अज्ञान हो, मैं तो हूं ही। मेरा यह होना असंदिग्ध है। सब पर संदेह किया जा सके, लेकिन स्वयं पर तो संदेह नहीं किया जा सकता है। जैसा कि देकार्त ने कहा है, संदेह भी करूं तो भी मैं हूं, क्योंकि संदेह भी बिना उसके कौन करेगा?
लेकिन यह "मैं" कौन है? यह "मैं" क्या है? कैसे इसे जानूं? हूं सो तो ठीक, लेकिन क्या हूं? कौन हूं?
मैं हूं, यह असंदिग्ध है। और क्या यह भी असंदिग्ध नहीं है कि मैं जानता हूं, मुझमें ज्ञान है, चेतना है, दर्शन है? यह हो सकता है कि जो जानूं, वह सत्य न हो, असत्य हो, स्वप्न हो। लेकिन मेरा जानना--जानने की क्षमता--तो सत्य है।
इन दो तथ्यों को देखें, विचार करें। मेरा होना, मेरा अस्तित्व; और मेरी जानने की क्षमता, मुझमें ज्ञान का होना; इन दोनों के आधार पर ही मार्ग खोजा का सकता है।
मैं हूं, लेकिन ज्ञात नहीं कौन हूं। अब क्या करूं? ज्ञान जो कि क्षमता है, ज्ञान जो कि शक्ति है, उसमें झांकूं और खोजूं। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प ही कहां है?
ज्ञान की शक्ति है, लेकिन वह ज्ञेय से--विषयों से--ढंकी है। एक विषय हटता है तो दूसरा आ जाता है। एक विचार जाता है तो दूसरे का आगमन हो जाता है। ज्ञान एक विषय से मुक्त होता है तो दूसरे से बंध जाता है, लेकिन रिक्त नहीं हो पाता। यदि ज्ञान विषय-रिक्त हो तो क्या हो? क्या उस अंतराल में, उस रिक्तता में, उस शून्यता में ज्ञान स्वयं में ही होने के कारण स्वयं की सत्ता का उदघाटक नहीं बन जाएगा? क्या जब जानने को कोई विषय नहीं होगा तो ज्ञान स्वयं को ही नहीं जानेगा?
ज्ञान जहां विषय-रिक्त है, वहीं वह स्व-प्रतिष्ठ होता है।
ज्ञान जहां ज्ञेय से मुक्त है, वहीं वह शुद्ध है। और वह शुद्धता-- शून्यता--ही आत्मज्ञान है।
चेतना जहां निर्विषय है, निर्विचार है, निर्विकल्प है, वहीं जो अनुभूति है, वही स्वयं का साक्षात्कार है।
किंतु यहां इस साक्षात्कार में न तो कोई ज्ञाता है, न ज्ञेय है। यह अनुभूति अभूतपूर्व है। उसके लिए शब्द असंभव है।
लाओत्से ने कहा है, सत्य के संबंध में जो भी कहो, वह कहने से ही असत्य
हो जाता है।
फिर भी सत्य के संबंध में जितना कहा गया है, उतना किस संबंध में कहा गया है? अनिर्वचनीय उसे कहें, तो भी कुछ कहते ही हैं! उसके संबंध में मौन रहें, तो भी कुछ कहते ही हैं!
ज्ञान है शब्दातीत। किंतु प्रेम उसके आनंद की, उसके आलोक की, उसकी मुक्ति की खबर देना चाहता है, फिर चाहे वे इंगित कितने ही अधूरे हों और

कितने ही असफल वे इशारे हों। गूंगा भी गुड़ के संबंध में कुछ कहता है! वह चाहे कुछ भी न कह पाता हो, लेकिन कहना चाहता है, यह तो कह ही देता है। किंतु सत्य के संबंध में किए गए अधूरे इंगितों को पकड़ लेने से बड़ी भ्रांति हो जाती है। आत्मज्ञान की खोज में जो व्यक्ति आत्मा को एक ज्ञेय पदार्थ की भांति खोजने निकल पड़ता है, वह प्रथम चरण में ही गलत दिशा में चल पड़ता है।
आत्मा ज्ञेय नहीं है और न ही उसे किसी आकांक्षा का लक्ष्य ही बनाया जा सकता है, क्योंकि वह विषय भी नहीं है। वस्तुतः उसे खोजा भी नहीं जा सकता, क्योंकि वह खोजने वाले का ही स्वरूप है। उस खोज में खोज और खोजी भिन्न नहीं हैं। इसलिए आत्मा को केवल वे ही खोज पाते हैं जो सब खोज छोड़ देते हैं और वे ही जान पाते हैं जो सब जानने से शून्य हो जाते हैं।
खोज को--सब भांति की खोज को--छोड़ते ही चेतना वहां पहुंच जाती है जहां
वह सदा से ही है।
दौड़ को--सब भांति की दौड़ को--छोड़ते ही चेतना वहीं पहुंच जाती है जहां
वह सदैव से ही खड़ी हुई है।
समाधि के बाद तथागत बुद्ध से किसी ने पूछा, समाधि से आपको क्या मिला?
तो बुद्ध ने कहा था, कुछ भी नहीं। खोया बहुत कुछ, पाया कुछ भी नहीं। वासना खोई, विचार खोए, सब भांति की दौड़ और तृष्णा खोई, और पाया वह जो सदा से ही पाया हुआ है।
मैं जिसे नहीं खो सकता हूं, वही तो है स्वरूप।
मैं जिसे नहीं खो सकता हूं, वही तो है परमात्मा।
और सत्य क्या है? जो सदा है, सनातन है, वही तो है सत्य। इस सत्य को, इस स्वरूप को पाने के लिए चेतना से उस सबको खोना आवश्यक है जो कि सत्य नहीं है। जिसे खोया जा सकता है, उस सबको खोकर ही वह जान लिया जाता है जो सत्य है।
स्वप्न खोते ही सत्य उपलब्ध है।
मित्र, मैं पुनः दोहराता हूंः स्वप्न खोते ही सत्य उपलब्ध है। स्वप्न जहां नहीं हैं, तब जो शेष है, वही है स्व-सत्ता, वही है सत्य, वही है स्वतंत्रता।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
बारहवां प्रवचन

धर्म क्या है?

धर्म पर क्या कहूं? जो कहा जा सकता है, वह धर्म नहीं होगा। जो विचार के परे है, वह वाणी के अंतर्गत नहीं हो सकता है। शास्त्रों में जो है, वह धर्म नहीं है। शब्द ही वहां हैं। शब्द सत्य की ओर जाने के भले ही संकेत हों, पर वे सत्य नहीं हैं। शब्दों से संप्रदाय बनते हैं, और धर्म दूर ही रह जाता है। इन शब्दों ने ही मनुष्य को तोड़ दिया है। मनुष्यों के बीच पत्थरों की नहीं, शब्दों की ही दीवारें हैं।
मनुष्य और मनुष्य के बीच शब्द की दीवारें हैं। मनुष्य और सत्य के बीच
भी शब्द की ही दीवार है। असल में जो सत्य से दूर किए हुए है, वही उसे सबसे दूर किए हुए है। शब्दों का एक मंत्र घेरा है और हम सब उसमें सम्मोहित हैं। शब्द हमारी निद्रा है, और शब्द के सम्मोहक अनुसरण में हम अपने आप से बहुत दूर निकल गए हैं। स्वयं से जो दूर और स्वयं से जो अपरिचित है वह सत्य से निकट और सत्य से परिचित नहीं हो सकता है। यह इसलिए कि स्वयं का सत्य ही सबसे निकट का सत्य है। शेष सब दूर है। बस स्वयं ही दूर नहीं है। शब्द स्वयं को नहीं जानने देते हैं। उनकी तरंगों में वह सागर छिप ही जाता है। शब्दों का कोलाहल उस संगीत को अपने तक नहीं पहुंचने देता जो कि मैं हूं। शब्द का धुआं सत्य की अग्नि प्रकट नहीं होने देता है। और हम अपने वस्त्रों को ही जानते-जानते मिट जाते हैं और उसे नहीं मिल पाते जिसके वस्त्र थे, और जो वस्त्रों में था लेकिन केवल वस्त्र ही नहीं था।
मैं भीतर देखता हूं। वहां शब्द ही शब्द दिखाई देते हैं। विचार, स्मृतियां, कल्पनाएं और स्वप्न, ये सब शब्द ही हैं, और मैं शब्द के पर्त-पर्त घेरों में बंधा हूं। क्या मैं इन विचारों पर ही समाप्त हूं, या कि इनसे भिन्न और अतीत भी मुझमें कुछ है? इस प्रश्न के उत्तर पर ही सब कुछ निर्भर है। उत्तर विचार से आया तो मनुष्य धर्म तक नहीं पहुंच पाता, क्योंकि विचार विचार से अतीत को नहीं जान सकता। विचार की सीमा विचार है। उसके पार की गंध भी उसे नहीं मिल सकती है।
साधारणतः लोग विचार से ही वापस लौट आते हैं। वह अदृश्य दीवार उन्हें वापस कर देती है। जैसे कोई कुआं खोदने जाए और कंकड़-पत्थर को पाकर निराश हो रुक जाए, वैसा ही स्वयं की खुदाई में भी हो जाता है। शब्दों के कंकड़-पत्थर ही पहले मिलते हैं। और यह स्वाभाविक ही है। वे ही हमारी बाहरी पर्त हैं। जीवन-यात्रा में उनकी ही धूल हमारा आवरण बन गई है।
आत्मा को पाने को सब आवरण चीर देने जरूरी हैं। वस्त्रों के पार जो नग्न सत्य है, उस पर ही रुकना है। शब्द को उस समय तक खोदे चलना है, जब तक कि निःशब्द का जलस्रोत उपलब्ध नहीं हो जाए। विचार की धूल को हटाना है, जब तक कि मौन का दर्पण हाथ न आ जाए। यह खुदाई कठिन है। यह वस्त्रों को उतारना ही नहीं है, अपनी चमड़ी को उतारना है। यही तप है। प्याज को छीलते हुए देखा है? ऐसा ही अपने को छीलना है। प्याज में तो अंत में कुछ भी नहीं बचता है, अपने में सब कुछ बच रहता है। सब छीलने पर जो बच रहता है, वही वास्तविक है, वही मेरी प्रामाणिक सत्ता है, वह मेरी आत्मा है।
एक-एक विचार को उठा कर दूर रखते जाना है, और जानना है कि यह मैं नहीं हूं, और इस भांति गहरे प्रवेश करना है। शुभ या अशुभ को नहीं चुनना है। वैसा चुनाव वैचारिक ही है, और विचार के पार नहीं ले जाता। यहीं नीति और धर्म अलग रास्तों के लिए हो जाते हैं। नीति अशुभ विचारों के विरोध में शुभ विचारों का चुनाव है। धर्म चुनाव नहीं है। वह तो उसे जानना है, जो सब चुनाव करता है, और सब चुनावों के पीछे है। यह जानना तभी हो सकता है जब चुनाव का सब चुनाव शून्य हो और केवल वही शेष रह जाए तो हमारा चुनाव नहीं है वरन हम स्वयं हैं। विचार के तटस्थ, चुनाव-शून्य निरीक्षण से विचार-शून्यता आती है। विचार तो नहीं रह जाते, केवल विवेक रह जाता है। विषय-वस्तु तो नहीं होती, केवल चैतन्य मात्र रह जाता है। इसी क्षण में प्रसुप्त प्रज्ञा का विस्फोट होता है और धर्म के द्वार खुल जाते हैं।

इसी उदघाटन के लिए मैं सबको आमंत्रित करता हूं। शास्त्र जो तुम्हें नहीं दे सकते, वह स्वयं तुम्हीं में है। और तुम्हें जो कोई भी नहीं दे सकता, उसे तुम अभी और इसी क्षण पा सकते हो। केवल शब्द को छोड़ते ही सत्य उपलब्ध होता है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
तेरहवां प्रवचन

विज्ञान की अग्नि में धर्म और विश्वास

मैं स्मरण करता हूं मनुष्य के इतिहास की सबसे पहली घटना को। कहा जाता
है कि जब आदम और ईव स्वर्ग के राज्य से बाहर निकाले गए तो आदम ने द्वार से निकलते हुए जो सबसे पहले शब्द ईव से कहे थे, वे थेः हम एक बहुत बड़ी क्रांति से गुजर रहे हैं।
पता नहीं पहले आदमी ने कभी यह कहा था या नहीं, लेकिन न भी कहा हो तो भी उसके मन में तो ये भाव रहे ही होंगे। एक बिल्कुल ही अज्ञात जगत में वह प्रवेश कर रहा था। जो परिचित था वह छूट रहा था, और जो बिल्कुल ही परिचित नहीं था, उस अनजाने और अजनबी जगत में उसे जाना पड़ रहा था। अज्ञात सागर में नौका खोलते समय ऐसा लगना स्वाभाविक ही है। ये भाव प्रत्येक युग में आदमी को अनुभव होते रहे हैं, क्योंकि जीवन का विकास तो निरंतर अज्ञात से अज्ञात में ही है। जो ज्ञात हो जाता है उसे छोड़ना पड़ता है, ताकि जो अज्ञात है वह भी ज्ञात हो सके। ज्ञात की ज्योति, ज्ञात से अज्ञात में चरण रखने के साहस से ही प्रज्वलित और परिवर्धित होती है।
जो ज्ञात पर रुक जाता है, वह अज्ञान पर ही रुक जाता है। ज्ञात पर रुक जाना ज्ञान की दिशा नहीं है। जब तक मनुष्य पूर्ण नहीं हो जाता है तब तक निरंतर ही पुराने और परिचित को विदा देनी होगी और नये तथा अपरिचित का स्वागत करना होगा। नये सूर्य के उदय के लिए रोज ही परिचित पुराने सूर्य को विदा दे देनी होती है। फिर संक्रमण की बेला में रात्रि के अंधकार से भी गुजरना होता है। विकास की यह प्रक्रिया निश्चय ही बहुत कष्टप्रद है। लेकिन बिना प्रसव-पीड़ा के कोई जन्म भी तो नहीं होता है।
हम भी इस प्रसव-पीड़ा से गुजर रहे हैं। हम भी एक अभूतपूर्व क्रांति से गुजर रहे हैं। शायद मानवीय चेतना में इतनी आमूल क्रांति का कोई समय भी नहीं आया था। थोड़े-बहुत अर्थों में तो परिवर्तन सदैव होता रहता है, क्योंकि परिवर्तन के अभाव में कोई जीवन ही नहीं है। लेकिन परिवर्तन की सतत प्रक्रिया कभी-कभी वाष्पीकरण के उत्ताप-बिंदु पर भी पहुंच जाती है और तब आमूल क्रांति घटित हो जाती है। यह बीसवीं सदी एक ऐसे ही उत्ताप-बिंदु पर मनुष्य को ले आई है। इस क्रांति से उसकी चेतना एक बिल्कुल ही नये आयाम में गतिमय होने को तैयार हो रही है।
हमारी यात्रा अब एक बहुत ही अज्ञात मार्ग पर होनी संभावित है। जो भी ज्ञात है वह छूट रहा है; और जो भी परिचित और जाना-माना है वह विलीन होता जाता है। सदा से चले आते जीवन-मूल्य खंडित हो रहे हैं और परंपरा की कड़ियां टूट रही हैं। निश्चित ही यह किसी बहुत बड़ी छलांग की पूर्व-तैयारी है। अतीत की भूमि से उखड़ रही हमारी जड़ें किसी नयी भूमि में स्थानांतरित होना चाहती हैं और परंपराओं के गिरते हुए पुराने भवन किन्हीं नये भवनों के लिए स्थान खाली कर रहे हैं।
इन सब में मैं मनुष्य को जीवन के बिल्कुल ही अज्ञात रहस्य-द्वारों पर चोट करते देख रहा हूं। परिचित और चक्रीय गति से बहुत चले हुए मार्ग उजाड़ हो गए हैं और भविष्य के अत्यंत अपरिचित और अंधकारपूर्ण मार्गों को प्रकाशित करने की चेष्टा चल रही है।
यह बहुत शुभ है, और मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं। क्योंकि यह सब चेष्टा
इस बात का सुसमाचार है कि मनुष्य की चेतना कोई नया आरोहण करना चाहती है। हम विकास के किसी सोपान के निकट हैं। मनुष्य अब वही नहीं रहेगा जो वह था। कुछ होने को है, कुछ नया होने को है। जिनके पास दूर देखने वाली आंखें हैं वे देख सकते हैं, और जिनके पास दूर को सुनने वाले कान हैं वे सुन सकते हैं। बीज जब टूटता है और अपने अंकुर को सूर्य की तलाश में भूमि के ऊपर भेजता है तो जैसी उथल-पुथल उसके भीतर होती है, वैसी ही उथल-पुथल का सामना हम भी कर रहे हैं।
इसमें घबराने और चिंतित होने का कोई भी कारण नहीं है। यह अराजकता संक्रमणकालीन है। इसके भय से पीछे लौटने की वृत्ति आत्मघाती है। फिर पीछे

लौटना तो कभी संभव नहीं है। जीवन केवल आगे की ओर ही जाता है। जैसे सुबह होने के पूर्व अंधकार और भी घना हो जाता है, ऐसे ही नये के जन्म के पूर्व अराजकता की पीड़ा भी बहुत सघन हो जाती है।
हमारी चेतना में हो रही इस सारी उथल-पुथल, अराजकता, क्रांति और नये के जन्म की संभावना का केंद्र और आधार विज्ञान है। विज्ञान के आलोक ने हमारी आंखें खोल दी हैं और हमारी नींद तोड़ दी है। उसने ही हमसे हमारे बहुत से दीर्घ पोषित स्वप्न छीन लिए हैं और बहुत से वस्त्र भी, और हमारे स्वयं के समक्ष ही नग्न खड़ा कर दिया है। जैसे किसी ने हमें झकझोर कर अर्धरात्रि में जगा दिया हो, ऐसा ही विज्ञान ने हमें जगा दिया है।
विज्ञान ने मनुष्य का बचपन छीन लिया है और उसे प्रौढ़ता दे दी है। उसकी
ही खोजों और निष्पत्तियों ने हमें हमारी परंपरागत और रूढ़िबद्ध चिंतना से मुक्त कर दिया है, जो वस्तुतः चिंतना नहीं, मात्र चिंतन का मिथ्या आभास ही थी; क्योंकि जो विचार स्वतंत्र न हो वह विचार ही नहीं होता है। सदियों- सदियों से जो अंधविश्वास मकड़ी के जालों की भांति हमें घेरे हुए थे, उसने उन्हें तोड़ दिया है। और यह संभव हो सका है कि मनुष्य का मन विश्वास की कारा से मुक्त होकर विवेक की ओर अग्रसर हो सके।
कल तक के इतिहास को हम विश्वास-काल कह सकते हैं। आने वाला समय विवेक
का होगा। विश्वास से विवेक में आरोहण ही विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। यह विश्वास का परिवर्तन मात्र ही नहीं है, वरन विश्वास से मुक्ति है। श्रद्धाएं तो सदा बदलती रहती हैं। पुराने विश्वासों की जगह नये विश्वास लेते रहे हैं। लेकिन आज जो विज्ञान के द्वारा संभव हुआ है, वह बहुत अभिनव है। पुराने विश्वास चले गए हैं, और नयों का आगमन नहीं हुआ है। पुरानी श्रद्धाएं मर गई हैं, और नयी श्रद्धाओं का आविर्भाव नहीं हुआ है। यह रिक्तता अभूतपूर्व है। श्रद्धा बदली नहीं, शून्य हो गई है। श्रद्धा-शून्य तथा विश्वास-शून्य चेतना का जन्म हुआ है।
विश्वास बदल जाएं तो कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है। एक की जगह दूसरे आ जाते हैं। अरथी को ले जाते समय जैसे लोग कंधा बदल लेते हैं, वैसा ही यह परिवर्तन है। विश्वास की वृत्ति तो बनी ही रहती है। जब कि विश्वास की विषय-वस्तु नहीं, विश्वास की वृत्ति ही असली बात है। विज्ञान ने विश्वास को नहीं बदला है, उसने तो उसकी वृत्ति को ही तोड़ डाला है।
विश्वास-वृत्ति ही अंधानुगमन में ले जाती है और वही पक्षपातों से चित्त को बांधती है। जो चित्त पक्षपातों से बंधा हो वह सत्य को नहीं जान सकता है। जानने के लिए निष्पक्ष होना आवश्यक है। जो कुछ भी मान लेता है वह सत्य को जानने से वंचित हो जाता है; वह मानना ही उसका बंधन बन जाता है। जब कि सत्य के साक्षात के लिए चेतना का मुक्त होना आवश्यक है। विश्वास नहीं, विवेक ही सत्य के द्वार तक ले जाने में समर्थ है। और विवेक के जागरण में विश्वास से बड़ी और कोई बाधा नहीं है।
यह स्मरणीय है कि जो व्यक्ति विश्वास कर लेता है, वह कभी खोजता नहीं। खोज तो संदेह से होती है, श्रद्धा से नहीं। समस्त ज्ञान का जन्म संदेह से होता है। संदेह का अर्थ अविश्वास नहीं है। अविश्वास तो विश्वास का ही निषेधात्मक रूप है। खोज न तो विश्वास से होती है, न अंधविश्वास से। उसके लिए तो संदेह की स्वतंत्र चित्त-दशा चाहिए। संदेह केवल सत्य की खोज का पथ प्रशस्त करता है।
विज्ञान ने, जो तथाकथित ज्ञान प्रचलित और स्वीकृत था, उस पर संदेह किया। और संदेह ने अनुसंधान के द्वार खोल दिए। संदेह जैसे-जैसे विश्वासों या अंधविश्वासों से मुक्त हुआ, वैसे-वैसे विज्ञान के चरण सत्य की ओर बढ़े। विज्ञान का न तो किसी पर विश्वास है, न अविश्वास। वह तो पक्षपात-शून्य अनुसंधान है। प्रयोग-जन्य ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी मानने की वहां तैयारी नहीं। वह न तो आस्तिक है, न नास्तिक। उसकी कोई पूर्व-मान्यता नहीं है। वह कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता है। सिद्ध करने के लिए उसकी अपनी कोई धारणा नहीं है। वह तो जो सत्य है, उसे ही जानना चाहता है।
यही कारण है कि विज्ञान के पंथ और संप्रदाय नहीं बने और उसकी निष्पत्तियां सार्वलौकिक हो सकीं। जहां पूर्व-धारणाओं और पूर्व-पक्षपातों से प्रारंभ होगा वहां अंततः सत्य नहीं, संप्रदाय ही हाथ में रह

जाते हैं। अज्ञान और अंधेपन में स्वीकृत कोई भी धारणा सार्वलौकिक नहीं हो सकती। सार्वलौकिक तो केवल सत्य हो सकता है। यही कारण है कि जहां विज्ञान एक है, वहां तथाकथित धर्म अनेक और परस्पर विरोधी हैं। धर्म भी जिस दिन विश्वासों पर नहीं, शुद्ध विवेक पर आधारित होगा, उस दिन अपरिहार्य रूप से एक ही हो जाएगा। विश्वास अनेक हो सकते हैं, पर विवेक एक ही है। असत्य अनेक हो सकते हैं, पर सत्य एक ही है।
धर्म का प्राण श्रद्धा थी। श्रद्धा का अर्थ है बिना जाने मान लेना। श्रद्धा नहीं तो धर्म भी नहीं। श्रद्धा के साथ ही उसकी छाया की भांति तथाकथित धर्म भी चला गया।
धर्म-विरोधी नास्तिकता का प्राण अश्रद्धा थी। अश्रद्धा का अर्थ है बिना जाने अस्वीकार कर देना। वह श्रद्धा के ही सिक्के का दूसरा पहलू है। श्रद्धा गई तो वह भी गई। आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही मृत हो गई हैं। उन दो द्वंद्वों, दो अतियों के बीच ही सदा से हम डोलते रहे हैं।
विज्ञान ने एक तीसरा विकल्प दिया है। यह संभव हुआ है कि कोई व्यक्ति आस्तिक-नास्तिक दोनों ही न हो और वह स्वयं को किन्हीं भी विश्वासों से न बांधे। जीवन-सत्य के संबंध में वह परंपरा और प्रचार से अवचेतन में डाली गई धारणाओं से अपने आप को मुक्त कर ले।
समाज और संप्रदाय प्रत्येक व्यक्ति के चित्त की गहरी पर्तों में अत्यंत अबोध अवस्था में ही अपनी स्वीकृत मान्यताओं को प्रवेश कराने लगते हैं। हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई या मुसलमान अपनी-अपनी मान्यताओं और विश्वासों को बच्चों के मन में डाल देते हैं। निरंतर पुनरुक्ति और प्रचार से वे चित्त की अवचेतन पर्तों में बद्धमूल हो जाती हैं और वैसा व्यक्ति फिर स्वतंत्र चिंतन के लिए करीब-करीब पंगु सा हो जाता है। यही कम्युनिज्म या नास्तिक धर्म कर रहा है।
व्यक्तियों के साथ उनकी अबोध अवस्था में किया गया यह अनाचार मनुष्य
के विपरीत किए जाने वाले बड़े से बड़े पापों में से एक है। चित्त इस भांति परतंत्र और विश्वासों के ढांचे में कैद हो जाता है। फिर उसकी गति पटरियों पर दौड़ते वाहनों की भांति हो जाती है। पटरियां जहां ले जाती हैं, वहीं वह जाता है, और उसे यही भ्रम होता है कि मैं जा रहा हूं। दूसरों से मिले विश्वास ही उसके विचारों में प्रकट या प्रच्छन्न होते हैं, लेकिन भ्रम उसे यही रहता है कि ये विचार मेरे हैं।
विश्वास यांत्रिकता को जन्म देता है। और चेतना के विकास के लिए यांत्रिकता से घातक और क्या हो सकता है? विश्वासों से पैदा हुई मानसिक गुलामी और जड़ता के कारण व्यक्ति की गति कोल्हू के बैल की सी हो जाती है। वह विश्वासों की परिधि में ही घूमता रहता है और विचार कभी नहीं कर पाता। विचार के लिए स्वतंत्रता चाहिए। चित्त की पूर्ण स्वतंत्रता में ही प्रसुप्त विचार-शक्ति का जागरण होता है। और विचार-शक्ति का पूर्ण आविर्भाव ही सत्य तक ले जाता है।
विज्ञान ने मनुष्य की विश्वास-वृत्ति पर प्रहार कर बड़ा ही उपकार किया है। इस भांति उसने मानसिक स्वतंत्रता के आधार रख दिए हैं। इससे धर्म का भी एक नया जन्म होगा।
धर्म अब विश्वास पर नहीं, विवेक पर आधारित होगा। श्रद्धा नहीं, ज्ञान
ही उसका प्राण होगा। धर्म भी अब वस्तुतः विज्ञान ही होगा। विज्ञान पदार्थों का विज्ञान है; धर्म चेतना का विज्ञान होगा। वस्तुतः सम्यक धर्म तो सदा से ही विज्ञान रहा है। महावीर, बुद्ध, ईसा, पतंजलि या लाओत्से की अनुभूतियां विश्वास पर नहीं, विवेकपूर्ण आत्म-प्रयोगों पर ही निर्भर थीं। उन्होंने जो जाना था, उसे ही माना था। मानना प्रथम नहीं, अंतिम था। श्रद्धा आधार नहीं, शिखर थी। आधार तो ज्ञान था। जिन सत्यों की उन्होंने बात की है, वे मात्र उनकी धारणाएं नहीं हैं, वरन स्वानुभूत प्रत्यक्ष हैं। उनकी अनुभूतियों में भेद भी नहीं है। उनके शब्द भिन्न हैं, लेकिन सत्य भिन्न नहीं।
सत्य तो भिन्न-भिन्न हो भी नहीं सकते। लेकिन ऐसा वैज्ञानिक धर्म कुछ अतिमानवीय चेतनाओं तक ही सीमित रहा है। वह लोकधर्म नहीं बना। लोकधर्म तो अंधविश्वास ही बना रहा है। विज्ञान की चोटें अंधविश्वास पर आधारित धर्म

को निष्प्राण किए दे रही हैं। यह वास्तविक धर्म के हित में ही है। विवेक की कोई भी विजय अंततः वास्तविक धर्म के विरोध में नहीं हो सकती। विज्ञान की अग्नि में अंधविश्वासों का कूड़ा-कचरा ही जल जाएगा, धर्म और भी निखर कर प्रकट होगा।
धर्म का स्वर्ण विज्ञान की अग्नि में शुद्ध हो रहा है। और धर्म जब अपनी पूरी शुद्धि में प्रकट होगा तो मनुष्य के चेतना-जगत में एक अत्यंत सौभाग्यपूर्ण सूर्योदय हो जाएगा। प्रज्ञा और विवेक पर आरूढ़ धर्म निश्चय ही मनुष्य को अतिमानवीय चेतना में प्रवेश दिला सकता है। उसके अतिरिक्त मनुष्य की चेतना स्वयं का अतिक्रमण नहीं कर सकती। और जब मनुष्य स्वयं का अतिक्रमण करता है तो प्रभु से एक हो जाता है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
चौदहवां प्रवचन

मनुष्य का विज्ञान

मैं सुनता हूं कि मनुष्य का मार्ग खो गया है। यह सत्य है। मनुष्य का मार्ग उसी दिन खो गया, जिस दिन उसने स्वयं को खोजने से भी ज्यादा मूल्यवान किन्हीं और खोजों को मान लिया।
मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सार्थक वस्तु मनुष्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसकी पहली खोज वह स्वयं ही हो सकता है। खुद को जाने बिना उसका सारा जानना अंततः घातक ही होगा। अज्ञान के हाथों में कोई भी ज्ञान सृजनात्मक नहीं हो सकता, और ज्ञान के हाथों में अज्ञान भी सृजनात्मक हो जाता है।
मनुष्य यदि स्वयं को जाने और जीते, तो उसकी शेष सब जीतें उसकी और उसके जीवन की सहयोगी होंगी। अन्यथा वह अपने ही हाथों अपनी कब्र के लिए गड्ढा खोदेगा।
हम ऐसा ही गड्ढा खोदने में लगे हैं। हमारा ही श्रम हमारी मृत्यु बन कर खड़ा हो गया है। पिछली सभ्यताएं बाहर के आक्रमणों और संकटों से नष्ट हुई थीं। हमारी सभ्यता पर बाहर से नहीं, भीतर से संकट है। बीसवीं सदी का यह समाज यदि नष्ट हुआ तो उसे आत्मघात कहना होगा; और यह हमें ही कहना होगा, क्योंकि बाद में कहने को कोई भी बचने को नहीं है। संभाव्य युद्ध इतिहास में कभी नहीं लिखा जाएगा। यह घटना इतिहास के बाहर घटेगी, क्योंकि उसमें तो समस्त मानवता का अंत होगा।
पहले के लोगों ने इतिहास बनाया, हम इतिहास मिटाने को तैयार हैं। और इस आत्मघाती संभावना का कारण एक ही है। वह है, मनुष्य का मनुष्य को ठीक से न जानना। पदार्थ की अनंत शक्ति से हम परिचित हैं--परिचित ही नहीं, उसके हम विजेता भी हैं। पर मानवीय हृदय की गहराइयों का हमें कोई पता नहीं। उन गहराइयों में छिपे विष और अमृत का भी कोई ज्ञान नहीं है।
पदार्थाणु को हम जानते हैं, पर आत्माणु को नहीं। यही हमारी विडंबना है। ऐसे शक्ति तो आ गई है, पर शांति नहीं। अशांत और अप्रबुद्ध हाथों में आई हुई शक्ति से ही यह सारा उपद्रव है। अशांत और अप्रबुद्ध का शक्तिहीन होना ही शुभ होता है। शक्ति सदा शुभ नहीं। वह तो शुभ हाथों में ही शुभ होती है। हम शक्ति को खोजते रहे, यही हमारी भूल हुई। अब अपनी ही उपलब्धि से खतरा है। सारे विश्व के विचारकों और वैज्ञानिकों को आगे स्मरण रखना चाहिए कि उनकी खोज मात्र शक्ति के लिए न हो। उस तरह की अंधी खोज ने ही हमें इस अंत पर लाकर खड़ा किया है।
शक्ति नहीं, शांति लक्ष्य बने। स्वभावतः यदि शांति लक्ष्य होगी, तो खोज का केंद्र प्रकृति नहीं, मनुष्य होगा। जड़ की बहुत खोज और शोध हुई, अब मनुष्य का और मन का अन्वेषण करना होगा। विजय की पताकाएं पदार्थ पर नहीं, स्वयं पर गाड़नी होंगी। भविष्य का विज्ञान पदार्थ का नहीं, मूलतः मनुष्य का विज्ञान होगा। समय आ गया है कि यह परिवर्तन हो। अब इस दिशा में और देर करनी ठीक नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि फिर कुछ करने को समय भी शेष न बचे।
जड़ की खोज में जो वैज्ञानिक आज भी लगे हैं, वे दकियानूसी हैं, और उनके मस्तिष्क विज्ञान के आलोक से नहीं, परंपरा और रूढ़ि के अंधकार में ही डूबे कहे जावेंगे। जिन्हें थोड़ा भी बोध है और जागरूकता है, उनके अन्वेषण की दिशा आमूल बदल जानी चाहिए। हमारी सारी शोध मनुष्य को जानने में लगे, तो कोई भी कारण नहीं है कि जो शक्ति पदार्थ और प्रकृति को जानने और जीतने में इतने अभूतपूर्व रूप से सफल हुई है, वह मनुष्य को जानने में सफल न हो सके। मनुष्य भी निश्चय ही जाना, जीता और परिवर्तित किया जा सकता है। मैं निराश होने का कोई भी कारण नहीं देखता। हम स्वयं को जान सकते हैं और स्वयं के ज्ञान पर हमारे जीवन और अंतःकरण के बिल्कुल ही नये आधार रखे जा सकते हैं। एक बिल्कुल ही अभिनव मनुष्य को जन्म दिया जा सकता है।
अतीत में विभिन्न धर्मों ने इस दिशा में बहुत काम किया है, लेकिन वह कार्य अपनी पूर्णता और समग्रता के लिए विज्ञान की प्रतीक्षा कर रहा है।

धर्मों ने जिसका प्रारंभ किया है, विज्ञान उसे पूर्णता तक ले जा सकता है। धर्मों ने जिसके बीज बोए हैं, विज्ञान उसकी फसल काट सकता है।
पदार्थ के संबंध में विज्ञान और धर्म के रास्ते विरोध में पड़ गए थे, उसका कारण दकियानूसी धार्मिक लोग थे। वस्तुतः धर्म पदार्थ के संबंध में कुछ भी कहने का हकदार नहीं था। वह उसकी खोज की दिशा ही नहीं थी। विज्ञान उस संघर्ष में विजय हो गया, यह अच्छा हुआ। लेकिन इस विजय से यह न समझा जाए कि धर्म के पास कुछ कहने को नहीं है। धर्म के पास कुछ कहने को है, और बहुत मूल्यवान संपत्ति है। यदि उस संपत्ति से लाभ नहीं उठाया गया तो उसका कारण रूढ़िग्रस्त पुराणपंथी वैज्ञानिक होंगे। एक दिन एक दिशा में धर्म विज्ञान के समक्ष हार गया था, अब समय है कि उसे दूसरी दिशा में विजय मिले और धर्म और विज्ञान सम्मिलित हों। उनकी संयुक्त साधना ही मनुष्य को उसके स्वयं के हाथों से बचाने में समर्थ हो सकती है।
पदार्थ को जान कर जो मिला है, आत्मज्ञान से जो मिलेगा, उसके समक्ष वह कुछ भी नहीं है। धर्मों ने वह संभावना बहुत थोड़े लोगों के लिए खोली है। वैज्ञानिक होकर वह द्वार सबके लिए खुल सकेगा। धर्म विज्ञान बने और विज्ञान धर्म बने, इसमें ही मनुष्य का भविष्य और हित है।
मानवीय चित्त में अनंत शक्तियां हैं; और जितना उनका विकास हुआ है, उससे बहुत ज्यादा विकास की प्रसुप्त संभावनाएं हैं। इन शक्तियों की अव्यवस्था और अराजकता ही हमारे दुख का कारण है। और जब व्यक्ति का चित्त अव्यवस्थित और अराजक होता है तो वह अराजकता समष्टि चित्त तक पहुंचते ही अनंत गुना हो जाती है।
समाज व्यक्तियों के गुणनफल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह हमारे अंतर्संबंधों का ही फैलाव है। व्यक्ति ही फैल कर समाज बन जाता है। इसलिए स्मरण रहे कि जो व्यक्ति में घटित होता है, उसका ही वृहत रूप समाज में प्रतिध्वनित होगा। सारे युद्ध मनुष्य के मन में लड़े गए हैं और सारी विकृतियों की मूल जड़ें मन में ही हैं।
समाज को बदलना है तो मनुष्य को बदलना होगा; और समष्टि के नये आधार रखने हैं तो व्यक्ति को नया जीवन देना होगा।
मनुष्य के भीतर विष और अमृत दोनों हैं। शक्तियों की अराजकता ही विष
है और शक्तियों का संयम, सामंजस्य और संगीत ही अमृत है।
जीवन जिस विधि से सौंदर्य और संगीत बन जाता है, उसे ही मैं योग कहता हूं।
जो विचार, जो भाव और जो कर्म मेरे अंतःसंगीत के विपरीत जाते हों, वे ही पाप हैं; और जो उसे पैदा और समृद्ध करते हों, उन्हें ही मैंने पुण्य जाना है। चित्त की वह अवस्था जहां संगीत शून्य हो जाए और सभी स्वर पूर्ण अराजक हों, नर्क है; और वह अवस्था स्वर्ग है, जहां संगीत पूर्ण हो।
भीतर जब संगीत पूर्ण होता है तो ऊपर से पूर्ण का संगीत अवतरित होने लगता है। व्यक्ति जब संगीत हो जाता है, तो समस्त विश्व का संगीत उसकी ओर प्रवाहित होने लगता है।
संगीत से भर जाओ तो संगीत आकृष्ट होता है; विसंगीत विसंगति को आमंत्रित करेगा। हम में जो होता है, वही हम में आने भी लगता है, उसकी ही संग्राहकता और संवेदनशीलता हम में होती है।
उस विज्ञान को हमें निर्मित करना है जो व्यक्ति के अंतर-जीवन को स्वास्थ्य और संगीत दे सके। यह किसी और प्रभु के राज्य के लिए नहीं, वरन इसी जगत और पृथ्वी के लिए है। यह जीवन ठीक हो तो किसी और जीवन की चिंता अनावश्यक है। इसके ठीक न होने से ही परलोक की चिंता पकड़ती है। जो इस जीवन को सम्यक रूप देने में सफल हो जाता है, वह अनायास ही समस्त भावी जीवनों को सुदृढ़ और शुभ आधार देने में भी समर्थ हो जाता है। वास्तविक धर्म का कोई संबंध परलोक से नहीं है। परलोक तो इस लोक का परिणाम है।
धर्मों का परलोक की चिंता में होना बहुत घातक और हानिकारक हुआ है। उसके ही कारण हम जीवन को शुभ और सुंदर नहीं बना सके। धर्म परलोक के लिए रहे और विज्ञान पदार्थ के लिए--इस भांति मनुष्य और उसका जीवन उपेक्षित हो गया।
परलोक पर शास्त्र और दर्शन निर्मित हुए और पदार्थ की शक्तियों पर विजय पाई गई। किंतु जिस मनुष्य के लिए यह सब हुआ, उसे हम भूल गए।

अब मनुष्य को सर्वप्रथम रखना होगा। विज्ञान और धर्म दोनों का केंद्र मनुष्य बनना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि विज्ञान पदार्थ का मोह छोड़े और धर्म परलोक का। उन दोनों का यह मोह-त्याग ही उनके सम्मिलन की भूमि बन सकेगा।
धर्म और विज्ञान का मिलन और सहयोग मनुष्य के इतिहास में सबसे बड़ी घटना होगी। इससे बहुत सृजनात्मक ऊर्जा का जन्म होगा। वह समन्वय ही अब सुरक्षा देगा। उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। उनके मिलन से पहली बार मनुष्य के विज्ञान की उत्पत्ति होगी और विज्ञान में ही अब मनुष्य का जीवन और भविष्य है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
पंद्रहवां प्रवचन

विचार के जन्म के लिएः विचारों से मुक्ति

विचार-शक्ति के संबंध में आप जानना चाहते हैं? निश्चय ही विचार से बड़ी
और कोई शक्ति नहीं। विचार व्यक्तित्व का प्राण है। उसके केंद्र पर ही जीवन का प्रवाह घूमता है। मनुष्य में वही सब प्रकट होता है, जिसके बीज वह विचार की भूमि में बोता है। विचार की सचेतना ही मनुष्य को अन्य पशुओं से पृथक भी करती है। लेकिन यह स्मरण रहे कि विचारों से घिरे होने और विचार की शक्ति में बड़ा भेद है। भेद ही नहीं, विरोध भी है।
विचारों से जो जितना घिरा होता है, वह विचार करने से उतना ही असमर्थ
और अशक्त हो जाता है। विचारों की भीड़ चित्त को अंततः विक्षिप्त करती है। विक्षिप्तता विचारों की अराजक भीड़ ही तो है! शायद इसीलिए जगत में जितने विचार बढ़ते जाते हैं, उतनी ही विक्षिप्तता भी अपनी जड़ें जमाती जाती है। विचारों का आच्छादन विचार-शक्ति को ढांक लेता है और निष्प्राण कर देता है। विचार का सहज स्फुरण विचारों के बोझ से निःसत्व हो जाता है। विचारों के बादल विचार-शक्ति के निर्मल आकाश को धूमिल कर देते हैं। जैसे वर्षा में आकाश में घिर आए बादलों को ही कोई आकाश समझ ले, ऐसी ही भूल विचारों को ही विचार-शक्ति समझने में हो जाती है।
फिर भी विचार की क्षमता और विचारों के संग्रह में ऐसी भूल सदा ही होती
आई है। मनुष्य के अज्ञान की आधारभूत शिलाओं में से एक भ्रांति यह भी है। विचारों का संग्रह विचार-शक्ति का प्रमाण नहीं है। विपरीत विचार-शक्ति के अभाव को ही इस भांति विचारों से भर कर पूरा कर लिया जाता है। प्रसुप्त विचारणा को बिना जगाए ही विचार-संग्रह विचारणा के होने का भ्रम देने लगता है।
अज्ञान में ही ज्ञान की अहं-पूर्ति का इससे आसान कोई मार्ग नहीं है। स्वयं में विचार की जितनी रिक्तता अनुभव होती है, उतनी ही विचारों से उसे छिपा लेने की प्रवृत्ति होती है। विचार को जगाना तो बहुत श्रमसाध्य है; किंतु विचारों को जोड़ लेना बहुत सरल है, क्योंकि विचार तो चारों ओर परिवेश में तैरते ही रहते हैं। समुद्र के किनारे जैसे सीप-शंख इकट्ठा करने में कोई कठिनाई नहीं है, ऐसे ही संसार में विचार-संग्रह अति सरल कार्य है। विचार-शक्ति है स्वरूप, जब कि विचार हैं पराए। विचार-शक्ति को स्वयं में खोजना होता है और विचारों को स्वयं के बाहर। एक के लिए अंतर्मुखता और दूसरे के लिए बहिर्मुखता के द्वारों से यात्रा करनी होती है। इसलिए ही मैंने कहा कि दोनों यात्राएं भिन्न ही नहीं, विरोधी भी हैं। और जो उनमें से एक यात्रा पर जाता है, वह इस कारण ही दूसरी यात्रा पर नहीं जा सकता है। विचार-संग्रह की दौड़ों में जो पड़ा है उसे जानना चाहिए कि इस भांति वह स्वयं ही स्वयं की विचार-शक्ति से दूर निकलता जाता है।
विचारों की भीड़ में व्यक्ति अंततः स्वयं अपने को और अपनी विचार-शक्ति
को खो देता है।
वस्तुतः स्वयं से बाहर जो भी पाया जा सकता है, वह स्वरूप कभी नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान की खोज स्वयं से बाहर नहीं हो सकती है; क्योंकि जो ज्ञान स्वरूप नहीं है, वह ज्ञान ही नहीं है।
अज्ञान को ढांक लेने से न तो अज्ञान मिटता है और न ही ज्ञान की उपलब्धि ही होती है।
अज्ञान को ढांकने की बजाय तो उसे उसकी नग्नता में जानना ही उचित और हितकर है, क्योंकि तब उसकी बोध की पीड़ा ही उसके अतिक्रमण का अनुसंधान बन जाती है।
क्या अज्ञान से भी घातक वह ज्ञान नहीं है जिसकी ओट में अज्ञान छिप सकता है? निश्चय ही वह मित्र शत्रुओं से कहीं ज्यादा शत्रु है जो शत्रुओं को छिपाने का कार्य करता है।

वह ज्ञान शत्रु है जो स्वयं से ही नहीं जन्मता है। ऐसा ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान है। इस मिथ्या ज्ञान को पाने की आकांक्षा क्यों है? हम क्यों इस मृगतृष्णा में पड़ते हैं?
इस मृगतृष्णा का भी कारण है। वस्तुतः अकारण तो इस जगत में कुछ भी नहीं होता है। अहंकार है कारण। अज्ञानी कोई भी नहीं दिखना चाहता है। अज्ञान से अहंकार को चोट लगती है और इसलिए ज्ञान की शीघ्र उपलब्धि की प्रतिस्पर्धा प्रारंभ होती है। ज्ञानी दिखने का सस्ता और सरल मार्ग है दूसरे के विचारों का संग्रह कर लेना। इसलिए तो लोग शास्त्रों को घोल-घोल कर पी जाते हैं और शब्दों और सिद्धांतों से स्वयं को आकंठ भर लेते हैं। तब अहंकार और पुष्ट हो जाता है और उसकी साज-सज्जा खूब बढ़ जाती है।
अहंकार तो वैसे ही घातक है, फिर ज्ञानी होने से वह और भी विषाक्त हो जाता है। कहावत है, करेला और वह भी नीम चढ़ा! तथाकथित ज्ञान अहंकार को नीम चढ़ा करेला बना देता है।
अज्ञान का बोध विनम्रता लाता है और तथाकथित ज्ञान अहंकार को राज-सिंहासन पर बैठा देता है, जब कि वास्तविक ज्ञान के लिए अहंकार का विलीन होना अनिवार्य है।
अहंकार का केंद्र है संग्रह। वह संग्रह पर ही जीता है, क्योंकि आत्यंतिक रूप में वह संग्रह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसकी अपनी सत्ता नहीं है। उसकी सत्ता संग्रह की ही उप-उत्पत्ति है। इसलिए अहंकार संग्रह को गति देता है और असंग्रह की संभावना से ही भयभीत होता है। असंग्रह की अवस्था का अर्थ है उसकी मृत्यु। इसलिए संग्रह होता है। और संग्रह, और संग्रह--ऐसी ही उसकी सतत पुकार बनी रहती है। और, और, और--यही उसकी अभीप्सा है। इसलिए जब तक चित्त और की दौड़ में होता है तब तक स्वयं को नहीं जाना पाता। दौड़ जानने के लिए अवकाश ही नहीं देती। फिर यह दौड़ धन की हो या धर्म की, पद की हो या यश की, ज्ञान की हो या त्याग की, इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। जहां दौड़ है वहां अहंकार है, जहां अहंकार है वहां अज्ञान है। विचार-संग्रह की दौड़ भी धन-संग्रह की दौड़ जैसी ही है। धन-संग्रह स्थूल धन-संग्रह है, तो विचार-संग्रह सूक्ष्म धन-संग्रह। और ध्यान रहे कि सभी संग्रह आंतरिक दरिद्रता के द्योतक होते हैं। भीतर की दरिद्रता का अनुभव ही बाहर के धन की तलाश में ले जाता है। और यहीं मूल भूल शुरू हो जाती है। पहला ही चरण गलत दिशा में पड़ जाए तो गंतव्य के ठीक होने का तो सवाल ही नहीं उठता। दरिद्रता भीतर है और धन की खोज बाहर! यह विसंगति ही सारे जीवन को रेत से तेल निकालने के अर्थहीन श्रम में नष्ट कर देती है। फिर यह हो भी सकता है कि रेत से तेल निकल आवे, लेकिन बाह्य समृद्धि आंतरिक दरिद्रता को कभी भी नष्ट नहीं कर सकती। उन दोनों में कोई संबंध ही नहीं। दरिद्रता भीतर है, तो ऐसी समृद्धि को खोजना होगा जो स्वयं भी भीतर की ही हो। अज्ञान आंतरिक है, तो आंतरिक रूप से आविर्भूत ज्ञान ही उसकी समाप्ति बन सकता है।
मैं जो कह रहा हूं, क्या वह दो और दो चार की भांति ही सुस्पष्ट नहीं है? धन चाहते हैं या कि धनी दिखना चाहते हैं? ज्ञान चाहते हैं या कि अज्ञानी नहीं दिखना चाहते? सब भांति के संग्रह दूसरों को धोखा देने के उपाय हैं। लेकिन इस भांति स्वयं को धोखा नहीं दिया जा सकता है। यह सत्य दिखते ही दृष्टि में एक आमूल परिवर्तन शुरू हो जाता है।
अज्ञान सत्य है तो उससे भागें नहीं। पलायन से क्या होगा? शास्त्रों, शब्दों और सिद्धांतों में शरण लेने से क्या होगा? विचारों के धुएं में स्वयं को छिपा लेने से क्या होगा? उससे तो और घुटन होगी, और घबराहट होगी। वह उपचार नहीं, उपचार के नाम पर और बड़े रोगों को निमंत्रण दे आना है।
अनेक बार ऐसा होता है कि वैद्य बीमारी से भी ज्यादा घातक सिद्ध होते हैं और औषधियां नये रोगों की उत्पत्ति कीशृंखला बन जाती हैं।
ज्ञान की खोज के नाम पर विचारों के संग्रह में पड़ जाना ऐसी ही औषधि के शिकार होना है।
अज्ञान से मुक्ति के लिए शास्त्रों से बंध जाना, स्वतंत्रता के नाम
पर और भी गहरी परतंत्रता में पड़ जाना है।
सत्य शब्दों में नहीं, स्वयं में है। और उसे पाने के लिए किसी तंत्र
से बंधना नहीं, वरन सर्व तंत्रों से मुक्त होना है।

स्वतंत्रता में--पूर्ण स्वतंत्रता में ही--सत्य का साक्षात है।
संग्रह परतंत्रता है। संग्रह का अर्थ ही है स्वयं पर अविश्वास और जो स्वयं नहीं है उस पर विश्वास! पर-श्रद्धा ही परतंत्रता लाती है। पर-श्रद्धा से जो मुक्त होता है, वह स्वतंत्र हो जाता है।
शास्त्र में, शास्ता में, शासन में श्रद्धा परतंत्रता है।
शब्द में, सिद्धांत में, संप्रदाय में श्रद्धा परतंत्रता है।
इसलिए ही मैं कहता हूंः पर में श्रद्धा करना परतंत्रता है; और स्व-श्रद्धा है स्वतंत्रता। स्वतंत्रता सत्य में ले जाती है।
विचार की शक्ति को जगाना हो तो विचारों से--उधार और पराए विचारों से-- स्वतंत्र होना होगा, फिर वे विचार चाहे किसी के भी हों। उनका पराया होना ही उनसे मुक्त होने के लिए पर्याप्त कारण है।
यह उचित है कि मैं जानूं कि मैं अज्ञानी हूं और अज्ञान को शीघ्रता से भूलने का कोई भी उपाय न करूं। भूलने की दृष्टि ही तो आत्मवंचक है। संपत्ति हो या सत्ता या तथाकथित ज्ञान, सभी में स्वयं की दरिद्रता, दीनता और अंधकारपूर्ण रिक्तता को भूलने की ही तो साधना चलती है। स्वयं की वस्तुस्थिति के विस्मरण के लिए हम सब कैसे बेचैन रहते हैं! आत्महीनता से जो भरे हैं, वे पद, अधिकार और शक्ति के लिए पागल रहते हैं।
क्या आपको ज्ञात नहीं कि महत्वाकांक्षा आत्महीनता की ही पुत्री है? आत्मदरिद्र हैं वे जो स्वर्ण-मुद्राओं के ढेर इकट्ठे करने में अपने स्वर्ण जैसे जीवन को मिट्टी के मोल खो देते हैं। अपंग डोलियों पर पहाड़ चढ़ कर दिखाना चाहते हैं कि वे अपंग नहीं हैं! और लूले-लंगड़े विद्युत गति से दौड़ते यानों में बैठ कर विश्वास कर लेना चाहते हैं कि वे लूले-लंगड़े नहीं हैं! तैमूर ही लंगड़ा नहीं था, सभी तैमूर लंगड़े हैं! एलेक्जेंडर, हिटलर और शेष सभी विक्षिप्त चित्त व्यक्ति इसी नियम की साकार प्रतिमाएं हैं।
जो मृत्यु से जितना भयभीत होता है, वह उतना ही हिंसक हो जाता है। दूसरों को मार कर वह विश्वास कर लेना चाहता है कि मैं मृत्यु के ऊपर हूं। शोषण है, युद्ध है, क्योंकि विक्षिप्त चित्त व्यक्ति स्वयं से पलायन करने में संलग्न हैं। जीवन नारकीय हो गया है, और समाज मृत, सड़ा हुआ, दुर्गंध देता शरीर हो गया है, क्योंकि हम चित्त की बहुत सी विक्षिप्तताओं को पहचानने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं।
सत्ता की, संग्रह की, शक्ति की सभी दौड़ें पागलपन की अवस्थाएं हैं। ये चित्त की बहुत संघातक रुग्णताएं हैं। जो व्यक्ति इन दौड़ों में हैं, वे बीमार हैं। और जहां उनकी बीमारी है, ठीक उसकी विपरीत दिशा में वे अपनी बीमारी से बचने को भागे जा रहे हैं, बिना सोचे कि बीमारी बाहर नहीं है कि उससे भागा जा सके! वह भीतर है। इसलिए उससे कितना ही भागा जाए वह सदा ही साथ है। यह बोध दौड़ने की गति को तेज कर देता है। बीमारी साथ है तो और तेजी से भागो। अंततः भागना एक पागलपन हो जाता है।
और स्वाभाविक ही है, क्योंकि स्वयं से भागना संभव ही नहीं। असंभव को करने के प्रयास से ही पागलपन पैदा हो जाता है। फिर इस अशांति और अति तनाव को भूलने के लिए नशे चाहिए। शरीर के नशे चाहिए और मन के नशे चाहिए--सेक्स और शराब; भजन और कीर्तन; प्रार्थना और पूजा! स्वयं को भूलने के लिए धन की, पद की, ज्ञान की दौड़ है। अब दौड़ को भूलने के लिए कोई भी गहरी मादकता आवश्यक है।
ऐसे व्यक्ति धर्म के निकट भी आत्म-विस्मरण के लिए आते हैं। धर्म भी उन्हें एक मादक द्रव्य से ज्यादा नहीं है। तथाकथित समृद्ध देशों में धर्म के प्रति बढ़ती उत्सुकता का कोई और कारण नहीं है। धन की दौड़ तोड़ने लगती है तो धर्म की दौड़ शुरू हो जाती है, लेकिन दौड़ जारी रहती है। जब कि प्रश्न दौड़ को बदलने का नहीं, ठहरने का है और स्वयं से पलायन को छोड़ने का है।
विचारक विचारों के सहारे स्वयं से भागे रहते हैं; कलाकार कला के सहारे; राजनैतिक सत्ता के सहारे; धनिक धन के सहारे; त्यागी त्याग के सहारे; भक्त भगवान के सहारे। लेकिन जीवन-सत्य को केवल वही जान पाता है जो स्वयं से भागता नहीं है। पलायन अस्वास्थ्य है। स्वयं से भागना अस्वास्थ्य है।
स्वयं में ठहर जाना स्वस्थ होना है।

मैं जो कह रहा हूं, उस पर विचार करें। क्या संग्रह की विक्षिप्तता-- किसी भी भांति के संग्रह की विक्षिप्तता--स्वयं से पलायन नहीं है?
विचार का संग्रह स्वयं के अज्ञान से आंखें मूंदने की विधि है। इसलिए मैं विचार-शक्ति के तो पक्ष में हूं, लेकिन विचारों के पक्ष में नहीं हूं। क्या धनाढ्य होने से दरिद्रता मिटती है? तो फिर विचारों से अज्ञान कैसे मिट सकता है? न तो धन व्यक्तित्व के केंद्र को स्पर्श करता है और न विचार ही। संपत्ति--किसी भी भांति की संपत्ति--आत्मा को नहीं छू पाती है। वह बाहर और बाहर ही हो सकती है। लेकिन उससे भ्रम पैदा हो जाता है।
कल संध्या ही एक भिखारी मुझे मिला। वह बोला, मैं भिखारी हूं। उसकी आंखों में दीनता थी, वाणी में दीनता थी। लेकिन उसकी बात सुन कर मुझे हंसी आ गई और मैंने उससे कहा, पागल! क्या कहता है कि तू दरिद्र है, भिखारी है? तेरे पास धन नहीं है, क्या इतना ही दरिद्र होने के लिए काफी है? मैं तो उन्हें भी भलीभांति जानता हूं जिनके पास बहुत धन है, लेकिन वे भी दरिद्र हैं! धन से ही तू स्वयं को दरिद्र समझता हो तो भूल है। रही दूसरी और गहरी दरिद्रता की बात, सो सभी दरिद्र हैं और भिखमंगे हैं।
सत्य को, स्वयं के आत्यंतिक सत्य को जिसने नहीं जाना है, वह दरिद्र है।
ज्ञान से, स्वयं में अंतर्निहित ज्ञान से जो अपरिचित है, वह अज्ञान में है।
और स्मरण रहे कि वस्त्रों से, समृद्ध वस्त्रों से कोई समृद्ध नहीं होता; और न ही विचारों से, उधार और पराए विचारों से कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है।
वस्त्र दीनता को ढांक लेते हैं और विचार अज्ञान को। लेकिन जिनके पास गहरी देखने वाली आंखें हैं, उनके समक्ष वस्त्र दीनता के प्रदर्शन बन जाते हैं और विचार अज्ञान के।
आप स्वयं ही देखिए। मैं कहता हूं, इसलिए मत मान लेना। स्वयं ही सोचो, जागो और देखो। क्या हम वस्त्रों के मोह में स्वयं को ही नहीं खो रहे हैं? और क्या विचारों के मोह में सत्य से वंचित नहीं हो गए हैं? और क्या स्वयं को खोकर कुछ भी पाने योग्य है?
मैं एक महाराजा का अतिथि था। उनसे मैंने कहा, क्या आपको भी राजा होने
का भ्रम है? वे चकित हुए और बोले, भ्रम? मैं राजा हूं! कितनी दृढ़ता से उन्होंने यह कहा था और मुझे कितनी दया उन पर आई थी!
पंडितों से मिलता हूं, उन्हें भी ज्ञानी होने के भ्रम में पाता हूं। साधुओं से मिलता हूं, उन्हें भी त्यागी होने के भ्रम में पाता हूं। विचारों के कारण ज्ञान का आभास होने लगता है, समृद्धि के कारण सम्राट होने का, धन को छोड़ने के कारण त्यागी होने का। धन से कोई धनी नहीं है तो धन छोड़ने से कोई त्यागी कैसे होगा? वह तो धनी होने की भ्रांति का ही विस्तार है।
संग्रह में सत्य नहीं है और न ही संग्रह के छोड़ देने में। सत्य तो उसके प्रति जागने में है, जो संग्रह और त्याग, परिग्रह और अपरिग्रह, दोनों के पीछे बैठा हुआ है।
विचारों के संग्रह में ज्ञान नहीं है और न मात्र विचारों के न होने में ही ज्ञान है। ज्ञान तो वहां है, जहां वह है, जो विचारों का भी साक्षी है और विचारों के अभाव का भी।
विचार-संग्रह ज्ञान नहीं, स्मृति है। लेकिन स्मृति के प्रशिक्षण को
ही ज्ञान समझा जाता है। विचार स्मृति के कोष में संगृहीत होते जाते हैं। बाहर से प्रश्नों का संवेदन पाकर वे उत्तेजित हो उत्तर बन जाते हैं, और इसे ही हम विचार करना समझ लेते हैं। जब कि विचार का स्मृति से क्या संबंध? स्मृति है अतीत, बीते हुए अनुभवों का मृत संग्रह। उसमें जीवित समस्या का समाधान कहां? जीवन की समस्याएं हैं नित नूतन, और स्मृति से घिरे चित्त के समाधान हैं सदा अतीत।
इसलिए ही जीवन उलझन बन जाता है, क्योंकि पुराने समाधान नयी समस्याओं
को हल करने में नितांत असमर्थ होते हैं। चित्त चिंताओं का आवास बन जाता है, क्योंकि समस्याएं एक ओर इकट्ठी होती जाती हैं और समाधान दूसरी ओर। और

उनमें न कोई संगति होती है और न कोई संबंध। ऐसा चित्त बूढ़ा हो जाता है और जीवन से उसका संस्पर्श शिथिल। स्वाभाविक ही है कि शरीर के बूढ़े होने के पहले ही लोग अपने को बूढ़ा पाते हैं और मरने के पहले ही मृत हो जाते हैं। सत्य की खोज के लिए, जीवन के रहस्य के साक्षात के लिए युवा मन चाहिए, ऐसा मन जो कभी बूढ़ा न हो। अतीत से बंधते ही मन अपनी स्फूर्ति, ताजगी और विचार-शक्ति, सभी कुछ खो देता है। फिर वह मृत में ही जीने लगता है और जीवन के प्रति उसके द्वार बंद हो जाते हैं। चित्त स्मृति से, स्मृति रूपी तथाकथित ज्ञान से न बंधे, तभी उसमें निर्मलता और निष्पक्ष विचारणा की संभावना वास्तविक बनती है।
स्मृति से देखने का अर्थ है, अतीत के माध्यम से वर्तमान को देखना। वर्तमान को ऐसे कैसे देखा जा सकता है? सम्यक रूप से देखने के लिए तो आंखें सब भांति खाली होनी चाहिए। स्मृति से मुक्त होते ही चित्त को सम्यक दर्शन की क्षमता उपलब्ध होती है और सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान में ले जाता है। दृष्टि निर्मल हो, निष्पक्ष हो, तो स्वयं में प्रसुप्त ज्ञान की शक्ति जाग्रत होने लगती है। स्मृति के भार से मुक्त होते ही दृष्टि अतीत से मुक्त हो वर्तमान में गति करने लगती है, और मृत से मुक्त होकर वह जीवन में प्रवेश पा जाती है।
ज्ञान के लिए ज्ञान का भंडार बनाना आवश्यक नहीं। वैसा दुर्व्यवहार अपने साथ कभी मत करना। भूल से स्मृति को कभी ज्ञान मत मानना। स्मृति तो एक यांत्रिक प्रक्रिया है। वह विचार के लिए आच्छादन है। अब तो विचारों को स्मरण रखने वाले यंत्र बन गए हैं। उनके आविष्कार ने स्मृति की यांत्रिकता को भलीभांति सिद्ध कर दिया है। फिर आप से तो भूल-चूक भी होती है, इन यंत्रों से भूल-चूक भी नहीं होती। असल में भूल-चूक के लिए वहां गुंजाइश ही नहीं। भूल-चूक के लिए भी कुछ अयांत्रिकता आवश्यक है। ज्ञान का भोजन देते ही वे यंत्र तत्संबंध में सारे उत्तर देने में ज्यादा कुशल और भरोसे के योग्य हो जाते हैं।
क्या उन यंत्रों की भांति ही हम भी अपनी स्मृति को भोजन नहीं देते रहते हैं? और फिर जो हमारे उत्तर हैं, क्या वे भी इस भोजन की ही प्रतिध्वनियां नहीं हैं? गीता, कुरान, बाइबिल, क्या सभी को हम अपना भोजन नहीं बनाए हुए हैं? महावीर, बुद्ध, मोहम्मद से लेकर सुबह-सुबह आने वाले दैनिक अखबार तक क्या हमारी स्मृति इसी भोजन के लिए उत्सुक नहीं रहती है? क्या कभी आपने इस तथ्य के प्रति आंखें खोली हैं कि इस स्मृति से केवल वही आ सकता है जो उसमें डाला गया हो?
इसलिए कहता हूं कि स्मृति विचार नहीं है। और जो उसे ही विचार समझ लेते हैं वे बड़ी जड़ता में पड़ जाते हैं। स्मृति की अपनी उपयोगिताएं हैं। उसे नष्ट करने को मैं नहीं कहता हूं। कहता हूं, यह समझने को कि उसे ही विचार नहीं समझना है। विचार उससे बहुत ही भिन्न आयाम है।
विचार है सदा मौलिक। स्मृति है सदा यांत्रिक। स्मृतिजन्य विचार पुनरुक्ति मात्र है। वह न मौलिक होता है, न जीवंत होता है।
ज्ञान स्मृति से भिन्न है, क्योंकि वह यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, सचेतन बोध है। ज्ञान स्मृति नहीं है। इसलिए ऐसे यंत्र कभी विकसित नहीं हो सकते हैं, जिनमें ज्ञान हो। जो कार्य यांत्रिक है, केवल उसे ही यंत्रों से कराया जा सकता है, और जो यांत्रिक है, उसे ही विचार मान लेने से मनुष्य एक यंत्र मात्र ही रह जाता है। स्मृति को ही विचार मान लेना मनुष्य की यांत्रिकता को घोषित करना है।
प्रज्ञा तो यांत्रिक नहीं है, किंतु पांडित्य सदा यांत्रिक रहा है। इसलिए तथाकथित पंडितों के मस्तिष्क से ज्यादा जड़ और विचारहीन मस्तिष्क खोजना कठिन है। समस्या के पूर्व ही उनके समाधान तैयार रहते हैं। प्रश्न के पूर्व ही उनके उत्तर तय हैं। उन्हें सोचना नहीं, मात्र दोहराना है। ऐसे ही जड़ मस्तिष्क सदा से शास्त्रों को दोहराते रहे हैं और शास्त्रों के नाम पर लड़ते-मरते भी रहे हैं। इन दोहराने वाले मस्तिष्क को विचार विद्रोह प्रतीत होता है। उनका आग्रह विचार के विरोध में सदैव विश्वास के लिए रहा है। मस्तिष्क की यांत्रिकता से विचार का तो मेल नहीं बैठता, लेकिन विश्वास से उसकी पटरी खूब बैठ जाती है। अंधे का अंधे से मिलन

सुखद हो तो कोई आश्चर्य नहीं। न स्मृति के पास आंखें हैं, न विश्वास के पास। इसलिए स्मृति-निर्भर विचारणा विश्वास का सहारा मांगती है, और विश्वास स्मृति-निर्भर पुनरुक्ति से परिपुष्ट होता है।
आज की ही बात है, सुबह-सुबह ही ऐसे एक ज्ञानी ने दर्शन दिए। गीता उन्हें कंठस्थ है। चालीस वर्षों से गीता का पाठ करते हैं। अब सेवा से निवृत्त हुए हैं तो अहर्निश गीता का पारायण चल रहा है। उनकी बात-बात में गीता आ जाती है। चित्त को उसके शब्दों से खुद भर लिया है। प्रसंग हो या नहीं, उन शब्दों को दोहराते रहते हैं। बहुत अशांत हैं। कलह प्रिय हैं। जहां बैठते हैं वहीं विवाद कर बैठते हैं। लोग उनके ज्ञान से भय खाते हैं। उनके उपदेशों से बचते हैं। उनके हाथों में पड़ जाते हैं तो निकल जाते हैं। उन्हें कृष्ण के वचन समझ में आते हैं, लेकिन लोगों का उनके ज्ञान के प्रति जो भय है वह दिखाई नहीं देता। स्वयं की अशांति के कारण भी दिखाई नहीं देते, यद्यपि जगत में कैसे शांति होगी इसके लिए रामबाण नुस्खे वे अंगुलियों पर बता देते हैं।
यह है शास्त्रों को, पराए विचारों को दोहराने वाले चित्त की जड़ता। ऐसे स्वयं की तो कोई समस्या हल नहीं होती है। और फिर जब अशांत चित्त व्यक्ति शास्त्रों को पकड़ लेते हैं तो शास्त्र भी संघर्ष, संगठन और हिंसा के कारण बन जाते हैं।
क्या यह संभव है कि बुद्ध और क्राइस्ट, महावीर और जरथुस्त्र के शब्द मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने वाले बनें? क्या वे हिंसा और वैमनस्य के आधार हो सकते हैं? लेकिन चित्त की जड़ता उन्हें भी शोषण और संघर्ष, हिंसा और युद्ध में परिणत कर लेती है। धर्मों का इतिहास मनुष्य के मन की जड़ता के अतिरिक्त और किस बात की गवाही देता है?
शास्त्रीय मस्तिष्क को मैं जड़ मस्तिष्क कह रहा हूं, क्यों? क्योंकि जीवन की समस्याएं नित्य बदल जाती हैं, लेकिन उसके समाधान नहीं बदलते। दुनिया मार्क्स पर आ जावे तो भी वह मनु पर ही बैठा रहता है। फिर दुनिया मार्क्स से आगे निकल जाती है, लेकिन वह मार्क्स को ही पकड़ कर बैठ जाता है। बाइबिल छोड़ता है तो कैपिटल पकड़ लेता है, लेकिन बिना शास्त्र को पकड़े उसकी गति नहीं। जीवन को समझना उसे मूल्यवान नहीं मालूम होता। उसे तो सिद्धांतों और शब्दों से प्रेम होता है। यह भी इसलिए कि जीवन को समझने के लिए विचार चाहिए, जब कि शास्त्र को पकड़ने में विचार की कोई आवश्यकता नहीं। स्मृति को किसी भी चीज से भर लेना बड़ी सरल बात है, किंतु वह प्रौढ़ बुद्धि का लक्षण नहीं।
प्रौढ़ता का लक्षण है विचार, समस्याओं को देखने की क्षमता। शास्त्रीय बुद्धि को समस्याएं दिखाई ही नहीं देतीं। समस्याएं तो उन खूंटियों की भांति होती हैं, जिन पर अपने बंधे-बंधाए, रटे-रटाए सिद्धांतों को टांगने में उसे मजा आता है।
शास्त्रीय बुद्धि समस्या के अनुकूल समाधान नहीं, वरन अपने पूर्व-निर्धारित समाधान के अनुकूल ही समस्या को देखती है। और यह न देखने से भी बदतर है। क्योंकि इस भांति थोपे गए समाधान पुरानी समस्याओं को तो मिटाते नहीं, उलटे और नयी समस्याएं खड़ी कर देते हैं।
अप्रौढ़ दृष्टि उस पागल दर्जी की ही भांति होती है जो बने-बनाए कपड़े को खींचता है, और जब वे किसी के शरीर पर ठीक नहीं आते हैं तो उससे कहता है कि निश्चय ही आपके शरीर में ही कहीं कोई भूल है। पागल दर्जी के कपड़ों में कोई भूल कैसे हो सकती है? पंडितों के शास्त्रों में भी कोई भूल कैसे हो सकती है? भूल है तो जरूर जीवन में है, शास्त्रों में नहीं! बदलाहट करनी है तो जीवन में करनी है।
इस जड़तापूर्ण चित्त-दशा के कारण जीवन व्यर्थ ही उलझता गया है। हजारों साल के शास्त्रों और परंपराओं के बोझ के कारण हम कुछ भी हल करने में क्रमशः असमर्थ होते गए हैं। परंपराओं ने--मृत परंपराओं ने--हमारे मन को सब ओर से घेर कर बिल्कुल ही पंगु कर दिया है। किसी भी समस्या का जीवंत हल खोजना तो दूर, उस समस्या को उसके मूल और नग्न रूप में देखना ही करीब-करीब असंभव हो गया है। जीवन उलझता जाता है और हम तोतों की भांति रटे हुए सूत्र दोहराते जा रहे हैं।

क्या उचित नहीं है कि मनुष्य का मन मुर्दा समाधानों से मुक्त हो? क्या उचित नहीं है कि हम सदा अतीत की ओर देखने की दृष्टि से सावधान हों? और क्या उचित नहीं है कि हम स्मृति से ऊपर उठ कर विचार की शक्ति को जगावें? विचार-शक्ति के जागरण के लिए विचारों का भार कम से कम होना आवश्यक है। स्मृति बोझ नहीं होनी चाहिए। जीवन जो समस्याएं खड़ी करे, उन्हें स्मृति के माध्यम से नहीं, सीधे और वर्तमान में देखना चाहिए। शास्त्रों में देखने की वृत्ति छोड़नी चाहिए।
जीवन और स्वयं के बीच शास्त्रों को लाना अनावश्यक ही नहीं, घातक भी है। स्वयं का संपर्क समस्या से जितना सीधा होता है, उतना ही ज्यादा हम उस समस्या को समझने में समर्थ हो जाते हैं। और वह समझ ही अंततः उस समस्या का समाधान बनती है।
समस्या के समाधान के लिए समस्या को उसकी समग्रता में जानना और जीना पड़ता है। फिर चाहे वह समस्या किसी भी तल पर क्यों न हो। उसके विरोध में कोई सिद्धांत खड़ा करके कभी भी कोई सुलझाव नहीं लाया जा सकता, बल्कि व्यक्ति और भी द्वंद्व में पड़ता है। वस्तुतः समस्या में ही समाधान भी छिपा होता है। यदि हम शांत और निष्पक्ष मन से समस्या में खोजेंगे तो अवश्य ही उसे पा सकते हैं।
विचार-शक्ति पराए विचारों से मुक्त होते ही जागने लगती है। जब तक पराए विचारों से काम चलाने की वृत्ति होती है तब तक स्वयं की शक्ति के जागरण का कोई हेतु ही नहीं होता। विचारों की बैसाखियां छोड़ते ही स्वयं के पैरों से चलने के अतिरिक्त और कोई विकल्प न होने से मृत पड़े पैरों में अनायास ही रक्त-संचार होने लगता है। फिर चलने से ही चलना आता है।
विचारों से मुक्त हों और देखें। क्या देखेंगे? देखेंगे कि स्वयं की अतःसत्ता से कोई नयी ही शक्ति जाग रही है। किसी अभिनव और अपरिचित ऊर्जा का आविर्भाव हो रहा है। जैसे च्रुहीन को अनायास ही च्रु मिल गए हों, ऐसा ही लगेगा; या जैसे अंधेरे गृह में अचानक ही दीया जल गया हो, ऐसा लगेगा। विचार की शक्ति जागती है तो अंतर्हृदय आलोक से भर जाता है। विचार-शक्ति का उदभव होता है तो जीवन में आंखें मिल जाती हैं। और जहां आलोक है, वहां आनंद है। और जहां आंख है, वहां मार्ग निष्कंटक है। जो जीवन अविचार में दुख हो जाता है, वही जीवन विचार के आलोक में संगीत बन जाता है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
सोलहवां प्रवचन

जीएं और जानें

मैं मनुष्य को जड़ता में डूबा हुआ देखता हूं। उसका जीवन बिल्कुल यांत्रिक बन गया है। गुरजिएफ ने ठीक ही उसके लिए मानव-यंत्र का प्रयोग किया है। हम जो भी कर रहे हैं, वह कर नहीं रहे हैं, हमसे हो रहा है। हमारे कर्म सचेतन और सजग नहीं हैं। वे कर्म न होकर केवल प्रतिक्रियाएं हैं। मनुष्य से प्रेम होता है, क्रोध होता है, वासनाएं प्रवाहित होती हैं।
पर ये सब उसके कर्म नहीं हैं, अचेतन और यांत्रिक प्रवाह हैं। वह इन्हें करता नहीं है, ये उससे होते हैं। वह इनका कर्ता नहीं है, वरन उसके द्वारा किया जाना है।
इस स्थिति में मनुष्य केवल एक अवसर है जिसके द्वारा प्रकृति अपने कार्य करती है। वह केवल एक उपकरण मात्र है। उसकी अपनी कोई सत्ता, अपना कोई होना नहीं है। वह सचेतन जीवन नहीं, केवल अचेतन यांत्रिकता है।
यह यांत्रिक जीवन मृत्यु-तुल्य है।
जड़ता और यांत्रिकता से ऊपर उठने से ही वास्तविक जीवन प्रारंभ होता है।
एक युवक कल मिलने आए थे। वे पूछते थे कि जीवन का किस दिशा में उपयोग करूं कि बाद में पछताना न पड़े? मैंने कहा, जीवन का एक ही उपयोग है कि वास्तविक जीवन प्राप्त हो। अभी आप जिसे जीवन जान रहे हैं, वह जीवन नहीं है।
जिसे अभी जीवन मिला नहीं, उसके सामने उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। सत्य-जीवन की उपलब्धि न होना ही जीवन का दुरुपयोग है। उसकी उपलब्धि ही सदुपयोग है। उसका अभाव ही पछताना है। उसका होना ही आनंद है।
जो स्वयं ही अस्तित्व में न हो, वह कर भी क्या सकता है? जिसकी सत्ता अभी प्रसुप्त है, उससे हो भी क्या सकता है?
जो सोया हुआ है, उसमें एकता नहीं, अनेकता है। महावीर ने कहा है, यह मनुष्य बहुचित्तवान है।
सच ही हममें एक व्यक्ति नहीं, अनेक व्यक्तियों का आवास है। हम व्यक्ति नहीं, एक भीड़ हैं। और भीड़ तो कुछ भी निश्चय नहीं कर सकती। क्योंकि वह निर्णय और संकल्प नहीं कर सकती।
इसके पूर्व कि हम कुछ कर सकें, हमारी सत्ता का जागरण, हमारी आत्मा, हमारे व्यक्ति का होश में आना आवश्यक है। व्यक्तियों की अराजक भीड़ की जगह व्यक्ति हो, बहुचित्तता की जगह चैतन्य हो, तो हममें प्रतिकर्म की जगह कर्म का जन्म हो सकता है। जुंग ने इसे ही व्यक्ति-केंद्र-उपलब्धि कहा है।
सजग व्यक्ति के अभाव में जीवन के समस्त प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि न तो उनमें एकसूत्रता होती है और न एक दिशा होती है, उलटे वे स्व-विरोधी होते हैं। जो एक निर्मित करता है, उसे दूसरा नष्ट कर देता है। वह स्थिति ऐसी है जैसे किसी ने एक ही बैलगाड़ी में चारों ओर बैल जोत लिए हों। और चालक सोया है, फिर भी कहीं पहुंचने की आशा करता है।
मनुष्य का साधारण जीवन ऐसा ही है। उसमें लगता है कि गति हो रही है, लेकिन कोई गति नहीं होती। सब प्रयास निद्रित हैं और इसलिए शक्ति के अपव्यय से अधिक कुछ नहीं है। मनुष्य कहीं पहुंच तो नहीं पाता पर केवल शक्ति-रिक्त होता जाता है, और जिसे जीवन समझा था वह केवल एक क्रमिक और धीमा आत्मघात सिद्ध होता है।
जिस दिन जन्म होता है, उस दिन ही मृत्यु प्रारंभ हो जाती है। वह आकस्मिक नहीं आती है। वह जन्म का ही विकास है। जो वास्तविक जीवन की प्राप्ति में नहीं लगे हैं, उन्हें जानना चाहिए कि वे केवल मर रहे हैं। जिन्होंने सत्य-जीवन की ओर अपने को गतिवान नहीं किया है, मृत्यु के अतिरिक्त उनका भविष्य और क्या हो सकता है!
जीवन के दो अंत हो सकते हैंः जीवन या मृत्यु। या तो हम और वृहत्तर तथा विराट जीवन में पहुंच सकते हैं या समाप्त हो सकते हैं।

स्मरण रहे कि जो अंत हो सकता है, वह आरंभ से ही मौजूद होता है। आरंभ में जो नहीं है, वह अंत में भी नहीं हो सकता। अंत प्रकट होकर वही है, जो कि प्रकट होकर आरंभ था।
और तब यदि जीवन के दो अंत हो सकते हैं, तो उसमें निश्चय ही प्रारंभ से
ही दो दिशाएं और संभावनाएं वर्तमान होनी चाहिए। उसमें जीवन और मृत्यु दोनों सन्निहित हैं। जड़ता मृत्यु का बीज है, चैतन्य जीवन का। मनुष्य इनका द्वैत है।
मनुष्य जीवन और मृत्यु का मिलन है। मनुष्य चेतना और जड़ता का संगम है। मनुष्य यंत्र भी है, पर उसमें कुछ ऐसा है जो यंत्र नहीं है। उसमें अयांत्रिकता भी है। वह तत्व जो जड़ता और यांत्रिकता को समझ पाता है और उसके प्रति सजग और जागरूक हो पाता है वही तत्व उसकी अयांत्रिकता है। इस अयांत्रिक दिशा को पकड़ कर ही जीवन तक पहुंचा जाता है।
मैं जो अपने में चेतना पा रहा हूं, यह बोध पा रहा हूं कि मैं हूं, यह बोध-किरण ही मुझे सत्ता में ले जाने का मार्ग बन सकती है। साधारणतः यह किरण बहुत धूमिल और अस्पष्ट है। पर वह अवश्य है और उसका होना ही महत्वपूर्ण है। अंधेरे में वह धूमिल किरण ही प्रकाश तक पहुंच सकने की क्षमता की सूचना और संकेत है। उसका होना ही निकट ही प्रकाश-स्रोत के होने का सुसमाचार है।
मैं तो एक किरण के होने से ही सूरज के होने के विश्वास से भर जाता हूं। उसे जान कर ही क्या सूरज को नहीं जान लिया जाता?
मनुष्य में जो बोध-किरण है वह उसके बुद्धत्व का इंगित है।
मनुष्य में जो होश का मंदा सा आभास है, वह उसकी सबसे बड़ी संभावना है,
वह उसकी सबसे बड़ी संपत्ति है। उससे बहुमूल्य उसमें कुछ भी नहीं है। उसके आधार पर चल कर वह स्वयं तक और सत्ता तक पहुंच सकता है। वह जीवन, वृहत्तर जीवन और ब्रह्म की दिशा है।
जो उस पर नहीं हैं, वे उसके विपरीत हैं, क्योंकि तीसरी कोई दिशा ही नहीं है। उस पर या उसके विपरीत--दो ही विकल्प हैं। अभी जो आभास है, उसे या तो विनाश की ओर ले जाया सकता है या विकास की ओर। या तो बोध से बोधि में जाया जा सकता है या फिर और मूर्च्छा में।
सामान्य जीवन का यांत्रिक वृत्त अपने आप संबोधि के प्रकाश-शिखरों पर नहीं ले जाता। यह शाश्वत नियम है कि कुछ न करें तो नीचे आना अपने आप हो जाता है, लेकिन ऊपर जाना अपने आप नहीं होता। पतन न कुछ करने से ही हो जाता है, लेकिन उन्नयन नहीं होता। जड़ता अपने आप आ जाती है, जीवन अपने आप नहीं आता। मृत्यु बिना बुलाए आ जाती है, पर जीवन को बुलावा देना होता है।
बोध की जो किरण प्रत्येक के भीतर है, उसमें और उसके सहारे गति करनी है। जैसे-जैसे भीतर गति होती है, वैसे-वैसे बोध के आयाम उदघाटित होते हैं और व्यक्ति जड़ता और यांत्रिकता के पार होने लगता है। जैसे-जैसे वह चैतन्य के प्रगाढ़ होते स्वरूप से परिचित होता है, वैसे-वैसे उसकी अनेक-चित्तता विसर्जित होने लगती है और उसमें कुछ घना और एकाग्र केंद्रित होने लगता है। इस प्रक्रिया के परिणाम से वह व्यक्ति बनता है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र
मनुष्य को जड़ता में डूबा हुआ देखता हूं। उसका जीवन बिल्कुल यांत्रिक
बन गया है। गुरजिएफ ने ठीक ही उसके लिए मानव-यंत्र का प्रयोग किया है। हम जो भी कर रहे हैं, वह कर नहीं रहे हैं, हमसे हो रहा है। हमारे कर्म सचेतन और सजग नहीं हैं। वे कर्म न होकर केवल प्रतिक्रियाएं हैं।
मनुष्य से प्रेम होता है, क्रोध होता है, वासनाएं प्रवाहित होती हैं।
पर ये सब उसके कर्म नहीं हैं, अचेतन और यांत्रिक प्रवाह हैं। वह इन्हें करता नहीं है, ये उससे होते हैं। वह इनका कर्ता नहीं है, वरन उसके द्वारा किया जाना है।
इस स्थिति में मनुष्य केवल एक अवसर है जिसके द्वारा प्रकृति अपने कार्य करती है। वह केवल एक उपकरण मात्र है। उसकी अपनी कोई सत्ता, अपना कोई होना नहीं है। वह सचेतन जीवन नहीं, केवल अचेतन यांत्रिकता है।
यह यांत्रिक जीवन मृत्यु-तुल्य है।

जड़ता और यांत्रिकता से ऊपर उठने से ही वास्तविक जीवन प्रारंभ होता है।
एक युवक कल मिलने आए थे। वे पूछते थे कि जीवन का किस दिशा में उपयोग करूं कि बाद में पछताना न पड़े? मैंने कहा, जीवन का एक ही उपयोग है कि वास्तविक जीवन प्राप्त हो। अभी आप जिसे जीवन जान रहे हैं, वह जीवन नहीं है।
जिसे अभी जीवन मिला नहीं, उसके सामने उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। सत्य-जीवन की उपलब्धि न होना ही जीवन का दुरुपयोग है। उसकी उपलब्धि ही सदुपयोग है। उसका अभाव ही पछताना है। उसका होना ही आनंद है।
जो स्वयं ही अस्तित्व में न हो, वह कर भी क्या सकता है? जिसकी सत्ता अभी प्रसुप्त है, उससे हो भी क्या सकता है?
जो सोया हुआ है, उसमें एकता नहीं, अनेकता है। महावीर ने कहा है, यह मनुष्य बहुचित्तवान है।
सच ही हममें एक व्यक्ति नहीं, अनेक व्यक्तियों का आवास है। हम व्यक्ति नहीं, एक भीड़ हैं। और भीड़ तो कुछ भी निश्चय नहीं कर सकती। क्योंकि वह निर्णय और संकल्प नहीं कर सकती।
इसके पूर्व कि हम कुछ कर सकें, हमारी सत्ता का जागरण, हमारी आत्मा, हमारे व्यक्ति का होश में आना आवश्यक है। व्यक्तियों की अराजक भीड़ की जगह व्यक्ति हो, बहुचित्तता की जगह चैतन्य हो, तो हममें प्रतिकर्म की जगह कर्म का जन्म हो सकता है। जुंग ने इसे ही व्यक्ति-केंद्र-उपलब्धि कहा है।
सजग व्यक्ति के अभाव में जीवन के समस्त प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि न तो उनमें एकसूत्रता होती है और न एक दिशा होती है, उलटे वे स्व-विरोधी होते हैं। जो एक निर्मित करता है, उसे दूसरा नष्ट कर देता है। वह स्थिति ऐसी है जैसे किसी ने एक ही बैलगाड़ी में चारों ओर बैल जोत लिए हों। और चालक सोया है, फिर भी कहीं पहुंचने की आशा करता है।
मनुष्य का साधारण जीवन ऐसा ही है। उसमें लगता है कि गति हो रही है, लेकिन कोई गति नहीं होती। सब प्रयास निद्रित हैं और इसलिए शक्ति के अपव्यय से अधिक कुछ नहीं है। मनुष्य कहीं पहुंच तो नहीं पाता पर केवल शक्ति-रिक्त होता जाता है, और जिसे जीवन समझा था वह केवल एक क्रमिक और धीमा आत्मघात सिद्ध होता है।
जिस दिन जन्म होता है, उस दिन ही मृत्यु प्रारंभ हो जाती है। वह आकस्मिक नहीं आती है। वह जन्म का ही विकास है। जो वास्तविक जीवन की प्राप्ति में नहीं लगे हैं, उन्हें जानना चाहिए कि वे केवल मर रहे हैं। जिन्होंने सत्य-जीवन की ओर अपने को गतिवान नहीं किया है, मृत्यु के अतिरिक्त उनका भविष्य और क्या हो सकता है!
जीवन के दो अंत हो सकते हैंः जीवन या मृत्यु। या तो हम और वृहत्तर तथा विराट जीवन में पहुंच सकते हैं या समाप्त हो सकते हैं।
स्मरण रहे कि जो अंत हो सकता है, वह आरंभ से ही मौजूद होता है। आरंभ में जो नहीं है, वह अंत में भी नहीं हो सकता। अंत प्रकट होकर वही है, जो कि प्रकट होकर आरंभ था।
और तब यदि जीवन के दो अंत हो सकते हैं, तो उसमें निश्चय ही प्रारंभ से
ही दो दिशाएं और संभावनाएं वर्तमान होनी चाहिए। उसमें जीवन और मृत्यु दोनों सन्निहित हैं। जड़ता मृत्यु का बीज है, चैतन्य जीवन का। मनुष्य इनका द्वैत है।
मनुष्य जीवन और मृत्यु का मिलन है। मनुष्य चेतना और जड़ता का संगम है। मनुष्य यंत्र भी है, पर उसमें कुछ ऐसा है जो यंत्र नहीं है। उसमें अयांत्रिकता भी है। वह तत्व जो जड़ता और यांत्रिकता को समझ पाता है और उसके प्रति सजग और जागरूक हो पाता है वही तत्व उसकी अयांत्रिकता है। इस अयांत्रिक दिशा को पकड़ कर ही जीवन तक पहुंचा जाता है।
मैं जो अपने में चेतना पा रहा हूं, यह बोध पा रहा हूं कि मैं हूं, यह बोध-किरण ही मुझे सत्ता में ले जाने का मार्ग बन सकती है। साधारणतः यह किरण बहुत धूमिल और अस्पष्ट है। पर वह अवश्य है और उसका होना ही महत्वपूर्ण है। अंधेरे में वह धूमिल किरण ही प्रकाश तक पहुंच सकने की

क्षमता की सूचना और संकेत है। उसका होना ही निकट ही प्रकाश-स्रोत के होने का सुसमाचार है।
मैं तो एक किरण के होने से ही सूरज के होने के विश्वास से भर जाता हूं। उसे जान कर ही क्या सूरज को नहीं जान लिया जाता?
मनुष्य में जो बोध-किरण है वह उसके बुद्धत्व का इंगित है।
मनुष्य में जो होश का मंदा सा आभास है, वह उसकी सबसे बड़ी संभावना है,
वह उसकी सबसे बड़ी संपत्ति है। उससे बहुमूल्य उसमें कुछ भी नहीं है। उसके आधार पर चल कर वह स्वयं तक और सत्ता तक पहुंच सकता है। वह जीवन, वृहत्तर जीवन और ब्रह्म की दिशा है।
जो उस पर नहीं हैं, वे उसके विपरीत हैं, क्योंकि तीसरी कोई दिशा ही नहीं है। उस पर या उसके विपरीत--दो ही विकल्प हैं। अभी जो आभास है, उसे या तो विनाश की ओर ले जाया सकता है या विकास की ओर। या तो बोध से बोधि में जाया जा सकता है या फिर और मूर्च्छा में।
सामान्य जीवन का यांत्रिक वृत्त अपने आप संबोधि के प्रकाश-शिखरों पर नहीं ले जाता। यह शाश्वत नियम है कि कुछ न करें तो नीचे आना अपने आप हो जाता है, लेकिन ऊपर जाना अपने आप नहीं होता। पतन न कुछ करने से ही हो जाता है, लेकिन उन्नयन नहीं होता। जड़ता अपने आप आ जाती है, जीवन अपने आप नहीं आता। मृत्यु बिना बुलाए आ जाती है, पर जीवन को बुलावा देना होता है।
बोध की जो किरण प्रत्येक के भीतर है, उसमें और उसके सहारे गति करनी है। जैसे-जैसे भीतर गति होती है, वैसे-वैसे बोध के आयाम उदघाटित होते हैं और व्यक्ति जड़ता और यांत्रिकता के पार होने लगता है। जैसे-जैसे वह चैतन्य के प्रगाढ़ होते स्वरूप से परिचित होता है, वैसे-वैसे उसकी अनेक-चित्तता विसर्जित होने लगती है और उसमें कुछ घना और एकाग्र केंद्रित होने लगता है। इस प्रक्रिया के परिणाम से वह व्यक्ति बनता है।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
सत्रहवां प्रवचन

शिक्षा का लक्ष्य

मैं आपकी आंखों में देखता हूं और उनमें घिरे विषाद और निराशा को देख
कर मेरा हृदय रोने लगता है। मनुष्य ने स्वयं अपने साथ यह क्या कर लिया है? वह क्या होने की क्षमता लेकर पैदा होता है और क्या होकर समाप्त हो जाता है! जिसकी अंतरात्मा दिव्यता की ऊंचाइयां छूती, उसे पशुता की घाटियों में भटकते देख कर ऐसा लगता है जैसे किसी फूलों के पौधे में फूल न लग कर पत्थर लग गए हों और जैसे किसी दीये से प्रकाश की जगह अंधकार निकलता हो।
ऐसा ही हुआ है मनुष्य के साथ। इसके कारण ही हम उस सात्विक प्रफुल्लता
का अनुभव नहीं करते हैं जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हमारे प्राण तमस के भार से भारी हो गए हैं। मनुष्य का विषाद, वह जो हो सकता है, उस विकास के अभाव का परिणाम है।
शिक्षा, मानवात्मा में जो अंतर्निहित है उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम और उपाय है। कभी सुकरात ने कहा था, मैं एक दाई की भांति हूं। जो तुममें अप्रकट है, मैं उसे प्रकट कर दूंगा। यह वचन शिक्षा की भी परिभाषा है।
लेकिन मनुष्य में शुभ और अशुभ दोनों ही छिपे हैं। विष और अमृत दोनों
ही उसके भीतर हैं। पशु और परमात्मा दोनों का ही उसके अंदर वास है। यही उसकी स्वतंत्रता और मौलिक गरिमा भी है। वह अपने होने को चुनने में स्वतंत्र है।
इसलिए सम्यक शिक्षा वह है जो उसे प्रभु होने की ओर मार्ग-दर्शन दे सके।
यह भी स्मरणीय है कि मनुष्य यदि अपने साथ कुछ भी न करे तो वह सहज ही पशु से भी पतित हो जाता है। पशु को चुनना हो तो स्वयं को जैसा जन्म से पाया है, वैसा ही छोड़ देना पर्याप्त है। उसके लिए कुछ और विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। वह उपलब्धि सहज और सुगम है।
नीचे उतरना हमेशा ही सुगम होता है। किंतु ऊपर उठना श्रम और साधना है।
वह अध्यवसाय और पुरुषार्थ है। वह संभावना, संकल्प और सतत चेष्टा से ही फलीभूत है। ऊपर उठना एक कला है। जीवन की सबसे बड़ी कला वही है।
प्रभु होने की इस कला को सिखाना शिक्षा का लक्ष्य है।
जीवन शिक्षा का लक्ष्य है, मात्र आजीविका नहीं। जीवन के ही लिए आजीविका का मूल्य है। आजीविका अपने आप में तो कोई अर्थ नहीं रखती है। पर साधन ही अज्ञानवश अनेक बार साध्य बन जाते हैं। ऐसा ही शिक्षा में भी हुआ है। आजीविका लक्ष्य बन गई है। जैसे मनुष्य जीने के लिए न खाता हो, वरन खाने के लिए ही जीता हो। आज की शिक्षा पर यदि कोई विचार करेगा तो यह निष्कर्ष अपरिहार्य है।
क्या मैं कहूं कि आज की शिक्षा की इस भूल के अतिरिक्त और कोई भूल नहीं है?
लेकिन यह भूल बहुत बड़ी है। यह भूल वैसी ही है, जैसे कोई किसी मृत व्यक्ति के संबंध में कहे कि इस देह में और तो सब ठीक है, केवल प्राण नहीं हैं।
हमारी शिक्षा अभी ऐसा ही शरीर है, जिसमें प्राण नहीं हैं, क्योंकि आजीविका जीवन की देह मात्र ही है।
शिक्षा तब सप्राण होगी, जब वह आजीविका ही नहीं, जीवन को भी सिखाएगी। जीवन सिखाने का अर्थ है, आत्मा को सिखाना।
मैं सब कुछ जान लूं, लेकिन यदि स्वयं की ही सत्ता से अपरिचित हूं, तो
वह जानना वस्तुतः जानना नहीं है। ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य जिसके केंद्र पर स्व-ज्ञान न हो? स्वयं में अंधेरा हो तो सारे जगत में भरे प्रकाश का भी हम क्या करेंगे?
ज्ञान का पहला चरण स्व-ज्ञान की ही दिशा में उठना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य वही है।

और व्यक्ति जिस मात्रा में स्व-ज्ञान को जानने लगता है, उसी मात्रा में उसका पशु विसर्जित होता है और प्रभु की ओर उसके प्राण प्रवाहित होते हैं। आत्मज्ञान की पूर्णता ही उसे परमात्मा में प्रतिष्ठा देती है।
और वही प्रतिष्ठा आनंद और अमृत है। उसे पाकर ही सार्थकता और कृतार्थता है। मनुष्य उस परम विकास और पूर्णता के बीज ही अपने में लिए हुए है।
जब तक वे बीज विकास को न पा लें, तब तक एक बेचैनी और प्यास उसे पीड़ित करेगी ही। जैसे हम भूमि में कोई बीज बोते हैं, तो जब तक वे अंकुरित होकर सूर्य के प्रकाश को नहीं पा लेते हैं, तब तक उनके प्राण गहन प्रसव-पीड़ा से गुजरते हैं; वैसे ही मनुष्य भी भूमि के अंधकार में दबा हुआ एक बीज है, और जब तक वह भी प्रकाश को उपलब्ध न हो पावे, तब तक उसे भी शांति नहीं है। और यह अशांति शुभ ही है, क्योंकि इससे गुजर कर ही वह शांति के लोक में प्रवेश पाएगा।
शिक्षा को यह अशांति तीव्र करनी चाहिए, और शांति का मार्ग और विज्ञान देना चाहिए, तभी वह पूर्ण होगी और एक नये मनुष्य का और नयी मानवता का जन्म होगा। हमारा सारा भविष्य इसी बात पर निर्भर है। शिक्षा के हाथ में ही मनुष्य का भाग्य है। मनुष्य को यदि मनुष्य के ही हाथों बचाना है तो मनुष्य का पुनर्निर्माण अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा मनुष्य का पशु तो मनुष्य को ही विनष्ट कर देगा। मनुष्य की प्रभु में प्रतिष्ठा ही एक मात्र बचाव है। "मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र
आपकी आंखों में देखता हूं और उनमें घिरे विषाद और निराशा को देख कर मेरा हृदय रोने लगता है। मनुष्य ने स्वयं अपने साथ यह क्या कर लिया है? वह क्या होने की क्षमता लेकर पैदा होता है और क्या होकर समाप्त हो जाता है! जिसकी अंतरात्मा दिव्यता की ऊंचाइयां छूती, उसे पशुता की घाटियों में भटकते देख कर ऐसा लगता है जैसे किसी फूलों के पौधे में फूल न लग कर पत्थर लग गए हों और जैसे किसी दीये से प्रकाश की जगह अंधकार निकलता हो।
ऐसा ही हुआ है मनुष्य के साथ। इसके कारण ही हम उस सात्विक प्रफुल्लता
का अनुभव नहीं करते हैं जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हमारे प्राण तमस के भार से भारी हो गए हैं। मनुष्य का विषाद, वह जो हो सकता है, उस विकास के अभाव का परिणाम है।
शिक्षा, मानवात्मा में जो अंतर्निहित है उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम और उपाय है। कभी सुकरात ने कहा था, मैं एक दाई की भांति हूं। जो तुममें अप्रकट है, मैं उसे प्रकट कर दूंगा। यह वचन शिक्षा की भी परिभाषा है।
लेकिन मनुष्य में शुभ और अशुभ दोनों ही छिपे हैं। विष और अमृत दोनों
ही उसके भीतर हैं। पशु और परमात्मा दोनों का ही उसके अंदर वास है। यही उसकी स्वतंत्रता और मौलिक गरिमा भी है। वह अपने होने को चुनने में स्वतंत्र है।
इसलिए सम्यक शिक्षा वह है जो उसे प्रभु होने की ओर मार्ग-दर्शन दे सके।
यह भी स्मरणीय है कि मनुष्य यदि अपने साथ कुछ भी न करे तो वह सहज ही पशु से भी पतित हो जाता है। पशु को चुनना हो तो स्वयं को जैसा जन्म से पाया है, वैसा ही छोड़ देना पर्याप्त है। उसके लिए कुछ और विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। वह उपलब्धि सहज और सुगम है।
नीचे उतरना हमेशा ही सुगम होता है। किंतु ऊपर उठना श्रम और साधना है।
वह अध्यवसाय और पुरुषार्थ है। वह संभावना, संकल्प और सतत चेष्टा से ही फलीभूत है। ऊपर उठना एक कला है। जीवन की सबसे बड़ी कला वही है।
प्रभु होने की इस कला को सिखाना शिक्षा का लक्ष्य है।
जीवन शिक्षा का लक्ष्य है, मात्र आजीविका नहीं। जीवन के ही लिए आजीविका का मूल्य है। आजीविका अपने आप में तो कोई अर्थ नहीं रखती है। पर साधन ही अज्ञानवश अनेक बार साध्य बन जाते हैं। ऐसा ही शिक्षा में भी हुआ है। आजीविका लक्ष्य बन गई है। जैसे मनुष्य जीने के लिए न खाता हो, वरन खाने के लिए ही जीता हो। आज की शिक्षा पर यदि कोई विचार करेगा तो यह निष्कर्ष अपरिहार्य है।

क्या मैं कहूं कि आज की शिक्षा की इस भूल के अतिरिक्त और कोई भूल नहीं है?
लेकिन यह भूल बहुत बड़ी है। यह भूल वैसी ही है, जैसे कोई किसी मृत व्यक्ति के संबंध में कहे कि इस देह में और तो सब ठीक है, केवल प्राण नहीं हैं।
हमारी शिक्षा अभी ऐसा ही शरीर है, जिसमें प्राण नहीं हैं, क्योंकि आजीविका जीवन की देह मात्र ही है।
शिक्षा तब सप्राण होगी, जब वह आजीविका ही नहीं, जीवन को भी सिखाएगी। जीवन सिखाने का अर्थ है, आत्मा को सिखाना।
मैं सब कुछ जान लूं, लेकिन यदि स्वयं की ही सत्ता से अपरिचित हूं, तो
वह जानना वस्तुतः जानना नहीं है। ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य जिसके केंद्र पर स्व-ज्ञान न हो? स्वयं में अंधेरा हो तो सारे जगत में भरे प्रकाश का भी हम क्या करेंगे?
ज्ञान का पहला चरण स्व-ज्ञान की ही दिशा में उठना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य वही है।
और व्यक्ति जिस मात्रा में स्व-ज्ञान को जानने लगता है, उसी मात्रा में उसका पशु विसर्जित होता है और प्रभु की ओर उसके प्राण प्रवाहित होते हैं। आत्मज्ञान की पूर्णता ही उसे परमात्मा में प्रतिष्ठा देती है।
और वही प्रतिष्ठा आनंद और अमृत है। उसे पाकर ही सार्थकता और कृतार्थता है। मनुष्य उस परम विकास और पूर्णता के बीज ही अपने में लिए हुए है।
जब तक वे बीज विकास को न पा लें, तब तक एक बेचैनी और प्यास उसे पीड़ित करेगी ही। जैसे हम भूमि में कोई बीज बोते हैं, तो जब तक वे अंकुरित होकर सूर्य के प्रकाश को नहीं पा लेते हैं, तब तक उनके प्राण गहन प्रसव-पीड़ा से गुजरते हैं; वैसे ही मनुष्य भी भूमि के अंधकार में दबा हुआ एक बीज है, और जब तक वह भी प्रकाश को उपलब्ध न हो पावे, तब तक उसे भी शांति नहीं है। और यह अशांति शुभ ही है, क्योंकि इससे गुजर कर ही वह शांति के लोक में प्रवेश पाएगा।
शिक्षा को यह अशांति तीव्र करनी चाहिए, और शांति का मार्ग और विज्ञान देना चाहिए, तभी वह पूर्ण होगी और एक नये मनुष्य का और नयी मानवता का जन्म होगा। हमारा सारा भविष्य इसी बात पर निर्भर है। शिक्षा के हाथ में ही मनुष्य का भाग्य है। मनुष्य को यदि मनुष्य के ही हाथों बचाना है तो मनुष्य का पुनर्निर्माण अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा मनुष्य का पशु तो मनुष्य को ही विनष्ट कर देगा। मनुष्य की प्रभु में प्रतिष्ठा ही एक मात्र बचाव है।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
अठारहवां प्रवचन

जीवन-संपदा का अधिकार

मैं क्या देखता हूं? देखता हूं कि मनुष्य सोया हुआ है। आप सोए हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य सोया हुआ है। रात्रि ही नहीं, दिवस भी निद्रा में ही बीत रहे हैं। निद्रा तो निद्रा ही है, किंतु यह तथाकथित जागरण भी निद्रा ही है।
आंखों के खुल जाने मात्र से नींद नहीं टूटती। उसके लिए तो अंतस का खुलना आवश्यक है। वास्तविक जागरण का द्वार अंतस है। जिसका अंतस सोया हो वह जाग कर भी जागा हुआ नहीं होता, और जिसका अंतस जागता है वह सोकर भी सोता नहीं है।
जीवन जागरण में है। निद्रा तो मृत्यु का ही रूप है। जागृति का दीया ही हृदय को आलोक से भरता है। निद्रा तो अंधकार है। और अंधकार में होना, दुख में, पीड़ा में, संताप में होना है। स्वयं से पूछें कि आप कहां हैं? क्या हैं? यदि संताप में हैं, भय में हैं, दुख और पीड़ा में हैं, तो जानें कि अंधकार में हैं, जानें कि निद्रा में हैं। इसके पूर्व कि कोई जागने की दिशा में चले, यह जानना आवश्यक है कि वह निद्रा में है। जो यही नहीं जानता, वह जाग भी नहीं सकता है। क्या कारागृह से मुक्त होने की आकांक्षा के जन्म के लिए स्वयं के कारागृह में होने का बोध जरूरी नहीं है?
मैं प्रत्येक से प्रार्थना करता हूं कि वह भीतर झांके, अपने मन के कुएं में देखे। क्या वहां से आंख हटाने की वृत्ति होती है? क्या वहां से भागने का विचार आता है?
निश्चय ही यदि वहां से पलायन का ख्याल उठता हो तो जानना कि वहां अंधकार इकट्ठा है। आंखें अंधकार से हटना चाहती हैं और आलोक की ओर उठना चाहती हैं।
प्रतिदिन नये-नये मनुष्यों को जानने का मुझे मौका मिलता है। हजारों लोगों को अध्ययन करने का अवसर मिला है। एक बात उन सब में समान है, वह है दुख। सभी दुखी हैं। सभी पीड़ा में डूबे दिखाई देते हैं। एक घना संताप है, चिंता है, जिसमें वे सब जकड़े हुए हैं। इससे वे बेचैन हैं और तड़फड़ा रहे हैं। श्वास तक लेना कठिन हो रहा है। आस-पास दुख ही दुख दिखाई देता है। हवाओं का-- जीवनदायी हवाओं का--तो कोई पता ही नहीं है। क्या ऐसी ही स्थिति आपकी है? क्या आप भी अपने भीतर घबरा देने वाली घुटन का अनुभव नहीं करते हैं? क्या आपकी गर्दन को भी चिंताएं नहीं दबा रही हैं और क्या आपके रक्त में भी उनका विष प्रवेश नहीं कर गया है?
अर्थहीनता घर किए हुए है। ऊब से सब दबे हैं और टूट रहे हैं। क्या यही जीवन है? क्या आप इससे ही तृप्त और संतुष्ट हैं? यदि यही जीवन है तो फिर मृत्यु क्या होगी?
मित्र, यह जीवन नहीं है। वस्तुतः यही मृत्यु है। जीवन से सब परिचित नहीं हैं। जीवन सर्वथा भिन्न अनुभव है। जान कर ही यह मैं कह रहा हूं। कभी इस तथाकथित जीवन को ही जीवन मानने की भूल मैंने भी की थी। वह भूल स्वाभाविक है। जब और किसी भांति के जीवन को व्यक्ति जानता ही नहीं, तो जो उपलब्ध होता है उसे ही जीवन मान लेता है। यह मानना भी सचेतन नहीं होता। सचेतन होते ही तो मानना कठिन हो जाता है। वस्तुतः अविचार में ही, अबोध में ही, वैसी भूल होती है। स्वयं के प्रति थोड़ा सा भी विचार उस भूल को तोड़ देता है। जो उपलब्ध है, उसे स्वीकार नहीं, विचार करें। स्वीकार अचेतन है, वह अंधविश्वास है। विचार सचेतन है, उसके द्वारा ही भ्रम-भंग होना प्रारंभ होता है।
विचार विश्वास से बिल्कुल विरोधी घटना है। विश्वास अचेतन है। उससे जो चलता है वह मात्र जीता ही है, जीवन को उपलब्ध नहीं होता। जीवन को उपलब्ध करने के लिए विश्वास की नहीं, विचार और विवेक की दिशा पकड़नी होती है। विश्वास यानी मानना। विचार यानी खोजना। जानने के लिए मानना घातक है। खोज के लिए विश्वास बाधा है। जो मान लेते हैं, वे जानने की दिशा में चलते ही

नहीं। चलने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। जानने का काम मानना ही कर देता है। इस भांति कागज के फूल ही असली फूलों का धोखा दे देते हैं और झूठे काल्पनिक पानी से ही प्यास बुझने को मान लिया जाता है।
ज्ञान के मार्ग में विश्वास की वृत्ति सबसे बड़ा अवरोध है। विचार की मुक्ति में विश्वास की ही अड़चन है। विश्वास की जंजीरें ही स्वयं की विचार-शक्ति को जीवन की यात्रा नहीं करने देतीं और उनमें रुका व्यक्ति पानी के घिरे डबरों की भांति हो जाता है। फिर वह सड़ता है और नष्ट होता है, लेकिन सागर की ओर दौड़ना उसे संभव नहीं रह जाता। बंधो नहीं, स्वयं को बांधो नहीं। खोजो, खोजने में ही सत्य-जीवन की प्राप्ति है।
जीवन जैसा मिला है, उस पर विश्वास मत कर लेना, उससे संतुष्ट मत हो जाना। वह जीवन नहीं, बल्कि जीवन के विकास और अनुभव की एक संभावना मात्र ही है।
एक कहानी मैंने सुनी है। किसी वृद्ध व्यक्ति ने अपने दो पुत्रों की परीक्षा लेनी चाही। मरने के पूर्व वह अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी चुनना चाहता था। उसने गेहूं के कुछ बीज दोनों को दिए और कहा कि मैं अनिश्चित समय के लिए तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, तुम इन बीजों को सम्हाल कर रखना।
पहले पुत्र ने उन्हें जमीन में गाड़ कर रख दिया। दूसरे ने उनकी खेती की
और उन्हें बढ़ाया। कुछ वर्षों के बाद जब वृद्ध लौटा तो पहले के बीज सड़ कर नष्ट हो गए थे, और दूसरे ने उन्हें हजारों गुना बढ़ा कर संपदा में परिणत कर लिया था।
यही स्थिति जीवन की भी है। जो जीवन हमें मिला है, वह बीजों की भांति है। उससे ही तृप्त नहीं हो जाना है। बीज तो संभावनाएं हैं। उन्हें जो वास्तविकताओं में परिवर्तित कर लेता है, वही उनमें छिपी संपदा का मालिक होता है।
हम सब जो हैं, वहीं नहीं रुके रहना है; वस्तुतः जो हो सकते हैं, वहां तक पहुंचना है। वहीं पहुंचना हमारा वास्तविक होना भी है। फूलों को कभी देखा है? कभी उनके आनंद को, कभी उनकी अभिव्यक्ति को विचारा है? सुबह हम फूलों की एक सुंदर बगिया में थे। जो मित्र साथ थे, उनसे मैंने कहा, फूल सुंदर हैं, स्वस्थ हैं और सुवास से भरे हैं, क्योंकि वे जो हो सकते थे वही हो गए हैं। उन्होंने अपनी विकास की पूर्णता को पा लिया है। जब तक मनुष्य भी ऐसा ही न हो जाए तब तक उसका जीवन भी सुवास से नहीं भरता है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र
जीवन जागरण में है। निद्रा तो मृत्यु का ही रूप है। जागृति का दीया ही हृदय को आलोक से भरता है। निद्रा तो अंधकार है। और अंधकार में होना, दुख में, पीड़ा में, संताप में होना है। स्वयं से पूछें कि आप कहां हैं? क्या हैं? यदि संताप में हैं, भय में हैं, दुख और पीड़ा में हैं, तो जानें कि अंधकार में हैं, जानें कि निद्रा में हैं। इसके पूर्व कि कोई जागने की दिशा में चले, यह जानना आवश्यक है कि वह निद्रा में है। जो यही नहीं जानता, वह जाग भी नहीं सकता है। क्या कारागृह से मुक्त होने की आकांक्षा के जन्म के लिए स्वयं के कारागृह में होने का बोध जरूरी नहीं है?
मैं प्रत्येक से प्रार्थना करता हूं कि वह भीतर झांके, अपने मन के कुएं में देखे। क्या वहां से आंख हटाने की वृत्ति होती है? क्या वहां से भागने का विचार आता है?
निश्चय ही यदि वहां से पलायन का ख्याल उठता हो तो जानना कि वहां अंधकार इकट्ठा है। आंखें अंधकार से हटना चाहती हैं और आलोक की ओर उठना चाहती हैं।
प्रतिदिन नये-नये मनुष्यों को जानने का मुझे मौका मिलता है। हजारों लोगों को अध्ययन करने का अवसर मिला है। एक बात उन सब में समान है, वह है दुख। सभी दुखी हैं। सभी पीड़ा में डूबे दिखाई देते हैं। एक घना संताप है, चिंता है, जिसमें वे सब जकड़े हुए हैं। इससे वे बेचैन हैं और तड़फड़ा रहे हैं। श्वास तक लेना कठिन हो रहा है। आस-पास दुख ही दुख दिखाई देता है। हवाओं का-- जीवनदायी हवाओं का--तो कोई पता ही नहीं है। क्या ऐसी ही स्थिति आपकी है? क्या आप भी अपने भीतर घबरा देने वाली घुटन का अनुभव नहीं करते हैं? क्या

आपकी गर्दन को भी चिंताएं नहीं दबा रही हैं और क्या आपके रक्त में भी उनका विष प्रवेश नहीं कर गया है?
अर्थहीनता घर किए हुए है। ऊब से सब दबे हैं और टूट रहे हैं। क्या यही जीवन है? क्या आप इससे ही तृप्त और संतुष्ट हैं? यदि यही जीवन है तो फिर मृत्यु क्या होगी?
मित्र, यह जीवन नहीं है। वस्तुतः यही मृत्यु है। जीवन से सब परिचित नहीं हैं। जीवन सर्वथा भिन्न अनुभव है। जान कर ही यह मैं कह रहा हूं। कभी इस तथाकथित जीवन को ही जीवन मानने की भूल मैंने भी की थी। वह भूल स्वाभाविक है। जब और किसी भांति के जीवन को व्यक्ति जानता ही नहीं, तो जो उपलब्ध होता है उसे ही जीवन मान लेता है। यह मानना भी सचेतन नहीं होता। सचेतन होते ही तो मानना कठिन हो जाता है। वस्तुतः अविचार में ही, अबोध में ही, वैसी भूल होती है। स्वयं के प्रति थोड़ा सा भी विचार उस भूल को तोड़ देता है। जो उपलब्ध है, उसे स्वीकार नहीं, विचार करें। स्वीकार अचेतन है, वह अंधविश्वास है। विचार सचेतन है, उसके द्वारा ही भ्रम-भंग होना प्रारंभ होता है।
विचार विश्वास से बिल्कुल विरोधी घटना है। विश्वास अचेतन है। उससे जो चलता है वह मात्र जीता ही है, जीवन को उपलब्ध नहीं होता। जीवन को उपलब्ध करने के लिए विश्वास की नहीं, विचार और विवेक की दिशा पकड़नी होती है। विश्वास यानी मानना। विचार यानी खोजना। जानने के लिए मानना घातक है। खोज के लिए विश्वास बाधा है। जो मान लेते हैं, वे जानने की दिशा में चलते ही नहीं। चलने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। जानने का काम मानना ही कर देता है। इस भांति कागज के फूल ही असली फूलों का धोखा दे देते हैं और झूठे काल्पनिक पानी से ही प्यास बुझने को मान लिया जाता है।
ज्ञान के मार्ग में विश्वास की वृत्ति सबसे बड़ा अवरोध है। विचार की मुक्ति में विश्वास की ही अड़चन है। विश्वास की जंजीरें ही स्वयं की विचार-शक्ति को जीवन की यात्रा नहीं करने देतीं और उनमें रुका व्यक्ति पानी के घिरे डबरों की भांति हो जाता है। फिर वह सड़ता है और नष्ट होता है, लेकिन सागर की ओर दौड़ना उसे संभव नहीं रह जाता। बंधो नहीं, स्वयं को बांधो नहीं। खोजो, खोजने में ही सत्य-जीवन की प्राप्ति है।
जीवन जैसा मिला है, उस पर विश्वास मत कर लेना, उससे संतुष्ट मत हो जाना। वह जीवन नहीं, बल्कि जीवन के विकास और अनुभव की एक संभावना मात्र ही है।
एक कहानी मैंने सुनी है। किसी वृद्ध व्यक्ति ने अपने दो पुत्रों की परीक्षा लेनी चाही। मरने के पूर्व वह अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी चुनना चाहता था। उसने गेहूं के कुछ बीज दोनों को दिए और कहा कि मैं अनिश्चित समय के लिए तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, तुम इन बीजों को सम्हाल कर रखना।
पहले पुत्र ने उन्हें जमीन में गाड़ कर रख दिया। दूसरे ने उनकी खेती की
और उन्हें बढ़ाया। कुछ वर्षों के बाद जब वृद्ध लौटा तो पहले के बीज सड़ कर नष्ट हो गए थे, और दूसरे ने उन्हें हजारों गुना बढ़ा कर संपदा में परिणत कर लिया था।
यही स्थिति जीवन की भी है। जो जीवन हमें मिला है, वह बीजों की भांति है। उससे ही तृप्त नहीं हो जाना है। बीज तो संभावनाएं हैं। उन्हें जो वास्तविकताओं में परिवर्तित कर लेता है, वही उनमें छिपी संपदा का मालिक होता है।
हम सब जो हैं, वहीं नहीं रुके रहना है; वस्तुतः जो हो सकते हैं, वहां तक पहुंचना है। वहीं पहुंचना हमारा वास्तविक होना भी है। फूलों को कभी देखा है? कभी उनके आनंद को, कभी उनकी अभिव्यक्ति को विचारा है? सुबह हम फूलों की एक सुंदर बगिया में थे। जो मित्र साथ थे, उनसे मैंने कहा, फूल सुंदर हैं, स्वस्थ हैं और सुवास से भरे हैं, क्योंकि वे जो हो सकते थे वही हो गए हैं। उन्होंने अपनी विकास की पूर्णता को पा लिया है। जब तक मनुष्य भी ऐसा ही न हो जाए तब तक उसका जीवन भी सुवास से नहीं भरता है।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
उन्नीसवां प्रवचन

समाधि योग

सत्य की खोज की दो दिशाएं हैं--एक विचार की, एक दर्शन की। विचार का मार्ग चक्रीय है। उसमें गति तो बहुत होती है, पर गंतव्य कभी भी नहीं आता। वह दिशा भ्रामक और मिथ्या है। जो उसमें पड़ते हैं, वे मतों में ही उलझ कर रह जाते हैं। मत और सत्य भिन्न बातें हैं। मत बौद्धिक धारणा है, जब कि सत्य समग्र प्राणों की अनुभूति में बदल जाते हैं। तार्किक हवाओं के रुख पर उनकी स्थिति निर्भर करती है, उनमें कोई थिरता नहीं होती। सत्य परिवर्तित नहीं होता है। उसकी उपलब्धि शाश्वत और सनातन में प्रतिष्ठा देती है। विचार का मार्ग उधार है। दूसरों के विचारों को ही उसमें निज की संपत्ति मान कर चलना होता है। उनके ही ऊहापोह और नये-नये संयोगों को मिला कर मौलिकता की आत्मवंचना पैदा की जाती है। जब कि विचार कभी भी मौलिक नहीं हो सकते हैं। दर्शन ही मौलिक होता है, क्योंकि उसका जन्म स्वयं की अंतर्दृष्टि से होता है।
जो भी ज्ञात है, वह अज्ञात में नहीं ले जाता है। सत्य अज्ञात है तो ज्ञात विचार उस तक पहुंचने की सीढ़ियां नहीं बन सकते हैं। उनके परित्याग से ही सत्य में प्रवेश होता है। निर्विचार चैतन्य के आकाश में ही सत्य के सूर्य के दर्शन होते हैं।
मनुष्य-चित्त ऐंद्रिक अनुभवों को संगृहीत कर लेता है। ये सभी अनुभव बाह्य जगत के होते हैं, क्योंकि इंद्रियां केवल उसे ही जानने में समर्थ हैं जो बाहर है। स्वयं के भीतर जो है, वहां तक इंद्रियों की कोई पहुंच नहीं। इन अनुभवों की सूक्ष्म तरंगें ही विचार की जन्मदात्री हैं। इसलिए विचार, विज्ञान की खोज में तो सहयोगी हो सकता है, किंतु परम सत्य के अनुसंधान में नहीं। स्वयं के आंतरिक केंद्र पर जो चेतना है, विचार के द्वारा उसे स्पर्श नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह तो इंद्रियों के सदा पार्श्व में ही है।
यह स्मरण रखना आवश्यक है कि विचारों का आगमन बाहर से होता है। वे विजातीय तत्व हैं। उनसे स्वयं की सत्ता उदघाटित नहीं, वरन और आच्छादित ही होती है। उनकी धुंध और धुआं जितना गहरा होता है, उतना ही स्व-सत्ता में प्रवेश कठिन और दुर्गम हो जाता है। जो स्वयं को नहीं जानता है, वह सत्य को कैसे जान सकता है? सत्य को जानने का द्वार स्वयं से होकर ही आता है, और कोई दूसरा द्वार भी नहीं है।
सत्य की बौद्धिक विचार-धारणाओं में पड़े रहना ऐसे ही है, जैसे कोई अंधा व्यक्ति प्रकाश का चिंतन करता रहे। उसका सारा चिंतन व्यर्थ ही होगा, क्योंकि प्रकाश सोचा नहीं, देखा जाता है। उसके लिए विचार नहीं, आंखों का उपचार आवश्यक है। उस दिशा में किसी विचारक की नहीं, चिकित्सक की सलाहें ही उपादेय हो सकती हैं।
विचार चिंतन है, दर्शन चिकित्सा है। प्रश्न प्रकाश का नहीं, सदा ही आंखों का है। यहीं तत्व-चिंतन और योग विभिन्न दिशाओं के यात्री हो जाते हैं। तत्व-चिंतन अंधों द्वारा प्रकाश का विचार और विवेचना है, जब कि योग आंखें देता है और सत्य के दर्शन की सामर्थ्य और पात्रता उत्पन्न करता है। योग समाधि का विज्ञान है। चित्त की शून्य और पूर्ण जाग्रत अवस्था को मैं समाधि कहता हूं। विषयों की दृष्टि से चित्त जब शून्य होता है और विषयी की दृष्टि से पूर्ण जाग्रत, तब समाधि उपलब्ध होती है। समाधि सत्य के लिए च्रु है।
हमारा चित्त साधारणतः विषयों, विचारों और उनके प्रति सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं से आच्छन्न रहता है। इन अशांत लहरों की क्रमशः एक मोटी दीवार बन जाती है। यही दीवार हमें स्वयं के बाहर रखती है। सूर्य जैसे सागर पर अपनी उत्तप्त किरणें फेंक कर ऐसे बादल पैदा कर लेता है जो उसे ढांकने और आवृत करने में समर्थ हो जाते हैं, वैसे ही मनुष्य-चेतना भी विषयों के संसर्ग में से विचार-प्रतिक्रियाओं को उत्पन्न कर लेती है और फिर उन्हीं

में भटक जाती है। अपने ही हाथों से अपनी सत्ता तक पहुंचने के द्वार बंद करने के लिए मनुष्य स्वतंत्र है।
किंतु जो अपने पैरों में अपने हाथ से बेड़ियां डालने में समर्थ होता है, वह उन्हें तोड़ने की क्षमता भी अवश्य ही रखता है। स्वतंत्रता हमेशा दोहरी होती है। बनाने की शक्ति में मिटाने की शक्ति भी अवश्य ही अंतर्निहित होती है। इस सच्चाई को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है।
स्वयं को या सत्य को पाने जो चलता है, उसे विजातीय प्रभावों को दूर करने के लिए उनकी दीवार पर दो बिंदुओं से आक्रमण करना होता है। एक को मैं जागरूकता के लिए आक्रमण कहता हूं, और दूसरे को शून्यता के लिए। इन दोनों की जहां पूर्णता होती है और संगम होता है, वहां समाधि फलित होती है। जागरूकता के लिए कार्यों या विचारों में अपनी मूर्च्छा और प्रमत्तता
को छोड़ना पड़ता है। कोई भी कर्म या कोई भी विचार सोई सी अवस्था से नहीं, परिपूर्ण सजगता से होना चाहिए। सतत ऐसी धारणा करने पर स्वयं में साक्षी का जन्म होता है। जागरूकता के लिए निरंतर सचेत रहना और अपनी अर्धनिद्रा सी चित्त-दशा पर आघात करने से स्वभावतः ही प्रसुप्त प्रज्ञा में जागरण प्रारंभ हो जाता है। फिर धीरे-धीरे एक बोध-चेतना सहज ही साथ रहने लगती है। यहां तक कि निद्रा में भी उसका साथ नहीं छूटता है। यह पहला आक्रमण है। दूसरा सहयोगी आक्रमण शून्यता के लिए करना होता है। यह स्मरण रखना है
कि चित्त जितना कम स्पंदित और आंदोलित हो, उतना ही अच्छा है। ऐसे विचारों और भावों में स्वयं को पड़ने से रोकना पड़ता है जिनका परिणाम चित्त को अशांत करता है। चित्त की शांति को वैसे ही सम्हालना पड़ता है, जैसे कोई पथिक रात्रि के अंधकार में आंधियों से अपने दीये को बचा कर चलता हो। ऐसे कर्म, ऐसे विचार या ऐसी वाणी के प्रति सचेत होना होता है, जो चित्त की झील पर लहरें पैदा करें और जिनसे विक्षोभ उत्पन्न होता हो।
दोनों आक्रमण सहयोगी आक्रमण हैं और एक के साधने से दूसरे में सहायता मिलती है। जागरूकता साधने से शून्यता आती है और शून्यता साधने से जागरूकता आती है। उन दोनों में कौन महत्वपूर्ण है, यह कहना कठिन है। उनका संबंध मुर्गी-अंडे के संबंध जैसा है।
शून्यता और जागरूकता जब पूर्ण हो जाती है तो चित्त एक ऐसी क्रांति से गुजरता है जिसकी साधारणतः हमें कोई भी कल्पना नहीं हो सकती थी। उस परिवर्तन से बड़ा कोई परिवर्तन मनुष्य-जीवन में नहीं है। वह क्रांति आमूल है और उसके द्वारा सारा ही जीवन रूपांतरित हो जाता है। अंधे को अनायास आंख मिल जाने के प्रतीक से ही उसे समझाया जा सकता है।
इस क्रांति के द्वारा व्यक्ति स्वयं में प्रतिष्ठित होता है और अनिर्वचनीय आलोक का अनुभव करता है। इस आलोक में वह अपने सच्चिदानंद स्वरूप को जानता है। मृत्यु मिट जाती है और अमृत के दर्शन होते हैं। अंधकार विलीन हो जाता है और सत्य से मिलन होता है। वास्तविक जीवन की शुरुआत इस अनुभूति के बाद ही होती है। उसके पूर्व हम मृतकों के ही समान हैं। जीवन-सत्य को जो नहीं जानता है, उसे जीवित कहना बहुत अधूरे अर्थों में ही सत्य होता है।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
बीसवां प्रवचन

जीवन की अदृश्य जड़ें

किस संबंध में आपसे बातें करूं? जीवन के संबंध में?
शायद यही उचित होगा, क्योंकि जीवित होते हुए भी जीवन से हमारा संबंध नहीं है।
यह तथ्य कितना विरोधाभासी है! क्या जीवित होते हुए भी यह हो सकता है
कि जीवन से हमारा संबंध न हो?
यह हो सकता है! न केवल हो ही सकता है, बल्कि ऐसा ही है भी। जीवित होते हुए भी जीवन भूला हुआ है। शायद हम जीने में इतने व्यस्त हैं कि जीवन का विस्मरण ही हो गया है।
वृक्षों को देखता हूं तो विचार आता है कि क्या उन्हें अपनी जड़ों का पता होगा? पर वृक्ष तो वृक्ष हैं, मनुष्य को ही अपनी जड़ों का पता नहीं। जड़ों का ही पता न हो तो जीवन से संबंध कैसे होगा? जीवन तो जड़ों में है-- अदृश्य जड़ों में। दृश्य के प्राण अदृश्य में होते हैं। जो दिखाई पड़ता है उसका जीवन-स्रोत उसमें होता है जो दिखाई नहीं पड़ता है। दृश्य को अदृश्य धारण किए हुए है। जब तक यह अनुभव न हो तब तक जीवित होते हुए भी जीवन से संबंध नहीं होता है।
जीवन से संबंधित होने के लिए जीवन मिल जाना ही पर्याप्त नहीं। वह भूमिका तो है, किंतु वही सब कुछ नहीं। उसमें संभावनाएं तो हैं, लेकिन वही पूर्णता नहीं है। उससे यात्रा तो शुरू हो सकती है, लेकिन उस पर ही ठहरा नहीं जा सकता है।
पर कितने ही लोग हैं जो प्रस्थान बिंदु को ही गंतव्य मान कर रुक जाते हैं। शायद अधिकांशतः यही होता है। बहुत कम ही व्यक्ति हैं जो प्रस्थान बिंदु में, और पहुंचने की मंजिल में भेद करते हों और उस भेद को जीते हों। कुछ लोग शायद भेद कर लेते हैं, पर उस भेद को जीते नहीं। उसका भेद, मात्र बौद्धिक होता है। और स्मरण रहे कि बौद्धिक समझ कोई समझ नहीं। समझ जीवन के अस्तित्व के अनुभव से आवे तभी परिणामकारी होती है। हृदय की गहराई से और अनुभव की तीव्रता से ही वह ज्ञान आता है जो व्यक्ति को बदलता है, नया करता है।
बुद्धि तो उधार विचारों को ही अपना समझने की भ्रांति में पड़ जाती है। बुद्धि की संवेदना है ही बहुत सतही। जैसे सागर की सतह पर उठी लहरों का न तो कोई स्थायित्व होता है और न कोई दृढ़ता होती है, उनका बनना-मिटना चलता ही रहता है, सागर का अंतस्तल न तो उससे प्रभावित होता है और न ही परिवर्तित होता है। ऐसी ही स्थिति बुद्धि की भी है।
बुद्धि से नहीं, अनुभव से, अस्तित्व से तथा स्वयं की सत्ता से यह बोध आना चाहिए कि जन्म और जीवन में भेद है, चलने और पहुंचने में अंतर है। जन्म प्रारंभ है, अंत नहीं। यह दृष्टि न जगे तो जन्म को ही जीवन मान लिया जाता है। फिर जो जन्म को ही जीवन जानता और मानता है, अनिवार्यतः उसे मृत्यु को ही अंत और पूर्णता भी माननी पड़ती है! जन्म को जीवन मानने की भूल से ही मृत्यु को स्वयं की परिसमाप्ति मानने की भ्रांति का भी जन्म होता है। वह पहली भूल की ही सहज निष्पत्ति है। वह उसका ही विकास और निष्कर्ष है। जन्म से जो बंधे हैं, वे मृत्यु से भी भयभीत होंगे ही। मृत्यु-भय जन्म से बंधे होने की ही दूरगामी प्रतिध्वनि है।
वस्तुतः हम जिसे जीवन कहते हैं, वह जीवन कम और जीवित मृत्यु ही ज्यादा है। शरीर से ऊपर और शरीर से भिन्न जिसने स्वयं को नहीं जाना, वह कहने मात्र को ही जीवित है। जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात जिसे स्वयं का होना अनुभव नहीं होता, वह जीवित नहीं है। उसे जन्म के बाद और मृत्यु के पूर्व भी जीवन का अनुभव नहीं होगा, क्योंकि जीवन का अनुभव तो अखंड और अविच्छिन्न है। ऐसे व्यक्ति ने जन्म को ही जीवन मान लिया है। सच तो यही है कि उसने अभी जन्म ही पाया है, जीवन नहीं।

जन्म बाह्य घटना है, जीवन आंतरिक। जन्म संसार है, जीवन परमात्मा। जन्म जीवन तो नहीं है लेकिन जीवन में वह गति का द्वार हो सकता है। लेकिन साधारणतः तो वह मृत्यु का ही द्वार सिद्ध होता है। उस पर ही छोड़ देने से ऐसा होता है। साधना जन्म को जीवन बना सकती है। मृत्यु विकसित हुआ जन्म ही है। अचेतन और मूर्च्छित जीना मृत्यु में ले जाएगा, सचेतन और अमूर्च्छित जीना जीवन में। अमूर्च्छित जीवन को ही मैं साधना कहता हूं। साधना से जीवन उपलब्ध होता है। वही धर्म है।
मैं बूढ़ों को देखता हूं और बच्चों को देखता हूं तो मुझे जन्म तथा मृत्यु की दृष्टि से तो उनमें भेद दिखाई पड़ता है, लेकिन जीवन की दृष्टि से नहीं। जीवन से सभी अछूते हैं। जीवन समय की गति के बाहर है। जन्म और मृत्यु समय में घटित होते हैं, जीवन समय के बाहर। उम्र का बढ़ते जाना समय में होता है। उसे ही जीवन-वृद्धि न समझ लेना। आयुष्य और जीवन भिन्न हैं।
जीवन पाने के लिए समय के बाहर चलना होगा। समय क्या है? परिवर्तन समय है। संसार में सब कुछ अस्थिर है। वहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। देखो और खोजो, तो पाओगे कि स्वयं के बाहर एक भी बिंदु, एक भी अणु स्थिर नहीं है। पर स्वयं में कुछ है जो परिवर्तन के बाहर है। स्वयं में समय नहीं है। स्व-सत्ता कालातीत है। इसी सत्ता में जागरण ही जीवन है।
जीवन को खोजो, अन्यथा मृत्यु आपको खोज रही है। वह प्रतिक्षण निकट आती
जा रही है। जन्म के बाद प्रतिक्षण उसकी ही विजय का क्षण है। कुछ भी आप करें--केवल जीवन में प्रवेश छोड़ कर--उसकी विजय सुनिश्चित है। संपत्ति, शक्ति या यश, सभी उसके समक्ष निर्जीव छायाओं की भांति हैं। उसकी मौजूदगी में वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। स्वयं की सत्ता, स्व-अस्तित्व की अनुभूति ही केवल अमृत है। वही और केवल वही मृत्यु के बाहर है, क्योंकि समय के बाहर है।
समय में जो कुछ भी है, सभी मरणधर्मा है। समय मृत्यु की गति है, उसके ही चरणों का वह माप है। समय में दौड़ना मृत्यु में दौड़ना है। और सभी वहीं दौड़े जाते हैं। मैं सभी को स्वयं मृत्यु के मुंह में दौड़ते हुए देखता हूं। ठहरो और सोचो! आपके पैर आपको कहां लिए जा रहे हैं? आप उन्हें चला रहे हैं या कि वे ही आपको चला रहे हैं?
प्रतिदिन ही कोई मृत्यु के मुंह में गिरता है और आप ऐसे खड़े रहते हैं जैसे यह दुर्भाग्य उस पर ही गिरने को था। आप दर्शक बने रहते हैं। यदि आपके पास सत्य को देखने की आंखें हों तो उसकी मृत्यु में अपनी भी मृत्यु दिखाई पड़ती है। वही आपके साथ भी होने को है। वस्तुतः हो ही रहा है। आप रोज-रोज मर ही रहे हैं। जिसे आपने जीवन समझ रखा है, वह क्रमिक मृत्यु है। हम सब धीरे- धीरे मरते रहते हैं। मरण की यह प्रक्रिया इतनी धीमी है कि जब तक वह अपनी पूर्णता नहीं पा लेती तब तक प्रकट ही नहीं होती। उसे देखने के लिए विचार की सूक्ष्म दृष्टि चाहिए।
चर्मच्रुओं से तो केवल दूसरों की मृत्यु का दर्शन होता है, किंतु विचार-च्रु स्वयं को मृत्यु से घिरी और मृत्योन्मुख स्थिति को भी स्पष्ट कर देते हैं। स्वयं को इस संकट की स्थिति में घिरा जान कर ही जीवन को पाने की आकांक्षा का उदभव होता है। जैसे कोई जाने कि वह जिस घर में बैठा है उसमें आग लगी हुई है और फिर उस घर के बाहर भागे, वैसे ही स्वयं के गृह को मृत्यु की लपटों से घिरा जान हमारे भीतर भी जीवन को पाने की तीव्र और उत्कट अभीप्सा पैदा होती है। इस अभीप्सा से बड़ा और कोई सौभाग्य नहीं, क्योंकि वही जीवन के उत्तरोत्तर गहरे स्तरों में प्रवेश दिलाती है। क्या आपके भीतर ऐसी कोई प्यास है? क्या आपके प्राण ज्ञात के ऊपर अज्ञात को पाने को आकुल हुए हैं?
यदि नहीं, तो समझें कि आपकी आंखें बंद हैं और आप अंधे बने हुए हैं। यह अंधापन मृत्यु के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा सकता है।
जीवन तक पहुंचने के लिए आंखें चाहिए। उमंग रहते चेत जाना आवश्यक है। फिर पीछे पछताने से कुछ भी नहीं होता है।
आंखें खोलें और देखें तो चारों ओर मृत्यु दिखाई पड़ेगी। समय में, संसार में मृत्यु ही है। लेकिन समय के--संसार के--बाहर, स्वयं में अमृत भी

है। तथाकथित जीवन को जो मृत्यु की भांति जान लेता है, उसकी दृष्टि सहज ही स्वयं में छिपे अमृत की ओर उठने लगती है।
जो उस अमृत को पा लेता है, पी लेता है, जी लेता है, उसे फिर कहीं भी मृत्यु नहीं रह जाती है। फिर बाहर भी मृत्यु नहीं है। मृत्यु भ्रम है और जीवन सत्य है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
इक्कीसवां प्रवचन

अहिंसा क्या है?

मैं अहिंसा पर बहुत विचार करता था। जो कुछ उस संबंध में सुनता था, उससे तृप्ति नहीं होती थी। वे बातें बहुत ऊपरी मालूम होती थीं। बुद्धि तो उनसे प्रभावित होती थी, पर अंतस अछूता रह जाता था। धीरे-धीरे इसका कारण भी दिखा। जिस अहिंसा के संबंध में सुनता था, वह नकारात्मक थी। नकार बुद्धि से ज्यादा गहरे नहीं जा सकता है। जीवन को छूने के लिए कुछ विधायक चाहिए। अहिंसा, हिंसा का छोड़ना ही हो, तो वह जीवनस्पर्शी नहीं हो सकती है। वह किसी का छोड़ना नहीं, किसी की उपलब्धि होनी चाहिए। वह त्याग नहीं, प्राप्ति हो, तभी सार्थक है।
अहिंसा शब्द की नकारात्मकता ने बहुत भ्रांति को जन्म दिया है। वह शब्द तो नकारात्मक है, पर अनुभूति नकारात्मक नहीं है। वह अनुभूति शुद्ध प्रेम की है। प्रेम राग हो तो अशुद्ध है, प्रेम राग न हो तो शुद्ध है। राग-युक्त प्रेम किसी के प्रति होता है, राग-मुक्त प्रेम सबके प्रति होता है। सच तो यह है कि वह किसी के प्रति नहीं होता है, बस केवल होता है। प्रेम के दो रूप हैं। प्रेम संबंध हो तो राग होता है। प्रेम स्वभाव हो, स्थिति हो, तो वीतराग होता है। यह वीतराग प्रेम ही अहिंसा है।
प्रेम के संबंध से स्वभाव में परिवर्तन अहिंसा की साधना है। वह हिंसा
का त्याग नहीं, प्रेम का स्फुरण है। इस स्फुरण में हिंसा तो अपने आप छूट जाती है, उसे छोड़ने के लिए अलग से कोई आयोजन नहीं करना पड़ता है। जिस साधना में हिंसा को भी छोड़ने की चेष्टा करनी पड़े वह साधना सत्य नहीं है। प्रकाश के आते ही अंधेरा चला जाता है। यदि प्रकाश के आने पर भी उसे अलग करने की योजना करनी पड़े तो जानना चाहिए कि जो आया है, वह और कुछ भी हो, पर कम से कम प्रकाश तो नहीं ही है। प्रेम पर्याप्त है। उसका होना ही हिंसा का न होना है।
प्रेम क्या है? साधारणतः जिसे प्रेम करके जाना जाता है वह राग है और अपने आप को भुलाने का उपाय है। मनुष्य दुख में है और अपने आप को भूलना चाहता है। तथाकथित प्रेम के माध्यम से वह स्वयं से दूर चला जाता है। वह किसी और में अपने को भुला देता है। प्रेम मादक द्रव्यों का काम कर देता है। वह दुख से मुक्ति नहीं लाता, केवल दुखों के प्रति मूर्च्छा ला देता है। इसे मैं प्रेम का संबंध-रूप कहता हूं। वह वस्तुतः प्रेम नहीं, प्रेम का भ्रम ही है। प्रेम का यह भ्रम-रूप दुख से उत्पन्न होता है। दुखानुभव व्यक्ति चेतना को दो दिशाओं में ले जा सकता है।
एक दिशा है उसे भूलने की और एक दिशा है उसे विसर्जित करने की। जो दुख-विस्मृति की दिशा पकड़ता है वह जाने-अनजाने किसी न किसी प्रकार की मादकता और मूर्च्छा की खोज करता है। दुख-विस्मरण में आनंद का आभास ही हो सकता है, क्योंकि जो है उसे बहुत देर तक भूलना असंभव होता है। यह आभास ही सुख है। निश्चय ही यह सुख बहुत क्षणिक है। साधारण रूप से प्रेम नाम से जाना जाने वाला प्रेम ऐसे ही मूर्च्छा और विस्मरण की चित्त-स्थिति है। वह दुख से उत्पन्न होता है, और दुख को भुलाने के उपाय से वह ज्यादा नहीं है।
मैं जिस प्रेम को अहिंसा कहता हूं वह आनंद का परिणाम है। उससे दुख-विस्मरण नहीं होता है, वरन उसकी अभिव्यक्ति ही दुख-मुक्ति पर होती है। वह मादकता नहीं, परिपूर्ण जागरण है। जो चेतना दुख-विस्मरण नहीं, दुख-विसर्जन की दिशा में चलती है, वह उस संपदा की मालिक बनती है जिसे प्रेम कहते हैं। भीतर आनंद हो तो बाहर प्रेम फलित होता है। वस्तुतः जो भीतर आनंद है वही बाहर प्रेम है। वे दोनों दो नहीं हैं, वरन एक ही अनुभूति की दो प्रतीतियां हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आनंद स्वयं को अनुभव होता है। प्रेम, जो निकट आते हैं, उन्हें अनुभव होता है। आनंद केंद्र है, तो प्रेम परिधि है। ऐसा प्रेम संबंध नहीं, स्वभाव है। जैसे सूरज से प्रकाश निःसृत होता है, ऐसे ही वह स्वयं से निःसृत होता है। प्रेम के इस स्वभाव और रूप में कोई

बाह्य आकर्षण नहीं, आंतरिक प्रवाह है। उसका बाहर से न कोई संबंध है, न कोई अपेक्षा है। वह बाहर से मुक्त और स्वतंत्र है।
इस प्रेम को मैं अहिंसा कहता हूं। मैं यदि दुख में हूं तो हिंसा में हूं। मैं यदि आनंद में हो जाऊं तो अहिंसा में हो जाऊंगा। इसलिए स्मरणीय है कि अहिंसा की नहीं जाती है। वह क्रिया नहीं, सत्ता है। उसका संबंध कुछ करने से नहीं, कुछ होने से है। वह आचार-परिवर्तन नहीं, आत्म-क्रांति है। दुख से जो प्रवाहित होता है, वह हिंसा है। आनंद से जो प्रवाहित होता है, वह हिंसा-निरोध है। मैं क्या करता हूं, यह सवाल नहीं है। मैं क्या हूं, यह सवाल है।
मैं दुख हूं या आनंद हूं, यह प्रत्येक को अपने से पूछना है। उस उत्तर
पर ही सब कुछ निर्भर करता है। तथाकथित आनंद के पीछे झांकना है, भुलावों और आत्मवंचनाओं के आवरणों को उघाड़ कर देखना है। उसे, जो वस्तुतः है, जानने के लिए स्वयं के समक्ष नग्न होना जरूरी है। आवरणों के हटते ही दुख की अतल गहराइयां अनुभव होती हैं, घने अंधेरे और संताप का दुख अनुभव होता है। भय लगता है, वापस अपने आवरण को ओढ़ लेने का मन होता है। इस भांति भयभीत होकर जो अपने दुख को ढांक लेते हैं, वे कभी आनंद को उपलब्ध नहीं होते हैं। दुख को ढांकना नहीं, मिटाना है। और उसे मिटाने के लिए उसका साक्षात करना होता है। यह साक्षात ही तप है।
दुख का विस्मरण संसार में ले जाता है। दुख का साक्षात स्वयं में ले जाता है। जो उससे भागता है और उसे भूलना चाहता है वह मूर्च्छा को आमंत्रण देता है। वह स्वयं ही मूर्च्छा की खोज करता है। साधारणतः जिसे हम जीवन कहते हैं वह मूर्च्छा के अतिरिक्त और क्या है? और जिसे हम सफल जीवन कहते हैं वह सफलता पा लेने के सिवाय और क्या है? जीवन में सन्निहित दुख को जो धन की, या यश की, या काम की मादकता में भूलने में सफल मालूम होते हैं उन्हें हम सफल कहते हैं। पर सत्य कुछ अन्यथा ही है। ऐसे लोग जीवन को पाने में नहीं, गंवाने में सफल हो गए हैं। उन्होंने दुख को भुला कर आत्मघात ही कर लिया है।
दुख के प्रति जागरण आनंद को आत्मा में प्रतिष्ठित कर देता है। दुख-साक्षात अमूर्च्छा लाता है। उससे निद्रा टूटती है। जो व्यक्ति दुख या संताप से घबरा कर पलायन नहीं करता और किन्हीं सपनों में स्वयं को नहीं खो लेता है, वह अपने भीतर एक अभूतपूर्व चैतन्य को जाग्रत करता है, वह एक क्रांति का साक्षी बनता है। चैतन्य का यह जागरण उसे आमूल परिवर्तित कर देता है। वह अपने भीतर अंधेरे को टूटते हुए देखता है और देखता है कि उसकी चेतना के रंध्र-रंध्र से प्रकाश परिव्याप्त हो रहा है। इस प्रकाश में पहली बार वह स्वयं को जानता है। पहली बार उसे दिखता है कि वह कौन है! दुख-साक्षात के दबाव में ही आत्म-जागरण होता है। आंतरिक पीड़ा का आत्यंतिक बोध अपनी चरम स्थिति पर विस्फोट बन जाता है। जो इस सीमा तक पीड़ा से गुजरने को राजी होते हैं, वे पीड़ा के बाहर पहुंच जाते हैं। जो इतना साहस करता है, उसके लिए सत्य अपना द्वार खोल देता है।
मैं कौन हूं, यह जान लेना ही सत्य को जान लेना है। इस बोध के साथ ही दुख विसर्जित हो जाता है। दुख स्व-अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं अपने को जानते ही आनंद का अधिकारी हो जाता हूं। वह जो प्रत्येक के भीतर है, सच्चिदानंद है। उस ब्रह्म की अनुभूति आनंद है। ब्रह्म को, आत्मा को जानना सत्य को जानना है। सत्य को जानना आनंद को पा लेना है।
सत्य पाया जाता है, आनंद और प्रेम उसमें फलित होते हैं। जो अंतस में आनंद होता है, वही आचरण में अहिंसा होकर दिखता है। अहिंसा सत्यानुभूति का परिणाम है। वह सत्य के दीये का प्रकाश है।
समाधि के पौधे में सत्य के फूल लगते हैं और अहिंसा की सुगंध आकाश में परिव्याप्त हो जाती है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
बाईसवां प्रवचन

आनंद की दिशा

यह क्या हो गया है? मनुष्य को यह क्या हो गया है? मैं आश्चर्य में हूं
कि इतनी आत्म-विपन्नता, इतनी अर्थहीनता और इतनी घनी ऊब के बावजूद भी हम कैसे जी रहे हैं?
मैं मनुष्य की आत्मा को खोजता हूं तो केवल अंधकार ही हाथ आता है और मनुष्य के जीवन में झांकता हूं तो सिवाय मृत्यु के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।
जीवन है, लेकिन जीने का भाव नहीं! जीवन है, लेकिन एक बोझ की भांति! वह सौंदर्य, समृद्धि और शांति नहीं है। और आनंद न हो, आलोक न हो, तो निश्चय ही जीवन नाम-मात्र को ही जीवन रह जाता है। क्या हम जीवन को जीना ही तो नहीं भूल गए हैं? पशु-पक्षी और पौधे भी हमसे ज्यादा सघनता, समृद्धि और संगीत में जीते हुए मालूम होते हैं।
लेकिन शायद कोई कहे कि मनुष्य की समृद्धि तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है, फिर भी आप यह क्या कह रहे हैं? उत्तर में मैं कहूंगा, परमात्मा मनुष्य को उसकी तथाकथित समृद्धि से बचाए। वह समृद्धि नहीं, बस केवल दरिद्रता और दीनता को भुलाने का उपाय है। यह समृद्धि, शक्ति और प्राप्ति सब स्वयं से पलायन है।
मैं समृद्धि के वस्त्रों को उतार कर जब मनुष्य को देखता हूं तो उसकी आंतरिक दरिद्रता को देख कर हृदय बहुत विषाद से भर जाता है। क्या इस दरिद्रता को छिपाने और विस्मरण करने के लिए ही हम समृद्धि को नहीं ओढ़े हुए हैं?
जो थोड़ा सा भी विचार करेगा, वह सहज ही इस सत्य से परिचित हो जाएगा। आत्महीनता से पीड़ित व्यक्ति पद को खोजते हैं, और आत्म-दरिद्रता से ग्रसित धन और संपदा को। भीतर जो है, उससे पलायन करने को उसके विपरीत ही हम बाहर स्वयं को निर्मित करने लगते हैं। अहंकारी विनीत बन जाते हैं और अतिकामी ब्रह्मचर्य और साधुता में स्वयं को भुला लेना चाहते हैं।
मनुष्य जो भीतर होता है, साधारणतः ठीक उसके विपरीत ही वह बाहर स्वयं
को प्रकट करता है। इसलिए ही दरिद्र संपदा को खोजते हैं और जो संपदाशाली हैं वे दरिद्रता को वरण कर लेते हैं! क्या आपने दरिद्रों को सम्राट और सम्राटों को दरिद्र होते नहीं देखा है?
इसलिए यह न कहें कि मनुष्य की समृद्धि बढ़ गई है। वस्तुओं की समृद्धि
तो बढ़ी है पर मनुष्य की समृद्धि नहीं। वह और भी दरिद्र हो गया है। स्मरण रहे कि बाह्य समृद्धि को बढ़ाने की पागल दौड़ में वह निरंतर और भी दरिद्र ही होता जाएगा। क्योंकि इस दौड़ में वह यह भूलता ही जा रहा है कि एक और प्रकार की समृद्धि भी है, जो बाहर नहीं, स्वयं के भीतर ही उपलब्ध की जाती है। वस्तुओं का बढ़ता जाना ही एकमात्र विकास नहीं है। एक और विकास भी है जिसमें स्वयं मनुष्य भी बढ़ता है। निश्चय ही वही विकास वास्तविक है जिसमें मानवीय चेतना ऊर्ध्वगमन करती है और प्रगाढ़ता, सौंदर्य, संगीत और सत्य को उपलब्ध होती है।
मैं आपसे ही पूछना चाहता हूं कि क्या आप वस्तुओं के संग्रह से ही संतुष्ट होना चाहते हैं? या कि चेतना के विकास की भी प्यास आपके भीतर है? जो मात्र वस्तुओं में ही संतुष्टि सोचता है वह अंततः असंतोष के सिवाय
और कुछ भी नहीं पाता है, क्योंकि वस्तुएं तो केवल सुविधा ही दे सकती हैं। और निश्चय ही सुविधा और संतोष में बहुत भेद है। सुविधा कष्ट का अभाव है, संतोष आनंद की उपलब्धि है।
आपका हृदय क्या चाहता है? आपके प्राणों की प्यास क्या है? आपके श्वासों की तलाश क्या है? क्या कभी आपने अपने आपसे ये प्रश्न पूछे हैं? यदि नहीं, तो मुझे पूछने दें। यदि आप मुझसे पूछें तो मैं कहूंगा, उसे पाना चाहता हूं जिसे पाकर फिर कुछ और पाने को नहीं रह जाता। क्या मेरा ही उत्तर आपकी अंतरात्माओं में भी नहीं उठता है?

यह मैं आपसे ही नहीं पूछ रहा हूं, और भी हजारों लोगों से पूछता हूं। और पाता हूं कि सभी मानव-हृदय समान हैं और उनकी आत्यंतिक चाह भी समान ही है। आत्मा आनंद चाहती है--पूर्ण आनंद--क्योंकि तभी सभी चाहों का विश्राम आ सकता है। जहां चाह है, वहां दुख है; क्योंकि वहां अभाव है। आत्मा सब अभावों का अभाव चाहती है। अभाव का पूर्ण अभाव ही आनंद है, और वही स्वतंत्रता भी है, मुक्ति भी। क्योंकि जहां कोई भी अभाव है, वहीं बंधन है, सीमा है और परतंत्रता है। अभाव जहां नहीं है, वहीं परम मुक्ति में प्रवेश है।
आनंद मोक्ष है और मुक्ति आनंद है। निश्चय ही जो परम आकांक्षा है, वह बीजरूप में प्रत्येक में प्रसुप्त होनी ही चाहिए; क्योंकि जिस बीज में वृक्ष न छिपा हो, उसमें अंकुर भी नहीं आ सकता है। हमारी जो चरम कामना है, वही हमारा आत्यंतिक स्वरूप भी है; क्योंकि स्वरूप ही अपने पूर्ण विकास में आनंद और स्वतंत्रता में परिणत हो सकता है। स्वरूप ही सत्य है और उसकी पूर्ण उपलब्धि ही संतोष बनती है।
स्वरूप की संपदा को जो नहीं खोजता है, वह विपदाओं को ही संपदाएं समझता रहता है। निश्चय ही बाहर की कोई भी उपलब्धि अभावों का अभाव नहीं ला सकती है; क्योंकि बाहर की कोई भी संपत्ति भीतर के अभाव को कैसे भर सकेगी! अभाव आंतरिक है, तो बाहर की किसी भी विजय से उसका भराव नहीं होता है। इसलिए बाहर सब पाकर भी कुछ भी पाया सा प्रतीत नहीं होता है, और बाहर सब होकर भी व्यक्ति भीतर रिक्त ही बना रहता है।
बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुष्पूर है।
कैसा आश्चर्य है कि चाहे हम कुछ भी पा लें, फिर भी पाने पर जो प्रतीत होता है, वह उतना ही रहता है जितना पाने के पूर्व था। इसलिए सम्राटों और भिखारियों का अभाव समान ही होता है। उस तल पर उनमें कोई भी भेद नहीं है। फिर बाह्य संपत्ति की दिशा में जो मिला हुआ भी मालूम होता है, उसकी भी कोई सुरक्षा नहीं है, क्योंकि किसी भी क्षण वह छिन सकता या नष्ट हो सकता है। अंततः मृत्यु तो उसे छीन ही लेती है। जो छीना जा सकता है, उसे हमारे अंतर्हृदय कभी भी अपना न मान पाते हों तो आश्चर्य ही क्या!
इसलिए ही संपत्ति सुरक्षा नहीं देती है, हालांकि हम उसे सुरक्षा के लिए खोजते हैं। उलटे हमें ही उसकी सुरक्षा करनी होती है।
यह ठीक से समझ लें कि बाह्य संपत्ति, सुविधाओं और शक्तियों से न अभाव मिटता है, न असुरक्षा मिटती है, न भय मिटता है। उनके मिथ्या आश्वासन में ज्यादा से ज्यादा व्यक्ति उन्हें भुला कर रह सकता है। इसलिए ही संपत्ति को मद कहा है। उसकी मादकता में जीवन की वास्तविक स्थिति के दर्शन नहीं हो पाते हैं। और अभाव का इस भांति विस्मरण अभाव से भी बुरा है, क्योंकि उसके कारण अभाव को मिटाने की वास्तविक दिशा में दृष्टि नहीं उठ पाती है।
जीवन में जो अभाव है, वह किसी वस्तु, शक्ति या संपदा के न होने के कारण नहीं है, क्योंकि उन सबों के मिल जाने पर भी उसे मिटते नहीं देखा जाता है। जिनके पास सब कुछ है, क्या उनकी दरिद्रता से आप परिचित नहीं हैं? आपके पास जो कुछ है, क्या उससे जरा सी भी आपकी दरिद्रता और दीनता मिटी है?
संपत्ति में और संपत्ति के होने के भ्रम में बहुत भेद है। बाहर की संपत्ति, शक्ति, सुरक्षा--सभी उस वास्तविक संपत्ति की छायाएं भर हैं जो भीतर है।
अभावों का मूल कारण बाहर की किसी उपलब्धि का न होना नहीं, वरन स्वयं
की दृष्टि का बाहर होना है। इसलिए जो अभाव कुछ भी पाकर नहीं मिटते हैं, वे ही दृष्टि के भीतर मुड़ने पर पाए ही नहीं जाते हैं।
आत्मा का स्वरूप ही आनंद है। वह उसका कोई गुण नहीं, वरन उसका स्वरूप
ही है। आत्मा का आनंद से कोई संबंध नहीं है, वस्तुतः आत्मा ही आनंद है। वे दोनों एक ही सत्य के नाम हैं। सत्ता की दृष्टि से जो आत्मा है, अनुभूति की दृष्टि से वही आनंद है।
लेकिन उस आनंद को आत्मा मत समझ लेना जिसे साधारणतः आनंद कहा जाता है।
वह आनंद आनंद नहीं है, क्योंकि आनंद के मिलते ही फिर आनंद की सब खोज बंद हो जाती है। जिसके मिलने से खोज और बढ़ती है, जिसके पाने से तृष्णा और प्रबल होती है, जिसे पाकर जिसके खोने का भय पीड़ित करता है, वह आनंद का मिथ्या

आभास है, आनंद नहीं! निश्चय ही वह जल जल नहीं है जिससे प्यास और भी बढ़ जाती हो।
क्राइस्ट का वचन हैः आओ, मैं उस कुएं का पानी तुम्हें दूं जिसे पीने
से प्यास सदा को मिट जाती है।
हम सुख को ही आनंद समझ लेते हैं, जब कि सुख आनंद का आभास मात्र है, छाया
और परछाईं है। इस आभास और भ्रम में ही अधिक लोग जीवन को गंवा देते हैं और अंततः अतृप्ति और असंतोष के सिवाय और कुछ भी उन्हें हाथ नहीं लगता है। निश्चय ही यदि कोई मनुष्य झील के पानी में चांद के प्रतिबिंब को देख उसे खोजने को निकल पड़े तो अंततः वह क्या पा सकेगा? वस्तुतः उसकी खोज उसे जितना ज्यादा झील की गहराई में डुबाएगी उतना ही ज्यादा वह वास्तविक चांद से दूर निकलता जाएगा। सुख की खोज में ऐसे ही व्यक्ति आनंद से दूर निकल जाते हैं। सुख को खोजते-खोजते जो मिलता है वह सुख नहीं, दुख ही होता है।
क्या जो मैं कह रहा हूं उसकी सच्चाई आपको दिखाई नहीं पड़ती है? क्या आपका स्वयं का जीवन-अनुभव इस सत्य की गवाही नहीं है कि सुख की खोज अंततः दुख के तट पर ले आती है?
यही स्वाभाविक भी है, क्योंकि कोई परछाईं या प्रतिबिंब केवल अपने बाह्य रूप में ही मूल के समान है। वस्तुतः जो उसमें दिखाई पड़ता है, उससे बिल्कुल भिन्न ही उसमें पाया जाता है।
प्रत्येक सुख, आनंद का आश्वासन और आकर्षण देता है, क्योंकि वह आनंद की छाया है। लेकिन उसके पीछे जाने पर कुछ भी नहीं मिलता है, सिवाय असफलता, विषाद और दुख के। क्योंकि आपकी छाया को पकड़ कर भी मैं आपको कैसे पा सकता हूं? और फिर यदि आपकी छाया को पकड़ भी लूं तो भी मेरी मुट्ठी में क्या कुछ हो सकता है?
यह भी स्मरण दिला दूं कि प्रतिबिंब सदा ही विरोधी दिशा में बनते हैं। मैं एक दर्पण के सामने खड़ा हो जाऊं तो दर्पण में जहां मैं दिखाई पड़ रहा हूं वह ठीक उस जगह से विपरीत है जहां मैं हूं। ऐसा ही सुख भी है। वह अपने में मूलतः दुख है, क्योंकि वह आनंद का प्रतिबिंब है। आनंद तो भीतर है, इसलिए सुख बाहर मालूम होता है। आनंद आनंद है, इसलिए सुख वस्तुतः दुख है।
मैं जो कह रहा हूं, उसे किसी भी सुख का पीछा करके जान लो। प्रत्येक सुख अनिवार्यतः अंत में दुख में परिणत हो जाता है। और जो अंत में जैसा है, वह वस्तुतः आरंभ में भी वैसा होता है। हमारे पास आंखें गहरी नहीं होती हैं, इसीलिए जिसके दर्शन प्रारंभ में होने थे, उसके दर्शन अंत में हो पाते हैं। यह असंभव है कि जो अंत में प्रकट हो, वह आरंभ से ही उपस्थित न रहा हो। अंत तो आरंभ का ही विकास है। आरंभ में जो अप्रकट था वही अंत में प्रकट हो जाता है।
पर न केवल हमारी आंखें उथला देखती हैं, वरन अधिकांशतः तो वे देखती ही नहीं हैं। हम अक्सर उन्हीं रास्तों पर बार-बार चले जाते हैं, जिन पर बहुत बार पूर्व में जाकर भी दुख, पीड़ा और अवसाद को झेल चुके होते हैं। जहां दुख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पाया, उसी ओर फिर-फिर जाते हैं। क्यों? क्योंकि शायद उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग हमें दिखाई नहीं पड़ता है। इसलिए मैंने कहा कि हम न केवल धुंधला और उथला देखते हैं, बल्कि हम देखते ही नहीं हैं। बहुत कम लोग हैं जो जीवन में आंखों का उपयोग करते हों। आंखें सबके पास हैं, लेकिन आंखों के होते हुए भी अधिकांश अंधे बने रहते हैं। जिसने स्वयं के भीतर नहीं देखा है, उसने कभी अपनी आंखों का उपयोग ही नहीं किया है। केवल वही कह सकता है कि मैं आंख वाला हूं जिसने स्वयं को देखा है; क्योंकि जो स्वयं को ही नहीं देखता है, वह और क्या देखेगा?
आंखों की शुरुआत स्वयं को ही देखने से होती है। और जो स्वयं को देखता
है, दूसरे देखते हैं कि उसके चरण सुख की दिशा में नहीं जा रहे हैं। वह व्यक्ति आनंद की दिशा में चलना प्रारंभ कर देता है। सुख की दिशा स्वयं से संसार की ओर है; आनंद की दिशा संसार से स्वयं की ओर है।
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
तेईसवां प्रवचन

मांगो और मिलेगा

मैं यह क्या देख रहा हूं? यह कैसी निराशा तुम्हारी आंखों में है? और क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि जब आंखें निराश होती हैं, तब हृदय की वह अग्नि बुझ जाती है और वे सारी अभीप्साएं सो जाती हैं जिनके कारण मनुष्य मनुष्य है।
निराशा पाप है, क्योंकि जीवन उसकी धारा में निश्चय ही ऊर्ध्वगमन खो देता है।
निराशा पाप ही नहीं, आत्मघात भी है; क्योंकि जो श्रेष्ठतर जीवन को पाने में संलग्न नहीं है, उसके चरण अनायास ही मृत्यु की ओर बढ़ जाते हैं। यह शाश्वत नियम है कि जो ऊपर नहीं उठता, वह नीचे गिर जाता है; और जो आगे नहीं बढ़ता, वह पीछे धकेल दिया जाता है।
मैं जब किसी को पतन में जाते देखता हूं तो जानता हूं कि उसने पर्वत-शिखरों की ओर उठना बंद कर दिया होगा। पतन की प्रक्रिया विधेयात्मक नहीं है। घाटियों में जाना, पर्वतों पर न जाने का ही दूसरा पहलू है। वह उसकी ही निषेध छाया है।
और जब तुम्हारी आंखों में मैं निराशा देखता हूं तो स्वाभाविक ही है
कि मेरा हृदय प्रेम, पीड़ा और करुणा से भर जाए, क्योंकि निराशा मृत्यु की घाटियों में उतरने का प्रारंभ है।
आशा सूर्यमुखी के फूलों की भांति सूर्य की ओर देखती है। और निराशा? वह अंधकार से एक हो जाती है। जो निराश हो जाता है, वह अपनी अंतर्निहित विराट शक्ति के प्रति सो जाता है, और उसे विस्मृत कर देता है जो वह है, और जो वह हो सकता है। बीज जैसे भूल जाए कि उसे क्या होना है और मिट्टी के साथ ही एक होकर पड़ा रह जाए, ऐसा ही वह मनुष्य है जो निराशा में डूब जाता है।
और आज तो सभी निराशा में डूबे हुए हैं!
नीत्से ने कहा है, परमात्मा मर गया है। यह समाचार उतना दुखद नहीं है जितना कि आशा का मर जाना। क्योंकि आशा हो तो परमात्मा को पा लेना कठिन नहीं है और यदि आशा न हो तो परमात्मा के होने से कोई भेद नहीं पड़ता। आशा का आकर्षण ही मनुष्य को अज्ञात की यात्रा पर ले जाता है। आशा ही प्रेरणा है जो उसकी सोई शक्तियों को जगाती है और उसकी निष्क्रिय चेतना को सक्रिय करती है।
क्या मैं कहूं कि आशा की भाव-दशा ही आस्तिकता है?
और यह भी कि आशा ही समस्त जीवन-आरोहण का मूल उत्स और प्राण है?
पर आशा कहां है? मैं तुम्हारे प्राणों में खोजता हूं तो वहां निराशा
की राख के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलता। आशा के अंगारे न हों तो तुम जीओगे कैसे? निश्चय ही तुम्हारा यह जीवन इतना बुझा हुआ है कि मैं इसे जीवन भी कहने में असमर्थ हूं!
मुझे आज्ञा दो कि मैं कहूं कि तुम मर गए हो! असल में तुम कभी जीए ही नहीं। तुम्हारा जन्म तो जरूर हुआ था, लेकिन वह जीवन तक नहीं पहुंच सका! जन्म ही जीवन नहीं है। जन्म मिलता है, जीवन पाना होता है। इसलिए जन्म मृत्यु में ही छीन भी लिया जाता है, लेकिन जीवन को कोई भी मृत्यु नहीं छीन पाती है। जीवन जन्म नहीं है और इसलिए जीवन मृत्यु भी नहीं है। जीवन जन्म के भी पूर्व है और मृत्यु के भी अतीत है। जो उसे जानता है वही केवल भयों और दुखों के ऊपर उठ पाता है।
किंतु जो निराशा से घिरे हैं, वे उसे कैसे जानेंगे? वे तो जन्म और मृत्यु के तनाव में ही समाप्त हो जाते हैं!
जीवन एक संभावना है और उसे सत्य में परिणत करने के लिए साधना चाहिए। निराशा में साधना का जन्म नहीं होता, क्योंकि निराशा तो बांझ है और उसमें कभी भी किसी का जन्म नहीं होता है। इसीलिए मैंने कहा कि निराशा आत्मघाती है, क्योंकि उससे किसी भी भांति की सृजनात्मक शक्ति का आविर्भाव नहीं होता है।

मैं कहता हूं, उठो और निराशा को फेंक दो! उसे तुम अपने ही हाथों से ओढ़े बैठे हो। उसे फेंकने के लिए और कुछ भी नहीं करना है सिवाय इसके कि तुम उसे फेंकने को राजी हो जाओ। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई उसके लिए जिम्मेवार नहीं है।
मनुष्य जैसा भाव करता है, वैसा ही हो जाता है। उसके ही भाव उसका सृजन करते हैं। वही अपना भाग्य-विधाता है। विचार--विचार--विचार, और उनका सतत आवर्तन ही अंततः वस्तुओं और स्थितियों में घनीभूत हो जाता है।
स्मरण रहे कि तुम जो भी हो वह तुमने ही अनंत बार चाहा है, विचारा है और उसकी भावना की है। देखो, स्मृति में खोजो, तो निश्चय ही जो मैं कह रहा हूं उस सत्य के तुम्हें दर्शन होंगे। और जब यह सत्य तुम्हें दिखेगा तो तुम स्वयं के आत्म-परिवर्तन की कुंजी को पा जाओगे।
अपने ही द्वारा ओढ़े भावों और विचारों को उतार कर अलग कर देना कठिन नहीं होता है। वस्त्रों को उतारने में भी जितनी कठिनता होती है उतनी भी उन्हें उतारने में नहीं होती है, क्योंकि वे तो हैं भी नहीं। सिवाय तुम्हारे ख्याल के उनकी कहीं भी कोई सत्ता नहीं है। हम अपने ही भावों में अपने ही हाथों से कैद हो जाते हैं, अन्यथा वह जो हमारे भीतर है, सदा, सदैव ही स्वतंत्र है।
क्या निराशा से बड़ी और कोई कैद है?
नहीं! क्योंकि पत्थरों की दीवारें जो नहीं कर सकतीं, वह निराशा करती है। दीवारों को तोड़ना संभव है, लेकिन निराशा तो मुक्त होने की आकांक्षा को ही खो देती है। निराशा से मजबूत जंजीरें भी नहीं हैं, क्योंकि लोहे की जंजीरें तो मात्र शरीर को ही बांधती हैं, निराशा तो आत्मा को भी बांध लेती है।
निराशा की इन जंजीरों को तोड़ दो! उन्हें तोड़ा जा सकता है, इसीलिए ही मैं तोड़ने को कह रहा हूं। उनकी सत्ता स्वप्न सत्ता मात्र है। उन्हें तोड़ने के संकल्प मात्र से ही वे टूट जाएंगी। जैसे दीये के जलते ही अंधकार टूट जाता है, वैसे ही संकल्प के जागते ही स्वप्न टूट जाते हैं।
और फिर निराशा के खंडित होते ही जो आलोक चेतना को घेर लेता है, उसका ही नाम आशा है।
निराशा स्वयं आरोपित दशा है। आशा स्वभाव है, स्वरूप है।
निराशा मानसिक आवरण है, आशा आत्मिक आविर्भाव।
मैं कह रहा हूं कि आशा स्वभाव है। क्यों? क्योंकि यदि ऐसा न हो तो जीवन-विकास की ओर सतत गति और आरोहण की कोई संभावना न रह जाए। बीज अंकुर बनने को तड़पता है, क्योंकि कहीं उसके प्राणों के किसी अंतरस्थ केंद्र पर आशा का आवास है। सभी प्राण अंकुरित होना चाहते हैं और जो भी है वह विकसित और पूर्ण होना चाहता है। अपूर्ण को पूर्ण के लिए अभीप्सा आशा के अभाव में कैसे हो सकती है? और पदार्थ की परमात्मा की ओर यात्रा क्या आशा के बिना संभव है?
मैं नदियों को सागर की ओर दौड़ते देखता हूं तो मुझे उनके प्राणों में आशा का संचार दिखाई पड़ता है। और जब मैं अग्नि को सूर्य की ओर उठते देखता हूं तब भी उन लपटों में छिपी आशा के मुझे दर्शन होते हैं। और क्या यह ज्ञात नहीं है कि छोटे-छोटे बच्चों की आंखों में आशा के दीप जलते हैं? और पशुओं की आंखों में भी और पक्षियों के गीतों में भी?
जो भी जीवित है, वह आशा से जीवित है; और जो भी मृत है, वह निराशा से मृत है।
यदि हम छोटे बच्चों को देखें, जिन्हें अभी समाज, शिक्षा और सभ्यता ने विकृत नहीं किया है, तो बहुत से जीवन-सूत्र हमें दिखाई पड़ेंगे। सबसे पहली बात दिखाई पड़ेगी--आशा, दूसरी बात--जिज्ञासा, और तीसरी बात--श्रद्धा। निश्चय ही ये गुण स्वाभाविक हैं। उन्हें अर्जित नहीं करना होता है। हां, हम चाहें तो उन्हें खो अवश्य सकते हैं। फिर भी हम उन्हें बिल्कुल ही नहीं खो सकते हैं, क्योंकि जो स्वभाव है वह नष्ट नहीं होता। स्वभाव केवल आच्छादित ही हो सकता है, विनष्ट नहीं। और जो स्वभाव नहीं है, वह भी केवल वस्त्र ही बन सकता है, अंतस कभी नहीं।

इसलिए मैं कहता हूं कि वस्त्रों को अलग करो और उसे देखो जो तुम स्वयं हो। सब वस्त्र बंधन हैं। और निश्चय ही परमात्मा निर्वस्त्र है। क्या अच्छा न हो कि तुम भी निर्वस्त्र हो जाओ?
मैं उन वस्त्रों की बात नहीं कर रहा हूं जो कपास के धागों से बनते हैं। उन्हें छोड़ कर तो बहुत से व्यक्ति निर्वस्त्र हो जाते हैं और फिर भी वही बने रहते हैं जो वे वस्त्रों में थे, कपास में थे। कपास के कमजोर धागे नहीं, निषेधात्मक भावनाओं की लौहशृंखलाएं तुम्हारे बंधन हैं। उन्हें जो छोड़ता है वही उस निर्दोष नग्नता को उपलब्ध होता है जिसकी ओर महावीर ने इशारा किया है।
सत्य को पाने को, स्वयं को जानने को, स्वरूप में प्रतिष्ठित होने को,
सब वस्त्रों को छोड़ नग्न हो जाना आवश्यक है। और निराशा के वस्त्र सबसे पहले छोड़ने होंगे, क्योंकि उसके बाद ही दूसरे वस्त्र छोड़े जा सकते हैं। परमात्मा की उपलब्धि के पूर्व यदि तुम्हारे चरण कहीं भी रुकें तो जानना कि निराशा का विष कहीं न कहीं तुम्हारे भीतर बना ही हुआ है। उससे ही प्रमाद और आलस्य उत्पन्न होता है।
संसार में विश्राम के स्थलों को ही प्रमादवश गंतव्य समझने की भूल हो जाती है। परमात्मा के पूर्व और परमात्मा के अतिरिक्त और कोई गंतव्य नहीं है। इसे अपनी समग्र आत्मा को कहने दो। कहने दो कि परमात्मा के अतिरिक्त और कोई चरम विश्राम नहीं, क्योंकि परमात्मा में ही पूर्णता है।
परमात्मा के पूर्व जो रुकता है, वह स्वयं का अपमान करता है; क्योंकि
वह जो हो सकता था, उसके पूर्व ही ठहर गया होता है।
संकल्प और साध्य जितना ऊंचा हो, उतनी ही गहराई तक स्वयं की सोई शक्तियां जागती हैं। साध्य की ऊंचाई ही तुम्हारी शक्ति का परिमाण है। आकाश को छूते वृक्षों को देखो! उनकी जड़ें अवश्य ही पाताल को छूती होंगी। तुम भी यदि आकाश छूने की आशा और आकांक्षा से आंदोलित हो जाओगे तो निश्चय ही जानो कि तुम्हारे गहरे से गहरे प्राणों में सोई हुई शक्तियां जाग जाएंगी। जितनी तुम्हारी अभीप्सा की ऊंचाई होती है, उतनी ही तुम्हारी शक्ति की गहराई भी होती है। क्षुद्र की आकांक्षा चेतना को क्षुद्र बनाती है। तब यदि मांगना ही है तो परमात्मा को मांगो। वह जो अंततः तुम होना चाहोगे, प्रारंभ से ही उसकी ही तुम्हारी मांग होनी चाहिए। क्योंकि प्रथम ही अंततः अंतिम उपलब्धि बनता है।
मैं जानता हूं कि तुम ऐसी परिस्थितियों में निरंतर ही घिरे हो जो प्रतिकूल हैं और परमात्मा की ओर उठने से रोकती हैं। लेकिन ध्यान में रखना कि जो परमात्मा की ओर उठे, वे भी कभी ऐसी ही परिस्थितियों से घिरे थे। परिस्थितियों का बहाना मत लेना। परिस्थितियां नहीं, वह बहाना ही असली अवरोध बन जाता है। परिस्थितियां कितनी ही प्रतिकूल हों, वे इतनी प्रतिकूल कभी भी नहीं हो सकती हैं कि परमात्मा के मार्ग में बांधा बन जावें! वैसा होना असंभव है। वह तो वैसा ही होगा जैसे कि कोई कहे कि अंधेरा इतना घना है कि प्रकाश के जलाने में बाधा बन गया है।
अंधेरा कभी इतना घना नहीं होता और न ही परिस्थितियां इतनी प्रतिकूल होती हैं कि वे प्रकाश के आगमन में बाधा बन सकें। तुम्हारी निराशा के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। वस्तुतः तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
उसे बहुत मूल्य कभी मत दो जो आज है और कल नहीं होगा। जिसमें पल-पल परिवर्तन है उसका मूल्य ही क्या? परिस्थितियों का प्रवाह तो नदी की भांति है। उसे देखो, उस पर ध्यान दो, जो नदी की धार में भी अडिग चट्टान की भांति स्थिर है। वह कौन है? वह तुम्हारी चेतना है, वह तुम्हारी आत्मा है, वह तुम अपने वास्तविक स्वरूप में स्वयं हो! सब बदल जाता है, बस वही अपरिवर्तित है। उस ध्रुव बिंदु को पकड़ो और उस पर ठहरो।
लेकिन तुम तो आंधियों के साथ कांप रहे हो और लहरों के साथ थरथरा रहे हो। क्या वह शांत और अडिग चट्टान तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती है जिस पर तुम खड़े हो और जो तुम हो? उसकी स्मृति को लाओ। उसकी ओर आंखें उठते ही निराशा आशा में परिणत हो जाती है और अंधकार आलोक बन जाता है।

स्मरण रखना कि जो समग्र हृदय से, आशा और आश्वासन से शक्ति और संकल्प से, प्रेम और प्रार्थना से, स्वयं की सत्ता का द्वार खटखटाता है, वह कभी भी असफल नहीं लौटता है; क्योंकि प्रभु के मार्ग पर असफलता है ही नहीं। पाप के मार्ग पर सफलता असंभव और प्रभु के मार्ग पर असफलता असंभव! पाप के मार्ग पर सफलता हो तो समझना कि भ्रम है और प्रभु के मार्ग पर असफलता हो तो समझना कि परीक्षा है।
वस्तुतः प्रभु की उपलब्धि का द्वार कभी बंद ही नहीं है। हम अपनी ही निराशा में अपनी ही आंख बंद कर लेते हैं, यह बात दूसरी है। निराशा को हटाओ और देखो, वह कौन सामने खड़ा है! क्या यही वह सूर्य नहीं है जिसकी खोज थी? क्या यही वह प्रिय नहीं है जिसकी प्यास थी?
क्राइस्ट ने कहा है, मांगो और मिलेगा। खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे।
वही मैं पुनः कहता हूं। वही क्राइस्ट के पहले कहा गया था, वही मेरे बाद भी कहा जाएगा। धन्य हैं वे लोग जो द्वार खटखटाते हैं! और आश्चर्य है उन लोगों पर जो प्रभु के द्वार पर ही खड़े हैं और आंख बंद किए हैं और रो रहे हैं!
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
चौबीसवां प्रवचन

प्रेम ही प्रभु है

मैं मनुष्य को रोज विकृति से विकृति की ओर जाते देख रहा हूं, उसके भीतर कोई आधार टूट गया है। कोई बहुत अनिवार्य जीवन-स्नायु जैसे नष्ट हो गए हैं; और हम संस्कृति में नहीं, विकृति में जी रहे हैं।
इस विकृति और विघटन के परिणाम व्यक्ति से समष्टि तक फैल गए हैं, परिवार से लेकर पृथ्वी की समग्र परिधि तक उसकी बेसुरी प्रतिध्वनियां सुनाई पड़ रही हैं। जिसे हम संस्कृति कहें, वह संगीत कहीं भी सुनाई नहीं पड़ता है।
मनुष्य के अंतस के तार सुव्यवस्थित हों तो वह संगीत भी हो सकता है। अन्यथा उससे बेसुरा कोई वाद्य नहीं है।
फिर जैसे झील में एक जगह पत्थर के गिरने से लहर-वृत्त दूर कूल-किनारों
तक फैल जाते हैं, वैसे ही मनुष्य के चित्त में उठी हुई संस्कृति या विकृति की लहरें भी सारी मनुष्यता के अंतस्थल में आंदोलन उत्पन्न करती हैं। मनुष्य, जो व्यक्ति मालूम होता है, एकदम व्यक्ति ही नहीं है, उसकी जड़ें समष्टि तक फैली हुई हैं और इसलिए उसका रोग या स्वास्थ्य बहुत संक्रामक होता है।
हमारी सदी किस रोग से पीड़ित है? बहुत से रोग गिनाए जाते हैं। मैं भी एक रोग की ओर इशारा करना चाहता हूं, और मेरी दृष्टि में शेष सारे रोगों की जड़ में वही रोग है। शेष रोग उस एक मूल रोग के ही परिणाम हैं। मनुष्य जब भी इस मूल रोग से ग्रसित होता है, तभी वह आत्मघात और विनाश में लग जाता है। उस मूल रोग को मैं क्या नाम दूं? उसे नाम देना आसान नहीं है। फिर भी मैं कहना चाहूंगा कि वह रोग हैः मनुष्य के हृदय में प्रेम-स्रोत का सूख जाना। हम प्रेम के अभाव से पीड़ित हैं। हमारे हृदय की धड़कनों में हृदय नहीं है और केवल फेफड़े ही धड़क रहे हैं।
प्रेम के अभाव से बड़ी दुर्घटना और दुर्भाग्य मनुष्य के जीवन में दूसरा नहीं है। क्योंकि वह जीता है, किंतु जीवन से उसके संबंध विच्छिन्न हो जाते हैं। प्रेम हमें समग्र से जोड़ता है, प्रेम के अभाव में हम सत्ता से प्रथक और अकेले हो जाते हैं।
आज का मनुष्य अपने को अकेला और अजनबी अनुभव करता है। वह प्रेम के बिना निश्चय ही अकेला है। प्रेम के अभाव में प्रत्येक स्वयं में बंद अणु है, जिससे दूसरे तक न कोई द्वार है, न सेतु है। आज ऐसा ही हुआ है। हम सब अपने में बंद हैं। यह अपने में बंद होना अपनी कब्रों में होने से भिन्न नहीं है। और हम जीते जी मुर्दे हो गए हैं।
क्या जो मैं कह रहा हूं उसका सत्य आपको दिखाई नहीं पड़ता है? क्या आप जीवित हैं और अपने भीतर प्रेम की शक्ति का प्रवाह आपको अनुभव होता है? यदि वह प्रवाह आपके रक्त में नहीं है और उसकी धड़कनें हृदय में शून्य
हो गई हैं, तो समझें कि आप जीवित नहीं हैं।
प्रेम ही जीवन है और प्रेम के अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं है।
मैं एक यात्रा में था। वहां किसी ने पूछा था, मनुष्य की भाषा में सबसे मूल्यवान शब्द कौन सा है? मैंने कहा था, प्रेम! तो पूछने वाले मित्र चौंके थे। उन्होंने सोचा होगा कि मैं कहूंगा आत्मा या परमात्मा। उनकी अपेक्षा भी स्वाभाविक ही थी। किंतु उनकी उलझन को देख कर मुझे बहुत हंसी आ गई थी और मैंने कहा था, प्रेम ही प्रभु है।
निश्चय ही इस पृथ्वी पर जो किरण शरीर और मन के पार से आती है, वह किरण प्रेम की है। प्रेम संसार में अकेली ही अपार्थिव घटना है। वह अद्वितीय है। मनुष्य का सारा दर्शन, सारा काव्य, सारा धर्म उससे ही अनुप्रेरित है। मानवीय जीवन में जो श्रेष्ठ और सुंदर है, वह सब प्रेम से ही जन्म और जीवन पाता है।
इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम ही प्रभु है। प्रेम की आशा-किरण के सहारे
ही प्रभु के आलोकित लोक तक पहुंच जाता है। प्रभु को सत्य कहने से भी

ज्यादा प्रीतिकर उसे प्रेम कहना है। प्रेम में जो रस, जो जीवंतता, संगीत और सौंदर्य है, वह सत्य में नहीं है। सत्य में वह निकटता नहीं है जो प्रेम में है। सत्य जानने की ही बात है, प्रेम होने की भी! प्रेम का विकास और पूर्णता ही अंततः प्रभु-प्रवेश में परिणत हो जाता है।
मैंने सुना है कि आचार्य रामानुज से किसी व्यक्ति ने धर्म-जीवन में दीक्षित किए जाने की प्रार्थना की थी। उन्होंने उससे पूछा था, मित्र, क्या तुम किसी को प्रेम करते हो? वह बोला था, नहीं, मेरा तो किसी से प्रेम नहीं है। मैं तो प्रभु को पाना चाहता हूं। यह सुन कर रामानुज ने दुखी हो उससे कहा था, फिर मैं असमर्थ हूं। मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सकता हूं। प्रेम तुम्हारे भीतर होता तो उसे परिशुद्ध कर प्रभु की ओर ले जाया जा सकता था। लेकिन तुम तो कहते हो कि वह तुममें है ही नहीं!
प्रेम का अभाव सबसे बड़ी दरिद्रता है। जिसके भीतर प्रेम नहीं है, वह दीन है। वैसा व्यक्ति अपने हाथों नरक में है। श्वास-श्वास का प्रेम से परिपूरित हो जाना ही मैंने स्वर्ग जाना है। वैसा व्यक्ति जहां होता है वह स्वर्ग होता है।
मनुष्य अदभुत पौधा है। उसमें विष और अमृत दोनों के फूल लगने की संभावना है। वह स्वयं के चित्त को यदि घृणा और अप्रेम से परिपोषित करे तो विष के फूलों को उपलब्ध हो जाता है और वह चाहे तो प्रेम को स्वयं में जगा कर अमृत के फूलों को पा सकता है।
मैं सबकी सत्ता से स्वयं को पृथक और विरोधी मान कर अपने जीवन को ढालूं
तो परिणाम में अप्रेम फलित होगा। ऐसा जीवन ही अधार्मिक जीवन है। वह असत्य भी है। क्योंकि वस्तुतः हमारा होना सागर पर लहरों के होने से भिन्न नहीं है। विश्व-सत्ता से कोई सत्तावान पृथक नहीं है। सबके प्राणों का आदि स्रोत उसी केंद्र में है। उसे चाहें तो हम किसी नाम से पुकारें। नामों से कोई भेद नहीं पड़ता। सत्ता एक और अद्वय है।
और यदि मैं अपने जीवन को सर्व के विरोध में नहीं, वरन सर्व के स्वीकार
और सहयोग में ढालूं, तो परिणाम में प्रेम फलित होता है। प्रेम इस बोध का परिणाम है कि मैं सर्व सत्ता से पृथक और अन्य नहीं हूं, मैं उसमें हूं और वह मुझमें है। ऐसा जीवन धार्मिक जीवन है।
एक सूफी कथा मुझे स्मरण आती है।
एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार को खटखटाया। भीतर से पूछा गया, कौन है? उसने कहा, मैं हूं तुम्हारा प्रेमी। प्रत्युत्तर में उसे सुन पड़ा, इस घर में दो के लायक स्थान नहीं है।
बहुत दिनों बाद वह पुनः उसी द्वार पर लौटा। उसने फिर द्वार खटखटाया। फिर वही प्रश्न कि कौन? इस बार उसने कहा, तू ही है! और वे बंद द्वार उसके लिए खुल गए थे।
प्रेम के द्वार केवल उसके लिए ही खुलते हैं जो अपने मैं को छोड़ने को तैयार हो जाता है। किसी एक व्यक्ति के प्रति यदि कोई अपने मैं को छोड़ देता है तो लोक में उसे प्रेम कहते हैं; और जब कोई सर्व के प्रति अपने मैं को छोड़ देता है तो वही प्रेम प्रार्थना बन जाता है। वैसा प्रेम ही भक्ति है। प्रेम काम नहीं है। जो काम को ही प्रेम समझ लेते हैं, वे प्रेम से वंचित रह जाते हैं। काम प्रेम का आभास और भ्रम है। वह प्रकृति का सम्मोहन है। उस सम्मोहन के यांत्रिक माध्यम से प्रकृति संतति-उत्पादन का अपना व्यापार चलाती है। प्रेम का आयाम उससे बहुत भिन्न और बहुत ऊपर है। वस्तुतः प्रेम जितना विकसित होता है, काम उतना ही विलीन होता है। वह ऊर्जा जो काम में प्रकट होती है, उसका संपरिवर्तन प्रेम में हो जाता है। प्रेम उस शक्ति का ही सृजनात्मक ऊर्ध्वीकरण है। और इसलिए जब प्रेम पूर्ण होता है, तो कामशून्यता अनायास ही फलित हो जाती है। प्रेम के ऐसे जीवन का नाम ही ब्रह्मचर्य है। काम से जिसे मुक्त होना हो उसे प्रेम को विकसित करना चाहिए। काम के दमन से कभी कोई काम से मुक्त नहीं होता। उससे मुक्ति तो केवल प्रेम में ही है।
मैंने कहा, प्रेम प्रभु है। यह अंतिम सत्य है। अब यह भी कहने दें कि प्रेम परिवार है। यह प्रथम सीढ़ी है। और स्मरण रहे कि प्रथम के अभाव में अंतिम का कोई आधार नहीं है।

प्रेम से परिवार बनता है और प्रेम के विकास से परिवार बड़ा होता जाता है। फिर जब उस परिवार के बाहर कुछ भी नहीं रह जाता है, तो वही प्रभु हो जाता है।
प्रेम के अभाव में मनुष्य निपट निजता में रह जाता है। उसका कोई परिवार नहीं होता है। वह स्व रह जाता है और पर से उसका कोई सेतु नहीं रह जाता। यह क्रमिक मृत्यु है, क्योंकि जीवन तो पारस्परिकता में है, जीवन तो संबंधों में है।
प्रेम में स्व और पर का अतिक्रमण है। और जहां न स्व है, न पर है, वहीं सत्य है।
सत्य के लिए जो प्यासे हैं उन्हें प्रेम साधना होगा--उस क्षण तक जब तक
कि प्रेमी और प्रिय न मिट जाएं और केवल प्रेम ही शेष न रह जाए। प्रेम की ज्योति जब विषय और विषयी के धुएं से मुक्त हो निर्धूम जलती है, तभी मोक्ष है, तभी निर्वाण है।
मैं उस परम मुक्ति के लिए सभी को आमंत्रित करता हूं।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
पच्चीसवां प्रवचन

नीति, भय और प्रेम

सोचता हूं कि क्या बोलूं? मनुष्य के संबंध में विचार करते ही मुझे उन हजार आंखों का स्मरण आता है जिन्हें देखने और जिनमें झांकने का मुझे मौका मिला है। उनकी स्मृति आते ही मैं दुखी हो जाता हूं। जो उनमें देखा है वह हृदय में कांटों की भांति चुभता है। क्या देखना चाहता था और क्या देखने को मिला! आनंद को खोजता था, पाया विषाद। आलोक को खोजता था, पाया अंधकार। प्रभु को खोजता था, पाया पाप।
मनुष्य को यह क्या हो गया है? उसका जीवन जीवन भी तो नहीं मालूम होता। जहां शांति न हो, संगीत न हो, शक्ति न हो, आनंद न हो, वहां जीवन भी क्या होगा? आनंदरिक्त, अर्थशून्य अराजकता को जीवन कैसे कहें? जीवन नहीं, बस एक दुखस्वप्न ही उसे कहा जा सकता है--एक मूर्च्छा, एक बेहोशी और पीड़ाओं की एक लंबीशृंखला। निश्चय ही यह जीवन नहीं, बस एक लंबी बीमारी है जिसकी परिसमाप्ति मृत्यु में हो जाती है। हम जी भी नहीं पाते, और मर जाते हैं। जन्म पा लेना एक बात है, जीवन को पा लेने का सौभाग्य बहुत कम मनुष्यों को उपलब्ध हो पाता है।
जीवन को केवल वे ही उपलब्ध होते हैं जो स्वयं के और सर्व के भीतर परमात्मा को अनुभव कर लेते हैं। इस अभाव में हम केवल शरीर मात्र हैं। और शरीर जड़ है, जीवन नहीं। स्वयं को जो शरीर मात्र ही जानता है, वह जीवित होकर भी जीवन को नहीं जानता है। जीवन की अनादि, अनंत धारा से अभी उसका परिचय नहीं हुआ। और उस परिचय के अभाव में जीवन आनंद नहीं हो पाता है। आत्म-अज्ञान ही दुख है। आत्म-ज्ञान हो तो मनुष्य का हृदय आलोक बन जाता है, और वह न हो तो उसका पथ अंधकारपूर्ण होगा ही। वह उसमें हो तो वह दिव्य हो जाता है, और वह न हो तो वह पशुओं से भी बदतर पशु है।
शरीर के अतिरिक्त और शरीर को अतिक्रमण करता हुआ अपने भीतर जो किसी भी सत्य का अनुभव नहीं कर पाते हैं, उनके जीवन पशु-जीवन से ऊपर नहीं उठ सकते। शरीर के मृत्तिका घेरे से ऊपर उठती हुई जीवन-ज्योति जब अनुभव में आती है, तभी ऊर्ध्वगमन प्रारंभ होता है। उसके पूर्व जो प्रकृति प्रतीत होती थी, वही उसके बाद परमात्मा में परिणत हो जाती है।
फिर जब स्वयं के भीतर अशांति हो, दुख हो, संताप हो, अंधकार और जड़ता हो,
तो स्वभावतः उनके ही कीटाणु हमसे बाहर भी विस्तीर्ण होने लगते हैं। भीतर जो हो वह बाहर भी फैलने लगता है। अंतस ही तो आचरण बनता है। आचरण में हम उसी को बांटते हैं, जिसे अंतस में पाते हैं। अंतस ही अंततः आचरण है। हम जो भीतर हैं, वही हमारे अंतर्संबंधों में बाहर परिव्याप्त हो जाता है। प्रत्येक प्रतिक्षण स्वयं को उलीच रहा है। विचार में, वाणी में, व्यवहार में हम स्वयं को ही दान कर रहे हैं।
इस भांति व्यक्तियों के हृदय में जो उठता है, वही समाज बन जाता है। समाज में विष हो तो उसके बीज व्यक्तियों में छिपे होंगे; और समाज को अमृत की चाह हो तो उसे व्यक्तियों में ही बोना होगा। व्यक्तियों के हृदय आनंद से भरे हों तो उनके अंतर्संबंध करुणा, मैत्री और प्रीति से भर जाते हैं; और दुख से भरे हों तो हिंसा, विद्वेष और घृणा से। उनके भीतर जीवन-संगीत बजता हो तो उनके बाहर भी संगीत और सुगंध फैलती है; और उनके भीतर दुख और संताप और रुदन हो तो उन्हीं की प्रतिध्वनियां उनके विचार और आचार में भी सुनी जाती हैं। यह स्वाभाविक ही है। आनंद को उपलब्ध व्यक्ति का जीवन ही प्रेम बन सकता है।
प्रेम ही नीति है, अप्रेम अनीति है। प्रेम में जो जितना गहरा प्रविष्ट होता है वह प्रभु में उतना ही ऊपर उठ जाता है; और जो प्रेम में जितना विपरीत होता है वह पशु में उतना ही पतित। प्रेम पवित्र जीवन का, नैतिक जीवन का मूलाधार है।
क्राइस्ट का वचन है, प्रेम ही प्रभु है।

संत अगस्ताइन से किसी ने पूछा, मैं क्या करूं, कैसे जीऊं कि मुझसे पाप
न हो?
तो उन्होंने कहा था, प्रेम करो! और फिर तुम जो भी करोगे वह सब ठीक होगा, शुभ होगा।
प्रेम, इस एक शब्द में वह सब अणु रूप में छिपा है जो मनुष्य को पशु से प्रभु तक ले जाता है। लेकिन स्मरण रहे कि प्रेम केवल तभी संभव है जब भीतर आनंद हो। प्रेम को ऊपर से आरोपित नहीं किया जा सकता। वह कोई वस्त्र नहीं है जिसे हम ऊपर से ओढ़ सकें। वह तो हमारी आत्मा है। उसका तो आविष्कार करना होता है। उसे ओढ़ना नहीं, उघाड़ना होता है; उसका आरोपण नहीं, आविर्भाव होता है।
प्रेम किया नहीं जाता है। वह तो एक चेतना अवस्था है जिसमें हुआ जाता है। प्रेम कर्म नहीं है, स्वभाव हो तभी सत्य होता है। और तभी वह दिव्य जीवन का आधार भी बनता है।
यह भी स्मरण रहे कि सहज स्फुरित स्वभाव-रूप प्रेम के अभाव में जो नैतिक जीवन होता है, वह दिव्यता की ओर ले जाने में असमर्थ है। क्योंकि वस्तुतः वह सत्य नहीं है, उसके आधार किसी न किसी रूप में भय और प्रलोभन पर रखे होते हैं। फिर चाहे वे भय या प्रलोभन लौकिक हों या पारलौकिक।
स्वर्ग के प्रलोभन या नरक के भय से यदि कोई नैतिक और पवित्र है तो उसे
न तो मैं नैतिक कहता हूं और न ही पवित्र। वह सौदे में हो सकता है, लेकिन सत्य में नहीं।
नैतिक जीवन तो बेशर्त जीवन है। उसमें पाने का प्रश्न ही नहीं है। वह
तो आनंद और प्रेम से स्फुरित सहचर्या है। उसकी उपलब्धि तो उसमें ही है, उसके बाहर नहीं। सूर्य से जैसे प्रकाश झरता है, वैसे ही आनंद से पवित्रता और पुण्य प्रवाहित होते हैं।
एक अदभुत दृश्य मुझे याद आ रहा है। संत राबिया किसी बाजार से दौड़ी जा रही थी। उसके एक हाथ में जलती हुई मशाल थी और दूसरे में पानी से भरा हुआ घड़ा। लोगों ने उसे रोका और पूछा, यह घड़ा और मशाल किसलिए है? और तुम कहां दौड़ी जा रही हो? राबिया ने कहा था, मैं स्वर्ग को जलाने और नरक को डुबाने जा रही हूं, ताकि तुम्हारे धार्मिक होने के मार्ग की बाधाएं नष्ट हो जावें।
मैं भी राबिया से सहमत हूं और स्वर्ग को जलाना और नरक को डुबाना चाहता हूं। वस्तुतः भय और प्रलोभन पर कोई वास्तविक नैतिक जीवन न कभी भी खड़ा हुआ है और न हो सकता है। उस भांति तो नैतिक जीवन का केवल एक मिथ्या आभास ही पैदा हो जाता है। और उससे आत्मविकास नहीं, आत्मवंचना ही होती है।
इस तरह के मिथ्या नैतिक जीवन के आधार को मनुष्य के ज्ञान के विकास ने नष्ट कर दिया है और परिणाम में अनीति नग्न और स्पष्ट हो गई है। स्वर्ग और नरक की मान्यताएं थोथी मालूम होने लगी हैं और परिणामतः उनका प्रलोभन और भय भी शून्य हो गया है।
आज की अनैतिकता और अराजकता का मूल कारण यही है। नीति नहीं, नीति का आभास टूट गया है। और यह शुभ ही है कि हम एक भ्रम से बाहर हो गए हैं। लेकिन एक बड़ा उत्तरदायित्व भी आ गया है। वह है सम्यक, नैतिक जीवन के लिए नया आधार खोजने का। वह आधार भी सदा से है।
महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या कृष्ण की अंतर्दृष्टियां मिथ्या नैतिक आभासों पर नहीं खड़ी हैं। भय या प्रलोभन पर नहीं, प्रेम, ज्ञान और आनंद पर ही उसकी नींवें रखी गई हैं। प्रेम-आधारित नीति का पुनरुद्धार करना है। उसके अभाव में मनुष्य के नैतिक जीवन का अब कोई भविष्य नहीं है।
भय पर आधारित नीति मर गई है। प्रेम पर आधारित नीति का जन्म न हो तो हमारे सामने अनैतिक होने के अतिरिक्त और विकल्प नहीं रह जाता। जबरदस्ती मनुष्य को नैतिक नहीं बनाया जा सकता है। उसकी बौद्धिक प्रौढ़ता अंधविश्वासों को अंगीकार नहीं कर सकती है।
मैं प्रेम में द्वार देखता हूं। उस द्वार से, ध्वस्त हुई पवित्रता और नैतिकता का पुनर्जन्म हो सकता है।

लेकिन मनुष्य में सर्व के प्रति प्रेम का जन्म तभी होता है जब स्वयं में आनंद का जन्म हो। इसलिए असली प्रश्न आनंदानुभूति है। अंतस में आनंद हो तो आत्मानुभूति से प्रेम उपजता है।
जो स्वयं की आत्यंतिक सत्ता से अपरिचित है, वह कभी भी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता है। स्वरूप-प्रतिष्ठा ही आनंद है और इसीलिए स्वयं को जानना वस्तुतः नैतिक और शुभ होने का मार्ग है। स्वयं को जानते ही आनंद का संगीत बजने लगता है और ज्ञान का आलोक फैल जाता है।
और फिर जिसके दर्शन स्वयं के भीतर होते हैं, उसके ही दर्शन समस्त में होने लगते हैं। स्वयं के अणु को जानते ही सर्व, समस्त सत्ता जान ली जाती है। स्वयं को ही सब में पाकर प्रेम का जन्म होता है। प्रेम से बड़ी और कोई क्रांति नहीं है और न उससे बड़ी कोई पवित्रता है और न उपलब्धि है। जो उसे पा लेता है वह जीवन को पा लेता है।

"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
छब्बीसवां प्रवचन

अहिंसा का अर्थ

मैं उन दिनों का स्मरण करता हूं जब चित्त पर घना अंधकार था और स्वयं
के भीतर कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता था। तब की एक बात ख्याल में है। वह यह कि उन दिनों किसी के प्रति कोई प्रेम प्रतीत नहीं होता था। दूसरे तो दूर, स्वयं के प्रति भी कोई प्रेम नहीं था।
फिर जब समाधि को जाना तो साथ ही यह भी जाना कि जैसे भीतर सोए हुए प्रेम
के अनंत झरने अनायास ही सहज और सक्रिय हो गए हैं। यह प्रेम विशेष रूप से किसी के प्रति नहीं था। यह तो बस था, और सहज ही प्रवाहित हो रहा था। जैसे दीये से प्रकाश बहता है और फूलों से सुगंध, ऐसे ही वह भी बह रहा था। बोध के उस अदभुत क्षण में जाना था कि वह तो स्वभाव का प्रकाश है। वह किसी के प्रति नहीं होता है। वह तो स्वयं की स्फुरणा है।
इस अनुभूति के पूर्व प्रेम को मैं राग मानता था। अब जाना कि प्रेम और राग तो भिन्न हैं। राग तो प्रेम का अभाव है। वह घृणा के विपरीत है, इसीलिए ही राग कभी भी घृणा में परिणत हो सकता है। राग और घृणा का जोड़ा है। वे एक-दूसरे में परिवर्तनीय हैं। प्रेम घृणा से विपरीत नहीं, भिन्न है। प्रेम घृणा और राग से अन्य है। वह आयाम ही दूसरा है। वह तो दोनों का अभाव है। किंतु वह उपेक्षा भी नहीं है। उपेक्षा मात्र अभाव है। प्रेम किसी अत्यंत ही अभिनव ऊर्जा का सदभाव भी है। यह ऊर्जा स्वयं से सर्व के प्रति बहती है, लेकिन सर्व से आकर्षित होकर नहीं, वरन स्वयं से स्फुरित होकर!
प्रेम को जान कर मैंने अहिंसा का अर्थ जाना। यह अर्थ शास्त्र से नहीं, स्वयं से आया। स्वानुभव ने सब सुलझा दिया। प्रेम संबंध हो, तो राग है; प्रेम असंबंध, असंग और स्वस्फूर्त प्रवाह हो, तो अहिंसा है।
इसीलिए मैं कहने लगा कि वीतराग प्रेम अहिंसा है।
एक संन्यासी पूछता था कि जिस प्रेम की आप बात करते हैं, उसे कैसे पाएं? मैंने कहा, प्रेम सीधा नहीं पाया जाता है। वह तो परिणाम है। प्रज्ञा
को उपलब्ध करो, तो प्रेम पारिश्रमिक में मिल जाता है। असली बात है प्रज्ञा। उसका दीया जलेगा तो प्रेम का प्रकाश मिलेगा ही। प्रज्ञा हो और प्रेम न हो, यह असंभव है। ज्ञान हो और अहिंसा न हो, यह कैसे हो सकता है? इसलिए ही अहिंसा को सत्य-ज्ञान की परीक्षा माना गया है। वह परम धर्म है, क्योंकि वह आत्यंतिक कसौटी है। उसके निष्कर्ष पर खरा उतर कर ही धर्म खरा साबित होता है।
प्रज्ञा कैसे उपलब्ध हो, यह विचारणीय है!
धर्म की मूल जिज्ञासा भी यही है। हममें जो ज्ञान शक्ति है, वह विषय-मुक्त हो तो प्रज्ञा बन जाती है। विषय के अभाव में ज्ञान स्वयं को ही जानता है। स्वयं के द्वारा स्वयं का ज्ञान ही प्रज्ञा है। उस बोध में न कोई ज्ञाता होता है, न कोई ज्ञेय; मात्र ज्ञान की शुद्ध शक्ति ही शेष रह जाती है। उसका स्वयं से स्वयं का प्रकाशित होना प्रज्ञा है। ज्ञान का यह स्वयं पर लौट आना मनुष्य-चेतना की सबसे बड़ी क्रांति है। इस क्रांति से ही मनुष्य स्वयं से संबंधित होता है और जीवन के प्रयोजन और अर्थवत्ता का उसके समक्ष उदघाटन होता है।
ऐसी क्रांति समाधि से उपलब्ध होती है। प्रज्ञा का साधन समाधि है। समाधि साधन है; प्रज्ञा साध्य है; प्रेम उस सिद्धि का परिणाम है। मनुष्य-चित्त सतत विषय-प्रवाह से भरा है। कोई न कोई ज्ञेय हमारे ज्ञान को घेरे हुए है। ज्ञेय से ज्ञान को मुक्त करना है। उस खूंटी से मुक्त होकर ही उसकी स्वयं में स्थिरता और प्रतिष्ठा होगी। समाधि इस मुक्ति का उपाय है।
सुषुप्ति में भी मुक्ति होती है, लेकिन वह अवस्था मूर्च्छित है। सुषुप्ति में मन स्वयं में लीन हो जाता है। यह स्थिति उसका अपना स्वरूप है। इसे ही कहते हैंः स्वप्ति। स्व का अर्थ है अपने आप, और अप्ति का अर्थ है प्रवेश कर जाना। अपने आप में प्रवेश कर जाना ही सुषुप्ति है।

समाधि और सुषुप्ति केवल एक बात को छोड़ कर बिल्कुल समान हैं। सुषुप्ति अचेतन और मूर्च्छित अवस्था है, समाधि पूर्ण चेतन और अप्रमत्त। इसीलिए सुषुप्ति में हम जगत के साथ एक हो गए मालूम होते हैं और समाधि में परम चेतना के साथ।
इसीलिए स्मरण रहे कि समाधि सुषुप्ति नहीं है। अनेक मनसतत्ववेत्ताओं
का ख्याल है कि चेतना जब निर्विषय होगी, तो निद्रा आ जाएगी। यह भ्रांति बिना प्रयोग किए सोचने से पैदा हुई है। चेतना सो जाए तो निर्विषय हो जाती है। लेकिन इससे यह फलित नहीं होता है कि वह निर्विषय होगी तो सो जाएगी। उसे निर्विषय बनाना ही इतने श्रम और सचेष्ट जागरूकता से होता है कि उसकी उपलब्धि पर सो जाना असंभव है। उसकी उपलब्धि पर तो शुद्ध-बुद्धता ही शेष रह जाती है।
समाधि-साधना के तीन अंग हैं। एकः चित्त-विषयों के प्रति अनासक्ति; दोः चित्त-वृत्तियों के प्रति जागरूकता; और तीनः चित्त-साक्षी की स्मृति! चित्त-विषयों के प्रति अनासक्ति से उनके संस्कार बनने बंद होते हैं,
और चित्त-वृत्तियों के प्रति जागरूकता से उन वृत्तियों का क्रमशः विसर्जन प्रारंभ होता है, और चित्त-साक्षी की स्मृति से स्वयं प्रवेश का द्वार खुलता है।
जो वस्तु जहां उदगम पाती है उससे ही अंततः लीन भी होती है। उदगम बिंदु
ही लय बिंदु भी होता है। और जो उदगम है, जो लय है, वही स्व-स्वरूप भी है। समाधि चित्त की लयावस्था है। जैसे सागर की लहरें सागर में ही अंततः
लय को प्राप्त हो जाती हैं, वैसे ही चित्त भी समाधि अवस्था में अपनी समस्त वृत्ति-तरंगों को शून्य कर परम चेतना में लय होता है।
चित्त और चित्त-वृत्तियों के समग्र संस्थान का केंद्र अहंकार है।
उनके विलीन होने से वह भी विसर्जित हो जाता है। तब जो शेष रहता है और जिसकी अनुभूति होती है, वही आत्मा है।
अहिंसा क्या है? यह तो रोज ही मुझसे पूछा जाता है। मैं कहता हूं, आत्मा
को जान लेना अहिंसा है।
मैं यदि स्वयं को जानने में समर्थ हो जाऊं, तो साथ ही सबके भीतर जिसका वास है, उसे भी जान लूंगा। इस बोध से प्रेम उत्पन्न होता है। और प्रेम के लिए किसी को भी दुख देना असंभव है। किसी को दुख देने की यह असंभावना ही अहिंसा है।
आत्म-अज्ञान का केंद्रीय लक्षण अहं है। उससे ही समस्त हिंसा उत्पन्न होती है। मैं सब कुछ हूं और शेष जगत मेरे लिए है, मैं समस्त सत्ता का केंद्र और लक्ष्य हूं, इस मैं-भाव से पैदा हुआ शोषण ही हिंसा है। आत्मज्ञान का केंद्रीय लक्षण प्रेम है। जहां अहं शून्य होता है, वहीं प्रेम पूर्ण होता है। जगत में दो ही प्रकार की चेतना-स्थितियां हैंः अहं की और प्रेम की। अहं संकीर्ण और अणुस्थिति है, प्रेम विराट और ब्रह्म। अहं का केंद्र मैं है, प्रेम का कोई केंद्र नहीं है, या सर्व ही उसका केंद्र है। अहं अपने लिए जीता है, प्रेम सबके लिए जीता है। अहं शोषण है, प्रेम सेवा है। प्रेम से सहज प्रवाहित सेवा ही अहिंसा है।
समाधि को साधो, ताकि तुम्हारा जीवन प्रज्ञा के प्रकाश से भर जाए। जब भीतर प्रकाश होगा, तभी बाहर प्रेम बहेगा। प्रेम आत्मिक उत्कर्ष और उपलब्धि का श्रेष्ठतम फल है। जो उसे पाए बिना समाप्त हो जाते हैं, वे जीवन को बिना जाने ही समाप्त हो जाते हैं।
प्रेम को नहीं जाना तो कुछ भी नहीं जाना, क्योंकि प्रेम ही प्रभु है!
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
सत्ताईसवां प्रवचन

मैं मृत्यु सिखाता हूं

मैं प्रकाश की बात नहीं करता हूं, वह कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न वस्तुतः आंख का है। वह है तो प्रकाश है। वह नहीं है तो प्रकाश नहीं है। क्या है वह, हम नहीं जानते हैं। जो हम जान सकते हैं, वही हम जानते हैं। इसलिए विचारणीय सत्ता नहीं, विचारणीय ज्ञान की क्षमता है। सत्ता उतनी ही ज्ञात होती है, जितना ज्ञान जाग्रत होता है।
कोई पूछता था, आत्मा है या नहीं है?
मैंने कहा, आपके पास उसे देखने की आंख है तो है, अन्यथा नहीं ही है। साधारणतः हम केवल पदार्थ को ही देखते हैं। इंद्रियों से केवल वही ग्रहण होता है। देह के माध्यम से जो भी जाना जाता है वह देह से अन्य हो भी कैसे सकता है? देह देह को ही देखती है और देख सकती है। अदेही उससे अस्पर्शित रह जाता है। आत्मा उसकी ग्रहण-सीमा में नहीं आती है। वह पदार्थ से अन्य है। इसलिए उसे जानने का मार्ग भी पदार्थ से अन्य ही हो सकता है। आत्मा को जानने का मार्ग धर्म है। धर्म उपदेश नहीं, वह उपचार है। वह
उस आंतरिक च्रु की चिकित्सा है जिससे, जो पदार्थ के अतिरेक है और पदार्थ का अतिक्रमण करता है, उसे जाना जाता है।
वह कोई विचारणा नहीं, साधना है। विचारणा ऐंद्रिक है; क्योंकि सब विचार इंद्रियों से ही ग्रहण होते हैं। और इसलिए विचारणा कभी ऐंद्रिक का अतिक्रमण नहीं कर पाती है। विचार अंतस में जागते नहीं, बाहर से आते हैं। वे अंतस नहीं, अतिथि हैं। वे स्वयं नहीं, पर हैं। इसलिए विचार अपनी चरम परिणति में विज्ञान बन कर अनिवार्यतः पदार्थ-केंद्रित हो जाता है। और जो विचार का उसके तार्किक अंत तक अनुगमन करेगा वह पाएगा कि पदार्थ के अतिरिक्त जगत में और कुछ भी नहीं है।
विचार स्वरूपतः आत्मा के निषेध के लिए आबद्ध है। क्योंकि उसका जन्म
और ग्रहण इंद्रियों से होता है और जो इंद्रियों के अतीत है वह उसकी सीमा नहीं। इसलिए आत्मा को प्रकट करने वाले सब विचार असंगत और तर्कशून्य मालूम होते हैं। यह स्वाभाविक ही है।
धर्म अतर्क्य है, क्योंकि धर्म कोई विचार नहीं है। वह असंगत भी है; क्योंकि इंद्रिय-ज्ञान से उसकी कोई संगति संभव नहीं है। और वह इंद्रियों से नहीं, वरन किसी बहुत ही अन्य और भिन्न मार्ग से उपलब्ध होता है।
धर्म विचार की अनुभूति नहीं, निर्विचार चैतन्य में हुआ बोध है। विचार इंद्रियजन्य है। निर्विचार चैतन्य अतींद्रिय है। विचार की चरम निष्पत्ति पदार्थ है। निर्विचार चैतन्य का चरम साक्षात आत्मा है। इसलिए जो विचारणा आत्मा के संबंध में है, वह व्यर्थ है। वह साधना सार्थक है जो निर्विचारणा की ओर है।
विचार के पीछे भी कोई है, वही बोध है, विवेक है, बुद्धि है। विचार में ग्रस्त और व्यस्त उसे नहीं जान पाता है। विचार धुएं की भांति उस अग्नि को ढांके रहते हैं। उनमें होकर सारा जीवन ही धुआं हो जाता है और व्यक्ति उस ज्ञानाग्नि से अपरिचित ही रह जाता है जो उसका वास्तविक होना है।
विचार पराए हैं। वह अग्नि ही अपनी है। विचार ज्ञान नहीं है। वही च्रु है, जिससे सत्य जाना जाता है। वह नहीं है तो हम अंधे हैं। और अंधेपन में प्रकाश तो क्या, अंधेरा भी नहीं जाना जा सकता।
एक बार एक साधु के पास कुछ लोग अपने अंधे मित्र को लाए थे। उन्होंने उसे बहुत समझाया था कि प्रकाश है, पर वह मानने को राजी नहीं हुआ था। उसका न मानना ठीक भी था; मानना ही गलत हुआ होता। यही विचारसंगत था। जो नहीं दिख रहा था, वह नहीं था। हममें से अधिक का तर्क भी यही है। वह अंधा भी विचारक था और विचार के नियमों के अनुकूल ही उसका वह व्यवहार था। उसके मित्र ही गलत थे। साधु ने यही कहा था। उसने कहा था, मेरे पास क्यों लाए हो? किसी वैद्य के पास ले जाओ। तुम्हारे मित्र को प्रकाश समझाने की नहीं, चिकित्सा की आवश्यकता है।

मैं भी यही कहता हूं, आंख है तो प्रकाश है। और जो प्रकाश के लिए सच है वही आत्मा के लिए भी सच है।
सत्य वही है जो प्रत्यक्ष हो। यद्यपि जो प्रत्यक्ष है, केवल वही सत्य नहीं है। सत्य अनंत है। अनंत प्रत्यक्ष भी हो सकता है। विचार हमारी सीमा है, इंद्रियां हमारी सीमा हैं। इसलिए उनसे जो जाना जाता है, वह वही है जिसकी सीमा है। असीम को, अनंत को, उनसे ऊपर उठ कर जानना होता है। इंद्रियों के पीछे विचारशून्य चित्त की स्थिति में जिसका साक्षात होता है, वही अनंत, असीम, अनादि आत्मा है।
आत्मा को जानने की आंख शून्य है। उसे ही समाधि कहा है। यह योग है। चित्त की वृत्तियों के विसर्जन से बंद आंखें खुलती हैं और सारा जीवन अमृत-प्रकाश से आलोकित और रूपांतरित हो जाता है। वहां पुनः पूछना नहीं होता कि आत्मा है या नहीं है। वहां जाना जाता है। वहां दर्शन है। विचार, वृत्तियां, चित्त जहां नहीं हैं, वहां दर्शन है।
शून्य से पूर्ण का दर्शन होता है और शून्य आता है विचार-प्रक्रिया के तटस्थ चुनावरहित साक्षी-भाव से। विचार में शुभ-अशुभ का निर्णय नहीं करना है। वह निर्णय राग या विराग लाता है। किसी को रोक रखना और किसी को परित्याग करने का भाव उससे पैदा होता है। वह भाव ही विचार-बंधन है। वह भाव ही चित्त का जीवन और प्राण है। उस भाव के आधार पर ही विचार कीशृंखला अनवरत चलती चली जाती है। विचार के प्रति कोई भी भाव हमें विचार से बांध देता है। उसके तटस्थ साक्षी का अर्थ है निर्भाव। विचार को निर्भाव के बिंदु से देखना ध्यान है। बस देखना है, और चुनाव नहीं करना है, और निर्णय नहीं लेना है।
यह देखना बहुत श्रमसाध्य है। यद्यपि कुछ करना नहीं है, पर कुछ न कुछ करते रहने की हमारी इतनी आदत बनी है कि कुछ न करने जैसा सरल और सहज कार्य भी बहुत कठिन हो गया है।
बस, देखने मात्र के बिंदु पर थिर होने से क्रमशः विचार विलीन होने लगते हैं, वैसे ही जैसे प्रभात में सूर्य के उत्ताप में दूब पर जमे ओसकण वाष्पीभूत हो जाते हैं। बस, देखने का उत्ताप विचारों के वाष्पीभूत हो जाने के लिए पर्याप्त है। वह राह है जहां से शून्य उदघाटित होता है और मनुष्य को आंख मिलती है और आत्मा मिलती है।
मैं एक अंधेरी रात में अकेला बैठा था। बाहर भी अकेला था, भीतर भी अकेला था। बाहर किसी की उपस्थिति नहीं थी और भीतर किसी का विचार नहीं था। कोई क्रिया भी नहीं थी। बस देखता था। कुछ देखता था, ऐसा नहीं, बस देखता ही था! उस देखने का कोई विषय नहीं था। वह देखना निर्विषय और आधार-शून्य था। वह किसी का देखना नहीं, बस मात्र देखना ही था।
किसी ने आकर पूछा था कि क्या कर रहे हैं?
अब मैं क्या कहता? कुछ कर तो रहा ही नहीं था। मैंने कहा, मैं कुछ नहीं
कर रहा हूं। मैं बस हूं। यह मात्र होना ही शून्य है! यही वह बिंदु है जहां पदार्थ का अतिक्रमण और परमात्मा का आरंभ होता है।
मैं शून्य सिखाता हूं। मैं यह मिटना ही सिखाता हूं। मैं यह मृत्यु ही सिखाता हूं। और यह इसलिए सिखाता हूं कि तुम पूर्ण हो सको, तुम अमृत हो सको! कैसा आश्चर्य है कि मिट कर जीवन मिलता है और जो जीवन से चिपटते हैं वे उसे खो देते हैं। पूर्ण होने की जो चिंता में है वह रिक्त और शून्य हो जाता है और जो शून्य होकर निश्चिंत है वह पूर्ण को पा लेता है।
बूंद बूंद रह कर सागर नहीं हो सकती। वह अहंकार निष्फल है। उस दिशा से बूंद तो मिट सकती है, पर सागर नहीं हो सकती है। बूंद बने रहने का आग्रह ही तो सागर होने में बाधा है। वही तो आडंबर और रुकावट है।
सागर की ओर से द्वार कभी भी बंद नहीं है, क्योंकि जिसके द्वार पर बूंद अपने ही हाथों अपने में बंद होती है उसकी दीवारें और सीमाएं उसकी अपनी ही हैं। सागर तो वह होना चाहती है, पर अपने बूंद होने को नहीं तोड़ना चाहती है। यही उसकी दुविधा है। यही दुविधा मनुष्य की है। यह असंभव है कि बूंद बूंद भी रहे, और सागर हो जाए; और व्यक्ति व्यक्ति भी रहे, और ब्रह्म को जान ले, ब्रह्म हो जाए! मैं की बूंद मिटती है तो आत्मा का सागर उपलब्ध होता है।

आत्मा का सागर बहुत निकट है, और हम व्यर्थ ही बूंद को पकड़ कर रुके हुए हैं। आत्मा का अमृत निकट है, और हम व्यर्थ ही मृत्यु को ओढ़ कर बैठे हुए हैं। बूंद को मिटाना पड़ेगा और हमें अपने ही हाथों से ओढ़े हुए वस्त्रों को दूर करना पड़ेगा और अपनी सीमाएं छोड़नी ही होंगी। तभी हम अनंत और असीम सत्य के अंग हो सकते हैं।
यह साहस जिनमें नहीं है वे धार्मिक नहीं हो सकते हैं। धर्म मनुष्य-जीवन का चरम साहस है, क्योंकि वह स्वयं को शून्य करने और विसर्जित करने का मार्ग है। धर्म भयभीतों की दिशा नहीं है। स्वर्ग के लोभ से पीड़ित और नरक के भय से कंपितों के लिए वह पुरुषार्थ नहीं है। वे सारे प्रलोभन और भय बूंद के हैं। उन भयों और प्रलोभनों से ही तो बूंद ने अपने को बनाया और बांधा है।
बूंद को मिटाना है और व्यक्ति को मृत्यु देना है। जिसमें इतना अभय और साहस है वही सागर के निमंत्रण को स्वीकार कर सकता है। सागर का निमंत्रण ही सत्य का निमंत्रण है!
"मैं कौन हूं" से संकलित क्रांति-सूत्र

मैं कहता आंखन देखी
अट्ठाईसवां प्रवचन

यह मन क्या है?

एक आकाश, एक स्पेस बाहर है, जिसमें हम चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं; जहां भवन निर्मित होते हैं और खंडहर हो जाते हैं; जहां पक्षी उड़ते, सूर्य जन्मते और पृथ्वियां विलुप्त होती हैं। यह आकाश हमारे बाहर है। किंतु यह आकाश जो बाहर फैला है, यही अकेला आकाश नहीं है। दिस स्पेस इज नाट दि ओनली स्पेस। एक और भी आकाश है, वह हमारे भीतर है।
जो आकाश हमारे बाहर है वह असीम है। वैज्ञानिक कहते हैं, उसकी सीमा का कोई पता नहीं लगता। लेकिन जो आकाश हमारे भीतर फैला है, बाहर का आकाश उसके सामने कुछ भी नहीं है। कहें कि वह असीम से भी ज्यादा असीम है। अनंत आयामी उसकी असीमता है, मल्टी डायमेंशनल इनफिनिटी है। बाहर के आकाश में चलना- उठना होता है, भीतर के आकाश में जीवन है। बाहर के आकाश में क्रियाएं होती हैं, भीतर के आकाश में चैतन्य है।
जो बाहर के ही आकाश में खोजता रहेगा वह कभी भी जीवन से मुलाकात न कर पाएगा। उसकी चेतना से कभी भेंट न होगी। उसका परमात्मा से कभी मिलन न होगा। ज्यादा से ज्यादा पदार्थ मिल सकता है बाहर, परमात्मा का स्थान तो भीतर का आकाश है, अंतर-आकाश है, इनर स्पेस है।
जीवन के सत्य को पाना हो तो अंतर-आकाश में उसकी खोज करनी पड़ती है। लेकिन हमें अंतर-आकाश का कोई भी अनुभव नहीं है। हमने कभी भीतर के आकाश में कोई उड़ान नहीं भरी है। हमने भीतर के आकाश में एक चरण भी नहीं रखा है, हम भीतर की तरफ गए ही नहीं। हमारा सब जाना बाहर की तरफ है। हम जब भी जाते हैं बाहर ही जाते हैं।
मित्र का प्रश्न इससे संबंधित है। उन्होंने पूछा है कि जब भीतर की, स्वरूप की स्थिति परम आनंद है तो यह मन कहां से आ जाता है? जब भीतर नित्य आनंद का वास है तो ये मन के विचार कैसे जन्म जाते हैं? ये कहां से अंकुरित हो जाते हैं?
इस अंतर-आकाश के संबंध में उसे भी समझ लेना उपयोगी है। यह प्रश्न सदा
ही साधक के मन में उठता है कि जब मेरा स्वभाव ही शुद्ध है तो यह अशुद्धि कहां से आ जाती है? और जब मैं स्वभाव से अमृत हूं तो यह मृत्यु कैसे घटित होती है? और जब भीतर कोई विकार ही नहीं है, निर्विकार, निराकार का आवास है सदा से, सदैव से, तो ये विकार के बादल कैसे घिर जाते हैं? कहां से इनका जन्म होता है? कहां इनका उदगम है? इसे समझने के लिए थोड़ी सी गहराई में जाना पड़ेगा।
पहली बात तो यह समझनी पड़ेगी कि जहां भी चेतना है वहां चेतना की स्वतंत्रताओं में एक स्वतंत्रता यह भी है कि वह अचेतन हो सकेगी। ध्यान रखें, अचेतन का अर्थ जड़ नहीं होता। अचेतन का अर्थ होता हैः चेतन, जो कि सो गया; चेतन, जो कि छिप गया! यह चेतना की ही क्षमता है कि वह अचेतन हो सकती है। जड़ की यह क्षमता नहीं है। आप पत्थर से यह नहीं कह सकते कि तू अचेतन है। जो चेतन नहीं हो सकता वह अचेतन भी नहीं हो सकता। जो जाग नहीं सकता वह सो भी नहीं सकता।
और ध्यान रखें, जो सो नहीं सकता वह जागेगा कैसे? चेतना की ही क्षमता है अचेतन हो जाना। अचेतन का अर्थ चेतना का नाश नहीं है। अचेतन का अर्थ हैः चेतना का प्रसुप्त हो जाना, छिप जाना, अप्रकट हो जाना। चेतना की मालकियत है यह कि चाहे तो प्रकट हो, चाहे तो अप्रकट हो जाए। यही चेतना का स्वामित्व है। या कहें, यही चेतना की स्वतंत्रता है। अगर चेतना अचेतन होने को स्वतंत्र न हो तो चेतना परतंत्र हो जाएगी। फिर आत्मा की कोई स्वतंत्रता न होगी।
इसे ऐसे समझें कि अगर आपको बुरे होने की स्वतंत्रता ही न हो तो आपके भले होने का अर्थ क्या होगा? अगर आपको बेईमान होने की स्वतंत्रता ही न हो तो आपके ईमानदार होने का कोई अर्थ होता है? जब भी हम किसी व्यक्ति को कहते हैं कि वह ईमानदार है तो इसमें निहित है, इंप्लाइड है, कि वह चाहता तो

बेईमान हो सकता था, पर नहीं हुआ। अगर हो ही न सकता हो बेईमान, तो ईमानदारी दो कौड़ी की हो जाती है। ईमानदारी का मूल्य बेईमान होने की क्षमता और संभावना में छिपा है।
जीवन के शिखर छूने का मूल्य जीवन की अंधेरी घाटियों में उतरने की क्षमता में छिपा है। स्वर्ग पहुंच जाना इसीलिए संभव है कि नरक की सीढ़ी भी हम पार कर सकते हैं। प्रकाश इसीलिए पाने की क्षमता है कि हम अंधेरे में भी हो सकते हैं। ध्यान रहे, अगर आत्मा के लिए बुरा होने का उपाय ही न हो तो आत्मा के भले होने में बिल्कुल ही नपुंसकता, इंपोटेंसी हो जाएगी। विपरीत की सुविधा होनी चाहिए। और अगर चेतना को भी विपरीत की सुविधा नहीं है तो चेतना गुलाम है। और गुलाम चेतना का क्या अर्थ होता है? उससे तो अचेतन होना, जड़ होना बेहतर है।
यह जो हमारे भीतर छिपा हुआ परमात्मा है, यह परम स्वतंत्र है, एब्सोल्यूट फ्रीडम है। इसलिए शैतान होने का उपाय है, और परमात्मा होने की भी सुविधा है। एक छोर से दूसरे छोर तक हम कहीं भी हो सकते हैं। और जहां भी हम हैं वहां होना हमारी मजबूरी नहीं, हमारा निर्णय है--अवर ओन डिसीजन!
अगर मजबूरी है तो बात खत्म हो गई। अगर मैं पापी हूं और पापी होना मेरी मजबूरी है, पापी मुझे परमात्मा ने बनाया है, या मैं पुण्यात्मा हूं और पुण्यात्मा मुझे परमात्मा ने बनाया है, तो मैं पत्थर की तरह हो गया, मुझमें चेतना न रही। मैं एक बनाई हुई चीज हो गया, फिर मेरे कृत्य का कोई दायित्व मेरे ऊपर नहीं है।
एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आए थे, कुछ दिन हुए। बहुत समझदार व्यक्ति हैं। वह मुझसे कहने लगे कि मैं बहुत लोगों से मिला हूं, बहुत साधु- संन्यासियों के पास गया हूं, लेकिन कोई हिंदू मुझे यह नहीं समझा सका कि आदमी पाप में क्यों गिरा?
हिंदू, जैन या बौद्ध, इस भूमि पर पैदा हुए तीनों धर्म यह मानते हैं कि अपने कर्मों के कारण! उन मुसलमान मित्र का पूछना बिल्कुल ठीक था। वह कहने लगे, अगर अपने कर्मों के कारण गिरा तो पहले जन्म में, जब उसकी शुरुआत ही हुई होगी, तब तो उसके पहले कोई कर्म नहीं थे! ठीक है, जब पहला ही जन्म हुआ होगा चेतना का तब तो वह निष्कपट, शुद्ध हुई होगी। उसके पहले तो कोई कर्म नहीं थे। इस जन्म में हम कहते हैं कि फलां आदमी बुरा है क्योंकि पिछले जन्म में बुरे कर्म किए। पिछले जन्म में बुरे कर्म किए क्योंकि और पिछले जन्म में बुरे कर्म किए। लेकिन कोई प्रथम जन्म तो मानना ही पड़ेगा। उस प्रथम जन्म के पहले तो कोई बुरे कर्म नहीं हुए, तो बुरे कर्म आ कैसे गए? मैंने उन मुसलमान मित्र से कहा कि यह बात बिल्कुल तर्कयुक्त है। लेकिन क्या इस्लाम और ईसाइयत जो उत्तर देते हैं उन पर आपने विचार किया? उन्होंने कहा, वह ज्यादा ठीक मालूम पड़ता है कि ईश्वर ने आदमी को बनाया, जैसा चाहा वैसा बनाया। तो मैंने कहा, यहीं थोड़ी सी बात समझनी है। इस देश में पैदा हुआ कोई भी धर्म जिम्मेवारी ईश्वर पर नहीं डालना चाहता, मनुष्य पर डालना चाहता है। यह मनुष्य की गरिमा की स्वीकृति है। रिस्पांसिबिलिटी इ.ज ऑन मैन, नाट ऑन गॉड।
ध्यान रहे, गरिमा तभी है जब दायित्व हो। अगर दायित्व भी नहीं है--अगर मैं बुरा हूं तो परमात्मा ने बनाया, भला हूं तो परमात्मा ने बनाया, जैसा हूं, परमात्मा ने बनाया--तो सारी जिम्मेवारी परमात्मा की हो जाती है। और तब और भी उलझन खड़ी होगी कि परमात्मा को बुरा आदमी बनाने में क्या रस हो सकता है? और परमात्मा ही अगर बुरा बनाता है तो हमारी अच्छे बनने की कोशिश परमात्मा के खिलाफ पड़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा तो आदमी बुरा बनाता है, और तथाकथित साधु-संन्यासी आदमी को अच्छा बनाते हैं। यह तो बड़ी मुश्किल है!
गुरजिएफ कहा करता था कि दुनिया के सब महात्मा परमात्मा के खिलाफ मालूम पड़ते हैं, दुश्मन मालूम पड़ते हैं। वह आदमी को बुरा बनाता है या जैसा भी बनाता है, फिर आप कौन हैं सुधारने वाले?
कर्म का सिद्धांत कहता है, व्यक्ति पर जिम्मेवारी है। लेकिन व्यक्ति
पर जिम्मेवारी तभी हो सकती है जब व्यक्ति स्वतंत्र हो। स्वतंत्रता के साथ दायित्व है, फ्रीडम इंप्लाइज दि रिस्पांसिबिलिटी। अगर स्वतंत्रता नहीं

है तो दायित्व बिल्कुल नहीं है। अगर स्वतंत्रता है तो दायित्व है। लेकिन स्वतंत्रता सब दोमुखी है। दोनों तरफ की स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बेटे से कहा है--जब बेटा बड़ा हो गया--कि तिजोरी तेरी है, चाभी भर मेरे पास रहेगी। ऐसे तू जितना खर्च करना चाहे खर्च कर सकता है, लेकिन ताला भर मत खोलना! स्वतंत्रता पूरी दी जा रही मालूम पड़ती है, और जरा भी नहीं दी जाती।
मैंने एक मजाक सुना है कि जब पहली दफा फोर्ड ने कारें बनाईं अमरीका में तो एक ही रंग की बनाईं, काले रंग की। और फोर्ड ने अपनी फैक्ट्री के दरवाजे पर एक वचन लिख छोड़ा थाः यू कैन चूज एनी कलर प्रोवाइडेड इट इ.ज ब्लैक! आप कोई भी रंग चुन सकते हैं, अगर वह काला है तो! काले रंग की कुल गाड़ियां ही थीं, कोई दूसरे रंग की तो गाड़ियां थीं नहीं। लेकिन स्वतंत्रता पूरी थी, आप कोई भी रंग चुन लें, बस काला होना चाहिए--इतनी शर्त थी पीछे। अगर आदमी से परमात्मा यह कहे कि यू आर फ्री प्रोवाइडेड यू आर गुड--आप स्वतंत्र हैं, अगर आप अच्छे होना चाहते हैं तो ही--तो स्वतंत्रता दो कौड़ी की हो गई! स्वतंत्रता का अर्थ ही यही होता है कि हम बुरे होने के लिए भी स्वतंत्र हैं। और जब स्वतंत्रता हो तभी दायित्व है। तब फिर जिम्मा मेरा है। अगर मैं बुरा हूं तो मैं जिम्मेवार हूं। और अगर भला हूं तो मैं जिम्मेवार हो जाता हूं। जिम्मेवारी मुझ पर पड़ जाती है।
फिर भारत यह भी कहता है कि परमात्मा हमसे बाहर नहीं है। वह हमारे भीतर छिपा है। इसलिए हमारी स्वतंत्रता अंततः उसकी ही स्वतंत्रता है! इसे और समझ लेना चाहिए। क्योंकि परमात्मा अगर बाहर बैठा हो हमसे, और हमसे कहे कि आई गिव यू फ्रीडम, मैं तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं, तो भी वह परतंत्रता हो जाएगी। क्योंकि वह किसी भी दिन कैंसिल कर सकता है। वह किसी भी दिन कह देगा, अच्छा, बस अब बंद! इरादा बदल दिया, अब स्वतंत्रता नहीं देते! तो हम क्या करेंगे?
नहीं, स्वतंत्रता आत्यंतिक है, अल्टीमेट है, क्योंकि देने वाला और लेने वाला दो नहीं हैं। हमारे ही भीतर बैठी हुई चेतना परम स्वतंत्र है, क्योंकि वही परमात्मा है। वह जो अंतरस्थ आकाश है वही परमात्मा है। और परमात्मा को भी अगर बुरे होने की सुविधा न हो तो वह परमात्मा की परतंत्रता के अतिरिक्त और क्या घोषणा होगी?
इसलिए मन पैदा हो सकता है। वह हमारा पैदा किया हुआ है। वह परमात्मा का पैदा किया हुआ है।
एक और बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि जीवन के प्रगाढ़ अनुभव के लिए विपरीत में उतर जाना अनिवार्य हो जाता है। प्रौढ़ता के लिए, मैच्योरिटी के लिए विपरीत में उतर जाना अनिवार्य हो जाता है। जिसने दुख नहीं जाना वह सुख कभी जान नहीं पाता, जिसने अशांति नहीं जानी वह शांति भी कभी नहीं जान पाता, और जिसने संसार नहीं जाना वह स्वयं परमात्मा होते हुए भी परमात्मा को नहीं जान पाता।
परमात्मा की पहचान के लिए संसार की यात्रा पर जाना अनिवार्य है। उससे कोई बचाव नहीं है। और जो जितना गहरा संसार में उतर जाता है उतना ही गहन परमात्मा के स्वरूप को अनुभव कर पाता है। उस उतरने का भी प्रयोजन है। कोई चीज जो हमारे पास सदा से हो, उसका हमें तब तक पता नहीं चलता, जब तक वह खो न जाए। खोने पर ही पता चलता है कि मेरे पास कुछ था, इसका अनुभव भी खोने पर होता है। खोना भी पाने की प्रक्रिया का हिस्सा है। खोना भी ठीक से पाने का उपाय है। खोना भी पाने की क्रिया का अनिवार्य अंग है।
जो हमारे बीच छिपा है, उसे अगर हमें ठीक-ठीक अनुभव करना हो तो हमें उसे खोने की ही यात्रा पर जाना पड़ता है। कहते हैं लोग कि जब तक कोई परदेस नहीं जाता तब तक अपने देश को नहीं पहचान पाता। वे ठीक कहते हैं। और कहते हैं कि जब तक कोई दूसरों से परिचित नहीं होता तब तक अपने से परिचित नहीं हो पाता। ईवन दि वे टु वनसेल्फ पासेस थ्रू दि अदर। सार्त्र का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि दूसरे को जाने बिना स्वयं को जानने का कोई उपाय नहीं। दूसरे से गुजरना पड़ता है स्वयं की पहचान के लिए।

क्यों? क्योंकि जब तक विपरीत का अनुभव न हो तब तक अनुभव ही नहीं है। जैसे शिक्षक काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है। वैसे वह दीवार पर भी लिख सकता है, लिखने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तब दिखाई नहीं पड़ेगा। लिखा भी जाएगा और दिखाई भी नहीं पड़ेगा। लिखा तो जाएगा, पढ़ा नहीं जा सकेगा। और ऐसे लिखने का क्या प्रयोजन जो पढ़ा न जा सके?
सुना है मैंने, एक आदमी सुबह-सुबह मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर आया। गांव में अकेला ही पढ़ा-लिखा आदमी था नसरुद्दीन। और जहां एक ही आदमी पढ़ा- लिखा हो तो समझ लेना चाहिए पढ़ा-लिखा कितना होगा! उस आदमी ने कहा, जरा एक चिट्ठी लिख दो, मुल्ला! मुल्ला ने कहा, मेरे पैर में बहुत दर्द है, मैं न लिख सकूंगा। उस आदमी ने कहा, हद हो गई! कभी हमने सुना नहीं कि लोग पैर से चिट्ठी लिखते हैं। हाथ से लिखो चिट्ठी! पैर में दर्द है तो पैर से क्या वास्ता? हाथ में क्या अड़चन है? नसरुद्दीन ने कहा, यह जरा रहस्य की बात है, यह न पूछो तो अच्छा! चिट्ठी हम न लिखेंगे, पैर में बहुत तकलीफ है। उस आदमी ने कहा, जरा रहस्य ही बता दें। बात क्या है, मेरी समझ में नहीं आती। नसरुद्दीन ने कहा, बात यह है कि हमारी लिखी चिट्ठी हमारे सिवाय और कोई नहीं पढ़ पाता। फिर दूसरे गांव की यात्रा करने की अभी हमारी हैसियत नहीं, पैर में तकलीफ बहुत है, नसरुद्दीन ने कहा!
जो पढ़ा ही न जा सके उसके लिखने का क्या फायदा? इसलिए काले ब्लैकबोर्ड
पर लिखना पड़ता है। उस पर दिखाई पड़ता है। आकाश पर जब काले बादल होते हैं तो दिखाई पड़ती है बिजली कौंधती हुई। भीतर जो छिपा है परमात्मा उसके अनुभव के लिए पदार्थ की गहनता में उतरना अनिवार्य है। संन्यास को भी जानने के लिए गृहस्थ हुए बिना कोई मार्ग नहीं। सत्य को भी जानने के लिए असत्य के रास्तों से गुजरना पड़ता है। और इसकी जब कोई अनिवार्यता समझता है और इस रहस्य को समझ जाता है, तो फिर जिस असत्य से गुजरा उसके प्रति भी धन्यवाद मन में उठता है, क्योंकि उसके बिना सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता था। जिस पाप से गुजर कर पुण्य तक पहुंचे उस पाप की भी अनुकंपा ही मालूम होती है, क्योंकि उसके बिना पुण्य तक नहीं पहुंचा जा सकता था।
बोधिधर्म ने कहा है--और बोधिधर्म इस पृथ्वी पर दस-पांच लोगों में एक
है जिसने गहनतम सत्य के अनुभव को जाना--बोधिधर्म ने कहा है मरने के क्षण में, कि संसार, तेरा धन्यवाद! क्योंकि तेरे बिना निर्वाण को जानने का कोई उपाय नहीं। शरीर, तुझे धन्यवाद! क्योंकि तेरे बिना आत्मा को पहचानने की सुविधा भी नहीं। सब पापो, तुम्हारी अनुकंपा मुझ पर! क्योंकि तुमसे गुजर कर मैं पुण्य के शिखर तक पहुंचा, तुम सीढ़ियां थे।
तब जीवन विपरीत रह कर भी विपरीत नहीं रह जाता। तब जीवन विपरीत होकर भी एकरस हो जाता है। और विपरीत में भी एक हार्मनी और एक संगीत उत्पन्न हो जाता है। संगीत पैदा होता है विभिन्न स्वरों से। और अगर संगीत के किसी स्वर को बहुत उभारना हो तो उसके पहले भी बहुत धीमे स्वर पैदा करने पड़ते हैं, तब उभरता है संगीत!
सब अभिव्यक्ति विपरीत के साथ है। इसलिए चेतना मन को पैदा करती है। यह चेतना का ही काम है। चेतना ही बाहर जाती है। और बाहर ही भटक-भटक कर उसे पता चलता है कि बाहर कुछ नहीं है। तब चेतना भीतर वापस आती है।
ध्यान रहे, जो चेतना कभी बाहर नहीं गई उस चेतना में, और जो चेतना बाहर भटक कर भीतर आती है उस चेतना में, रिचनेस का, समृद्धि का बहुत फर्क है। इसलिए जब पापी कभी पुण्यात्मा होता है तो उसके पुण्य की जो गहराई होती है वह साधारण आदमी के पुण्य की गहराई नहीं होती जो कभी पापी नहीं हुआ; क्योंकि पापी बहुत जान कर पुण्य तक पहुंचता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अच्छे आदमी की कोई जिंदगी नहीं होती। अगर आप नाटककारों से पूछें, उपन्यासकारों से पूछें, फिल्म-कथा लिखने वालों से पूछें, तो वे कहेंगे कि अच्छे आदमी पर तो कोई कथा ही नहीं लिखी जा सकती। अगर आदमी बिल्कुल अच्छा हो तो कोरा-सपाट होता है।
रामायण में से राम को छोड़ने में बहुत असुविधा नहीं, रावण को छोड़ने में
सब कथा गड़बड़ हो जाती है। क्योंकि राम के बिना चल सकता है, रावण के बिना नहीं चल सकता। कोई कितना ही कहे कि राम नायक हैं; जो कथा लिखना जानते हैं वे कहेंगे रावण नायक है, क्योंकि सारी कथा उसके इर्द-गिर्द घूमती है। और

अगर राम भी प्रखर होकर प्रकट होते हैं तो रावण के सहारे, रावण के कंधे पर। रावण के बिना राम भी सफेद दीवार पर खींची गई सफेद रेखा हो जाएंगे, काला ब्लैकबोर्ड तो रावण है।
स्कूल में शिक्षक जब काले बोर्ड पर लिखता है तो बच्चे ब्लैकबोर्ड का विरोध नहीं करते। वे जानते हैं कि सफेद रेखा उसी पर उभरती है। लेकिन जब रावण के ब्लैकबोर्ड पर राम उभरते हैं तो हम नासमझ विरोध करते हैं कि रावण नहीं होना चाहिए। रावण दुनिया से मिटा दो। जिस दिन आप रावण को दुनिया से मिटा देंगे उस दिन राम भी तिरोहित हो जाएंगे, वे कहीं खोजे से नहीं मिलेंगे।
जीवन विपरीत स्वरों के बीच एक सामंजस्य है। चेतना ही पैदा करती है मन को। चेतना ही विचार को पैदा करती है, ताकि निर्विचार को जान सके। परमात्मा ही संसार को बनाता है, ताकि स्वयं को अनुभव कर सके। यह आत्म-अन्वेषण की यात्रा है, इसमें भटकना जरूरी है।
एक कहानी मैं निरंतर कहता रहा हूं। एक गांव के बाहर उतरा एक आदमी अपने घोड़े से। झाड़ के पास बैठे नसरुद्दीन के सामने उसने झोली पटकी और कहा कि करोड़ों के हीरे-जवाहरात इस झोली में हैं। इसे मैं लेकर घूम रहा हूं गांव-गांव। मुझे कोई रत्ती भर भी सुख दे दे तो मैं ये सब हीरे उसे सौंप दूं, लेकिन अब तक मुझे कोई रत्ती भर सुख नहीं दे पाया।
नसरुद्दीन ने पूछा, तुम बहुत दुखी हो? उसने कहा, मुझसे ज्यादा दुखी कोई नहीं हो सकता। तभी तो मैं रत्ती भर सुख के लिए करोड़ों के हीरे देने को तैयार हूं। नसरुद्दीन ने कहा, तुम ठीक जगह आ गए हो, बैठो!
वह जब तक बैठा तब तक नसरुद्दीन उसकी थैली लेकर भाग खड़ा हुआ। वह आदमी स्वभावतः नसरुद्दीन के पीछे भागा कि मैं मर गया, मैं मर गया! यह आदमी डाकू है! यह लुटेरा है!
गांव के गली-कूचे नसरुद्दीन के परिचित थे। उसने काफी चक्कर खिलाए। पूरा गांव जाग गया। सारा गांव दौड़ने लगा। करोड़ों का मामला था। नसरुद्दीन आगे और वह धनपति पीछे छाती पीटता हुआ जोर-जोर से चिल्ला रहा है कि मेरी जिंदगी भर की कमाई वही है। मैं सुख खोजने निकला हूं और यह दुष्ट मुझे और दुख दिए दे रहा है!
भाग कर नसरुद्दीन उसी झाड़ के पास पहुंच गया जहां उसका घोड़ा खड़ा था। उसने झोला घोड़े के पास रख दिया और झाड़ के पीछे खड़ा हो गया। दो क्षण बाद अमीर भी भागा हुआ पहुंचा, अमीर ने झोला पड़ा हुआ देखा, उठा कर छाती से लगा लिया और कहा, हे परमात्मा! तेरा बड़ा धन्यवाद!
नसरुद्दीन ने झाड़ के पीछे से पूछा, कुछ सुख मिला? पाने के लिए खोना जरूरी है! उस आदमी ने कहा, कुछ? कुछ नहीं, बहुत मिला! इतना सुख मैंने जीवन में जाना ही नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, अब तू जा, नहीं तो इससे ज्यादा अगर मैं सुख दूंगा तो तू मुसीबत में पड़ सकता है।
बहुत बार खोना बहुत जरूरी है। सवाल यह नहीं है कि हमने क्यों अपने को खोया। असली सवाल यह है कि या तो हमने पूरा अपने को नहीं खोया, या हम खोने के इतने अभ्यासी हो गए कि लौटने के सब रास्ते टूट गए मालूम पड़ते हैं। खोना अनिवार्य है। पर सवाल यह है कि कब तक हम खोए रहेंगे?
इसलिए बुद्ध से अगर कोई पूछता था कि यह आदमी अंधकार में क्यों गिरा?
तो बुद्ध कहते, व्यर्थ की बातें मत करो। अगर पूछना हो तो यह पूछो कि अंधकार के बाहर कैसे जाया जा सकता है? यह सवाल संगत है, दूसरा असंगत है। बेकार की बातचीत में मुझे मत खींचो कि यह आदमी अंधकार में क्यों गिरा? वह तुम बाद में खोज लेना। अभी तुम मुझसे यह पूछ लो कि प्रकाश कैसे मिल सकता है? बुद्ध कहते कि तुम उस आदमी जैसे हो जिसकी छाती में जहरीला तीर घुसा हो। मैं उसकी छाती से तीर खींचने लगूं तो वह आदमी कहे कि रुको, पहले यह बताओ कि यह तीर किसने मारा? पहले यह बताओ कि यह तीर पूरब से आया कि पश्चिम से? पहले यह बताओ कि यह तीर जहर बुझा है या साधारण है?
बुद्ध कहते, मैं उस आदमी से कहता कि यह सब तुम पीछे पता लगा लेना, अभी मैं तीर को खींच कर बाहर निकाल दे रहा हूं। लेकिन वह आदमी कहता है कि जब तक जानकारी पूरी न हो, तब तक कुछ भी करना क्या उचित है?

यह फिक्र मत करें कि मन कैसे पैदा हुआ। यह फिक्र करें कि मन कैसे विसर्जित हो सकता है। और ध्यान रहे, बिना विसर्जन किए आपको कभी पता न चलेगा कि कैसे इसका सर्जन किया। उसके कारण हैं। क्योंकि सर्जन किए अनंत काल बीत गया। इस स्मृति को खोजना आज आपके लिए आसान नहीं होगा। उसका भी रास्ता है।
अगर आप लौटें अपने पिछले जन्मों में... लौटते जाएं... लौटते जाएं... । आदमी के जन्म चुक जाएंगे। पशुओं के जन्म होंगे, पशुओं के जन्म चुक जाएंगे। कीड़े-मकोड़ों के जन्म होंगे, कीड़े-मकोड़ों के जन्म चुक जाएंगे। पौधों के जन्म होंगे, पौधों के जन्म चुक जाएंगे। पत्थरों के जन्म होंगे... । लौटते जाएं उस जगह, जहां पहले दिन आपकी चेतना सक्रिय हुई और मन का निर्माण शुरू हुआ!
लेकिन वह बड़ी लंबी यात्रा है। उसमें मत पड़ें कि यह मन कैसे बना! हां, लेकिन एक सरल उपाय है कि इस मन को विसर्जित करें। और विसर्जन को आप अभी देख सकते हैं। जब आप विसर्जन को देख लेंगे तो आप जान जाएंगे कि विसर्जन की जो प्रक्रिया है उससे उलटी प्रक्रिया सर्जन की है।
बुद्ध एक दिन अपने भिक्षुओं के बीच सुबह जब बोलने गए तो उनके हाथ में
एक रेशम का रूमाल था। बैठ कर उन्होंने उस पर पांच गांठें लगाईं! भिक्षु बड़े चिंतित हुए, क्योंकि बुद्ध कभी कुछ लेकर हाथ में आते न थे। रेशम का रूमाल क्यों ले आए? और फिर बोलने की जगह बैठ कर उस पर गांठें लगाने लगे! बड़ी उत्सुकता, बड़ी आतुरता हो गई! क्या कोई जादू दिखाने का ख्याल है? क्योंकि जादूगर रूमाल वगैरह लेकर आते हैं। लेकिन बुद्ध ने शांति से सन्नाटे में रूमाल में पांच गांठें लगा लीं और फिर बोले, भिक्षुओ, इस रूमाल में गांठें लग गईं। मैं तुमसे दो सवाल पूछना चाहता हूं। एक तो यह कि जब रूमाल में गांठें नहीं लगी थीं तब के रूमाल में और जब रूमाल में गांठें लग गई हैं अब के रूमाल में क्या कोई फर्क है स्वरूपगत?
एक भिक्षु ने कहा, स्वरूपगत तो फर्क बिल्कुल नहीं है, रूमाल वही है। जरा भी, इंच भर भी रूमाल के स्वरूप में फर्क नहीं है। लेकिन आप हमें फंसाने की कोशिश कर रहे हैं। फर्क हो गया, क्योंकि तब रूमाल में गांठें न थीं और अब गांठें हैं। लेकिन यह फर्क बहुत ऊपरी है, क्योंकि गांठें रूमाल के स्वभाव पर नहीं लगतीं, केवल शरीर पर लगती हैं।
संसार और निर्वाण में इतना ही फर्क है। निर्वाण में भी वही स्वरूप होता है जो संसार में है। सिर्फ संसार में रूमाल पर पांच गांठें हैं। बुद्ध ने कहा कि भिक्षुओ, यह जो रूमाल है गांठ लगा हुआ, ऐसे ही तुम हो। तुममें और मुझमें बहुत फर्क नहीं, स्वरूप एक जैसा है, सिर्फ तुम पर कुछ गांठें लगी हैं।
बुद्ध ने कहा, इन गांठों को मैं खोलना चाहता हूं। और उस रूमाल को पकड़
कर बुद्ध ने खींचा। स्वभावतः खींचने से गांठें और मजबूत हो गईं। एक भिक्षु ने कहा, आप जो कर रहे हैं इससे गांठें खुलेंगी नहीं, खुलना मुश्किल हो जाएगा।
बुद्ध ने कहा, तो इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक गांठों को ठीक से न समझ लिया जाए तब तक खींचना खतरनाक है।
हम सब गांठों को खींच रहे हैं, बिना समझे कि गांठ कैसे लगी हैं। एक भिक्षु से बुद्ध ने पूछा, तो मैं क्या करूं? उस भिक्षु ने कहा, जानना जरूरी है कि गांठ कैसे लगी। गांठ खोली जा सकती है, क्योंकि लगने का जो ढंग है उससे विपरीत खुलने का ढंग होगा।
बुद्ध ने कहा, गांठें अभी लगी हैं, इसलिए तुम्हारे ख्याल में है कि कैसे लगीं, लेकिन गांठें अगर बहुत काल पहले लगी होतीं तो तुम कैसे पता लगाते कि गांठें कैसे लगीं?
उस भिक्षु ने कहा, तब तो हम खोल कर ही पता लगाते। खोलने से पता लग जाएगा। क्योंकि खोलने का जो ढंग है उसका उलटा ढंग लगने का होगा।
तो आप इस फिक्र में न पड़ें कि यह मन कैसे पैदा हुआ। आप इस फिक्र में पड़ें कि यह मन कैसे चला जाए। और जिस क्षण चला जाएगा उस दिन आप जानेंगे--उसी क्षण--कि कैसे पैदा हुआ था। जो विसर्जन करता है वही सर्जन करने वाला है और

जो विसर्जन कर सकता है वह सर्जन भी कर सकता था। विसर्जन की जो प्रक्रिया है उससे उलटी प्रक्रिया सर्जन की है।
भीतर का जो आकाश है वह बादल-रहित, मेघ-रहित, विचार-रहित, मन-रहित है। बाहर के आकाश का तभी पता चलता है जब आकाश में बादल घिर जाते हैं। पर तब बादलों का पता चलता है, आकाश का पता नहीं चलता। हालांकि आकाश मिट नहीं गया होता, सदा बादलों के पीछे खड़ा रहता है। और बादल भी आकाश में ही होते हैं, आकाश के बिना नहीं हो सकते। इसी भांति विचारों से, मन से घिरे हुए भीतर के आकाश का भी पता नहीं चलता।
ह्यूम ने कहा है, ये बातें सुन कर कि भीतर भी कोई है, मैं बहुत बार खोजने गया; लेकिन जब भी भीतर गया तो मुझे कोई आत्मा न मिली, कोई परमात्मा न मिला। या तो कभी कोई विचार मिला, कोई वासना मिली, कोई वृत्ति मिली, या कोई राग मिला; लेकिन आत्मा कभी भी न मिली।
वह ठीक कहता है। अगर आप अपने हवाई जहाज को उड़ाएं, या अपने को फैलाएं आकाश की तरफ, बदलियां आपको मिलें और बदलियों को ही खोज करके आप वापस लौट आएं, बदलियों को पार न करें, तो लौट कर आप भी कहेंगेः कोई आकाश भी न मिला! बदलियां ही बदलियां थीं, धुआं ही धुआं था, बादल ही बादल थे, कहीं कोई आकाश न था!
अपने भीतर भी हम सिर्फ बदलियों तक जाकर लौट आते हैं। उनके पार प्रवेश नहीं हो पाता। पार जाने की उड़ान ऐसी ही है जैसे आप कभी हवाई जहाज पर उड़े हों, बादलों के पार और ऊपर, और जब बादल नीचे छूट जाते हैं! वैसे ही ध्यान में भी एक उड़ान होती है जब विचार नीचे छूट जाते हैं और आप ऊपर हो जाते हैं। तब खुला आकाश मिलता है! तब अंतर-आकाश से परिचय होता है! तब सर्जन-विसर्जन के सारे भेद को आप जान पाते हैं!
"अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
उन्तीसवां प्रवचन

जो बोएंगे बीज वही काटेंगे फसल

किसे हम कहें कि अपना मित्र है और किसे हम कहें कि अपना शत्रु है?
एक छोटी सी परिभाषा निर्मित की जा सकती है। हम ऐसा कुछ भी करते हों जिससे दुख फलित होता है तो हम अपने मित्र नहीं कहे जा सकते। स्वयं के लिए दुख के बीज बोने वाला व्यक्ति अपना शत्रु है। और हम सब स्वयं के लिए दुख का बीज बोते हैं।
निश्चित ही बीज बोने में और फसल काटने में बहुत वक्त लग जाता है, इसलिए हमें याद भी नहीं रहता कि हम अपने ही बीजों के साथ की गई मेहनत की फसल काट रहे हैं। अक्सर फासला इतना हो जाता है कि हम सोचते हैं, बीज तो हमने बोए थे अमृत के, न मालूम कैसा दुर्भाग्य कि फल जहर के और विष के उपलब्ध हुए हैं!
लेकिन इस जगत में जो हम बोते हैं उसके अतिरिक्त हमें कुछ भी न मिलता है, न मिलने का कोई उपाय है। हम वही पाते हैं जो हम अपने को निर्मित करते हैं। हम वही पाते हैं जिसकी हम तैयारी करते हैं। हम वहीं पहुंचते हैं जहां की हम यात्रा करते हैं। हम वहां नहीं पहुंचते जहां की हमने यात्रा ही न की हो। यद्यपि हो सकता है यात्रा करते समय हमने अपने मन में कल्पना की मंजिल कोई और बनाई हो।
रास्ते को कोई इससे प्रयोजन नहीं है। मैं नदी की तरफ नहीं जा रहा हूं।
मन में सोचता हूं कि नदी की तरफ जा रहा हूं, लेकिन बाजार की तरफ जाने वाले रास्ते पर चलूंगा तो मैं कितना ही सोचूं कि मैं नदी की तरफ जा रहा हूं, मैं पहुंचूंगा बाजार ही। सोचने से नहीं पहुंचता है आदमी। किन रास्तों पर चलता है उनसे पहुंचता है। मंजिलें मन में तय नहीं होतीं, रास्ते पर तय होती हैं।
आप कोई भी सपना देखते रहें, अगर बीज आपने नीम के बो दिए हैं तो सपने आप शायद ले रहे हों कि कोई स्वादिष्ट मधुर फल लगेंगे। आपके सपनों से फल नहीं निकलते! फल आपके बोए बीजों से निकलते हैं। इसलिए आखिर में जब नीम के कड़वे फल हाथ में आते हैं तो शायद आप दुखी होते हैं, पछताते हैं और सोचते हैं कि मैंने तो बीज बोए थे अमृत के, फल कड़वे कैसे आए?
ध्यान रहे, फल ही कसौटी है और परीक्षा है बीज की। फल ही बताता है कि बीज आपने कैसे बोए थे। आपने कल्पना क्या की थी, उससे बीजों को कोई प्रयोजन नहीं है।
हम सभी आनंद लाना चाहते हैं जीवन में, लेकिन आता कहां है आनंद! हम सभी शांति चाहते हैं जीवन में, लेकिन मिलती कहां है शांति! हम सभी चाहते हैं कि सुख, महासुख ही बरसे, पर बरसता कभी नहीं। तो इस संबंध में एक बात इस सूत्र से समझ लेनी जरूरी है कि हमारी चाह से नहीं आते फल, हम जो बोते हैं उससे आते हैं। हम चाहते कुछ हैं, बोते कुछ हैं। हम बोते जहर हैं और चाहते अमृत हैं। इसलिए जब फल आते हैं तो जहर के ही आते हैं, दुख और पीड़ा के ही आते हैं, नरक ही फलित होता है।
हम सब अपने जीवन को देखें तो ख्याल में आ सकता है। जीवन भर चल कर हम सिवाय दुख के गड्ढों के और कहीं भी पहुंचते नहीं मालूम पड़ते हैं। रोज दुख घना होता चला जाता है। रोज रात कटती नहीं, और बड़ी होती चली जाती है। रोज मन पर संताप के कांटे फैलते चले जाते हैं और फूल आनंद के कहीं खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। पैरों में पत्थर बंध जाते हैं दुख के, पैर नृत्य नहीं कर पाते हैं उस खुशी में जिस खुशी की हम तलाश में हैं। क्योंकि कहीं न कहीं हम, हम ही--क्योंकि और कोई नहीं है--कुछ गलत बो लेते हैं। उस गलत बोने में ही हम अपने शत्रु सिद्ध होते हैं।
बहुत हैरानी की बात है, एक आदमी क्रोध के बीज बोए और शांति पाना चाहे!
एक आदमी घृणा के बीज बोए और प्रेम की फसल काटना चाहे! एक आदमी चारों तरफ शत्रुता फैलाए और चाहे कि सारे लोग उसके मित्र हो जाएं! एक आदमी सबकी तरफ

गालियां फेंके और चाहे कि शुभाशीष सारे आकाश से उसके ऊपर बरसने लगें! यह असंभव है।
पर आदमी ऐसी ही असंभव चाह करता है--दि इंपासिबल डिजायर। मैं गाली दूं
और दूसरा मुझे आदर दे जाए, ऐसी असंभव कामना हमारे मन में चलती है। मैं दूसरे को घृणा करूं और दूसरे मुझे प्रेम कर जाएं। मैं किसी पर भरोसा न करूं और सब मुझ पर भरोसा कर लें। मैं सबको धोखा दूं और मुझे कोई धोखा न दे। मैं सबको दुख पहुंचाऊं, लेकिन मुझे कोई दुख न पहुंचाए।
जो हम बोएंगे वही हम पर लौटने लगेगा। जीवन का सूत्र ही यह है कि जो हम फेंकते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। चारों ओर हमारी ही फेंकी हुई ध्वनियां प्रतिध्वनित होकर हमें मिल जाती हैं। थोड़ी देर अवश्य लगती है। ध्वनि टकराती है बाहर की दिशाओं से, और लौट आती है। जब तक लौटती है तब तक हमें ख्याल भी नहीं रह जाता कि हमने जो गाली फेंकी थी वही वापस लौट रही है। बुद्ध का एक शिष्य एक रास्ते से गुजर रहा है। उसके साथ दस-पंद्रह संन्यासी हैं। जोर से पैर में उसके पत्थर लग जाता है रास्ते पर, खून बहने लगता है। शिष्य आकाश की तरफ हाथ जोड़ कर किसी आनंद-भाव में लीन हो जाता है। उसके साथी वे पंद्रह भिक्षु हैरानी में खड़े रह जाते हैं! शिष्य जब अपने ध्यान से वापस लौटता है तब उससे पूछते हैं कि आप क्या कर रहे थे? पैर में चोट लगी, पत्थर लगा, खून, और आप कुछ इस प्रकार हाथ जोड़े हुए थे जैसे किसी को धन्यवाद दे रहे हों!
शिष्य ने कहा, बस यह एक मेरा विष का बीज और बाकी रह गया था। मारा था किसी को पत्थर कभी, आज उससे छुटकारा हो गया। आज नमस्कार करके धन्यवाद दे दिया है प्रभु को, कि अब मेरे बोए हुए बीज कुछ भी न बचे, यह आखिरी फसल समाप्त हो गई।
लेकिन अगर आपको रास्ते पर चलते वक्त पत्थर पैर में लग जाए तो इसकी बहुत कम संभावना है कि आप ऐसा सोचें कि किसी बोए हुए बीज का फल हो सकता है। ऐसा नहीं सोच पाएंगे। संभावना यही है कि रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी आप एक गाली जरूर देंगे। पत्थर को भी गाली! और कभी ख्याल भी न करेंगे कि पत्थर को दी गई गाली, फिर बीज बो रहे हैं आप! पत्थर को दी हुई गाली भी बीज बनेगी। सवाल यह नहीं है कि किसको गाली दी। सवाल यह है कि आपने गाली दी, वह वापस लौटेगी।
सुना है मैंने कि गांव का एक साधारण ग्रामीण किसान बैलों को गाली देने में बहुत ही कुशल है, अपनी बैलगाड़ी में जोत कर। जीसस निकलते हैं गांव के रास्ते से। वह आदमी अपने बैलों को बेहूदी गालियां दे रहा है। बड़े आंतरिक संबंध बना रहा है गालियों से। जीसस उसे रोकते हैं और कहते हैं, पागल, तू यह क्या कर रहा है? वह आदमी कहता है कि कोई बैल मुझे गाली वापस तो नहीं लौटा देंगे, मेरा क्या बिगड़ेगा!
वह आदमी ठीक कहता है। हमारा गणित बिल्कुल ऐसा ही है। जो आदमी गाली वापस नहीं लौटा सकता उसे गाली देने में हर्ज क्या है? इसलिए अपने से कमजोर को देख कर हम सब गाली देते हैं। हम बेवक्त गाली देते हैं, जब कोई जरूरत भी न हो। कमजोर दिखा कि हमारा दिल मचलता है कि थोड़ा इसको सता लो।
जीसस ने कहा, बैलों को गाली तू दे रहा है, अगर वे गाली लौटा सकते तो कम खतरा था, क्योंकि निपटारा अभी हो जाता। लेकिन चूंकि वे गाली नहीं लौटा सकते, लेकिन गाली तो लौटेगी। तू मंहगे सौदे में पड़ेगा। यह गाली देना छोड़! जीसस की तरफ उस आदमी ने देखा, जीसस की आंखों को देखा, उनके आनंद को, उनकी शांति को देखा। उसने उनके पैर छुए और कहा कि मैं कसम लेता हूं, इन बैलों को गाली नहीं दूंगा।
जीसस दूसरे गांव चले गए। दो-चार दिन आदमी ने बड़ी मेहनत से अपने को रोका, लेकिन कसमों से दुनिया में कोई रुकावटें नहीं होतीं। रुकावट होती है समझ से! दो-चार दिन में प्रभाव क्षीण हुआ। वह आदमी अपनी जगह वापस लौट आया। उसने कहा, छोड़ो भी, ऐसे तो हम मुसीबत में पड़ जाएंगे। बैलगाड़ी से आना मुश्किल हो गया। हिसाब बैलगाड़ी चलाने का रखें कि गाली न देने का रखें। बैलों को जोतें कि अपने को जोते रहें। बैलों को सम्हालें कि खुद को सम्हालें। यह तो एक मुसीबत हो गई।

गाली उसने वापस देनी शुरू कर दी। चार दिन जितनी रोकी थी उतनी एक दिन में निकाल ली। रफा-दफा हुआ, मामला हलका हुआ, मन उसका शांत हुआ। कोई तीन-चार महीने बाद जीसस उस गांव से वापस निकल रहे थे। उसको पता भी नहीं था कि यह आदमी फिर मिल जाएगा रास्ते में। वह धुआंधार गालियां दे रहा है बैलों को। जीसस ने खड़े होकर कहा, यह क्या है मेरे भाई? उसने देखा जीसस को और फौरन बात बदली। उसने कहा बैलों से, देखो बैल, ये मैंने तुम्हें गालियां दीं, ऐसी मैं तुम्हें पहले दिया करता था। अब मेरे प्यारे बेटो, जरा तेजी से चलो!
जीसस ने कहा, तू बैलों को ही धोखा नहीं दे रहा है, तू मुझे भी धोखा दे रहा है। और तू मुझे धोखा दे इससे बहुत हर्जा नहीं है, तू अपने को धोखा दे रहा है। अंतिम धोखा तो खुद पर गिर जाता है। जीसस ने कहा, हो सकता है मैं दुबारा इस गांव फिर कभी न आऊं। मैं मान ही ले रहा हूं कि तू बैलों को गालियां नहीं दे रहा था, सिर्फ पुरानी गालियां बैलों को याद दिला रहा था। लेकिन किसलिए याद दिला रहा था? तू मुझे धोखा दे कि तू बैलों को धोखा दे, इसका बहुत अर्थ नहीं है, लेकिन तू अपने को ही धोखा दे रहा है।
जीवन में जब भी हम कुछ बुरा कर रहे हैं तो हम किसी दूसरे के साथ कर रहे हैं, यह भ्रांति है आपकी। प्राथमिक रूप से हम अपने ही साथ कर रहे हैं।
क्योंकि अंतिम फल हमें भोगने हैं। वह जो भी हम बो रहे हैं, उसकी फसल हमें काटनी है। इंच-इंच का हिसाब है। इस जगत में कुछ भी बेहिसाब नहीं जाता है। हम अपने शत्रु हो जाते हैं। हम कुछ ऐसा करते हैं जिससे हम अपने को ही दुख में डालते हैं, अपने ही दुख में उतरने की सीढ़ियां निर्मित करते हैं।
तो ठीक से देख लेना, जो आदमी अपना शत्रु है वही आदमी अधार्मिक है। और
जो अपना शत्रु है वह किसी का मित्र तो कैसे हो सकेगा? जो अपना भी मित्र नहीं, जो अपने लिए ही दुख के आधार बना रहा है, वह सबके लिए दुख के आधार बना देगा।
पहला पाप अपने साथ शत्रुता है। फिर उसका फैलाव होता है। फिर अपने निकटतम लोगों के साथ शत्रुता बनती है, फिर दूरतम लोगों के साथ। फिर जहर फैलता चला जाता है, हमें पता भी नहीं चलता। जैसे कि झील में, कोई शांत झील में पत्थर फेंक दे! चोट पड़ते ही पत्थर तो नीचे बैठ जाता है क्षण भर में, लेकिन झील की सतह पर उठी हुई लहरें दूर-दूर तक यात्रा पर निकल जाती हैं। लहरें चलती चली जाती हैं अनंत तक।
ऐसे ही हम जो करते हैं, हम तो करके चुक भी जाते हैं... आपने गाली दे दी, बात खत्म हो गई, फिर आप गीता पढ़ने लगे या कुछ भी करने लगे, लेकिन उस गाली की जो रिपल्स, जो तरंगें पैदा हुईं, वे चल पड़ीं। वे न मालूम कितने दूर के छोरों को छुएंगी! और जितना अहित उस गाली से होगा उतने सारे अहित के लिए आप जिम्मेवार हो गए! आप कहेंगे, कितना अहित हो सकता है एक गाली से? मैं कहता हूं, अकल्पनीय अहित हो सकता है। और जितना अहित हो जाएगा इस विश्व के तंत्र में, उतने के लिए आप जिम्मेवार हो जाएंगे। और कौन जिम्मेवार होगा? आपने उठाईं वे लहरें। आपने ही बोया वह बीज। अब वह चल पड़ा। अब वह दूर-दूर तक फैल जाएगा।
एक छोटी सी दी हुई गाली से क्या-क्या हो सकता है! अगर आपने अकेले में गाली दी हो और किसी ने न सुनी हो, तब तो शायद आप सोचेंगे कि कुछ भी नहीं होगा इसका परिणाम।
लेकिन इस जगत में कोई भी घटना निष्परिणामी नहीं है। उसके परिणाम होंगे ही। आप बहुत सूक्ष्म तरंगें पैदा करते हैं अपने चारों ओर। वे तरंगें फैलती हैं। उन तरंगों के प्रभाव में जो लोग भी आएंगे वे गलत रास्ते पर धक्का खाएंगे।
अभी बहुत काम चलता है सूक्ष्मतम तरंगों पर। और ख्याल में आता है कि अगर गलत लोग एक जगह इकट्ठे हों--सिर्फ चुपचाप बैठे हों, कुछ भी नहीं कर रहे हों, सिर्फ गलत हों--और आप उनके पास से गुजर जाएं, तो आपके भीतर जो गलत हिस्सा है वह ऊपर आ जाता है और जो ठीक हिस्सा है वह नीचे दब जाता है। दोनों हिस्से आपके भीतर हैं। अगर कुछ अच्छे लोग बैठे हों एक जगह--प्रभु का स्मरण करते हों, कि प्रभु का गीत गाते हों, कि किसी सदभावों के फूलों की सुगंध में जीते हों, कि सिर्फ मौन ही बैठे हों--जब आप इन लोगों के पास से गुजरते

हैं तो दूसरी घटना घटती है। आपका गलत हिस्सा नीचे दब जाता है, आपका श्रेष्ठ हिस्सा ऊपर आ जाता है।
आपकी संभावनाओं में इतने सूक्ष्मतम अंतर होते हैं कि हिसाब लगाना मुश्किल है। और हम चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर रहे हैं। एक छोटा सा गलत बोला गया शब्द कितनी दूर तक कांटों को बो जाएगा, हमें कुछ पता नहीं है।
बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे कि तुम चौबीस घंटे, राह पर कोई दिखे, उसकी मंगल की कामना करना। वृक्ष भी मिल जाए तो उसकी मंगल की कामना करके उसके पास से गुजरना। पहाड़ भी दिख जाए तो मंगल की कामना करके उसके निकट से गुजरना। राहगीर दिख जाए अनजान तो उसके पास से मंगल की कामना करके राह से गुजरना।
एक भिक्षु ने पूछा, इससे क्या फायदा?
बुद्ध ने कहा, इसके दो फायदे हैं। पहला तो यह कि तुम्हें गाली देने का अवसर न मिलेगा। तुम्हें बुरा ख्याल करने का अवसर न मिलेगा। तुम्हारी शक्ति नियोजित हो जाएगी मंगल की दिशा में। और दूसरा फायदा यह कि जब तुम किसी के लिए मंगल की कामना करते हो तो तुम उसके भीतर भी रिजोनेंस, प्रतिध्वनि पैदा करते हो। वह भी तुम्हारे लिए मंगल की कामना से भर जाता है।
इसलिए इस मुल्क में राह पर चलते हुए अनजान आदमी को भी राम-राम कहने की प्रक्रिया बनाई थी, जो शायद दुनिया में कहीं नहीं बनाई जा सकी। उस आदमी को देख कर हमने प्रभु का स्मरण किया। जो ठीक से नमस्कार करना जानते हैं वे सिर्फ उच्चारण नहीं करेंगे, वे उस आदमी में राम की प्रतिमा को भी देख कर गुजर जाएंगे। उन्होंने उस आदमी को देख कर प्रभु का स्मरण किया। उस आदमी की मौजूदगी प्रभु के स्मरण की घटना बन गई। इस मौके को छोड़ा नहीं, इस मौके पर एक शुभकामना पैदा की गई। प्रभु के स्मरण की घड़ी पैदा की गई। और हो सकता है वह आदमी शायद राम को मानता भी न हो और जानता भी न हो, लेकिन उत्तर में वह भी कहेगा राम-राम। उसके भीतर भी कुछ ऊपर आएगा। और अगर पुराने गांव की राह से गुजरें तो राह में पच्चीस दफा राम-राम कर लेना पड़ता है।
जीवन बहुत छोटी-छोटी घटनाओं से निर्मित होता है। मंगल की कामना या प्रभु का स्मरण आपके भीतर जो श्रेष्ठ है उसको ऊपर लाता है। और दूसरे के भीतर जो श्रेष्ठ है उसे भी ऊपर लाता है। जब आप किसी के सामने दोनों हाथ जोड़ कर सिर झुका देते हैं तो आप उसको भी झुकने का एक अवसर देते हैं। और झुकने से बड़ा अवसर इस जगत में दूसरा नहीं है। क्योंकि झुका हुआ सिर कुछ बुरा नहीं सोच पाता। झुका हुआ सिर गाली नहीं दे पाता। गाली देने के लिए अकड़ा हुआ सिर चाहिए।
और कभी आपने ख्याल किया हो या न किया हो, लेकिन अब आप ख्याल करना कि जब किसी को हृदयपूर्वक नमस्कार करके सिर झुकाएं, और अगर कल्पना भी कर सकें कि परमात्मा दूसरी तरफ है, तो आप अपने में भी फर्क पाएंगे और उस आदमी में भी फर्क पाएंगे। वह आदमी आपके पास से गुजरा तो आपने उसके लिए पारस का काम किया, उसके भीतर कुछ आपने सोना बना दिया। और जब आप किसी के लिए पारस का काम करते हैं तो दूसरा भी आपके लिए पारस बन जाता है। जीवन संबंध है, रिलेशनशिप है। हम संबंधों में जीते हैं। हम अपने चारों तरफ अगर पारस का काम करते हैं तो यह असंभव है कि बाकी लोग हमारे लिए पारस न हो जाएं। वे भी हो जाते हैं। अपना मित्र वही है जो अपने चारों ओर मंगल का फैलाव करता है, अपने चारों ओर शुभ की कामना करता है, जो अपने चारों ओर नमन से भरा हुआ है, अपने चारों ओर कृतज्ञता का ज्ञापन करता चलता है। और जो व्यक्ति दूसरों के लिए मंगल से भरा हो वह अपने लिए अमंगल से कैसे भर सकता है? जो दूसरों के लिए भी सुख की कामना से भरा हो वह अपने लिए दुख की कामना से नहीं भर सकता। वह अपना मित्र हो जाता है। और अपना मित्र हो जाना बहुत बड़ी घटना है। जो अपना मित्र हो गया वह धार्मिक हो गया। अब वह ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकता जिससे स्वयं को दुख मिले।
तो अपना हिसाब रख लेना चाहिए कि मैं ऐसे कौन-कौन से काम करता हूं जिससे मैं ही दुख पाता हूं। दिन में हम हजार काम कर रहे हैं जिनसे हम दुख पाते हैं। हजार बार पा चुके हैं। लेकिन कभी हम ठीक से तर्क नहीं समझ पाते हैं जीवन का कि हम इन कामों को करके दुख पाते हैं। वही बात जो आपको हजार

बार मुश्किल में डाल चुकी है, आप फिर कह देते हैं। वही व्यवहार जो आपको हजार बार पीड़ा में धक्के दे चुका है, आप फिर कर गुजरते हैं। वही सब दोहराए चले जाते हैं यंत्र की भांति!
जिंदगी एक पुनरुक्ति से ज्यादा नहीं मालूम पड़ती जैसी हम जीते हैं--एक मेकेनिकल रिपीटीशन। वही भूलें, वही चूकें! नयी भूलें करने वाले आविष्कारी आदमी भी बहुत कम हैं, बस पुरानी भूलें ही हम किए चले जाते हैं। इतनी बुद्धि भी नहीं कि एकाध नयी भूल करें। पुराना! कल किया था वही, परसों भी किया था वही! आज फिर वही करेंगे, कल फिर वही करेंगे।
मैं चाहूंगा कि आप इसके प्रति सजग होंगे, अपनी शत्रुता के प्रति सजग होंगे, तो अपनी मित्रता का आधार बनना शुरू होगा। कृष्ण या बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट जैसे लोग अपने लिए, अपने लिए ही, इतने आनंद का रास्ता बनाते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। ऊपर से हमें लगेगा कि ये लोग बिल्कुल त्यागी हैं, लेकिन मैं आपसे कहता हूं इनसे ज्यादा परम स्वार्थी और कोई भी नहीं है! हम त्यागी कहे जा सकते हैं, क्योंकि हमसे ज्यादा मूढ़ कोई भी नहीं है। हम जो भी महत्वपूर्ण है उसका त्याग कर देते हैं और जो व्यर्थ है उस कचरे को इकट्ठा कर लेते हैं। किंतु ये बहुत होशियार लोग हैं। ये जो व्यर्थ है उस सबको छोड़ देते हैं, जो सार्थक है उसको बचा लेते हैं।
जीसस की पूरी नयी बाइबिल का सार एक ही वचन हैः दूसरों के साथ वह मत करें जो आप नहीं चाहते कि दूसरे आपके साथ करें। और अगर इस वाक्य को ठीक से समझ लें तो धर्म का सूत्र समझ में आ जाए। कई बार ऐसा मजेदार होता है कि कृष्ण के किसी वाक्य की व्याख्या बाइबिल में होती है और बाइबिल के किसी वाक्य की व्याख्या गीता में होती है। कभी कुरान के किसी सूत्र की व्याख्या वेद में होती है, कभी वेद के किसी सूत्र की व्याख्या कोई यहूदी फकीर करता है। कभी बुद्ध का वचन चीन में समझा जाता है और कभी चीन में लाओत्से का कहा गया वचन हिंदुस्तान का कोई कबीर समझाता है।
लेकिन तथाकथित धर्मों ने ऐसी दीवारें खड़ी कर दी हैं इन सबके बीच कि इनमें बीच के जो बहुत आंतरिक संबंध के सूत्र दौड़ते हैं उनका हमें कोई स्मरण नहीं रहा। नहीं तो हर मंदिर और मस्जिद के नीचे सुरंग होनी चाहिए, जिनसे कोई भी मंदिर से मस्जिद में जा सके। और हर गुरुद्वारे के नीचे से मंदिर को जोड़ने वाली सुरंग होनी चाहिए कि कभी भी किसी की मौज आ जाए तो तत्काल गुरुद्वारे से मंदिर या मस्जिद से चर्च में जा सके। लेकिन सुरंगों की बात तो दूर, ऊपर के रास्ते भी बंद हैं--सब रास्ते बंद हैं, जो हमने अपने हाथों कर रखे हैं!
"अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
तीसवां प्रवचन

मृत्यु और परलोक

इस जगत में अज्ञान के अतिरिक्त और कोई मृत्यु नहीं है। अज्ञान ही मृत्यु है, इग्नोरेंस इ.ज डेथ।
क्या अर्थ हुआ इसका कि अज्ञान ही मृत्यु है? अगर अज्ञान मृत्यु है, तो
ही ज्ञान अमृत हो सकता है। अज्ञान मृत्यु है, इसका अर्थ हुआ कि मृत्यु कहीं है ही नहीं। हम नहीं जानते इसलिए मृत्यु मालूम पड़ती है। मृत्यु असंभव है। मृत्यु इस पृथ्वी पर सर्वाधिक असंभव घटना है जो हो ही नहीं सकती, जो कभी हुई नहीं, जो कभी होगी नहीं।
लेकिन रोज मृत्यु मालूम पड़ती है। हम अंधेरे में खड़े हैं, अज्ञान में खड़े हैं। जो नहीं मरता, वह मरता हुआ दिखाई पड़ता है। इस अर्थ में अज्ञान ही मृत्यु है। और जिस दिन हम यह जान लेते हैं उस दिन मृत्यु तिरोहित हो जाती है और अमृत ही, अमृतत्व ही शेष रह जाता है, इम्मारटैलिटी ही शेष रह जाती है।
कभी आपने ख्याल किया कि आपने किसी आदमी को मरते देखा?
आप कहेंगे, बहुत लोगों को देखा। पर मैं कहता हूं कि नहीं देखा! आज तक किसी व्यक्ति ने किसी को मरते नहीं देखा। मरने की प्रक्रिया आज तक देखी नहीं गई। जो हम देखते हैं वह केवल जीवन के विदा हो जाने की प्रक्रिया है, मरने की नहीं।
जैसे बटन दबाया हमने, बिजली का बल्ब बुझ गया। जो नहीं जानता वह कहेगाः बिजली मर गई। जो जानता है वह कहेगाः बिजली अभिव्यक्त थी, अब अनभिव्यक्त हो गई। प्रकट थी, अब अप्रकट हो गई। मर नहीं गई। फिर बटन दबेगा, बिजली फिर वापस लौट आएगी। फिर बटन दबाएंगे, बिजली फिर भीतर तिरोहित हो जाएगी।
जीवन समाप्त नहीं होता, केवल शरीर से विदा होता है। लेकिन विदाई हमें मृत्यु मालूम पड़ती है। क्यों मालूम पड़ती है? क्योंकि हमने कभी अपने भीतर के शरीर से अलग किसी अस्तित्व का अनुभव नहीं किया। हमारा अनुभव यही है कि मैं शरीर हूं। इसलिए जब शरीर समाप्त होगा, जलाने के योग्य हो जाएगा, तब स्वभावतः निष्कर्ष होगा कि मर गए। शरीर से अलग अपने भीतर जिसने किसी तत्व को नहीं जाना वह अज्ञानी है। अज्ञानी का मतलब यह नहीं कि जिसे यूनिवर्सिटी की डिग्री नहीं मिली है, विश्वविद्यालय का कोई सर्टिफिकेट नहीं है।
सच तो यह है, विश्वविद्यालय ने जितने सर्टिफिकेट दिए, अज्ञान उतना बढ़ा है, कम नहीं हुआ। कारण हैं इसके। कारण यह है कि विश्वविद्यालय के सर्टिफिकेट को लोग ज्ञान समझने लगे इसलिए असली ज्ञान की खोज की कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। अज्ञानी आदमी के पास सर्टिफिकेट नहीं होता, वह ज्ञान की खोज करता है। तथाकथित ज्ञानी के पास सर्टिफिकेट होता है, वह मान लेता है कि मैं ज्ञानी हूं। मेरे पास यूनिवर्सिटी की डिग्री है, और क्या चाहिए? ज्ञान तो सिर्फ एक है--स्वयं का ज्ञान। बाकी सब सूचनाएं हैं, इनफर्मेशन हैं, नालेज नहीं! बाकी सब परिचय है, ज्ञान नहीं। रसेल ने ज्ञान के दो हिस्से किए हैंः नालेज और एक्वेनटेंस--ज्ञान और परिचय। ज्ञान तो सिर्फ एक ही चीज का हो सकता है, वह मैं हूं। बाकी सब परिचय है, ज्ञान नहीं। अपने से पृथक जिसे भी मैं जानता हूं वह सिर्फ एक्वेनटेंस है, परिचय है। जान तो सिर्फ अपने को सकता हूं। क्योंकि अपने से जो भिन्न है उसके भीतर मेरा प्रवेश नहीं हो सकता। सिर्फ बाहर घूम सकता हूं, परिचय ही कर सकता हूं। ऊपर-ऊपर से जान सकता हूं, भीतर तो नहीं जा सकता। भीतर तो सिर्फ एक ही जगह जा सकता हूं--जहां मैं हूं।
यह बहुत मजे की बात है कि अपना परिचय नहीं होता, और दूसरे का ज्ञान नहीं होता। दूसरे का परिचय होता है, अपना ज्ञान होता है। अपना परिचय इसलिए नहीं होता क्योंकि अपने बाहर घूमने का उपाय नहीं; दूसरे का ज्ञान इसलिए नहीं होता क्योंकि दूसरे के भीतर प्रवेश नहीं है।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम अपना परिचय कर लेते हैं जो कि हो नहीं सकता, और हम दूसरे के ज्ञान को ज्ञान समझ लेते हैं जो हो नहीं सकता। यह अज्ञान की स्थिति है। अज्ञान में मृत्यु है। जब आप एक व्यक्ति को बुझते देखते हैं--बुझते, मरते नहीं!
इसलिए बुद्ध ने ठीक शब्द का उपयोग किया है। वह शब्द है निर्वाण। निर्वाण का अर्थ है, दीये का बुझना। बस दीया बुझ जाता है, कोई मरता नहीं। दिखाई पड़ती थी ज्योति, अब नहीं दिखाई पड़ती। देखने के क्षेत्र से विदा हो जाती है, अदृश्य में लीन हो जाती है। फिर प्रकट हो सकती है, फिर लीन हो सकती है। यह प्रकट-अप्रकट होने का क्रम अनंत चल सकता है--जब तक कि ज्योति पहचान न ले कि प्रकट में भी मैं वही हूं, अप्रकट में भी मैं वही हूं; न मैं प्रकट होती, न मैं अप्रकट होती; सिर्फ रूप प्रकट होता और अप्रकट होता है।
वह जो रूप के भीतर छिपा हुआ सत्य है वह न प्रकट में प्रकट होता, न अप्रकट में अप्रकट होता है; न जीवन में जीवित होता, न मृत्यु में मरता है। तब अमृत का अनुभव है। हम दूसरों को मरते देख कर, बुझते देख कर हिसाब लगा लेते हैं कि सब मरते हैं तो मैं भी मरूंगा। लेकिन कभी किसी मरने वाले से पूछा कि मर गए? लेकिन वह उत्तर नहीं देता। इसलिए मान लेते हैं कि हां में उत्तर देता होगा!
मौन को सम्मति का लक्षण समझने की बात सभी जगह ठीक नहीं है। मरे हुए आदमी से पूछो, मर गए? अगर वह उत्तर दे तो समझना मरा नहीं और अगर मौन रह जाए तो हम समझ लेते हैं कि मर गया। लेकिन मौन सम्मति का लक्षण नहीं! नहीं बोल पा रहा है, इसलिए मर गया, ऐसा समझने का कोई कारण नहीं।
दक्षिण में ब्रह्मयोगी, एक साधु ने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, कलकत्ता
और रंगून यूनिवर्सिटी में मरने के प्रयोग करके दिखाए थे। वह दस मिनट के लिए मर जाते थे। कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दस डाक्टर मौजूद थे, जिन्होंने सर्टिफिकेट लिखा कि यह आदमी मर गया। क्योंकि मृत्यु के जो भी लक्षण हैं चिकित्साशास्त्र के पास, पूरे हो गए थे। श्वास नहीं, बोल नहीं सकता, खून में गति नहीं रही, ताप गिर गया, नाड़ी बंद हो गई, हृदय की धड़कन नहीं है, सब सूक्ष्मतम यंत्रों ने कह दिया कि आदमी मर गया! उन दस ने लिखा, दस्तखत किए, क्योंकि ब्रह्मयोगी कह गए थे कि दस्तखत करके डेथ सर्टिफिकेट दे देना कि मैं मर गया! फिर दस मिनट बाद सब वापस लौट आया। श्वास फिर चली, धड़कन फिर चली, खून फिर बहा, उस आदमी ने आंख भी खोली, वह बोलने भी लगा, उठ कर बैठ गया! उसने कहा, अब मैं आपके सर्टिफिकेट के संबंध में क्या मानूं? आप बड़े जालसाज हैं, जिंदा आदमी को मरने का सर्टिफिकेट देते हैं! उन्होंने कहा, जहां तक हम जानते थे, मौत घट गई थी। उसके आगे हम नहीं जानते।
लेकिन उनमें से एक डाक्टर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन से मैं फिर मृत्यु का सर्टिफिकेट नहीं दे सका किसी को भी। क्योंकि उस दिन जो मैंने देखा उससे साफ हो गया कि मृत्यु के लक्षण सिर्फ विदा होने के लक्षण हैं। और चूंकि आदमी लौटना नहीं जानता, इसलिए हमारे सर्टिफिकेट सही हैं, वरना सब गलत हो जाते।
वह ब्रह्मयोगी लौटना जानता है। तीन बार, लंदन, कलकत्ता और रंगून विश्वविद्यालय में उन्होंने मर कर दिखाया। और तीनों जगह, पृथ्वी पर पहला आदमी है, जिसने तीन दफा मृत्यु का सर्टिफिकेट लिया।
यह हुआ क्या? जब ब्रह्मयोगी से चिकित्सक पूछते कि हुआ क्या? किया क्या?
तो वह कहते कि मैं सिर्फ सिकोड़ लेता हूं अपने जीवन को। जैसे कि सूरज अपनी किरणों को सिकोड़ ले, जैसे कि फूल अपनी पंखुड़ियों को बंद कर ले, जैसे पक्षी अपने पंखों को सिकोड़ कर और अपने घोंसले में बैठ जाए, ऐसे मैं सिकोड़ लेता हूं जीवन को--भीतर--भीतर--वहां जहां तुम्हारे यंत्र नहीं पकड़ पाते। होता तो मैं हूं ही, इसलिए वापस लौट आता हूं। फिर खोल देता हूं पंखों को, फिर जीवन के आकाश में उड़ आता हूं घोंसले के बाहर।
हम सब के भीतर वह गुह्य स्थान है जहां आत्मा सिकुड़ जाए तो फिर यंत्र पता नहीं लगा पाते, इंद्रियां पता नहीं लगा पातीं। असल में यंत्र इंद्रियों के एक्सटेंशन से ज्यादा नहीं हैं। यंत्र हमारी ही इंद्रियों का विस्तार है। आंख हैं, तो हमने दूरबीन और खुर्दबीन बनाई। वह आंख का

विस्तार है जो आंख को मैग्नीफाई कर देती है। कान है, तो टेलीफोन बनाया, वह कान का विस्तार है। मेरा हाथ है, यहां से बैठ कर मैं आपको छू नहीं सकता। मैं एक डंडा हाथ में पकड़ लूं और उससे आपको छुऊं तो डंडा मेरे हाथ का विस्तार हो गया। सारे यंत्र हमारी इंद्रियों के विस्तार हैं। अब तक एक भी यंत्र नहीं बना जो हमारी इंद्रियों से अन्य हो, विस्तार न हो। सब एक्सटेनशंस हैं।
इंद्रियां जिसे नहीं पकड़ पातीं, यंत्र कभी-कभी उसे पकड़ लेता है, सूक्ष्म होता है तो! लेकिन जो अतींद्रिय है उसे यंत्र भी नहीं पकड़ पाता। सूक्ष्म हो, इंद्रिय की पकड़ के बाहर हो, तो यंत्र पकड़ लेता है। लेकिन जो अतींद्रिय है--सूक्ष्म नहीं, अतींद्रिय, यानी इंद्रियों के पार, पैरासाइकिक--उसको फिर यंत्र भी नहीं पकड़ पाता।
जीवन-ऊर्जा पैरासाइकिक है, अतींद्रिय है। इसलिए कोई यंत्र उसकी गवाही नहीं दे सकता। इस जीवन-ऊर्जा को जानने का एक ही उपाय है, वह इंद्रियों के द्वारा नहीं, इंद्रियों के पीछे सरक कर! इंद्रियों के माध्यम से नहीं, इंद्रियों के माध्यम को छोड़ कर!
ज्ञानी इंद्रियों के माध्यम को छोड़ कर स्वयं को जानता है। और एक क्षण
भी यह झलक मिल जाए स्वयं की तो वह अमृत उपलब्ध हो जाता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं, वह सत्य दिखाई पड़ जाता है जिसका कोई प्रारंभ नहीं, कोई अंत नहीं। ज्ञानी अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।
अल्केमिस्ट कहते हैं कि हम खोज रहे हैं वह तत्व जिससे आदमी अमर हो जाएगा।
वे कभी न खोज पाएंगे! आदमी अमर है ही, किसी चीज से अमर करने की जरूरत नहीं है। चेतना अमर है ही। और ऐसा मत सोचना कि पदार्थ मरता है और चेतना अमर है। पदार्थ भी अमर है और चेतना भी अमर है।
पदार्थ इसलिए अमर है कि वह जीवित ही नहीं है। जो जीवित हो वही मर सकता है। पदार्थ कैसे मरेगा जब जीवित ही नहीं है? इसलिए पदार्थ अमर है, उसकी मृत्यु का कोई उपाय नहीं है।
आत्मा इसलिए अमर है कि वह जीवित है। जो जीवित है वह मर कैसे सकता है? जीवन की कोई मृत्यु नहीं हो सकती, मृत्यु का कोई जीवन नहीं हो सकता। पदार्थ का सिर्फ अस्तित्व है, जीवन नहीं। आत्मा का जीवन भी है और अस्तित्व भी।
इस बात को ख्याल में रख लेंः एक्झिस्टेंस एंड लाइफ बोथ--आत्मा की; पदार्थ की--एक्झिस्टेंस ओनली! पदार्थ सिर्फ है, लेकिन पदार्थ को अपने होने का पता नहीं है। आत्मा है भी और उसे अपने होने का भी पता है। बस यह होने का पता उसे जीवन बना देता है।
हम आत्मा हैं, क्योंकि हम हैं और हमें अपने होने का भी पता है, हम जीवित भी हैं। लेकिन हम क्या हैं, इसका हमें कोई भी पता नहीं। होने का पता हो और यह पता न हो कि क्या हैं, तो अज्ञान की स्थिति है। होने का पता हो और यह भी पता हो कि क्या हैं, तो ज्ञान की स्थिति है।
अज्ञानी में उतनी ही आत्मा है जितनी ज्ञानी में, रत्ती भर कम नहीं है। लेकिन अज्ञानी अपने प्रति बेहोश है, ज्ञानी अपने प्रति होश से भरा हुआ है। ऐसे व्यक्ति जो ज्ञान-अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं, वे परलोक में परम परात्पर ब्रह्म को पाते हैं।
परलोक का क्या अर्थ है? क्या मरने के बाद?
आमतौर से हमें यही ख्याल है कि परलोक का अर्थ मरने के बाद है। लेकिन
जब आत्मा मरती ही नहीं तो मरने के बाद परलोक का अर्थ ठीक नहीं है। परलोक कहीं मरने के बाद और नहीं है, परलोक अभी और यहीं मौजूद है, जस्ट बाइ दि कार्नर। पर हमें उसका कोई पता नहीं। जिसे अपना पता नहीं, उसे परलोक का पता नहीं हो सकता। क्योंकि परलोक में जाने का द्वार स्वयं का अस्तित्व है, स्वयं का ही होना है। जिसे अपना पता है, वह एक ही साथ परलोक और लोक की देहरी पर खड़ा हो जाता है। इस तरफ झांकता है तो लोक, उस तरफ झांकता है तो परलोक। बाहर सिर करता है तो लोक, भीतर सिर करता है तो परलोक।
परलोक अभी और यहीं है। ब्रह्म कहीं दूर नहीं है, आपके बिल्कुल पड़ोस में है, आपके पड़ोसी से भी ज्यादा पड़ोस में है। आपके बगल में जो बैठा है

आदमी, उसमें और आप में भी फासला है। लेकिन उससे भी पास ब्रह्म है। आपमें और उसमें फासला भी नहीं है।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली
दिल के आईने में है तस्वीरे यार
बस इतना ही फासला है, गर्दन झुकाने का। यह भी कोई फासला हुआ? बाहर लोक
है और भीतर परलोक है।
तो ध्यान रखें, लोक और परलोक का विभाजन समय में नहीं, स्थान में है। इस बात को ठीक से ख्याल में ले लें। लोक और परलोक का विभाजन टाइम डिवीजन नहीं है कि मैं मरूंगा, मरने की घटना या विदा होने की घटना समय में घटेगी, और फिर उस मरने के बाद जो होगा वह परलोक होगा। हमने अब तक परलोक को टेंपोरल समझा है, टाइम में बांटा है। परलोक भी स्पेसियल है, स्पेस में बंटा है, टाइम में नहीं। अभी यहीं लोक भी मौजूद है, परलोक भी मौजूद है; पदार्थ भी मौजूद है, परमात्मा भी मौजूद है। फासला समय का नहीं, फासला सिर्फ स्थान का है। और स्थान का भी फासला हमारी दृष्टि का फासला, अटेंशन का फासला है। अगर हम बाहर की तरफ ध्यान दे रहे हैं तो परलोक खो जाता है; अगर हम परलोक की तरफ ध्यान दें तो लोक खो जाता है।
रात आप सो जाते हैं तब लोक खो जाता है। मैं पूछता हूं, क्या आपको तब याद रहता है कि बाजार में आपकी एक दुकान है? आपका एक बेटा है? कि आपकी एक पत्नी है? कि आपका बैंक बैलेंस इतना है? कि आप कर्जदार हैं कि लेनदार हैं? यानी जब आप सोते हैं तो लोक खो जाता है। लेकिन परलोक शुरू नहीं होता। निद्रा, लोक और परलोक के बीच में है। निद्रा मूर्च्छा है। लोक भी खो जाता है, परलोक भी शुरू नहीं होता।
ध्यान की अवस्था लोक और परलोक के बीच में है। लोक खोता है, परलोक शुरू
हो जाता है।
जैसे एक आदमी अपने मकान के दरवाजे की दहलीज पर बैठ जाए आंख बंद करके,
तो न घर दिखाई पड़े, न बाहर दिखाई पड़े। फिर वह आदमी बाहर की तरफ देखे, तो भीतर का दिखाई न पड़े। फिर वह मुड़ कर खड़ा हो जाए, तो भीतर का दिखाई पड़े, बाहर का दिखाई न पड़े।
ऐसी तीन स्थितियां हुईं। लोक की--जब हम बाहर देख रहे हैं और कांशसनेस, चेतना बाहर की तरफ जाती हुई हो। परलोक की--जब चेतना भीतर की तरफ जाती हुई हो। निद्रा की--जब चेतना किसी तरफ जाती हुई नहीं, सो गई हो।
जब कहा जाता है कि परलोक में व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, तो क्या इसका यह मतलब है कि जिस व्यक्ति ने ब्रह्म को जाना, आत्मा की अमरता को जाना, वह मरने के बाद आनंद को उपलब्ध होगा और अभी नहीं होगा? नहीं, अभी हो जाएगा, यहीं हो जाएगा। लेकिन जो व्यक्ति इस अमृतत्व को नहीं जानता वह उस परलोक में, उस भीतर के लोक में, उस पार के परलोक में कैसे आनंद को उपलब्ध होगा? वह संसार में भी दुख पाता है, यानी बाहर भी दुख पाता है, और भीतर भी दुख पाता है।
इसे ठीक से समझ लें। बाहर इसलिए दुख पाता है कि जिसको यह ख्याल है कि मृत्यु है, वह बाहर कभी सुख नहीं पा सकता। मृत्यु का ख्याल बाहर के सब सुखों को विषाक्त कर जाता है, पायजनस कर जाता है। बाहर अगर सुख लेना है थोड़ा-बहुत तो मृत्यु को बिल्कुल भूलना पड़ता है। इसलिए हम मृत्यु को भुलाने की कोशिश करते हैं। लेकिन ध्यान रहे, जिसे भी हम भुलाते हैं उसकी और याद आती है। स्मृति का नियम हैः भुलाएं, याद आएगी!
अरथी निकलती है द्वार से तो लोग घर का दरवाजा बंद करके बच्चों को भीतर
कर लेते हैं--मौत याद न आ जाए! क्योंकि जिसे मौत याद आ गई उसके जीवन में संन्यास को ज्यादा देर नहीं है। जो मौत को भुला ले वही संसार में हो सकता है। इसलिए मौत को छिपाते हैं, हजार ढंग से छिपाते हैं।
गांव के बाहर बनाते हैं मरघट। मरा नहीं आदमी कि ले जाने की इतनी जल्दी पड़ती है जिसका हिसाब नहीं। रहने दें थोड़ी देर, लोगों को देख लेने दें, स्मरण कर लेने दें कि यही घटना उनकी भी घटने वाली है। जिस आदमी को वर्षों चाहा और प्रेम किया, उसको विदा करने की इतनी शीघ्रता क्यों है?
शीघ्रता का आंतरिक कारण है, जो मनोवैज्ञानिक है! मरे हुए की मौजूदगी हमें अपने मरे होने की खबर लाती है। मृत्यु का निशान न रह जाए जीवन के

पर्दे पर कहीं, उसे फौरन अलग कर दो। और मजे की बात यह है कि जन्म के बाद अगर कोई चीज की सरटेंटी है, कोई चीज निश्चित है, तो वह मृत्यु ही है। जन्म के बाद अगर कोई चीज प्रेडिक्टेबल है, किसी चीज की भविष्यवाणी की जा सकती है, तो वह मृत्यु है। बाकी किसी चीज की भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। भविष्यवाणी का यह मतलब नहीं कि तारीख और दिन बताया जा सकता है। भविष्यवाणी का यह मतलब कि मृत्यु होगी ही, इतना तय है। बाकी सब चीजें हों भी, न भी हों। विवाह हो भी सकता है, न भी हो। स्वास्थ्य रहे भी, न भी रहे। बीमारी आए भी, न भी आए। धन मिले भी, न भी मिले। लेकिन मृत्यु के बाबत ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हो भी, न भी हो।
जो इतनी निश्चित है घटना उसे हम बाहर रखते हैं और कई चीजों से भुलाते हैं। लेकिन हर जगह उसकी खबर मिल जाती है। फूल सुबह खिलता और सांझ मुर्झा जाता है और कह जाता है कि मौत है! प्रेम घड़ी भर खिलता और सूख जाता है और खबर दे जाता है कि मौत है! जवानी आती और चली जाती है और खबर दे जाती है कि मौत है! हरे पत्ते लगते और पतझड़ में झड़ जाते हैं, पर खबर दे जाते हैं कि मौत है! सुबह सूरज उगता और सांझ डूबने लगता है और खबर दे जाता है कि मौत है!
जिसकी जिंदगी में अभी अमृत का पता नहीं चला, उसका सब विषाक्त हो जाता है, सब पायजंड हो जाता है। कोई सुख हो नहीं सकता। जब तक मृत्यु की कालिमा पीछे खड़ी है, सब सुख अंधेरे हो जाते हैं। सच तो यह है कि मृत्यु की कालिमा दुख के क्षण में उतनी गहन नहीं होती, सुख के क्षण में बहुत गहन होकर दिखाई पड़ती है।
कीर्कगार्ड ने लिखा है कि प्रेम के क्षण में मृत्यु जितनी प्रगाढ़ मालूम होती है उतनी कभी नहीं मालूम होती। अगर कृष्णमूर्ति को सुनें, अगर वे डेथ पर बोलना शुरू करें तो लव पर जरूर बोलेंगे; अगर लव पर बोलना शुरू करें तो फिर डेथ पर जरूर बोलेंगे--उसी भाषण में--बाहर नहीं जा सकते। यह बात क्या है? प्रेम की, जहां सुख की झलक आई, वहां तत्काल पता लगता है कि जिसे हम प्रेम कर रहे हैं वह मरेगा, जो प्रेम कर रहा है वह भी मर जाएगा, बीच में जो प्रेम बह रहा है वह भी मर जाएगा।
प्रेम के सघन क्षण में मृत्यु बहुत प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती है। प्रेम सुख लाता है, पीछे से मृत्यु का स्मरण ले आता है। जहां-जहां सुख है वहां मौत पीछे खड़ी हो जाती है। इसीलिए तो सुख क्षणभंगुर है। हम ले भी नहीं पाते और मौत उसे हड़प जाती है।
जिसको भीतर के अमृत का पता नहीं वह परलोक में तो आनंद पा ही नहीं सकता,
इस लोक में भी सिर्फ दुख पाता है।
दूसरी बात भी कह देने जैसी है कि जो परलोक में आनंद पाता है वह इस लोक में भी आनंद पाता है। ये जुड़े हुए हैं। जिसे भीतर आनंद मिला उसे बाहर भी आनंद ही आनंद हो जाता है। ध्यान रहे, उसकी सारी दृष्टि बदल जाती है। जिसे भीतर आनंद नहीं मिला उसे बसंत में भी मृत्यु नजर आती है, पतझड़ दिखाई पड़ता है। उसे बच्चे के पीछे भी बूढ़े का जीर्ण-जर्जर शरीर दिखाई पड़ता है। उसे जवानी की तरंगों में भी मौत का गिर जाना और मिट जाना दिखाई पड़ता है। उसे सुख के क्षण में भी पीछे खड़े दुख की प्रतीति होती है। अज्ञान में सब सुख दुख हो जाते हैं।
ज्ञान में सब दुख भी सुख हो जाते हैं। उस तरह के व्यक्ति को पतझड़ में
भी आने वाले बसंत की पदचाप सुनाई पड़ती है। वृक्ष से सूखे गिरते पत्तों में भी नये पत्तों के अंकुरित होने की ध्वनि का बोध होता है। सांझ डूबते हुए सूरज में भी सुबह के उगने वाले सूरज की तैयारी का पता चलता है। विदा होते बूढ़े में भी पैदा होने वाले बच्चों के जन्म की खबर मिलती है। मृत्यु का द्वार भी उसे जन्म का द्वार बन जाता है। अंधेरा भी उसे प्रकाश की पूर्व-भूमिका मालूम पड़ती है। सुबह अंधेरा जब गहन हो जाता है तभी वह जानता है कि आने वाली भोर निकट है। दृष्टि बदल जाती है, सब उलटा हो जाता है।
एक युवक ने कल संन्यास लिया। मां को, पिता को वरदान मालूम पड़ना चाहिए! लेकिन मां मेरे पास आई, छाती पीट कर रोती है, कहती है कि मैं जहर खाकर मर जाऊंगी। ये कपड़े उतरवा दो! मां कहती है, मेरे तीन बच्चे पहले मर चुके! मेरा मन उससे पूछने का होता है--लेकिन पूछता नहीं--कि तीन बच्चे मर गए
तब तूने जहर नहीं खाया। इसने कुछ भी नहीं किया, सिर्फ गेरुआ वस्त्र ऊपर

डाले और तू जहर खाकर मर जाएगी? यह तेरा लड़का चोर हो जाता, तब तू जहर खाकर मरती? यह लड़का बेईमान हो जाता, तब तू जहर खाकर मरती? यह लड़का पोलिटीशियन हो जाता, तब तू जहर खाकर मरती?
नहीं, तब अभिशाप भी वरदान मालूम होते। अभी वरदान उतरा है इस लड़के के ऊपर! मां को नाचना चाहिए, पिता को आनंद मनाना चाहिए। फिर यह कहीं जा नहीं रहा है छोड़ कर, घर ही रहेगा। लेकिन नहीं, अज्ञान में वरदान भी अभिशाप मालूम पड़ते हैं। वह छाती पीटती है और रोती है। नहीं, इसमें कुछ आकस्मिक नहीं है, बड़ी स्वाभाविक बात है। अज्ञान बड़ा स्वाभाविक है, आकस्मिक नहीं है।
बुद्ध जैसे व्यक्ति ने संन्यास लिया और जब बारह वर्ष के बाद ज्ञान के सूर्य को जगा कर घर वापस लौटे, तब भी बाप को दिखाई नहीं पड़ा कि बेटे का जीवन रूपांतरित हुआ। उन्हें दिखाई न पड़ा कि लाखों लोगों के जीवन में बुद्ध से रोशनी पहुंची। दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ पीछे खड़े हैं। उनके पीत वस्त्रों में उनके भीतर का प्रकाश झलकता है। लेकिन बाप ने गांव के दरवाजे पर यही कहा कि मैं तुझे अभी भी माफ कर सकता हूं। तू वापस लौट आ। यह भूल छोड़, बहुत हो चुका, नासमझी बंद कर। मुझ बूढ़े को इस बुढ़ापे में मृत्यु के निकट होने में दुख मत दे।
बाप को नहीं दिखाई पड़ सका कि किससे वे कह रहे हैं। बुद्ध हंसने लगे। बुद्ध ने कहा, गौर से तो देख लें। बारह वर्ष पहले जो घर से गया था, वही वापस नहीं लौटा, वह तो कभी का जा चुका। यह कोई और है, जरा गौर से तो देखें। लेकिन बाप ने कहा, तू मुझे सिखाएगा? मैं तुझे जानता नहीं? मेरा खून बहता है तेरी नसों में। मैं तुझे जितना जानता हूं उतना कौन तुझे जान सकता है?
बुद्ध ने कहा, आप अपने को ही जान लें तो काफी है। मुझे जानने के भ्रम में मत पड़ें। क्योंकि दूसरे को जानने के भ्रम में वही पड़ता है जो स्वयं को नहीं जानता है।
बाप की तो आग भड़क गई, क्रोध भारी हो गया। उन्होंने कहा, यह मैंने सोचा
भी न था कि तू अपने ही बाप से इस तरह बातें बोलेगा।
बुद्ध जैसा बेटा भी घर में हो तो बाप के लिए अभिशाप मालूम पड़ता है। अज्ञान सब वरदानों को अभिशाप कर लेता है, सब फूलों को कांटा बना लेता है।
ज्ञान कांटों को भी फूल बना लेता है। जिसे अंतःलोक में आनंद है उसे बाहर के जगत में दुख की कोई रेखा भी शेष नहीं रह जाती, और जिसे बाहर के लोक में दुख है उसे भीतर के लोक का कोई पता ही नहीं होता, आनंद की तो बात ही मुश्किल है।
"अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
इकतीसवां प्रवचन

भगवत्-प्रेम

जगत में तीन प्रकार के प्रेम हैं। एकः वस्तुओं का प्रेम, जिससे हम सब परिचित हैं। अधिकतर हम वस्तुओं के प्रेम से ही परिचित हैं। दूसराः व्यक्तियों का प्रेम। कभी लाख में एकाध आदमी व्यक्ति के प्रेम से परिचित होता है। लाख में एक कह रहा हूं, सिर्फ इसलिए कि आपको अपने बचाने की सुविधा रहे कि मैं तो लाख में एक हूं ही। नहीं, इस तरह बचाना मत!
एक फ्रेंच चित्रकार सींजां एक गांव में ठहरा। उस गांव के होटल के मैनेजर ने कहा, यह गांव स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अच्छा है। यह पूरी पहाड़ी अदभुत है। सींजां ने पूछा, इसके अदभुत होने का राज, रहस्य, प्रमाण? उस मैनेजर ने कहा, राज और रहस्य तुम रहोगे यहां तो पता चल जाएगा। प्रमाण यह है कि इस पूरी पहाड़ी पर रोज एक आदमी से ज्यादा नहीं मरता। सींजां ने जल्दी से पूछा, आज मरने वाला आदमी मर गया या नहीं? नहीं, तो मैं भागूं।
आदमी अपने को बचाने के लिए बहुत आतुर है। अगर मैं कहूं लाख में एक, तो
आप कहेंगे बिल्कुल ठीक! छोड़ा अपने को! आपको भर नहीं छोड़ रहा हूं, ख्याल रखना। लाख में एक आदमी व्यक्ति के प्रेम को उपलब्ध होता है। शेष आदमी वस्तुओं के प्रेम में ही जीते हैं। आप कहेंगे, हम व्यक्तियों को प्रेम करते हैं। लेकिन मैं आपसे कहूंगा, वस्तुओं की भांति, व्यक्तियों की भांति नहीं!
आज एक मित्र आए संन्यास लेने, पत्नी को साथ लेकर आए। पत्नी को समझाया
कि वे घर छोड़ कर नहीं जाएंगे, पति ही रहेंगे, पिता ही रहेंगे। संन्यास उनकी आंतरिक घटना है, चिंतित होओ मत, घबराओ मत! लेकिन उस पत्नी ने कहा, नहीं, मैं संन्यास नहीं लेने दूंगी।
मैंने कहा, कैसा प्रेम है यह? अगर प्रेम गुलामी बन जाए तो प्रेम है? प्रेम अगर स्वतंत्रता न दे तो प्रेम है? प्रेम अगर जंजीरें बन जाए तो प्रेम है? फिर यह पति व्यक्ति न रहा, वस्तु हो गया--युटिलिटेरियन! यह व्यक्ति नहीं रहा! पत्नी कहती है, मैं आज्ञा नहीं दूंगी तो नहीं लेंगे संन्यास! व्यक्ति का सम्मान न रहा, उसकी स्वतंत्रता का सम्मान न रहा, उसका कोई अर्थ न रहा, वह वस्तु हो गया।
हम व्यक्तियों को प्रेम भी करते हैं तो पजेस करते हैं, मालिक हो जाते हैं। मालिक व्यक्तियों का कोई नहीं हो सकता, सिर्फ वस्तुओं की मालकियत होती है। पत्नी पति को पजेस करती है और कहती है मालकियत है। कोई पति कहता है पत्नी को कि मेरी हो, तो फर्नीचर में और पत्नी में कोई भेद नहीं रह जाता। यह उपयोग हो गया, व्यक्ति का सम्मान न हुआ। दूसरे व्यक्ति की निजता का, आत्मा का कोई आदर न हुआ। इसलिए मैं कहता हूं, वस्तुओं को ही हम प्रेम करते हैं। यदि व्यक्तियों को भी प्रेम करते हैं तो उनको भी वस्तु बना लेते हैं। व्यक्तियों का प्रेम, मैंने कहा, लाख में एक आदमी को उपलब्ध होता है। व्यक्ति के प्रेम का अर्थ है, दूसरे का अपना मूल्य है। मेरी उपयोगिता भर ही मूल्य नहीं है उसका, युटिलिटेरियन, इतना ही उसका मूल्य नहीं है, उसका अपना निजी मूल्य है। वह मेरा साधन नहीं है, वह स्वयं अपना साध्य है। एमेनुअल कांट ने कहा है--नीति के परम सूत्रों में एक सूत्र--कि अनीति
का एक ही अर्थ हैः दूसरे व्यक्ति का साधन की तरह उपयोग करना अनैतिक है और दूसरे व्यक्ति को साध्य मानना नैतिक है। गहरे से गहरा सूत्र है यह कि दूसरा व्यक्ति अपना साध्य है स्वयं। मैं उससे प्रेम करता हूं, एक व्यक्ति की भांति, एक वस्तु की भांति नहीं। इसलिए मैं उसका मालिक कभी नहीं हो सकता हूं।
इसलिए व्यक्ति के प्रेम को ही हम उपलब्ध नहीं होते।
फिर तीसरा प्रेम हैः भगवत्-प्रेम। वह अस्तित्व का प्रेम है!
यूं तीन प्रकार के प्रेम हुएः लव टुवर्ड्स दि एक्झिस्टेंस, लव टुवर्ड्स दि पर्सन एंड लव टुवर्ड्स दि आब्जेक्ट्स। वस्तुओं के प्रति

प्रेम--जैसे मकान, धन-दौलत, पद-पदवी! व्यक्तियों के प्रति प्रेम--मनुष्य! अस्तित्व के प्रति प्रेम--भगवत्-प्रेम, समग्र अस्तित्व को प्रेम।
इसको थोड़ा ठीक से देख लेना जरूरी है। जब हम वस्तुओं को प्रेम करते हैं
तब हमें सारे जगत में वस्तुएं ही दिखाई पड़ती हैं, कोई परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है। क्योंकि जिसे हम प्रेम करते हैं उसे ही हम जानते हैं। प्रेम जानने की आंख है। प्रेम के अपने ढंग हैं जानने के। सच तो यह है कि प्रेम ही इंटिमेट नोइंग है। आंतरिक, आत्मीय जानना ही प्रेम है!
इसलिए जब हम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं तभी हम जानते हैं। क्योंकि जब हम प्रेम करते हैं तभी वह व्यक्ति हमारी तरफ खुलता है। जब हम प्रेम करते हैं तब हम उसमें प्रवेश करते हैं। जब हम प्रेम करते हैं तब वह निर्भय होता है। जब हम प्रेम करते हैं तब वह छिपाता नहीं। जब हम प्रेम करते हैं तब वह उघड़ता है, खुलता है, भीतर बुलाता है--आओ, अतिथि बनो! ठहराता है हृदय के घर में! जब कोई व्यक्ति प्रेम करता है किसी को, तभी जान पाता है। अगर अस्तित्व को कोई प्रेम करता है, तभी जान पाता है परमात्मा को। भगवत्- प्रेम का अर्थ हैः जो भी है, उसके होने के कारण प्रेम है।
कुर्सी को हम प्रेम करते हैं, क्योंकि उस पर हम बैठते हैं, आराम करते हैं। टूट जाएगी टांग उसकी, कचरेघर में फेंक देंगे। उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, उसे हटा देंगे। जो लोग मनुष्यों को भी इसी भांति प्रेम करते हैं उनका भी यही हाल है। पति को कोढ़ हो जाएगा तो पत्नी डायवोर्स दे देगी, अदालत में तलाक कर देगी। टूट गई टांग कुर्सी की, हटाओ! पत्नी कुरूप हो जाएगी, रुग्ण हो जाएगी, अस्वस्थ हो जाएगी, अंधी हो जाएगी, पति तलाक कर देगा। हटाओ! तब तो वस्तु हो गए लोग! जो व्यक्ति सिर्फ वस्तुओं को प्रेम करता है उसके लिए सारा जगत मैटीरियल हो जाता है, वस्तु-मात्र हो जाता है! व्यक्ति में भी वस्तु दिखाई पड़ती है, फिर भागवत-चैतन्य तो कहीं दिखाई नहीं पड़ सकता। भागवत-चैतन्य को अनुभव करने के लिए पहले वस्तुओं के प्रेम से व्यक्तियों के प्रेम तक उठना पड़ता है, फिर व्यक्तियों के प्रेम से अस्तित्व के प्रेम तक उठना पड़ता है। जो व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करता है वह मध्य में आ जाता है। एक तरफ वस्तुओं का जगत होता है, दूसरी तरफ भगवान का अस्तित्व होता है। इन दोनों के बीच खड़ा हो जाता है। उसे दोनों तरफ दिखाई पड़ने लगता है--वस्तुओं का संसार और अस्तित्व का लोक! फिर वह आगे बढ़ सकता है।
सुना है मैंने, रामानुज एक गांव से गुजरते हैं। एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे भगवान से मिला दें। मुझे भगवान से प्रेम करा दें। मैं भगवत्- प्रेम का प्यासा हूं। रामानुज ने कहा, ठहरो, इतनी जल्दी मत करो। तुमसे मैं कुछ पूछूं? तुमने कभी किसी को प्रेम किया है? उसने कहा, कभी नहीं, कभी नहीं! मुझे तो सिर्फ भगवान से प्रेम है। रामानुज ने कहा, कभी किसी को किया हो भूल-चूक से? उस आदमी ने कहा, बेकार की बातों में समय क्यों जाया करवा रहे हैं? प्रेम इत्यादि से मैं सदा दूर रहा हूं। मैंने कभी किसी को प्रेम किया ही नहीं। रामानुज ने कहा, फिर तुमसे कहता हूं, एक बार सोचो, किसी को किया हो, किसी पौधे को किया हो, किसी आदमी को किया हो, किसी स्त्री को किया हो, किसी बच्चे को किया हो, किसी को भी किया हो!
स्वभावतः उस आदमी ने सोचा कि अगर मैं कहूं कि मैंने किसी को प्रेम किया है तो रामानुज कहेंगे कि अयोग्य है तू। इसलिए उसने कहा, मैंने किया ही नहीं। उसने कहा कि मैं साफ कहता हूं, प्रेम से मैं सदा दूर रहा, मुझे तो भगवत्-प्रेम की आकांक्षा है।
रामानुज ने कहा, फिर मैं बड़ी मुश्किल में हूं। फिर मैं कुछ भी न कर पाऊंगा। क्योंकि अगर तूने किसी को थोड़ा भी प्रेम किया होता तो उसी प्रेम की किरण के सहारे मैं तुझे भगवत्-प्रेम के सूरज तक पहुंचा देता। थोड़ा सा भी तूने किसी में झांका होता प्रेम से तो मैं तुझे पूरे अस्तित्व के द्वार में धक्का दे देता। लेकिन तू कहता है कि तूने प्रेम किया ही नहीं। यह तो ऐसे हुआ कि मैं किसी आदमी से पूछूं कि तूने कभी रोशनी देखी? मिट्टी का दीया जलता हुआ देखा? वह कहे, नहीं, मुझे तो सूरज दिखा दें, दीया मैंने कभी देखा ही नहीं! पूछता हूं कि कभी तुझे एकाध किरण छप्पर में से फूटती हुई दिखाई पड़ी होगी!

वह कहे, कहां की बातें कर रहे हैं? किरण वगैरह से अपना कोई संबंध ही नहीं, हम तो सूरज के प्रेमी हैं।
तो रामानुज ने कहा, जैसे उस आदमी से मुझे कहना पड़े कि क्षमा कर, तू किरण भी नहीं खोज पाया, सूरज अब तुझे कैसे समझाऊं? क्योंकि हर किरण सूरज का रास्ता है। व्यक्ति का प्रेम भी भगवत्-प्रेम की शुरुआत है। व्यक्ति का प्रेम एक छोटी सी खिड़की है, झरोखा है, जिसमें से हम किसी एक व्यक्ति में से परमात्मा को देखते हैं। वह खिड़की है। तो रामानुज ने कहा, तू एक में भी झांक सका हो तो मैं तुझे सबमें झांकने की कला बता दूं। लेकिन तू कहता है तूने कभी झांका ही नहीं।
हम वस्तुओं में जीते हैं, हम व्यक्तियों में झांकते नहीं। क्यों? क्या बात है?
वस्तुओं के साथ बड़ी सुविधा है, व्यक्तियों के साथ झंझट है! छोटे से व्यक्ति के साथ भी, घर में एक बच्चा पैदा हो जाए, अभी दो साल का बच्चा है, लेकिन वह भी उपद्रव है। व्यक्ति है, वह भी स्वतंत्रता मांगता है। उससे कहो इस कोने में बैठो, तो फिर उस कोने में बिल्कुल नहीं बैठता है। उससे कहो बाहर मत जाओ, तो बाहर जाता है। उससे कहो फलां चीज मत छुओ, तो छूकर दिखलाता है कि मेरी भी आत्मा है, मैं भी हूं, आप ही नहीं हैं!
इसलिए आज अमरीका या फ्रांस या इंग्लैंड में लोग कहते हैं कि एक बच्चे
की बजाय एक टेलीविजन सेट खरीद लेना बेहतर है। टेलीविजन सेट का जब चाहो बटन दबाओ कि चले; बंद करो, बंद हो जाए। ऑन-ऑफ होता है। व्यक्ति ऑन-ऑफ नहीं होता। उसको आप नहीं कर सकते ऑन-ऑफ!
एक छोटे से बच्चे को मां दबा-दबा कर सुला रही है, ऑफ करना चाह रही है,
वह ऑन हो-हो जा रहा है। वह कह रहा है, नहीं, अभी नहीं सोना है। छोटा सा बच्चा है। इनकार करता है कि उसके साथ वस्तु जैसा व्यवहार न किया जाए। उसके भीतर परमात्मा है।
व्यक्ति से प्रेम करने में डर लगता है, क्योंकि व्यक्ति स्वतंत्रता मांगेगा। वस्तुओं से प्रेम करना बड़ा सुविधापूर्ण है, वे स्वतंत्रता नहीं मांगतीं। तिजोरी में बंद किया, ताला डाला, आराम से सो रहे हैं। रुपये तिजोरी में बंद हैं। न भागते, न निकलते, न विद्रोह करते, न बगावत करते, न कहते कि आज इरादा नहीं है चलने का हमारा, आज नहीं चलेंगे! नहीं, जब चाहो तब हाजिर होते हैं, जैसे चाहो वैसे हाजिर होते हैं। वस्तुएं गुलाम हो जाती हैं इसलिए हम वस्तुओं को चाहते हैं।
जो आदमी भी दूसरे की स्वतंत्रता नहीं चाहता वह आदमी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर पाएगा। और जो व्यक्ति को प्रेम नहीं कर पाएगा वह भगवत्-प्रेम के झरोखे पर ही नहीं पहुंचा तो भगवत्-प्रेम के आकाश में तो उतरने का उपाय नहीं है।
भगवत्-प्रेम का अर्थ हैः सारा जगत एक व्यक्तित्व है। दि होल एक्झिस्टेंस इ.ज पर्सनल। भगवत्-प्रेम का अर्थ हैः जगत नहीं है, भगवान है! इसका मतलब समझते हैं? अस्तित्व नहीं है, भगवान है। क्या मतलब हुआ? इसका मतलब हुआ कि हम पूरे अस्तित्व को व्यक्तित्व दे रहे हैं। हम पूरे अस्तित्व को कह रहे हैं कि तू भी है। हम तुझसे बात भी कर सकते हैं।
इसलिए भक्त का अर्थ है जगत को जिसने व्यक्तित्व दिया! भक्त का अर्थ है जगत को जिसने भगवान कहा! भक्त का अर्थ है ऐसा प्रेम से भरा हुआ हृदय जो इस पूरे अस्तित्व से एक व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है। सुबह उठता है तो सूरज को हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है। सूरज को! नासमझ नहीं कर रहे हैं। हालांकि बहुत से नासमझ नमस्कार कर रहे हैं, लेकिन जिन्होंने शुरू किया था वे नासमझ नहीं थे। सूरज को नमस्कार उस आदमी ने किया था जिसने सारे अस्तित्व को व्यक्तित्व दे दिया था। फिर सूरज का भी व्यक्तित्व था। तो हमने कहा, सूर्य देवता है, रथ पर सवार है, घोड़ों पर जुता हुआ है, दौड़ता आकाश में है। सुबह होती जागता, सांझ होती अस्त होता है। ये बातें वैज्ञानिक नहीं हैं, ये बातें धार्मिक हैं। ये बातें पदार्थगत नहीं हैं, ये बातें आत्मगत हैं। नदियों को नमस्कार किया, व्यक्तित्व दे दिया! वृक्षों को नमस्कार किया, व्यक्तित्व दे दिया! सारे जगत को व्यक्तित्व दे दिया, कहा कि तुममें भी व्यक्तित्व है।

आज भी आप कभी किसी पीपल के पास नमस्कार करके गुजर जाते हैं। लेकिन आपने ख्याल नहीं किया होगा कि जो आदमी आदमियों से वस्तु जैसा व्यवहार करता है उसका पीपल को नमस्कार करना एकदम सरासर झूठ है। पीपल को तो वही नमस्कार कर सकता है जो जानता है कि पीपल भी व्यक्ति है। वह भी परमात्मा का हिस्सा है। उसके पत्ते-पत्ते में भी उसी की छाप है। कंकड़-कंकड़ में भी उसी की पहचान है। जगह-जगह वही है, अनेक-अनेक रूपों में। चेहरे होंगे भिन्न, वह जो भीतर छिपा है वह भिन्न नहीं है। आंखें होंगी अनेक, लेकिन जो झांकता है उनसे वह एक है। हाथ होंगे अनंत, लेकिन जो स्पर्श करता है उनसे वह वही है। गदर के समय, अठारह सौ सत्तावन में एक संन्यासी, जो पंद्रह वर्ष से मौन था, नग्न रात में गुजर रहा था। चांदनी रात थी, चांद था आकाश में, वह नाच रहा था, गीत गा रहा था, धन्यवाद दे रहा था चांद को। उसे पता नहीं था कि उसकी मौत करीब है। नाचते हुए वह निकल गया नदी की तरफ। बीच में अंग्रेज फौज का पड़ाव था। फौजियों ने समझा कि यह कोई जासूस मालूम पड़ता है। तरकीब निकाली है इसने कि नग्न होकर फौजी पड़ाव से गुजर रहा है। उन्होंने पकड़ लिया।
और जब उससे पूछताछ की और वह नहीं बोला तब शक और भी पक्का हो गया कि वह जासूस है। बोलता क्यों नहीं? हंसता है, मुस्कुराता है, नाचता है--बोलता क्यों नहीं? मैंने इसलिए कहा गीत गाता हुआ कि वाणी से नहीं, ऐसे भी गीत हैं जो प्राणों से गाए जाते हैं, ऐसे भी गीत हैं जो शून्य में उठते और शून्य में ही खो जाते हैं। वह तो मौन था, शब्द से तो चुप था, पर गीत गाता हुआ, नाचता हुआ, अपने समग्र अस्तित्व से पूर्णिमा के चांद को धन्यवाद दे रहा था।
सिपाहियों ने कहा, बोलता क्यों नहीं? मुस्कुराता है, बेईमान है, जासूस है। उन्होंने भाला उसकी छाती में भोंक दिया।
उस संन्यासी ने संकल्प लिया था कि एक ही शब्द बोलूंगा, आखिरी, अंतिम
और मृत्यु के द्वार पर। इस जगत से पार होते हुए धन्यवाद का एक शब्द बोलूंगा इस पार, बोल कर विदा हो जाऊंगा। कठिन पड़ा होगा उसको कि क्या शब्द बोले! छाती में घुस गया भाला, खून के फव्वारे बरसने लगे। वह जो नाचता था, मरने के करीब पहुंच गया। उस संन्यासी ने कहा, तत्वमसि श्वेतकेतु! उपनिषद का महावाक्य उसने कहा, श्वेतकेतु, तू भी वही है--दैट आर्ट दाऊ--तू भी वही है!
नहीं समझे होंगे वे अंग्रेज सिपाही। लेकिन उस अंग्रेज सिपाही से, जिसने उसकी छाती में भाला भोंका, उसने कहा, तू भी वही है! इस खिड़की में से भी वह उसी को देख पाया। इस भाला भोंकती हुई खिड़की में से भी उसी का दर्शन हुआ। भगवत्-प्रेम को उपलब्ध हुआ होगा तभी ऐसा हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता।
भगवत्-प्रेम का अर्थ हैः सारा जगत व्यक्ति है। व्यक्तित्व है जगत के पास अपना, उससे बात की जा सकती है। इसलिए भक्त बोल लेता है उससे। मीरा पागल मालूम पड़ती है दूसरों को, क्योंकि वह बातें कर रही है कृष्ण से। हमें पागल मालूम पड़ेगी, क्योंकि हमारे लिए तो वस्तुओं के अतिरिक्त जगत में और कुछ भी नहीं है। व्यक्ति भी नहीं है तो परम व्यक्ति कैसे होगा? लेकिन मीरा बातें कर रही है उससे। सूरदास उसका हाथ पकड़ कर चल रहे हैं, आदान-प्रदान हो रहा है, डायलाग है, चर्चा होती है, प्रश्न-उत्तर हो जाते हैं, पूछा जाता है और प्रतिसंवाद हो जाता है।
जब जीसस सूली पर लटके और उन्होंने ऊपर आंख उठा कर कहा, हे प्रभु, माफ
कर देना इन सबको क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! तब यह आकाश से नहीं कहा होगा। आकाश से कोई बोलता है? यह आकाश में उड़ते पक्षियों से नहीं कहा होगा! पक्षियों से कोई बोलता है? भीड़ खड़ी थी नीचे, उसने भी आकाश की तरफ देखा होगा। लेकिन आकाश में चलती हुई सफेद बदलियों के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा होगा। नीला आकाश खाली और शून्य। लोग हंसे होंगे मन में कि पागल है! लेकिन जीसस के लिए सारा जगत प्रभु है। कह दिया कि क्षमा कर देना इन्हें क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं!
भगवत्-प्रेम हो तो व्यक्ति और परम व्यक्ति के बीच चर्चा हो पाती है, संवाद हो पाता है, आदान-प्रदान हो पाता है। और उससे मधुर संवाद, उससे मीठा

लेन-देन, उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार और कोई भी नहीं है। प्रार्थना उसका नाम है, भगवत्-प्रेम में वह घटित होती है।
भगवत्-प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति इस लोक में भी आनंद को उपलब्ध होता है, उस लोक में भी। लेकिन संशय से भरा हुआ, भगवत्-प्रेम से रिक्त, इस लोक में भी दुख पाता है, उस लोक में भी। दुख हमारा अपना अर्जन है, हमारी अपनी अर्निंग है। दुख पाना हमारी नियति नहीं, हमारी भूल है। दुख पाने के लिए हमारे अतिरिक्त और कोई उत्तरदायी नहीं, और कोई रिस्पांसिबल नहीं है। दुखी हैं तो कारण है कि संशय को जगह दे दी, दुखी हैं तो कारण है कि व्यक्ति को खोजा नहीं, परम व्यक्ति की तरफ गए नहीं। आनंदित जो होता है उसके ऊपर परमात्मा कोई विशेष कृपा नहीं करता है, वह केवल उपयोग कर लेता है जीवन के अवसर का और प्रभु के प्रसाद से भर जाता है।
गड्ढे हैं, वर्षा होती है तो गड्ढों में पानी भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। पर्वत-शिखरों पर भी वर्षा होती है। लेकिन पर्वत-शिखरों पर झील नहीं बनती, पानी नीचे बह कर गड्ढों में पहुंच कर झील बन जाता है। पर्वत-शिखरों पर वर्षा होती है, लेकिन वे पहले से ही भरे हुए हैं। उनमें जगह नहीं है कि पानी भर जाए। झीलें खाली हैं इसलिए पानी भर जाता है।
जो व्यक्ति संशय से भरा है, भगवत्-प्रेम से खाली है, उसके पास संशय का पहाड़ होता है। ध्यान रखें, बीमारियां अकेली नहीं आतीं, बीमारियां सदा समूह में आती हैं, बीमारियां भीड़ में आती हैं। ऐसा नहीं होता है कि किसी आदमी में एक संशय मिल जाए। जब संशय होता है तो अनेक संशय होते हैं। संशय भीड़ में आते हैं। स्वास्थ्य अकेला आता है, बीमारियां भीड़ में आती हैं। श्रद्धा अकेली आती है, संशय बहुवचन में आते हैं। संशय से भरा हुआ आदमी पहाड़ बन जाता है। उस पर भी प्रभु का प्रसाद बरसता है, लेकिन भर नहीं पाता। संशय-मुक्त झील बन जाता है--गड्ढा, खाली, शून्य! प्रभु के प्रसाद को ग्रहण करने के लिए गर्भ बन जाता है, स्वीकार कर लेता है।
इसलिए ध्यान रखें, निरंतर भक्तों ने अगर भगवान को प्रेमी की तरह माना
तो उसका कारण है। अगर भक्त इस सीमा तक चले गए कि अपने को स्त्रैण भी मान लिया और प्रभु को पति भी मान लिया तो उसका भी कारण है। और वह कारण है कि गड्ढा बनना है, ग्राहक बनना है, रिसेप्टिव बनना है। स्त्री ग्राहक है, रिसेप्टिव है, गर्भ बनती है, स्वीकार करती है। नये को अपने भीतर जन्म देती है, बढ़ाती है। अगर भक्तों को ऐसा लगा कि वे प्रेमिकाएं बन जाएं प्रभु की तो उसका कारण है कि वे गड्ढे बन जाएं, प्रभु उनमें भर जाए!
जो अहंकार के शिखर हैं वे खाली रह जाते हैं और जो विनम्रता के गड्ढे हैं वे भर जाते हैं। प्रभु का प्रसाद प्रतिपल बरस रहा है। उसके प्रसाद की उपलब्धि आनंद है! उसके प्रसाद से वंचित रह जाना संताप है, दुख है! "अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
बत्तीसवां प्रवचन

जागते-जागते...

1. परमात्मा की चाह नहीं हो सकती

मन मांगता रहता है संसार को, वासनाएं दौड़ती रहती हैं वस्तुओं की तरफ, शरीर आतुर होता है शरीरों के लिए, आकांक्षाएं विक्षिप्त रहती हैं पूर्ति के लिए। हमारा जीवन आग की लपट है। वासनाएं जलती हैं उन लपटों में, आकांक्षाएं, इच्छाएं जलती हैं। गीला ईंधन जलता है इच्छा का, और सब धुआं- धुआं हो जाता है।
इन लपटों में जलते हुए कभी-कभी मन थकता भी है, बेचैन भी होता है, निराश भी, हताश भी होता है। हताशा में, बेचैनी में कभी-कभी प्रभु की तरफ भी मुड़ता है। दौड़ते-दौड़ते इच्छाओं के साथ कभी-कभी प्रार्थना करने का मन भी हो आता है। दौड़ते-दौड़ते वासनाओं के साथ कभी-कभी प्रभु की सन्निधि में आंख बंद कर ध्यान में डूब जाने की कामना भी जन्म लेती है। बाजार की भीड़-भाड़ से हट कर कभी मंदिर के एकांत, मस्जिद के एकांत कोने में डूब जाने का ख्याल भी उठता है।
लेकिन वासनाओं से थका हुआ आदमी मंदिर में बैठ कर पुनः वासनाओं की मांग शुरू कर देता है। बाजार से थका आदमी मंदिर में बैठ कर पुनः बाजार का विचार शुरू कर देता है। क्योंकि बाजार से वह थका है, जागा नहीं। वासना से थका है, जागा नहीं। इच्छाओं से मुक्त नहीं हुआ, रिक्त नहीं हुआ, केवल इच्छाओं से विश्राम के लिए मंदिर चला आया। उस विश्राम में फिर इच्छाएं ताजी हो जाती हैं। प्रार्थना में जुड़े हुए हाथ भी संसार की ही मांग करते हैं। यज्ञ की वेदी के आस-पास घूमता हुआ साधक या याचक भी पत्नी मांगता है, पुत्र मांगता है, गौएं मांगता है, धन मांगता है, यश, राज्य, साम्राज्य मांगता है।
असल में जिसके चित्त में संसार है उसकी प्रार्थना में संसार ही होगा। जिसके चित्त में वासनाओं का जाल है उसके प्रार्थना के स्वर भी उन्हीं वासनाओं के धुएं को पकड़ कर कुरूप हो जाते हैं।
यहां एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि जब कहते हैं, सांसारिक मांग नहीं,
तो अनेक बार मन में ख्याल उठता है तो गैर-सांसारिक मांग तो हो सकती है न! जब कहते हैं, संसार की वस्तुओं की कोई चाह नहीं, तो ख्याल उठ सकता है कि मोक्ष की वस्तुओं की चाह तो हो सकती है न! नहीं मांगते संसार को, नहीं मांगते धन को, नहीं मांगते वस्तुओं को। मांगते हैं शांति को, आनंद को। छोड़ें, इन्हें भी नहीं मांगते। मांगते हैं प्रभु के दर्शन को, मुक्ति को, ज्ञान को। यहीं यह बात समझ लेनी जरूरी है कि सांसारिक मांग तो सांसारिक होती है, मांग मात्र सांसारिक होती है। वासनाएं सांसारिक हैं यह तो ठीक है, लेकिन वासना मात्र सांसारिक है, यह भी स्मरण रख लें! शांति की कोई मांग नहीं होती, अशांति से मुक्ति होती है और शांति परिणाम होती है। शांति को मांगा नहीं जा सकता, सिर्फ अशांति को छोड़ा जा सकता है और शांति मिलती है। और जो शांति को मांगता है वह कभी शांत नहीं होता है, क्योंकि उसकी शांति की मांग सिर्फ एक और अशांति का जन्म होता है।
इसलिए साधारणतया अशांत आदमी इतना अशांत नहीं होता जितना शांति की चेष्टा में लगा हुआ आदमी अशांत हो जाता है। अशांत तो होता ही है, यह शांति की चेष्टा और अशांत करती है। यह भी मांग है, यह भी इच्छा है, यह भी वासना है। मोक्ष मांगा नहीं जा सकता। क्योंकि जब तक मोक्ष की मांग है, जब तक मांग है, तब तक बंधन है। फिर बंधन और मोक्ष का मिलन कैसा? हां, बंधन न रहे तो जो रह जाता है, वह मोक्ष है।
हम परमात्मा को चाह नहीं सकते, क्योंकि चाह ही तो परमात्मा और हमारे बीच बाधा है। ऐसा नहीं कि धन की चाह बाधा है, चाह ही, डिजायर एज सच बाधा है। ऐसा नहीं कि इस चीज की चाह बाधा है और उस चीज की चाह बाधा नहीं है। न, चाह ही बाधा है। क्योंकि चाह ही तनाव है, चाह ही असंतोष है। चाह ही, जो नहीं है

उसकी कामना है, जो है उसमें तृप्ति नहीं। अगर ठीक से कहें तो सांसारिक चाह कहना ठीक नहीं, चाह का नाम संसार है। वासना ही संसार है, सांसारिक वासना कहना ठीक नहीं।
लेकिन हम भाषा में भूलें करते हैं। सामान्य करते हैं तब तो कठिनाई नहीं आती, चल जाता है, लेकिन जब इतने सूक्ष्म और नाजुक मसलों में भूलें होती हैं तो कठिनाई हो जाती है।
भूलें भाषा में हैं, क्योंकि अज्ञानी भाषा निर्मित करता है। और ज्ञानी की अब तक कोई भाषा नहीं है। उसको भी अज्ञानी की भाषा का ही उपयोग करना पड़ता है। ज्ञानी की भाषा हो भी नहीं सकती, क्योंकि ज्ञान मौन है; मुखर नहीं, मूक है! ज्ञान के पास जबान नहीं। ज्ञान साइलेंस है, शून्य है! ज्ञान के पास शब्द नहीं। शब्द उठने तक की भी अशांति ज्ञान में नहीं है। इसलिए अज्ञानी की भाषा ही ज्ञानी को उपयोग करनी पड़ती है। फिर भूलें होती हैं। जैसे यह भूल निरंतर हो जाती है। हम कहते हैं, संसार की चीजों को मत चाहो। कहना चाहिए, चाहो ही मत। क्योंकि चाह का नाम ही संसार है। हम कहते हैं, मन को शांत करो। ठीक नहीं है यह कहना। क्योंकि शांत मन जैसी कोई चीज होती नहीं। अशांति का नाम ही मन है। जब तक अशांति है तब तक मन है; नहीं तो मन भी नहीं। जहां शांति हुई वहां मन तिरोहित हुआ।
ऐसा समझें, तूफान आया है लहरों में सागर की। फिर हम कहते हैं, तूफान शांत हो गया। जब तूफान शांत हो जाता है तो क्या सागर-तट पर खोजने से शांत तूफान मिल सकेगा? हम कहते हैं, तूफान शांत हो गया। तो पूछा जा सकता है, शांत तूफान कहां है? शांत तूफान होता ही नहीं। तूफान का नाम ही अशांति है। शांत तूफान, मतलब तूफान मर गया, अब तूफान नहीं है।
शांत मन का अर्थ, मन मर गया, अब मन नहीं है। चाह के छूटने का अर्थ, संसार गया, अब नहीं है। जहां चाह नहीं, वहां परमात्मा है। जहां चाह है, वहां संसार है। इसलिए परमात्मा की चाह नहीं हो सकती और अनचाहा संसार नहीं हो सकता। ये दो बातें नहीं हो सकतीं।
अज्ञान से ऊबे, थके, घबराए हुए लोग विश्राम के लिए, विराम के लिए, धर्म, पूजा, प्रार्थना, ध्यान, उपासना में आते हैं। लेकिन मांगें उनकी साथ चली आती हैं। चित्त उनका साथ चला आता है। एक आदमी दुकान से उठा और मंदिर में गया, जूते बाहर छोड़ देता, मन को भीतर ले जाता है। जूते भीतर ले जाए तो बहुत हर्जा नहीं है, मन को बाहर छोड़ जाए। जूते से मंदिर अपवित्र नहीं होगा। जूते में ऐसा कुछ भी अपवित्र नहीं है, मगर मन भीतर ले जाता है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जूते भीतर ले जाना। घर से चलता है तो स्नान
कर लेता है, शरीर धो लेता है। मगर मन? मन वैसा का वैसा बासा, पसीने की बदबू से भरा, दिन भर की वासनाओं की गंध से पूरी तरह लबालब, दिन भर के धूल कणों से बुरी तरह आच्छादित! उसी गंदे मन को लेकर वह मंदिर में प्रवेश कर जाता है। फिर जब हाथ जोड़ता है तो हाथ धुले होते हैं, लेकिन जुड़े हुए हाथों के पीछे मन गैर-धुला होता है। आंखें तो परमात्मा को देखने के लिए उठती हैं, लेकिन भीतर से मन परमात्मा को देखने के लिए नहीं उठता। वहां फिर वस्तुओं की कामना और वासना लौट आती है। हाथ जुड़ते परमात्मा से कुछ मांगने के लिए! और जब भी हाथ कुछ मांगने के लिए जुड़ते हैं तभी प्रार्थना का अंत हो जाता है। मांग और प्रार्थना का कोई मेल नहीं।
फिर प्रार्थना क्या है? प्रार्थना सिर्फ धन्यवाद है। मांग नहीं, डिमांड नहीं, थैंक्स गिविंग, सिर्फ धन्यवाद। जो मिला है वह इतना काफी है कि उसके लिए मंदिर धन्यवाद देने जाना चाहिए।
धार्मिक आदमी वही है जो मंदिर धन्यवाद देने जाता है। अधार्मिक वह नहीं जो मंदिर नहीं जाता--नहीं जाता, वह तो अधार्मिक है ही--अधार्मिक असली वह है जो मंदिर मांगने जाता है।
छोड़ें वासनाओं को, छोड़ें भविष्य को, छोड़ें सपनों को, छोड़ें अंततः अपने को। ऐसे जीएं जैसे प्रभु ही आपके भीतर से जीता है। ऐसे जीएं जैसे चारों ओर प्रभु ही जीता है। ऐसे करें कृत्य जैसे प्रभु ही करवाता है, जैसे प्रत्येक करने के पीछे प्रभु ही फल को लेने हाथ फैला कर खड़ा है। तब ज्ञान घटित होता है। ज्ञान परम मुक्ति है, दि अल्टीमेट फ्रीडम! अज्ञान बंधन है, ज्ञान मुक्ति है! अज्ञान रुग्णता है, ज्ञान स्वास्थ्य है!

यह स्वास्थ्य शब्द बहुत अदभुत है। दुनिया की किसी भाषा में उसका ठीक-ठीक अनुवाद नहीं है। अंग्रेजी में हेल्थ है, और पश्चिम की सभी भाषाओं में हेल्थ से मिलते-जुलते शब्द हैं। हेल्थ का मतलब होता है हीलिंग, घाव का भरना। शारीरिक शब्द है, गहरे नहीं जाता। स्वास्थ्य बहुत गहरा शब्द है। उसका अर्थ हेल्थ ही नहीं होता, हेल्थ तो होता ही है, घाव का भरना तो होता ही है, स्वास्थ्य का अर्थ हैः स्वयं में स्थित हो जाना, टु बी इन वनसेल्फ। आध्यात्मिक बीमारी से संबंधित है स्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अर्थ हैः स्वयं में ठहर जाना, इंच भर भी न हिलना, पल भर भी न कंपना। जरा सा भी कंपन न रह जाए भीतर, वेवरिंग जरा भी न रह जाए, बस तब स्वास्थ्य फलित होता है। वेवरिंग क्यों है, कंपन क्यों है, कभी आपने ख्याल किया? जितनी तेज इच्छा होगी उतना ही कंपन हो जाता है भीतर। इच्छा नहीं होती, कंपन खो जाता है। इच्छा ही कंपन है। आप कंपते कब हैं? दीया जल रहा है, कंपन कब है? जब हवा का झोंका लगता है। हवा का झोंका न लगे तो दीया निष्कंप हो जाता है, ठहर जाता है, स्वस्थ हो जाता है, अपनी जगह हो जाता है, जहां होना चाहिए वहां हो जाता है। हवा के धक्के लगते हैं तो ज्योति वहां हट जाती है जहां नहीं होनी चाहिए। जगह से च्युत हो जाती है, रुग्ण हो जाती है, कंपित हो जाती है। और जब कंपित होती है तब बुझने का, मौत का डर पैदा हो जाता है। जोर की हवा आती है तो ज्योति बुझने-बुझने को, मरने-मरने को होने लगती है।
ठीक ऐसे ही इच्छाओं की तीव्र हवाओं में, वासना के तीव्र ज्वर में कंपती है चेतना। इसलिए यह भी ख्याल में ले लें, जो वासना से मुक्त हुआ, वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। दीये की लौ हवा के धक्कों से मुक्त हुई, फिर उसे क्या मौत का डर? मौत का डर खो गया। लेकिन जब तूफान की हवा बहती है तो दीया कंपता है और डरता है कि मरा, अब मरा! ठीक हमारी अज्ञान की अवस्था में ऐसे ही चित्त होता है। एक कंपन छूटता है तो दूसरा कंपन शुरू होता है। एक वासना हटती है तो दूसरा झोंका वासना का आता है, कहीं कोई विराम नहीं, कहीं कोई विश्राम नहीं।
वासना का कंपन ही स्प्रिचुअल डिजीज, आध्यात्मिक रुग्णता है! कंपन का अर्थ ही है कि स्थिति में नहीं। इसलिए कहा जाता है कि ज्ञान परम मुक्ति है, क्योंकि ज्ञान परम स्वास्थ्य है। वह कैसे होगा उपलब्ध? वासना से जो मुक्त हो जाता है, मांग से, चाह से जो मुक्त हो जाता है, वही ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता है!

2. भागे हिरन और भटके राम

हमारा अनुभव यह है कि हमने जहां-जहां कामना के फूल को तोड़ना चाहा वहीं दुख का कांटा हाथ में लगा। जहां-जहां कामना के फूल के लिए हाथ बढ़ाया, फूल दिखाई पड़ा जब तक हाथ में न आया, जब हाथ में आया तो रह गया सिर्फ लहू, खून! कांटा चुभा, फूल तिरोहित हो गया।
लेकिन मनुष्य अदभुत है। उसका सबसे अदभुत होना इस बात में है कि वह अनुभव से सीखता नहीं। शायद ऐसा कहना भी ठीक नहीं। कहना चाहिए, मनुष्य अनुभव से सदा गलत सीखता है। उसने हाथ बढ़ाया और फूल हाथ में न आया, कांटा हाथ में आया, तो वह यही सीखता है कि मैंने गलत फूल की तरफ ही हाथ बढ़ा दिया। अब मैं ठीक फूल की तरफ हाथ बढ़ाऊंगा। यह नहीं सीखता कि फूल की तरफ हाथ बढ़ाना ही गलत है।
साधारण आदमियों की बात हम छोड़ दें। स्वयं राम अपनी कुटिया के बाहर बैठे हैं और एक स्वर्ण-मृग दिखाई पड़ जाता है। स्वर्ण-मृग! सोने का हिरण होता नहीं, पर जो नहीं होता वह दिखाई पड़ सकता है। जिंदगी में बहुत कुछ दिखाई पड़ता है जो है ही नहीं। परंतु जो है वह दिखाई नहीं पड़ता है। स्वर्ण-मृग दिखाई पड़ता है, राम उठा लेते हैं धनुष-बाण। सीता कहती है, जाओ, ले आओ इसका चर्म। राम निकल पड़ते हैं स्वर्ण-मृग को मारने।
यह कथा बड़ी मीठी है। सोने का मृग भी कहीं होता है? लेकिन आपको कहीं दिखाई पड़ जाए तो रुकना मुश्किल हो जाए। असली मृग हो तो रुका भी जाए, सोने का मृग दिखाई पड़ जाए तो रुकना मुश्किल हो जाएगा। हम सभी सोने के मृग के पीछे ही भटकते हैं। एक अर्थ में हम सबके भीतर का राम सोने के मृग के लिए ही

तो भटकता है, और हम सबके भीतर की सीता भी उकसाती है--जाओ सोने के मृग को ले आओ! हम सबके भीतर की कामना, हम सबके भीतर की वासना, हम सबके भीतर की डिजायरिंग कहती है भीतर की शक्ति को, उस ऊर्जा को, उस राम को, कि जाओ तुम! इच्छा है सीता, शक्ति है राम! कहती है, जाओ, स्वर्ण-मृग को ले आओ! राम दौड़ते- फिरते हैं। स्वर्ण-मृग हाथ में न आए तो लगता है कि अपनी कोशिश में कुछ कमी रह गई, और तेजी से दौड़ो! स्वर्ण-मृग को तीर मारो, ताकि वह गिर जाए। न ठीक निशाना लगे तो लगता है कि विषधर तीर बनाओ। लेकिन यह ख्याल में नहीं आता कि स्वर्ण-मृग होता ही नहीं!
कामना के फूल आकाश-कुसुम हैं, होते नहीं। जैसे धरती पर तारे नहीं होते वैसे आकाश में फूल नहीं होते। कामना के कुसुम या तो धरती के तारे हैं या आकाश के फूल। सकाम हमारी दौड़ है। बार-बार थक कर गिर-गिर कर भी, बार-बार कांटों से उलझ कर भी फूल की आकांक्षा नहीं जाती। दुख हाथ लगता है। लेकिन कभी हम दूसरा प्रयोग करने को नहीं सोचते। वह दूसरा प्रयोग है निष्काम भाव का।
बड़ा मजा है, निष्काम भाव से कांटा भी पकड़ा जाए तो पकड़ने पर पता चलता है
कि फूल हो गया। ऐसा ही पैराडाक्स है, ऐसा ही जिंदगी का नियम है। ऐसा होता है। आपने एक अनुभव तो करके देख लिया। फूल को पकड़ा और कांटा हाथ में आया, यह आप देख चुके। और अगर ऐसा हो सकता है कि फूल पकड़ें और कांटा हाथ में आए तो उलटा क्यों नहीं हो सकता है कि कांटा पकड़ें और फूल हाथ में आ जाए? क्यों नहीं हो सकता ऐसा? अगर यह हो सकता है तो इससे उलटा होने में कौन सी कठिनाई है? हां, जो जानते हैं वे तो कहते हैं कि होता है!
एक प्रयोग करके देखें। चौबीस घंटे में एकाध काम निष्काम करके देखें।
सब तो करने मुश्किल हैं, सिर्फ एकाध काम! चौबीस घंटे में एक काम सिर्फ निष्काम करके देखें। छोटा सा ही काम, ऐसा कि जिसका कोई बहुत अर्थ नहीं होता। रास्ते पर किसी को बिल्कुल निष्काम नमस्कार करके देखें। उसमें तो कुछ खर्च नहीं होता! लेकिन लोग निष्काम नमस्कार तक नहीं कर सकते। नमस्कार तक में कामना होती है। मिनिस्टर है, तो नमस्कार हो जाता है। पता नहीं, कब काम पड़ जाए! मिनिस्टर नहीं रहा अब, एक्स हो गया, तो कोई उसकी तरफ देखता ही नहीं। स्वयं मिनिस्टर ही अब नमस्कार करता है। वह इसलिए नमस्कार करता है कि फिर कभी काम पड़ सकता है। कामना के बिना नमस्कार तक नहीं रहा। कम से कम नमस्कार तो बिना कामना के करके देखें।
आप हैरान हो जाएंगे, अगर साधारण से जन को भी, राहगीर को भी, अपरिचित को
भी हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लें बिना कामना के, तो भीतर तत्काल पाएंगे कि आनंद की एक झलक आ गई। सिर्फ नमस्कार ही, कोई बड़ा कृत्य नहीं, कोई बड़ी डीड नहीं, कुछ नहीं, सिर्फ हाथ जोड़ें निष्काम और पाएंगे कि एक लहर शांति की दौड़ गई। एक अनुग्रह, एक ईश्वर की कृपा भीतर दौड़ गई। और अगर अनुभव आने लगे तो फिर बड़े काम में भी निष्काम होने की भावना जगने लगेगी। जब इतने छोटे काम में इतनी आनंद की पुलक पैदा होती है, तो जितना बड़ा काम होगा उतनी बड़ी आनंद की पुलक पैदा होगी। फिर तो धीरे-धीरे पूरा जीवन निष्काम होता चला जाएगा।

3. पाप कभी पुण्य से नहीं कटता

यह प्रश्न सनातन है, सदा ही पूछा जाता रहा है। बहुत हैं पाप आदमी के, अनंत हैं, अनंत जन्मों के हैं। गहन है, लंबी हैशृंखला पाप की। इस लंबी पाप कीशृंखला को क्या ज्ञान का एक अनुभव तोड़ पाएगा? इतने बड़े विराट पाप को क्या ज्ञान की एक किरण नष्ट कर पाएगी?
जो नीतिशास्त्री हैं--नीतिशास्त्री अर्थात जिन्हें धर्म का कोई भी पता नहीं, जिनका चिंतन पाप और पुण्य के ऊपर कभी गया नहीं--वे कहेंगे, जितना किया पाप, उतना ही पुण्य करना पड़ेगा। एक-एक पाप को एक-एक पुण्य से काटना पड़ेगा, तब बैलेंस, तब ऋण-धन बराबर होगा, तब हानि-लाभ बराबर होगा और व्यक्ति मुक्त होगा। जो नीतिशास्त्री हैं, मारलिस्ट हैं, जिन्हें आत्म-अनुभव का कुछ भी पता नहीं, जिन्हें बीइंग का कुछ भी पता नहीं, जिन्हें आत्मा का कुछ भी पता नहीं, जो सिर्फ डीड का, कर्म का हिसाब-किताब रखते हैं, वे यही

कहेंगे, एक-एक पाप के लिए एक-एक पुण्य साधना पड़ेगा। अगर अनंत पाप हैं तो अनंत पुण्यों के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं।
लेकिन मैं कहता हूं, तब मुक्ति असंभव है। दो कारण से असंभव है। एक तो इसलिए असंभव है कि अनंतशृंखला है पाप की और अनंत पुण्यों कीशृंखला करनी पड़ेगी। इसलिए भी असंभव है कि कितने ही कोई पुण्य करे, पुण्य करने के लिए भी पाप करने पड़ते हैं।
एक आदमी धर्मशाला बनाए, तो पहले ब्लैक मार्केट करे। ब्लैक मार्केट के बिना धर्मशाला नहीं बन सकती। एक आदमी मंदिर बनाए, तो पहले लोगों की गर्दनें काटे। गर्दनें काटे बिना मंदिर की नींव का पत्थर नहीं पड़ता। एक आदमी पुण्य करने के लिए कम से कम जीएगा तो सही, और जीने में ही हजार पाप हो जाते हैं। चलेगा तो हिंसा होगी, उठेगा तो हिंसा होगी, बैठेगा तो हिंसा होगी। श्वास भी लेगा तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक श्वास में कोई एक लाख छोटे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। बोलेगा तो एक बार ओंठ ओंठ से मिला और खुला, करीब एक लाख सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। किसी का चुंबन आप लेते हैं, लाखों जीवाणुओं का आदान-प्रदान हो जाता है। कई मर जाते हैं बेचारे। जीने में ही पाप हो जाएगा। पुण्य करने के लिए ही पाप हो जाएगा।
तब तो यह अनंत वर्तुल है, विसियस सर्किल है, दुष्टचक्र है, इसके बाहर
आप जा नहीं सकते। अगर पुण्य से पाप को काटने की कोशिश की तो पुण्य करने में पाप हो जाएगा। फिर उस पाप को काटने की पुण्य से कोशिश की, फिर उस पुण्य करने में पाप हो जाएगा। हर बार पाप को काटना पड़ेगा, हर बार पुण्य से काटेंगे, और पुण्य नये पाप करवा जाएगा। इस वर्तुल का कभी अंत नहीं होगा। इसलिए नैतिक व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो सकता। नैतिक दृष्टि कभी मुक्ति तक नहीं जा सकती। नैतिक दृष्टि तो चक्कर में ही पड़ी रह जाती है।
एक बहुत ही और दृष्टि की बात, गहरी दृष्टि की बात, जो भी जानते हैं वे करेंगे। वे कहेंगे, अगर आप सब पापियों में भी सबसे बड़े पापी हैं, दि ग्रेटेस्ट सिनर, अस्तित्व में जितने पापी हैं उनमें सबसे बड़े पापी हैं, तो भी ज्ञान की एक घटना आपके सब पापों को क्षीण कर देगी।
क्या मतलब हुआ इसका? इसका मतलब यही हुआ कि पाप की कोई सघनता नहीं होती, पाप की कोई डेंसिटी नहीं होती। पाप है अंधेरे की तरह।
एक घर में अंधेरा है हजार साल से, दरवाजे बंद और ताले बंद! हजार साल पुराना अंधेरा है। और आप दीया जलाएंगे, तो अंधेरा कहेगा क्या कि इतने से काम नहीं चलेगा? आप हजार साल तक दीये जलाएं तब मैं कटूंगा। नहीं, आपने दीया जलाया कि हजार साल पुराना अंधेरा गया। वह यह नहीं कह सकता है कि मैं हजार साल पुराना हूं। वह यह भी नहीं कह सकता कि हजार सालों से मैं बहुत सघन, कनडेंस्ड हो गया हूं, इसलिए दीये की इतनी छोटी सी ज्योति मुझे नहीं तोड़ सकती।
हजार साल पुराना अंधेरा और एक रात का पुराना अंधेरा एक ही डेंसिटी के होते हैं या कहना चाहिए कि नो डेंसिटी के होते हैं, उनमें कोई सघनता नहीं होती। अंधेरे की पर्तें नहीं होतीं, क्योंकि अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता। बस इधर आपने जलाई तीली, अंधेरा गया--अभी और यहीं!
हां, अगर कोई अंधेरे को पोटलियों में बांध कर फेंकना चाहे तो फिर मारलिस्ट का काम कर रहा है, नैतिकवादी का। वह कहता है, जितना अंधेरा है, बांधो पोटली में, बाहर फेंक कर आओ।
फेंकते रहो टोकरी बाहर और भीतर, अंधेरा अपनी जगह रहेगा। आप चुक जाओगे, अंधेरा नहीं चुकेगा।
ध्यान रहे, पाप को पुण्य से नहीं काटा जा सकता। क्योंकि पुण्य भी सूक्ष्म पाप के बिना नहीं हो सकता। पाप को तो सिर्फ ज्ञान से काटा जा सकता है, क्योंकि ज्ञान बिना पाप के हो सकता है।
ज्ञान कोई कृत्य नहीं है कि जिसमें पाप करना पड़े, ज्ञान अनुभव है। कर्म बाहर है, ज्ञान भीतर है। ज्ञान तो ज्योति के जलने जैसा है, जला कि सब अंधेरा गया। फिर तो ऐसा भी पता नहीं चलता कि मैंने कभी पाप किए थे; क्योंकि जब मैं ही चला जाए तो सब खाते-बही भी उसी के साथ चले जाते हैं, फिर आदमी अपने अतीत से ऐसे ही मुक्त हो जाता है जैसे सुबह सपने से मुक्ति हो जाती है।

कभी आपने ऐसा सवाल नहीं उठाया कि जब सुबह हम उठते हैं रात भर का सपना देख कर और जरा सा किसी ने हिला कर उठा दिया, तो इतने से हिलाने से रात भर का सपना कैसे टूट सकता है? जरा सा किसी ने हिलाया, पलक खुली, सपना गया! फिर आप यह नहीं कहते कि रात भर इतना सपना देखा, अब सपने के विरोध में इतना ही यथार्थ देखूंगा तब सपना मिटेगा। बस सपना टूट जाता है!
पाप सपने की भांति है। ज्ञान की जो सर्वोच्च घोषणा है वह यह है कि पाप स्वप्न की भांति है, पुण्य भी स्वप्न की भांति है। और सपने सपने से नहीं काटे जाते। सपने सपने से काटेंगे तो भी सपना देखना जारी रखना पड़ेगा। सपने सपने से नहीं कटते, क्योंकि सपनों को सपने से काटने में सपने बढ़ते हैं। और सपने यथार्थ से भी नहीं काटे जा सकते। क्योंकि जो झूठ है वह सच से काटा नहीं जा सकता; जो असत्य है वह सत्य से काटा नहीं जा सकता। वह इतना भी तो नहीं है कि काटा जा सके। वह सत्य की मौजूदगी पर नहीं पाया जाता है, काटने को भी नहीं पाया जाता है।
इसलिए कृष्ण भी कहते हैं कि कितना ही बड़ा पापी हो तू, सबसे बड़ा पापी हो तू, तो भी मैं कहता हूं, अर्जुन, कि ज्ञान की एक किरण तेरे सारे पापों को सपनों की भांति बहा ले जाएगी। सुबह जैसे कोई जाग जाता है वैसे ही रात समाप्त, सपने समाप्त, सब समाप्त! जागे हुए आदमी को सपनों से कुछ लेना-देना नहीं रह जाता।
इसलिए जब पहली बार भारत के ग्रंथ पश्चिम में अनुवादित हुए तो उन्होंने कहा, यह ग्रंथ तो इम्मारल मालूम होता है, अनैतिक मालूम होता है। खुद शोपेनहार को चिंता हुई। मनीषी था, चिंतक था गहरा, उसको खुद चिंता हुई कि ये किस तरह की बातें हैं! ये कहते हैं, एक क्षण में कट जाएंगे पाप! क्रिश्चियनिटी कभी भी नहीं समझ पाई इस बात को, ईसाइयत कभी नहीं समझ पाई इस बात को कि एक क्षण में पाप कैसे तिरोहित होंगे! क्योंकि ईसाइयत ने पाप को बहुत भारी मूल्य दे दिया, बहुत गंभीरता से ले लिया। सपने की तरह नहीं, असलियत की तरह ले लिया। ईसाइयत के ऊपर पाप का भार बहुत गहरा है, बर्डन बहुत गहरा है। ओरिजिनल सिन! एक-एक आदमी का पाप तो है ही, पर उससे पहले आदमी ने जो पाप किया था वह भी सब आदमियों की छाती पर है। उसको काटना बहुत मुश्किल है।
इसलिए क्रिश्चियनिटी गिल्ट-रिडन हो गई, अपराध का भाव भारी हो गया। और पाप का कोई छुटकारा दिखाई नहीं पड़ता। कितना ही पुण्य करो, उससे छुटकारा नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए ईसाइयत गहरे में जाकर रुग्ण हो गई। जीसस को नहीं था यह ख्याल, लेकिन ईसाइयत जीसस को नहीं समझ पाई। जैसा कि सदा होता है। हिंदू कृष्ण को नहीं समझ पाए, जैन महावीर को नहीं समझ पाए। न समझने वाले समझने का जब दावा करते हैं तो उपद्रव शुरू हो जाता है।
जीसस ने कहा, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड एंड आल एल्स शैल बी एडेड अनटू यू। जीसस ने कहा, सिर्फ प्रभु के राज्य को खोज लो और शेष सब तुम्हें मिल जाएगा। वही जो कृष्ण कह रहे हैं कि सिर्फ प्रकाश की किरण को खोज लो और शेष सब जो तुम छोड़ना चाहते हो छूट जाएगा, जो तुम पाना चाहते हो मिल जाएगा। भारतीय चिंतन इम्मारल नहीं है, एमारल है। अनैतिक नहीं है, अतिनैतिक है, सुपर मारल है, नीति के पार जाता है, पुण्य-पाप के पार चला जाता है!

4. धर्म संस्थापनार्थाय

धर्म नष्ट कभी नहीं होता, कुछ भी नष्ट नहीं होता। धर्म तो नष्ट होगा
ही नहीं। लेकिन लुप्त होता है। लुप्त होने के अर्थों में नष्ट होता है। इसलिए उसकी पुनर्स्थापना की निरंतर जरूरत पड़ जाती है। उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की निरंतर जरूरत पड़ जाती है। जैसे धर्म कभी अस्तित्वहीन नहीं होता वैसे ही अधर्म कभी अस्तित्ववान नहीं होता। लेकिन बार-बार फिर भी उस अस्तित्वहीन अधर्म को हटाने की जरूरत पड़ जाती है।
इसे थोड़ा समझें, क्योंकि बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। जो धर्म कभी नष्ट नहीं होता उसकी संस्थापना की क्या जरूरत है? और जो अधर्म कभी होता नहीं उसके मिटाने की भी क्या जरूरत है?

लेकिन ऐसा है! अंधेरा है। अंधेरा है नहीं, रोज मिटाना पड़ता है और है बिल्कुल नहीं! अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। अंधेरा एक्झिस्टेंशियल नहीं है, अंधेरा कोई चीज नहीं है। फिर भी है। यह मजा है, यह पैराडाक्स है जिंदगी का कि अंधेरा है नहीं, फिर भी है! काफी है, घना होता है, डरा देता है, प्राण कंपा देता है और है नहीं!
अंधेरा सिर्फ प्रकाश की अनुपस्थिति है, सिर्फ एब्सेंस है। जैसे कमरे में आप थे और बाहर चले गए, तो हम कहते हैं, अब आप कमरे में नहीं हैं। अंधेरा इसी तरह है। अंधेरे का मतलब इतना ही है कि प्रकाश नहीं है। इसलिए अंधेरे को तलवार से काट नहीं सकते, अंधेरे को गठरी में बांध कर फेंक नहीं सकते। दुश्मन के घर में जाकर अंधेरा डाल नहीं सकते। अंधेरा घर के बाहर निकालना हो तो धक्का देकर निकाल नहीं सकते। सब्सटेंशियल नहीं है, अंधेरे में कोई सब्सटेंस नहीं है। कंटेंट नहीं है, अंधेरे में कोई वस्तु नहीं है। अंधेरा अवस्तु है, नो थिंग, नथिंग! अंधेरे में कुछ है नहीं, लेकिन फिर भी है। इतना तो है कि डरा दे! इतना तो है कि कंपा दे! इतना तो है कि गड्ढे में गिरा दे! इतना तो है कि हाथ-पैर टूट जाएं!
यह बड़ी मुश्किल की बात है कि जो नहीं है उसके होने से आदमी गड्ढे में गिर जाता है। यह कहना नहीं चाहिए क्योंकि एब्सर्ड है। जो नहीं है उसके होने से आदमी गड्ढे में गिर जाता है। जो नहीं है उसके होने से हाथ-पैर टूट जाते हैं। जो नहीं है उसके होने से चोर चोरी कर ले जाते हैं। जो नहीं है उसके होने से हत्यारा हत्या कर लेता है। नहीं तो है बिल्कुल, वैज्ञानिक भी कहते हैं, नहीं है! उसका कोई अस्तित्व नहीं है।
अस्तित्व है प्रकाश का। जिसका अस्तित्व हो उसको रोज जलाना पड़ रहा है। रोज सांझ दीया जलाओ, न जलाओ तो अंधेरा खड़ा है। तो कृष्ण कहते हैं, संस्थापनार्थ, धर्म की संस्थापना के लिए, दीये को जलाने के लिए, अधर्म के अंधेरे को हटाने के लिए। अधर्म जो नहीं है, धर्म जो सदा है... !
सूरज स्रोत है प्रकाश का। अंधेरे का स्रोत पता है कहां है? कहीं भी नहीं है। सूरज से आ जाती है रोशनी। अंधेरा कहां से आता है? फ्राम नोव्हेयर, कोई सोर्स नहीं है। कभी आपने पूछा, अंधेरा कहां से आता है? कौन डाल देता है इस पृथ्वी पर अंधेरे की चादर? कौन आपके घर को अंधेरे से भर देता है? स्रोत नहीं है उसका, क्योंकि है ही नहीं अंधेरा।
जब सुबह सूरज आ जाता है तो अंधेरा कहां चला जाता है? कहीं सिकुड़ कर छिप जाता है? कहीं नहीं सिकुड़ता, कहीं नहीं जाता। है ही नहीं, कभी था नहीं! अंधेरा कभी नहीं है, फिर भी रोज उतर आता है। प्रकाश सदा है, फिर भी रोज सांझ जलाना पड़ता है और खोजना पड़ता है।
ऐसे ही धर्म और अधर्म है। अंधेरे की भांति है अधर्म, प्रकाश की भांति
है धर्म। प्रतिदिन खोजना पड़ता है। युग-युग में, कृष्ण कहते हैं, लौटना पड़ता है। मूल स्रोत से धर्म को फिर वापस पृथ्वी पर लौटना पड़ता है। सूर्य से फिर प्रकाश को वापस लेना पड़ता है। यद्यपि जब प्रकाश नहीं रह जाता सूर्य का तो हम मिट्टी के दीये जला लेते हैं। केरोसिन की कंदील जला लेते हैं। उससे काम चलाते हैं। लेकिन काम नहीं चलता है। कहां सूरज, कहां कंदील? बस काम चलता है!
तो जब कृष्ण जैसे व्यक्तित्व नहीं होते पृथ्वी पर तब छोटे-मोटे दीये, कंदीलें केरोसिन की, जिनसे धुआं काफी निकलता है, रोशनी कम ही निकलती है, उनसे भी काम चलाना पड़ता है। तथाकथित साधु-संतों की भीड़ ऐसी ही है--केरोसिन आयल, मिट्टी का तेल। मगर रात में बड़ी कृपा उनकी। थोड़ी सी तथा धीमी, दो-चार-दस फीट पर रोशनी पड़ती रहती है उनकी। लेकिन बार-बार अंधेरा सघन हो जाता है और बार-बार करुणावान चेतनाओं को लौट आना पड़ता है, जो आकर फिर सूरज से भर देती हैं।
कई बार ऐसा भी होता है कि सूरज जैसी चेतनाओं को आमने-सामने नहीं देखा
जा सकता। आपने कभी ख्याल किया कि सूरज को कभी आप आमने-सामने नहीं देखते। दीये को मजे से देखते हैं। इसलिए साधु-संतों से सत्संग चलता है। कृष्ण जैसे लोगों के आमने-सामने मुश्किल हो जाती है। एनकाउंटर हो जाता है तो झंझट हो जाती है। कई दफा तो आंखें चौंधिया जाती हैं। सूरज की तरफ देखें तो रोशनी कम मिलेगी, आंखें बंद हो जाएंगी, अंधेरा हो जाएगा।

सूरज को आदमी तभी देखता है जब ग्रहण लगता है, अन्यथा नहीं देखता कोई।
यह बड़े मजे की बात है, ग्रहण लगे सूरज को लोग देखते हैं। पागल हो गए हैं? सूरज बिना ग्रहण के रोज अपनी पूरी ताकत से मौजूद है, कोई नहीं देखता। क्या बात है? ग्रहण लगने से थोड़ा भरोसा आता है कि हम भी देख सकते हैं, थोड़ा सूरज कम है, अधूरा है। शायद अब जोर से हमला नहीं करेगा।
इसलिए कृष्ण जैसे व्यक्तियों को कभी भी समझा नहीं जाता; हमेशा मिस-अंडरस्टैंड किया जाता है। और जिनको आप समझ लेते हैं, समझ लेना वे केरोसिन की कंदील हैं। अपने घर में जलाई-बुझाई, अपने हाथ से बत्ती नीची-ऊंची की। जब जैसी चाही वैसी की। जिनको आप समझ पाते हैं, समझ लेना कि घर के मिट्टी के दीये हैं। जिनको आप कभी नहीं समझ पाते, आंखें चौंधिया जाती हैं, हजार सवाल उठ जाते हैं, मुश्किल पड़ जाती है, तो समझना कि सूरज उतरा है।
इसलिए कृष्ण को हम अभी तक नहीं समझ पाए, न क्राइस्ट को समझ पाए, न बुद्ध को, न महावीर को, न मोहम्मद को। इनमें से हम किसी को नहीं समझ पाते। इस तरह के व्यक्ति जब भी पृथ्वी पर आते हैं, हमारी आंखें चौंधिया जाती हैं। जब वे हट जाते हैं, जब आंख के सामने नहीं रहते, तब हम अपने-अपने मिट्टी के दीये जला कर समझने की कोशिश करते हैं।
पुनः संस्थापना के लिए नष्ट नहीं होता धर्म कभी, खो जरूर जाता है। अधर्म कभी स्थापित नहीं होता, छा जरूर जाता है। ऐसा समझ में आ सके तो ठीक है!
"अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
तैतीसवां प्रवचन

ब्रह्म के दो रूप

अभी विगत पंद्रह वर्षों की गहन खोज ने विज्ञान को एक नयी धारणा दी है, एक्सपैंडिंग युनिवर्स की, फैलते हुए विश्व की। सदा से ऐसा समझा जाता था कि विश्व जैसा है वैसा है। नया विज्ञान कहता है, विश्व उतना ही नहीं है जितना है, रोज फैल रहा है, जैसे कि कोई गुब्बारे में हवा भरता चला जाए और गुब्बारा बड़ा होता चला जाए! यह जो विस्तार है जगत का, यह उतना नहीं है जितना कल था। यह निरंतर फैल रहा है। ये जो तारे रात हमें दिखाई पड़ते हैं, ये एक-दूसरे से प्रतिपल दूर जा रहे हैं। एक्सपैंडिंग युनिवर्स, फैलता हुआ विश्व!
इसके दो अर्थ हुएः कि एक क्षण ऐसा भी रहा होगा, जब यह विश्व इतना सिकुड़ा रहा होगा कि शून्य केंद्र पर रहा होगा। आप पीछे लौटें! समय में जितने पीछे लौटेंगे, विश्व छोटा होता जाएगा, सिकुड़ता जाएगा। एक क्षण ऐसा जरूर रहा होगा जब यह सारा विश्व बिंदु पर सिकुड़ा रहा होगा। फिर फैलता चला गया। आज भी फैल रहा है। परिधि बड़ी होती चली जाती है रोज! वैज्ञानिक कहते हैं, हम कुछ कह नहीं सकते कि यह कब तक बड़ी हो सकती है! यह अंतहीन विस्तार है। यह बड़ी होती ही चली जाएगी।
एक दूसरी बात भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि विज्ञान ने तो यह शब्द अभी उपयोग करना शुरू किया है, एक्सपैंडिंग युनिवर्स, लेकिन उपनिषद जिसे ब्रह्म कहते हैं, उस ब्रह्म का मतलब होता है, दि एक्सपैंडिंग। ब्रह्म का मतलब परमात्मा नहीं होता। ब्रह्म का अर्थ होता है, फैलता हुआ। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है। ब्रह्म और विस्तार एक ही मूल धातु से निर्मित होते हैं। एक ही शब्द के रूप हैं। ब्रह्म का मतलब है, जो सदा विस्तीर्ण होता चला जाता है। विस्तीर्ण है, ऐसा नहीं; स्थिति में विस्तीर्ण है, ऐसा नहीं; प्रक्रिया में विस्तीर्ण है! जो होता चला जाता है। कांसटेंटली एक्सपैंडिंग, निरंतर विस्तीर्ण होता हुआ जो है।
अब ब्रह्म के दो अर्थ हुए। एक तो ब्रह्म का वह अर्थ हुआ जिसको असंभूत कहता है उपनिषद का ऋषि। असंभूत ब्रह्म का अर्थ हैः शून्य ब्रह्म। जब वह नहीं फैला था उस क्षण की हम कल्पना करें। फैलाव का बिल्कुल प्राथमिक क्षण, जब बीज टूटा नहीं था। बीज के टूटने के बाद तो अंकुर फैलता ही चला जाएगा, वृक्ष होगा। जरा से छोटे से बीज से इतना बड़ा वृक्ष होगा कि हजार बैलगाड़ियां उसके नीचे विश्राम कर सकेंगी। और फिर उस वृक्ष में अनंत बीज लगेंगे। और अनंत बीज में से एक-एक बीज फिर इतना ही बड़ा हो जाएगा। एक छोटा सा बीज भी फैल कर अनंत बीज होता चला जा रहा है।
असंभूत ब्रह्म का अर्थ हैः बीज-रूप ब्रह्म, बिंदु-रूप ब्रह्म। कल्पना
ही कर सकते हैं हम, क्योंकि बिंदु की कल्पना ही होती है। परिभाषा यह है बिंदु की, जिसमें लंबाई और चौड़ाई न हो। ऐसे बिंदु की सिर्फ व्याख्या हो सकती है, बिंदु को खींचा नहीं जा सकता। क्योंकि बिना लंबाई-चौड़ाई के कागज पर बिंदु बनेगा नहीं। इसलिए जो बिंदु दिखाई नहीं पड़ता वह सिर्फ परिभाषा में है।
असंभूत ब्रह्म का अर्थ है, युक्लिड जिसे बिंदु कहता है वही असंभूत है, जिसमें अभी होना शुरू नहीं हुआ, जिसमें अभी भूत प्रकट नहीं हुआ--असंभूत। अभी एक्झिस्टेंस आया नहीं, पोटेंशियल है! अभी छिपा है, अभी प्रकट होगा, होने को है, लेकिन अभी बिंदु है।
इस असंभूत ब्रह्म की एक स्थिति हुई। लेकिन इसे हम नहीं जानते। हम तो दूसरे ब्रह्म को जानते हैं, संभूत ब्रह्म, जो हो गया! हम तो वृक्ष-रूप ब्रह्म को जानते हैं, जो हो गया, और होता ही चला जा रहा है, फैलता ही चला जा रहा है!
हमारा यह विश्व रोज बड़ा हो रहा है। रोज कहना बहुत कम है, यह प्रतिपल बड़ा हो रहा है। सूर्य की किरणों की जो गति है उसी गति से तारे एक-दूसरे से दूर हट रहे हैं, केंद्र से दूर हट रहे हैं। और सूर्य की किरणों की गति है

प्रति सेकेंड एक लाख छियासी हजार मील। इतनी गति से परिधि केंद्र से दूर जा रही है। अनंतकाल से इस तरह दूर जा रही है।
वैज्ञानिक भी तय नहीं कर पाते कि समय के उस क्षण को हम कैसे तय करें जब
यह शुरू हुई होगी यात्रा! जब पहला कदम उठाया होगा बीज ने वृक्ष होने का! और हम यह भी नहीं कह सकते कि क्या होगी अंतिम यात्रा। विज्ञान बड़ी कठिनाई में पड़ गया है। क्योंकि एक्सपैंडिंग युनिवर्स कंसीवेबल नहीं है कि कहां जाकर रुकेगा और क्यों रुकेगा! रुकने का कोई कारण क्या है! रुकने के लिए जरूरत है कि कोई और चीज बाधा बन जाए।
जैसे एक पत्थर को मैं फेंकता हूं हाथ से और इस पत्थर को जब तक कोई बाधा
न मिले तो यह कहीं भी नहीं रुकेगा। पर बाधा मिल जाती है। वह किसी वृक्ष से टकरा जाता है। वृक्ष से न टकराए तो जमीन की कशिश उसे खींच रही है पूरे वक्त। लेकिन यह जो संभूत ब्रह्म है, यह कहां रुकेगा? इसको कोई बाधा आएगी कहां से? क्योंकि सभी कुछ इसके भीतर है, इसके बाहर कुछ भी नहीं है। अगर बाहर कुछ है तो उसका मतलब है कि वह भी इसका हिस्सा हो गया, संभूत ब्रह्म का हिस्सा हो गया। इसीलिए बाधा तो कहीं आएगी नहीं, यह रुकेगा कहां? यह रुकेगा कैसे? यह बढ़ता ही चला जाएगा।
इसलिए आइंस्टीन और प्लांक जिन्होंने इस पर काफी काम किया, वे बड़ी उलझन में पड़ गए। उनको आखिर इसे रहस्य की तरह छोड़ देना पड़ा। इस फैलाव के रुकने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता, और यह इनकंसीवेबल मालूम पड़ता है कि फैलता ही चला जाए। अगर यह इसी तरह फैलता चला गया तो एक दिन तारे इतने दूर हो जाएंगे कि एक तारे से दूसरा तारा दिखाई नहीं पड़ेगा।
लेकिन उपनिषद कुछ और ढंग से सोचते हैं। और उस ढंग को समझ लेना चाहिए।
एक दिन, आज नहीं कल, वैज्ञानिक को उस ढंग से सोचना शुरू करना पड़ेगा। लेकिन अब तक पश्चिम के विज्ञान की वह धारणा नहीं है। न होने का कारण है। न होने का कारण है कि पश्चिम का पूरा विज्ञान ग्रीक फिलासफी से, यूनानी दर्शन से विकसित हुआ। और यूनानी दर्शन की जो मूल मान्यताएं हैं वह उन पर खड़ा है। यूनानी दर्शन की एक मूल मान्यता यह है कि समय सदा सीधी रेखा में गति करता है। इससे पश्चिम का विज्ञान बड़ी मुश्किल में पड़ा है। भारतीय दर्शन की धारणा बड़ी भिन्न है। भारतीय दर्शन की धारणा है कि सभी गति वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। कोई गति सीधी रेखा में नहीं होती।
इसको समझें। जैसे एक बच्चा पैदा हुआ, तो साधारणतः अगर हम यूनानी चिंतक से पूछें तो उसके हिसाब से बच्चे और बूढ़े के बीच में सीधी रेखा खींची जा सकती है। भारतीय दार्शनिक कहेगा, नहीं! बच्चे और बूढ़े के बीच एक वर्तुल बनाया जा सकता है, क्योंकि बूढ़ा वहीं पहुंच जाता है मरते वक्त, जहां से बच्चे ने शुरू किया है। सर्किल है। इसलिए बूढ़े अगर बच्चों जैसा व्यवहार करने लगते हैं तो बहुत हैरानी की बात नहीं है। सीधी रेखा नहीं है, बचपन और बुढ़ापे के बीच वर्तुल है, एक गोल घेरा है। जवानी वर्तुल का बीच का हिस्सा है, उठाव है। फिर जवानी के बाद लौटनी शुरू हो गई यात्रा।
ऐसा समझें, जैसे कि ऋतुएं घूमती हैं। भारतीय धारणा समय की ऋतुओं के घूमने जैसी है, मंडलाकार। वर्षा आती है, फिर ग्रीष्म आता है, फिर सर्दी आती है, फिर वर्तुल है। सीधी नहीं है, एक वर्तुल है। सुबह होती है, सांझ होती है, फिर सुबह आती है, फिर सांझ होती है--एक वर्तुल है। पूर्वीय मनीषी की धारणा ऐसी है कि समस्त गतियां वर्तुलाकार हैं। पृथ्वी भी गोल घूमती है, ऋतुएं भी गोल घूमती हैं, सूर्य भी गोल घूमता है, चांद-तारे भी गोल घूमते हैं। गति मात्र वर्तुल है। कोई गति सीधी नहीं है। जीवन भी गोल घूमता है। यह जो एक्सपैंडिंग युनिवर्स है वैसे ही है जैसे बच्चा जवान हो रहा है। लेकिन अगर बच्चा जवान ही होता जाए तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। कहां होगा रुकाव? लेकिन जब तक बच्चा जवान हो रहा है, थोड़ी ही देर में वर्तुल डूबना शुरू हो जाएगा और जवान बूढ़ा होने लगेगा। अगर जन्म फैलता ही चला जाए और मृत्यु के बिंदु पर वापस लौट न आए तो कहां रुकेगा?
इसलिए भारत का जो चिंतन है वह कहता है कि यह जो फैलता हुआ ब्रह्म है,
यह फैल कर बच्चा रहेगा, जवान होगा, बूढ़ा होगा, वापस असंभूत ब्रह्म में गिर जाएगा। वापस शून्य हो जाएगा। जहां से आया है वहीं वापस लौट जाएगा। बड़ा लंबा वर्तुल होगा इसका।

हमारे जीवन का वर्तुल सत्तर साल का है। लेकिन छोटे वर्तुल के जीवन भी हैं। एक पतंगा सुबह पैदा होता है, सांझ वर्तुल पूरा हो जाता है। इससे भी छोटे वर्तुल हैं। क्षण भर जीने वाले प्राणी भी हैं। क्षण के शुरू में पैदा होते हैं, क्षण के बाद में डूब जाते हैं। और आप यह मत सोचना कि जो क्षण भर जीता है वह सत्तर साल वाले से कम जीता है। क्योंकि क्षण भर के वर्तुल में, सत्तर साल में जो आप पूरा करते हैं वह पूरा हो जाता है। बचपन आता है, जवानी आती है, प्रेम होता है, बच्चे पैदा होते हैं, बुढ़ापा आ जाता है, मौत हो जाती है। क्षण भर के वर्तुल में भी सत्तर साल पूरे हो जाते हैं। सत्तर साल कोई बड़ा वर्तुल नहीं है।
पृथ्वी हमारी, वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई चार अरब वर्ष पहले पैदा हुई। हमारे पास कोई पता लगाने का उपाय नहीं है कि पृथ्वी अब किस अवस्था में होगी, लेकिन कई हिसाब से लगता है कि बूढ़ी होती है। भोजन कम पड़ता जाता है, आदमी ज्यादा होते चले जाते हैं, मौत निकट मालूम होती है, सब चीजें चुकती जाती हैं। कोयला चुकता जाता है, पेट्रोल चुकता जाता है, भोजन चुकता जाता है, जमीन के सब रासायनिक द्रव्य चुकते जाते हैं। जमीन बूढ़ी होती है, जल्दी ही मरेगी। जल्दी का मतलब हमारे हिसाब से नहीं, क्योंकि जिसको चार अरब वर्ष लगे हों बूढ़ा होने में, उसको मरने में भी अरब वर्ष लग जाएं, आश्चर्य नहीं! लेकिन हमें जमीन का पता नहीं चलता।
आपके शरीर में, एक आदमी के शरीर में अंदाजन सात करोड़ जीवाणु हैं। उन जीवाणुओं को कोई पता नहीं कि आप भी हैं। वे पैदा होंगे, जवान होंगे, बूढ़े होंगे, बच्चे छोड़ जाएंगे, मर जाएंगे। उनकी कब्र बन जाएगी आपके भीतर, आपको उनका पता नहीं चलेगा। उनको तो आपका बिल्कुल पता नहीं। आप सत्तर साल जीएंगे, इस बीच आपके भीतर करोड़ों जीवन पैदा होंगे और विदा हो जाएंगे।
ठीक ऐसे ही पृथ्वी को हमारा कोई पता नहीं है, हमें पृथ्वी के जीवन का कोई पता नहीं है। अरबों वर्ष का उसका जीवन-वर्तुल है। पृथ्वी का चार-पांच अरब वर्ष का जीवन-वर्तुल है। पूरे ब्रह्म का, ब्रह्मांड का, संभूत ब्रह्म का, कितने वर्षों का है, कहना कठिन है! लेकिन एक बात तय है कि इस जगत में नियम का कोई भी उल्लंघन नहीं है। देर-अबेर नियम पूरा होता है।
इसलिए उपनिषद के ऋषि कहते हैं, दो हिस्से कर लें ब्रह्म के। संभूत, जो है; असंभूत, जिससे हुआ है और जिसमें लीन हो जाएगा। बिंदु ब्रह्म और विस्तीर्ण ब्रह्म! जो विस्तीर्ण ब्रह्म को जान लेता है, वह मृत्यु को पार करता है। जो बिंदु ब्रह्म को जान लेता है, वह अमृत को उपलब्ध होता है। क्योंकि विस्तीर्ण ब्रह्म जो है वह मृत्यु का घेरा है। मृत्यु घटेगी ही। वर्तुल को पूरा होना पड़ेगा। जन्म हुआ है, मृत्यु होगी।
क्यों ऋषि कहता है कि वह मृत्यु को जीत लेता है? मृत्यु को जीतने का क्या अर्थ है? क्या ऋषि मरते नहीं? सब ऋषि मर जाते हैं, सब ज्ञानी मर जाते हैं! निश्चित ही मृत्यु को जीतने का अर्थ न मरना नहीं है। मृत्यु को जीतने का अर्थ हैः जो व्यक्ति यह जान लेता है, गहरे में अनुभव कर लेता है कि जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी ही है, अनिवार्य है; जो यह जान लेता है कि जन्म पहली शुरुआत है वर्तुल की, मृत्यु अंत है; जो इस बात को इतनी प्रगाढ़ता से जान लेता है कि मृत्यु अनिवार्यता है, नियति है, वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है! अनिवार्य से क्या भय है? जिससे निवारण नहीं हो सकता है उसका भय कैसा? जो होगा ही, जो होना ही है, उसकी चिंता भी क्या? चिंता तो उसकी होती है जिसमें परिवर्तन हो सके।
इसलिए मजे की बात है कि पश्चिम में जितनी मृत्यु की चिंता है उतनी पूरब में कभी नहीं थी। जब कि पश्चिम को ऐसा लगता है कि मृत्यु को जीतने के उपाय उसके पास हैं, और पूरब को कभी नहीं लगा कि ऐसे जीतने के कोई उपाय हैं। इसके कारण हैं। अगर ऐसा लगे कि मृत्यु को बदला जा सकता है तो चिंता पैदा होगी। जो भी चीज बदली जा सकती है, चिंता आएगी। जो नहीं बदली जा सकती, तो चिंता का कोई उपाय नहीं। चिंता करके करिएगा क्या? चिंता किसलिए? अगर मृत्यु सुनिश्चित है, अगर जन्म के साथ ही तय हो गई, तो चिंता का क्या कारण है?
युद्ध के मैदान पर सिपाही जाते हैं तो जब तक युद्ध के मैदान पर नहीं पहुंचते तब तक भयभीत, पीड़ित और चिंतित होते हैं। जैसे ही युद्ध के मैदान

पर पहुंचते हैं, दिन दो दिन के भीतर सब चिंता मिट जाती है। कायर से कायर सैनिक भी युद्ध के मैदान में पहुंच कर बहादुर हो जाता है। क्योंकि बम गिरने लगे सिर के ऊपर, अब कोई उपाय नहीं रहा।
पाणिनी के संबंध में छोटी सी मीठी कथा है। अपने विद्यार्थियों को बिठा कर पाणिनी व्याकरण पढ़ा रहा है। जंगल है, एक सिंह दहाड़ता हुआ आ जाता है। पाणिनी कहता है, सुनो सिंह की दहाड़ और इस दहाड़ का क्या व्याकरण रूप होगा, वह समझो! बच्चे कंप रहे हैं और पाणिनी सिंह की दहाड़ की क्या व्याकरण व्यवस्था होगी, वह समझा रहा है। कहते हैं, पाणिनी के ऊपर सिंह ने हमला कर दिया, तब भी वह व्याकरण समझा रहा है। पाणिनी को सिंह खा गया, तब भी वह, सिंह मनुष्य को खाता है तो इसका भाषागत रूप क्या है, इसकी व्याकरण क्या है, वह समझा रहा है!
नहीं, पाणिनी भी भाग कर बचाव तो कर ही सकता था, ऐसा हमें लगता है। कुछ उपाय किया जा सकता था। लेकिन पाणिनी जैसे लोगों की समझ यह है कि आज मरे कि कल, मरना जब सुनिश्चित है तो आज और कल से क्या फर्क पड़ता है। समय के व्यवधान से कोई फर्क पड़ता है? जब मृत्यु होनी ही है तो आज होगी कि कल होगी, परसों होगी, उसकी स्वीकृति है! इस स्वीकृति में विजय है। दिस एक्सेप्टबिलिटी, यह स्वीकार, कि हमने जन्म के साथ मृत्यु को स्वीकार कर लिया है; फैलाव के साथ ही सिकुड़ने को स्वीकार कर लिया है; फैले हैं, उसी दिन जाना कि सिकुड़ जाएंगे; जन्मे हैं, उसी दिन जाना कि विदा हो जाएंगे; प्रकट हुए हैं, उसी दिन जाना कि अप्रकट हो जाएंगे; वर्तुल पूरा होकर रहेगा! ऐसी स्वीकृति मृत्यु से मुक्ति है। फिर मरना कैसा? मरने वाला तो पार हो गया। उसे तो कोई जन्म का मोह न रहा और मृत्यु का कोई भय न रहा।
ध्यान रहे, हमारे जीवन में मृत्यु और जन्म दो छोर हैं जो जीवन के बाहर हैं। जन्म हमारा जीवन के बाहर है, क्योंकि जन्म के पहले हम नहीं थे। मृत्यु हमारे जीवन के बाहर है, क्योंकि इस मृत्यु के बाद हम नहीं होंगे। वह बाउंड्री लाइन है, सीमांत है। लेकिन जो जानता है उसके लिए यह सीमांत नहीं है। मृत्यु और जन्म जीवन के बीच में घटी दो घटनाएं हैं। क्योंकि वह कहता है कि जन्म किसका? मैं पहले था तभी तो मैं जन्म सका, नहीं तो मैं जन्मता कैसे? मैं अप्रकट था तभी तो प्रकट हो सका, अन्यथा मैं प्रकट कैसे होता? बीज में अगर वृक्ष नहीं छिपा था तो कोई उपाय नहीं था कि वह पैदा हो जाए! और मैं मर सकूंगा तभी क्योंकि मैं हूं, नहीं तो मृत्यु किसकी होगी? जन्म के पहले मैं था तो जन्म हो सका, मृत्यु के बाद भी मैं रहूंगा तो ही मृत्यु हो सकती है, नहीं तो मृत्यु होगी किसकी? जो जानता है, उसके लिए मृत्यु अंत नहीं है, जीवन के बीच घटी एक घटना है। जन्म भी जीवन के बीच घटी एक घटना है, प्रारंभ नहीं है।
जीवन वर्तुल के बाहर है। लेकिन वह जीवन असंभूत है, वह अप्रकट है, अन-अभिव्यक्त है, अनएक्सप्रेस्ड है, अनमैनीफेस्ट है। वह असंभूत जीवन संभूत बनता है जन्म से, फिर असंभूत बन जाता है मृत्यु से। जो जान लेता है संभूत जगत की इस व्यवस्था को, वह फिर व्यवस्था से पीड़ित नहीं होगा।
एक मकान के भीतर आप हैं, आप जानते हैं कि यह दीवार है और यह दरवाजा है।
तो फिर आप दीवार से सिर नहीं टकराते। फिर आप दीवार से निकलने की कोशिश नहीं करते। निकलना होता है, दरवाजे से निकल जाते हैं। लेकिन फिर इसके लिए बैठ कर रोते नहीं कि दीवार दरवाजा क्यों नहीं है! लेकिन जिसे दरवाजे का पता नहीं है वह बेचारा दीवार से सिर टकराएगा और बहुत बार चिल्लाएगा कि दीवार दरवाजा क्यों नहीं है? दरवाजे का पता न हो तो! दरवाजे का पता हो तो दीवार दीवार है, दरवाजा दरवाजा है! दीवार से निकलने की आप कोशिश नहीं करते, दरवाजे से निकलने की कोशिश करते हैं।
व्यवस्था को पूरा जो जान लेता है वह व्यवस्था से मुक्त हो जाता है। जो व्यवस्था को अधूरा जानता है वह संघर्ष में पड़ा रहता है। हम जानते हैं, जन्म है तो मृत्यु है। यह जानना इतना साफ है, इतना चरम है, इतना अल्टीमेट है, इसमें फर्क का कोई उपाय नहीं। इसी का नाम नियति है--संभूत की नियति, संभूत के बीच भाग्य!
लेकिन भाग्य से हमने बड़े गलत अर्थ लिए। असल में हम गलत आदमी हैं इसलिए
सब चीजों के गलत अर्थ लेते हैं। अर्थ सही और गलत हो जाते हैं, गलत और सही

आदमियों के साथ। भाग्य का अर्थ अगर निराशा बन जाए, तो फिर आप समझे नहीं! हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाए आदमी भाग्य को समझ कर, तो आप समझे नहीं!
भाग्य का अर्थ परम आशावान है। बड़ी मुश्किल मालूम पड़ेगी बात। भाग्य का मतलब ही यह है कि अब दुख का कोई कारण ही न रहा। अब तो निराशा की कोई जगह ही न रही। मृत्यु है, और है! इसमें दुख कहां है? इसमें पीड़ा कहां है? दुख और पीड़ा वहीं थे, जब स्वीकार न था। तो निराशा कहां है?
बुद्ध कहते हैं कि जो बना है वह बिखरेगा; जो मिला है वह छूटेगा; मिलन
के क्षण में जानना कि विदा मौजूद हो गई है।
परंतु हम उदास हो जाएंगे। प्रेमी से मिले, उसी क्षण ख्याल आ गया कि विदा का क्षण उपस्थित होगा, अब थोड़ी देर में विदा होगी, बस हमारा मिलन भी नष्ट हो जाएगा। मिलन में जो थोड़ी-बहुत सुख की भ्रांति पैदा होती है वह भी गई। क्योंकि विदाई दिखाई पड़ने लगी। जन्म हुआ, बैंड-बाजे बजे, उसी वक्त किसी ने कहा, मौत निश्चित हो गई, मरेगा यह बच्चा! हम कहेंगे, ऐसे अपशकुन की बातें मत बोलो। इससे बड़ा मन उदास होता है। इससे चित्त को बड़ा धक्का लगता है।
लेकिन बुद्ध जब कहते हैं, मिलन में विदा उपस्थित हो गई, तो वे मिलन के सुख को नहीं काट रहे हैं, केवल विदा के दुख को काट रहे हैं। इसमें फर्क समझ लेना। नासमझ मिलन के सुख को काट डालेगा, समझदार विदा के दुख को काट डालेगा। क्योंकि जब मिलन में ही विदा उपस्थित है तो विदा का दुख कैसा? वह तो जिस दिन मिलन चाहा था, उसी दिन विदा भी चाह ली थी। जब जन्म में ही मौत उपस्थित है तो मृत्यु का दुख कैसा? वह तो जिस दिन जन्म चाहा था उसी दिन मौत भी मिल गई। नासमझ जन्म के सुख को काट देगा, समझदार मृत्यु के दुख को काट देगा।
संभूत ब्रह्म को, विस्तीर्ण ब्रह्म को, प्रकट ब्रह्म को जान कर व्यक्ति मृत्यु के पार हो जाता है। मृत्यु के, पीड़ा के, संताप के, सबके पार हो जाता है। ध्यान रहे, दुख, पीड़ा, संताप और चिंता सब मृत्यु की छायाएं हैं, शैडो ऑफ डेथ। जो व्यक्ति मृत्यु से मुक्त हो गया, उसके लिए न कोई दुख है, न कोई चिंता है, न ही कोई पीड़ा है।
कभी आपने ठीक से ख्याल नहीं किया होगा कि जब भी चिंतित होते हैं तो किसी न किसी कोने में मौत खड़ी होती है, उस वजह से चिंतित होते हैं। एक आदमी के घर में आग लग गई, वह चिंतित होता है। एक आदमी का दिवाला निकल गया, वह चिंतित है। क्योंकि दिवाला निकलने से जीवन अब कष्ट में पड़ेगा और मौत आसान हो जाएगी। मकान जल जाने से अब जीवन असुरक्षित हो जाएगा और मौत सुगमता पाएगी। अंधेरे में अकेला खड़ा आदमी चिंतित होता है, क्योंकि कुछ दिखाई नहीं पड़ता और मौत अगर आ जाए तो अभी दिखाई भी नहीं पड़ेगी। जहां-जहां आप चिंतित होते हो, फौरन पहचानना आस-पास, कहीं खड़ी हुई मौत को पाएंगे।
मौत की छाया है चिंता। जहां-जहां दुख और पीड़ा मन को पकड़ते हों वहां समझ लेना कि कहीं संभूत ब्रह्म की समझ में नासमझी हो रही है। अनिवार्य को आप निवार्य मान रहे हैं। बस वहीं से दुख शुरू हो रहा है। जो होना ही है, उसकी आप आशा किए जा रहे हैं कि शायद न हो। वहीं से चिंता शुरू हो गई। वहीं संताप और एंग्विश पैदा होता है।
नहीं, जो होना ही है, वही हो रहा है, वही होता है, अन्यथा और कोई उपाय नहीं है। तब इस स्वीकृति के साथ, इस तथाता के साथ संभूत ब्रह्म की इस व्यवस्था की स्वीकृति के साथ, भीतर सब शांत हो जाता है। अशांति का उपाय नहीं रह जाता।
इसलिए कहा है ऋषि ने, संभूत ब्रह्म को जान कर मृत्यु से मुक्ति हो जाती है।
लेकिन यह आधी बात है, यह आधा सूत्र है। अभी एक और जानने को छूट गया है,
जो और गहन है। हम तो इसको ही नहीं जान पाते, इसी से उलझ कर परेशान हो जाते हैं। अज्ञान में नाहक दीवारों से सिर फोड़ते रहते हैं। जहां दरवाजा नहीं है, वहां नाहक टकराते रहते हैं। ताश के घर बनाते रहते हैं, पानी पर रेखाएं खींचते रहते हैं। और उनके मिटने को देख कर रोते रहते हैं।
जिस दिन पानी पर रेखा खींचें उसी दिन जान लेना, उसी क्षण जान लेना कि पानी पर खींची गई रेखा खींचते ही मिटना शुरू हो जाती है। इधर आपने खींची

नहीं, उधर वह मिटने लगी। पानी पर रेखा खींचिएगा और स्थायी करने की कोशिश करिएगा तो इसमें कसूर पानी का है कि रेखा का? कि आपका? इसमें दोष किसको दीजिए, पानी को, रेखा को? जो आदमी पानी को दोष देगा वह दुखी होगा! जो समझेगा अपनी नासमझी, वह हंसेगा! जान लेगा कि पानी पर खींची गई रेखा मिटती है, मिटनी ही चाहिए। खिंच जाए तो ही झंझट है।
संभूत ब्रह्म को ही हम नहीं समझ पाते, असंभूत को तो कैसे समझ पाएंगे? प्रकट जो है, बिल्कुल सामने जो खड़ा है! मौत से ज्यादा प्रकट कोई चीज है? धोखा दिए जाते हैं अपने को, डिसेप्शन दिए जाते हैं! कोई दूसरा मरता है तो कहते हैं, बेचारा मर गया। ख्याल ही नहीं आता कि अपनी मरने की खबर आई है। एक पंक्ति मुझे याद आती है एक आंग्ल कवि की। कोई मर जाता है गांव में
तो चर्च की घंटी बजती है। उस पंक्ति में कहा हैः किसी को भेजो मत पूछने कि घंटी किसके लिए बजती है। इट टॉल्स फार दी! तुम्हारे लिए ही बजती है! बिना पूछे ही जानो कि तुम्हारे लिए ही बजती है।
मौत जैसा प्रकट तत्व ऐसा हम छिपा कर चलते हैं कि अगर कोई मंगल ग्रह का यात्री हमारे बीच उतरे और दो-चार दिन हमारे घर में रहे तो दो चीजों का उसको पता नहीं चलेगा, जो दोनों जुड़ी हैं। ख्याल में ले लें! उसे पता नहीं चलेगा कि मौत होती है। उसे पता नहीं चलेगा कि सेक्स होता है। सेक्स को भी हम छिपाए हैं, मौत को भी हम छिपाए हैं।
ध्यान रखेंः सेक्स जन्म सूत्र है। वह संभूत ब्रह्म का पहला चरण है।
और मौत आखिरी सूत्र है, वह आखिरी चरण है। मृत्यु के भय की वजह से सेक्स का दमन शुरू हुआ। वह पहला सूत्र है कि अगर मौत को दबाना है तो जन्म की प्रक्रिया को भी भुला देना होगा। क्योंकि जन्म के साथ मौत जुड़ी हुई है। इसलिए जन्म हम अंधेरे में छिपा देते हैं। जन्म की प्रक्रिया को पर्दों में डाल देते हैं। और मौत को हम गांव के बाहर निकाल देते हैं। कब्रिस्तान बना देते हैं दूर। कब्र पर फूल बो देते हैं कि कोई निकले भी कब्र के पास भूल-चूक से तो फूल दिखाई पड़ें, कब्र दिखाई न पड़े। लाश को ले जाते हैं तो फूलों में ढांक लेते हैं। वह मरा हुआ दिखाई न पड़े, खिला हुआ दिखाई पड़े।
कितने ही फूलों में ढांको, लेकिन जो मर गया, वह मर गया। कितनी ही खूबसूरत कब्रें बनाओ और कब्रों पर कितने ही मजबूत पत्थर लगाओ और उन पर नाम लिखो! जब कब्र के भीतर जो पड़ा है आज, वह न बच सका, तो पत्थरों पर लिखे हुए नाम कितनी देर बचेंगे? और कब्र को कितना ही गांव के बाहर सरकाओ, मौत गांव में ही घटती रहेगी, कब्रिस्तान में नहीं घटेगी।
इधर हम सेक्स को दबाते हैं, छिपाते हैं, क्योंकि वह जन्म है। उसको भी दबाने और छिपाने के पीछे अचेतन कारण है। कारण यही है कि वह पहला सूत्र है। अगर उसको उघाड़ कर रखा तो मौत भी उघड़ जाएगी। वह भी बच नहीं सकती ज्यादा दिन। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जिन समाजों में सेक्स सप्रेशन समाप्त हुआ है, जहां-जहां समाज ने सेक्स को मुक्त कर दिया, प्रकट कर दिया, वहां-वहां मौत की चिंता बढ़ गई।
मैंने सुना है, यहूदी बच्चा एक दिन अपने घर लौट आया। स्कूल से समझ कर आया है कि बच्चों का जन्म कैसे होता है। नये ज्ञान से बहुत आह्लादित है, किसी को बताने को उत्सुक है। घर आकर उसने अपनी मां को पूछा कि मेरा जन्म कैसे हुआ? उसकी मां ने कहा, परमात्मा ने तुझे भेजा। मेरे पिताजी का जन्म कैसे हुआ? उनको भी परमात्मा ने भेजा। उनके पिताजी का जन्म कैसे हुआ? मां थोड़ी हैरान हुई! उसने कहा, उनको भी परमात्मा ने भेजा। वह पूछते ही चला गया, और उनके पिता? सात पीढ़ियां आ गईं। मां ने कहा, उत्तर एक ही है। तो उस लड़के ने कहा कि इसका क्या मतलब होता है? व्हाट ड.ज दिस मीन? सेक्स हैज नाट एक्झिस्टेड इन अवर फेमिली फॉर सेवन जेनरेशंस? सात पीढ़ियों से सेक्स हमारे घर में है ही नहीं? क्योंकि मैं तो स्कूल में पढ़ कर आ रहा हूं कि बच्चे ऐसे पैदा होते हैं।
नहीं, बहुत अचेतन भय है सेक्स को दबाने का। वह जन्म का पहला सूत्र है।
जब तक बच्चों को पता नहीं है कि कैसे पैदा होता है आदमी, तब तक वे यही पूछते चले जाते हैं, कैसे पैदा होता है? जिस दिन पता चल जाएगा कि कैसे पैदा होता है, वे पूछेंगे, मरता कैसे है? पैदा होने वाले सूत्र को ही छिपाए चले

जाओगे, उसी के आस-पास घूमते रहेंगे और पूछते रहेंगे। और कभी मौका नहीं आएगा कि पूछें, मरता कैसे है? जब तक पता नहीं चला कि पैदा कैसे होता है तो मरने का सवाल नहीं उठता।
ध्यान रहे, पैदा होने का सूत्र साफ है तो दूसरा सवाल मौत के सिवाय अन्य नहीं हो सकता। इसलिए दबा दिया इधर काम को, छिपा दिया उधर कब्र को, उधर मृत्यु को छिपा दिया। उन दोनों के बीच में हम जीते हैं अंधेरे में। निश्चित ही बहुत भयभीत जीते हैं। न जन्म का पता, न मौत का पता, फिर भय
तो होगा ही।
संभूत ब्रह्म, जो इतना प्रकट है, साफ है, उसको भी हम झुठलाते हैं। तो असंभूत, जो अप्रकट है, अन-अभिव्यक्त है, उसका तो कहना ही क्या? वहां तक हम पहुंचेंगे कैसे? जन्म और मृत्यु को ठीक से जान लें, एक ही चीज के दो छोर हैं। वर्तुल का प्रारंभ है जन्म, उसी वर्तुल का अंत है मृत्यु। मृत्यु उसी जगह पहुंच कर होती है जहां से जन्म होता है। मृत्यु की घटना और जन्म की घटना एक ही घटना है।
क्या होता है जन्म में? शरीर निर्मित होता है। पुरुष और स्त्री के अणुओं से कंपोजिट बॉडी निर्मित होते हैं। आधे-आधे दोनों के पास हैं। इसलिए स्त्री-पुरुष का इतना आकर्षण है। इसलिए वे आधे तत्व दोनों खिंचते हैं, पूरा होना चाहते हैं। इसलिए सब विधि-विधान, सब नियम, सब सिद्धांत, सब शिक्षकों को छोड़ कर बच्चे पैदा होते चले जाते हैं। सब ब्रह्मचर्य की शिक्षाएं देने वाले लोग आते हैं और चले जाते हैं, कोई परिणाम दिखाई नहीं पड़ता। आकर्षण इतना गहरा है कि सब शिक्षाएं ऊपर ही रह जाती हैं। जैसे हमने एक चीज को दो टुकड़ों में तोड़ दिया हो और वे वापस मिलना चाहती हों। मिलते ही नया शरीर निर्मित हो जाता है। आधे अणु स्त्री देती है, आधे अणु पुरुष देता है। जन्म का मतलब है, पुरुष और स्त्री के आधे अणुओं से मिल कर पूरे शरीर का निर्माण।
जैसे ही यह शरीर निर्मित होता है, एक आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है। जिस आत्मा की आकांक्षाएं उस शरीर से पूरी होती हैं, वह आत्मा प्रवेश कर जाती है। यह प्रवेश वैसा ही सहज, स्वचालित है जैसे कि यहां पानी गिरता है और गड्ढे में प्रवेश कर जाता है। उतना ही नियमित है। आत्मा अपने अनुकूल गर्भ को खोज कर प्रवेश कर जाती है।
मृत्यु में क्या होता है? वे जो आधे-आधे तत्व मिले थे, वापस बिखरने लगते और टूटने लगते हैं, कुछ और नहीं होता। भीतर से जोड़ फिर शिथिल होने लगता है। बुढ़ापे का अर्थ है, जोड़ शिथिल होना। भीतर की जो कंपोजिट बॉडी थी वह डिकंपोज होने लगी। जो जुड़ा था, वह फिर बिखरने लगा। उसके बिखरने का सूत्र जन्म के दिन ही तय हो गया। और किसी ढंग से नहीं, वैज्ञानिक के ढंग से तय हो गया।
हमारा ज्ञान कम है, विज्ञान कम है, लेकिन बढ़ता जा रहा है। आज नहीं कल, बच्चे के जन्म के साथ हम कह सकेंगे कि इसकी बिल्ट-इन-प्रोसेस कितने दिन चल सकती है। बच्चा सत्तर साल चल सकता है, कि अस्सी साल चल सकता है, कि सौ साल चल सकता है। ठीक वैसे ही जैसे हम एक घड़ी की गारंटी देते हैं कि दस साल चल सकती है। क्योंकि इसके कल-पुर्जों की परख कहती है कि दस साल तक के संघर्ष को झेल लेगी--हवा के, ताप के, गति के। दस साल के संघर्ष को झेल कर बिखर जाएगी।
जिस दिन बच्चा पैदा होता है उस दिन दोनों के अणु मिल कर यह तय कर देते हैं कि यह कितने दिन तक हवा, पानी, गर्मी, बरखा, धूप, दुख, पीड़ा, संघर्ष, मिलन-विरह, मित्रता-शत्रुता, आशा-निराशा, रात-दिन इन सबको झेल सकेगा। और झेलते-झेलते बिखरने लगेगा। और वह दिन आ जाएगा जब ये जो मिले थे अणु, वे बिखर कर अलग हो जाएंगे। उनके अलग होते ही आत्मा को शरीर छोड़ देना पड़ेगा। मृत्यु और यौन, सेक्स और डेथ एक ही चीज के दो छोर हैं। यौन जिसे मिलाता है, मृत्यु उसे बिखरा देती है। यौन जिसे संयुक्त करता है, मृत्यु उसे वियुक्त कर देती है। यौन अगर सिंथेटिक है तो मृत्यु एनालिटिक है। यौन संश्लिष्ट करता है, मृत्यु विश्लिष्ट कर देती है। घटना एक ही है। घटना में कोई फर्क नहीं है।

संभूत ब्रह्म को जो ठीक से जान ले वह इसकी स्वीकृति को उपलब्ध होता है। स्वीकृति विजय है। जिस चीज को आपने स्वीकार कर लिया उसके आप मालिक हो गए।
दूसरी बात भी ख्याल में ले लें। ख्याल के लायक नहीं है दूसरी बात। ख्याल में लेने से आएगी भी नहीं। पहली बात ख्याल में आ जाए तो पर्याप्त है। दूसरी बात तो और गहन अनुभव की है। असंभूत ब्रह्म को जानने के लिए या तो जन्म के पहले जाना पड़े या मृत्यु के बाद जाना पड़े। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।
इसलिए झेन फकीर, जापान में जब कोई साधक उनके पास जाता है, तो उससे वे कहते हैं कि तू जा ध्यान कर और पता लगा कि जन्म के पहले तेरा चेहरा कैसा था? व्हाट इ.ज योर ओरिजिनल फेस? यह नहीं जो अभी है। यह नहीं जो कल था। यह नहीं जो परसों था। ओरिजिनल! जो जन्म के पहले था। क्योंकि यह चेहरा तो तेरे मां-बाप से मिला है, तेरा नहीं है। यह आंख का रंग तेरे मां-बाप से मिला है, तेरा नहीं है। यह नाक तेरे मां-बाप से मिली है, तेरी नहीं है। यह चमड़ी का रंग तेरे मां-बाप से मिला है, तेरा नहीं है। अगर नीग्रो मां-बाप होते तो यह काला हो जाता। अगर अंग्रेज मां-बाप होते तो यह गोरा हो जाता। यह पिगमेंट शरीर के रंग का, यह तो तेरे मां-बाप से मिला है। यह अपना नहीं है। यह खुद का चेहरा नहीं है। खुद का चेहरा तो जन्म के पहले मिल सकता है या मौत के बाद मिल सकता है।
जन्म के पहले लौटना बहुत मुश्किल है। असंभूत ब्रह्म को जन्म के पहले जानना बहुत मुश्किल है। पहले तो मैंने कहा, असंभूत ब्रह्म को संभूत ब्रह्म के मुकाबले जानना बहुत मुश्किल है। अब मैं आपसे कहता हूं, दो उपाय हैं। या तो जन्म के पहले रिग्रेस कर जाएं, ध्यान में इतने पीछे चले जाएं उतर कर कि जन्म के पहले चले जाएं तो असंभूत का अनुभव हो। दूसरा उपाय यह है कि ध्यान में इतने आगे बढ़ जाएं कि मर जाएं और मौत के आगे निकल जाएं तो असंभूत ब्रह्म का अनुभव हो जाएगा।
इन दोनों में मरने का प्रयोग आसान है, क्योंकि वह भविष्य है। पीछे लौटना असंभव है, आगे ही जाना संभव है। बचपन के वस्त्र पहनने बहुत मुश्किल हैं, गर्भ में वापस लौटना अति कठिन है, क्योंकि बहुत संकरा होता जाता है मार्ग। लेकिन ढीले वस्त्र, मौत के ढीले वस्त्र पहनने बहुत आसान हैं। मार्ग विस्तीर्ण होता चला जाता है।
ध्यान रहे, जन्म का द्वार बहुत छोटा है, मृत्यु का द्वार बहुत बड़ा है। दोनों में मृत्यु आसान है। वैसे जन्म के पार भी जाना संभव है। उसकी भी प्रक्रियाएं हैं, उसके भी मार्ग हैं, लेकिन अति कठिन हैं। मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं वह मृत्यु का प्रयोग है, वह मृत्यु में छलांग है। अपने हाथ से मर कर देखना है। अगर घटना घट जाए और जानते हुए आप मृत्यु में उतर जाएं और ऐसे हो जाएं जैसे नहीं हैं तो असंभूत का चेहरा दिखाई पड़ेगा। वह चेहरा दिखाई पड़ेगा जो जन्म के पहले है और मृत्यु के बाद है। वह एक ही चेहरा है। प्रक्रिया भले ही दो हो जाएं, पर बिंदु वह एक ही है। आप चाहे पीछे लौट कर उस बिंदु को देखें, चाहे आगे जाकर उस बिंदु को देखें। लेकिन सरल है आगे जाना।
इसलिए मेरा आग्रह मृत्यु पर है। मैं यह नहीं कहता कि आप लौट कर देखें जन्म के पहले क्या चेहरा था! मैं कहता हूं, जरा आगे बढ़ कर, झांक कर देखें कि मृत्यु के बाद क्या चेहरा होगा?
मृत्यु--स्वेच्छा से स्वीकृत--ध्यान बन जाती है। और अगर कोई व्यक्ति
इस मृत्यु को सिर्फ थोड़े ही क्षणों में न जीना चाहे, बल्कि पूरे जीवन में जीना चाहे तो संन्यास बन जाता है। संन्यास का अर्थ हैः जीते जी इस तरह से जीना जैसे मर गए!
एक झेन फकीर हुआ है, बोकोजू। संन्यास लिया उसने। गांव से गुजरता था, किसी आदमी ने गालियां दीं। उसने खड़े होकर सुनीं। पास की दुकान के मालिक ने कहा, खड़े होकर सुन रहे हो? वह गालियां दे रहा है! बोकोजू ने कहा, बट नाउ आई एम डेड, लेकिन मैं मरा हुआ आदमी हूं। अब मैं जवाब कैसे दे दूं? उस आदमी ने कहा, मरे हुए आदमी? पूरी तरह जीते हुए दिखाई पड़ रहे हो!

तो बोकोजू ने कहा, जब मर ही जाऊंगा तब मरने में मेरा क्या गुण होगा! जीते जी मर रहा हूं, इसमें कुछ मेरा गुण है। जब मर ही जाऊंगा तब तो मरूंगा ही। तब तो सभी मरते हैं। मैं तो जीते जी मर गया हूं। उस होटल के मालिक ने कहा, हम कुछ समझे नहीं। तो बोकोजू ने कहा, जन्म तो अनजाने में हो गया। मृत्यु से जान कर गुजरना चाहता हूं। जन्म के वक्त चूक गया एक मौका, जब कि उसे जान सकता था जो जन्म के पहले था, वह चूक गया, दैट अपरचुनिटी हैज बीन मिस्ड!
लेकिन ध्यान रहे, अगर मृत्यु अचानक आएगी, जैसा कि जन्म आया था, तो उसको
भी चूक जाएंगे। लेकिन अगर आपने तैयारी करके मृत्यु को दरवाजा दिया, आप तैयार रहे, तो ठीक है। संन्यासी का मतलब भी यही है--मरना अपनी तरफ से, स्वेच्छा से, वालंटरी डेथ। मरते जाना, ऐसे होते जाना जैसे मर ही गए! जब कोई गाली दे तो जानना कि मैं मर गया हूं। जब आप मर जाएंगे और आपकी कब्र पर कोई खड़े होकर गाली देगा तब आप क्या करेंगे? वही करना! जब आप मर जाएंगे और आपकी खोपड़ी कहीं पड़ी होगी और कोई लात मारेगा, तो जो उस वक्त करें, वही अभी भी करना। संन्यास का अर्थ यही है! तो हम असंभूत ब्रह्म में उतर जाएंगे। और नहीं तो मौत का अवसर भी चूक जाएगा।
और ऐसा नहीं कि एक दफा, कई दफा चूके! जन्म का भी कई बार चूका है, इस बार
तो चूका ही है, इसके पहले जन्म का, अनेक बार का चूका, और मृत्यु का अनेक बार चूका। हम कोई नये नहीं हैं मरने और जीने में, पुराने अभ्यासी हैं। बहुत बार जन्म ले चुके, बहुत बार मर चुके--आफन। एडिक्टेड हैं। यह ढंग हो गया है हमारा। पर यह ढंग आगे भी चलाना है या नहीं चलाना है, यह निर्णय लेना चाहिए। अभी एक अवसर आगे आ रहा है मौत का। उस अवसर के लिए तैयारी करते जाना चाहिए। तो संभूत में प्रवेश हो जाएगा।
जो असंभूत में प्रवेश करता है, ऋषि कहता है, वह अमृत को जान लेता है।
जो संभूत को जान लेता है वह मृत्यु को जीत लेता है; जो असंभूत में प्रवेश करता है वह अमृत को जान लेता है। क्योंकि जब हम मृत्यु में पूरी तरह प्रवेश कर जाते हैं, सब भांति मर जाते हैं और फिर भी पाते हैं कि नहीं मरे, तो अमृत की उपलब्धि हो गई। जब कोई गाली देता है और आप मुर्दे की भांति होते हैं और फिर भी जानते हैं कि मैं हूं और गाली का उत्तर नहीं आता; जब कोई आपका हाथ काट दे, गर्दन काट दे, और गर्दन कटती हो, तब भी आप जानते हैं कि गर्दन कट रही है, फिर भी मैं हूं, तो अमृत का द्वार खुल गया। मृत्यु से जो बचेगा, अमृत से वंचित रह जाएगा। मृत्यु में जो उतरेगा, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
असंभूत ब्रह्म को जान लेना अमृत की उपलब्धि है, क्योंकि असंभूत अमृत है। वह जन्म के पहले और मृत्यु के बाद है, इसलिए अमृत है। न वह कभी जन्मता है इसलिए उसके मरने का कोई उपाय नहीं।
"अमृत-वाणी" से संकलित सुधा-बिंदु

मैं कहता आंखन देखी
चौतीसवां प्रवचन

नव-संन्यास का सूत्रपात

संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं, आनंद है। संन्यास निषेध भी नहीं है, उपलब्धि है। लेकिन आज तक पृथ्वी पर संन्यास को निषेधात्मक अर्थों में ही देखा गया है--त्याग के अर्थों में, छोड़ने के अर्थों में--पाने के अर्थ में नहीं। मैं संन्यास को देखता हूं पाने के अर्थ में।
निश्चित ही जब कोई हीरे-जवाहरात पा लेता है तो कंकड़-पत्थरों को छोड़ देता है। लेकिन कंकड़-पत्थरों को छोड़ने का अर्थ इतना ही है कि हीरे- जवाहरातों के लिए जगह बनानी पड़ती है। कंकड़-पत्थरों का त्याग नहीं किया जाता। त्याग तो हम उसी बात का करते हैं जिसका बहुत मूल्य मालूम होता है। कंकड़-पत्थर तो ऐसे छोड़े जाते हैं जैसे घर से कचरा फेंक दिया जाता है। घर से फेंके हुए कचरे का हम हिसाब नहीं रखते कि हमने कितना कचरा त्याग दिया। संन्यास अब तक लेखा-जोखा रखता रहा उस सबका, जो छोड़ा जाता है। मैं संन्यास को देखता हूं उस भाषा में, उस लेखे-जोखे में, जो पाया जाता है। निश्चित ही इसमें बुनियादी फर्क पड़ेंगे। यदि संन्यास आनंद है, यदि संन्यास उपलब्धि है, यदि संन्यास पाना है, विधायक है, पाजिटिव है, तो संन्यास का अर्थ विराग नहीं हो सकता, तो संन्यास का अर्थ उदासी नहीं हो सकता, तो संन्यास का अर्थ जीवन का विरोध नहीं हो सकता। तब तो संन्यास का अर्थ होगा, जीवन में अहोभाव! तब तो संन्यास का अर्थ होगा, उदासी नहीं, प्रफुल्लता! तब तो संन्यास का अर्थ होगा, जीवन का फैलाव, विस्तार, गहराई, सिकोड़ना नहीं। अभी तक जिसे हम संन्यासी कहते हैं वह अपने को सिकोड़ता है, सबसे तोड़ता है, सब तरफ से अपने को बंद करता है। मैं उसे संन्यासी कहता हूं, जो सबसे अपने को जोड़े, जो अपने को बंद ही न करे, खुला छोड़ दे।
निश्चित ही इसके और भी अर्थ होंगे। जो संन्यास सिकोड़ने वाला है वह संन्यास बंधन बन जाएगा, वह संन्यास कारागृह बन जाएगा, वह संन्यास स्वतंत्रता नहीं हो सकता। और जो संन्यास स्वतंत्रता नहीं है वह संन्यास ही कैसे हो सकता है? संन्यास की आत्मा तो परम स्वतंत्रता है।
इसलिए मेरे लिए संन्यास की कोई मर्यादा नहीं, कोई बंधन नहीं। मेरे लिए संन्यास का कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं। मेरे लिए संन्यास कोई डिसिप्लिन नहीं है, कोई अनुशासन नहीं है। मेरे लिए संन्यास व्यक्ति के परम विवेक में परम स्वतंत्रता की उदभावना है। उस व्यक्ति को मैं संन्यासी कहता हूं जो परम स्वतंत्रता में जीने का साहस करता है। नहीं कोई बंधन ओढ़ता, नहीं कोई व्यवस्था ओढ़ता, नहीं कोई अनुशासन ओढ़ता।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह उच्छृंखल हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि वह स्वच्छंद हो जाता है। असलियत तो यह है कि जो आदमी परतंत्र है वही उच्छृंखल हो सकता है। और जो आदमी परतंत्र है, बंधन में बंधा है, वही स्वच्छंद हो सकता है। जो स्वतंत्र है वह तो कभी स्वच्छंद होता ही नहीं। उसके स्वच्छंद होने का उपाय नहीं है।
ऐसे अतीत से मैं भविष्य के संन्यासी को भी तोड़ता हूं। और मैं समझता हूं कि अतीत के संन्यास की जो आज तक व्यवस्था थी वह मरणशय्या पर पड़ी है, मर ही गई है। उसे हम ढो रहे हैं, वह भविष्य में बच नहीं सकती। लेकिन संन्यास ऐसा फूल है जो खो नहीं जाना चाहिए। वह ऐसी अदभुत उपलब्धि है जो विदा नहीं हो जानी चाहिए। वह बहुत ही अनूठा फूल है जो कभी-कभी खिलता रहा है। ऐसा भी हो सकता है कि हम उसे भूल ही जाएं, खो ही दें। पुरानी व्यवस्था में बंधा हुआ वह मर सकता है। इसलिए संन्यास को नये अर्थ, नये उदभाव देने जरूरी हो गए हैं। संन्यास तो बचना ही चाहिए। वह तो जीवन की गहरी से गहरी संपदा है। लेकिन अब वह कैसे बचाई जा सकेगी? उसे बचाए जाने के लिए कुछ मेरे ख्याल मैं आपको कहता हूं।
पहली बात तो मैं आपसे यह कहता हूं कि बहुत दिन हमने संन्यासी को संसार
से तोड़ कर देख लिया। इससे दोहरे नुकसान हुए। संन्यासी संसार से टूटता है तो दरिद्र हो जाता है, बहुत गहरे अर्थों में दरिद्र हो जाता है। क्योंकि

जीवन के अनुभव की सारी संपदा संसार में है। जीवन के सुख-दुख का, जीवन की संघर्ष-शांति का, जीवन की सारी गहनताओं का, जीवन के रसों का, जीवन के विरस का सारा अनुभव तो संसार में है। और जब हम किसी व्यक्ति को संसार से तोड़ देते हैं तो वह हॉट हाउस प्लांट हो जाता है। वह खुले आकाश के नीचे खिलने वाला फूल नहीं रह जाता। वह बंद कमरे में, कृत्रिम हवाओं में, कृत्रिम गर्मी में खिलने वाला फूल हो जाता है--कांच की दीवारों में बंद! उसे मकान के बाहर लाएं तो वह मुर्झा जाएगा, मर जाएगा।
संन्यासी अब तक हॉट हाउस प्लांट हो गया है। लेकिन संन्यास भी कहीं बंद कमरों में खिल सकता है? उसके लिए खुला आकाश चाहिए, रात का अंधेरा चाहिए, दिन का उजाला चाहिए, चांद-तारे चाहिए, पक्षी चाहिए, खतरे चाहिए, वह सब चाहिए। संसार से तोड़ कर हमने संन्यासी को भारी नुकसान पहुंचाया, क्योंकि संन्यासी की आंतरिक समृद्धि क्षीण हो गई।
यह बड़े मजे की बात है कि साधारणतः जिन्हें हम अच्छे आदमी कहते हैं उनकी जिंदगी बहुत रिच नहीं होती, उनकी जिंदगी में बहुत अनुभवों का भंडार नहीं होता। इसलिए उपन्यासकार कहते हैं कि अच्छे आदमी की जिंदगी पर कोई कहानी नहीं लिखी जा सकती। कहानी लिखनी हो तो बुरा आदमी पात्र बनाना पड़ता है। एक बुरे आदमी की कहानी होती है। अगर हम बता सकें कि एक आदमी जन्म से मरने तक बिल्कुल अच्छा है, तो इतनी ही कहानी काफी है, और कुछ बताने को नहीं रह जाता।
संन्यासी को संसार से तोड़ कर हम अनुभव से तोड़ देते हैं। अनुभव से तोड़
कर हम उसे एक तरह की सुरक्षा तो दे देते हैं, लेकिन एक तरह की दरिद्रता भी दे देते हैं।
मैं संन्यासी को संसार से जोड़ना चाहता हूं। मैं ऐसे संन्यासी देखना चाहता हूं जो दुकान पर भी बैठे हों, दफ्तर में काम भी कर रहे हों, खेत पर मेहनत भी कर रहे हों। जो जिंदगी की पूरी सघनता में खड़े हों। भाग नहीं गए हों, भगोड़े न हों, एस्केपिस्ट न हों, पलायन न किया हो। जिंदगी के पूरे सघन बाजार में खड़े हों, भीड़ में, शोरगुल में खड़े हों--और फिर भी संन्यासी हों। तब उनके संन्यास का क्या मतलब होगा?
अगर एक स्त्री संन्यासिनी होती है और पत्नी है, तो अब तक मतलब होता था
कि वह भाग जाए जिंदगी से छोड़ कर बच्चों को, पति को। अगर पति है तो छोड़ जाए घर को, छोड़ कर भाग जाए।
मेरे लिए ऐसे संन्यास का कोई अर्थ नहीं है। मैं तो मानता हूं कि अगर
एक पति संन्यासी होता है तो जहां है वहीं हो, भागे नहीं। संन्यास उसके जीवन में वहीं खिलने दे। लेकिन तब क्या करेगा वह? भागने में तो रास्ता दिखता था कि भाग गए तो बच गए। अब क्या करेगा? अब उसको करने का क्या होगा? वह पति भी होगा, बाप भी होगा, दुकानदार भी होगा, नौकर भी होगा, मालिक भी होगा, हजार संबंधों में होगा। जिंदगी का मतलब ही अंतर्संबंधों का जाल है। वह यहां क्या करेगा? भाग जाता था तो बड़ी सहूलियत थी, क्योंकि वह दुनिया ही हट गई जहां कुछ करना पड़ता था। अब वह बैठ जाता था एक कोने में--जंगल में एक गुफा में। सूखता था वहां, सिकुड़ता था वहां। यहां क्या करेगा? यहां संन्यास का क्या अर्थ होगा? अगर त्याग नहीं होगा, तो संन्यास का क्या अर्थ होगा?
एक अभिनेता मेरे पास आया था। नया-नया अभिनेता है; अभी-अभी फिल्मों में आया है। वह मुझसे पूछने आया था कि मुझे भी कोई सूत्र मेरी डायरी पर लिख दें, जो मेरे काम आ जाए। तो उसे मैंने लिखा कि अभिनय ऐसे करो जैसे वह जीवन हो और जीओ ऐसे जैसे वह अभिनय हो।
संन्यासी का मेरे लिए यही अर्थ है। जीवन की सघनता में खड़े होकर अगर कोई संन्यास के फूल को खिलाना चाहता है, तो एक ही अर्थ हो सकता है कि वह कर्ता न रह जाए, भोक्ता न रह जाए, अभिनेता हो जाए, साक्षी हो जाए। देखे, करे, लेकिन कहीं भी बहुत गहरे में बंधे नहीं। गुजरे नदी से, लेकिन उसके पांव को पानी न छुए। नदी से गुजरना तो मुश्किल है कि पांव को पानी न छुए, लेकिन संसार से गुजरना संभव है कि संसार न छुए।
अभिनय को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और आश्चर्य तो यह है कि जितना अभिनय
हो जाए जीवन उतना कुशल हो जाता है, उतना सहज हो जाता है, उतना चिंतामुक्त हो जाता है। कोई मां अगर मां होने में कर्ता न बन जाए, साक्षी रह सके, और

जान सके इतनी छोटी सी बात कि जिस बच्चे को वह पाल रही है वह बच्चा उससे आया तो जरूर है, लेकिन उसका ही नहीं है; उससे पैदा तो हुआ है, लेकिन उसी ने पैदा नहीं किया है; वह उसके लिए द्वार से ज्यादा नहीं थी; और जहां से वह आया है और जिससे वह आया है और जिसके द्वारा वह जीएगा और जिसमें वह लौट जाएगा, उसका ही है। तो मां, कर्ता होने की उसे अब जरूरत नहीं रह गई। अब वह साक्षी हो सकती है। अब वह मां होने का अभिनय कर सकती है।
कभी एक छोटा सा प्रयोग करके देखें। चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि चौबीस घंटे मैं अभिनय करूंगा। जब कोई मुझे गाली देगा तो मैं क्रोध न करूंगा, क्रोध का अभिनय करूंगा। और जब कोई मेरी प्रशंसा करेगा तो मैं प्रसन्न न होऊंगा, प्रसन्न होने का अभिनय करूंगा।
एक चौबीस घंटे का प्रयोग आपकी जिंदगी में नये दरवाजे खोल देगा। आप हैरान हो जाएंगे कि मैं नाहक परेशान हो रहा था। जो काम अभिनय से ही हो सकता था, उसमें मैं नाहक ही कर्ता बन कर दुख झेल रहा था। और जब सांझ आप दिन भर के अभिनय के बाद सोएंगे तो तत्काल गहरी नींद में चले जाएंगे। क्योंकि जो कर्ता नहीं रहा है उसकी कोई चिंता नहीं है, उसका कोई तनाव नहीं है, उसका कोई बोझ नहीं है। सारा बोझ कर्ता होने का बोझ है।
संन्यास को मैं घर-घर पहुंचा देना चाहता हूं। तो ही संन्यास बचेगा। लाखों संन्यासी चाहिए। दो-चार संन्यासियों से नहीं होगा काम। और जैसा मैं कह रहा हूं, उसी आधार पर लाखों संन्यासी हो सकते हैं। संसार से तोड़ कर आप ज्यादा संन्यासी नहीं जगत में ला सकते, क्योंकि कौन उनके लिए काम करेगा, कौन उनके लिए भोजन जुटाएगा? कौन उनके लिए कपड़े जुटाएगा? एक छोटी सी दिखाऊ संख्या पाली-पोसी जा सकती है। लेकिन बड़े विराट पैमाने पर संन्यास संसार में नहीं आ सकता। तो कोई दो-चार हजार संन्यासी एक मुल्क झेल सकता है। ये संन्यासी भी दीन हो जाते हैं, ये संन्यासी भी निर्भर हो जाते हैं, ये संन्यासी भी परवश हो जाते हैं, और इनका विराट, व्यापक प्रभाव नहीं हो सकता।
अगर जगत में बहुत व्यापक प्रभाव चाहिए संन्यास का--जो कि जरूरी है, उपयोगी है, अर्थपूर्ण, आनंदपूर्ण है--तो हमें धीरे-धीरे ऐसे संन्यास को जगह देनी पड़ेगी जिसमें से तोड़ कर भागना अनिवार्यता न हो। जिसमें जो जहां है वह वहीं संन्यासी हो सके। वहीं वह अभिनय करे और वहीं वह साक्षी हो जाए, वह जो हो रहा है उसका साक्षी हो जाए।
तो एक तो संन्यास को घर से, दुकान से, बाजार से जोड़ने का मेरा ख्याल है। अदभुत और मजेदार होगी वह दुनिया, अगर हम बना सकें, जहां दुकानदार संन्यासी हो। स्वभावतः वैसा दुकानदार बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। जब अभिनय ही कोई कर रहा हो तो बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। और जब कोई साक्षी बना हो तो फिर बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। संन्यासी अगर दफ्तर में क्लर्क हो, चपरासी हो, डाक्टर हो, वकील हो, तो हम इस दुनिया को बिल्कुल बदल डाल सकते हैं।
तो एक तो संन्यासी को तोड़ कर संन्यासी दीन हो जाता है; और संसार का भारी नुकसान होता है, संसार भी दीन हो जाता है। क्योंकि उसके बीच जो श्रेष्ठतम फूल खिल सकते थे वे हट जाते हैं, वे बगिया के बाहर हो जाते हैं, और बगिया उदास हो जाती है। इसलिए संन्यास का एक जगतव्यापी आंदोलन जरूरी है। जिसमें हम धीरे-धीरे घर में, द्वार में, बाजार में, दुकान में संन्यासी को... । वह मां होगी, पति होगा, पत्नी होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो भी होगा वही होगा। सिर्फ उसके देखने की दृष्टि बदल जाएगी, वह साक्षी रह जाएगा। उसके लिए जिंदगी अभिनय और लीला हो जाएगी, काम नहीं रह जाएगा। उसके लिए जिंदगी एक उत्सव हो जाएगी। और उत्सव होते ही सब बदल जाता है।
दूसरी एक मेरी और दृष्टि है, वह आपको कहूं। वह मेरी दृष्टि हैः पीरियाडिकल रिनन्सिएशन की, सावधिक संन्यास की। ऐसा मैं नहीं मानता हूं कि कोई आदमी जिंदगी भर संन्यासी होने की कसम ले। असल में भविष्य के लिए कोई भी कसम खतरनाक है। क्योंकि भविष्य के हम कभी भी नियंता नहीं हो सकते। वह भ्रम है। भविष्य को आने दें, वह जो लाएगा हम देखेंगे। जो साक्षी है वह भविष्य के लिए निर्णय नहीं कर सकता। निर्णय सिर्फ कर्ता कर सकता है। जिसको ख्याल है कि मैं करने वाला हूं वह कह सकता है कि मैं जिंदगी भर

संन्यासी रहूंगा। लेकिन सच में जो साक्षी है वह कहेगा, कल का तो मुझे कुछ पता नहीं, कल जो होगा होगा! कल जो होगा उसे देखूंगा और जो होगा होगा! कल के लिए कोई निर्णय नहीं ले सकता हूं।
और इसलिए संन्यास की एक और कठिनाई अतीत में हुई, वह थी जीवन भर के संन्यास की, आजीवन संन्यास की। एक आदमी किसी भाव-दशा में संन्यासी हो जाए और कल किसी भाव-दशा में जीवन में वापस लौटना चाहे, तो हमने लौटने का द्वार नहीं छोड़ा है खुला। संन्यास में हमने एंट्रेंस तो रखा है, एक्जिट नहीं है। उसमें भीतर जा सकते हैं, बाहर नहीं आ सकते। और ऐसा स्वर्ग भी नरक हो जाता है जिसमें बाहर लौटने का दरवाजा न हो--परतंत्रता बन जाता है, कारागृह हो जाता है। आप कहेंगे, नहीं, कोई संन्यासी लौटना चाहे तो हम क्या करेंगे, लौट सकता है। लेकिन आप उसकी निंदा करते हैं, अपमान करते हैं, कंडेमनेशन है उसके पीछे।
और इसीलिए हमने एक तरकीब बना रखी है कि जब कोई संन्यास लेता है तो उसका भारी शोरगुल मचाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत बैंडबाजा बजाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत फूलमालाएं पहनाते हैं। बड़ी प्रशंसा, बड़ा सम्मान, बड़ा आदर, जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट रही है, ऐसा हम उपद्रव करते हैं।
और यह उपद्रव का दूसरा हिस्सा है--वह उस संन्यासी को पता नहीं--कि अगर
वह कल लौटा, तो जैसे फूलमालाएं फेंकी गईं वैसे ही पत्थर और जूते भी फेंके जाएंगे। और ये ही लोग होंगे फेंकने वाले, कोई दूसरा आदमी नहीं होगा। असल में इन लोगों ने फूलमालाएं पहना कर उससे कहा कि अब सावधान, अब लौटना मत! जितना आदर दिया है उतना ही अनादर प्रतीक्षा करेगा।
यह बड़ी खतरनाक बात है। इसके कारण न मालूम कितने लोग जो संन्यास का आनंद ले सकते हैं, वे नहीं ले पाते। वे कभी निर्णय ही नहीं कर पाते कि जीवन भर के लिए! जीवन भर का निर्णय बड़ी मंहगी बात है, बड़ी मुश्किल बात है! फिर हकदार भी नहीं हैं हम जीवन भर के निर्णय के लिए।
तो मेरी दृष्टि है कि संन्यास सदा ही सावधिक है। आप कभी भी वापस लौट सकते हैं। कौन बाधा डालने वाला है? संन्यास आपने लिया था। संन्यास आप छोड़ दें। आपके अतिरिक्त इसमें कोई और निर्णायक नहीं है। आप ही डिसीसिव हैं। आपका ही निर्णय है। इसमें दूसरे की न कोई स्वीकृति है, न दूसरे का कोई संबंध है। संन्यास निजता है, मेरा निर्णय है। मैं आज लेता हूं, कल वापस लौटता हूं। न तो लेते वक्त आपकी अपेक्षा है कि आप सम्मान करें, न छोड़ते वक्त आपसे अपेक्षा है कि आप इसके लिए निंदा करें। आपका कोई संबंध नहीं है। संन्यास को बड़ा गंभीर मामला बनाया हुआ था, इसलिए वह सिर्फ रुग्ण और गंभीर लोग ही ले पाते थे। संन्यास को बहुत गैर-गंभीर खेल की घटना बनाना जरूरी है। आपकी मौज है, संन्यास ले लिया है। आपकी मौज है, आप कल लौट जाते हैं। नहीं मौज है, नहीं लौटते हैं, जीवन भर रह जाते हैं, वह आपकी मौज है। इससे किसी का कोई लेना-देना नहीं है।
फिर इसके साथ यह भी मेरा ख्याल है कि अगर संन्यास की ऐसी दृष्टि फैलाई
जा सके तो कोई भी आदमी जो वर्ष में एकाध-दो महीने के लिए संन्यास ले सकता है वह एकाध-दो महीने के लिए ले ले। जरूरी क्या है कि वह बारह महीने के लिए ले। वह दो महीने के लिए संन्यासी हो जाए, दो महीने संन्यास की जिंदगी को जीए, दो महीने के बाद वापस लौट जाए। यह बड़ी अदभुत बात होगी।
एक फकीर हुआ, उस फकीर के पास एक सम्राट गया। सूफी फकीर था। उस सम्राट
ने कहा कि मुझे भी परमात्मा से मिला दो। मैं भी बड़ा प्यासा हूं। उस फकीर ने कहा, तुम एक काम करो। कल सुबह आ जाओ। तो वह सम्राट कल सुबह आया। और उस फकीर ने कहा, अब तुम सात दिन यहीं रुको। यह भिक्षा का पात्र हाथ में लो और रोज गांव में सात दिन तक भीख मांग कर लौट आना, यहां भोजन कर लेना, यहीं विश्राम करना। सात दिन के बाद परमात्मा के संबंध में बात करेंगे।
सम्राट बहुत मुश्किल में पड़ा। उसकी ही राजधानी थी वह। उसकी अपनी ही राजधानी में भिक्षा का पात्र लेकर भीख मांगना! उसने कहा कि अगर किसी दूसरे गांव में चला जाऊं? तो उस फकीर ने कहा, नहीं, गांव तो यही रहेगा। अगर सात दिन भीख न मांग सको तो वापस लौट जाओ। फिर परमात्मा की बात मुझसे मत करना।

सम्राट झिझका तो जरूर, लेकिन रुका। दूसरे दिन भीख मांगने गया बाजार में। सड़कों पर, द्वारों पर खड़े होकर उसने भीख मांगी। सात दिन उसने भीख मांगी। सात दिन के बाद फकीर ने उसे बुलाया और कहा, अब पूछो! उसने कहा, अब मुझे कुछ भी नहीं पूछना। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि यह सात दिन भिक्षा का पात्र फैला कर मुझे परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। फकीर ने कहा, क्या हुआ तुम्हें? उसने कहा, कुछ भी नहीं हुआ। सात दिन भीख मांगने में मेरा अहंकार गल गया और पिघल गया और बह गया। मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि जो सम्राट होकर न पा सका, वह भिखारी होकर मिल सकता है। और जिस क्षण विनम्रता का भीतर जन्म होता है, ह्युमिलिटी का, उसी क्षण द्वार खुल जाते हैं।
अब यह अदभुत अनुभव की बात होगी कि कोई आदमी वर्ष में एक महीने के लिए,
दो महीने के लिए संन्यासी हो जाए, फिर वापस लौट जाए अपनी दुनिया में। इस दो महीने में संन्यास की जिंदगी के सारे अनुभव उसकी संपत्ति बन जाएंगे। वे उसके साथ चलने लगेंगे। और अगर एक आदमी चालीस-पचास साल, साठ साल की जिंदगी में दस-बीस बार थोड़े-थोड़े दिन के लिए संन्यासी होता चला जाए, तो फिर उसे संन्यासी होने की जरूरत न रह जाएगी, वह जहां है वहीं धीरे-धीरे संन्यासी हो जाएगा।
ऐसा भी मैं सोचता हूं कि हर आदमी को मौका मिलना चाहिए कि वह कभी संन्यासी हो जाए।
और दो-चार बातें, फिर आपको कुछ इस संबंध में पूछना हो तो आप पूछ सकेंगे।
अब तक जमीन पर जितने संन्यासी रहे वे किसी धर्म के थे। इससे बहुत नुकसान हुआ है। संन्यासी भी और किसी धर्म का होगा, यह बात ही बेतुकी है। कम से कम संन्यासी तो सिर्फ धर्म का होना चाहिए। वह तो जैन न हो, ईसाई न हो, हिंदू न हो। वह तो सिर्फ धर्म का हो। वह तो कम से कम सर्व धर्मान परित्यज्य, वह तो कम से कम सब धर्म छोड़ कर, वह निपट धर्म का हो जाए। यह बड़े मजे की बात होगी कि हम इस पृथ्वी पर एक ऐसे संन्यास को जन्म दे सकें जो धर्म का संन्यास हो, किसी विशेष संप्रदाय का नहीं। वह संन्यासी मस्जिद में भी रुक सके, वह मंदिर में भी रुक सके, वह गुरुद्वारे में भी ठहर सके। उसके लिए कोई पराया न हो, सब अपने हो जाएं।
साथ ही ध्यान रहे, अब तक संन्यास सदा ही गुरु से बंधा रहा है--कोई गुरु दीक्षा देता है।
संन्यास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे कोई दे सके। संन्यास ऐसी चीज है जो लेनी पड़ती है, देता कोई भी नहीं। या कहना चाहिए कि परमात्मा के सिवाय और कौन दे सकता है संन्यास? अगर मेरे पास कोई आता है और कहता है कि मुझे दीक्षा दे दें, तो मैं कहता हूं, मैं कैसे दीक्षा दे सकता हूं! मैं सिर्फ गवाह हो सकता हूं, विटनेस हो सकता हूं। दीक्षा तो परमात्मा से ले लो, दीक्षा तो परम सत्ता से ले लो, मैं गवाह भर हो सकता हूं, एक विटनेस हो सकता हूं कि मैं मौजूद था, मेरे सामने यह घटना घटी। इससे ज्यादा कोई अर्थ नहीं होता।
गुरु से बंधा हुआ संन्यास सांप्रदायिक हो ही जाएगा। गुरु से बंधा हुआ संन्यास मुक्ति नहीं ला सकता, बंधन ले आएगा।
फिर यह संन्यासी करेगा क्या? ये संन्यासी तीन प्रकार के हो सकते हैं।
एक वे जिन्होंने सावधिक संन्यास लिया है, जो एक अवधि के लिए संन्यास लेकर आए हैं। जो दो महीने, तीन महीने संन्यासी होंगे, साधना करेंगे, एकांत में रह सकते हैं। फिर वापस जिंदगी में लौट जाएं। दूसरे वे संन्यासी हो सकते हैं जो जहां हैं वहां से इंच भर नहीं हटते, क्षण भर के लिए नहीं हटते, वहीं संन्यासी हो जाते हैं। और वहीं अभिनय और साक्षी का जीवन शुरू कर देते हैं। तीसरे वे भी संन्यासी होंगे जो संन्यास के आनंद में इतने डूब जाते हैं कि न तो लौटने का उन्हें सवाल उठता, न ही उनके ऊपर कोई जिम्मेवारी है ऐसी जिसकी वजह से उन्हें किसी घर में बंधा हुआ रहना पड़े, न उन पर कोई निर्भर है, न उनके यहां-वहां हट जाने से कहीं भी कोई पीड़ा और कहीं भी कोई दुख और कहीं भी कोई अड़चन आती है। ऐसा जो तीसरा वर्ग होगा संन्यासियों का, यह तीसरा वर्ग ध्यान में जीए, ध्यान की खबरें ले जाए, ध्यान को लोगों तक पहुंचाए।

मुझे ऐसा लगता है कि इस समय पृथ्वी पर जितनी ध्यान की जरूरत है उतनी
और किसी चीज की जरूरत नहीं है। और अगर हम पृथ्वी के एक बड़े मनुष्यता के हिस्से को ध्यान में लीन नहीं कर सके तो शायद आदमी ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहेगा। आदमियत ज्यादा दिन बच नहीं सकती। आदमी समाप्त हो सकता है। इतना मानसिक रोग है, इतने पागलपन हैं, इतनी विक्षिप्तता है, इतनी राजनीतिक बीमारियां हैं कि उन सबके बीच आदमी बचेगा इसकी उम्मीद रोज कम होती जाती है।
अगर इस बीच एक बड़े व्यापक पैमाने पर लाखों लोग ध्यान में नहीं डूब जाते तो शायद हम मनुष्य को नहीं बचा सकेंगे। और या हो सकता है मनुष्य बच भी जाए तो सिर्फ यंत्र की भांति बचे, उसकी मनुष्यता का जो भी श्रेष्ठ है वह सब खो जाए। इसलिए एक ऐसा वर्ग भी चाहिए युवकों का, युवतियों का, जिन पर कोई जिम्मेवारी न हो अभी; या वृद्धों का, जो जिम्मेवारी के बाहर जा चुके हों, जिनकी जिम्मेवारी समाप्त हो गई हो, जो जिम्मेवारी पूरी कर चुके हों। उन युवकों का जिन्होंने अभी जिम्मेवारी नहीं ली है, उन वृद्धों का जिनकी जिम्मेवारी जा चुकी है, इनका एक वर्ग चाहिए जो विराट पैमाने पर पृथ्वी को ध्यान में डुबाने में संलग्न हो जाए।
जिस ध्यान के प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं वह इतना आसान है, इतना वैज्ञानिक है, कि अगर सौ लोग करें तो सत्तर प्रतिशत लोगों को तो होगा ही। सिर्फ शर्त करने की है, और किसी पात्रता की कोई अपेक्षा नहीं है। सत्तर प्रतिशत लोगों को तो परिणाम होंगे ही। फिर जिस ध्यान की मैं बात कर रहा हूं उसके लिए किसी धर्म की कोई पूर्व-अपेक्षा नहीं है, किसी शास्त्र की कोई पूर्व-अपेक्षा नहीं है, किसी श्रद्धा और किसी विश्वास की पूर्व-अपेक्षा नहीं है। सीधे, जैसे आप हैं वैसे ही उस ध्यान में आप उतर सकते हैं। वह सीधा वैज्ञानिक प्रयोग है। आपसे यह भी अपेक्षा नहीं है कि आप श्रद्धा रख कर उतरें। इतनी ही अपेक्षा है कि एक हाइपोथेटिकल, जैसा एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है यह जानने के लिए कि देखें होता है या नहीं, इतना ही प्रयोग का भाव लेकर भी अगर आप ध्यान में उतरें तो भी हो जाएगा।
और मुझे ऐसा लगता है कि एक चेन रिएक्शन, एकशृंखलाबद्ध ध्यान की प्रक्रिया सारी पृथ्वी पर फैलाई जा सकती है। और अगर एक व्यक्ति ध्यान को सीख ले और तय कर ले कि सात दिन न बीत पाएंगे तब तक वह एक व्यक्ति को कम से कम ध्यान सिखाएगा, तो हम दस वर्ष में इस पूरी पृथ्वी को ध्यान में डुबा दें। इससे ज्यादा बड़े श्रम की जरूरत नहीं है। और मनुष्य के जीवन में जो भी श्रेष्ठ खो गया है वह सब वापस लौट सकता है। और कोई कारण नहीं है कि कृष्ण फिर पैदा क्यों न हों, क्राइस्ट फिर क्यों न दिखाई पड़ें, बुद्ध फिर क्यों न हमारे पास हमारे निकट मौजूद हो जाएं। वही बुद्ध नहीं लौटेंगे, वहीं कृष्ण नहीं लौटेंगे। हमारे भीतर सारी क्षमताएं हैं, वे फिर प्रकट हो सकती हैं। इसलिए मैं गवाही होने का तय किया हूं। इन तीन वर्गों में जो मित्र भी जाना चाहेंगे उनके लिए मैं गवाह रहूंगा। उनका गुरु नहीं रहूंगा। संन्यास उनका और परमात्मा के बीच का संबंध होगा। इसके लिए कोई उत्सव नहीं किया जाएगा संन्यास देने के लिए, नहीं तो फिर लेते वक्त भी उलटा उत्सव करना पड़ता है। यह कोई गंभीर बात नहीं समझी जाएगी, यह कोई सीरियस अफेयर नहीं है। इसके लिए इतना परेशान और इतना चिंतित होने की जरूरत नहीं है। यह बड़ी सहज बात है। एक आदमी सुबह उठता है और उसके मन में आता है कि वह संन्यासी हो जाए, तो वह हो जाए! कठिनाई इसलिए नहीं है कि यह कमिटमेंट कोई लाइफ लांग नहीं है, यह कोई जिंदगी भर की बात नहीं है कि उसने तय कर लिया तो अब जिंदगी भर उसे रहना है। अगर कल सुबह उसे लगता है कि नहीं, वापस लौटना है, तो वह वापस लौट जाए। इसमें किसी दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। इस संबंध में कुछ भी आपको सवाल हों तो
वह थोड़े से सवाल पूछ लें तो उनकी बात हो जाएगी।

भगवे कपड़े पहनने का क्या मतलब होता है?

कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी भी अपने ढंग
के कपड़े पहनता है। कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी के अपने कपड़े हो सकते हैं।
कपड़े बड़ी साधारण चीज हैं, लेकिन एकदम व्यर्थ चीज नहीं हैं। आप क्या पहनते हैं, इसके बहुत से अर्थ हैं। आप क्यों पहनते हैं, इसके भी बहुत से अर्थ हैं। एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े पहनता है। ढीले-ढाले कपड़े पहनने से कुछ फर्क नहीं पड़ता, लेकिन एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े क्यों चुनता है? और एक आदमी चुस्त कपड़े क्यों चुनता है? ये उस आदमी के सूचक होते हैं!
अगर आदमी बहुत शांत है तो चुस्त कपड़े पसंद नहीं करेगा। चुस्त कपड़ों
की पसंदगी इस बात की खबर देती है कि आदमी झगड़ालू हो सकता है, अशांत हो सकता है, उपद्रवी हो सकता है, कामुक हो सकता है। लड़ने के लिए ढीले कपड़े ठीक नहीं पड़ते। इसलिए सैनिक को हम ढीले कपड़े नहीं पहना सकते; सिर्फ साधु को पहना सकते हैं। सैनिक को चुस्त कपड़े ही पहनने चाहिए। काम चुस्त कपड़े का है। जहां वह जा रहा है वहां कपड़े इतने कसे होने चाहिए कि उसे पूरे वक्त लगता रहे कि वह अपने शरीर के बाहर छलांग लगा सकता है। पूरे वक्त लगता रहे कि वह जब चाहे तब शरीर के बाहर कूद सकता है, कपड़े इतने चुस्त होने चाहिए। ये कपड़े उसे लड़ने में सहयोगी हो जाएंगे।
गैरिक वस्त्रों का भी उपयोग है। ऐसा नहीं कि गैरिक वस्त्रों के बिना कोई संन्यासी नहीं हो सकता। लेकिन गैरिक वस्त्रों का उपयोग है। और जिन्होंने वे खोजे थे उनके पीछे बहुत कारण थे।
पहला कारण तो यह था। हम तो सोचते नहीं, कभी छोटे-मोटे प्रयोग भी नहीं करते, इसलिए बड़ी कठिनाई होती है। सात रंगों की सात बोतलें ले लें और उनमें एक ही नदी का पानी भर दें। और सातों को सूरज की रोशनी में टांग दें। और आप बड़े हैरान हो जाएंगे। सातों रंग के कांच सात रंग के पानी पैदा कर देंगे उन बोतलों में। पीले रंग की बोतल का पानी जल्दी सड़ जाएगा, ज्यादा देर स्वच्छ नहीं रह सकता। लाल रंग की बोतल का पानी महीने भर तक स्वच्छ रह जाएगा, सड़ेगा नहीं। आप कहेंगे, क्या किया बोतल ने? कांच का रंग किरणों के आने-जाने में फर्क डाल रहा है। पीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें भीतर प्रवेश कर रही हैं, लाल रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं, नीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं। वह जो भीतर पानी है, वह उन किरणों को पी रहा है, वह उसका आहार बन रही हैं।
हजारों साल के लंबे प्रयोग के बाद, जिन लोगों ने संन्यास पर बहुत प्रयोग किए उन्होंने बहुत तरह के कपड़ों में गैरिक वस्त्र को चुना था। कई अनुभव हैं उसके पीछे। एक तो बहुत अदभुत अनुभव यह है, जो लोग फिजिक्स को थोड़ा समझते हैं उनके ख्याल में होगा, कि जिस रंग का कपड़ा होता है उस रंग की किरण हम से वापस लौट जाती है। आमतौर से हम उलटा समझते हैं। आमतौर से हम समझते हैं कि जो कपड़ा लाल है वह लाल होगा। असलियत यह नहीं है, असलियत उलटी है। सूरज की किरणों में सात रंग होते हैं। और जब सूरज की किरण किसी चीज पर पड़ती है, अगर आपको लाल कपड़ा दिखाई पड़ रहा है तो उसका मतलब यह है कि सूरज की किरण के छह रंग तो वह कपड़ा पी गया, लाल रंग को उसने वापस लौटा दिया। आपको वही रंग दिखाई पड़ता है जो चीजें वापस लौटा देती हैं। नीले रंग की चीज का मतलब है नीले रंग की किरण वापस लौट गई। उसे उस चीज ने एब्जार्ब नहीं किया, उसने पीया नहीं। वह वापस छोड़ दी गई। वह किरण लौट कर आपकी आंख पर पड़ती है इसलिए वह आपको चीज नीली दिखाई पड़ती है। और मजे की बात यह है कि वह चीज नीले रंग को पीती ही नहीं। वह उसको छोड़ देती है। जिस रंग का कपड़ा आप पहन रहे हैं, उस रंग की किरण आपके भीतर प्रवेश नहीं करेगी।
गैरिक वस्त्र बहुत सोच कर चुने गए। लाल रंग की किरण मनुष्य के चित्त में बहुत तरह की कामुकताओं को जन्म देती है, बहुत वाइटल है। लाल रंग की जो किरण है वह शरीर के भीतर प्रवेश करके मनुष्य की सेक्सुअलिटी को उभारती है। इसलिए गर्म मुल्क के लोग ज्यादा कामुक होते हैं। जितना गर्म मुल्क होगा, उतने लोग ज्यादा कामुक होंगे। इसलिए आप हैरान होंगे यह जान कर कि काम-सूत्र के मुकाबले की कोई किताब ठंडे मुल्कों में पैदा नहीं हुई। अरेबियन नाइट जैसी कोई किताब ठंडे मुल्कों में पैदा नहीं हुई। गर्म मुल्क

बहुत कामुक होते हैं। सूरज की तेज तपती हुई किरणें हैं, वे सब शरीर में प्रवेश कर जाती हैं।
संन्यास पर जो लोग बहुत तरह के प्रयोग कर रहे थे हजारों दिशाओं में, उनमें उनको यह भी ख्याल आया कि अगर लाल किरण शरीर से वापस लौटाई जा सके तो कामुकता को शांत करती है। इसलिए गैरिक वस्त्र चुना गया। ठेठ लाल भी चुना जा सकता था, लेकिन थोड़ा सा फर्क किया गया--ऑकर। ठेठ लाल नहीं चुना। उसमें एक बड़ी अदभुत बात है। लाल चुना जा सकता था, बिल्कुल लाल रंग और भी अच्छा होता, वह लाल किरण को बिल्कुल ही वापस कर देता। लेकिन अगर लाल किरण बिल्कुल वापस हो जाए तो शरीर के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचना शुरू हो जाता है। वह थोड़ी सी तो जानी चाहिए।
और भी एक कारण है कि लाल किरण अगर मेरे कपड़ों से पूरी तरह वापस लौटे तो जिसकी भी आंख पर पड़ती है उसको भी नुकसान पहुंचाती है। अब बड़े मजे की बात है कि संन्यासी ने इसकी भी चिंता की कि उसके कपड़े से किसी को बहुत नुकसान भी न पहुंच जाए। आप लाल रंग का जरा कपड़ा बैल के सामने कर दें--आपने कभी की है कोशिश? तो आपको पता चलेगा कि बैल भी कुछ रंगों को समझता है। बैल भी छिड़कता है लाल रंग के कपड़े को देख कर। उसकी आंख पर लाल रंग की चोट गहरी पड़ती है। आप जान कर हैरान होंगे कि जो लोग कलर साइकोलाजी पर, रंग के मनसशास्त्र
पर काम करते हैं, उनके बड़े अदभुत अनुभव हुए हैं। आज तो पश्चिम में रंग पर बहुत काम चलता है। क्योंकि रंग के बहुत उपयोग उनके ख्याल में आ गए हैं। अभी एक बहुत बड़े दुकानदार ने, एक सुपर स्टोर के मालिक ने अमरीका में एक रिसर्च करवाई कि हम अपनी चीजें जिन डिब्बों में रखते हैं उन पर हम किस तरह के रंग लगाएं कि बिक्री पर उसका असर पड़े! तो बड़ी हैरानी की बात हुई। बड़ी हैरानी की बात यह हुई कि जो स्त्रियां खरीदने आती हैं उस सुपर स्टोर में, उन पर रिसर्च चलती रहती है पूरे वक्त कि जितनी स्त्रियां वहां आती हैं, पूरे वक्त रिकार्ड किया जाता है कि उनकी आंखें सबसे ज्यादा किस रंग के डिब्बे को पकड़ती हैं। तो यह पाया गया कि वही डिब्बा अगर पीले रंग में पोता जाए तो बीस प्रतिशत बिक्री होती है और वही डिब्बा अगर लाल रंग में पोत दिया जाए तो अस्सी प्रतिशत बिक्री हो जाती है। डिब्बा वही, चीज वही, नाम वही, सिर्फ रंग डिब्बे का बदल दिया जाए। लाल रंग स्त्रियों की आंख को बहुत जोर से पकड़ लेता है। इसलिए सारी दुनिया में स्त्रियों ने लाल रंग के कपड़े सबसे ज्यादा पहने हैं।
लाल रंग न रखने के भी कारण हैं। लाल से थोड़ा सा शेड हटाया है, गैरिक किया है। यह जो गैरिक, यह जो ऑकर कलर है इसमें लाल के सारे फायदे हैं और लाल का कोई भी नुकसान नहीं है। एक तो कामुकता को यह बहुत क्षीण करता है भीतर। और दूसरी बात, बहुत सी बातें हैं, सारी बात तो नहीं कह सकूंगा क्योंकि वह बहुत लंबा मामला है, अगर रंग की सारी बात समझनी हो तो बहुत लंबी बात है। लेकिन थोड़ी सी बातें ख्याल में ली जा सकती हैं।
गैरिक रंग सूर्य के उगने का रंग है। जब सुबह सूर्य उग रहा होता है, बस फूट रही है पौ, सूरज निकलना शुरू हुआ है, उस वक्त का रंग है। ध्यान में भी जब प्रवेश शुरू होता है तो जो पहले प्रकाश का रंग होता है वह गैरिक है। और जो प्रकाश का अंतिम अनुभव होता है वह नील है। गैरिक रंग का अनुभव शुरू होता है भीतर प्रकाश में और नील पर अंत होता है, नीले रंग पर पूरा हो जाता है।
ध्यान के पहले चरण की सूचना उस रंग में है। और जब संन्यासी ध्यान में प्रवेश करता है तो उसे वह रंग दिखाई पड़ने शुरू होते हैं। और अगर वह दिन भर भी, खुली आंख में भी उस रंग को बार-बार देख लेता है तब रिमेंबरिंग वापस लौट जाती है। और दोनों के बीच एक एसोसिएशन हो जाता है, एक अंतर-संबंध हो जाता है। जब भी वह अपने गैरिक वस्त्र को देखता है तभी उसे ध्यान का स्मरण आता है। वह दिन में पच्चीसों दफा अकारण उसको ध्यान का स्मरण आ जाता है और वह वापस डूब जाता है।
आप बाजार जाते हैं। कोई चीज लानी है खरीद कर, आप कपड़े में गांठ लगा लेते हैं। गांठ से चीज लाने का कोई संबंध है? कोई भी तो संबंध नहीं है। लेकिन बाजार में अचानक गांठ का ख्याल आता है और फौरन याद आ जाता है कि

फलानी चीज ले आनी है। गांठ से एसोसिएशन हो गया। गांठ से एक कंडीशनिंग हो गई।
पावलफ ने एक प्रयोग किया था। पावलफ एक कुत्ते के सामने रोटी रखता है, साथ में घंटी बजाता रहता है। रोटी देख कर कुत्ते के मुंह से लार टपकती है। फिर पंद्रह दिन बाद रोटी देना बंद कर देता है, सिर्फ घंटी बजाता है। लेकिन घंटी सुन कर भी कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती है। क्या हो गया इस कुत्ते को? घंटी और रोटी में एक अंतर-संबंध, एक एसोसिएशन हो गया। एक कंडीशंड रिफ्लेक्स पैदा हो गया। अब कुत्ते को घंटी का बजना तत्काल रोटी की याद बन जाती है।
हम पूरी जिंदगी इसी तरह जी रहे हैं। हम पूरी जिंदगी इसी तरह कर रहे हैं। लेकिन हमने सब तरह के गलत कंडीशंड रिफ्लेक्स पैदा किए हुए हैं। ध्यान का पहला रंग का जो अनुभव है वह अगर संन्यासी को दिन में पच्चीस-पचास दफे, सौ बार याद आ जाए--जब भी वह उठे, जब भी वह बैठे, जब भी वह सोए, जब भी वह स्नान करने जाए, जब भी कपड़े उतारे, जब भी कपड़े निकाले, तो बार-बार उसे ध्यान की सुध लौट आती है। वह गांठ हो गई उसके पास, जो उसके काम पड़ जाती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कोई गैरिक वस्त्र पहने बिना संन्यासी नहीं हो सकता। संन्यास इतनी बड़ी चीज है कि वस्त्रों से उसे बांधा नहीं जा सकता। लेकिन वस्त्र एकदम व्यर्थ नहीं हैं! उनकी अपनी अर्थवत्ता है। इसलिए मैं पसंद करूंगा कि सारी पृथ्वी पर लाखों लोग गैरिक वस्त्रों में दिखाई पड़ें।

ओशो, साधक और संन्यासी में क्या फर्क है?
और क्या बिना संन्यासी हुए कोई साधक नहीं हो सकता?

संन्यासी हुए बिना तो कोई साधक नहीं हो सकता। साधक का मतलब संन्यास
की शुरुआत है। असल में साधक का मतलब संन्यास को साधना है। संन्यास साधना है। और क्या साधक करेगा? उसे जगत में धीरे-धीरे समस्त सुखों-दुखों के पार होकर आनंद को उपलब्ध होना है। उसे कर्ता के पार होकर साक्षी को उपलब्ध होना है, उसे अहंकार के पार होकर शून्य को उपलब्ध होना है, उसे पदार्थ के पार होकर परमात्मा को उपलब्ध होना है। इन सबका इकट्ठा नाम संन्यास है। साधक का मतलब है संन्यास शुरू कर रहा है वह। सिद्ध का मतलब है संन्यास पूरा हो गया। साधक का मतलब है संन्यास शुरू हुआ, सिद्ध का मतलब है संन्यास पूरा हो गया। दोनों के बीच में जो यात्रा है वह संन्यास की यात्रा है। संन्यास के लिए ही तो साधना है।
तो साधक का अर्थ ही यह है कि वह संन्यास की खोज में निकला है। लेकिन मेरे संन्यास का मतलब ख्याल में रखना आप। मेरा संन्यास उपलब्धि का है, पाने का है। रोज विराट, रोज विराट को पाते चले जाना है।

आपके संन्यासी की दिनचर्या क्या होगी?

संन्यासी की दिनचर्या क्या होगी? मेरे संन्यासी की नहीं, क्योंकि मेरा संन्यासी कैसे होगा! संन्यासी की दिनचर्या की बात करें। असल में, दिनचर्या जब भी हम बनाते हैं तभी नुकसान पहुंच जाता है।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि आपकी दिनचर्या क्या है? उसने कहा, जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं और जब मेरी नींद खुलती है तब मैं उठ आता हूं। और जब मुझे भूख लगती है तब मैं खाना खा लेता हूं और जब मुझे भूख नहीं लगती तो मैं खाना बिल्कुल नहीं खाता हूं।
ठीक कही उसने बात। संन्यासी का मतलब यह है कि जो थोप नहीं रहा कुछ, जीवन को सहजता में ले जा रहा है। हम सब बड़े अजीब लोग हैं। जब नींद आती होती है तब हम रोकते हैं, जब नहीं आती होती तब हम करवट बदल कर सोने का मंत्र पढ़ते हैं। जब भूख नहीं होती तब खा लेते हैं, जब भूख होती है तब रुके रहते हैं क्योंकि अभी समय नहीं हुआ। हम पूरी जिंदगी को अस्तव्यस्त कर देते हैं। और शरीर की जो अपनी एक अंतर-व्यवस्था है उसको नष्ट कर देते हैं।

संन्यासी का मतलब है कि वह जो विजडम ऑफ दि बॉडी है, जो शरीर की अपनी अंतर-प्रज्ञा है, उसके अनुसार जीएगा। वह सोएगा, जब उसे नींद आ जाती है; जागेगा, जब नींद खुल जाती है। ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठेगा! जब नींद खुलती है, उसको ब्रह्ममुहूर्त कहेगा। वह कहेगा, जब भगवान उठा देता है तब मैं उसे ब्रह्ममुहूर्त कहता हूं। ऐसा सहज होगा।
इसलिए मैं कोई चर्या नहीं बता सकता। और फिर जब भी चर्या तय की जाती है तभी कठिनाइयां शुरू होती हैं। क्योंकि तय मैं अपने हिसाब से करूंगा। और मेरा हिसाब आपका हिसाब नहीं हो सकता। अगर मैं कहूं, तीन बजे रात उठना है। तो हो सकता है मुझे तीन बजे रात उठना आनंदपूर्ण पड़ता हो और आपके लिए बीमारी का कारण हो जाए। हर आदमी के शरीर की अपनी व्यवस्था है।
अब हमको ख्याल में नहीं होता। आमतौर से लोग मुझे कहते हैं कि आजकल की स्त्रियां बहुत अलाल हो गई हैं। पति को उठ कर चाय बनानी पड़ती है, पत्नी सोई रहती है। लेकिन आपको पता नहीं है, यह बिल्कुल उचित है। स्त्रियों के उठने की जो अंतर-व्यवस्था है वह पुरुषों से दो घंटा पिछड़ी हुई है, पीछे है। अगर पुरुष पांच बजे उठ सकता है तो स्त्री सात बजे उठ सकती है।
इस पर बहुत काम हुआ है। यह स्लीप पर जो रिसर्च चलती है सारी दुनिया में उससे बड़ी हैरानी के अनुभव हुए हैं। वे अनुभव ये हैं कि चौबीस घंटे में दो घंटे के लिए आदमी के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है--सबके शरीर का। आपको अक्सर ख्याल हुआ होगा कि सुबह चार बजे के करीब सर्दी लगने लगती है। वह सर्दी बढ़ने के कारण नहीं लगती, आपके शरीर का तापमान गिर गया होता है। दो घंटे के लिए चौबीस घंटे में हर आदमी के शरीर का तापमान गिरता है। और वे जो दो घंटे हैं सबके अलग-अलग हैं। किसी का दो बजे से चार बजे के बीच गिरता है रात में, किसी का तीन से पांच के बीच गिरता है, किसी का पांच से सात के बीच गिरता है। वे जो दो घंटे हैं, वही गहरी नींद के घंटे हैं। जिस आदमी को वे दो घंटे नींद के नहीं मिले वह दिन भर परेशान रहेगा। लेकिन वे सबके अलग-अलग हैं। कोई दस हजार लोगों पर अमरीका में पिछले पांच वर्षों में नींद पर प्रयोग किए गए हैं। और यह पाया गया कि वह हर आदमी का अलग है।
इसलिए अब कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि आप कब उठें। आप पर ही छोड़ा जाएगा कि आप उठ कर सब तरह से देख लें कुछ दिन प्रयोग करके और जिसमें आप दिन भर ताजे रहते हों वही क्षण आपके उठने का है। और जिसमें आप रात भर गहरे सोते हों वही क्षण आपके सोने का है।
न समय की लंबाई तय की जा सकती है। कोई आदमी पांच घंटे में पूरी नींद ले सकता है, कोई सात घंटे में, किसी को आठ घंटे भी लग सकते हैं, कोई तीन घंटे में भी कर सकता है। लेकिन जो आदमी तीन घंटे में कर लेता है वह खतरनाक हो जाता है। वह दूसरों को कहता है, अलाल हो, तामसी हो। पागल हो गए हो? वह तीन घंटे में सो लिया इसलिए वह बड़ा अहंकार से भर जाता है। वह सोचता है कि हम कोई बड़ा सात्विक कार्य कर रहे हैं। बाकी लोग जो छह घंटे सो रहे हैं, तामसी हैं। वह उनकी तरफ निंदा के भाव से देखना शुरू कर देता है। और अगर उसको किताब वगैरह लिखना आता हो तब तो बहुत खतरा हो जाता है। वह नियम बना जाता है। वह नियम बना देता है सख्ती से कि तीन बजे रात उठना, नहीं तो नरक में जाओगे। तीन बजे आप उठे कि आप नरक में जाने के पहले ही नरक में चले जाओगे। कितना खाना, क्या खाना, क्या पहनना, कैसे पहनना, कैसे सोना, इस सबकी बहुत ही सामान्य चर्चा की जा सकती है, चर्या नहीं बनाई जा सकती। चर्या तो आपको अपनी सदा तय करनी पड़ती है। इंडिविजुअल टु इंडिविजुअल, एक-एक व्यक्ति को अपनी ही तय करनी पड़ती है। अपनी ही तय करनी चाहिए भी। इतनी तो स्वतंत्रता कम से कम रखिए। संसारी नहीं रख पाता; संन्यासी तो रख सकता है। संन्यासी को तो रखनी ही चाहिए। उसको तो सख्ती से रखनी चाहिए कि उसके लिए जो सुखद है, जो शांतिपूर्ण है, जो आनंदपूर्ण है, वह वैसे जीएगा। एक ही बात ध्यान में रखने की है कि उसके कारण किसी को दुख, पीड़ा, परेशानी न हो--किसी को भी। ऐसे जीएगा, इतनी चर्या उसके लिए पर्याप्त होगी। यह विस्तार में मुझे आपसे बात करनी पड़े क्योंकि सामान्य बात की जा सकती है कि क्या खाना, क्या नहीं खाना, लेकिन सख्त नहीं हुआ जा सकता।
अब हम देखते हैं कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है। अब सारी दुनिया उसके खिलाफ है, लेकिन वह पीए चला जा रहा है। डाक्टर उसको समझा रहे हैं कि तुम

बीमार हो जाओगे। वह कहता है कि मानता हूं, बिल्कुल सच जंचता है, लेकिन नहीं छूट सकती। तो क्या, मामला क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि सिगरेट उसके लिए कोई बहुत जरूरी हिस्सा पूरा करती हो?
करती है! मैक्सिको में इधर एक अन्वेषण कार्य चलता था तो पाया गया कि
जो लोग सिगरेट पीने में बड़े पागल हो जाते हैं, इनके शरीर में निकोटिन की कमी होती है। उनको निकोटिन किसी न किसी तरह पूरा करना पड़ता है। वे चाहे सिगरेट से पूरा करें, चाहे चाय से पूरा करें, चाहे काफी से, चाहे कोको से, चाहे तमाखू खाएं, इन सब में निकोटिन है। वे कहीं न कहीं से निकोटिन पूरा करेंगे। मगर बिचारे बड़े फंस जाएंगे, और अनैतिक हो जाएंगे।
अब एक आदमी धुआं भीतर ले आता है, बाहर निकालता है, इसमें कोई अनीति का काम नहीं कर रहा है। कर रहा है तो ज्यादा से ज्यादा नासमझी का काम कर रहा है, अनीति का नहीं कर रहा है। धुआं भीतर ले जाने और बाहर निकालने में कौन सी अनीति है? हां, दूसरे की नाक पर न छोड़ता हो, उतना भर काफी है। दूसरे से पूछ लेता हो कि आप आज्ञा देते हैं कि मैं जरा धुआं बाहर-भीतर कर सकूं। यह आदमी धुआं बाहर-भीतर करता है, इसमें अनीति किसी के साथ कुछ करता नहीं। एक इनोसेंट नानसेंस करता है, कहना चाहिए कि एक निर्दोष बेवकूफी करता है। धुआं भीतर ले जाता है, बाहर ले जाता है। लेकिन हो सकता है कि इसकी जरूरत हो। अच्छा तो यह हो कि यह जाकर समझे-बूझे।
लेकिन शरीर के बाबत भी हमारी जानकारी बहुत कम है। इतना चिकित्सा- शास्त्र विकसित हुआ, फिर भी जानकारी बहुत कम है। अभी भी हम शरीर के पूरे रहस्यों को नहीं समझ पाए हैं कि शरीर की क्या मांग है, क्या जरूरत है, क्या मुसीबत है, क्या कठिनाई है। लेकिन शरीर अनजाने रास्तों से हमें पकड़ कर अपनी जरूरत पूरी करवाता है। वह कहता है कि सिगरेट पीयो, वह कहता है तमाखू खाओ। फिर जब पकड़ लेता है तो उसकी तृप्ति होने लगती है, तो फिर वह छोड़ता नहीं।
ऐसा नहीं है कि जो लोग पीते हैं, सभी के भीतर कमी होगी। दस में से नौ तो दूसरे को देख कर पीते हैं। और जब देख कर पीने लगते हैं तो फिर एक तरह की आदत और एक तरह की मैकेनिकल हैबिट पकड़नी शुरू हो जाती है। फिर वे पीते चले जाते हैं। फिर न पीएं तो मुसीबत होने लगती है।
लेकिन कुछ भी बात तय नहीं की जा सकती ऊपर से। और निश्चित रूप से सबके लिए कोई एक योजना नहीं बनाई जा सकती कि आदमी ऐसा उठे, ऐसा बैठे, ऐसा सोए, ऐसा खाए-पीए। हां, कुछ मोटी बातें कही जा सकती हैं। जो भी करे, जाग कर करे। जो भी करे, होशपूर्वक करे। जो भी करे, अपने सुख और दूसरे के सुख का ध्यान रख कर करे। जो भी करे, उससे स्वास्थ्य, शांति और आनंद बढ़ता हो, उस दिशा में करे; घटता हो, उस दिशा में न करे। जो भी खाए-पीए, वह बोझ न बन जाता हो, हलका करता हो, स्वस्थ करता हो, ताजा करता हो। जो भी खाए-पीए, उससे अकारण, अनावश्यक हिंसा न होती हो। अनावश्यक, अकारण किसी को चोट, दुख, पीड़ा न होती हो। जो भी भोजन में ले, उसमें स्वास्थ्य का ध्यान महत्वपूर्ण हो। स्वाद लेने की कला सीखे। स्वाद वस्तुओं पर कम निर्भर रह जाए, भोजन करने की कला पर ज्यादा निर्भर हो जाए। ऐसी मोटी बातें की जा सकती हैं। और इन मोटी बातों के आधार पर अपने व्यक्तित्व को देख कर निर्णय लेने चाहिए। न किसी और की कोई डिसिप्लिन है, न कोई अनुशासन है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मनियंता है। और संन्यास का तो मतलब ही है कि हम अपने निर्णय का अधिकार घोषित करते हैं कि अब हम अपने को अपने ही ढंग से निर्धारित करेंगे।
आप कहेंगे, इसमें कोई गलती करे!
करे तो गलती का दुख भोगेगा। इसमें आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। गलती करे तो जैसे गलती कोई करता है उसका दुख पाता है, पाएगा! ठीक करेगा, सुख पाएगा। दूसरे गलती न करें, इसमें दूसरों को बहुत उत्सुकता नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि दूसरों की यह उत्सुकता अनैतिक है। आप दूसरों को गलती तक न करने देंगे! तो आप कौन हैं? दूसरे को गलती करनी है, करने दें। उसी सीमा पर उसे रोका जा सकता है, जहां उसकी गलती दूसरे के लिए पीड़ादायी बने, अन्यथा नहीं रोका जा सकता। वह अपनी गलती करता रहे। उसकी गलती अगर दुख लाती है तो उसको ले आएगी।

और संन्यासी का मतलब यह है कि वह विवेक से जी रहा है, वह जांच रहा है पूरे समय कि कौन सी चीज से दुख आता है, कौन सी चीज से सुख आता है। जिससे सुख आता है उसको वह स्वीकार करेगा, जिससे दुख आता है, धीरे-धीरे उसे छोड़ेगा। वह धीरे-धीरे अपने आनंद की खोज की यात्रा पर निकला है; आप उसके लिए परेशान न हों।
लेकिन इधर मैं बहुत हैरान होता हूं। यहां संन्यासी जितना चिंतित नहीं होता, उसके आस-पास जो लोग इकट्ठे होते हैं वे चिंतित होते हैं कि कोई गलती तो नहीं कर रहा?
ये जो सेल्फ अपाइंटेड जज हैं, पता नहीं इनको किसने पट्टा लिख कर दिया
है कि तुम इसकी फिक्र करना कि कोई गलती तो नहीं कर रहा है! कि संन्यासी ठीक वक्त पर सोया कि नहीं! कि ब्रह्ममुहूर्त में उठता है कि नहीं! दिन में तो नहीं सो जाता! आप कौन हैं? आप क्यों पीछे पड़े हैं किसी के?
नहीं, इसके पीछे कारण हैं। हमको बड़ा रस आता है इसमें। ये टार्चर करने
की तरकीबें हैं, ये दूसरे आदमी को सताने के उपाय हैं। और फिर हम कहते हैं कि हम आदर भी देते हैं तो इसी की वजह से देते हैं कि तुम गलती नहीं करते। तो हम सौदा भी तय कर लेते हैं। अब उस आदमी को हम फंसा देते हैं। उसको आदर चाहिए आपसे, तो फिर ठीक है, वह आपके नियम मान कर चलता है। और या होशियार हुआ तो ऊपर से दिखाता है कि नियम मानता है, पीछे से नियम तोड़ता जाता है।
मैं संन्यासी को पाखंडी नहीं होने दे सकता हूं। और एक ही रास्ता है कि संन्यासी पाखंडी होने से बचे और वह यह है कि हम उसकी फिक्र छोड़ दें, उसे अपनी फिक्र करने दें। नहीं तो वह पाखंडी हो ही जाएगा। हमने सब संन्यासियों को पाखंडी, हिपोक्रेट कर दिया है। क्योंकि उनको हमने दिक्कत में डाल दिया।
अब एक साधुओं का वर्ग है जो नहा नहीं सकता, स्नान नहीं कर सकता। अब उसके आस-पास के लोग देखते रहते हैं कि स्नान तो नहीं कर लिया? अब वे उसको गंदगी में ढकेल रहे हैं और वह गंदगी में ढंका जा रहा है, लेकिन उसको आदर दे रहे हैं, पैर छू रहे हैं बदले में। अब वह सोचता है कि नहाने की कीमत पर पैर छूना मिल रहा है, चलने दो सौदा। एकांत में मौका देख कर पानी से कपड़े को गीला करके स्पंज वाश कर लेता है, कुछ अपनी थोड़ी-बहुत सफाई-वफाई कर लेता है। मगर उसको चोरी और गिल्ट में हम ढकेल रहे हैं, वह नहाने के पीछे उसको हम धक्का दे रहे हैं।
अभी एक सज्जन मेरे पास आए, उन्होंने कहा, फलानी साध्वी आपके पास आती है, हमने सुना है वह टुथपेस्ट करती है! मैंने कहा, तुम पागल हो गए हो? संन्यासिनी टुथपेस्ट करती है कि नहीं करती है, तुम कोई टुथपेस्ट का काम करते हो? क्या मतलब तुम्हारा?
नहीं, उन्होंने कहा कि हमारे समाज में तो दातुन करने की मनाही है।
तो तुम मत करो, मैंने उनसे कहा, तुम्हारे समाज में मनाही है। तुमसे कौन कहता है?
वह मजे से टुथपेस्ट कर रहे हैं। उनका संन्यासी न कर पाए। क्योंकि उसका कारण हैः वह आदर देते हैं, बदला भी मांगते हैं।
तो मैं अपने संन्यासी को--जिसको मैं संन्यासी समझ रहा हूं--उसको कहूंगा, आदर मत मांगना, अन्यथा बंधन शुरू हो जाएगा। मांगना ही मत। नहीं तो सब तरफ बेईमान और सब तरह के चोर इकट्ठे हैं, वे फौरन फंसा लेंगे। वे कहेंगे, आदर हम देते हैं, पैर हम छूते हैं, लेकिन हमारी भी शर्तें हैं, इतना-इतना करना।
संन्यासी का मतलब यह है कि जो यह कहता है कि हम तुम्हारे समाज, तुम्हारी शर्तों की कोई चिंता नहीं करते। हमने अपनी चिंता करनी शुरू कर दी, अब आप हमारी फिक्र न करें।
व्यक्ति का विवेक ही उसका पथ-प्रदीप है।

(प्रश्नः अस्पष्ट रिकार्डिंग)

एक बात तो--तीसरे से शुरू करें--कि संन्यासी दुकान पर बैठ कर दुकानदार
का अभिनय करेगा, यह तो ठीक, लेकिन वह ब्लैक मार्केटिंग का भी अभिनय कर सकता

है। करेगा तो इससे बहुत नुकसान नहीं होगा, क्योंकि वह संन्यासी न होता तो भी ब्लैक मार्केटिंग करता। इससे कोई नुकसान नहीं होगा किसी का।
लेकिन मैं मानता हूं कि जिस आदमी को संन्यास का ख्याल आया है और जो हिम्मत जुटा कर, साहस जुटा कर अपने जीवन में एक प्रयोग करने चला है और जो दुकानदार होने का अभिनय कर रहा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय नहीं कर सकेगा। क्योंकि ब्लैक मार्केटिंग करने के लिए अभिनय पर्याप्त नहीं है, कर्ता होना जरूरी है। जितना बुरा काम करना हो उतना ही कर्ता होना आवश्यक होता चला जाता है। बुरे काम के करने के लिए... क्योंकि बुरे काम का आंतरिक दंश है, पीड़ा है। उसके लिए इनवाल्व होना जरूरी होता है, उसके लिए कमिटेड होना जरूरी होता है, उसके लिए डूबना जरूरी होता है। मैं किसी आदमी को अभिनय में छुरा नहीं मार सकता, मुश्किल पड़ेगा; क्योंकि दूसरे आदमी की जिंदगी दांव पर होगी। और अभिनय में छुरा मारने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। अभिनय की जो धारणा है, अगर ठीक से ख्याल में आए, तो पहला तो मैं यह कहता हूं कि अगर वह करेगा ब्लैक मार्केटिंग तो कोई नुकसान किसी का नहीं हो रहा है। क्योंकि जो संन्यासी होकर ब्लैक मार्केटिंग कर रहा है वह संन्यासी नहीं होकर कर ही रहा था, करता सदा ही, इसलिए कहीं कोई नुकसान नहीं हो रहा है। उसमें तो हमें चिंतित होने की जरूरत नहीं है। संभावना यह भी है--मेरे लिए बहुत संभावना है--कि वह जो संन्यासी होने के ख्याल से भरा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय करने नहीं जाएगा, नहीं जा सकता है।
संन्यासी होने की जो प्रज्ञा है, संन्यासी होने का जो विवेक है, वही बताएगा कि उसे क्या करना, क्या नहीं करना। अभिनय वह वहीं करेगा जहां बिल्कुल करणीय है, जो उसका बिल्कुल कर्तव्य है। जिसे छोड़ कर भागना पलायन होगा, जिससे हट जाना जिम्मेवारी से बचना होगा, जिससे भाग जाना किसी के लिए दुख और पीड़ा का इंतजाम बना जाना होगा, उतना ही अभिनय करेगा। अभिनय तो हमेशा ही अत्यंत करणीय का, अत्यंत आवश्यक का हो जाएगा। अनावश्यक का अभिनय करने की जरूरत नहीं रह जाएगी, वे हिस्से काट दिए जाएंगे, अपने आप कट जाएंगे।
दूसरी बात आप कहते हैं गैरिक वस्त्रों के लिए--मैं क्यों नहीं गैरिक वस्त्र पहने हुए हूं?
जान कर ही! एक तो, इसके पहले कि मैं गैरिक वस्त्र पहनता, संन्यास घट गया। इसके पहले कि मुझे पता चलता कि गैरिक वस्त्र पहनूंगा तो संन्यास घटेगा, संन्यास पहले ही घट गया। पीछे पहनने का कोई अर्थ न रहा, कोई कारण न रहा।
दूसरा, मैं गैरिक वस्त्र पहनूं और फिर कहूं कि गैरिक वस्त्र का कोई उपयोग है, तो शायद लगे कि मेरे ही जैसे वस्त्र दूसरों को भी पहना देने की आतुरता है। नहीं, अपनी शक्ल मैं किसी पर ओढ़ाना नहीं चाहता। इसलिए जो भी मैं पहनता हूं, जैसे भी मैं उठता-बैठता हूं, जैसे भी मैं जीता हूं, उसको किसी पर ओढ़ देने का, किसी पर ढांक देने का जरा भी मन नहीं है।
गैरिक वस्त्र पहन कर गैरिक वस्त्र के संबंध में कुछ कहता तो शायद लग सकता था कि मैं अपने वस्त्रों की तारीफ करता हूं। लेकिन मैं बिना गैरिक वस्त्र का हूं, इसलिए गैरिक वस्त्रों से मेरा कोई निजी लगाव नहीं है इतना तो बहुत साफ है। इसलिए अगर गैरिक वस्त्र की कोई तारीफ करता हूं तो सिवाय वैज्ञानिक कारणों के और कोई कारण नहीं है। मैं खुद तो पहनता नहीं हूं, मेरा खुद का तो कोई लगाव नहीं है, मैं तो बिल्कुल बाहर हूं।
तीसरी बात, आपने कहा कि शंकराचार्य ने भी आनंद से... ।
मैं नहीं मानता हूं। शंकराचार्य का जगत के प्रति बड़ा निषेध का भाव है। निषेध इतना गहरा है कि वे जगत को माया सिद्ध करने की सतत चेष्टा में लगे हुए हैं। यह जगत झूठा है, यह जगत भ्रम है, यह जगत माया है, यह जगत है ही नहीं, इसे सिद्ध करने का उनका आग्रह इतना प्रगाढ़ है कि यह जगत उन्हें चारों तरफ से परेशान कर रहा है, यह भी साफ है। इस जगत का होना उन्हें इतना गड़ रहा है कि इसे इनकार किए बिना, स्वप्न बनाए बिना, छुटकारा नहीं पा सकते। शंकर का निषेध बहुत गहरा है।
आनंद की बात शंकर करते हैं। लेकिन मेरे और उनके आनंद में भी बड़ा बुनियादी फर्क है। वे उस आनंद की बात करते हैं जो इस संसार के त्याग से

उपलब्ध होता है। वे उस आनंद की बात करते हैं जो माया को छोड़ने से ब्रह्म-मिलन से उपलब्ध होता है। मैं उस आनंद की बात करता हूं जो समस्त को, समग्र को--माया को, ब्रह्म को, संसार को, प्रभु को--सबको स्वीकार कर लेने से उपलब्ध होता है। निषेध मेरे मन में कहीं भी नहीं है। त्याग मेरे मन में कहीं भी नहीं है। शंकर अगर आनंद की बात भी करते हैं तो वह संसार के त्याग में ही छिपा है, वह संसार को छोड़ देने में ही छिपा है। मेरे लिए आनंद इतना विराट है कि संसार भी उसमें समा जाता है, परमात्मा भी उसमें समा जाता है, सब उसमें समा जाते हैं। आनंद में मेरे लिए किसी बात का कोई भी निषेध नहीं है।
और आखिरी बात, कि जब मैंने कहा अपने संन्यासी, तो जीभ के चूक जाने से नहीं कहा। जीभ मेरी अजीब है, चूकती मुश्किल से ही है। पहली दफे जिन मित्र ने पूछा था कि आपके संन्यासी, तो मैंने इनकार किया था कि मेरे मत कहिए। लेकिन प्रयोजन मेरा दूसरा था। प्रयोजन मेरा यह था कि संन्यासी मेरा कैसे हो सकता है! लेकिन जब मैंने दुबारा कहा तो जीभ नहीं चूकी। मैंने कहा, अपने संन्यासी। संन्यासी मेरा नहीं हो सकता, लेकिन मैं तो संन्यासियों का हो सकता हूं!
और उस संन्यासी की, उस आनंद के संन्यासी की जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उससे मेरा लगाव है। उससे लगाव की अपेक्षा नहीं है मेरे प्रति। उससे कोई अपेक्षा नहीं है कि वह मेरे प्रति किसी तरह का भी संबंध रखे। लेकिन मेरा लगाव है। और मेरा लगाव इसमें है कि मैं देखता हूं कि उस तरह के संन्यासी में ही भविष्य में संन्यास के बचने की संभावना है, आशा है, भविष्य है।
कोई एकाध बात और हो तो पूछ लें। फिर कुछ और बात होगी तो पीछे बात कर लेंगे।

(प्रश्नः अस्पष्ट रिकार्डिंग)

यह बिल्कुल ठीक कहते हो कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच की बात है, अगर इतना समझ में आ जाए तो मेरे साक्षी होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम यहां आए इसलिए हो कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच सीधा संबंध नहीं बन रहा है। नहीं तो तुम इधर किसलिए भटकते! इधर किसलिए परेशान होते! तब तो मैं साक्षी हो जाऊंगा। तब मैं साक्षी हो जाऊंगा।
आप पूछती हैं कि फिर संप्रदाय न बन जाएगा?
नहीं, संप्रदाय नहीं बनेगा। नहीं बनेगा इसलिए कि संप्रदाय बनाने के लिए कुछ जरूरतें हैं अनिवार्य। एकः गुरु चाहिए, शास्त्र चाहिए, सिद्धांत चाहिए, विशेषण चाहिए। और इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त, इससे भिन्न, इससे अन्यथा जो है वह पूर्ण रूप से गलत है और यही पूर्ण रूप से सही है, ऐसा आग्रह भी चाहिए।
तो एक तो मैं कह रहा हूं कि उसे मैं संन्यासी कहता हूं जिसका कोई विशेषण नहीं। बिना विशेषण के संप्रदाय बनाना मुश्किल है। बिना विशेषण के संप्रदाय बन नहीं सकता। उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्म नहीं है। बिना धर्म के संप्रदाय कैसे बनाइएगा! उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्मग्रंथ नहीं है, जिसका कोई धर्मगुरु नहीं है, जिसका कोई मंदिर नहीं है, मस्जिद नहीं है, शिवालय नहीं है, गुरुद्वारा नहीं है।
तो संप्रदाय बनना मुश्किल है। कोशिश हमें करनी चाहिए कि संप्रदाय न बने, क्योंकि संप्रदाय ने धर्म को जितना नुकसान पहुंचाया है उतना किसी और चीज ने नहीं पहुंचाया है। अधर्म ने नहीं पहुंचाया है इतना नुकसान धर्म को, जितना संप्रदायों ने पहुंचाया है। असल में मिट्टी-पत्थर नुकसान नहीं पहुंचाते, असली सिक्के को कभी भी नुकसान पहुंचता है तो सिर्फ नकली सिक्के से पहुंचता है। मिट्टी-पत्थर से नहीं पहुंचता। धर्म के असली सिक्के को कभी भी नुकसान पहुंचता है तो संप्रदाय के नकली सिक्के से पहुंचता है। उसके लिए बहुत सचेत होने की जरूरत है।
वह नहीं बन सकेगा। क्योंकि न तो मेरा कोई शिष्य है, न मैं किसी का गुरु हूं। और जिन लोगों के लिए मैं कह रहा हूं, मैं गवाह हूं, उनको भी सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि अभी तुम सीधे नहीं जुड़ पाते। सीधे जुड़ जाओ तो तुम

मुझे परेशान मत करना। मैं नाहक परेशान होने को तैयार भी नहीं हूं। मेरा लेना-देना नहीं है कुछ। उससे मुझे कुछ संबंध नहीं है। अगर तुम सीधे ही जुड़ जाओ, इससे बेहतर तो कुछ भी नहीं है। इससे बेहतर तो कोई सवाल ही नहीं है। तब तो साक्षी का भी कोई सवाल नहीं है, गवाह का भी कोई सवाल नहीं!

माला और नामकरण का क्या कोई विशेष अर्थ है?

हां, अर्थ है, अर्थ बहुत है। संन्यासी का नाम बदलने का बड़ा अर्थ है-- सूचक। और हमारी जिंदगी में सभी कुछ सूचक है। एक नाम से आप जीते रहे हैं, एक नाम से आपकी आइडेंटिटी है। एक नाम आपका प्रतीक रहा है, आपके व्यक्तित्व का उससे जोड़ हो गया है। आप कल तक जो थे उसके साथ आपके नाम का एसोसिएशन है। उससे वह जुड़ा है। संन्यासी का नाम बदलने का अर्थ यह है कि हम उसकी पुरानी आइडेंटिटी से उसे तोड़ते हैं। हम कहते हैं, अब तुम वह नहीं रहे जो तुम कल तक थे। अब तुम एक नयी यात्रा पर जाते हो, नयी आइडेंटिटी लेकर जाते हो। पुराने दिनों में जब दीक्षा दी जाती थी तो एक छोटा सा प्रयोग करते थे।
वह प्रयोग यह था कि जैसे हम मुर्दे को नहलाते हैं अरथी पर चढ़ाने के पहले, वैसे उसे नहलाते। जैसे हम मुर्दे के बाल घोंट देते हैं, सिर घोंट देते हैं, ऐसा उसका सिर घोंट देते। फिर जैसा मुर्दे को अरथी पर चढ़ाते हैं, ऐसा उसे अरथी पर चढ़ा देते। फिर अरथी में आग लगा देते। और फिर आस-पास खड़े वे सारे लोग, जिनको मैं साक्षी कहूंगा, विटनेस कहूंगा, वे उससे कहते कि अब जल जाने दो उसे जो तुम कल तक थे। और अब हम चिता से तुम्हें बाहर खींचते हैं, यह तुम्हारा पुनर्जन्म है--रि-बॉर्न। अब तुम द्विज हुए, दूसरा जन्म हुआ।
यह सिर्फ सिंबालिक रिचुअल था। अपने आप में तो वह दिखता है कि न करें
तो कोई हर्ज नहीं। नहीं है कोई हर्ज। अगर समझ बहुत हो तब तो इस दुनिया में किसी भी रिचुअल का, किसी भी बात का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन उतनी समझ कहां है? वह आइडेंटिटी तोड़ने में सहयोगी हो जाता है। अचानक पता चलता है कि अब तुम वह नहीं रहे।
बार-बार जब भी ख्याल आएगा कि अब मेरा वह नाम नहीं है जो कल तक था, अब मेरा दूसरा नाम है। जब रास्ते पर कोई बुलाएगा--उस नाम से नहीं जो कल तक आपका था, नये नाम से--तो आप भी उतने ही चौंकेंगे। अपने भीतर से आइडेंटिटी रोज-रोज टूटेगी और पता चलेगा कि वह आदमी समाप्त हो गया जो मैं कल तक था और एक नयी यात्रा शुरू हो गई। इसके स्मरण के लिए नाम के बदलने का उपयोग है। दूसरी बात पूछी है कि माला का क्या अर्थ हो सकता है?
व्यर्थ तो कुछ भी नहीं होता कभी। लंबे चल-चल कर व्यर्थ हो जाता है, यह दूसरी बात है। सभी चीजें चलते-चलते घिस जाती हैं और गंदी हो जाती हैं। माला में एक सौ आठ गुरिए देखे होंगे। लेकिन ख्याल में नहीं आया होगा कि वे क्या हैं। एक सौ आठ ध्यान की पद्धतियां हैं, एक सौ आठ मार्ग हैं ध्यान के, एक सौ आठ विधियों से ध्यान की संभावना है। और आप और मेरा संबंध बना रहा तो धीरे-धीरे एक सौ आठ विधियां सभी आपके ख्याल में ला देने की हैं। वे एक सौ आठ गुरिए एक सौ आठ ध्यान के प्रतीक हैं। और जब कोई साक्षी किसी को वह माला देता था तो वह याद दिलाता था कि तुझे मैंने सिर्फ एक रास्ता ही समझाया, बताया, और भी रास्ते हैं एक सौ सात। इसलिए किसी दूसरे को गलत कहने में बहुत जल्दी मत करना और सदा याद रखना कि अनंत रास्ते हैं उसके।
और एक सौ आठ गुरियों के नीचे लटका हुआ एक बड़ा मनका देखा होगा। वह इस बात की खबर है कि एक सौ आठ में से किसी से भी पहुंचो, एक पर अंत में आदमी पहुंच जाता है। कहीं से भी चलो, एक पर पहुंचना हो जाता है। तो वह जो एक नीचे मनका लटका हुआ है, ये सब सिंबालिक हैं, पोएटिक हैं, काव्यात्मक हैं, लेकिन अर्थपूर्ण हैं।
एक आदमी शादी करके लाता है घर किसी स्त्री को। फिर हम उसका घर में नाम बदलते हैं। कभी पूछा नहीं कि क्यों बदलते हैं? आइडेंटिटी तोड़ते हैं। वह किसी और घर की लड़की है, वह कहीं और बड़ी हुई है, किसी और परिवार में बड़ी हुई है, किन्हीं और संस्कारों में जन्मी है। उसके नाम के साथ उसका सारा पुराना व्यक्तित्व जुड़ा है। घर में लाकर हम उसका नाम बदल लेते हैं। नयी यात्रा शुरू हो जाती है। हम उससे कहते हैं, अब भूल जा उस घर को जहां तू थी, भूल जा

उस संबंध को जहां तू थी, भूल जा उन संस्कारों को जहां तू थी। अब एक नया परिवार, अब एक नया घर, अब एक नयी दुनिया शुरू होती है, तेरे नये नाम के आस-पास अब एक नया क्रिस्टलाइजेशन होगा।
तो माला हो, कि नाम हो, कि और बहुत कुछ है, उन सबके अर्थ तो बहुत हैं। लेकिन वे सब बातें धीरे-धीरे चल-चल कर व्यर्थ हो गई हैं। और जब वे व्यर्थ हो गई हैं तो मैं हजार बार उनके खिलाफ बोलता रहता हूं। मैं उनकी व्यर्थता के खिलाफ बोलता रहता हूं। लेकिन मेरी पीड़ा समझना आपको बहुत मुश्किल पड़ती है। मेरी पीड़ा यह है कि मैं यह जानता हूं कि कोई चीज सार्थक है और व्यर्थ हो गई है। मैं उसके खिलाफ भी बोलता रहूंगा और उसके पक्ष में भी कुछ करता रहूंगा। अब यह मेरी मुश्किल है। यह मुश्किल आपको भी समझनी पड़ेगी।
मैं कुछ चीजों के खिलाफ बोलता रहूंगा, क्योंकि वे व्यर्थ हो गई हैं;
और फिर भी किसी मार्ग से उन चीजों के पक्ष में कुछ करता रहूंगा, क्योंकि मैं जानता हूं, मूलतः उनकी सार्थकता थी। और वह मूलतः सार्थकता नहीं खो जानी चाहिए। यह दोनों एक साथ चलेगा। इसलिए मैं कई तरह के मित्रों को दुश्मन बना लूंगा और कई तरह के साथियों को खोऊंगा। और रोज यह चलेगा। और यह चलता रहेगा, उसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मैं एक दिन माला के खिलाफ बोलूंगा, जब कोई मेरे पास आ जाएगा और माला की बात करने लगेगा तो मैं खिलाफ बोलूंगा।
लेकिन मैं हैरान हुआ हूं जान कर कि मैं बड़े से बड़े संन्यासियों के सामने माला के खिलाफ बोला, और वे माला के पक्ष में एक शब्द भी न कह सके। तो मैं तो सोचता था कि कोई मुझसे माला के पक्ष में कुछ कहेगा। अब कोई नहीं मिला तो मुझे खुद ही कहना पड़ेगा, और कोई उपाय नहीं है।
"नव-संन्यास क्या?" : कृष्ण-स्मृति प्रवचन 22

मैं कहता आंखन देखी
पैंतीसवां प्रवचन

संन्यास और संसार

संसार को छोड़ कर भागने का कोई उपाय ही नहीं है। कारण हम जहां भी जाएंगे वह होगा ही, शक्लें बदल सकती हैं। इस तरह के त्याग को मैं संन्यास नहीं कहता। संन्यास मैं उसे कहूंगा कि हम जहां भी हों वहां होते हुए भी संसार हमारे मन में न हो। अगर तुम परिवार में भी हो तो परिवार तुम्हारे भीतर बहुत प्रवेश नहीं करेगा। परिवार में रह कर भी तुम अकेले हो सकते हो और ठेठ भीड़ में खड़े होकर भी अकेले हो सकते हो। इससे उलटा भी हो सकता है कि एक आदमी अकेला जंगल में बैठा हो लेकिन मन में पूरी भीड़ घिरी हो। और ठेठ बाजार में बैठ कर भी एक आदमी अकेला हो सकता है।
संन्यास की जो अब तक व्यवस्था रही है उसमें गलत त्याग पर ही जोर रहा है। उसके दूसरे पहलू पर कोई जोर नहीं है। एक आदमी के पास पैसा न हो तो भी उसके मन में पैसे का राग चल सकता है। इससे उलटा भी हो सकता है कि किसी के पास पैसा हो और पैसे का कोई लगाव उसके मन में न हो। बल्कि ज्यादा संभावना दूसरे की ही है, पैसा बिल्कुल न हो तो पैसे में लगाव की संभावना ज्यादा है। पैसा हो तो पैसे से लगाव छूटना ज्यादा आसान है। जो भी चीज तुम्हारे पास है उससे तुम आसानी से मुक्त हो सकते हो। असल में तुम मुक्त हो ही जाते हो। सिर्फ गरीब आदमी को ही पैसे की याद आती है। अगर किसी अमीर को भी आती है तो उसका कुल मतलब इतना है कि अभी भी वह अमीर नहीं हो पाया है।
तो मैं अमीर की परिभाषा यही करता हूं कि जिसे अब पैसे की याद ही न आए;
और गरीब मैं उसको कहता हूं कि जिसे पैसे की याद बनी रहे। भूखे आदमी को भोजन की याद आती है और भरे पेट वाले आदमी को भोजन की याद नहीं आती है, जब तक कि आदमी भोजन के लिए पागल और विक्षिप्त न हो। अगर मैनिया हो तो बात अलग, नहीं तो भरा पेट आदमी भोजन को भूल जाता है। जब तुम नंगे खड़े होगे तब तुम्हें कपड़े की याद आएगी, जब तुम कपड़े पहने रहते हो तब तुम्हें कपड़े की बिल्कुल याद नहीं आती है और नहीं आनी चाहिए। कोई आवश्यकता ही नहीं है।
मन का नियम ही यही है। जो नहीं है उसकी वह तुम्हें चेतावनी देता है, उसकी वह खबर कर देता है कि तुम नंगे हो, कपड़े नहीं हैं, तुम्हें सर्दी लग रही है। या तुम भूखे बैठे हो, पेट में भूख दौड़ रही है, और भोजन नहीं है। मन का काम ही रेडार की तरह है कि वह तुम्हें खबर दे कि क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है। जो चीज तुम्हारे पास है उसे भूलना आसान है और जो तुम्हारे पास नहीं है उसे भूलना जरा कठिन है।
अब तक संन्यास का अर्थ बिल्कुल त्याग समझा जाता रहा है। इसका मतलब हुआ कि जो आदमी छोड़ कर चला जाता है वह संन्यासी है। मेरे विचार से वह आदमी त्यागी होगा, संन्यासी नहीं। संन्यास त्याग पर एक और शर्त लगा देता है। वह शर्त यह है कि त्याग ठीक भी हो। अब ठीक त्याग क्या होगा? ठीक त्याग मेरी दृष्टि में वह है कि तुम कुछ भी छोड़ कर नहीं जाते, लेकिन तुम्हारे भीतर से सब छूटना आरंभ हो जाता है। पत्नी से मुक्त होने के लिए पत्नी को छोड़ कर जाने का कोई अर्थ नहीं, उसके साथ रहते हुए भी तुम पत्नी के भाव से मुक्त हो सकते हो। बेटे को छोड़ कर भागने की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन उसके पास रहते हुए तुम पिता का जो आग्रहपूर्ण रुख है, उससे मुक्त हो सकते हो।
तो संसार ही संन्यास बन सकता है, ऐसी मेरी दृष्टि है। जिस संन्यास की मैं चर्चा कर रहा हूं, उसको संसार से विपरीत और भिन्न और अलग नहीं रखना है। उसे रखना है ठीक संसार में। और यह केवल अगर शाब्दिक या दार्शनिक स्तर पर होता तो मैं इसकी बहुत ज्यादा चिंता न करता। इसके व्यापक परिणामों में फर्क पड़ेगा।
जब संन्यासी को संसार से तोड़ लेते हैं तो हम दुनिया को दो भागों में बांट देते हैं। एक ओर संन्यासी हो जाते हैं, एक ओर संसारी हो जाते हैं। संसारी जाने-अनजाने अपने मन में यह मान लेता है कि मुझे तो बुरा होने की सुविधा है, क्योंकि मैं संसारी हूं। वह चोरी करे, कालाबाजारी करे, वह झूठ बोले, तो उसको जस्टीफिकेशन होता है। अपने मन में वह कहता है कि संसारी हूं,

ये मुझे करने ही पड़ेंगे। और अगर संन्यासी कहे कि यह गलत है, तो वह कहता है कि अगर आप संसार में रहेंगे तो आपको भी करना पड़ेगा। आप नहीं कर रहे हो, क्योंकि आप सब छोड़ कर चले गए हो। मुझे तो करना ही पड़ेगा; क्योंकि उसके बिना यहां जीया नहीं जा सकता है।
जब हम संसार को छोड़ देते हैं तब हम संसारी के अच्छे होने में बाधा डालते हैं, और उसके बुरे होने के लिए संगति जुटाते हैं, जस्टीफिकेशन जुटाते हैं। उसको लगता है कि यहां बुरा होना ही पड़ेगा। क्योंकि वह कह भी सकता है कि अगर यहां बुरा होना अनिवार्य नहीं है तो संन्यासी छोड़ कर क्यों भाग गया है? वह यहीं अच्छा हो जाए! तो संसार में होना और बुरा होना पर्यायवाची हो जाता है।
यह बड़ी खतरनाक बात है। खतरनाक इसलिए है कि दुनिया में अनेक लोग संन्यासी होंगे और जो संन्यासी होंगे वे भी संसारियों पर ही निर्भर होंगे। अगर चालीस करोड़ का देश संन्यासी हो जाए तो एक दिन एक भी संन्यासी जीवित नहीं रह सकता। जब कि करोड़ों लोग संसारी हों तब ही हम दस-पंद्रह, सौ- दो सौ संन्यासियों को पाल सकते हैं।
तो जो संन्यासी अपने जीवन के लिए संसारी पर आधारित होता हो तो उसका संसार से मुक्त होना बिल्कुल नासमझी की बात है। वह मुक्त नहीं है। वह विरोध करता है कि कालाबाजारी बुरी है और कालाबाजारी पर ही उसका आश्रम भी होगा। और कोई उपाय नहीं। वह विरोध करता हो जिन चीजों का, उन्हीं चीजों को करने वाले पर उसका जीवन निर्भर होगा। यहां वह विरोध भी करता रहेगा, लेकिन वह आश्रित होगा। और जो संन्यासी किसी पर आश्रित हो, वह स्वतंत्र नहीं हो सकता है। ऊपर से उसकी स्वतंत्रता दिखाऊ होगी, वह गहरे में फंसा हुआ होगा। अगर वह जैन संन्यासी है तो वह जैनियों का गुलाम होगा, हिंदू संन्यासी है तो हिंदुओं का गुलाम होगा, मुसलमान संन्यासी है तो मुसलमानों का गुलाम होगा। क्योंकि जिनके कारण वह जी रहा है उनकी धारणाएं, उनके नियम, उनकी मर्यादाएं उसे स्वीकार करनी पड़ेंगी। वह इंच भर यहां-वहां हिल नहीं सकता। और संन्यासी गुलाम हो जाएगा।
अगर संन्यासी गुलाम हो गया तो वह संन्यासी नहीं रहा। स्वतंत्रता तो उसका मूल आधार है। और इस प्रकार संसारी अपनी बुराई में निश्चिंत हो जाएगा। उसे लगेगा कि उसे बुरा होना ही पड़ेगा, इससे बचने का कोई रास्ता नहीं; वह कभी संन्यासी हो जाएगा तो ही बुराई के बाहर हो पाएगा। लेकिन सारा जगत संन्यासी नहीं हो सकता।
इमाइल कुए का एक बहुत अदभुत नियम है कि जो नियम सार्वभौम न बनाया जा सके, वह नियम नैतिक नहीं कहा जा सकता। इसे समझ लें कि नियम सार्वभौम बनाने से अपने आप टूट जाता है। जैसे झूठ बोलना है। अगर सारी दुनिया झूठ बोलने लगे, तो झूठ बोलना बिल्कुल बेकार हो जाएगा। झूठ बोलना तभी तक ठीक चल सकता है कि जब तक कुछ लोग सच बोलते हैं और सच बोलने में भरोसा रखते हैं। झूठ बोलने वाला भी सच बोलने वाले पर जिंदा रहता है, नहीं तो जिंदा नहीं रह सकता है।
अगर इस बार हम सारे लोग झूठ बोलने लगें तो झूठ बिल्कुल ही बेमानी हो जाएगा, उसका कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा। क्योंकि मैं बोलूंगा और आप जानते हैं कि मैं झूठ बोल रहा हूं; और मैं बोल रहा हूं तब मैं जानता हूं, दुनिया जानती है कि झूठ बोला जा रहा है। तब उसका कोई मतलब ही नहीं रहा। मेरे झूठ का लाभ तब तक है जब तक मैं दिखा पाऊं कि मैं सच बोल रहा हूं। और दूसरा भी भरोसा करता है कि नहीं, सच भी बोला जाता है। तब ही झूठ रहेगा। अगर सब लोग चोर हो जाएं, तो चोरी बेकार हो जाएगी। चोरी तभी तक चलती है जब तक कुछ लोग चोर नहीं हैं।
इसलिए यह एक ख्याल बहुत उचित है कि जो नियम सार्वभौम नहीं बन सकता, वह नैतिक नहीं बन सकता। अगर सारे लोग सत्य बोलें तो कोई बाधा नहीं आ सकती। इससे कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन सारे लोग झूठ बोलें तो नहीं चलेगा। अगर सारे लोग संसारी हों तो बाधा नहीं आती, लेकिन सारे लोग संन्यासी हों तो नियम समाप्त हो जाएगा। इसलिए मैं इस तरह के संन्यास को, जो जीवन को छोड़ कर भागता है, झूठ और चोरी के साथ ही गिनता हूं। मैं फर्क नहीं करता, क्योंकि वह अनैतिक नियम है। उसके होने के लिए संसारी पर निर्भर होना जरूरी है, जब

कि संसारी के लिए संन्यासी पर निर्भर होना जरूरी नहीं। अगर कल संन्यासी न हो तो संसार अपने रास्ते पर चलता रहेगा, कोई बाधा नहीं पड़ेगी। किंतु संसारी न हो तो संन्यासी एक क्षण भी नहीं चलेगा, वह तत्काल टूट जाएगा। उसको एक इंच भी चलने का उपाय नहीं होगा।
इसके और भी घातक परिणाम हुए। यदि अच्छा आदमी जंगल में चला जाए या संसार छोड़ दे तो दुनिया को बुरा बनाने का साधन बनता है। दुनिया तो चलेगी। उसे बुरे लोग चलाएंगे, सारे अच्छे लोग भाग जाएंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि अच्छे आदमी के अच्छे होने का एक कर्तव्य और हिस्सा यह भी है कि वह उन जगहों पर जहां बुरे आदमी हैं, वहां से भागे न। सब अच्छे आदमी भाग जाएं तो इस संसार के इतने बुरे होने का जिम्मेवार कौन है? इसका जिम्मेवार बुरा आदमी कम है, इसके जिम्मेवार भागे हुए अच्छे आदमी ज्यादा हैं।
इसलिए भी मैं मानता हूं कि संन्यास जो है वह संसार के बीच फलित होना चाहिए। उसका फूल यहीं खिलना चाहिए। दुकान में, दफ्तर में, बाजार में, घर में उसका फूल खिलना चाहिए। इसमें भागने की आवश्यकता नहीं। फिर मेरी समझ है कि जो जीवन इतना शक्तिशाली है वह पलायनवादी नहीं होना चाहिए। यदि कहते हैं कि संन्यास बड़ी अदभुत शक्तिशाली चीज है तो संसार से भयभीत नहीं होना चाहिए, क्योंकि भयभीत सिर्फ कमजोर लोग होते हैं। संन्यासी भयभीत है पूरे वक्त कि वह यदि संसार में खड़ा हो गया तो बिगड़ जाएगा। मतलब यह हुआ कि संसार में बिगाड़ने वाली शक्तियां ज्यादा प्रबल हैं और अच्छे आदमी की शक्तियां नपुंसक हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि हम बहुधा कहते हैं, बुरे आदमी की संगति में तुम बिगड़ जाओगे। लेकिन हम कभी यह नहीं सोचते कि जब एक अच्छा आदमी बुरे आदमी की संगत करता है तो उसमें एक बुरा आदमी भी तो अच्छे आदमी की संगत करता है। लेकिन बिगड़ता हमेशा अच्छा आदमी है। हम कभी यह नहीं कहते कि यह अच्छे आदमी की संगत बुरे आदमी से हो रही है तो बुरा आदमी सुधर जाएगा। हम हमेशा यही कहते हैं कि अच्छा आदमी बिगड़ जाएगा। जिस दुनिया में अच्छाई कमजोर हो उस दुनिया में अच्छाई बहुत दिन तक नहीं रह सकती है, सिर्फ धोखा हो सकता है। मेरा मानना यह है कि अच्छाई को प्रमाण देना चाहिए कि वह भी प्रबल है, शक्तिशाली है। लेकिन वह प्रमाण कहां दे? जंगल में कोई प्रमाण नहीं। और जीवन की सारी प्रामाणिकता संबंधों में है, वह अंतर्संबंधों में है। यदि मैं जंगल में बैठ कर यह कहूं कि मैं सच बोलता हूं तो कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि सत्य बोलना सदैव किसी से संबंधित है। मैं अकेले में झूठ बोलता हूं या सच बोलता हूं, यह कोई मतलब नहीं रखता, जब तक कि कोई अन्य व्यक्ति वहां प्रमाण के लिए न हो। और अगर दूसरा भी वहां मौजूद न हो और मैं सच बोलता हूं तो मेरे किसी स्वार्थ को हानि नहीं पहुंचेगी, क्योंकि मैं सब स्वार्थ को छोड़ कर भाग आया हूं। तब भी सच बोलने का कोई मतलब नहीं। न मेरे पुत्र को हानि पहुंचती है, न मेरा घर नीलाम होता है, न मेरी दुकान बंद होती है। अब मेरे पास न पुत्र है, न घर है, न मेरे पास दुकान है। अब मैं सच बोल सकता हूं। ऐसे तो कोई भी सच बोल सकता है। सच जो बोल रहा है उसमें बाधा नहीं है कि सच उसके स्वार्थ को हानि पहुंचाता है। और संन्यासी जो सब छोड़ कर चला गया, तो अब सच बोल सकता है। मेरा अपना मानना यह है कि ऐसे सच का कोई मूल्य नहीं। और इसको जरूरत भी नहीं पड़ती, क्योंकि जहां जरूरत थी वह उस अवसर को छोड़ कर चला आया है।
इस प्रक्रिया में संन्यासी कमजोर हुआ है और संसारी बुरा। इससे जो संयोग पैदा हो रहा है और जो समाज पैदा हुआ वह अच्छा समाज नहीं है।
तो पहला कहना मेरा यह है कि जो संसारी है उसे वहीं संन्यासी हो जाना है। उसे कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं, सिर्फ उसे अपने में परिवर्तन लाना है। परिवर्तन के लिए दो उपाय हैंः एक तो परिस्थिति को बदल दो या मन की स्थिति को। और जो आदमी परिस्थिति बदलने पर जोर देता है, मैं यह मानता हूं कि वह आध्यात्मिक नहीं है। वह भौतिकवादी है। क्योंकि परिस्थितियां सब भौतिक हैं।
मैं कहता हूं कि अगर मुझे इस घर के बाहर जंगल में रहने को मिल जाए तो
मन बड़ा पवित्र रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि घर मुझे और मेरे मन को अपवित्र करता है और जंगल मुझे पवित्र करता है। जोर मेरा मकान पर है, मन पर नहीं।

संसारी कहता है कि जब तक मेरे पास लाख रुपये न हों तब तक मुझे अशांति रहती है, और अगर दस लाख हो जाएं तो शांति होती है। मतलब यह कि भौतिक परिस्थिति में फर्क हो जाए तो मेरा मन बड़ा शांत हो जाएगा। वह भी परिस्थिति को बदलने की बात कर रहा है। उसका कहना है कि छोटे पद पर हूं तो तकलीफ है, और बड़े पद पर आ जाऊंगा तो सब ठीक हो जाएगा। संसारी की भाषा भी परिस्थिति को बदलने की है और संन्यासी की भी, तो फर्क कहां है?
संन्यासी उस दिन फर्क शुरू करता है जब वह कहता है कि मैं अब परिस्थितियों की चिंता छोड़ता हूं, मैं अपने को बदलता हूं, मन की स्थिति को बदलता हूं। परिस्थिति कैसी होगी, यह गौण है; मैं अपने मन को बदलता हूं, मन की स्थिति को बदलता हूं। और मनःस्थिति को बदलना हो तो प्रतिकूल परिस्थिति में बदलने में राज एवं रहस्य है; क्योंकि वहां संघर्ष है, चुनौती है।
अगर एक आदमी बाजार में ईमानदार होने की धारणा करता है, तो ईमानदारी बड़ी बलवान पैदा होगी। लेकिन पैदा होने में कठिनाई होगी; संकल्प बड़ा श्रम लेगा; उस आदमी को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ेंगी। लेकिन धर्म सस्ता नहीं है, उसके लिए बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा। जिसको हम संन्यासी कह रहे हैं वह सस्ते धर्म में जी रहा है, वह मूल्य चुका नहीं सकता। और जहां मूल्य चुकाना पड़ता है, जहां चुनौती होती है, वहां वह भाग जाता है।
एक तो मैं संन्यासी को खड़ा करना चाहता हूं इसी संसार में। इसका और भी कारण है। मेरे देखने में ये बातें निरंतर साफ होती गई हैं। अब दुनिया में ऐसा संन्यासी नहीं टिक सकेगा जो प्रोडक्टिव नहीं है। तो रूस में संन्यासी समाप्त हो गया, क्योंकि लोगों ने निर्णय कर लिया कि जो पैदा करेगा वह खाएगा। बीस करोड़ का देश है रूस। वहां सैकड़ों-हजारों संन्यासी थे, ईसाई फकीर थे, वे सब खत्म हो गए हैं। चीन में बौद्ध, ईसाई, मुसलमान फकीर सब खत्म हो रहे हैं। वे अब नहीं बच सकते हैं।
जहां-जहां समाजवादी चिंतन बढ़ेगा और जहां-जहां यह विचार आएगा कि जो आदमी पैदा नहीं करता वह खाने का हकदार नहीं है, वहां संन्यासी दुश्मन मालूम होंगे। आज भी आधे जगत में संन्यासी खत्म हो गए हैं, बाकी आधे जगत में अधिक दिन तक नहीं चल सकते हैं। क्योंकि जिसको हम संन्यासी कहते थे, अब उसको चीन में, रूस में विदा किया जा रहा है। क्योंकि वह कुछ करता नहीं। कहते हैं कि भजन-कीर्तन करता है। तो उसका अपना स्वार्थ है; उसके लिए दूसरे क्यों मेहनत करें!
थाईलैंड जैसे देश में चार करोड़ आबादी है और बीस लाख संन्यासी हैं। चार करोड़ में बीस लाख संन्यासी हैं! यह सोचनीय है। अब थाईलैंड इनकार करेगा; बल्कि इनकार कर रहा है। थाईलैंड की असेंबली में यह प्रश्न था कि अब जो कोई भी संन्यासी होना चाहेगा वह पहले जब तक सरकार से आज्ञा न ले तब तक उसे संन्यासी नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि अब इन संन्यासियों को कौन पालेगा? ये क्या खाएंगे, क्या पीएंगे, कैसे जीएंगे?
इस देश में आने वाले बीस साल में वह सवाल उठेगा, ज्यादा समय नहीं है।
मैं मानता हूं कि संन्यास इतनी अदभुत चीज है, वह नष्ट नहीं होनी चाहिए। अब उसको बचाने का एक ही उपाय हैः हम नॉन-प्रोडक्टिव दुनिया से प्रोडक्टिव दुनिया में संन्यास को लाएं, उसे अनुत्पादक से उत्पादक बनाएं। और मेरी दृष्टि से संसारी पर संन्यासी निर्भर न हो, वह स्वावलंबी हो और उत्पादक हो। तब ही उसका भविष्य है, अन्यथा कोई भविष्य नहीं।
तीसरी बातः अभी तक यह स्वीकार रहा कि संन्यास जिन लोगों ने लिया है, उनको आनंद मिला। संदिग्ध है यह बात। लेकिन जिनको छोड़ कर वे भाग गए, उनको दुख मिला, यह असंदिग्ध है। लेकिन हम हिसाब कभी लगाते नहीं। यदि हम हिसाब लगाएं और सिर्फ भारत का ही हिसाब लगाएं तो पता लगेगा कि करोड़ों परिवारों ने इन संन्यासियों की वजह से दुख झेला है। जितना कि डाकुओं की वजह से नहीं झेला, जितना दुख चोरों की वजह से नहीं झेला, जितना बड़े-बड़े हत्यारों ने नुकसान नहीं पहुंचाया, उतना संन्यासियों ने पहुंचा दिया। लेकिन यह धार्मिक तरह का दुख है। और देने वालों को हम कभी कहते नहीं कि तुम दुख दे रहे हो।
महावीर के समय में पचास हजार संन्यासी थे। ये पचास हजार परिवारों को छोड़ कर आए हुए लोग ही नहीं, बल्कि उनके बच्चे भी हैं, उनकी पत्नियां भी हैं

तथा किसी के बूढ़े मां एवं बाप भी हैं। वे सब के सब आज विदा हो गए। इसको भी झेला गया, क्योंकि हमारी यह मान्यता है कि यह महान कार्य है, इसलिए हम कष्ट झेलें। मजे की बात यह है कि जो छोड़ कर आया है, उसे भी आनंद मिला कि नहीं, पक्का नहीं होता। किंतु जिन्हें वह छोड़ कर आया है उन्हें वह भारी दुख पहुंचाता है।
और ऐसा संन्यास, जिससे कहीं भी दुख पैदा होता है या किसी भी कारण से दुख पैदा होता हो तो मैं नहीं मानता कि वह धार्मिक है। वास्तव में धर्म का मतलब यह है कि जिसके कारण किसी को भी दुख न हो, न्यूनतम दुख की संभावना पैदा हो। अब ऐसा संन्यासी कहता हो कि मैं अहिंसक हूं तो मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि हिंसा बड़ी गहरी है। अगर छोटे-छोटे बच्चों को छोड़ कर आया है और साथ ही पत्नी को छोड़ कर आया है तो उनके साथ जो हिंसा हुई है, यह जिम्मेवारी उसकी है। मैं ऐसे संन्यास के भी खिलाफ हूं जिससे हिंसा और दुख पैदा होता है।
मेरी पहली धारणा यह है कि जो संन्यास अभी प्रारंभ किया है, उसमें पहली बात तो यह है कि जो जहां है वहीं घोषणा करे, वह कपड़े भी बदले और नाम भी बदले। बदलने से उसकी पूरी व्यवस्था में पृथकता पैदा हो जाती है। एक, नाम बदलने से उसका जो पुराना तादात्म्य था उसके व्यक्तित्व से वह टूट जाएगा। कपड़े बदलने से उसे चौबीस घंटे याद रहता है और दूसरे भी उसे चौबीस घंटे याद दिलाएंगे कि वह संन्यासी है। यह स्मरण प्राथमिक रूप में बड़ा फायदे का है। नहीं तो वह भूल ही जाता है। लोग कहते हैं कि हम तो अंदर से ठीक हैं। लेकिन अंदर का स्मरण नहीं रह पाता है। और जो कपड़े बदलने में डर रहा है वह अपने को बदल पाएगा, इतनी हिम्मत कर पाएगा, इसकी संभावना बहुत कम है!
नाम बदल लेना है, ताकि चौबीस घंटे उसे स्मरण रहे। उसे कपड़े बदल लेने हैं, यह उसके संकल्प की घोषणा भी है। समाज के प्रति वह कहेगा कि मैं रहता तो यहीं हूं, लेकिन अब अपने जीवन को परमात्मा को समर्पित किया। काम जो करता था वही करूंगा, क्योंकि मैं किसी को दुख नहीं देना चाहता हूं; लेकिन अब काम करने की मेरी निजी आकांक्षा थी, वह विदा हो गई। अब काम इसलिए कर रहा हूं कि उस काम के न करने से किसी को कोई दुख न पैदा हो।
नौकरी कर रहे हैं तो नौकरी करेंगे, लेकिन नौकरी का मूल आधार बदल गया है। अब नौकरी मेरी महत्वाकांक्षा और मेरे अहंकार का कोई हिस्सा नहीं है। अब इसका मूल आधार इतना रहा है कि वह किसी की जीवन-व्यवस्था के दुख का कारण न बने। अब कारण बिल्कुल बदल गया है। और जैसे-जैसे यह समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे लगेगा कि काम जो मैं कर रहा हूं वह परमात्मा का काम है अब। मैं अपने बेटे को पाल रहा हूं, वह भाव छोड़ देना पड़ेगा। अब मैं परमात्मा के बेटे को पाल रहा हूं। अब मैं एक साधन हूं।
इस संन्यास में साधन मात्र होने की धारणा सबसे गहरी होगी। वह मेरा काम नहीं है, लेकिन मैं जिस स्थिति में हूं, उस स्थिति में वह काम अनिवार्य है।
इससे बहुत फर्क पड़ेगा। जब तुम खुद कर रहे हो उस काम को तब और अब साधन मात्र हो तब बहुत फर्क पड़ जाएगा। जैसे ही तुमने समझा कि तुम साधन मात्र हो वैसे साक्षी होना संभव हो जाएगा। तुम अपने काम में साक्षी रह सकोगे। और जैसे ही समझा कि तुम साक्षी हो तो उस काम में होने वाली चोरी, बेईमानी तुम्हें आकर्षित नहीं करेगी। क्योंकि अब तुम मालिक नहीं हो। उस काम में तुम केवल मालिक नहीं हो अब, तुमने जगत-व्यवस्था पर सब छोड़ दिया है। अब तुम उसके बीच के केंद्र नहीं हो, यह धारणा गहरी होगी।
साथ में ध्यान का प्रयोग चलेगा, जो कि संन्यासी की मूल साधना होगी। संन्यास लेने का मतलब ही यह है कि ध्यान में गहराई बढ़े। ध्यान जारी हो और ध्यान से ही तुम्हारा संन्यास आना चाहिए कि तुम्हें लगे कि मैं अब इस जगह आ गया हूं कि जहां मैं साधन मात्र हो गया हूं। ध्यान जितना बढ़ेगा, साधन का भाव जितना बढ़ेगा, साक्षी-भाव जितना बढ़ेगा, उतना काम इस जगत में अभिनय की तरह हो जाएगा। करोगे काम, उठोगे, आओगे, जाओगे। न ही कहीं दौड़ोगे, न किसी को दुख पहुंचाओगे, न ही तुम्हारी वजह से कहीं किसी को पीड़ा होगी। लेकिन लगेगा तुम्हें जैसे कि सारा संसार एक बड़ा स्वप्न हो गया है और स्वप्न में तुम एक अभिनेता मात्र रह गए हो।

इसके गहरे परिणाम होंगे। रोज परिस्थितियां आएंगी जो प्रतिकूल होंगी। रोज उन परिस्थितियों में तुम्हें अपने संकल्प को, अपने साक्षीत्व को प्रगाढ़ और प्रखर करना होगा। उससे तुम्हारा बल बढ़ेगा, आत्मा पैदा होगी। तो एक तो संन्यास का यह रूप है।
संन्यास को मैंने तीन हिस्सों में विभाजित किया है। यह कामचलाऊ विभाजन है। संन्यास की मूल धारणा तो यही होगी जो मैंने कही। कुछ लोग ऐसे होंगे जिन पर वास्तव में कोई जिम्मेवारी नहीं है। अवकाश प्राप्त लोगों के पास अब कोई काम भी नहीं, अब उनके पास कोई दुकान भी नहीं, अब इन पर कोई ऐसी जिम्मेवारी भी नहीं जिसके कारण इनके लिए यहीं खड़ा होना आवश्यक है। बल्कि यहां से हट जाएं, यह इनके लिए हितकर होगा।
जैसे एक बूढ़ा आदमी है, अगर वह हट जाए तो घर के लिए भी सुविधापूर्ण होगा
और उसके लिए भी सुविधापूर्ण होगा। कई क्षण ऐसे आ जाते हैं जब कि हम व्यर्थ ही वहां होते हैं जहां हमारा होना कष्ट देता है। वहां से चुपचाप उसे हट जाना चाहिए। जब तक हमारे होने से वहां सुख हो रहा है, तब तक हम साधन मात्र रहें। एक समय आ जाता है कि घर में सत्तर वर्ष का बूढ़ा आदमी और घर में सारे लोग अपने काम में लग गए हैं। अब वह साठ-सत्तर साल के बूढ़े आदमी में और तीस साल के लड़के में कोई मेल भी नहीं बैठता, बुद्धि का, विचार का भी, सोच का, समझ का भी। उनकी यात्रा ही मेल नहीं खाती। अब इन दोनों के बीच अकारण उपद्रव होता है। इसमें कोई अर्थ नहीं। इसमें कोई प्रेम फलित नहीं होगा।
ऐसे वृद्ध हैं जिन पर कोई जिम्मेवारी नहीं। ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं। ऐसे व्यक्तियों के लिए आश्रम बनाना चाहता हूं। वे आश्रम भी उत्पादक होंगे, वे भी अनुत्पादक नहीं होंगे। उन आश्रमों की अपनी खेती होगी, अपना छोटा उद्योग होगा। कुछ भी हो, पैदा करेंगे। वे किसी पर निर्भर नहीं होंगे। जहां भी भागना होगा, वह भी दुनिया का एक हिस्सा होने वाला है, वहां सामूहिक जीवन होगा। जो भी वहां पैदा होगा, उसके लिए संन्यासियों को कम से कम तीन घंटे काम करना होगा, वे जो काम कर सकें। यदि वृद्ध है और पढ़ा सकता है तो तीन घंटे पढ़ा दे। जो जिस प्रकार का काम कर सकता है, वह तीन घंटे का काम करे। बाकी समय का उपयोग अध्ययन, साधना व भजन-चिंतन में होगा। तीन घंटे काम करने पर संन्यासियों को किसी पर निर्भर न होना होगा। वे अपने लिए पैदा कर लेंगे।
इस सामूहिक जीवन में कोई न ऊंचा होगा और न कोई नीचा। अगर वहां अस्पताल होगा तो वहां डाक्टर, नर्स और चपरासी में कोई अंतर नहीं होगा। उनको खान-पान एक सा मिलेगा। रहन-सहन एक सा होगा। कपड़े एवं अन्य सुविधाएं एक सी होंगी। उनकी पद-प्रतिष्ठा में कोई अंतर नहीं होगा। सिर्फ उनके काम में फर्क पड़ेगा। फर्क ऐसा होगा कि यदि कोई डाक्टर है तो वह अपना डाक्टरी काम करेगा, चपरासी अपना काम करेगा। आश्रम में चपरासी छोटा नहीं होगा और न डाक्टर बड़ा होगा। इसलिए इस समूह-जीवन, कम्यून में आध्यात्मिक साम्यवाद का प्रयोग होगा।
मेरा मानना यह है कि जब तक दुनिया को आध्यात्मिक साम्यवाद के प्रयोग नहीं मिलते हैं तब तक साम्यवाद से बचा नहीं जा सकता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि भौतिकवाद ने तो दुनिया को साम्यवाद जैसी धारणा दे दी और अध्यात्म अभी तक साम्यवाद की धारणा नहीं दे सका। भौतिकवाद ने तो दिखा दिया कि हम सारी दुनिया को एक करके दिखाए देते हैं। लेकिन भौतिकवादी साम्यवाद से बड़ा नुकसान हो रहा है। अतः इस आश्रम में आध्यात्मिक साम्यवाद का प्रयोग होगा। यह एक ऐसी जगह होगी, जहां बिना किसी भेद के सारे लोग बराबर होंगे और फिर भी जिसको जो काम करना है वह करता है। बुहारी लगाने वाला बुहारी लगाता है, प्राचार्य, प्रिंसिपल का काम करने वाला प्राचार्य का काम करता है। वहां स्कूल होगा, कालेज होगा, इंडस्ट्री होगी और एक छोटा नगर होगा। यह संन्यासियों का नगर होगा। संन्यासियों के इस नगर को हम संन्यास और ध्यान की साधना के प्रचार का केंद्र बना देंगे। जो घरों में संन्यास लिए लोग हैं वे भी वर्ष में महीने, दो महीने के लिए इस सहजीवन में आकर रहेंगे। यहां से साधना की गहराई लेकर वापस लौट जाएंगे। यह दूसरे प्रकार का संन्यास होगा।

तीसरे प्रकार का संन्यास उनके लिए है जो लोग इतना साहस और समझ नहीं जुटा पाते कि घर में ही रह कर संन्यासी हो जाएं, तो मैंने उनके लिए सामयिक संन्यास की कल्पना की है। वे कम्यून, आश्रम में आ जाएं और महीने भर के लिए संन्यासी हो जाएं। जैसे जिंदगी चलती थी वैसी चलाएं। लेकिन इस महीने भर की साधना, और कम्यून, आश्रम में रहना, इन सब का अनुभव उसके भीतर प्रवेश कर जाएगा। अभी हिम्मत नहीं जुटाते हैं। साल भर बाद, दो बार कम्यून में आने के बाद महीने भर में वे हिम्मत जुटा लेंगे। तो उनके लिए सामयिक संन्यास की व्यवस्था करनी होगी कि वे कभी आश्रम में आकर संन्यास ले लें। पर जितने दिन के लिए वे संन्यास लेंगे इस बीच वे संन्यासी की तरह रहेंगे। फिर लौट कर अपने घर में चुपचाप सम्मिलित हो जाएंगे।
ऐसी कुछ व्यवस्था बर्मा में है जहां कोई भी आदमी संन्यास ले सकता है कुछ महीने के लिए। बर्मा में ऐसा आदमी मुश्किल से मिलेगा जिसने जिंदगी में एक-दो बार संन्यास न लिया हो। बर्मा के अनुभव की गहराई बढ़ी है। हर आदमी को संन्यास का रस प्राप्त है।
इन तीनों तरह के संन्यास को मैं आजीवन संन्यास नहीं कहता। मैं कहता हूं कि यह अपने निर्णय की बात है। कल किसी को लगता है कि नहीं, हमें वापस लौट आना है अपनी पुरानी व्यवस्था में, तो हम उसे मना नहीं करेंगे, न उसकी निंदा करेंगे। अपनी मौज से आया था, अपनी मौज से लौट जाएगा। नहीं तो संन्यास पाखंड हो जाता है। संन्यास में अभी हमारे प्रवेश द्वार है, लेकिन निकलने का द्वार नहीं है। एक बार आदमी संन्यासी हो तो हम उसे निकलने नहीं देते। हम इतना अपमान, इतनी निंदा करते हैं भागे हुए संन्यासी की, निकले हुए की, कि उसकी जिंदगी हम मुश्किल में डाल देते हैं। उसको फिर दो ही रास्ते रह जाते हैं। कल उसे संन्यास आनंदपूर्ण न मालूम पड़े तो फिर वह पाखंडी हो जाता है। ऊपर से वह संन्यासी बना रहता है और पीछे से उसे जो करना है, शुरू कर देता है। इसलिए सारा संन्यास हिपोक्रेसी, पाखंड हो गया। उसमें सब पाखंड चले। वह धन की निंदा करता रहेगा, लेकिन धन इकट्ठा करता रहेगा। वही काम करेगा जिसकी वह निंदा करेगा।
तो मेरा मानना यह है कि जिस दिन किसी को लगे कि नहीं भाई, इसमें हमें कुछ रस नहीं आया, तो स्वतंत्रता है तुम्हारी, तुम वापस चले आओ। और हम निंदा नहीं करते; इसलिए पाखंडी होने की कोई जरूरत नहीं है। जितने स्वागत से संन्यास देंगे, उतने स्वागत से विदा कर देंगे। और तुम महीने बाद आओगे तो फिर वापस ले लेंगे। इसको हम व्यक्तिगत निर्णय बनाते हैं। हम सामूहिक प्रतिज्ञा नहीं बनाते। यह तुम्हारा संकल्प है। तुमने लिया, तुम छोड़ोगे, तुम फिर लेना चाहोगे, तो तुम जिम्मेवार हो। और किसी के प्रति कोई जिम्मेवारी नहीं।
इसमें दो-तीन बातें और नयी जोड़ी हैं। पहली बातः मेरी दृष्टि में सदा
से है कि संन्यासी किसी धर्म में बंधा हुआ नहीं होना चाहिए। नहीं तो वह संन्यासी ही क्या! तो चाहे वह हिंदू हो, चाहे मुसलमान हो, या जैन, या बौद्ध हो, जैसे ही वह संन्यासी होता है, वह सारी मनुष्यता का हो जाता है। और सब धर्म उसके अपने होते हैं और वह किसी विशेष धर्म का नहीं रह जाता है। फिर भी उसे मौज है कि उसे कुरान पढ़ना पसंद है, उसे मस्जिद में जाकर नमाज पढ़नी है तो पढ़ता रहे। उसे बुद्ध से प्रेम है तो वह जारी रखे। किंतु किसी समुदाय का सदस्य न रहे। यह उसकी व्यक्तिगत आनंद की बात है। स्वाभाविक है कि किसी को कुरान पसंद पड़ती है और किसी को गीता। किंतु गीता पढ़ने वाला संन्यासी अपने को हिंदू नहीं कहेगा। उसे गीता से प्रेम है। कुरान पढ़ने वाला संन्यासी अपने को मुसलमान नहीं कहेगा। तो दुनिया में एक ऐसा संन्यासी चाहिए जो किसी समुदाय का न हो, तब हम दुनिया को ऐसी धार्मिकता दे सकेंगे जो गैर-सांप्रदायिक हो, नहीं तो नहीं दे सकेंगे, यह असंभव होगा देना।
दूसरी बातः यह जो संन्यासी इन तीन हिस्सों में बंटे हुए होंगे, ये तीनों हिस्से भी कोई एयर टाइट कंपार्टमेंट नहीं हैं। इसमें से एक-दूसरे में यात्रा हो सकती है। जिस आदमी ने पीरियाडिकल संन्यास लिया है, हो सकता है कल वह कहे कि इसको मैं लंबाना चाहता हूं, तो लंबा कर सकता है। जो आदमी हाल में संन्यासी हुआ, कल स्थितियां बदल जाएं और वह कहे कि अब मेरा घर में रहना बिल्कुल अनावश्यक है, कहीं कोई तकलीफ होती नहीं उसमें, तो वह आश्रम

में जा सकता है। एक संन्यासी आश्रम में रह रहा है, युवक ही है, कल उस पर कोई जिम्मेवारी नहीं थी, आज उसका किसी से प्रेम हो जाए और विवाह करना चाहे, तो वह गृहस्थ हो सकता है। इनको हम कहीं भी टाइट बंद नहीं करते हैं, इनके बीच एक प्रवाह होगा। चूंकि हम इसको व्यक्तिगत निर्णय मानते हैं इसलिए समूह को इस संबंध में चिंता की कोई जरूरत नहीं है।
तीसरी बातः ये जो सारे संन्यासी हैं, इनके पास इनके विवेक के अतिरिक्त कोई नियम मैं नहीं दूंगा। इनका विवेक जगे इसके लिए ध्यान की प्रक्रिया करें और अपने विवेक से जीएं। ऊपर से थोपे हुए नियम उन पर नहीं होंगे। क्योंकि जब भी हम ऊपर से नियम थोपते हैं व्यक्ति पर तब विवेक जगने में भी बाधा पड़ती है और व्यक्ति को धोखा देने के कारण बनते हैं। तो हम नहीं कहेंगे कि पांच बजे सुबह उठना अनिवार्य है। हां, हम इतना जरूर कहेंगे कि यदि ध्यान गहरा होता चला जाता है तो नींद का समय कम होता चला जाएगा, क्योंकि नींद गहरी हो जाएगी। पर फिर भी हम नहीं कहेंगे कि सब पांच बजे ही उठें, कि सब तीन बजे ही उठें। इस तरह की जोर-जबरदस्ती हम नहीं थोपेंगे। वरना नियम जो है वह कारागृह बन जाएगा। यह प्रत्येक की मौज एवं विवेक पर निर्भर होना चाहिए।
और सच बात भी यह है कि हर आदमी के उठने का वक्त अलग-अलग ही होगा, क्योंकि सब आदमियों की नींद की गहराई का वक्त अलग-अलग है। कोई आदमी दो और चार और छह बजे के बीच गहरी नींद लेता है। जिस आदमी ने दो और चार के बीच में गहरी नींद ली तो चार बजे वह उठ जाए तो उसको दिन में तकलीफ नहीं होगी। और उसको जिसकी नींद चार और छह बजे के बीच में गहरी होती है, वह दिन में परेशान रहेगा।
इसलिए प्रत्येक को तय करने की बात है कि विवेक कैसे जगे, यह चिंता की बात होगी। ध्यान कैसे गहरा हो, यह चिंता की बात है। बाकी छोटी-छोटी जिंदगी की मर्यादाएं प्रत्येक अपनी सोचेगा।
चौथी बातः इसमें कोई गुरु नहीं होगा, क्योंकि जहां गुरु होगा वहां अनिवार्य रूप से संप्रदाय खड़े हो जाते हैं। सब संप्रदाय गुरुओं के आस-पास खड़े होते जाते हैं। बिना गुरु के संप्रदाय खड़ा नहीं हो सकता है। चाहे वह मोहम्मद के पास खड़ा हो, महावीर के पास खड़ा हो, और चाहे राम के पास खड़ा हो, जहां भी संप्रदाय खड़ा होगा, वहां एक गुरु होगा।
स्वभावतः पूछा जा सकता है कि मैंने दिया है संन्यास तो मैं गुरु नहीं
हो जाता?
मैंने एक और नयी बात जोड़ी है इसमें, वह यह है कि मैं सिर्फ एक साक्षी हूं, तुम्हारे संन्यास का गवाही हूं, पर मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। इसलिए तुम भी किसी के संन्यास के साक्षी हो, लेकिन गुरु नहीं। कम्यून, आश्रम में अगर सौ संन्यासी रहते हैं और एक नया संन्यासी आता है तो वे सब साक्षी बनेंगे उसके। वह संन्यास लेगा, सौ संन्यासी उसके गवाह होंगे। गवाह से ज्यादा कोई आदमी नहीं होगा, कोई गुरु नहीं होगा। इसलिए मैं संन्यास देने वाला नहीं हूं, तुमने संन्यास लिया इसका गवाह हूं। और किसी व्यक्ति- विशेष पर इसे केंद्रित नहीं करना है।
इन तीन वर्गों में बड़े लोग उत्सुक हैं और बड़े पैमाने पर यह संन्यास फैल सकता है। क्योंकि इसमें सबकी सुविधा है और सब तरह के लोगों के लिए व्यवस्था है। मैं तो आशा करता हूं कि दो साल में पूरे देश में हर गांव में संन्यासी को खड़ा कर सकेंगे और यह संन्यासी वहां धर्म के लिए एक केंद्र बन जाएगा और वहां काम करेगा। वह न हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई। वह मस्जिद में भी जाएगा, मंदिर में भी जाएगा, मुसलमानों को ध्यान सिखाएगा, हिंदू को भी सिखाएगा। उससे जिसके लिए बन पड़ेगा करेगा। और इसी तरह के छोटे-छोटे आश्रम भी जगह-जगह खड़े करने हैं, जहां ये कम्यून बन जाएं।
मेरी दृष्टि से भौतिकवाद से अगर कोई भी लड़ाई लेनी हो तो भौतिकवाद से ज्यादा श्रेष्ठ विकल्प देना होगा, तब लड़ाई होगी। नहीं तो, तो मजा यह है कि लड़ाई तो हम लेना चाहते हैं, लेकिन हमारे पास श्रेष्ठ विकल्प नहीं होता है इसलिए सारी दुनिया को कम्युनिज्म हड़प ही जाएगा। उससे बचना मुश्किल है। क्योंकि वह गरीब को रोटी देता है, नंगे को कपड़ा देता है, अशिक्षित को शिक्षा देता है। जिसके पास मकान नहीं है, उसको मकान देगा। अध्यात्म के पास

देने को कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ ईश्वर की बातचीत दे सकता है। उससे लोग ऊब गए हैं।
हमें ऐसे कम्यून चाहिए जो आदर्श बन जाएंगे। क्योंकि उस तरह की व्यवस्थाएं और भी फैल जाएंगी। और धीरे-धीरे कोई वजह नहीं कि पूरा गांव कम्यून क्यों न हो जाए, लेकिन उसके आधार आध्यात्मिक होंगे। इससे संन्यास की पूरी धारणा में आमूल फर्क हो जाएगा और क्रांति हो जाएगी।

उस आश्रम में क्या विवाहित पुरुष भी रह सकेगा?
क्या वहां आचरण के नियम नहीं होंगे?

हां, उस आश्रम में विवाहित व्यक्ति भी रह सकेगा। क्योंकि मैंने कहा न
कि मैं कोई नियम थोपता नहीं हूं, यह सब व्यक्ति के ऊपर निर्भर है। हम उससे कहने वाले भी नहीं कि तुम यह क्या कर रहे हो? यह सब उसकी चेतना पर ही निर्भर है, बस। यह सब उसी का निर्णय है। क्योंकि मैं यह मानता हूं कि अगर तुम डगमगाते हो तो तुम गिरोगे। इससे दूसरे को चिंता क्यों? तुम गलती करते हो तो तुम दुख भोगोगे। इसके लिए मैं और दूसरे क्यों चिंतित हों?
हम कितनी मुसीबत उठा रहे हैं इन सबके पीछे कि कोई डगमगा न जाए। इसके लिए दूसरे परेशान हैं। वह डगमगाएगा तो अपने डगमगाने का जो दुख है वह झेलेगा, इसमें किसी को परेशान होने की आवश्यकता नहीं। वह नहीं डगमगाता तो हम उसको आदर देने वाले नहीं।
मेरी दृष्टि में यह है कि व्यक्ति के ऊपर जो समाज की बहुत ज्यादा आंख रहती है उसको हटाना है। यह एकदम गलत है, किसी को हक नहीं है कि किसी पर इतने जोर से आंख गड़ाए। नहीं तो व्यक्ति की हत्या होगी। तुम्हारे पान और सिगरेट से भी सारा समाज चिंतित है। इससे कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए किसी का। यदि तुम सिगरेट पीते हो तो इससे उम्र कम होगी तो तुम्हारी होगी। इसमें दूसरों को क्यों चिंता है! मैं मानता हूं कि समाज को उस समय तक बीच में नहीं आना चाहिए जब तक कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को नुकसान न पहुंचाने लगा हो।
हमारे आश्रम में सिर्फ इतनी फिक्र होगी कि तुम अपने को अगर नुकसान पहुंचाते हो तो पहुंचा सकते हो, लेकिन दूसरे को तुम्हें नुकसान पहुंचाने का कोई हक नहीं। यानी तुम सिगरेट पीते हो तो हमें कोई फिक्र नहीं, उसका तुम्हें दुख मिलने वाला है, तुम फ्रस्ट्रेट, पीड़ित होने वाले हो। लेकिन तुम दूसरे के मुंह में सिगरेट लगाने जाओ तो गलती शुरू होती है, उसके पहले कोई गलती नहीं है। और मेरा मानना यह है कि जैसे ध्यान गहरा होता है तो जो हमारी नासमझियां हैं वे अपने से गिरनी चाहिए। अगर उसको गिराना पड़े तो इसका मतलब यह है कि ध्यान में गहराई नहीं बढ़ रही है।
अब एक आदमी ध्यान करते हुए सिगरेट नहीं पी सकता, क्योंकि सिगरेट पीने
के लिए चित्त की बेचैनी जरूरी है। असल में बेचैन चित्त ही पीता है और बेचैन चित्त धुएं को बाहर-भीतर कर अपनी बेचैनी को निकालने का उपाय खोज लेता है। इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि शांत आदमी सिगरेट नहीं पीएगा। मैं कहता हूं कि वह पी नहीं सकता, उसके पीने की बात ही असंभव है। और अगर पी रहा है तो हमें मानना चाहिए कि वह शांत नहीं है। उसको शांत होने की दिशा देनी चाहिए बजाय इसके कि हम उसकी सिगरेट छीनें। एक विधायक दृष्टि वहां होगी कि अगर एक आदमी सिगरेट पीता है तो हम समझेंगे कि वह आदमी ध्यान में गहरा नहीं जा रहा है। नहीं तो यह बेचैनी खत्म हो जाती थी। अगर एक संन्यासी सिनेमा देखने जाता है तो मतलब यह है कि चित्त अपने को भुलाने में लगा है, उसके ध्यान की गहराई नहीं बढ़ रही है।
हमें ध्यान की फिक्र जरूर करनी है। उसके लिए ध्यान को बढ़ाने की कम्यून, आश्रम फिक्र करे। लेकिन हम उसके आचरण की फिक्र नहीं करेंगे, पर हां इसको हम लक्षण मानेंगे। जब ध्यान की गहराई बढ़ जाएगी तो ये लक्षण गिर जाएंगे। अगर एक आदमी मांस खा रहा है और मांसाहारी है तो उसका कुल मतलब इतना है कि अभी उसके ध्यान में वैसी निर्मलता नहीं आई है कि इतनी भी पीड़ा देना किसी को कष्टपूर्ण हो जाए। इसलिए हम न कहेंगे कि तुम मांस मत खाओ, क्योंकि यह हो सकता है कि वह मांस खाना बंद कर दे लेकिन उसका चित्त न बदले।

क्योंकि जो नहीं खा रहे हैं वे कोमल व निर्मल हो गए हैं, ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। किंतु कई बार ऐसा दिखाई पड़ता है कि मांसाहारी से गैर-मांसाहारी अधिक कठोर है, क्योंकि मांसाहारी का मांस वगैरह खाने में बहुत सा क्रोध और बहुत सा दुख देने का भाव निकल जाता है और उनका नहीं निकल पाता।
अक्सर ऐसा होता है कि शिकारी अच्छे आदमी होते हैं। अगर शिकारी के साथ रहने का मौका मिले तो आपको पता चले कि इतना बढ़िया आदमी, इतना मिलनसार आदमी मिलना मुश्किल है। और इसका कुल इतना कारण होता है कि उसकी हिंसा तो जंगल में निकल गई होती है, चित्त वहां खाली हो गया होता है। इसलिए जिनको हम आमतौर पर साधु कहते हैं वे बढ़िया आदमी नहीं होते। उनका कुछ भी नहीं निकल पाता, सब भरा रहता है। वे तरकीब से निकालते रहते हैं।
इसलिए मेरा किसी बाहरी परिवर्तन पर जोर नहीं है, जोर भीतरी परिवर्तन
पर है। बहुत साधारण और ऊपरी जोर है कि नाम बदल डालो तो तुम्हारा पुराना व्यक्तित्व बदल जाएगा, तुम्हें खुद ही रोज-रोज यह ख्याल रहने लगेगा कि तुम अब वह नहीं हो जो कल तक थे। और कपड़े बदल डालो ताकि तुम्हें स्मरण रहे पूरे समय। यह प्राथमिक रूप से सही होगा, बाद में कोई मूल्य नहीं। तुम्हें स्मरण रहने लगे कि तुमने जिंदगी में एक क्रांति का निर्णय किया है और वह क्रांति तुम्हें पूरी करनी है। बाकी ऊपर से कुछ और नहीं थोपना है। अभी बीस लोगों ने संन्यास का निर्णय किया है मनाली में, उनके लिए कम्यून, आश्रम बनाना है। एक आश्रम बनाया है आजोल में।

ओशो, व्यक्तिगत या सामाजिक स्तर पर इसके क्या परिणाम होंगे?

बहुत परिणाम होंगे। व्यक्तिगत स्तर पर परिणाम शुरू होंगे ही और धीरे- धीरे सामाजिक स्तर पर भी अशांति विदा होगी, चिंता विदा होगी, वह जो चित्त का पागलपन है वह विदा होगा। तुम हलके हो जाओगे और जीवन में परमात्मा का प्रवेश होना शुरू हो जाएगा। और तुम इस जगत में सिर्फ खाने-पीने, कपड़े पहनने, मकान बनाने को ही बड़ा काम नहीं समझोगे, बल्कि आत्मा के विकास की भी संभावना बना पाओगे। और जो चीजें तुम्हें कल तक बहुत महत्वपूर्ण थीं वे एकदम गैर-महत्वपूर्ण हो जाएंगी और जो कल तक तुमने सोचा ही नहीं था वह बहुत महत्वपूर्ण हो जाएगा। व्यक्तिगत जीवन में तो आमूल क्रांति हो जाएगी। वह हलका-फुलका हो जाएगा कि वह उड़ सके। उसका भारीपन विदा हो जाएगा, उसकी गंभीरता और उदासी चली जाएगी। उसका मानसिक रोग असंभव हो जाएगा। और ध्यान में जैसे-जैसे गहराई बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे वह आनंद से भरता जाएगा। जितनी गहराई बढ़ेगी उतना सत्य का अनुभव होने लगेगा।
समाज पर भी व्यापक परिणाम होंगे। लेकिन वे बाद में होंगे, क्योंकि समाज व्यक्तियों के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो भी आज हमें समाज दिखाई पड़ रहा है, वह हमारा ही योगदान, कंट्रीब्यूशन है। हम जैसे हैं, वैसा हमारा समाज है। अगर इसमें एक भी व्यक्ति बदल जाए तो उसके आस-पास बदलाहट का क्रम शुरू हो जाएगा। यदि पति बदलेगा तो उसकी पत्नी वही नहीं रह सकती जो थी, उसको भी बदलना ही पड़ेगा। बच्चे वही नहीं रह सकते जो कल तक थे, अगर बाप बदलेगा तो। अगर शिक्षक बदलेगा तो विद्यार्थी वही नहीं रह सकते जो उसके पास पहले थे। उनमें बदलाहट अनिवार्य हो जाएगी। एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति नहीं, क्योंकि उसके अनेक संबंध हैं। वह अनेक जगह जुड़ा है। उसकी जहां बदलाहट हुई, वह सब जगह जहां-जहां जुड़ा है, वहां-वहां बदलाहट होगी। अगर हम थोड़े से व्यक्तियों को एक गांव में बदलने को तैयार हो जाएं तो पूरे गांव को प्रभावित करेंगे। वह बदलाहट होने ही वाली है। अभी जिन लोगों ने संन्यास लिया उनमें एक लड़की भी है और एक दफ्तर में क्लर्क है। और उस दफ्तर में भारी हंगामा मच गया, संन्यासी होकर वह पहुंच गई आफिस। वह लड़की टाइपिस्ट है। किसी ने अच्छा कहा, और किसी ने बुरा कहा, किसी ने मजाक उड़ाई, और वह चर्चा का केंद्र हो गई।
उसको मैंने कहा था कि यह सब होगा और उसे देखना है कि यह सब हो रहा है,
एक नाटक हो रहा है। वह देखती रही एक दिन, दो दिन... तीसरे दिन फिर लोगों ने उससे पूछना शुरू किया कि तुम बदल गई हो, बिल्कुल बदल गई हो! तुम पर हमारी बात का कोई असर नहीं है। उसके मैनेजर ने उसे बुलाया और कहा कि इतनी

शीघ्रता से इतनी बदलाहट कैसे हुई? क्योंकि उसे सदा ही गंभीर और परेशान देखा था। और इतने उपद्रव में भी तुम प्रसन्न हो और हंस रही हो!
उसने मुझसे कहा था कि कपड़े बदलने से क्या होगा? बिना कपड़े के मैं मन से
ही बदलने की कोशिश करूं!
तीन दिन बाद उसने आकर मुझसे कहा कि बिना कपड़े बदले घटना नहीं घटती। संन्यासी सड़क पर निकले तो, घर में जाए तो, दफ्तर में जाए तो चौबीस घंटे उसको शांत रहना ही पड़ता। कोई न कोई सड़क पर हंसेगा, कोई इशारा करेगा कि क्या मामला है! दफ्तर में तो और भी दिक्कत होगी, दफ्तर में लोग भी आएंगे, काम भी करना पड़ेगा, मैनेजर आज्ञा भी देगा। उन सब चुनौतियों से कोई फर्क नहीं पड़ा उसके संन्यास के निश्चय में। उसके दफ्तर से दो लोग और आए, अभी कोई पंद्रह दिन बाद ही! उन्होंने कहा कि हम भी उसमें शामिल होने की हिम्मत कर रहे हैं। समाज में धीरे-धीरे अंतर आते हैं। व्यक्ति हम बदलें तो उसके आस-पास फर्क पड़ना शुरू होगा। एक बार तुम्हें ख्याल भी आ जाए तो वह तुम्हारे विचार की बात है। हमारी पूरी जिंदगी हमारा ख्याल है। एक आदमी है, उसे तुम कह दो कि लाख रुपये की लाटरी मिल गई है। फिर देखो उस आदमी की चाल बदल जाएगी, कुछ मिल नहीं गया उसको लाख रुपया, फिर भी इसकी चाल बदल गई, इसका ढंग बदल गया। उसके आंख की रौनक बदल गई, उसका सब बदल गया, क्योंकि उसके दिल में लाख रुपये की लाटरी का ख्याल आ गया।
यह जो तुम्हें ख्याल आ गया कि तुम संन्यासी हो गए, इससे तुम्हारा सब बदल जाएगा। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि क्या-क्या बदल जाएगा। वह ख्याल इतना अदभुत है कि एक बार तुम्हें ख्याल में आ गया कि तुम संन्यासी हो गए हो, तो तुम्हारा बोलना बदल जाएगा, तुम्हारा देखना बदल जाएगा। तुम कल जैसे देखते थे वैसे नहीं देख सकोगे; क्योंकि तुम संन्यासी हो। हमें दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से। वह घटना जब घटती है तभी ख्याल में आएगा। कल तुम जिस आदमी पर नाराज होते थे, आज नहीं हो सकोगे।
एक आदमी जब मंत्री होता है तब देखो! मंत्री होता है तो क्या है? और जब मंत्री नहीं रहेगा तब तुम उसको देखो! आदमी वही है, लेकिन उसका सब चेहरा गया, वह रौनक गई जो उसके मंत्री होने में थी। वह सब उसके मन में थी। वह सब उसके मन में एक ख्याल से निर्मित होता है। न्यूक्लिअस, केंद्र जो है हमारे व्यक्तित्व का वह हमारा विचार है। जो विचार हमारे भीतर होता है, उसके आस-पास ही हमारा व्यक्तित्व निर्मित होता है। जब तुम्हें ख्याल होता है कि तुम सफल हो रहे हो तो बात और होती है, जब तुम्हें ख्याल होता है कि तुम असफल हो रहे हो तब तुम्हारी हालत और हो जाती है।
संन्यास तो एक बहुत अदभुत घटना है। वह ख्याल बैठ गया एक बार मन में गहरे--और बैठेगा तब ही तुम बदलोगे। नहीं तो तुम कपड़े भी बदलने को कैसे राजी हो सकते हो! उसकी तुम हिम्मत नहीं जुटा सकते। तुमने हिम्मत जुटाई इसका मतलब है कि तुम्हारे भीतर संन्यास का ख्याल गहराई में आ गया है। और जब ख्याल आया तो तुम्हें बदल डालेगा। और महीने भर में पाओगे कि तुम्हारे भीतर सारा व्यक्तित्व ही बदल गया। तुम दूसरे ही आदमी हो गए!

ओशो, कपड़े का रंग क्या चुना है?

भगवा रंग ही चुना, गैरिक रंग ही चुना है। और उसका नमूना एक सा ही रखा
है स्त्री-पुरुष का, ताकि स्त्री-पुरुष का फासला भी कम हो--एक कमीज लंबी और नीचे लुंगी। नमूना दोनों के लिए एक सा रखा है। गैरिक रंग को चुना है। ऊपर से यदि सर्दी है तो गरम कपड़ा डाल सकते हो। इससे कोई दिक्कत नहीं।

आश्रम में आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी?

सिर्फ तुम्हारे खाने का ही खर्च रहेगा, आश्रम में और कोई खर्च नहीं होगा। जो अभी सावधिक, पीरियाडिकल संन्यासी होगा उसे अपने लिए खर्च की व्यवस्था करनी पड़ेगी। जो वहां स्थायी रूप से रहेगा उसकी तो व्यवस्था आश्रम में ही होगी। सारे लोग मिल कर उसकी व्यवस्था करेंगे। जो माह भर के लिए जाएगा उसको अपनी व्यवस्था करनी होगी, क्योंकि माह भर तो वह साधना ही

करेगा। उसे किसी उत्पादक काम में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। एक माह में कुछ भी नहीं हो सकता उससे। तो वह अपनी व्यवस्था करेगा। हमारे पास बगीचे, खेत इत्यादि हो जाएंगे, तो यह भी माह भर काम कर सकेगा।

मैं यदि अपने कपड़े न बदलूं तो संन्यास का भाव मात्र क्या काफी न होगा?

तो मैं मना नहीं करता। तुम अभी भी कपड़े पहने हो तो मैं क्या कह सकता हूं! तुम कुछ भी पहन सकते हो। लेकिन उससे कुछ भी लाभ न होगा। यह तुम्हें ख्याल नहीं है। जैसे स्त्रियों ने मुझसे कहा कि आप हमें भगवा रंग की साड़ी पहनने को कह दें। लेकिन साड़ी पहनने में कोई दिक्कत नहीं है क्योंकि साड़ी पहनी जाती है, इसमें कोई याद दिलाने वाला नहीं है। जैसे अभी पैंट पहन रहे हैं, पैंट के बदले भले ही लुंगी पहन लें। लेकिन लुंगी कोई कठिन मामला नहीं है। सारा दक्षिण लुंगी पहन रहा है। तुम्हारे संन्यासी होने का ख्याल यदि तुम्हें न आए, तुम्हें दूसरे याद न दिलाएं, तब तक उसका कोई मूल्य नहीं। तो फिर तुम यही पहने रहो, कोई फर्क नहीं। जोर के कारण और हैं। मैं कह रहा हूं कि कपड़े पहनने से जब तुम्हारे चारों तरफ का वातावरण मोल्ड हो जाएगा तो तुम फर्क देख सकोगे। तुम साधारणतः सफेद लुंगी लगा लो, ठीक। लेकिन गेरुआ कपड़ा पहन कर तुम निकल न सकोगे एक जगह से जहां तुम बिना पूछे रह जाओ। उससे संन्यासी की धारणा पैदा होती है।
और युनिफार्मिटी, एक सा रंग चाहता हूं इसलिए कि तुम्हारा कम्यून बनाना है। अब समझें आजोल में आश्रम बनाया गया। दो सौ लोग एक ढंग के कपड़े पहनेंगे, उससे एक तरह का वातावरण निर्मित होगा। यदि दो सौ लोग एक से दिखें तो एक तरह का वातावरण होगा। और जब नया आदमी आएगा तथा इन दो सौ आदमियों को एक कपड़े में पाएगा तो उसे एक हवा का रुख उसमें दिखाई देगा।
यह प्रश्न कि क्या दूसरे ढंग के कपड़े हो सकते हैं, इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। जो सवाल उठता है न कि ऐसा भी कर लें, वह डर के कारण है, वह भी डर की वजह से ही है!
"नव-संन्यास क्या?" : चर्चा व प्रश्नोत्तर

मैं कहता आंखन देखी
छत्तीसवां प्रवचन

संन्यास के फूलः संसार की भूमि में

ओशो, आपने कहा है कि बाहर से व्यक्तित्व व चेहरे आरोपित कर लेने में सूक्ष्म चोरी है तथा इससे पाखंड और अधर्म का जन्म होता है। लेकिन देखा जा रहा है कि आजकल आपके आस-पास अनेक नये-नये संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं और बिना किसी विशेष तैयारी और परिपक्वता के आप उनके संन्यास को मान्यता दे रहे हैं। क्या इससे आप धर्म को भारी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं? कृपया इसे समझाएं।

पहली बात, अगर कोई व्यक्ति मेरे जैसा होने की कोशिश करे तो मैं उसे रोकूंगा। उसे मैं कहूंगा कि मेरे जैसा होने की कोशिश आत्मघात है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति स्वयं जैसे होने की कोशिश की यात्रा पर निकले तो मेरी शुभकामनाएं उसे देने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। जो संन्यासी चाहते हैं कि मैं परमात्मा के मार्ग पर उनकी यात्रा का गवाह बन जाऊं, विटनेस बन जाऊं, तो उनका गवाह बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं गुरु किसी का भी नहीं हूं, मेरा कोई शिष्य नहीं है, मैं सिर्फ गवाह हूं। अगर कोई मेरे सामने संकल्प लेना चाहता है कि मैं संन्यास की यात्रा पर जा रहा हूं तो मुझे गवाह बन जाने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन अगर कोई मेरा शिष्य बनने आए तो मुझे भारी एतराज है। मैं किसी को शिष्य नहीं बना सकता हूं, क्योंकि मैं कोई गुरु नहीं हूं। अगर कोई मेरे पीछे चलने आए तो मैं उसे इनकार करूंगा। लेकिन कोई अगर अपनी यात्रा पर जाता हो और मुझसे शुभकामनाएं लेने आए तो शुभकामनाएं देने की भी कंजूसी करूं, ऐसा संभव नहीं है।
फिर भी--यह आपको दिखाई पड़ गया है--मैं गैरिक वस्त्र नहीं पहनता हूं, मैंने कोई गले में माला नहीं डाली हुई है। फिर उनके द्वारा मेरी नकल का कोई कारण नहीं है! फिर भी पूछते हैं आप कि किसी को भी बिना उसकी पात्रता का खयाल किए मैं उसके संन्यास को स्वीकार कर लेता हूं!
जब परमात्मा ही हम सबको हमारी बिना किसी पात्रता के स्वीकार किए है
तो मैं अस्वीकार करने वाला कौन हो सकता हूं? हम सबकी पात्रता क्या है जीवन में? और संन्यास के लिए एक ही पात्रता है कि आदमी अपनी अपात्रता को पूरी विनम्रता से स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त कोई पात्रता नहीं है।
अगर कोई आदमी कहता है कि मैं पात्र हूं, मुझे संन्यास दें! तो मैं हाथ जोड़ लूंगा, क्योंकि जो पात्र है उसको संन्यास की जरूरत ही नहीं। और जिसे यह खयाल है कि मैं पात्र हूं वह संन्यासी नहीं हो पाएगा, क्योंकि संन्यास विनम्रता, ह्युमिलिटी का फूल है। वह विनम्रता में ही खिलता है। जो आदमी पात्रता के सर्टिफिकेट लेकर परमात्मा के पास जाएगा, शायद उसके लिए दरवाजे नहीं खुलेंगे। लेकिन जो दरवाजे पर अपने आंसू लेकर खड़ा हो जाएगा और कहेगा, मैं अपात्र हूं, मेरी कोई भी पात्रता नहीं है कि मैं द्वार खुलवाने के लिए कहूं; लेकिन फिर भी प्रयास है, आकांक्षा है; फिर भी लगन है, भूख है; फिर भी दर्शन की अभीप्सा है--दरवाजे उसके लिए खुलते हैं।
तो मेरे पास कोई आकर अगर संन्यास के लिए कहता है तो मैं कभी पात्रता नहीं पूछता। क्योंकि कोई संन्यासी होना ही चाहता है, इतनी इच्छा क्या काफी नहीं है? जो संन्यासी होना चाहता है, क्या उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना, इतना ही काफी नहीं है? क्या इतनी लगन, अपने को दांव पर लगाने की इतनी हिएमत काफी नहीं है? और पात्रता क्या होगी? प्यास के अतिरिक्त और प्रार्थना के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? अपने को छोड़ने के अतिरिक्त, समर्पण, सरेंडर के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? लेकिन, समर्पण के लिए भी कोई पात्रता चाहिए होती है? पात्र समर्पण नहीं कर पाएंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि वे अधिकारी हैं। लेकिन जिसे अपनी अपात्रता का पूरा बोध है, वह समर्पण कर पाता है।
परमात्मा के द्वार पर जो असहाय है, अपात्र है, दीन है, अयोग्य है, लेकिन फिर भी उसकी प्रार्थना से भरा है, उसके लिए द्वार सदा ही खुला है।

लेकिन जो पात्र हैं, सर्टिफाइड हैं, योग्य हैं, काशी से उपाधि ले आए हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तपश्चर्या के धनी हैं, उपवासों की फेहरिस्त जिनके पास है कि उन्होंने इतने उपवास किए हैं, ऐसे व्यक्ति अपने अहंकार को ही भर लेते हैं। और अहंकार से बड़ी अपात्रता कुछ भी नहीं है। अपने को पात्र समझने वाले सभी लोग अहंकार से भर जाते हैं। सिर्फ अपने को अपात्र समझने वाले लोग ही निरहंकार की यात्रा पर निकल पाते हैं।
इसलिए मैं उनसे उनकी पात्रता नहीं पूछ सकता हूं। फिर मैं उनका गुरु नहीं हूं जो मैं उनसे उनकी पात्रता पूछूं। वे मेरे पास सिर्फ इसलिए आए हैं कि मैं उनका गवाह बन जाऊं। इस संबंध में दो-तीन बातें और कहूं तो कल इस बाबत और भी आपसे बात करूंगा तो साफ हो सकेगी बात!
संन्यास मेरे लिए व्यक्ति और परमात्मा के बीच सीधे संबंध का नाम है। उसमें कोई बीच में गुरु नहीं हो सकता। संन्यास व्यक्ति का सीधा समर्पण है। उसमें बीच में किसी के मध्यस्थ होने की कोई भी जरूरत नहीं है। और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और एक आदमी उसके लिए समर्पित होना चाहे तो समर्पित हो सकता है। और फिर अपात्र समर्पण से पात्र बनना शुरू हो जाता है। और फिर अपात्र संकल्प, समर्पण, प्रार्थना से पात्र बनना शुरू हो जाता है। संन्यासी सिद्ध नहीं है, संन्यासी तो सिर्फ संकल्प का नाम है कि वह सिद्ध होने की यात्रा पर निकला है। संन्यासी तो सिर्फ यात्रा का प्रारंभ बिंदु है, अंत नहीं है। वह तो सिर्फ शुभारंभ है, वह मील का पहला पत्थर है, मंजिल नहीं है। लेकिन मील के पहले पत्थर पर खड़े आदमी से पूछें जिसने अभी पहला कदम भी नहीं उठाया है, उससे पूछें कि मंजिल पर पहुंच गए हो तो ही चल सकते हो! तो जो मंजिल पर पहुंच गया है वह चलेगा क्यों? और जो नहीं पहुंचा है वह कहां से दिखाए कि मैं मंजिल पर पहुंच गया हूं?
पहला कदम तो अपात्रता में ही उठेगा। लेकिन पहला कदम भी कोई उठाता है,
यह भी बड़ी पात्रता है। और पहले कदम की ही कोई हिएमत जुटाता है तो यह भी बड़ा संकल्प है।
संन्यास मेरी दृष्टि में बहुत और तरह की बात है। संन्यास मेरी दृष्टि में सिर्फ इस बात का स्मरण है कि मैं अब स्वयं को परमात्मा के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं स्वयं को सत्य की खोज के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं साहस करता हूं कि धार्मिक चित्त की तरह जीने की चेष्टा करूंगा।
ये संन्यासी गैरिक वस्त्रों में आपको दिखाई पड़ रहे हैं। वह उनके स्मरण के लिए है, रिमेंबरिंग के लिए है कि उनको स्मरण बना रहे कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। दूसरे भी उन्हें स्मरण दिलाते रहें कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। वस्त्रों की बदलाहट से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी अपने वस्त्र बदल सकता है। गले में माला डाल लेने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी गले में माला डाल सकता है और माला का उपयोग कर सकता है। गले में डली माला उसके जीवन में आए रूपांतरण की निरंतर सूचना है।
आप बाजार जाते हैं, कोई चीज लानी होती है तो कपड़े में गांठ बांध लेते हैं। जब भी गांठ याद पड़ती है, खयाल आ जाता है कि कोई चीज लाने को आया था। गांठ चीज नहीं है; और जिसने गांठ बांध ली वह चीज ले ही आएगा यह भी पक्का नहीं है। क्योंकि जो चीज भूल सकता है वह गांठ भी भूल सकता है। लेकिन फिर भी, जो चीज भूल सकता है वह गांठ बांध लेता है, और सौ में नब्बे मौकों पर गांठ की वजह से चीज ले आता है।
यह कपड़ा, माला, यह सारा बाहरी परिवर्तन संन्यास नहीं है। यह सिर्फ गांठ बांधना है कि मैं एक संन्यास की यात्रा पर निकला हूं। उसका स्मरण, उसका सतत स्मरण मेरी चेतना में बना रहे। वह स्मरण सहयोगी है।

ओशो, पंच महाव्रतः अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद की साधना फलीभूत हो सके
तथा व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास हो सके,
इसमें आपके द्वारा प्रस्तावित नयी संन्यास-दृष्टि का क्या अनुदान हो सकता है, कृपया इसे सविस्तार स्पष्ट करें।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद संन्यास की कला के आधारभूत सूत्र हैं। और संन्यास एक कला है। समस्त जीवन की एक कला है। और केवल वे ही लोग संन्यास को उपलब्ध हो पाते हैं जो जीवन की कला में पारंगत हैं। संन्यास जीवन के पार जाने वाली कला है। जो जीवन को उसकी पूर्णता में अनुभव कर पाते हैं, वे अनायास ही संन्यास में प्रवेश कर जाते हैं। करना ही होगा। वह जीवन का ही अगला कदम है। परमात्मा संसार की सीढ़ी पर ही चढ़ कर पहुंचा गया मंदिर है।
तो पहली बात आपको यह स्पष्ट कर दूं कि संसार और संन्यास में कोई भी विरोध नहीं है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। संसार में ही संन्यास विकसित होता है और खिलता है। संन्यास संसार की शत्रुता नहीं है, बल्कि संन्यास संसार का प्रगाढ़ अनुभव है। जितना ही जो संसार का अनुभव कर पाएगा, वह पाएगा कि उसके पैर संन्यास की ओर बढ़ने शुरू हो गए हैं। जो जीवन को ही नहीं समझ पाते, जो संसार के अनुभव में ही गहरे नहीं उतर पाते, वे ही केवल संन्यास से दूर रह जाते हैं।
तो इसलिए पहली बात मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि मेरी दृष्टि में संन्यास का फूल संसार के बीच में ही खिलता है। उसकी संसार से शत्रुता नहीं। संसार का अतिक्रमण है संन्यास। उसके भी पार चले जाना संन्यास है। सुख को खोजते-खोजते जब व्यक्ति पाता है कि सुख मिलता नहीं, वरन जितना सुख को खोजता है उतने ही दुख में गिर जाता है; शांति को चाहते-चाहते जब व्यक्ति पाता है कि शांति मिलती नहीं, वरन शांति की चाह और भी गहरी अशांति को जन्म दे जाती है; धन को खोजते-खोजते जब पाता है कि निर्धनता भीतर और भी घनीभूत हो जाती है--तब जीवन में संसार के पार आंख उठनी शुरू होती है। वह जो संसार के पार आंखों का उठना है, उसका नाम ही संन्यास है।
इसलिए ये पांच सूत्र जिनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं, ठीक से समझें तो
ये संन्यास के ही सूत्र हैं। और जिसकी आंखें संसार के बाहर उठनी शुरू नहीं हुईं, उसके किसी भी काम के नहीं हैं।
मुझे बहुत से मित्रों ने आकर कहा है कि बात कुछ गहरी है और हमारे सिर
के ऊपर से निकल जाती है। तो मैंने उनसे कहा कि अपने सिर को थोड़ा ऊंचा करो ताकि सिर के ऊपर से न निकल जाए। जिनकी आंखें संसार के जरा भी ऊपर उठती हैं, उनके सिर भी ऊंचे हो जाते हैं। और तब ये बातें सिर के ऊपर से नहीं निकलेंगी, हृदय के गहरे में प्रवेश कर जाएंगी। ये बातें गहरी कम, ऊंची ज्यादा हैं। असल में ऊंचाई ही गहराई भी बन जाती है। और ऊंची कोई अपने आप में नहीं है। हम बहुत नीचे, संसार में गड़े हुए खड़े हैं, इसलिए ऊंची मालूम पड़ती है। ऊंचाई सापेक्ष है, रिलेटिव है।
और एक बात ध्यान रहे कि संसार से थोड़ा ऊपर न उठें, संसार से ऊपर थोड़ा देखें। रहें संसार में, कोई हर्ज नहीं। तो जमीन पर खड़े होकर भी आकाश के तारे देखे जा सकते हैं। खड़े रहें संसार में, लेकिन आंखें थोड़ी ऊपर उठ जाएं तो ये सारी बातें बड़ी सरल दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वर्ना संसार की बातें रोज कठिन होती चली जाती हैं। कठिन होंगी ही, क्योंकि जिनका अंतिम फल सिवाय दुख के, और जिनकी अंतिम परिणति सिवाय अज्ञान के, और जिनका अंतिम निष्कर्ष सिवाय गहन अंधकार के कुछ भी न होता हो, वे बातें सरल नहीं हो सकतीं, जटिल ही होंगी। चीजें दिखाई कुछ पड़ती हैं, हैं कुछ, और भ्रम कुछ पैदा होता है, सत्य कुछ और है। लेकिन हम संसार में इस भांति खोए होते हैं कि अन्य कोई सत्य भी हो सकता है, इसकी हमें कल्पना भी नहीं उठती।
मैंने सुना है, एक फ्रेंच उपन्यासकार बालजक के पास कोई व्यक्ति मिलने गया था। तो वह बालजक से उसके उपन्यास के पात्रों के संबंध में बात कर रहा था। फिर बात उपन्यास के पात्रों पर चलते-चलते धीरे-धीरे राजनीतिक नेताओं पर और देश की राजनीति पर चली गई। थोड़ी देर तक बालजक बात करता रहा और फिर उसने कहा, माफ कीजिए, लेट अस कम बैक टु दि रियलिटी अगेन, अब हमें असली बातों पर फिर वापस लौट आना चाहिए। और बालजक ने अपने उपन्यास के पात्रों की बात फिर से शुरू कर दी। बालजक के लिए उसके उपन्यास के पात्र रियलिटी हैं, यथार्थ हैं। और जिंदगी के मंच पर सच में जो पात्र खड़े हैं, वे अयथार्थ हैं। बालजक ने कहा, छोड़ें अयथार्थ बातों को, हमें अपनी यथार्थ बातों पर फिर से

वापस लौट आना चाहिए। बालजक उपन्यासकार है। उसके लिए उपन्यास के पात्र सत्य मालूम होते हैं, जीवंत व्यक्तियों से भी ज्यादा।
हम जिस संसार में इतने डूबे खड़े हैं, वहां हमें संसार के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य दिखाई नहीं पड़ता है। यद्यपि जिन्होंने भी आंखें ऊपर उठा कर देखा है, उन्हें आंखें ऊपर उठाते ही संसार एक अयथार्थ हो जाता है, एक अनरियलिटी हो जाता है। संन्यास का अर्थ है, संसार के ऊपर आंख उठाना। संसार सब कुछ नहीं है, उसके पार भी कुछ है। उसकी तरफ खोज में गई आंखों का नाम संन्यास है।
यह संन्यास... कुछ बातें आपसे कहूं तो स्पष्ट हो सके! ऐसे संन्यास करीब-करीब पृथ्वी से विदा होने के करीब है। क्योंकि अब तक संन्यासी संसार से टूट कर जीया है। और अब भविष्य में ऐसे संन्यास की कोई भी संभावना बाकी नहीं रह जाएगी जो संसार से टूट कर जी सके।
इसलिए रूस से संन्यासी विदा हो गया, चीन से संन्यासी विदा किया जा रहा है। आधी दुनिया संन्यासी से खाली हो गई है। शेष आधी दुनिया कितने दिन तक संन्यासी के साथ रहेगी, कहना मुश्किल है। इस पूरी पृथ्वी पर यह हमारी सदी शायद संन्यास की अंतिम सदी होगी--यदि संन्यास को नये अर्थ, नये डायमेंशन और नये आयाम न दिए जा सके।
यह संन्यास विदा क्यों हो रहा है? संसार से तोड़ कर जिस चीज को हमने अब
तक बचा रखा था, वह हॉट हाउस प्लांट था, वह संसार के धक्कों को अब नहीं सह पा रहा है। और जिस समाज ने संन्यासी को संसार से तोड़ कर जिंदा रखा था, वह समाज भी मिटने के करीब आ गया है। तो अब उस समाज के द्वारा निर्मित संन्यास की व्यवस्था और संस्था भी बच नहीं सकती। जब समाज ही पूरा रूपांतरित होता है, तो उसकी सारी विधाएं, उसके सारे आयाम टूट जाते हैं। जिस समाज में राजा थे, महाराजा थे, वह समाज मिट गया, राजे-महाराजे मिट गए। राजे-महाराजे के साथ उस समाज के दरबार में पाला हुआ कवि मिट गया। जो समाज कल तक था, जिसने संन्यासी को पाला था, वह समाज विदा हो रहा है। वह समाज बचने वाला नहीं है, संन्यासी भी बच नहीं सकेगा, यदि संन्यासी भी नये रूप को स्वीकार न कर सके।
तो एक बात जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है, वह यह
कि संन्यास को बचाना तो अत्यंत जरूरी है। वह जीवन की गहरी से गहरी सुगंध है। वह जीवन का बड़े से बड़ा सत्य है। तो उसे संसार से जोड़ना जरूरी है। अब संन्यासी संसार के बाहर नहीं जी सकेगा। अब उसे संसार के बीच, बाजार में, दूकान में, दफ्तर में जीना होगा, तो ही वह बच सकता है। अब संन्यासी अनप्रोडक्टिव होकर, अनुत्पादक होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे जीवन की उत्पादकता में भागीदार होना पड़ेगा। अब संन्यासी दूसरे पर निर्भर होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे स्वनिर्भर ही होना पड़ेगा।
फिर मुझे समझ में भी नहीं आता कि कोई जरूरत भी नहीं है कि आदमी संसार
को छोड़ कर भाग जाए, तभी संन्यास उसके जीवन में फल सके। अनिवार्य भी नहीं है। सच तो यह है कि जहां जीवन की सघनता है, वहीं संन्यास की कसौटी भी है। जहां जीवन का घना संघर्ष है, वहीं संन्यास के साक्षी-भाव का आनंद भी है। जहां जीवन अपनी सारी दुर्गंधों में है, वहीं संन्यास का जब फूल खिले, तभी उसकी सुगंध की परीक्षा भी है। और संसार में बड़ी ही आसानी से संन्यास का फूल खिल सकता है। एक बार हमें खयाल आ जाए कि संन्यास क्या है तो घर से, परिवार से, पत्नी से, बच्चे से, दूकान से, दफ्तर से भागने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। और जो संन्यास भाग कर ही बच सकता है, वह बहुत कमजोर संन्यास है। वैसा संन्यास अब आगे नहीं बच सकेगा। अब हिएमतवर, करेजियस, साहसी संन्यासी की जरूरत है। जो जिंदगी के बीच खड़ा होकर संन्यासी है।
जहां है व्यक्ति, वहीं रूपांतरित हो सकता है। रूपांतरण परिस्थिति का नहीं है, रूपांतरण मनःस्थिति का है। रूपांतरण बाहर का नहीं है, रूपांतरण भीतर का है। रूपांतरण संबंधों का नहीं है, रूपांतरण उस व्यक्तित्व का है जो संबंधित होता है।
आरतेगावायगासिट ने एक छोटी सी घटना लिखी है। लिखा है कि एक घर में एक व्यक्ति मरणासन्न पड़ा है, मर रहा है, उसकी पत्नी छाती पीट कर रो रही है। पास में डाक्टर खड़ा है। आदमी प्रतिष्ठित है, सएमानित है। अखबार का रिपोर्टर आकर खड़ा है--मरने की खबर अखबार में देने के लिए। रिपोर्टर के साथ

अखबार का एक चित्रकार भी आ गया है। वह आदमी को मरते हुए देखना चाहता है।
उसे मृत्यु की एक पेंटिंग बनानी है, चित्र बनाना है। पत्नी छाती पीट कर रो रही है। डाक्टर खड़ा हुआ उदास मालूम पड़ रहा है, हारा हुआ, पराजित।
प्रोफेसनल हार हो गई है उसकी। जिसे बचाना था उसे नहीं बचा पा रहा है।
पत्रकार अपनी डायरी पर कलम लिए खड़ा है कि जैसे ही वह मरे, टाइम लिख ले और दफ्तर भागे। चित्रकार खड़ा होकर गौर से देख रहा है।
एक ही घटना घट रही है उस कमरे में--एक आदमी का मरना हो रहा है। लेकिन पत्नी को, डाक्टर को, पत्रकार को, चित्रकार को एक घटना नहीं घट रही है, चार घटनाएं घट रही हैं। पत्नी के लिए सिर्फ कोई मर रहा है ऐसा नहीं है, पत्नी खुद भी मर रही है। यह पत्नी के लिए कोई दृश्य नहीं है जो बाहर घटित हो रहा है, वह उसके प्राणों के प्राणों में घटित हो रहा है। यह कोई और नहीं मर रहा है, वह स्वयं मर रही है। अब वह दोबारा वही नहीं हो सकेगी जो इस पति के साथ थी। उसका कुछ मर ही जाएगा सदा के लिए, जिसमें शायद फिर कभी अंकुर नहीं फूट सकेंगे। यह पति नहीं मर रहा है, उसके हृदय का एक कोना ही मर रहा है। पत्नी इनवाल्व है, वह पूरी की पूरी इस दृश्य के भीतर है। इस पति और इस पत्नी के बीच फासला बहुत ही कम है।
डाक्टर के लिए भीतर कोई भी नहीं मर रहा है, बाहर कोई मर रहा है। लेकिन डाक्टर भी उदास है, दुखी है। क्योंकि जिसे बचाना था, उसे वह बचा नहीं सका है। पत्नी के लिए हृदय में कुछ मर रहा है, डाक्टर के लिए बुद्धि में कुछ मरने की क्रिया हो रही है। वह यह सोच रहा है कि और दवाएं दे सकता था तो क्या वह बच सकता था? क्या इंजेक्शन जो दिए थे, वे ठीक नहीं थे? क्या मेरी डाइगनोसिस में कहीं कोई भूल हो गई है? निदान कहीं चूक गया है? अब दोबारा कोई मरीज इस बीमारी से मरता होगा तो मुझे क्या करना है? डाक्टर के हृदय से इस मरीज के मरने का कोई भी संबंध नहीं है, पर उसके मस्तिष्क में जरूर बहुत कुछ चल रहा है।
पत्रकार का मस्तिष्क तो इतना भी नहीं चल रहा है। वह बार-बार घड़ी देख रहा है कि यह आदमी मर जाए तो टाइम नोट कर ले और दफ्तर में जाकर खबर कर दे। उसके मस्तिष्क में भी कुछ नहीं चल रहा है। वह एक काम कर रहा है। बाहर खड़ा है दूर, लेकिन थोड़ा सा संबंध है उसका। वह सिर्फ इतना सा संबंध है उसका कि इस आदमी के मरने की खबर दे देनी है जाकर। और वह खबर देकर किसी होटल में बैठ कर चाय पीएगा या खबर देकर किसी थियेटर में जाकर फिल्म देखेगा। बात समाप्त हो जाएगी। इस आदमी को उससे इतना संबंध है कि यह कब मरता है, किस वक्त मरता है। वह मरने की प्रतीक्षा कर रहा है।
चित्रकार के लिए आदमी मर रहा है, नहीं मर रहा है, इससे कोई संबंध ही नहीं है। वह उस आदमी के चेहरे पर आ गई कालिमा का अध्ययन कर रहा है। उस आदमी के चेहरे पर मृत्यु के क्षण में जीवन की जो अंतिम ज्योति झलकेगी, उसे देख रहा है। वह कमरे में घिरते हुए अंधेरे को देख रहा है। चारों तरफ से मौत के साए ने उस कमरे को पकड़ लिया है, वह उसे देख रहा है। उसके लिए आदमी के मरने की वह घटना रंगों का एक खेल है। वह रंगों को पकड़ रहा है, क्योंकि उसे मृत्यु का एक चित्र बनाना है। वह आदमी बिल्कुल आउटसाइडर है। उसे कोई भी लेना-देना नहीं है। यह आदमी मरे, कि दूसरा आदमी मरे, कि तीसरा आदमी मरे, इसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह पत्नी मरे, वह डाक्टर मरे, वह पत्रकार मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। ए बी सी डी कोई भी मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसे मृत्यु का रंगों में क्या रूप है, वह उसे पकड़ने में लगा है। मृत्यु से उसका कोई भी संबंध नहीं है।
परिस्थिति एक है, लेकिन मनःस्थिति चार हैं। चार हजार भी हो सकती हैं। जीवन वही है संसारी का भी, संन्यासी का भी, मनःस्थिति भिन्न है। वही सब घटेगा जो घट रहा है। वही दूकान चलेगी, वही पत्नी होगी, वही बेटे होंगे, वही पति होगा, लेकिन संन्यासी की मनःस्थिति और है। वह जिंदगी को किन्हीं और दृष्टिकोणों से देखने की कोशिश कर रहा है। संसारी की मनःस्थिति और है। संसार और संन्यास मनःस्थितियां हैं, मेंटल एटीट्यूड्स हैं। इसलिए परिस्थितियों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। परिस्थितियों को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मनःस्थिति बदलती है तो परिस्थिति वही नहीं रह जाती। क्योंकि परिस्थिति वैसी ही दिखाई पड़ने

लगती है जैसी मनःस्थिति होती है। जो आदमी संसार छोड़ कर, भाग कर संन्यासी हो रहा है, वह भी अभी संसारी है। क्योंकि उसका अभी विश्वास परिस्थिति पर है। वह भी सोचता है, परिस्थिति बदल लूंगा तो सब बदल जाएगा। वह अभी संसारी है। संन्यासी वह है, जो कहता है कि मनःस्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा। मनःस्थिति बदलेगी, सब बदल जाएगा, ऐसा जिसका भरोसा है, ऐसी जिसकी समझ है, वह आदमी संन्यासी है। और जो सोचता है कि परिस्थिति बदल जाएगी तो सब बदल जाएगा, ऐसी मनःस्थिति संसारी की है। वह आदमी संसारी है।
मेरा जोर परिस्थिति पर बिल्कुल नहीं है, मनःस्थिति पर है। एक ऐसा संन्यासी बच सकता है। और मैं कहना चाहता हूं कि संन्यास बचाने जैसी चीज है।
पश्चिम ने विज्ञान दिया है, वह पश्चिम का कंट्रीब्यूशन है मनुष्य के लिए। पूरब ने संन्यास दिया है, वह पूरब का कंट्रीब्यूशन है संसार के लिए। जगत को पूरब ने जो श्रेष्ठतम दिया है, वह संन्यास है। जो श्रेष्ठतम व्यक्ति दिए हैं, वह बुद्ध हैं, वह महावीर हैं, वह कृष्ण हैं, वह क्राइस्ट हैं, वह मोहएमद हैं। ये सब पूरब के लोग हैं। क्राइस्ट भी पश्चिम के आदमी नहीं हैं। ये सब एशिया से आए हुए लोग हैं।
शायद आपको पता न हो यह एशिया शब्द कहां से आ गया है। बहुत पुराना शब्द है। कोई आज से छह हजार साल पुराना शब्द है, और बेबीलोन में पहली दफा इस शब्द का जन्म हुआ। बेबीलोनियन भाषा में एक शब्द है असू। असू से एशिया बना। असू का मतलब होता है, सूर्य का उगता हुआ देश। जो जापान का अर्थ है वही एशिया का भी अर्थ है। जहां से सूरज उगता है, जिस जगह से सूर्य उगा है, वहीं से जगत को सारे संन्यासी मिले। यूरोप शब्द का ठीक इससे उलटा मतलब है। यूरोप शब्द भी अशीरियन भाषा का शब्द है। वह जिस शब्द से बना है--अरेश--उस शब्द का मतलब है, सूरज के डूबने का देश; संध्या का, अंधेरे का, जहां सूर्यास्त होता है।
वे जो सूर्यास्त के देश हैं, उनसे विज्ञान मिला है, वैज्ञानिक मिला है। जो सूर्योदय के देश हैं, सुबह के, उनसे संन्यास मिला है। इस जगत को अब तक जो दो बड़ी से बड़ी देन मिली है, दोनों छोरों से, उनमें एक विज्ञान की है। स्वभावतः विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां भौतिक की खोज हो। स्वभावतः संन्यास वहीं मिल सकता है जहां अभौतिक की खोज हो। विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां पदार्थ की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। और संन्यास वहीं मिल सकता है जहां परमात्मा की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। जो अंधेरे से लड़ेंगे वे विज्ञान को जन्म दे देंगे। और जो सुबह के प्रकाश को प्रेम करेंगे वे परमात्मा की खोज पर निकल जाते हैं।
यह जो पूरब से संन्यास मिला है, यह संन्यास भविष्य में खो सकता है। क्योंकि संन्यास की अब तक की जो व्यवस्था थी उस व्यवस्था के मूल आधार टूट गए हैं। इसलिए मैं देखता हूं इस संन्यास को बचाया जाना जरूरी है। यह बचाया जाएगा, पर आश्रमों में नहीं, वनों में नहीं, हिमालय पर नहीं।
वह तिब्बत का संन्यासी नष्ट हो गया। शायद गहरे से गहरा संन्यासी तिब्बत के पास था। लेकिन वह विदा हो रहा है, वह विदा हो जाएगा, वह बच नहीं सकता है। अब संन्यासी बचेगा फैक्ट्री में, दुकान में, बाजार में, स्कूल में, युनिवर्सिटी में। जिंदगी जहां है, अब संन्यासी को वहीं खड़ा हो जाना पड़ेगा। और संन्यासी जगह बदल ले, इसमें बहुत अड़चन नहीं है। संन्यास नहीं मिटना चाहिए।
इसलिए मैं जिंदगी को भीतर से संन्यासी कर देने के पक्ष में हूं। जो जहां है वहीं संन्यासी हो जाए, सिर्फ रुख बदले, मनःस्थिति बदले। हिंसा की जगह अहिंसा उसकी मनःस्थिति बने, परिग्रह की जगह अपरिग्रह उसकी समझ बने, चोरी की जगह अचौर्य उसका आनंद हो, काम की जगह अकाम पर उसकी दृष्टि बढ़ती चली जाए, प्रमाद की जगह अप्रमाद उसकी साधना बने, तो व्यक्ति जहां है, जिस जगह है, वहीं मनःस्थिति बदल जाएगी। और फिर सब बदल जाता है।
इसलिए मैं जिन्हें संन्यासी कह रहा हूं वे जगत से भागे हुए लोग नहीं हैं। वे जहां हैं वहीं रहेंगे। और यह बड़े मजे की बात है, आज तो जगत से भागना ज्यादा आसान है। आज जगत में खड़े होकर संन्यास लेना बहुत कठिन है। भाग जाने में तो अड़चन नहीं है, लेकिन एक आदमी जूते की दूकान करता है और वहीं

संन्यासी हो गया है तो बड़ी अड़चनें हैं। क्योंकि दूकान वही रहेगी, ग्राहक वही रहेंगे, जूता वही रहेगा, बेचना वही है, बेचने वाला, लेने वाला सब वही है। लेकिन एक आदमी अपनी पूरी मनःस्थिति बदल कर वहां जी रहा है। सब पुराना है। सिर्फ एक मन को बदलने की आकांक्षा से भरा है। इस सब पुराने के बीच इस मन को बदलने में बड़ी दुरूहता होगी। यही तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से गुजरना अदभुत अनुभव है। और ध्यान रहे, जितना सस्ता संन्यास मिल जाए उतना गहरा नहीं हो पाता, जितना मंहगा मिले उतना ही गहरा हो जाता है। संसार में संन्यासी होकर खड़ा होना बड़ी तपश्चर्या की बात है, एक।
दूसरी बात, अब तक संन्यास एक इंस्टीट्यूटलाइज्ड, एक संस्थागत व्यवस्था हो गई थी। और संन्यास कभी भी इंस्टीट्यूशन, संस्था नहीं बन सकता। और जब भी संन्यास संस्था बनेगा, तब संन्यास की जो खूबी है, जो रस है, जो उसका रहस्य है, वह सब विदा हो जाएगा। संन्यास को जैसे ही संस्था बनाया जाता है, वैसे ही संन्यास मर जाता है।
संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है। संन्यास एक-एक व्यक्ति के भीतर खिलता है, जैसे प्रेम खिलता है। और प्रेम को कोई संस्था नहीं बना सकता। प्रेम एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है और फैलता है। ऐसे ही संन्यास, परमात्मा का प्रेम है। वह भी एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है और फैलता है। इसलिए संन्यासियों की संस्थाओं की कोई भी जरूरत नहीं है। संस्थागत संन्यासी संन्यासी नहीं रह जाता। असल में संस्था हम बनाते ही इसलिए हैं, सुरक्षा के लिए, सिक्योरिटी के लिए। और संन्यासी है वह, जिसने असुरक्षा में, खतरे में जीने का प्रण लिया है, जो खतरे में, असुरक्षा में जीने की हिएमत जुटा रहा है। इसलिए आगे संन्यास संस्था से बंधा हुआ नहीं हो सकता है, व्यक्तिगत होगा, व्यक्तिगत मौज होगी। संस्थागत जब भी संन्यास बनेगा तो संन्यास में एक बहुत ही बेहूदी बात जुड़ जाएगी, और वह यह होगी कि संन्यास में एंट्रेंस तो होगा, एक्जिट नहीं होगा। संन्यास के मंदिर में प्रवेश तो होगा, लेकिन बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं होगा। और जिस जगह पर भी प्रवेश हो और बाहर निकलने का द्वार न हो, वह चाहे मंदिर ही क्यों न हो, वह थोड़े- बहुत दिनों में कारागृह हो जाता है। क्योंकि वहां परतंत्रता निश्चित हो जाती है।
इसलिए मैं संन्यासी को उसके व्यक्तिगत निर्णय पर छोड़ता हूं। वह उसकी मौज है कि वह संन्यास का निर्णय लेता है। अगर कल वह वापस लौट जाना चाहता है अपनी सहज परिस्थिति, अपनी सहज मनःस्थिति में, तो इस जगत में कोई भी उसकी निंदा करने को नहीं होना चाहिए। निंदा का कोई कारण नहीं है। यह उसकी व्यक्तिगत बात थी। उसने निर्णय लिया, या वह वापस लौट जाए।
इसके दोहरे परिणाम होंगे। बहुत ज्यादा लोग संन्यास ले सकते हैं, अगर उन्हें यह निर्णय हो कि कल अगर उन्हें ठीक न पड़े, तो वे अपनी मनःस्थिति के निर्णय को वापस लौटा सकते हैं। परसों उन्हें फिर लगे कि हिएमत अब ज्यादा है, अब हम फिर प्रयोग कर सकते हैं, तो फिर वापस भी लौट सकते हैं। संन्यास संस्थाबद्ध हो तो फिर दुराग्रह शुरू होता है कि कोई संन्यासी वापस नहीं लौट सकता। और जब संन्यासी वापस नहीं लौट सकता तो सब संन्यासियों की संस्थाएं कारागृह बन जाती हैं, क्योंकि जाते वक्त व्यक्ति को बहुत कुछ पता नहीं होता। बहुत कुछ तो जाकर ही पता चलता है भीतर से, कि क्या है। और जब भीतर से पता चलता है तो वह वापस लौटने की स्वतंत्रता खो चुका होता है। इसलिए मैं सैकड़ों संन्यासियों को जानता हूं जो दुखी हैं, क्योंकि वे वापस नहीं लौट सकते। और संन्यास कोई कारागृह नहीं होना चाहिए।
इसलिए दूसरा सूत्र जो इस नये संन्यास की धारणा में मैं जोड़ना चाहता हूं वह यह है कि संन्यास व्यक्तिगत निर्णय है। उसके ऊपर किसी दूसरे का न कोई दबाव है, न किसी दूसरे से उसका कोई संबंध है। यह एक व्यक्ति की अपनी सूझ है, यह एक व्यक्ति की अपनी अंतर्दृष्टि है। वह जाए, लौटे। और इसी के साथ एक और बात पीरियाडिकल रिनन्सिएशन के संबंध में कहना चाहता हूं।
मैं मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को आजीवन संन्यास का आग्रह नहीं लेना चाहिए। असल में आजीवन के लिए आज कोई निर्णय लिया भी नहीं जा सकता। कल का क्या भरोसा? कल के लिए मैं क्या कह सकता हूं? आज जो मुझे ठीक लगता है, कल गलत लग सकता है। और अगर मैं पूरे जीवन का निर्णय लेता हूं तो इसका मतलब यह

हुआ कि कम अनुभवी आदमी ने ज्यादा अनुभवी आदमी के लिए निर्णय लिया। मैं बीस साल बाद ज्यादा अनुभवी हो जाऊंगा। बीस साल पहले का मेरा निर्णय बीस साल बाद के ज्यादा अनुभवी आदमी की छाती पर पत्थर बन जाएगा। बच्चे के निर्णय बूढ़े के लिए लागू नहीं होने चाहिए। लेकिन दस साल का बच्चा संन्यास ले सकता है और सत्तर साल का बूढ़ा फिर जिंदगी भर पछता सकता है, क्योंकि वह आजीवन है। नहीं, कोई संन्यास आजीवन नहीं हो सकता। इस जीवन में सभी चीजें सावधिक हैं, पीरियाडिकल हैं। और संन्यास जैसी कीमती चीज तो सिर्फ अवधिगत होनी चाहिए। एक व्यक्ति लेता है जानने के लिए, जिज्ञासा के लिए, खोज के लिए। अगर संन्यास में कुछ रस है तो संन्यास रोक लेगा, यह दूसरी बात है। लेकिन आप अपने निर्णय से जबरदस्ती रुकेंगे तो संन्यास के रस पर आपका भरोसा नहीं है।
तो मैं तो मानता हूं कि जो व्यक्ति संन्यास में एक बार जाएगा वह लौटेगा नहीं। लेकिन यह संन्यास के अनुभव में सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह न लौटे। यह सिर्फ कसम और नियम और लॉ और कानून नहीं होना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को तो इसी भाव से संन्यास में प्रवेश करना चाहिए कि मैं मुक्त प्रवेश करता हूं। कल अगर मुझे लगे कि प्रवेश गलत हुआ, निर्णय भूल थी, तो मैं वापस लौट सकता हूं।
हर आदमी को अपनी भूल से सीखने का हक होना चाहिए। और भूल से ही सीख मिलती है। इस दुनिया में सीखने का और कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन जहां भूल परमानेंट करनी पड़ती हो कि हम उससे सीख ही न सकें, फिर वहां जिंदगी में ज्ञान की जगह अज्ञान आरोपित हो जाता है। इसलिए आजीवन संन्यास ने संन्यासी को ज्ञानी कम, अज्ञानी बनाने में ज्यादा सहयोग दिया है।
दो मुल्क हैं पृथ्वी पर जरूर, जहां पीरियाडिकल रिनन्सिएशन की अलग व्यवस्था है। आजीवन संन्यास की व्यवस्था भी है बर्मा में, थाईलैंड में, और सावधिक संन्यास की व्यवस्था भी है। कोई व्यक्ति साल में तीन महीने के लिए संन्यासी हो जाता है। इसलिए बर्मा में लाखों लोग मिल जाएंगे जो संन्यासी रह चुके हैं, कोई तीन महीने को, कोई छह महीने को, कोई साल भर को। फिर दो-चार वर्ष में सुविधा होती है, वह आदमी फिर तीन-चार महीने के लिए संन्यास की दुनिया में चला जाता है।
एक आदमी अगर अपने चालीस साल के अनुभव की जिंदगी में दस बार महीने- महीने भर के लिए भी संन्यासी हो जाए, तो मरते वक्त वह वही आदमी नहीं होगा, जो वह आदमी होगा जिसने कभी संन्यास की जिंदगी में प्रवेश नहीं किया। साल में अगर एक महीने के लिए भी कोई संन्यासी हो जाए, तो आदमी वही नहीं लौटेगा जो था। बाकी आने वाले ग्यारह महीने वर्ष के दूसरे हो जाने वाले हैं। सारी जिंदगी तो व्यक्ति के भीतर से निकलती है।
तो मैं तो मानता हूं कि आजीवन लेने की जरूरत ही नहीं है। आजीवन हो जाए,
यह सौभाग्य है। आजीवन फैल जाए, यह परमात्मा की कृपा है। लेकिन अपनी तरफ से तो एक पल का निर्णय भी बहुत है। आज का निर्णय काफी है।
तीसरी बात, अब तक जितने भी संन्यास के जगत में रूप हुए हैं, वे सभी संप्रदायों से बंधे हुए थे। इसलिए संन्यासी कभी भी मुक्त नहीं हो पाया। कोई संन्यासी हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई ईसाई है। कम से कम संन्यासी को तो सिर्फ धार्मिक होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मस्जिद न जाए, वह मंदिर न जाए। यह उसकी मौज है। वह कुरान पढ़े या गीता पढ़े, यह उसकी पसंद है। वह जीसस को प्रेम करे कि बुद्ध को प्रेम करे, यह उसकी अपनी बात है। लेकिन संन्यासी होते ही उसे किसी संप्रदाय का नहीं रह जाना चाहिए। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति संन्यासी हुआ, अब कोई धर्म उसका अपना नहीं, क्योंकि सभी धर्म अब उसके अपने हो गए।
इसलिए संन्यास में एक तीसरी बात भी मैं जोड़ना चाहता हूं, वह है गैर-सांप्रदायिकता। संप्रदाय के पार संन्यासी को होना चाहिए। और अगर इस पृथ्वी पर हम ऐसे संन्यासी पैदा कर सकें जो ईसाई नहीं हैं, हिंदू नहीं हैं, जैन नहीं हैं, बौद्ध नहीं हैं, तो हम इस जगत को धार्मिक बनाने के रास्ते पर आसानी से ले जा सकेंगे। और अगर संन्यासी हिंदू, बौद्ध और जैन न रह जाएं तो आदमी-आदमी को लड़ाने के बहुत से आधार गिर जाएंगे, और आदमी-आदमी को जोड़ने के बहुत से सेतु फैल जाएंगे।

इसलिए संन्यासी को मैं सिर्फ धार्मिक कहता हूं, रिलीजस माइंड। उसका किसी धर्म से कोई लेना-देना नहीं, क्योंकि सारे धर्म उसके अपने हैं। यह दूसरी बात है कि उसे गीता से प्रेम है और वह गीता पढ़ता है। यह दूसरी बात है कि उसे कृष्ण से प्रेम है और वह कृष्ण के गीत गाता है। यह दूसरी बात है कि उसे जीसस से मुहब्बत है और वह जीसस के चर्च में सो जाता है। ये बिल्कुल दूसरी बातें हैं। ये उसकी व्यक्तिगत बातें हैं। लेकिन अब वह ईसाई नहीं है, जैन नहीं है, हिंदू नहीं है, बौद्ध नहीं है। और कल अगर उसे किसी गांव का मंदिर बुलाता है तो मंदिर में रुकता है, मस्जिद बुलाती है तो मस्जिद में रुक जाता है, चर्च निमंत्रण देता है तो चर्च का मेहमान हो जाता है। अगर हम पृथ्वी पर लाख, दो लाख संन्यासी भी धर्मों के पार निर्मित कर सकें, तो हम दुनिया में आदमी-आदमी के बीच के वैमनस्य को गिराने के लिए सबसे बड़ा कदम उठा सकते हैं।
इस तरह के संन्यास को मैं तीन हिस्सों में बांट देना पसंद करता हूं,
जो आपको समझने में आसान हो जाएगा। वे लोग जो अपनी जिंदगी को जैसा चला रहे हैं वैसा ही चला कर संन्यासी होना चाहते हैं, वे वैसे ही संन्यासी हो जाएं। सिर्फ संन्यास की घोषणा अपने और जगत के प्रति कर दें। संन्यास का निर्णय अपने और जगत के प्रति ले लें। लेकिन जहां हैं उसमें रत्ती भर फर्क न करें, जो हैं उसमें फर्क करना शुरू कर दें।
लेकिन बहुत लोग हैं, जैसे ढेर वृद्ध मुझे मिलते हैं जो घरों में तकलीफ में पड़ गए हैं, क्योंकि घरों में अब उनका कोई संबंध नहीं है। आने वाली पीढ़ियों को उनमें कोई रस नहीं है। सारे सेतु उनके बीच टूट गए हैं। वृद्धों को तो निश्चित ही आश्रमों में पहुंच जाना चाहिए। इस मुल्क में एक व्यवस्था थी। उस व्यवस्था के टूट जाने के बाद शायद जिसको हम जेनरेशन गैप कहते हैं, वह पैदा हुआ। सारी दुनिया में पैदा हुआ। जिसे हम पीढ़ियों का फासला कहते हैं।
इस मुल्क की एक व्यवस्था थी कि पच्चीस साल तक के विद्यार्थी को हम जंगल में रखते थे और पचहत्तर साल के बाद जो बूढ़े संन्यासी थे उनको भी जंगल में रखते थे। और जो पचहत्तर साल के बूढ़े संन्यासी थे वे जंगल में गुरु का काम कर देते थे, शिक्षक का। और जो पच्चीस साल के युवा जंगलों में पढ़ने आते थे वे विद्यार्थी का काम कर देते थे। हम पहली पीढ़ी की आखिरी पीढ़ी से मुलाकात करवा देते थे। उन दोनों के बीच डायलाग हो जाता था, उन दोनों के बीच संबंध हो जाता था। सत्तर साल, पचहत्तर साल का बूढ़ा, पांच और दस साल के बच्चों से मुलाकात ले लेता था। सत्तर-पचहत्तर साल में जो उसने जिंदगी से जाना और सीखा उससे उन्हें परिचित करा देता था।
बहुत कुछ चीजें हैं जो युनिवर्सिटीज में नहीं सीखी जातीं, सिर्फ जिंदगी के अनुभव में ही सीखी जाती हैं। जिस दिन से हमें यह खयाल पैदा हो गया कि सारा ज्ञान विश्वविद्यालय से मिल सकता है, उस दिन से दुनिया में ज्ञान तो बहुत मिला, लेकिन विजडम, प्रज्ञा बहुत कम होती चली गई। युनिवर्सिटीज में ज्ञान भले मिल जाए, पर प्रज्ञा, विजडम नहीं मिलती है। विजडम तो जिंदगी की ठोकरों और टक्करों और संघर्षों में ही मिलती है। वह तो जिंदगी से गुजर कर ही मिलती है।
तो हम अपने सबसे ज्यादा बूढ़े व्यक्ति को अपने सबसे ज्यादा छोटे बच्चे
से मिला देते थे। ताकि दोनों पीढ़ियां, आती हुई और विदा होती पीढ़ी, डूबता हुआ सूरज उगते हुए सूरज से मुलाकात कर जाए और जो बारह घंटे की यात्रा पर उसने पाया है वह उगते हुए सूरज को दे जाए।
वह संबंध टूट गया है। उससे खतरनाक परिणाम हुए हैं। पीढ़ियों के बीच फासला बढ़ गया है। बूढ़े और बच्चों के बीच कोई डायलाग नहीं है, बूढ़े और बच्चों के बीच कोई बातचीत नहीं है। बूढ़े की भाषा न बच्चे समझते हैं, न बच्चे की भाषा बूढ़े समझ पाते हैं। बूढ़े बच्चों पर नाराज हैं, बच्चे बूढ़ों पर हंस रहे हैं। यह उनकी नाराजगी का ढंग है। अगर जीवन में एक तारतएय न रह जाए और जीवन में पीढ़ियां इस तरह दुश्मन की तरह खड़ी हो जाएं तो जिंदगी एक अराजकता बन जाती है। उस जिंदगी से सारा संगीत खो जाता है।
मेरी दृष्टि में है कि एक तो वे संन्यासी जो अपने घरों में अपनी जिएमेवारियों के बीच में संन्यासी होंगे। लेकिन कल उनमें से बहुत से लोग

जिएमेवारियों से बाहर हो जाएंगे। बहुत से लोग तो आज भी जिएमेवारियों के बाहर हैं। जिन पर कोई जिएमेवारी नहीं है, वे घरों में बोझ भी हो जाते हैं। क्योंकि जो सदा से काम से भरे रहे हैं, खाली होना उन्हें बहुत मुश्किल होता है। तब वे बेकाम के काम करने लगते हैं, जिनसे दूसरों के काम में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है।
उन्हें जिंदगी की भीड़ और बाजार को छोड़ कर जरूर आश्रम की दुनिया में चले जाना चाहिए। वहां वे साधना भी करें, ध्यान भी करें, परमात्मा को भी खोजें और गांव के बच्चों को--जो उनके पास कभी महीने, दो महीने के लिए आकर बैठते रहें, ज्यादा देर भी बिठाए जा सकते हैं--शिक्षित बनाएं। क्योंकि मैं तो मानता ही यही हूं कि ऐसे आश्रम ही युनिवर्सिटीज बन जाने चाहिए। और इन बच्चों को अपना सारा सब कुछ दे जाएं, जो उन्होंने जाना है।
ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके व्यक्तित्व की दिशा ऐसी है कि वे संसार में नहीं जाना चाहते, तो उन्हें भेजना आवश्यक नहीं है। ढेरों लोग हैं जिनके पिछले जन्मों की यात्रा उस जगह उन्हें ले आई है कि उनके लिए विवाह का कोई अर्थ नहीं होगा। उनके लिए अब जगत में बहुत अर्थ नहीं होगा। अगर ऐसे लोग हैं तो उनको जबरदस्ती जगत में डालना वैसा ही पागलपन है जैसे किसी आदमी को, जिसे अभी विवाह करना था, उसे जबरदस्ती दीक्षा दे देना पागलपन है। नहीं, जिनकी जिंदगी में सहज ही सुगंध है, और जो छोड़ कर इस घेरे के बाहर जीना चाहते हैं, वे जरूर आश्रमों में जीएं, पर उनके आश्रम प्रोडक्टिव होने चाहिए। वहां वे खेती भी करें, बगीचे भी लगाएं, फैक्टरी भी चलाएं, स्कूल भी चलाएं, अस्पताल भी चलाएं, वे वहां पैदा भी करें, और उस पैदावार पर ही जीएं। ये तीन दिशाएं हैं। और जो लोग इन तीनों में से कुछ भी नहीं कर सकते, वे
भी इतना तो कर सकते हैं कि वर्ष में पंद्रह दिन हॉली-डे पर चले जाएं। अंग्रेजी का यह हॉली-डे शब्द बहुत अच्छा है। हॉली-डे का मतलब छुट्टी नहीं होता, हॉली-डे का मतलब होता है, पवित्र दिन। यह जो रविवार है वह अंग्रेजों के लिए पश्चिम में हॉली-डे है, पवित्र दिन है, क्योंकि उस दिन परमात्मा ने भी काम छोड़ दिया था दुनिया बना कर। उस दिन उसने आराम किया था। छह दिन उसने दुनिया बनाई, सातवें दिन वह भी संन्यासी हो गया। उसने सातवें दिन आराम किया। जो छह दिन काम कर रहे हैं, सातवें दिन उनको भी आराम चाहिए। जो साल भर काम कर रहे हैं, वे कभी महीने भर के लिए हॉली-डे पर चले जाएं, पवित्र दिनों में चले जाएं। छोड़ दें, भूल जाएं इस दुनिया को। एक महीने के लिए डूब जाएं किसी और यात्रा में, एक महीने संन्यासी की तरह किसी आश्रम में जीकर लौटें। तब आप दूसरे आदमी होकर लौटेंगे, आप कुछ आत्मिक होकर लौटेंगे, आंतरिक होकर लौटेंगे। दुनिया यही होगी लेकिन आपका दृष्टिकोण बदला हुआ होगा।
मेरे लिए संन्यास का ऐसा अर्थ है। और यह व्यक्तिगत निर्णय और चुनाव है। और अगर ऐसा संन्यास पृथ्वी पर फैलाया जा सके तो हम पृथ्वी से संन्यास को मिटने से रोक सकते हैं, अन्यथा बहुत कठिन मामला है कि संन्यास बच सके। साएयवाद जितने जोर से फैलेगा, संन्यास की हत्या उतनी ही व्यवस्था से होती चली जाएगी।
आज चीन में, जहां कल बुद्ध की प्रतिमा रखी थी, वह प्रतिमा तो फोड़ डाली
गई और माओ का फोटो लटका दिया गया है। आज चीन के स्कूलों में दीवालों पर जो वचन लिखे हैं, वे बहुत हैरानी के हैं। चीन में एक स्कूल की दीवाल पर लिखा हुआ है कि जो बच्चा माओ की किताब एक दिन नहीं पढ़ता उसकी भूख मर जाती है, जो बच्चा माओ की किताब दो दिन नहीं पढ़ता उसकी नींद चली जाती है, जो बच्चा माओ की किताब तीन दिन नहीं पढ़ता वह बीमार पड़ जाता है, जो बच्चा माओ की किताब चार दिन नहीं पढ़ता उसकी जिंदगी अंधकारपूर्ण हो जाती है।
माओ की किताब में ऐसा कुछ भी नहीं है कि कोई भी बच्चा दुनिया में कहीं
भी उसे पढ़े, लेकिन स्कूल के बच्चों को समझाया जा रहा है।
एक यात्री चीन गया था। वह एक मोनास्ट्री के पास से गुजर रहा था, एक पहाड़ पर बसे हुए आश्रम के पास से। उसने अपने गाइड से पूछा कि ऊपर जो आश्रम दिखाई पड़ता है पर्वत पर, वहां साधु रहते होंगे? तो उस गाइड ने कहा, माफ कीजिए, आप बड़े पुराने बुद्धि के आदमी मालूम पड़ते हैं, वहां कएयुनिस्ट पार्टी का दफ्तर है। साधु अब वहां नहीं रहते। पहले रहते थे, लेकिन वे शोषक

दिन समाप्त हुए। अब उन शोषकों की कोई जगह नहीं है चीन में, अब वहां कएयुनिस्ट पार्टी का दफ्तर है।
बुद्ध की जगह माओ को बिठा दिया जाएगा, आश्रमों की जगह कएयुनिस्ट पार्टी के दफ्तर हो जाएंगे। कएयुनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, माओ की तस्वीर में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, लेकिन जिस जगह उसे रखा जा रहा है उसमें जगत बहुत कुछ खो देगा। कहां बुद्ध, कहां माओ! कहां बुद्ध के जीवन का आनंद, कहां बुद्ध के जीवन की करुणा और प्रेम, कहां बुद्ध की ऊंचाइयां, कहां बुद्ध के चित्त पर उतरा हुआ निर्वाण, कहां बुद्ध के एक-एक वचन का अमृत, कहां माओ! उससे कोई भी तुलना नहीं, उससे कोई भी संबंध नहीं है।
लेकिन यह हो रहा है, यह सारी दुनिया में होगा। यह कलकत्ते में हो रहा है, यह बंबई में होगा। कलकत्ता की दीवालों पर लिखा हुआ है जगह-जगह कि चीन के अध्यक्ष माओ हमारे भी अध्यक्ष हैं। कलकत्ता और बंबई में बहुत फासला नहीं है। और जो हाथ कलकत्ते की दीवालों पर लिख रहे हैं उन हाथों में और बंबई के हाथों में बहुत फर्क मुझे दिखाई नहीं पड़ता।
इस जगत से धर्म का फूल तिरोहित हो जाएगा अगर कोई ऐसा चाहता हो कि संन्यास की पुरानी धारणा से चिपके रहना चाहिए। अगर इस जगत में धर्म के फूल को बचाना हो तो संन्यास की नयी धारणा को जन्म देना जरूरी है।
"नव-संन्यास क्या?" एवं "ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया" से संकलित प्रवचनांश

मैं कहता आंखन देखी
सैतीसवां प्रवचन

संन्यास का एक नया अभियान

ओशो, दो-तीन दिनों से अनेकानेक श्रोतागण आपके आस-पास दिखाई पड़ने वाले नव-संन्यास और नव-संन्यासियों के संबंध में कुछ बातें आपके स्वयं के मुख से ही सुनना चाहते हैं। कृपया इस संबंध में कुछ कहें।

यह जो भी मैं कह रहा हूं, संन्यास के संबंध में ही कह रहा हूं। यह सारी गीता संन्यास का ही विवरण है। और जिस संन्यास की मैं बात कर रहा हूं, वह वही संन्यास है जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं।
करते हुए अकर्ता हो जाना; करते हुए भी ऐसे हो जाना जैसे मैं करने वाला नहीं हूं--बस, संन्यास का यही लक्षण है।
गृहस्थ का क्या लक्षण है? गृहस्थ का लक्षण है, हर चीज में कर्ता हो जाना। संन्यासी का लक्षण है, हर चीज में अकर्ता हो जाना।
संन्यास जीवन का, जीवन को देखने का और ही ढंग है। बस, ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में घर का फर्क नहीं है, ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में जगह का फर्क नहीं है, भाव का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थी में परिस्थिति का फर्क नहीं है, मनःस्थिति का फर्क है। संसार में जो है... हम सभी संसार में होंगे। कोई कहीं हो--जंगल में बैठे, पहाड़ पर बैठे, गिरि- कंदराओं में बैठे--संसार के बाहर जाने का उपाय परिस्थिति बदल कर नहीं है। संसार के बाहर जाने का उपाय मनःस्थिति बदल कर, बाई दि म्यूटेशन ऑफ दि माइंड, मन को ही रूपांतरित करके है।
मैं जिसे संन्यास कह रहा हूं वह मन को रूपांतरित करने की एक प्रक्रिया है। दो-तीन उसके अंग हैं, उनकी आपसे बात कर दूं।
पहला तो, जो जहां है, वह वहां से हटे नहीं। क्योंकि हटते केवल कमजोर हैं; भागते केवल वे ही हैं, जो भयभीत हैं। और जो संसार को भी झेलने में भयभीत है, वह परमात्मा को नहीं झेल सकेगा, यह मैं आपसे कह देता हूं। जो संसार का ही सामना करने में डर रहा है, वह परमात्मा का सामना कर पाएगा? नहीं कर पाएगा, यह मैं आपसे कहता हूं। संसार जैसी कमजोर चीज जिसे डरा देती है, परमात्मा जैसा विराट जब सामने आएगा, तो उसकी आंखें ही झप जाएंगी; वह ऐसा भागेगा कि फिर लौट कर देखेगा भी नहीं। यह क्षुद्र सा चारों तरफ जो है, यह डरा देता है, तो उस विराट के सामने खड़े होने की क्षमता नहीं होगी। और फिर अगर परमात्मा यही चाहता है कि लोग सब छोड़ कर भाग जाएं, तो उसे सबको सबमें भेजने की जरूरत ही नहीं है।
नहीं; उसकी मर्जी और मंशा कुछ और है। मर्जी और मंशा यही है कि पहले लोग क्षुद्र को, आत्माएं क्षुद्र को सहने में समर्थ हो जाएं, ताकि विराट को सह सकें। संसार सिर्फ एक प्रशिक्षण है, एक ट्रेनिंग है।
इसलिए जो ट्रेनिंग को छोड़ कर भागता है, उस भगोड़े को, एस्केपिस्ट को मैं संन्यासी नहीं कहता हूं। जीवन जहां है, वहीं! संन्यासी हो गए, फिर तो भागना ही नहीं। पहले चाहे भाग भी जाते तो मैं माफ कर देता। संन्यासी हो गए, फिर तो भागना ही नहीं। फिर तो वहीं जम कर खड़े हो जाना। क्योंकि फिर संन्यास अगर संसार के सामने भागता हो, तो कौन कमजोर है? कौन सबल है? फिर तो मैं कहता हूं, अगर इतना कमजोर है कि भागना पड़ता है, तो फिर संसार ही ठीक। फिर सबल को ही स्वीकार करना उचित है।
तो पहली तो बात मेरे संन्यास की यह है कि भागना मत। जहां खड़े हैं, वहीं, जिंदगी के सघन में पैर जमा कर! लेकिन उसे प्रशिक्षण बना लेना। उस सबसे सीखना। उस सबसे जागना। उस सबको अवसर बना लेना। पत्नी होगी पास, भागना मत। क्योंकि पत्नी से भाग कर कोई स्त्री से नहीं भाग सकता। पत्नी से भागना तो बहुत आसान है। पत्नी से तो वैसे ही भागने का मन पैदा हो जाता है। पति से भागने का मन पैदा हो जाता है। जिसके पास हम होते हैं, उससे ऊब जाते हैं। नये की तलाश मन करता है।

पत्नी से भागना बहुत आसान है; भाग जाएं! स्त्री से न भाग पाएंगे। और जब पत्नी जैसी स्त्री को निकट पाकर स्त्री से मुक्त न हो सके, तो फिर कब मुक्त हो सकेंगे? अगर पति जैसे प्रीतिकर मित्र को निकट पाकर पुरुष की कामना से मुक्ति न मिली, तो फिर छोड़ कर कभी न मिल सकेगी।
इस देश ने पति और पत्नी को सिर्फ काम के उपकरण नहीं समझा; सेक्स, वासना
का साधन नहीं समझा है। इस मुल्क की गहरी समझ और भी, कुछ और है। और वह यह है कि पति-पत्नी अंततः--प्रारंभ करें वासना से--अंत हो जाएं निर्वासना पर। एक-दूसरे को सहयोगी बनें। स्त्री सहयोगी बने पुरुष को कि पुरुष स्त्री से मुक्त हो सके। पुरुष सहयोगी बने पत्नी को कि पत्नी पुरुष की कामना से मुक्त हो सके। ये अगर सहयोगी बन जाएं, तो बहुत शीघ्र निर्वासना को उपलब्ध हो सकते हैं।
लेकिन ये इसमें सहयोगी नहीं बनते। पत्नी डरती है कि कहीं पुरुष निर्वासना को उपलब्ध न हो जाए। इसलिए डरी रहती है। अगर मंदिर जाता है, तो ज्यादा चौंकती है; सिनेमा जाता है, तो विश्राम करती है। चोर हो जाए, समझ में आता है; प्रार्थना, भजन-कीर्तन करने लगे, समझ में बिल्कुल नहीं आता है।
खतरा है। पति भी डरता है कि पत्नी कहीं निर्वासना में न चली जाए।
अजीब हैं हम! हम एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं, इसलिए इतने भयभीत हैं।
हम एक-दूसरे के मित्र नहीं हैं! क्योंकि मित्र तो वही है, जो वासना के बाहर ले जाए। क्योंकि वासना दुख है और वासना दुष्पूर है! वासना कभी भरेगी नहीं।
वासना में हम ही मिट जाएंगे, वासना नहीं मिटेगी। तो मित्र तो वही है, पति तो वही है, पत्नी तो वही है, मित्र तो वही है, जो वासना से मुक्त करने में साथी बने। और शीघ्रता से यह हो सकता है।
इसलिए मैं कहता हूं, पत्नी को मत छोड़ो, पति को मत छोड़ो; किसी को मत छोड़ो। इस प्रशिक्षण का उपयोग करो। हां, इसका उपयोग करो परमात्मा तक पहुंचने के लिए। संसार को बनाओ सीढ़ी। संसार को दुश्मन मत बनाओ; बनाओ सीढ़ी। चढ़ो उस पर; उठो उससे। उससे ही उठ कर परमात्मा को छुओ। और संसार सीढ़ी बनने के लिए है, इसलिए पहली बात।
दूसरी बात, संन्यास अब तक सांप्रदायिक रहा है, जो कि दुखद है, जो कि संन्यास को गंदा कर जाता है। संन्यास धर्म है, संप्रदाय नहीं। गृहस्थ संप्रदायों में बंटा हो, समझ में आता है। उसके कारण हैं। जिसकी दृष्टि बहुत सीमित है, वह विराट को नहीं पकड़ पाता। वह हर चीजों में सीमा बनाता है, तभी पकड़ पाता है। हर चीज को खंड में बांट लेता है, तभी पकड़ पाता है। आदमी- आदमी की सीमाएं हैं।
अगर आप बीस आदमी पिकनिक को जाएं, तो आप पाएंगे कि पिकनिक पर आप पहुंचे, चार-पांच ग्रुप में टूट जाएंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं रहेंगे। तीन-तीन, चार-चार की टुकड़ी हो जाएगी। सीमा है। तीन-तीन चार-चार में टूट जाएंगे। अपनी-अपनी बातचीत शुरू कर देंगे। दो-चार हिस्से बन जाएंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं हो पाते। ऐसी आदमी की सीमा है।
सारी मनुष्यता एक है, यह साधारण आदमी की सीमा के बाहर है सोचना। सब मंदिर, सब मस्जिद उसी परमात्मा के हैं, यह सोचना मुश्किल है। साधारण की सीमा के लिए कठिन होगा। लेकिन संन्यासी असाधारण होने की घोषणा है।
तो दूसरी बात, संन्यास धर्म में प्रवेश है--हिंदू धर्म में नहीं, मुसलमान धर्म में नहीं, ईसाई धर्म में नहीं, जैन धर्म में नहीं--धर्म में। इसका क्या मतलब हुआ? हिंदू धर्म के खिलाफ? नहीं। इसलाम धर्म के खिलाफ? नहीं। जैन धर्म के खिलाफ? नहीं। वह जो जैन धर्म में धर्म है, उसके पक्ष में; और वह जो जैन है, उसके खिलाफ। और वह जो हिंदू धर्म में धर्म है, उसके पक्ष में; और वह जो हिंदू है, उसके खिलाफ। और वह जो इसलाम धर्म में धर्म है, उसके पक्ष में; और वह जो इसलाम है, उसके खिलाफ। सीमाओं के खिलाफ, और असीम के पक्ष में। आकार के खिलाफ, और निराकार के पक्ष में।
संन्यासी किसी धर्म का नहीं, सिर्फ धर्म का है। वह मस्जिद में ठहरे, मंदिर में ठहरे, कुरान पढ़े, गीता पढ़े। महावीर, बुद्ध, लाओत्से, नानक, जिससे उसका प्रेम हो, प्रेम करे। लेकिन जाने कि जिससे वह प्रेम कर रहा है, यह दूसरों के खिलाफ घृणा का कारण नहीं, बल्कि यह प्रेम भी उसकी सीढ़ी बनेगी, उस अनंत में छलांग लगाने के लिए, जिसमें सब एक हो जाता है। नानक को बनाए सीढ़ी,

बनाए। बुद्ध-मोहम्मद को बनाना चाहे, बुद्ध-मोहम्मद को बनाए। कूद जाए वहीं से। पर कूदना है अनंत में।
और इस अनंत का स्मरण रहे, तो इस पृथ्वी पर दो घटनाएं घट सकती हैं। संन्यासी जहां है वहीं रहे, तो करोड़ों संन्यासी सारी पृथ्वी पर हो सकते हैं। संन्यासी छोड़ कर भागे, तो ध्यान रखना, भविष्य में, बीस साल, पच्चीस साल के बाद, इस सदी के पूरे होते-होते, संन्यास अपराध होगा, क्रिमिनल एक्ट हो जाएगा।
रूस में हो गया, चीन में हो गया, आधी दुनिया में हो गया। आज रूस और चीन में कोई संन्यासी होकर नहीं रह सकता। क्योंकि वे कहते हैं, जो करेगा मेहनत, वह खाएगा। जो मेहनत नहीं करेगा, वह शोषक है, एक्सप्लायटर है; इसको हटाओ। वह अपराधी है।
बिखर गई! चीन में बड़ी गहरी परंपरा थी संन्यास की--बिखर गई, टूट गई। मोनेस्ट्रीज उखड़ गईं। तिब्बत गया। शायद पृथ्वी पर सबसे ज्यादा गहरे संन्यास के प्रयोग तिब्बत ने किए थे, लेकिन सब मिट्टी हो गया। हिंदुस्तान में भी ज्यादा देर नहीं लगेगी। लेनिन ने कहा था उन्नीस सौ बीस में, कि कम्युनिज्म का रास्ता मास्को से पेकिंग, और पेकिंग से कलकत्ता होता हुआ लंदन जाएगा। कलकत्ते तक पैर सुनाई पड़ने लगे। लेनिन की भविष्यवाणी सही होने का डर है।
संन्यास अब तो एक ही तरह बच सकता है कि संन्यासी स्वनिर्भर हो। समाज पर, किसी पर निर्भर होकर न जीए। तभी हो सकता है स्वनिर्भर, जब वह संसार में हो, भागे न। अन्यथा स्वनिर्भर कैसे हो सकता है?
थाईलैंड में चार करोड़ की आबादी है, बीस लाख संन्यासी हैं! मुल्क घबड़ा गया है। लोग परेशान हो गए हैं। बीस लाख लोगों को चार करोड़ की आबादी कैसे खिलाए, कैसे पिलाए, क्या करे! अदालतें विचार करती हैं कानून बनाने का। संसद निर्णय लेती है कि कोई सख्त नियम बनाओ कि सिर्फ सरकार जब आज्ञा दे किसी आदमी को, तब वह संन्यासी हो सकता है।
जब संन्यासी की आज्ञा सरकार से लेना पड़े, तो उसमें भी रिश्वत हो जाएगी! उसमें भी जो रिश्वत लगा सकेगा, वह संन्यासी हो जाएगा। संन्यासी होने के लिए रिश्वत देनी पड़ेगी, कि सरकारी लाइसेंस लेना पड़ेगा, फिर संन्यास की सुगंध और संन्यास की स्वतंत्रता कहां रह जाएगी!
इसलिए मैं यह देखता हूं, भविष्य को ध्यान में रख कर भी, कि अब एक संन्यास का नया अभियान होना चाहिए, जिसमें कि संन्यासी घर में होगा, गृहस्थ होगा, पति होगा, पिता होगा, भाई होगा। शिक्षक, दूकानदार, मजदूर, वह जो है, वही होगा। सबका होगा। सब धर्म उसके अपने होंगे। सिर्फ धार्मिक होगा।
धर्मों के विरोध ने दुनिया को बहुत गंदी कलह से भर दिया है। इतना दुखद
हो गया है सब कि ऐसा लगने लगा है कि धर्मों से शायद फायदा कम हुआ, नुकसान ज्यादा हुआ। जब देखो तब धर्म के नाम पर खून बहता है! और जिस धर्म के नाम पर खून बहता हो, अगर बच्चे उस धर्म को इनकार कर दें; और जिन पंडितों की बकवास से खून बहता हो, अगर बच्चे उन पंडितों को ही इनकार कर दें और कहें कि बंद करो तुम्हारी किताबें, तुम्हारे कुरान और गीताएं, अब नहीं चाहिए--तो कुछ आश्चर्य तो नहीं है। स्वाभाविक है।
यह बंद करना पड़े। यह बंद तभी हो सकता है, एक ही रास्ता है इसका, और वह रास्ता यह है कि संन्यास का फूल इतना ऊंचा उठे सीमाओं से कि सब धर्म उसके अपने हो जाएं और कोई एक धर्म उसका अपना न रहे। तो हम इस पृथ्वी को जोड़ सकते हैं। अब तक धर्मों ने तोड़ा, उसे कहीं से जोड़ना पड़ेगा। इसलिए मैं कहता हूं, हिंदू आए, मुसलमान आए, जैन आए, ईसाई आए। उसे चर्च में प्रार्थना करनी हो, चर्च में करे; मंदिर में, तो मंदिर में; स्थानक में, तो स्थानक में; मस्जिद में, तो मस्जिद में। उसे जहां जो करना हो, करे। लेकिन वह अपने मन से संप्रदाय का विशेषण अलग कर दे, मुक्त हो जाए। सिर्फ संन्यासी हो जाए; सिर्फ धर्म का हो जाए। यह दूसरी बात।
और तीसरी बात, मेरे संन्यास में सिर्फ एक अनिवार्यता है, एक अनिवार्य शर्त है, और वह है ध्यान। बाकी कोई व्रत-नियम ऊपर से मैं थोपने के लिए राजी नहीं हूं। क्योंकि जो भी व्रत और नियम ऊपर से थोपे जाते हैं, वे पाखंड का

निर्माण कर देते हैं। सिर्फ ध्यान की टेक्नीक संन्यासी सीखे; प्रयोग करे; ध्यान में गहरा उतरे।
और मेरी अपनी समझ और सारी मनुष्य-जाति के अनुभव का सार-निचोड़ यह है कि
जो ध्यान में गहरा उतर जाए, वह योगाग्नि में ही गहरा उतर रहा है। उसकी वृत्तियां भस्म हो जाती हैं, उसके इंद्रियों के रस खो जाते हैं। वह धीरे- धीरे सहज--सहज, जबरदस्ती नहीं, बलात नहीं--सहज रूपांतरित होता चला जाता है। उसके भीतर से ही सब बदल जाता है। उसके बाहर के सब संबंध वैसे ही बने रहते हैं; वह भीतर से बदल जाता है। इसलिए सारी दुनिया उसके लिए बदल जाती है। ध्यान के अतिरिक्त संन्यासी के लिए और कोई अनिवार्यता नहीं है।
कपड़े आप देखते हैं गैरिक, संन्यासी पहने हुए हैं। यह मैंने सुबह जैसा कहा, गांठ बांधने जैसा इनका उपयोग है। चौबीस घंटे याद रह सकेगा; स्मरण, रिमेंबरिंग रह सकेगी कि मैं संन्यासी हूं। बस, यह स्मरण इनको रह सके, इसलिए इन्हें गैरिक वस्त्र दे दिए हैं। गैरिक वस्त्र भी जान कर दिए हैं; वे अग्नि के रंग के वस्त्र हैं। भीतर भी ध्यान की अग्नि जलानी है। उसमें सब जला डालना है। भीतर भी ध्यान का यज्ञ जलाना है, उसमें सब आहुति दे देनी है।
उनके गलों में आप मालाएं देख रहे हैं। उन मालाओं में एक सौ आठ गुरिए हैं। वे एक सौ आठ ध्यान की विधियों के प्रतीक हैं। और उन्हें स्मरण रखने के लिए दिया है कि वे भलीभांति जानें कि चाहे अपने हाथ में एक ही गुरिया हो, लेकिन और एक सौ सात मार्गों से भी मनुष्य पहुंचा है, पहुंच सकता है। और एक सौ आठ गुरिए कितने ही अलग हों, उनके भीतर पिरोया हुआ धागा एक ही है। उस एक का स्मरण बना रहे एक सौ आठ विधियों में, ताकि कभी उनके मन में यह ख्याल न आए और कोई एकांगीपन न पकड़ जाए कि मेरा ही मार्ग, मैं जो हूं, वही रास्ता पहुंचाता है। नहीं; सभी रास्ते पहुंचा देते हैं। सभी रास्ते पहुंचा देते हैं।
उनकी मालाओं में एक तस्वीर आप देख रहे हैं। शायद आपको भ्रम होगा कि मेरी है। मेरी बिल्कुल नहीं है। क्योंकि मेरी तस्वीर उतारने का कोई उपाय नहीं है। तस्वीर किसी की उतारी नहीं जा सकती; सिर्फ शरीरों की उतारी जा सकती है। मैं उनका गवाह हूं, इसलिए उन्होंने मेरे शरीर की तस्वीर लटका ली है। मैं सिर्फ गवाह हूं, गुरु नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि गुरु तो सिवाय परमात्मा के और कोई भी नहीं है। मैं सिर्फ विटनेस हूं कि मेरे सामने उन्होंने कसम ली है इस संन्यास की। मैं उनका गवाह भर हूं। और इसलिए वे मेरे शरीर की रेखाकृति लटकाए हुए हैं, ताकि उनको स्मरण रहे कि उनके संन्यास में वे अकेले नहीं हैं; एक गवाह भी है। और उनके डूबने के साथ उनका गवाह भी डूबेगा। बस, इतने स्मरण भर के लिए।
ध्यान में वे गहरे उतरें। ध्यान के बहुत रास्ते हैं। अभी उनको दो रास्तों पर मैं प्रयोग करवा रहा हूं। दोनों रास्ते सिंक्रोनाइज कर सकें, इस तरह के हैं; तालमेल हो सकें, इस तरह के हैं। एक ध्यान की प्रक्रिया मैं उनसे करवा रहा हूं जो कि प्रगाढ़तम प्रक्रिया है; बहुत विगरस है और इस सदी के योग्य है। उस ध्यान की प्रक्रिया के साथ उनको कीर्तन और भजन के लिए भी कह रहा हूं; क्योंकि वह ध्यान की प्रक्रिया करने के बाद कीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है जो आप कहीं भी देख लेते हैं। आप जब देखते हैं कीर्तन, तो आप सोचते होंगे कि ठीक है; कोई भी ऐसा कीर्तन कर रहा है; ऐसा ही यह कीर्तन भी है। इस भूल में आप मत पड़ना। क्योंकि जिस ध्यान के प्रयोग को वे कर रहे हैं, उस प्रयोग के बाद यह कीर्तन कुछ और ही भीतर रस की धार छोड़ देता है।
आप भी उस प्रयोग को ध्यान के करके इसे करेंगे, तब आपको पता चलेगा कि यह कीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है। यह कीर्तन एक ध्यान की प्रक्रिया का आनुषांगिक अंग है। और उस आनुषांगिक अंग में जब वे लीन और डूब जाते हैं, तब वे करीब-करीब अपने में नहीं होते, परमात्मा में होते हैं। और वह जो होने का अगर एक क्षण भी मिल जाए चौबीस घंटे में, तो काफी है। उससे जो अमृत की एक बूंद मिल जाती है, वह चौबीस घंटों को जीवन के रस से भर जाती है।
जिन मित्रों को भी जरा भी ख्याल हो, वे हिम्मत करें। और ध्यान रखें... अभी कल ही कोई मेरे पास आया। उसने कहा कि सत्तर प्रतिशत तो मेरी इच्छा है कि लूं संन्यास; तीस प्रतिशत मन डांवाडोल होता है। इसलिए नहीं!

तो मैंने कहा, तीस प्रतिशत मन कहता है मत लो, तो तुम नहीं लेते; तीस प्रतिशत की मानते हो! और सत्तर प्रतिशत कहता है लो, और सत्तर प्रतिशत की नहीं मानते हो! तो तुम्हारे पास बुद्धि है? और कोई सोचता हो कि जब हंड्रेड परसेंट, सौ प्रतिशत मन होगा तब लेंगे, तो मौत पहले आ जाएगी। हंड्रेड परसेंट मरने के बाद होता है। इससे पहले कभी मन होता नहीं। सिर्फ मरने के बाद, जब आपकी लाश चढ़ाई जाती है चिता पर, तब हंड्रेड परसेंट मन संन्यास का होता है। लेकिन तब कोई उपाय नहीं रहता।
जिंदगी में कभी मन सौ प्रतिशत किसी बात पर नहीं होता। लेकिन जब आप क्रोध करते हैं, तब आप हंड्रेड परसेंट मन के लिए रुकते हैं? जब आप चोरी करते हैं, तब हंड्रेड परसेंट मन के लिए रुकते हैं? जब बेईमानी करते हैं, तब हंड्रेड परसेंट मन के लिए रुकते हैं? कहते हैं कि अभी बेईमानी नहीं करूंगा, क्योंकि अभी मन का एक हिस्सा कह रहा है, मत करो; सौ प्रतिशत हो जाने दो! लेकिन जब संन्यास का सवाल उठता है, तब सौ प्रतिशत के लिए रुकते हैं! बेईमानी किसके साथ कर रहे हो? आदमी अपने को धोखा देने में बहुत कुशल है। एक आखिरी बात, फिर सुबह लेंगे। फिर अभी कीर्तन-भजन में संन्यासी डूबेंगे, आपको भी निमंत्रण देता हूं। खड़े देखें मत। खड़े देख कर कुछ पता नहीं चलेगा; लोग नाचते हुए दिखाई पड़ेंगे। डूबें उनके साथ, तो पता चलेगा, उनके भीतर क्या हो रहा है। उस रस का एक कण अगर आपको भी मिल जाए, तो शायद आपकी जिंदगी में फर्क हो।
संन्यास या शुभ का कोई भी ख्याल जब भी उठ आए, तब देर मत करना। क्योंकि अशुभ में तो हम कभी देर नहीं करते। अशुभ को कोई पोस्टपोन नहीं करता। शुभ को हम पोस्टपोन करते हैं।
अनेक मित्र खबर ले आते हैं कि कहीं मेरा संप्रदाय तो नहीं बन जाएगा! कहीं ऐसा तो नहीं हो जाएगा! कहीं कोई मत, पंथ तो नहीं बन जाएगा!
मत, पंथ ऐसे ही बहुत हैं। नये मत, पंथ की कोई जरूरत नहीं है। बीमारियां ऐसे ही काफी हैं; और एक बीमारी जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है।
इसलिए आपसे कहता हूं, यह कोई संप्रदाय नहीं है। संप्रदाय बनता ही किसी के खिलाफ है। संप्रदाय बनता ही किसी के खिलाफ है। ये संन्यासी किसी के खिलाफ नहीं हैं। ये सब धर्मों के भीतर जो सारभूत है, उसके पक्ष में हैं। परसों तो एक मुसलमान महिला ने संन्यास लिया है। उसके छह दिन पहले एक ईसाई युवक संन्यास लेकर गया है। ये जाएंगे अपने चर्चों में, अपनी मस्जिदों में, अपने मंदिरों में। इसमें जैन हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। उनसे कुछ उनका छीनना नहीं है। उनके पास जो है, उसे ही शुद्धतम उनसे कह देना है। अभी गीता पर बोल रहा हूं, अगले वर्ष कुरान पर बोलूंगा, फिर बाइबिल पर बोलूंगा; ताकि जो-जो शुद्ध वहां है, वह पूरी की पूरी बात मैं आपको कह दूं। जिसे जहां से लेना हो, वहां से ले ले। जिसे जिस कुएं से पीना हो, पानी पी ले। क्योंकि पानी एक ही सागर का है। कुएं का मोह भर न करे; इतना भर न कहे कि मेरे कुएं में ही पानी है, और किसी के कुएं में पानी नहीं है। फिर कोई संप्रदाय नहीं बनता, कोई मत नहीं बनता, कोई पंथ नहीं बनता।
सोचें। और स्फुरणा लगती हो, तो संन्यास में कदम रखें; जहां हैं, वहीं। कुछ आपसे छीनता नहीं। आपके भीतर के व्यर्थ को ही ता.ेडना है; सार्थक को वहीं रहने देना है।

ओशो, आश्रमों की चर्चा आपने की और उम्र का भी विभाजन किया। संन्यास चौथी अवस्था में आता है। तो आप बहुत छोटी उम्र के लोगों को भी संन्यास की दीक्षा दे रहे हैं, क्या यह उचित है?

मैंने कहा कि जीवन का एक क्रम है और संन्यास उसमें अंतिम अवस्था है। लेकिन यह क्रम टूट गया। और अभी तो ब्रह्मचर्य भी अंतिम अवस्था नहीं है। ब्रह्मचर्य पहली अवस्था थी उस क्रम में, यह क्रम टूट गया। अब तो ब्रह्मचर्य अंतिम अवस्था भी नहीं है! पहले की तो बात ही छोड़ दें। मरते क्षण तक आदमी ब्रह्मचर्य की अवस्था में नहीं पहुंचता। तो अब तो संन्यास तो कब्र के आगे ही कहीं कोई अवस्था हो सकती है। और जब बूढ़े ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों, तो मैं कहता हूं, बच्चों को भी हिम्मत करके संन्यासी

होना चाहिए, जस्ट टु बैलेंस, संतुलन बनाए रखने को। जब बूढ़े भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों, तो बच्चों को भी संन्यासी होने का साहस करना चाहिए। तो शायद बूढ़ों को भी शर्म आनी शुरू हो, अन्यथा बूढ़ों को शर्म आने वाली नहीं है। एक तो इसलिए।
और दूसरा इसलिए भी कि जीवन का जो क्रम है, उस क्रम में बहुत सी बातें इंप्लाइड हैं, उसमें बहुत सी बातें अंतर्गर्भित हैं। जैसे महावीर ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया, बुद्ध ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया। क्योंकि जिनके जीवन की पिछले जन्म की यात्रा वहां पहुंच गई जहां से इस जन्म में शुरू से ही संन्यास हो सकता है, वे पचहत्तर वर्ष तक प्रतीक्षा करें, यह बेमानी है। यही जन्म सब कुछ नहीं है। हम इस जन्म में कोरे कागज, टेबुलारेसा की तरह पैदा नहीं होते हैं, जैसा कि रूसो और सारे लोग मानते हैं। गलत मानते हैं। हम कोरे कागज की तरह पैदा नहीं होते। हम सब बिल्ट-इन-प्रोग्रैम लेकर पैदा होते हैं। हमने पिछले जन्म में जो भी किया, जाना, सोचा, समझा है, वह सब हमारे साथ जन्मता है। इसलिए जीवन के साधारण क्रम में यह बात सच है कि आदमी चौथी अवस्था में संन्यास को उपलब्ध हो, लेकिन जो लोग पिछले जन्म से संन्यास का गहरा अनुभव लेकर आए हों, या जीवन के रस से पूरी तरह डिसइल्यूजंड होकर आए हों, उनके लिए कोई भी कारण नहीं है। लेकिन वे सदा अपवाद होंगे।
इसलिए बुद्ध और महावीर ने अपवाद के लिए मार्ग खोजा। कभी-कभी नियम भी बंधन बन जाते हैं, उसके लिए हमें अपवाद छोड़ना पड़ता है। आइंस्टीन को अगर हम गणित उसी ढंग से सिखाएं जिस ढंग से हम सबको सिखाते हैं, तो हम आइंस्टीन की शक्ति को जाया करेंगे। अगर हम मोजार्ट को संगीत उसी तरह सिखाएं जिस तरह हम सबको सिखाते हैं, तो हम उसकी शक्ति को बहुत जाया करेंगे। मोजार्ट ने तीन साल की उम्र में संगीत में वह स्थिति पा ली, जो कि कोई भी आदमी अभ्यास करके तीस साल में नहीं पा सकता है। तब मोजार्ट के लिए हमें अपवाद बनाना पड़ेगा। बीथोवन ने सात साल में संगीत में वह स्थिति पा ली, जो कि संगीतज्ञ सत्तर साल की उम्र में नहीं पा सकते अभ्यास करके। तो बीथोवन के लिए हमें अलग नियम बनाना पड़ेगा। इनके लिए हमें नियम वही नहीं देने पड़ेंगे।
इसलिए हर नियम के अपवाद तो होते ही हैं। और अपवाद से नियम टूटता नहीं, सिर्फ सिद्ध होता है। एक्सेप्शन प्रूव्स दि रूल। वह जो अपवाद है, वह सिद्ध करता है कि अपवाद है, इसलिए शेष सबके लिए नियम प्रतिकूल है।
तो ऐसा नहीं है कि भारत में बचपन से संन्यास लेने वाले लोग न थे, वे थे, लेकिन वे अपवाद थे। और आज तो अपवाद को नियम बनाना पड़ेगा। क्यों बनाना पड़ेगा? वह इसलिए बनाना पड़ेगा, कि आज तो चीजें इतनी रुग्ण और अस्तव्यस्त हो गई हैं कि अगर हम प्रतीक्षा करें कि लोग वृद्धावस्था में संन्यस्त हो जाएंगे, तो हमारी प्रतीक्षा व्यर्थ होने वाली है। उसके कई कारण हैं। वृद्धावस्था में संन्यास तभी फलित हो सकता है, जब तीन आश्रम पहले गुजरे हों, अन्यथा फलित नहीं हो सकता। आप कहें कि वृक्ष में फूल आएंगे वसंत में। लेकिन वसंत में फूल तभी आ सकते हैं, जब बीज बोए गए हों, जब खाद डाली गई हो, जब वर्षा में पानी भी पड़ा हो और गर्मी में धूप भी मिली हो। न गर्मी में धूप आई, न वर्षा में पानी गिरा, न बीज बोए गए, न माली ने खाद दिया--और वसंत में फूल की प्रतीक्षा कर रहे हैं!
चौथा आश्रम संन्यास फलित होता था, यदि तीन आश्रम नियमबद्ध रूप से पहले गुजरे हों, अन्यथा फलित नहीं होगा। ब्रह्मचर्य बीता हो पच्चीस वर्ष का, गार्हस्थ्य बीता हो पच्चीस वर्ष का, वानप्रस्थ बीता हो पच्चीस वर्ष का, तब अनिवार्यरूपेण, गणित के हल की तरह, चौथे आश्रम का चरण उठता था।
आज तो कठिनाई है। आज तो तीन चरण का कोई उपाय नहीं रहा। तो अब दो ही उपाय हैं। एक तो उपाय यह है कि हम संन्यास के सुंदरतम फूल को--जिससे सुंदर फूल जीवन में दूसरा नहीं खिलता--मुरझा जाने दें, उसे खिलने ही न दें। और या फिर हिम्मत करें और जहां भी संभव हो सके, जिस स्थिति में भी संभव हो सके, संन्यास के फूल को खिलाने की कोशिश करें।
इसका यह मतलब नहीं है कि सारे लोग संन्यासी हो सकते हैं। असल में जिसके मन में भी आकांक्षा पैदा होती है संन्यास की, उसके प्राण उसे सूचना

दे रहे हैं कि उसके पिछले जन्मों में कुछ अर्जित है, जो संन्यास बन सकता है।
फिर मैं यह कहता हूं कि बुरे काम को करके सफल हो जाना भी बुरा है; अच्छे काम को करके असफल हो जाना भी बुरा नहीं है। एक आदमी चोरी करके सफल भी हो जाए, तो बुरा है; और एक आदमी संन्यासी होकर असफल भी हो जाए, तो बुरा नहीं है। अच्छे की तरफ आकांक्षा और प्रयास भी बहुत बड़ी घटना है। और अच्छे के मार्ग पर हार जाना भी जीत है और बुरे के मार्ग पर जीत जाना भी हार है। और आज हारेंगे, तो कल जीतेंगे। इस जन्म में हारेंगे, तो अगले जन्म में जीतेंगे। लेकिन प्रयास, आकांक्षा, अभीप्सा होनी चाहिए।
फिर चौथे चरण में जो संन्यास आता था, उसकी व्याख्या बिल्कुल अलग थी;
और जिसे मैं संन्यास कहता हूं, उसकी व्याख्या को मजबूरी में अलग करना पड़ा है--मजबूरी में, स्मरण रखें। चौथे चरण में जो संन्यास आता था, वह पूरे जीवन से ऐसे अलग हो जाना था, जैसे पका हुआ फल वृक्ष से अलग हो जाता है, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर जाता है। न वृक्ष को खबर मिलती है, न सूखे पत्ते को पता चलता, कब अलग हो गए। वह बहुत नेचरल रिनन्सिएशन था। उसके कारण हैं।
अभी भी पचहत्तर साल का बूढ़ा घर से टूट जाता है--अभी भी। लेकिन न तो बूढ़ा टूटना चाहता है... । अभी भी पचहत्तर साल का बूढ़ा घर में बोझ हो जाता है। कोई कहता नहीं, सब अनुभव करते हैं। बेटे की आंख से पता चलता है, बहू की आंख से पता चलता है, घर के बच्चों से पता चलता है कि अब इस बूढ़े को विदा होना चाहिए। कोई कहता नहीं; शिष्टाचार कहने नहीं देता; लेकिन अशिष्ट आचरण सब कुछ प्रकट कर देता है। टूट जाता है, टूट ही जाता है। लेकिन बूढ़ा भी हटने को राजी नहीं। वह भी पैर जमा कर जमा रहता है। और जितना हटाने के आंखों में इशारे दिखाई पड़ते हैं, वह उतने ही जोर से जमने की कोशिश करता है। बहुत बेहूदा है, एब्सर्ड है।
असल में वक्त है हर चीज का, जब जुड़े होना चाहिए, और जब टूट जाना चाहिए। वक्त है, जब स्वागत है; और वक्त है, जब अलविदा भी है। समय का जिसे बोध नहीं होता, वह आदमी नासमझ है। पचहत्तर साल की उम्र ठीक वक्त है, क्योंकि तीसरी, चौथी पीढ़ी जीने को तैयार हो गई है। और जब चौथी पीढ़ी जीने को तैयार हो गई, तो आप कट चुके जीवन की धारा से। अब जो नये बच्चे घर में आ रहे हैं, उनसे आपका कोई भी तो संबंध नहीं है। आप उनके लिए करीब-करीब प्रेत हो चुके, घोस्ट हो चुके। अब आपका होना सिर्फ बाधा है। आपकी मौजूदगी सिर्फ जगह घेरती है। आपकी बातें सिर्फ कठिन मालूम पड़ती हैं। आपका होना ही बोझ हो गया है। उचित है कि हट जाएं; वैज्ञानिक है कि हट जाएं।
लेकिन नहीं, आप कहां हट कर जाएं? ख्याल ही भूल गया है। ख्याल इसलिए भूल गया है कि तीन चरण पूरे नहीं हुए। अन्यथा बच्चे हटाते, उसके पहले आप हट जाते। और जो पिता बच्चों के हटाने के पहले हट जाता है, वह कभी अपना आदर नहीं खोता है, कभी अपना आदर नहीं खोता। जो मेहमान विदा करने के पहले विदा हो जाता है, वह सदा स्वागतपूर्ण विदा पाता है। जो मेहमान डटा ही रहता है जब तक कि घर के लोग पुलिस को न बुला लाएं, तब फिर सब अशोभन हो जाता है। इससे घर के लोगों को भी तकलीफ होती है, अतिथि को भी तकलीफ होती है और आतिथ्य का भाव भी नष्ट होता है। ठीक समझदार आदमी वह है कि जब लोग रोक रहे थे, तभी विदा हो जाए; जब घर के लोग रोते हों, तभी विदा हो जाए; जब घर के लोग कहते हों कि रुकें, अभी मत जाएं, तभी विदा हो जाए। यही ठीक क्षण है। वह अपने पीछे एक मधुर स्मृति छोड़ जाए। वह मधुर स्मृति घर के लोगों के लिए ज्यादा प्रीतिकर होगी, बजाय आपकी कठिन मौजूदगी के।
लेकिन वह चौथा चरण था। तीन चरण जिसने पूरे किए हों, और जिसने ब्रह्मचर्य का आनंद लिया हो, और जिसने काम का दुख भोगा हो, और जिसने वानप्रस्थ होने की, वन की तरफ मुख रखने की अभीप्सा और प्रार्थना में क्षण बिताए हों, वह चौथे चरण में अपने आप, चुपचाप--चुपचाप--विदा हो जाता है। नीत्से ने कहीं लिखा है, राइपननेस इ.ज आल, पक जाना सब कुछ है। लेकिन अब तो कोई नहीं पकता। पका हुआ आदमी भी लोगों को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी कच्चा हूं।
मैंने सुना है कि एक स्कूल में शिक्षक बच्चों से पूछ रहा था कि एक व्यक्ति उन्नीस सौ में पैदा हुआ, तो उन्नीस सौ पचास में उसकी उम्र कितनी

होगी? तो एक बच्चे ने खड़े होकर पूछा कि वह स्त्री है कि पुरुष? क्योंकि अगर पुरुष होगा, तो पचास साल का हो गया होगा। और अगर स्त्री होगी, तो कहना मुश्किल है कि कितने साल की हुई हो। तीस की भी हो सकती है, चालीस की भी हो सकती है, पच्चीस की भी हो सकती है।
लेकिन जो स्त्री पर लागू होता था, अब वह पुरुष पर भी लागू है। अब उसमें कोई फर्क नहीं है। पका हुआ भी कच्चे होने का धोखा देना चाहता है। बूढ़ा आदमी भी नयी जवान लड़कियों से राग-रंग रचाना चाहता है। इसलिए नहीं कि नयी लड़की बहुत प्रीतिकर लगती है, बल्कि इसलिए कि वह अपने को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी लड़का ही हूं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बूढ़े लोग कम उम्र की स्त्रियों में इसीलिए उत्सुक होते हैं कि वे भुलाना चाहते हैं कि हम बूढ़े हैं। और अगर कम उम्र की स्त्रियां उनमें उत्सुक हो जाएं, तो वे भूल जाते हैं कि वे बूढ़े हैं। अगर बर्ट्रेंड रसेल अस्सी साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी करता है, तो इसका असली कारण यह नहीं है कि बीस साल की लड़की बहुत आकर्षक है। अस्सी साल के बूढ़े को आकर्षक नहीं रह जानी चाहिए। और साधारण बूढ़े को नहीं, बर्ट्रेंड रसेल की हैसियत के बूढ़े को। हमारे मुल्क में अगर दो हजार साल पहले बर्टें्रड रसेल पैदा हुआ होता, तो अस्सी साल की उम्र में वह महर्षि हो जाता। लेकिन इंग्लैंड में वह अस्सी साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी रचाने का उपाय करता है। वह धोखा दे रहा है अपने को। अभी भी मानने का मन होता है कि मैं बीस ही साल का हूं। और अगर बीस साल की लड़की उत्सुक हो जाए, तो धोखा पूरा हो जाता है, सेल्फ डिसेप्शन पूरा हो जाता है। क्योंकि बीस साल की लड़की उत्सुक ही नहीं हो सकती न अस्सी साल के बूढ़े में! वह अस्सी साल का बूढ़ा भी मान लेता है कि अभी दो-चार ही साल बीते हैं बीस साल को।
यह जो मनोदशा है, इस मनोदशा में संन्यास की नयी ही धारणा का मेरा ख्याल है। अब हमें संन्यास के लिए चौथे चरण की प्रतीक्षा करनी कठिन है। आना चाहिए वह वक्त, जब हम प्रतीक्षा कर सकें। लेकिन वह तभी होगा, जब आश्रम की व्यवस्था पृथ्वी पर लौटे। उसे लौटाने के लिए श्रम में लगना जरूरी है। लेकिन जब तक वह नहीं होता, तब तक हमें संन्यास की एक नयी धारणा पर, कहना चाहिए ट्रांजिटरी कंसेप्शन पर, एक संक्रमण की धारणा पर काम करना पड़ेगा। और वह यह कि जो जहां है, वृक्ष से टूटने की तो कोशिश न करे, क्योंकि पका फल ही टूटता है। लेकिन कच्चा फल भी वृक्ष पर रहते हुए अनासक्त हो सकता है। जब पका हुआ फल कच्चे होने का धोखा दे सकता है, तो कच्चा फल पके होने का अनुभव क्यों नहीं कर सकता है? इसलिए जो जहां है, वह वहीं संन्यस्त हो जाए।
मेरे संन्यास की धारणा जीवन छोड़ कर भागने वाली नहीं है। मेरे संन्यास
की धारणा वानप्रस्थ के करीब है। मेरे संन्यास की धारणा वानप्रस्थ के करीब है। और मैं मानता हूं, वानप्रस्थी ही नहीं हैं, तो संन्यासी कहां से पैदा होंगे! तो मैं जिसको अभी संन्यास कह रहा हूं, ठीक से समझें तो वानप्रस्थी। वानप्रस्थी का मतलब यह है कि वह घर में है, लेकिन रुख उसका मंदिर की तरफ है। दुकान पर है, लेकिन ध्यान उसका मंदिर की तरफ है। काम में लगा है, लेकिन ध्यान किसी दिन काम से मुक्त हो जाने की तरफ है। राग में है, रंग में है, फिर भी साक्षी की तरफ उसका ध्यान दौड़ रहा है। उसकी सुरति परमात्मा में लगी है। इसके स्मरण का नाम मैं अभी संन्यास कहता हूं।
यह संन्यास की बड़ी प्राथमिक धारणा है। लेकिन मैं मानता हूं कि जैसी
आज समाज की स्थिति है, उसमें यह प्राथमिक संन्यास ही फलित हो जाए, तो हम अंतिम संन्यास की भी आशा कर सकते हैं। बीज हो जाए, तो वृक्ष की भी आशा कर सकते हैं। इसलिए जो जहां है, उसे मैं वहीं संन्यासी होने को कहता हूं--घर में, दुकान पर, बाजार में--जो जहां है, वहीं संन्यासी होने को कहता हूं, सब करते हुए। लेकिन सब करते हुए भी संन्यासी होने की जो धारणा है, संकल्प है, वह सबसे तोड़ देगा और साक्षी पैदा होने लगेगा। आज नहीं कल, यह वानप्रस्थ जीवन संन्यस्त जीवन में रूपांतरित हो जाए, ऐसी आकांक्षा और आशा की जा सकती है।
"नव-संन्यास क्या?"
गीता-दर्शन अध्याय 4 के दसवें व अध्याय 3 के छठवें प्रवचनों से संकलित

मैं कहता आंखन देखी
अड़तीसवां प्रवचन

सावधिक संन्यास की धारणा

मेरे मन में इधर बहुत दिनों से एक बात निरंतर ख्याल में आती है और वह
यह कि सारी दुनिया से आने वाले दिनों में संन्यासी के समाप्त हो जाने की संभावना है। संन्यासी आने वाले पचास वर्षों बाद पृथ्वी पर नहीं बच सकेगा। वह संस्था विलीन हो जाएगी। उस संस्था के नीचे की ईंटें तो खिसका दी गई हैं, उसका मकान भी गिर जाएगा।
लेकिन संन्यास इतनी बहुमूल्य चीज है कि जिस दिन दुनिया से विलीन हो जाएगी उस दिन दुनिया का बहुत अहित हो जाएगा।
मेरे देखे, संन्यासी तो चला जाना चाहिए, संन्यास बच जाना चाहिए। और उसके लिए पीरियाडिकल संन्यास का, पीरियाडिकल रिनन्सिएशन का मेरे मन में ख्याल है। वर्ष में, ऐसा कोई आदमी नहीं होना चाहिए, जो एकाध महीने के लिए संन्यास न ले ले। जीवन में तो कोई भी ऐसा आदमी नहीं होना चाहिए जो दो-चार बार संन्यासी न हो गया हो।
स्थायी संन्यास खतरनाक सिद्ध हुआ है, कि कोई आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाए। उसके खतरे दो हैं। एक खतरा तो यह है कि वह आदमी जीवन से दूर हट जाता है। और परमात्मा की, प्रेम की, या आनंद की जो भी उपलब्धियां हैं, वे जीवन के घनीभूत अनुभव में हैं, जीवन के बाहर नहीं। दूसरी बात यह होती है कि जो आदमी जीवन से हट जाता है, उसकी जो शांति, उसका जो आनंद है, वह जीवन में बिखरने से बच जाता है, जीवन उसका साझीदार नहीं हो पाता। तीसरी बात यह है, लोगों को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि गृहस्थ अलग है और संन्यासी अलग है। तो गलत काम करते वक्त भी हमें यह ख्याल रहता है कि हम तो गृहस्थ हैं, यह तो करना हमारी मजबूरी है, संन्यासी हो जाएंगे तो हम नहीं करेंगे। तो धर्म और जीवन के बीच एक फासला पैदा हो जाता है।
मेरी दृष्टि में, संन्यास जीवन का अंग होना चाहिए। संन्यास जीवन को समझने और पहचानने की विधि होनी चाहिए। ऐसे आदमी का जीवन अधूरा और अधूरी शिक्षा माननी चाहिए उसकी, जो आदमी वर्ष में थोड़े दिनों के लिए संन्यासी न हो जाता हो! अगर बारह महीने में एक महीने या दो महीने कोई व्यक्ति परिपूर्ण संन्यासी का जीवन जीता हो तो उसके जीवन में आनंद के इतने द्वार खुल जाएंगे जिसकी उसे कल्पना भी नहीं हो सकती। इन दो महीनों में वह संन्यासी रहेगा। फिर पूरी तरह ही संन्यासी रहेगा दो महीने। इन दो महीनों में दुनिया से उसका कोई भी संबंध नहीं है। संन्यासी का भी जितना संबंध होता है दुनिया से उतना भी उसका दो महीने में संबंध नहीं है।
और यह जान कर आपको हैरानी होगी, जो आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाता है वह गृहस्थियों के ऊपर निर्भर हो जाता है। इसलिए वह दिखता तो है कि संसार से दूर गया, लेकिन संसार के पास उसे रहना पड़ता है।
लेकिन जो आदमी बारह महीने में दो महीने संन्यासी होता है वह किसी के ऊपर निर्भर नहीं होता, वह अपने ही दस महीने का जो गृहस्थ जीवन था उस पर निर्भर होता है। वह संसार के ऊपर आश्रित नहीं होता। इसलिए किसी से भयभीत भी नहीं होता, किसी से संबंधित भी नहीं होता।
अगर एक आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी होगा तो वह किसी का आश्रित होगा ही; वह बच नहीं सकता। और अंतिम परिणाम यह होता है कि संन्यासी दिखाई तो पड़ते हैं कि हमारे नेता हैं, लेकिन वे अनुयायियों के भी अनुयायी हो जाते हैं। वे उनके भी पीछे चलते हैं। संन्यासियों को आज्ञा देते हैं गृहस्थ कि तुम ऐसा करो और वैसा मत करो। गृहस्थ उनका मालिक हो जाता है, क्योंकि उनको रोटी देता है।
संन्यासी गुलाम हो गया है। संन्यासी की गुलामी टूट सकती है एक ही रास्ते से कि आदमी कभी-कभी संन्यासी हो। वर्ष में ग्यारह महीने वह गृहस्थ हो और एक महीने संन्यासी हो। तब वह किसी पर निर्भर नहीं है। वह अपनी ग्यारह महीने की कमाई पर निर्भर है। किसी से उसको लेना-देना नहीं है। और यह एक महीने वह पूरी फ्रीडम, पूरी स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है, बिना

किसी आश्रय के। तो यह एक महीने में वह परिपूर्ण संन्यास का अनुभव करेगा जो कि कोई संन्यासी कभी नहीं कर पाता है। तब वह पूर्ण मुक्ति से जी सकता है। और यह एक महीने में जिस विधि से वह जीएगा और जिस आनंद को, जिस शांति को अनुभव करेगा, और जिस स्वतंत्रता में प्रवेश करेगा--वापस लौट जाएगा एक महीने के बाद जिंदगी में। वापस लौट जाएगा और जिंदगी के घनेपन में प्रयोग करेगा कि जो उसने एकांत में सीखा था, क्या भीड़ में उसका उपयोग कर सकता है? क्योंकि एकांत में शिक्षा होती है, भीड़ में परीक्षा होती है। जो भीड़
से बच जाता है वह परीक्षा से बच जाता है। उसकी शिक्षा अधूरी है। जो मैंने अकेले में जाना है, अगर भीड़ में मैं उसका उपयोग नहीं कर सकता हूं तो वह जानना गलत है। वह बहुत मूल्य का नहीं है। वहां कसौटी है, क्योंकि वहां विरोध है, वहां परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं, वहां प्रतिकूल हैं। वहां भी मैं शांत रह सकता हूं या नहीं? वहां भी मैं, अपने भीतर जिस संन्यास को मैंने एक महीने साधा है और जो आनंद पाया है, क्या मैं घर के भीतर, दुकान पर बैठ कर भी उस संन्यास को साध सकता हूं या नहीं?
यह ग्यारह महीना उसे निरीक्षण करना है, आब्जर्व करना है। वर्ष भर बाद उसे फिर महीने भर के लिए लौट आना है, ताकि वह फिर जो वर्ष भर में उसने अनुभव किया है परीक्षा से गुजर कर, उसे और गहरा कर सके। पिछले वर्ष जहां गया था, और नयी सीढ़ियां पार कर सके।
अगर एक आदमी बीस साल की उम्र के बाद सत्तर साल तक जीए और पचास वर्षों में पचास महीने के लिए संन्यासी हो जाए--इस जगत में ऐसा कोई सत्य नहीं है जिससे वह अपरिचित रह जाए, ऐसी कोई अनुभूति नहीं है जिससे वह अनजाना रह जाए।
और यह जो रिनन्सिएशन होगा पीरियाडिकल, यह जो एक अवधि के लिए लिया गया संन्यास होगा, यह उसे जीवन से नहीं तोड़ेगा।
अन्यथा हमारा संन्यासी जो है वह जीवन-विरोधी हो गया। पत्नी और बच्चे उससे भयभीत हैं, मां-बाप उससे भयभीत हैं, क्योंकि वह तो जीवन को उजाड़ कर चला जाएगा।
यह जो कभी-कभी संन्यासी होता है, इससे जीवन को भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि जब यह लौटेगा तो इसकी पत्नी पाएगी कि और भी ज्यादा प्यारा पति होकर लौटा है। उसके बच्चे पाएंगे, वह ज्यादा बेहतर बाप होकर लौटा है। उसकी मां पाएगी कि वह ज्यादा श्रद्धा, ज्यादा प्रेम से, आदर से भरा हुआ बेटा होकर लौटा है।
और तब इस एक महीने के बाद जो वह ग्यारह महीने घर में जीएगा और जो सुगंध उसने पाई है वह बिखरेगी उसके संबंधों में, तो वह दुनिया को बनाएगा।
अब तक संन्यासी ने दुनिया को उजाड़ा है और बिगाड़ा है, उसको बनाया नहीं है। वह जीवन को निर्मित करने में, सृजन करने में सहयोगी और मित्र हो जाएगा।
तो मेरे मन में, एक अवधि के लिए संन्यास अनिवार्य है, वह मेरे ख्याल में है। इस भांति संन्यासी तो दुनिया से समाप्त हो जाए तो फिर कोई डर नहीं है, संन्यास बचा रहेगा। और इस भांति जो संन्यास व्यापक रूप से डिफ्यूज हो जाएगा बड़े पैमाने पर, क्योंकि हर आदमी को हक हो जाएगा फिर संन्यासी होने का--अभी हर आदमी को हक नहीं हो सकता। क्योंकि अभी हर आदमी संन्यासी हो जाए तो जीवन एक मरघट बन जाए, मृत्यु बन जाए।
और जो काम हर आदमी न कर सकता हो, उस काम में कोई भूल है। जो काम हर आदमी
का अधिकार न बन सकता हो, उसमें कोई भूल है।
अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं तो जीवन आज उजड़ जाए, इसी क्षण। तो जो संन्यासी भी हैं उनको भी वापस लौट आना पड़े। तो यह जो आजीवन संन्यास है, यह भ्रांत है, यह गलत है।
ऐसा संन्यास बच सके दुनिया में, उसके लिए एक बड़ा गहरा प्रयोग करना जरूरी है।
"अवधिगत संन्यास" : अनंत की पुकार प्रवचन 5 से संकलित

मैं कहता आंखन देखी
उन्चालीसवां प्रवचन

संन्यास का निर्णय और ध्यान में छलांग

क्या संन्यास ध्यान की गति बढ़ाने में सहायक होता है?

संन्यास का अर्थ ही यही है कि मैं निर्णय लेता हूं कि अब से मेरे जीवन
का केंद्र ध्यान होगा। और कोई अर्थ ही नहीं है संन्यास का। जीवन का केंद्र धन नहीं होगा, यश नहीं होगा, संसार नहीं होगा। जीवन का केंद्र ध्यान होगा, धर्म होगा, परमात्मा होगा--ऐसे निर्णय का नाम ही संन्यास है। जीवन के केंद्र को बदलने की प्रक्रिया संन्यास है। वह जो जीवन के मंदिर में हमने प्रतिष्ठा कर रखी है--इंद्रियों की, वासनाओं की, इच्छाओं की, उनकी जगह मुक्ति की, मोक्ष की, निर्वाण की, प्रभु-मिलन की, मूर्ति की प्रतिष्ठा ध्यान है।
तो जो व्यक्ति ध्यान को जीवन के और कामों में एक काम की तरह करता है, चौबीस घंटों में बहुत कुछ करता है, घंटे भर ध्यान भी कर लेता है--निश्चित ही उस व्यक्ति के बजाय जो व्यक्ति अपने चौबीस घंटे के जीवन को ध्यान को समर्पित करता है, चाहे दुकान पर बैठेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे भोजन करेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे बात करेगा किसी के साथ तो ध्यानपूर्वक, रास्ते पर चलेगा तो ध्यानपूर्वक, रात सोने जाएगा तो ध्यानपूर्वक, सुबह में बिस्तर से उठेगा तो ध्यानपूर्वक--ऐसे व्यक्ति का अर्थ है संन्यासी, जो ध्यान को अपने चौबीस घंटों पर फैलाने की आकांक्षा से भर गया है।
निश्चित ही संन्यास ध्यान के लिए गति देगा। और ध्यान संन्यास के लिए गति देता है। ये संयुक्त घटनाएं हैं। और मनुष्य के मन का नियम है कि निर्णय लेते ही मन बदलना शुरू हो जाता है। आपने भीतर एक निर्णय किया कि आपके मन में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। वह निर्णय ही परिवर्तन के लिए क्रिस्टलाइजेशन बन जाता है।
कभी बैठे-बैठे इतना ही सोचें कि चोरी करनी है, तो तत्काल आप दूसरे आदमी हो जाते हैं--तत्काल! चोरी करनी है इसका निर्णय आपने लिया कि चोरी के लिए जो मदद रूप है, वह मन आपको देना शुरू कर देता है सुझाव कि क्या करें, क्या न करें, कैसे कानून से बचें, क्या होगा, क्या नहीं होगा! एक निर्णय मन में बना कि मन उसके पीछे काम करना शुरू कर देता है। मन आपका गुलाम है। आप जो निर्णय ले लेते हैं, मन उसके लिए सुविधा शुरू कर देता है कि अब जब चोरी करनी ही है तो कब करें, किस प्रकार करें कि फंस न जाएं, मन इसका इंतजाम जुटा देता है।
जैसे ही किसी ने निर्णय लिया कि मैं संन्यास लेता हूं कि मन संन्यास
के लिए भी सहायता पहुंचाना शुरू कर देता है। असल में निर्णय न लेने वाला आदमी ही मन के चक्कर में पड़ता है। जो आदमी निर्णय लेने की कला सीख जाता है, मन उसका गुलाम हो जाता है। वह जो अनिर्णयात्मक स्थिति है वही मन है। इनडिसीसिवनेस इ.ज माइंड। निर्णय की क्षमता, डिसीसिवनेस ही मन से मुक्ति हो जाती है। वह जो निर्णय है, संकल्प है, बीच में खड़ा हो जाता है, मन उसके पीछे चलेगा। लेकिन जिसके पास कोई निर्णय नहीं है, संकल्प नहीं है, उसके पास सिर्फ मन होता है। और उस मन से हम बहुत पीड़ित और परेशान होते हैं। संन्यास का निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है। संन्यास के बाद तो होगा ही, निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है।
और ध्यान रहे, आदमी बहुत अनूठा है। उसका अनूठापन ऐसा है कि कोई अगर आपसे कहे कि दो हजार, या दो करोड़ या अरब तारे हैं, तो आप बिल्कुल मान लेते हैं। लेकिन अगर किसी दीवार पर नया पेंट किया गया हो और लिखा हो कि ताजा पेंट है, छूना मत, तो छूकर देखते ही हैं कि है भी ताजा कि नहीं! जब किया गया हो और लिखा हो कि ताजा पेंट है, छूना मत, तो छूकर देखते ही हैं कि है भी ताजा कि नहीं! जब तक अंगुली खराब न हो जाए तब तक मन नहीं मानता। सूरज को बिना सोचे मान लेते हैं और दीवार पर पेंट नया हो तो छूकर देखने का मन होता है।

जितनी दूर की बात हो उतनी बिना दिक्कत के आदमी मान लेता है। जितनी निकट की बात हो उतनी दिक्कत खड़ी होती है।
संन्यास आपके सर्वाधिक निकट की बात है। उससे निकट की और कोई बात नहीं है। अगर जो विवाह करेंगे तो वह भी दूर की बात है। क्योंकि उसमें दूसरा सम्मिलित है, इनवाल्व्ड है। आप अकेले नहीं हैं। संन्यास अकेली घटना है जिसमें आप अकेले ही हैं, कोई दूसरा सम्मिलित नहीं है। बहुत निकट की बात है। उसमें आप बड़ी परेशानी में हैं। उस निर्णय को लेकर बड़ी कठिनाई होती है मन को।
जितनी बड़ी भीड़ हो हम उतना जल्दी निर्णय ले लेते हैं। अगर दस हजार आदमी
एक मस्जिद को जलाने जा रहे हैं तो हम बिल्कुल मजे से उसमें चले जाते हैं। यदि दस हजार आदमी मंदिर में आग लगा रहे हैं तो हम बराबर सम्मिलित हो जाते हैं। दस हजार लोग हैं, रिस्पांसिबिलिटी, जिम्मेवारी फैली हुई है, आप अकेले जिम्मेवार नहीं हैं, दस हजार आदमी साथ हैं। अगर कल बात हुई तो आप कहेंगे कि इतनी बड़ी भीड़ थी, मेरा होना न होना बराबर था। नहीं भी होता मैं तो भी मंदिर जलने वाला ही था। मैं तो खड़ा था, चला गया। जिम्मेवारी मालूम नहीं पड़ती। लेकिन संन्यास ऐसी घटना है जिसमें सिर्फ तुम ही जिम्मेवार हो, और कोई नहीं; ओनली यू आर रिस्पांसिबल, नो वन एल्स। इसलिए निर्णय करने में बड़ी मुश्किल होती है। अकेले ही हैं, किसी दूसरे पर जिम्मेवारी डाली नहीं जा सकती। किसी से आप यह नहीं कह सकते कि भीड़ की वजह से, तुम्हारी वजह से मैं लेता हूं। इसलिए निर्णय को हम टालते चले जाते हैं। अकेला आदमी जिस दिन निर्णय लेने में समर्थ हो जाता है उसी दिन आत्मा की शक्ति जागनी शुरू होती है, भीड़ के साथ चलने से कभी कोई आत्मा की शक्ति नहीं जगती।
दूसरी मजे की बात है कि लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि नब्बे प्रतिशत तो मेरा मन तैयार है संन्यास लेने के लिए, दस प्रतिशत नहीं है, तो जब पूरा हो जाएगा मेरा सौ प्रतिशत मन तब मैं संन्यास ले लूंगा। लेकिन इस आदमी ने कभी विवाह करते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? चोरी करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? क्रोध करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? गाली देते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! सिर्फ संन्यास के समय यह कहता है कि सौ प्रतिशत मन तैयार होगा तब। यह अपने को धोखा दे रहा है। यह भलीभांति जानता है कि सौ प्रतिशत मन कभी तैयार नहीं होगा, इसलिए बचाव की सुविधा बनाता है। अगर यही धारणा है कि सौ प्रतिशत मन जब तैयार होगा तभी कुछ करेंगे, तो ध्यान रखना, आपका सब करना आपको बंद करना पड़ेगा। सौ प्रतिशत मन आपका कभी किसी चीज में तैयार नहीं होता है। लेकिन बाकी सब काम आदमी जारी रखता है।
और यह भी मजे की बात है कि जब आप तय करते हैं कि नब्बे प्रतिशत मन तो कहता है, दस प्रतिशत अभी नहीं कहता है; तो आपको पता नहीं है कि आप संन्यास नहीं ले रहे हैं तो आप दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को इनकार करते हैं। असल में न लेने में ऐसा लगता है कि जैसे कोई बात ही नहीं हुई। संन्यास न लेना भी निर्णय है। दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को छोड़ देते हैं तो आपकी जिंदगी बहुत दुविधा में भरी जिंदगी हो जाएगी। अगर निर्णय लेना है तो इक्यावन प्रतिशत भी हो तो निर्णय ले लेना चाहिए, उनचास प्रतिशत को छोड़ देना चाहिए।
लेकिन हम ऐसे हैं कि अगर हमें एक प्रतिशत भी गलत कोई बात मन कहता है तो निन्यानबे को छोड़ कर एक प्रतिशत वाला काम कर लेते हैं और निन्यानबे प्रतिशत भी कोई ठीक बात मन कहता हो तो एक प्रतिशत वाली बात पर निर्णय लेते हैं।
ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। कहता जरूर है कि आनंद चाहते हैं, शांति चाहते हैं, लेकिन शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। क्योंकि बातें वह आनंद के चाहने की करता है, लेकिन जो कुछ भी वह करता है उससे दुख ही मिलता है, उस सबसे दुख ही मिलता है। उपाय सब दुख के करता है, बातें आनंद की करता है। और कभी गौर से नहीं देखता है कि मेरा दुख, मैं जो कर रहा हूं, उन्हीं उपायों पर निर्भर है।
संन्यास आनंद का निर्णय है। अब मैं आनंद चाहता हूं, इतना ही नहीं, आनंद को पाने के लिए कुछ करूंगा भी। संन्यास इस बात का निर्णय है कि अब मैं

सिर्फ आनंद की चाह ही नहीं करूंगा, उस चाह को पूरा करने के लिए जीवन दांव पर भी लगाऊंगा। संन्यास इस बात की भी अपने प्रत्यक्ष, अपने सामने घोषणा है कि अब मैं दुख से बचने की कोशिश ही नहीं करूंगा, दुख जिन-जिन चीजों से पैदा होता है उनको छोड़ने का सामर्थ्य और साहस भी जुटाऊंगा।
यह निर्णय लेते ही आपकी जिंदगी नये केंद्र पर रूपांतरित होती है और स्वभावतः ध्यान फैलना शुरू हो जाता है। क्योंकि ध्यान तो सिर्फ एक विधि है। जिसने भी धर्म की ओर जाना शुरू किया, उसे ध्यान की विधि के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि दौड़ते हैं हम धन की तरफ और ध्यान की विधि का उपाय करना चाहते हैं। बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि धन को पाने के लिए ध्यान बाधा बन सकता है, सहयोगी नहीं। क्योंकि धन को पाने के लिए जो-जो भी करना पड़ता है, ध्यान जैसे गहरा होगा, उस सबमें अड़चनें पड़ने लगेंगी, मुश्किल पड़ने लगेगा।
मुझसे कोई पूछता है कि क्या हम ध्यान कर सकते हैं और रिश्वत भी ले सकते हैं?
मैं उनसे कहता हूं कि मजे से रिश्वत लो और ध्यान किए जाओ। क्योंकि जैसे ही ध्यान का बीज थोड़ा सा भी टूटेगा, रिश्वत लेना मुश्किल हो जाएगा, कठिन होता जाएगा। और एक घड़ी आएगी कि पांच रुपये लेते वक्त अमूल्य ध्यान को छोड़ने की क्षमता न रह जाएगी, मुश्किल हो जाएगा।
संन्यास इस बात की घोषणा है जगत के प्रति, और अपने प्रति भी, कि मैं अब परमात्मा की तरफ जाने का सचेतन निर्णय लेता हूं। निश्चित ही उस निर्णय को लेने के बाद उस यात्रा में जाने के लिए जो साधन है उसको करना आसान हो जाता है। इधर मैंने देखा है सैकड़ों व्यक्तियों को कि संन्यास लेते ही उनमें रूपांतरण हो जाता है। जब कुछ करेंगे तब की तो बात अलग, निर्णय लेते ही बहुत कुछ बदल जाता है। लेकिन यह लेना भी बहुत कुछ करना है। एक निर्णय पर पहुंचना, एक दांव लगाना, एक साहस जुटाना, एक छलांग की तैयारी भी छलांग है। आधी छलांग तो तैयारी में ही लग जाती है।
तो निश्चित ही ध्यान की गहराई बढ़ेगी संन्यास से। संन्यास की गहराई बढ़ती है ध्यान से। वे अन्योन्याश्रित हैं।
"नव-संन्यास क्या?" से संकलित प्रवचनांश
क्या संन्यास ध्यान की गति बढ़ाने में सहायक होता है?

न्यास का अर्थ ही यही है कि मैं निर्णय लेता हूं कि अब से मेरे जीवन का केंद्र ध्यान होगा। और कोई अर्थ ही नहीं है संन्यास का। जीवन का केंद्र धन नहीं होगा, यश नहीं होगा, संसार नहीं होगा। जीवन का केंद्र ध्यान होगा, धर्म होगा, परमात्मा होगा--ऐसे निर्णय का नाम ही संन्यास है। जीवन के केंद्र को बदलने की प्रक्रिया संन्यास है। वह जो जीवन के मंदिर में हमने प्रतिष्ठा कर रखी है--इंद्रियों की, वासनाओं की, इच्छाओं की, उनकी जगह मुक्ति की, मोक्ष की, निर्वाण की, प्रभु-मिलन की, मूर्ति की प्रतिष्ठा ध्यान है।
तो जो व्यक्ति ध्यान को जीवन के और कामों में एक काम की तरह करता है, चौबीस घंटों में बहुत कुछ करता है, घंटे भर ध्यान भी कर लेता है--निश्चित ही उस व्यक्ति के बजाय जो व्यक्ति अपने चौबीस घंटे के जीवन को ध्यान को समर्पित करता है, चाहे दुकान पर बैठेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे भोजन करेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे बात करेगा किसी के साथ तो ध्यानपूर्वक, रास्ते पर चलेगा तो ध्यानपूर्वक, रात सोने जाएगा तो ध्यानपूर्वक, सुबह में बिस्तर से उठेगा तो ध्यानपूर्वक--ऐसे व्यक्ति का अर्थ है संन्यासी, जो ध्यान को अपने चौबीस घंटों पर फैलाने की आकांक्षा से भर गया है।
निश्चित ही संन्यास ध्यान के लिए गति देगा। और ध्यान संन्यास के लिए गति देता है। ये संयुक्त घटनाएं हैं। और मनुष्य के मन का नियम है कि निर्णय लेते ही मन बदलना शुरू हो जाता है। आपने भीतर एक निर्णय किया कि आपके मन में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। वह निर्णय ही परिवर्तन के लिए क्रिस्टलाइजेशन बन जाता है।
कभी बैठे-बैठे इतना ही सोचें कि चोरी करनी है, तो तत्काल आप दूसरे आदमी हो जाते हैं--तत्काल! चोरी करनी है इसका निर्णय आपने लिया कि चोरी के

लिए जो मदद रूप है, वह मन आपको देना शुरू कर देता है सुझाव कि क्या करें, क्या न करें, कैसे कानून से बचें, क्या होगा, क्या नहीं होगा! एक निर्णय मन में बना कि मन उसके पीछे काम करना शुरू कर देता है। मन आपका गुलाम है। आप जो निर्णय ले लेते हैं, मन उसके लिए सुविधा शुरू कर देता है कि अब जब चोरी करनी ही है तो कब करें, किस प्रकार करें कि फंस न जाएं, मन इसका इंतजाम जुटा देता है।
जैसे ही किसी ने निर्णय लिया कि मैं संन्यास लेता हूं कि मन संन्यास
के लिए भी सहायता पहुंचाना शुरू कर देता है। असल में निर्णय न लेने वाला आदमी ही मन के चक्कर में पड़ता है। जो आदमी निर्णय लेने की कला सीख जाता है, मन उसका गुलाम हो जाता है। वह जो अनिर्णयात्मक स्थिति है वही मन है। इनडिसीसिवनेस इ.ज माइंड। निर्णय की क्षमता, डिसीसिवनेस ही मन से मुक्ति हो जाती है। वह जो निर्णय है, संकल्प है, बीच में खड़ा हो जाता है, मन उसके पीछे चलेगा। लेकिन जिसके पास कोई निर्णय नहीं है, संकल्प नहीं है, उसके पास सिर्फ मन होता है। और उस मन से हम बहुत पीड़ित और परेशान होते हैं। संन्यास का निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है। संन्यास के बाद तो होगा ही, निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है।
और ध्यान रहे, आदमी बहुत अनूठा है। उसका अनूठापन ऐसा है कि कोई अगर आपसे कहे कि दो हजार, या दो करोड़ या अरब तारे हैं, तो आप बिल्कुल मान लेते हैं। लेकिन अगर किसी दीवार पर नया पेंट किया गया हो और लिखा हो कि ताजा पेंट है, छूना मत, तो छूकर देखते ही हैं कि है भी ताजा कि नहीं! जब किया गया हो और लिखा हो कि ताजा पेंट है, छूना मत, तो छूकर देखते ही हैं कि है भी ताजा कि नहीं! जब तक अंगुली खराब न हो जाए तब तक मन नहीं मानता। सूरज को बिना सोचे मान लेते हैं और दीवार पर पेंट नया हो तो छूकर देखने का मन होता है। जितनी दूर की बात हो उतनी बिना दिक्कत के आदमी मान लेता है। जितनी निकट की बात हो उतनी दिक्कत खड़ी होती है।
संन्यास आपके सर्वाधिक निकट की बात है। उससे निकट की और कोई बात नहीं है। अगर जो विवाह करेंगे तो वह भी दूर की बात है। क्योंकि उसमें दूसरा सम्मिलित है, इनवाल्व्ड है। आप अकेले नहीं हैं। संन्यास अकेली घटना है जिसमें आप अकेले ही हैं, कोई दूसरा सम्मिलित नहीं है। बहुत निकट की बात है। उसमें आप बड़ी परेशानी में हैं। उस निर्णय को लेकर बड़ी कठिनाई होती है मन को।
जितनी बड़ी भीड़ हो हम उतना जल्दी निर्णय ले लेते हैं। अगर दस हजार आदमी
एक मस्जिद को जलाने जा रहे हैं तो हम बिल्कुल मजे से उसमें चले जाते हैं। यदि दस हजार आदमी मंदिर में आग लगा रहे हैं तो हम बराबर सम्मिलित हो जाते हैं। दस हजार लोग हैं, रिस्पांसिबिलिटी, जिम्मेवारी फैली हुई है, आप अकेले जिम्मेवार नहीं हैं, दस हजार आदमी साथ हैं। अगर कल बात हुई तो आप कहेंगे कि इतनी बड़ी भीड़ थी, मेरा होना न होना बराबर था। नहीं भी होता मैं तो भी मंदिर जलने वाला ही था। मैं तो खड़ा था, चला गया। जिम्मेवारी मालूम नहीं पड़ती। लेकिन संन्यास ऐसी घटना है जिसमें सिर्फ तुम ही जिम्मेवार हो, और कोई नहीं; ओनली यू आर रिस्पांसिबल, नो वन एल्स। इसलिए निर्णय करने में बड़ी मुश्किल होती है। अकेले ही हैं, किसी दूसरे पर जिम्मेवारी डाली नहीं जा सकती। किसी से आप यह नहीं कह सकते कि भीड़ की वजह से, तुम्हारी वजह से मैं लेता हूं। इसलिए निर्णय को हम टालते चले जाते हैं। अकेला आदमी जिस दिन निर्णय लेने में समर्थ हो जाता है उसी दिन आत्मा की शक्ति जागनी शुरू होती है, भीड़ के साथ चलने से कभी कोई आत्मा की शक्ति नहीं जगती।
दूसरी मजे की बात है कि लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि नब्बे प्रतिशत तो मेरा मन तैयार है संन्यास लेने के लिए, दस प्रतिशत नहीं है, तो जब पूरा हो जाएगा मेरा सौ प्रतिशत मन तब मैं संन्यास ले लूंगा। लेकिन इस आदमी ने कभी विवाह करते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? चोरी करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? क्रोध करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है? गाली देते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! सिर्फ संन्यास के समय यह कहता है कि सौ प्रतिशत मन तैयार होगा तब। यह अपने को धोखा दे रहा है। यह भलीभांति जानता है कि सौ प्रतिशत मन कभी तैयार नहीं होगा, इसलिए बचाव की सुविधा बनाता है। अगर यही धारणा है कि सौ

प्रतिशत मन जब तैयार होगा तभी कुछ करेंगे, तो ध्यान रखना, आपका सब करना आपको बंद करना पड़ेगा। सौ प्रतिशत मन आपका कभी किसी चीज में तैयार नहीं होता है। लेकिन बाकी सब काम आदमी जारी रखता है।
और यह भी मजे की बात है कि जब आप तय करते हैं कि नब्बे प्रतिशत मन तो कहता है, दस प्रतिशत अभी नहीं कहता है; तो आपको पता नहीं है कि आप संन्यास नहीं ले रहे हैं तो आप दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को इनकार करते हैं। असल में न लेने में ऐसा लगता है कि जैसे कोई बात ही नहीं हुई। संन्यास न लेना भी निर्णय है। दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को छोड़ देते हैं तो आपकी जिंदगी बहुत दुविधा में भरी जिंदगी हो जाएगी। अगर निर्णय लेना है तो इक्यावन प्रतिशत भी हो तो निर्णय ले लेना चाहिए, उनचास प्रतिशत को छोड़ देना चाहिए।
लेकिन हम ऐसे हैं कि अगर हमें एक प्रतिशत भी गलत कोई बात मन कहता है तो निन्यानबे को छोड़ कर एक प्रतिशत वाला काम कर लेते हैं और निन्यानबे प्रतिशत भी कोई ठीक बात मन कहता हो तो एक प्रतिशत वाली बात पर निर्णय लेते हैं।
ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। कहता जरूर है कि आनंद चाहते हैं, शांति चाहते हैं, लेकिन शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। क्योंकि बातें वह आनंद के चाहने की करता है, लेकिन जो कुछ भी वह करता है उससे दुख ही मिलता है, उस सबसे दुख ही मिलता है। उपाय सब दुख के करता है, बातें आनंद की करता है। और कभी गौर से नहीं देखता है कि मेरा दुख, मैं जो कर रहा हूं, उन्हीं उपायों पर निर्भर है।
संन्यास आनंद का निर्णय है। अब मैं आनंद चाहता हूं, इतना ही नहीं, आनंद को पाने के लिए कुछ करूंगा भी। संन्यास इस बात का निर्णय है कि अब मैं सिर्फ आनंद की चाह ही नहीं करूंगा, उस चाह को पूरा करने के लिए जीवन दांव पर भी लगाऊंगा। संन्यास इस बात की भी अपने प्रत्यक्ष, अपने सामने घोषणा है कि अब मैं दुख से बचने की कोशिश ही नहीं करूंगा, दुख जिन-जिन चीजों से पैदा होता है उनको छोड़ने का सामर्थ्य और साहस भी जुटाऊंगा।
यह निर्णय लेते ही आपकी जिंदगी नये केंद्र पर रूपांतरित होती है और स्वभावतः ध्यान फैलना शुरू हो जाता है। क्योंकि ध्यान तो सिर्फ एक विधि है। जिसने भी धर्म की ओर जाना शुरू किया, उसे ध्यान की विधि के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि दौड़ते हैं हम धन की तरफ और ध्यान की विधि का उपाय करना चाहते हैं। बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि धन को पाने के लिए ध्यान बाधा बन सकता है, सहयोगी नहीं। क्योंकि धन को पाने के लिए जो-जो भी करना पड़ता है, ध्यान जैसे गहरा होगा, उस सबमें अड़चनें पड़ने लगेंगी, मुश्किल पड़ने लगेगा।
मुझसे कोई पूछता है कि क्या हम ध्यान कर सकते हैं और रिश्वत भी ले सकते हैं?
मैं उनसे कहता हूं कि मजे से रिश्वत लो और ध्यान किए जाओ। क्योंकि जैसे ही ध्यान का बीज थोड़ा सा भी टूटेगा, रिश्वत लेना मुश्किल हो जाएगा, कठिन होता जाएगा। और एक घड़ी आएगी कि पांच रुपये लेते वक्त अमूल्य ध्यान को छोड़ने की क्षमता न रह जाएगी, मुश्किल हो जाएगा।
संन्यास इस बात की घोषणा है जगत के प्रति, और अपने प्रति भी, कि मैं अब परमात्मा की तरफ जाने का सचेतन निर्णय लेता हूं। निश्चित ही उस निर्णय को लेने के बाद उस यात्रा में जाने के लिए जो साधन है उसको करना आसान हो जाता है। इधर मैंने देखा है सैकड़ों व्यक्तियों को कि संन्यास लेते ही उनमें रूपांतरण हो जाता है। जब कुछ करेंगे तब की तो बात अलग, निर्णय लेते ही बहुत कुछ बदल जाता है। लेकिन यह लेना भी बहुत कुछ करना है। एक निर्णय पर पहुंचना, एक दांव लगाना, एक साहस जुटाना, एक छलांग की तैयारी भी छलांग है। आधी छलांग तो तैयारी में ही लग जाती है।
तो निश्चित ही ध्यान की गहराई बढ़ेगी संन्यास से। संन्यास की गहराई बढ़ती है ध्यान से। वे अन्योन्याश्रित हैं।

"नव-संन्यास क्या?" से संकलित प्रवचनांश

मैं कहता आंखन देखी
चालीसवां प्रवचन

संन्यासः नयी दिशा, नया बोध

आपको अपने संन्यास का स्मरण रख कर जीना है। और आप अगर क्रोध करेंगे तो
न केवल आपको अखरेगा, दूसरा भी आपसे कहेगा कि आप कैसे संन्यासी हैं!
तो एक तो इसको मैं व्यापक पैमाने पर चाहता हूं कि अधिक लोग आपके साथ में हों... । ताकि जगत को घोषणा हो जाए कि ये संन्यासी हैं। साथ ही साथ उनका नाम भी बदल दिया जाएगा। ताकि पुराने नाम से जो उनकी आइडेंटिटी और जो तादात्म्य था वह टूट जाए। अब तक उन्होंने अपने व्यक्तित्व को जिस तरह बनाया था, उसका केंद्र उनका नाम है। उसके आस-पास उन्होंने एक दुनिया रचाई थी। उसको बिखेर देना है, ताकि उनका पुनर्जन्म हो जाए। अब वे नये नाम से शुरू करें यात्रा। और इस नये नाम के आस-पास अब वे संन्यासी की भांति कुछ इकट्ठा करेंगे। अब तक उन्होंने जिस नाम के आस-पास इकट्ठा किया था वह गृहस्थ की तरह इकट्ठा किया था।
तो एक तो उनकी पुरानी आइडेंटिटी तोड़ देनी है, उनका नाम बदल देना है। दूसरे उनके कपड़े बदल देना है, ताकि समाज के लिए उनकी घोषणा हो जाए कि वे संन्यासी हो गए हैं। और चौबीस घंटे उनके कपड़े उनको भी याद दिलाते रहेंगे कि वे संन्यासी हैं। रास्ते पर चलते हुए, बात करते हुए, काम करते हुए, वे कपड़े जो हैं उनके लिए कांस्टेंट रिमेंबरिंग का काम करेंगे।
जो आदमी घर छोड़ कर चला जाता है उसके गेरुए कपड़े चार दिन में उसके लिए साधारण कपड़े हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी गेरुए कपड़े पहन कर घर में रहेगा, वह जिंदगी भर उसके कपड़े साधारण नहीं हो सकेंगे। जो भी आदमी आएगा वह फौरन इसके कपड़े को देखेगा। जो भी आदमी मिलेगा वह पहले कपड़े देखेगा, कपड़े के संबंध में पूछेगा, पीछे कोई बात करेगा। दुकान पर बैठेगा तो ग्राहक पूछेगा कि संन्यासी दुकान पर क्यों बैठा है? दफ्तर में काम करेगा तो लोग पूछेंगे कि यह क्लर्क गेरुआ वस्त्र पहन कर क्यों बैठा हुआ है? वह कहीं भी भूल नहीं पाएगा कि वह संन्यासी है और कपड़े और उसके बीच निरंतर घोषणा चलती रहेगी। और जिंदगी बड़ी अदभुत है। यहां छोटे से फर्क इतने बड़े फर्क लाते हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर यह चौबीस घंटे स्मरण बना रहे कि मैं संन्यासी हूं, तो यह स्मरण ही आपके व्यक्तित्व की बहुत सी चीजों को बदल देगा जिन्हें आप लाख कोशिश करके नहीं बदल सकते। कल जो आप करते थे, आज करने में आपको होश रखना पड़ेगा। कल जैसा आप बोलते थे, वैसा बोलने में आज होश रखना पड़ेगा। यह होश आपके भीतर फर्क लाना शुरू कर देगा। इसलिए ऊपरी और कोई नियम मैं थोपना नहीं चाहता। आपका विवेक ही आपका नियम होगा। सिर्फ आपको स्मरण भर बनाए रखना चाहता हूं कि आप संन्यासी हैं। बस इतना मैं चाहता हूं कि वह स्मृति आपसे छूटे न।

(प्रश्नः अस्पष्ट रिकार्डिंग)

बिल्कुल ही, खादी का हो जाने वाला था। खादी के कपड़े कोई संन्यासी के कपड़े नहीं थे। और खादी के कपड़े का जो संबंध था, वह एक राजनैतिक सत्ता से लड़ाई का था। वह सत्ता भी खत्म हो गई। तुम्हारी लड़ाई शाश्वत है। फिर आज नहीं कल, खादी का कपड़ा पहनने वाला मालिक बनने वाला था, वह बन गया मालिक। अब कपड़े के साथ मालकियत जुड़ रही थी। अभी भी खादी के कपड़े वाला आदमी और तरह से चलता है। अब उसके साथ मालकियत है, अब वह साधारण आदमी नहीं है। खादी के कपड़े का संबंध राजनैतिक था, संन्यासी के कपड़े का संबंध धार्मिक है। और धार्मिक संघर्ष शाश्वत है। उसकी बदलाहट का कोई उपाय नहीं है।
फिर अगर संन्यासी को भी हम अलग तोड़ दें, जैसा पीछे हुआ, तो भूल जाएगा। क्योंकि हम कितनी देर याद रखेंगे?
तो मैं चाहता हूं, विपरीत सिचुएशन अगर चौबीस घंटे मौजूद रहे तो ही नहीं भूलेगा, अगर उलटी परिस्थिति मौजूद रहे तो नहीं भूलेगा। अगर परिस्थिति अनुकूल हो जाए तो भूल जाएगा।

एक आश्रम में संन्यासी को बिठाल दें, थोड़े दिन में वह साधारण हो जाने वाला है। लेकिन एक दुकान पर बिठाल दें तो हमने चौबीस घंटे का एक तनाव पैदा किया। आज जो ग्राहक आया, कल नया ग्राहक आएगा, वह भी पूछेगा कि आप संन्यासी होकर और दुकान पर बैठे हैं? यह पूछना बंद होने वाला ही नहीं है। इसका उपाय नहीं बंद करने का। सड़क पर निकलेंगे तो, उठेंगे तो, बैठेंगे तो। और एक दफा अगर चार-छह महीने, आठ महीने, साल भर भी यह कांस्टेंट रिमेंबरिंग रह जाए तो आप में तो फर्क हो ही जाएंगे। फिर कपड़े का कोई मूल्य भी नहीं है; उनको छोड़ भी दें तो कोई हर्जा नहीं है। यह साल भर की निरंतर स्मृति आपको तो बदल ही जाएगी, यह बदल ही जाने वाली है।
फिर आपकी जिंदगी में कोई भी भीतरी अंतर मैं अपनी तरफ से नहीं करना चाहता। अपनी तरफ से मैं बिल्कुल ही बाहरी और छोटा सा अंतर करवाता हूं। भीतरी अंतर आप पर छोड़ता हूं। जो कि सिर्फ चेन होगी वह तो। मैंने तो सिर्फ चेन शुरू कर दी, भीतरी अंतर रोज होते चले जाएंगे। न मैं आपकी सेक्स लाइफ को कहता हूं कि बदलना है, कुछ भी बदलने को नहीं कहता हूं। बहुत ऊपरी बदलाहट करना, और भीतरी बदलाहट आपकी स्मृति से आनी शुरू होगी। और वह जैसे-जैसे आएगी, वैसे बदलते जाना। नहीं बदले तो उसकी चिंता नहीं लेना। ध्यान पर ताकत लगाना।
संन्यासी के साथ दूसरी जो एक ही शर्त है मेरी, वह यह कि वह ध्यान पर श्रम करता रहे। और तुम्हारे पास समय ज्यादा बच सकेगा तुम्हारी घोषणा के बाद। तुम्हारी सामाजिक औपचारिकताओं का जो फार्मलिटीज का ढेर वक्त जाया होता है, वह बच सकेगा। किसी के घर शादी है, तुम नहीं जाओगे तो चल सकेगा। फिजूल के जलसे हैं, तुम नहीं जाओगे तो चल सकेगा। लोग समझते हैं कि वह आदमी संन्यासी है, छोड़ो। तुम्हारे घर भी फिजूल की बातचीत चलनी बंद हो जाएगी। तुम्हारे आस-पास फिजूल का कचरा बंद हो जाएगा इकट्ठा होना। तुम्हारे पास समय भी ज्यादा बच सकेगा और उस समय का तुम भीतरी उपयोग कर सकोगे। तो ध्यान पर शक्ति लगानी है और बाकी सारे परिवर्तन अपने से होने देने हैं।
एक तो यह बड़ा वर्ग होगा संन्यासियों का, जिसको मैं कहता हूं कि व्यापक हो। इतना व्यापक हो कि मुल्क में लाखों संन्यासी हों। इनसे हम पूरे मुल्क की हवा और पूरे मुल्क का वातावरण बदलने की कोशिश कर डालेंगे।
दूसरा तुम्हें एक जो स्मरण रहेगा--एक तो यह कि तुम संन्यासी हो, इसके साथ ही तुम्हारा दूसरा स्मरण तुम्हें जोड़ रखना है--कि अब तुम जो भी कर रहे हो वह परमात्मा के एक उपकरण, इंस्ट्रूमेंट की तरह कर रहे हो। अब तुम कर्ता नहीं हो। अब अगर तुम रोटी कमाने जा रहे हो, तो वह परमात्मा के लिए ही। अगर घर बना रहे हो, तो वह भी परमात्मा के लिए। अगर दुकान चला रहे हो, तो वह भी परमात्मा के लिए। अब तुम्हारी अपनी कोई ईगो-सेंट्रिक व्यवस्था नहीं है, अपने लिए कुछ करने का कारण नहीं है। अपने लिए तो तुम छूट गए। लेकिन तुम्हारी जिम्मेवारियां हैं, उनके लिए तुम परमात्मा के निमित्त सब किए चले जा रहे हो।
यह भाव कि मैं कर्ता नहीं हूं, सिर्फ साक्षी हूं, तुम्हारी जिंदगी को आमूल बदल देगा। जहां तुम हो वहीं बदल देगा। और तुम्हारी बदलाहट आस-पास संक्रामक हो जाएगी। क्योंकि अगर दुकानदार संन्यासी हो तो ग्राहक को भी छूता है; क्लर्क अगर संन्यासी हो तो जो उसके पास काम करवाने गया है उसको भी छूता है। छुएगा! क्योंकि इसका सारा व्यवहार बदल जाएगा, इसका सारा ढंग बदल जाएगा, इसकी सोचने की व्यवस्था बदल जाएगी, सब कुछ बदलेगा। उस बदलाहट से दूसरे में भी बदलाहट आनी शुरू होगी। तो हमारी इस मुल्क की जिंदगी में जितनी अनीति और जितना भ्रष्ट जीवन है, उसके लिए हम आधार खोज सकेंगे, ये दीये बना सकेंगे कि इनसे परखो।
और यह भी साफ हो सकेगा, जैसा कि लोगों के मन में हो गया है कि अब अच्छा आदमी जी ही नहीं सकता। यह इतना गहरा बैठ गया है, यह बुरे होने के लिए रास्ता खोजना है। हम यह तर्क अपने मन में बिठा लिए हैं कि अच्छा आदमी जी ही नहीं सकता। अच्छा आदमी तो मर ही जाएगा। तो मैं यह भी दिखाना चाहता हूं कि अच्छा आदमी ही नहीं, संन्यासी भी ठेठ इस जिंदगी में जी सकता है। तो वह जो आधार हमारे मन में अनीति का कारण बन रहा है उसे गिराने का उपाय हो सकेगा। और फिर, कहा जा सकता है कि इस तरह के लोग पाखंडी हो सकते हैं।

तो कुछ हर्जा नहीं होता। क्योंकि जो आदमी संन्यासी होकर पाखंडी है,
वह पहले भी पाखंडी रहा है। हम दुनिया का कोई नुकसान नहीं करते हैं उससे। लेकिन उसको पाखंडी होने में बाधा हम जरूर डाल रहे हैं। वह उतनी आसानी से पाखंडी नहीं हो सकेगा जितनी आसानी से वह कल हो सकता था। और अगर होगा भी तो दुनिया का हम कोई नुकसान नहीं कर रहे हैं, वह आदमी पाखंडी था ही। कोई दुनिया का अहित नहीं हो गया है। वह जितना पाखंडी था उतना ही होगा।
फिर ऊपर से हम कोई इंपोजीशन नहीं थोप रहे हैं कि उस आदमी को धोखा करना पड़े। हम उसकी किसी तरह की जिंदगी की भीतरी बातों को नहीं छू रहे हैं; छू ही नहीं रहे हैं। वह उसकी स्वतंत्रता ही होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह लोभ छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी स्वतंत्रता होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह काम छोड़ दे, वासना छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी भीतरी व्यवस्था होगी। इसलिए हम कभी उसे गिल्टी बनाने की तरकीब नहीं कर रहे हैं। नहीं तो हमारा पुराना सारा संन्यासी अपराधी हो जाता है। क्योंकि वह जो उसको हमने छोड़ने के लिए कहा है, नहीं छोड़ पाता, तो या तो वह दिखावा करता है कि हम छोड़ रहे हैं और नहीं छोड़ पाता, तो भीतर अपराधी होता है; और या फिर वह पाखंडी हो जाता है कि कहता कुछ है, करता कुछ है। इस सबकी हम बाधा ही नहीं डाल रहे हैं। फिर तुम किसी के प्रति रिस्पांसिबल नहीं हो। जिस संन्यासी की मैं बात
कर रहा हूं, यह किसी का शिष्य नहीं है, मेरा शिष्य नहीं है। मैं ज्यादा से ज्यादा उसका गवाह भर हूं कि मेरे सामने वह संन्यास के मार्ग पर गया। इससे ज्यादा नहीं। इससे ज्यादा मेरे प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं उससे कल पूछ सकूं कि ऐसा तुमने क्यों किया? वह अपने ही प्रति रिस्पांसिबल है। यह बिल्कुल इनर रिस्पांसिबिलिटी है। इसमें किसी से कोई लेना-देना नहीं है। कल उसे लगता है कि नहीं, यह मेरे काम की बात नहीं है या मैं इसमें नहीं जा सकता हूं, तो हम उसे रोक नहीं रहे हैं कि वह जीवन भर के लिए संन्यासी हो जाए। वह छोड़ दे, जिस दिन उसको छोड़ना है। यह उसकी मौज होगी। इसको कोई बाधा डालता नहीं। हालांकि मैं मानता हूं कि एक दफा संन्यास में, इस स्थिति में गया आदमी वापस नहीं लौट सकता। क्योंकि उसके साथ के जुड़े हुए आनंद हैं, शांतियां हैं। वे उसको सताएंगी और बुलाएंगी। तो एक तो बड़े व्यापक पैमाने पर तो यह।
दूसरे कुछ लोग हो सकते हैं जिनके लिए घर का कोई अर्थ ही नहीं है, घर है
ही नहीं। रिटायर्ड, वृद्ध लोग हो सकते हैं, जिनके लिए घर और ना-घर का कोई प्रयोजन नहीं है। अब जिंदगी में होने न होने का कोई मतलब नहीं है उनका। कोई जिम्मेवारी नहीं है। किसी को उनके हटने से दुख नहीं पहुंचता है। युवक हो सकते हैं ऐसे, जिनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को मैं चाहूंगा कि अगर वे चाहें तो उनके लिए कुछ केंद्र मुल्क में बनाते हैं जहां वे संन्यासी की तरह उन आश्रमों में रहें।
लेकिन वे आश्रम भी प्रोडक्टिव होंगे, वे आश्रम भी नॉन-प्रोडक्टिव नहीं होंगे। ऐसा नहीं होगा कि समाज उन आश्रमों को पालेगा। उन आश्रमों की अपनी खेती होगी, अपना बगीचा होगा, अपनी छोटी-मोटी इंडस्ट्री होगी। और हर संन्यासी को तीन घंटे वहां भी काम करना ही पड़ेगा जो काम वह कर सकता है। अगर वृद्ध है तो तीन घंटे संन्यास के स्कूल में पढ़ा दे। डाक्टर है तो तीन घंटे आश्रम के अस्पताल में काम कर दे। चमार है तो तीन घंटे जूते साफ कर दे। जो भी कर सकता है वह।
और यह कम्यून लिविंग होगी। इसमें जो डाक्टर का काम करेगा और जो जूते
पर पालिश का काम करेगा, इसमें कोई हायरेरकी नहीं होगी, इसमें कोई ऊंचा- नीचा नहीं होगा। वह यह कर सकता है, वह यह कर सकता है। दोनों को बराबर सुविधाएं, बराबर इंतजाम मिलेगा। आश्रम में कोई पैसे का लेन-देन नहीं होगा। आश्रम के किसी संन्यासी को कोई पैसा नहीं देगा। खाना, रहना, कपड़ा, वह सारा इंतजाम मिलेगा। आश्रम उस संन्यासी को बाहर किसी काम के लिए भेजेगा तो उसकी व्यवस्था होगी। और यह सबके लिए समान होगा। और तीन घंटे प्रत्येक को काम करना पड़ेगा ताकि आश्रम किसी पर निर्भर न हो। तो धीरे-धीरे ये इंडिपेंडेंट यूनिट हो जाएंगे।
ये यूनिट दो तरह के काम करेंगे। एक तो जो संन्यासी गृहस्थ जीवन में संन्यासी होते हैं उनके लिए ट्रेनिंग की जगह हो जाएंगे कि वे कभी महीने,

पंद्रह दिन के लिए इनमें आकर रह जाएं, वापस लौट जाएं। इनटेंस ध्यान के लिए आ जाएं और वापस लौट जाएं। और ये संन्यासी दूसरा काम करेंगे कि हर संन्यासी को जैसे तीन घंटे रोज काम करना जरूरी होगा, ऐसे हर वर्ष में तीन महीने उसे ध्यान करवाने के लिए बाहर जाना जरूरी होगा, कि वह जाकर गांव-गांव में लोगों को ध्यान करवाए और यह संन्यास की खबर भी दे आए और इस संन्यास में कुछ लोग उत्सुक होते हैं तो उनको उत्सुक भी कर आए। तो दूसरा वर्ग संन्यासियों का यह होगा।
और तीसरा एक वर्ग संन्यासियों का होगा, कि वे लोग जो कि घर में भी संन्यास लेने की हिम्मत नहीं जुटा सकते और वे लोग जो आश्रम में आने की स्थिति में भी नहीं हैं, ऐसे लोगों के लिए, जितने समय के लिए उनको संन्यास लेना हो उतने ही समय के लिए वे आश्रम में आकर संन्यास ले लें--महीने भर के लिए वर्ष में, दो महीने भर के लिए संन्यास ले लें! महीने भर के बाद वे अपने घर अपने कपड़े लेकर चले जाएंगे। महीने भर वे संन्यासी की तरह रहेंगे, महीने भर के बाद वे अपने साधारण कपड़ों में लौट जाएंगे।
इरादा मेरा यह है कि अधिकतम लोगों के लिए सर्वाधिक संन्यास सुलभ हो सके--अधिकतम लोगों के लिए! यानी ऐसा न हो कि संन्यास इतना सख्त हो, उसकी शर्तें इतनी ज्यादा हों कि बहुत कम लोगों के लिए संभव हो जाए।
अभी क्या है, बुरी चीज बेशर्त उपलब्ध है, अधिकतम लोगों के लिए। अच्छी चीज सशर्त उपलब्ध है, और बहुत कम लोगों के लिए। इसलिए स्वाभाविक है कि दुनिया अच्छी न हो पाए और बुरी हो जाए। यानी अगर किसी को बुरा होना है तो कोई शर्त ही नहीं है उसमें कोई। और अच्छा होना है तो हजार शर्तें हैं। यह तो बहुत मंहगा हिसाब है। इस हिसाब को तोड़ना पड़ेगा। हमें अच्छे होने के लिए भी कम से कम शर्तें कर देनी पड़ेंगी--न्यून, जितनी न्यून हो सकें। मिनिमम पर उसको ठहराना होगा।
इसलिए मैंने तीन बातें की हैं। इसमें सबके लिए उपाय हो जाता है। जो घर में भी कपड़ा बदलने में डरता है वह भी एक महीने, दो महीने के लिए, तीन महीने के लिए साल में, दो साल में जब सुविधा हो तब ले लेगा। शायद एक-दो दफा महीने भर के रहने के बाद उसकी हिम्मत बढ़ जाए और वह घर में आकर कपड़ा बदल ले। जो आजीवन जाना चाहता है, उसके लिए भी इंतजाम कर देना है। जो आजीवन गया है वह भी मेरे लिए पीरियाडिकल है, वह अपनी तरफ से भले गया हो। कल वह कहता है कि मैं वापस लौटना चाहता हूं, तो उस पर कोई रोक नहीं होगी, न उसकी निंदा होगी। अब तक क्या हुआ है, संन्यास की जो व्यवस्था है हमारी, उसमें एंट्रेंस है, एक्जिट है ही नहीं। उसमें एक आदमी प्रविष्ट हो जाए तो वापस नहीं लौट सकता। और वापस लौटे तो हम उसकी निंदा करेंगे, सारा समाज उसका दुश्मन हो जाएगा और हर आदमी कहेगा कि अपराध हो गया।
यह इतना खतरनाक है कि एक आदमी को सोचने का मौका ही नहीं बचता इस पर। और संन्यासी हुए बिना कैसे जाना जा सकता है कि मुझे भीतर रहना कि नहीं रहना? बाहर से निर्णय करना पड़ता है मकान के कि आप भीतर आते हैं तो पक्की कसम खाकर आएं कि बाहर नहीं निकल सकेंगे। और भीतर जाकर हो सकता है--कोई कठिनाई नहीं है--हो सकता है तुम्हें न ठीक पड़े।
तो हम जितने स्वागत से संन्यास देंगे उतने ही स्वागत से विदा भी करेंगे। और यह अपेक्षा रखेंगे कि तुम फिर वापस लौट सकोगे। पर यह लौटना भीतरी होगा, तुम्हें लगेगा तो। इसलिए तीन बातें। बाकी सभी संन्यास की दिशा में अपनी सामर्थ्य के अनुसार जा सकेंगे, ऐसा ख्याल है।
और मेरा मानना है, इसमें सर्वाधिक कठिन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घर में रह कर संन्यास लेना सिद्ध होगा। साधना वहां अदभुत परिणाम लाएगी और जल्दी परिणाम लाएगी। और चूंकि तुम घर की जिंदगी में कोई फर्क नहीं लाते, इसलिए घर के लोग दो-चार दिन में राजी हो जाएंगे, ज्यादा नहीं देर लगेगी। क्योंकि उनकी जिंदगी में तो तुम कोई फर्क लाते नहीं।
संन्यासी के प्रति परिवार का, मां का, पिता का, पत्नी का, पति का, सबका
भय है--सदा से। इसलिए पूरी सोसायटी--यह बड़े मजे की बात है--संन्यासी को आदर देती है, लेकिन संन्यासी के खिलाफ लड़ती रहती है। बेटा चोर हो जाए तो बाप को समझ में आ जाता है, बरदाश्त कर लेता है। संन्यासी हो जाए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। और उसका कुल कारण इतना है कि कोई चोर भी हो जाए तो भी घर छोड़ कर

नहीं भाग जाता। संन्यासी घर छोड़ कर भाग जाता है। वह ज्यादा दुखद सिद्ध होता है। पत्नी है, उसके लिए भय हो जाता है कि पति घर छोड़ कर भाग जाएगा। बच्चे हैं छोटे, वे भी भयभीत हो जाते हैं। और तुम्हें भी तो गिल्ट अनुभव होती है कि जिनको तुम छोड़ कर जा रहे हो... ।
इसलिए मैं मानता हूं कि पुराने दिनों में संन्यासियों का जो बड़ा वर्ग था, मैं मानता हूं कि पचहत्तर प्रतिशत लोग थोड़े वायलेंट लोग थे संन्यासियों में। नहीं तो इतनी आसानी से नहीं जा सकते थे। हिंसक वृत्ति थी। यानी उन्होंने किसी तरह का मजा लिया पत्नी को कष्ट देने में, बच्चों को कष्ट देने में। रस है उसमें थोड़ा। पचहत्तर प्रतिशत संन्यासी बहुत गहरे में किसी तरह का रिवेंज ले रहा है। वह जिनको दुख देकर जा रहा है, उनसे रिवेंज ले रहा है।
अब यह तो आज मनोविज्ञान कहता है कि जो लोग आत्महत्या करते हैं वह भी अपने को मारने के लिए कम लोग करते हैं, जो जिंदा रह जाएंगे उनको दुख दे जाने के लिए ज्यादा लोग करते हैं। जैसे कि पत्नी धमकी दे रही है कि मैं आत्महत्या कर लूंगी। वह यह नहीं कह रही है कि मेरी जिंदगी बेकार हो गई। वह यह कह रही है कि मैं तुम्हें सदा के लिए अपराधी छोड़ जाऊंगी कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या की। तुमने ऐसा काम किया कि मुझे आत्महत्या करनी पड़ी। अब मैं तुम्हारी जिंदगी भर तुम्हें सताऊंगी। यह भाव तुम्हें जिंदगी भर सताएगा कि मैंने आत्महत्या की। मेरी कमी भी सताएगी, मेरी आत्महत्या भी सताएगी।
तो यह बड़े मजे की बात है! आत्महत्या करने वाले लोग लगते हैं कि सेल्फ पनिशमेंट कर रहे हैं, ऐसा सत्तर मौकों पर नहीं है। सत्तर मौकों पर यह भी दूसरे को पनिशमेंट देने की कोशिश है। यह आखिरी कोशिश है उनकी।
तो संन्यासी भी--पचहत्तर प्रतिशत संन्यासी पिछले अतीत का--किसी को सता गया है। और इसलिए एक भय व्याप्त हो गया है। इसलिए जब मैं संन्यास की बात भी करता हूं तो तुम्हें चिंता होगी, परेशानी होगी। लेकिन यह वर्ष, दो वर्ष में आहिस्ता रास्ते पर आ जाएगी बात। इसलिए आ जाएगी कि मेरे संन्यासी पहले से बेहतर आदमी हो जाने वाले हैं। वे अगर पति थे तो बेहतर पति हो जाने वाले हैं, पिता थे तो बेहतर पिता हो जाने वाले हैं, पत्नी थी तो बेहतर पत्नी हो जाने वाली है। और मैं मानता हूं कि एक व्यक्ति घर में संन्यासी होगा तो वह न्यूक्लिअस बन जाएगा। धीरे-धीरे वह पूरा परिवार संन्यास के इर्द-गिर्द आ जाएगा। फिर मैं कोई बाधा नहीं मानता हूं। तुम्हारी जिंदगी को छूता नहीं किसी तरह भी। वह तुम्हारे ऊपर छोड़ देता हूं। तुम्हारा विवेक जो कहे!
सोचें इस पर। किसी को भी मन होता हो तो सोचें!

वस्त्रों का रंग गेरुआ ही क्यों चुना गया?

गेरुआ चुनने के बहुत कारण हैं। एक तो कारण यह है कि वह संन्यासी का पुराना रंग है। और उसके चुनते ही... सफेद चुना जा सकता है, लेकिन सफेद चुन कर तुम पर कोई चोट नहीं पड़ेगी। सफेद सहज ही पहना जा सकता है, सफेद चुनने में कोई चोट नहीं पड़ेगी। सफेद सहज ही पहना जा सकता है, कोई अड़चन नहीं आएगी। गेरुआ जान कर चुना है; क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम्हारे लिए रिमेंबरिंग बने वह। तुम जहां से निकलो, सारी सड़क भी उत्सुक हो जाए और तुम्हें भी पता चले कि लोग देख रहे हैं, और तुम भी अपने को देख सको। मैं तुमको बेहोशी में नहीं छोड़ना चाहता। तुम्हारे लिए होश का तीर चुभ जाए।

सफेद कलर में रहें तो वह भी अलग तो रहेगा?

वह ज्यादा अलग नहीं होगा। वह ज्यादा अलग नहीं होगा, सफेद लुंगी सहज ही पूरा दक्षिण पहनता है। ऐसे ऊपर चादर भी डाल लेते हैं। उससे कुछ अंतर बहुत पड़ने वाला नहीं है। और उससे क्या फर्क पड़ता है, मैं सफेद चुनता तो यह पूछ सकते थे कि सफेद क्यों चुना? इससे क्या फर्क पड़ता? अब कुछ तो चुनना पड़ेगा मुझे! इससे क्या फर्क पड़ता, सफेद चुन लेता तो यह पूछ नहीं सकते कि सफेद

क्यों चुना? उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। सफेद उतना आंख को दिखाई भी नहीं पड़ता। एक सड़क से तुम सफेद कपड़े पहन कर निकलो और एक सड़क से तुम गेरुआ कपड़े पहन कर निकलो, तो गेरुआ कपड़े में नब्बे मौके दिखाई पड़ने के हैं, सफेद कपड़े में दस मौके!
अभी अमरीका में वे इस पर बहुत रिसर्च करते हैं। तो अभी एक बड़े सुपर स्टोर में रिसर्च की रंगों के बाबत। तो उसमें पाया कि जो डिब्बे लाल रंग में होते हैं, उनकी बिक्री पांच गुनी ज्यादा होती है। जो स्त्रियां उस स्टोर में खरीदने आती हैं, तो उन्होंने पूरा अरेंजमेंट कर रखा है कि उन स्त्रियों का पूरा नोट लिया जाता है कि सबसे पहले वे किस डिब्बे के प्रति आकर्षित होती हैं। वही चीज कल सफेद डिब्बे में रखी थी स्टोर में, नजर लोगों की नहीं पड़ी। वही चीज आज लाल रंग में रखी है, तो नजर लोगों की पड़ी। वही चीज कल पीले रंग में रखी है, तो नजर कम हो गई। पीले रंग पर बीस प्रतिशत लोगों की नजर पड़ेगी और लाल रंग पर अस्सी प्रतिशत लोगों की नजर पड़ेगी। इतना फर्क है!
तो वह तो सारे कारण हैं। लेकिन चाहता यह हूं कि तुम्हें मैं थोड़ी दिक्कत में डालूं। तुम्हें दिक्कत में पड़ना जरूरी है। वह दिक्कत ही तुम्हारे लिए याद बनेगी। इसलिए ज्यादा से ज्यादा दिक्कत में डालने का ख्याल है। इसलिए एक माला भी डाल दी है गले में, ताकि कोई शक ही न रह जाए किसी को। नहीं तो शौक में भी तो गेरुआ इस वक्त पहना जाने लगा है न! इसलिए माला जोड़नी पड़ी उसमें। नहीं तो इस वक्त तो लड़कियां बंबई में शौक में भी गेरुआ पहने हुए हैं। वह माला और गेरुआ उनको दोनों ख्याल देने वाला हो जाएगा।

सब लोगों ने और सारे देश ने यदि संन्यास व्रत ले लिया तो कल यदि देश पर किसी ने आक्रमण किया तो क्या होगा?

संन्यासी लड़ेगा! संन्यासी से ज्यादा दुनिया में कोई भी नहीं लड़ सकता। क्योंकि संन्यासी का मतलब यह है कि जो जानता है कि आत्मा अमर है। उसको तो लड़ने का कोई भय ही नहीं। संन्यासी जैसा लड़ सकता है वैसा दुनिया में कोई कभी लड़ ही नहीं सकता।

संन्यासी तो अहिंसावादी होगा!

किसने कहा है? अहिंसावादी का इतना ही मतलब होता है कि अपनी तरफ से किसी को मारने नहीं जाता; लेकिन अहिंसावादी का मतलब यह नहीं होता कि दूसरों को अपने को पिटवाने के लिए निमंत्रण देता है। वह भी हिंसा है। अगर मुझे दूसरा मारता है और मैं बैठे हुए सहता हूं, तो यह भी हिंसा सही जा रही है। यह अहिंसा नहीं है। संन्यासी किसी को मारने नहीं जाता। लेकिन संन्यासी को अगर मारिएगा तो उससे ज्यादा करारा जवाब इस दुनिया में दूसरा नहीं दे सकता। तो मैं तो संन्यासी को सैनिक मानता हूं!
"नव-संन्यास क्या?" : चर्चा एवं प्रश्नोत्तर

मैं कहता आंखन देखी
इकतालीसवां प्रवचन

आनंद व अहोभाव में डूबा हुआ नव-संन्यास

एक तो अभी-अभी ख्याल में एक बात आई जो सबसे पहले कह देनी चाहिए। अभी वहां साधना मंदिर में जो भजन चल रहा था उसे देख कर मुझे ख्याल में आई है। इतना मुर्दा, इतना मरा हुआ, जैसे जीवन की कोई लहर नहीं है, औपचारिक। करना है, इसलिए कर रहे हैं।
तुम्हारा भजन, तुम्हारा नृत्य, तुम्हारा जीवन जरा भी औपचारिक न हो, फार्मल न हो। उदासी की तो जरा भी जगह न हो। क्योंकि संन्यास अगर मरा तो उदास लोगों के हाथ में पड़ कर मरा। हंसता हुआ संन्यास--पहला सूत्र तुम्हारे ख्याल में होना चाहिए। अगर हंस न सको तो समझना कि संन्यासी नहीं हो। पूरी जिंदगी एक हंसी हो जानी चाहिए। संन्यासी ही हंस सकता है। उदासी, गंभीरता संन्यासी के लिए एक रोग जैसा है। यानी संन्यासी होना एक ऐसा बोझ का और ऐसा भारी गंभीरता का काम रहा है अब तक कि उसमें सिर्फ रुग्ण और बीमार आदमी ही उत्सुक हो सकते हैं। स्वस्थ आदमी न तो उदास हो सकता, न गंभीर हो सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि वह उच्छृंखल होगा। इसका यह भी मतलब नहीं है
कि वह उथला होगा। सच तो यह है कि गंभीरता गहरेपन का सिर्फ धोखा है। वह गहरी होती नहीं, सिर्फ दिखावा है। जितना गहरा आदमी होगा, उतना प्रफुल्ल होगा। जितना भीतर जाएगा, उतना बाहर प्रसन्न होता चला जाएगा। भीतर जाने की परीक्षा और कसौटी ही यही है कि वह कितना बाहर प्रसन्न और हलका होता चला जाता है। जिंदगी बाहर उड़ने लगे, वेटलेस हो जाए, तभी समझना कि भीतर गति हो रही है।
तो इस मुल्क में संन्यास को हंसता हुआ बनाना पहला बड़ा काम है। गांव-गांव, गली-गली, घर-घर हंसी गूंज जाए। संन्यासी हमारा जहां प्रवेश करे वहां प्रफुल्लता छा जाए, वहां उदासी न बचे। हमारे संन्यासी को कोई कहीं देखे तो खुशी से भर जाए। वह उसके चेहरे, उसके व्यक्तित्व, उसके ढंग, उसके पूरे जीवन से झलकने लगे।
यह तुमसे इसलिए कहता हूं कि संन्यास के साथ गंभीर होना एसोसिएट हो गया है। और तुम्हारा चूंकि पहला ग्रुप होगा संन्यासियों का, तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आएंगे... अगर तुम उदास रहे तो वे उदास होते चले जाएंगे। आदमी बिल्कुल इमीटेटिव है, वह बिल्कुल नकलची है। अगर बीस आदमी उदास बैठे हैं तो इक्कीसवां आकर उदास बैठ जाएगा। वह समझेगा कि अपन कुछ गड़बड़ किए तो फंस जाएंगे। तो तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। तुम पर सब कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आएंगे, तुम जैसे होओगे, वे वैसे बनते चले जाएंगे, वे ढलते चले जाएंगे।
फिर जो धर्म हंस नहीं सकता वह धर्म बहुत नहीं फैल सकता है। क्योंकि जगत में कोई भी रोना नहीं चाहता। जो रो रहा है वह भी मजबूरी में रोता है, वह भी रोना नहीं चाहता। जो उदास है वह भी मजबूरी में उदास है, वह भी उदास होना नहीं चाहता। इसलिए अगर हम उदास तरह की व्यवस्था बना लें तो उसमें थोड़ा सा उदास वर्ग उत्सुक हो जाता है। अगर हम हंसता हुआ--जीवन को कहीं अस्वीकार नहीं करते, नकारते नहीं, उसे पूरा परमात्मामय मान कर स्वीकार कर लेते हैं, उसे नृत्यपूर्वक स्वीकार करते हैं, अहोभावपूर्वक स्वीकार करते हैं। तुम्हें मैंने जो कहा कि तुम जाओ सड़कों पर और गांव में और नाचो और गाओ,
वह किसी भगवान की स्तुति में उतना नहीं, जितना तुम्हारे आह्लाद की अभिव्यक्ति है। वह किसी भगवान की स्तुति का उतना सवाल नहीं है, जितना तुम्हारी प्रसन्नता को खिलने और फूलने का मौका मिलना चाहिए, उसका सवाल है। और भगवान की स्तुति तो हो ही जाती है, जब भी हम आनंदित होकर एक क्षण भी जीते हैं तो हमारे आनंद का वह फूल उसके चरणों में पहुंच ही जाता है।
तो अभी वहां देख कर मुझे ख्याल आया कि वैसी भूल तुमसे नहीं हो जानी चाहिए। तुम अपने गीत में, नृत्य में व्यवस्था भी देना तो भी व्यवस्था को गौण रखना, प्राण को ही प्रमुख रखना। व्यवस्था होगी, तो वह गौण होगी। उसको तोड़ने की हिम्मत तुममें सदा हो। कोई तुक में ही नाचना है, ऐसा भी नहीं है।

उसको तोड़ने की हिम्मत भी किसी क्षण होनी चाहिए। क्योंकि जब बहुत व्यवस्था ऊपर बैठ जाती है, बहुत नियम और सब ढांचा बन जाता है, तो भीतर से प्राण सिकुड़ जाते हैं और मर जाते हैं।
तो तुमसे मुझे बहुत व्यवस्था की फिक्र नहीं है। तुम बहुत प्राणवान होना। हां, जितना प्राणवान होने पर भी व्यवस्था चल सके उतना चलाना, उससे ज्यादा नहीं। ध्यान प्राणवान होने पर रखना, व्यवस्था पर नहीं। निश्चित ही, संन्यास का जैसे ही हम नाम लेते हैं तो संन्यास के साथ जो हजार बातें जुड़ी रही हैं, वह तुम्हारा भी जोड़ने का मन होगा। उसको जरा सोच-समझ कर! क्योंकि मैं तुम्हें निपट कोई मरी-मराई पुरानी परंपरा से नहीं जोड़ रहा हूं।
सच तो यह है कि संन्यास की एक नयी ही अवधारणा तुम्हारे साथ जन्म लेती है। तुम्हारे साथ पृथ्वी पर एक नये संन्यासी को ही भेज रहा हूं। आज तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा, कल दिखाई पड़ेगा, जब हजारों आएंगे उस धारा में तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि यह घटना कितनी बड़ी थी। जो प्राथमिक घटना में सम्मिलित होते हैं, उन्हें बहुत देर में पता चलता है कि यह घटना कितनी बड़ी थी। वह तो पीछे पता चलता है। तो तुम्हारे ऊपर दायित्व भी बड़ा है। बोझ नहीं दायित्व का। दायित्व यही बड़ा है कि तुम किसी तरह का बोझ मत इकट्ठा कर लेना, नहीं तो पीछे लोग उसको घसीटते चले जाएंगे।
तो संन्यास का मतलब ही यही है मेरी दृष्टि मेंः एक व्यक्ति ने जिंदगी
को काम समझना बंद किया, खेल समझना शुरू किया। काम नहीं, खेल! वर्क नहीं, प्ले! अब तुम्हारे लिए जिंदगी काम नहीं है। अब अगर तुम दफ्तर में भी काम कर रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम चौके में खाना भी बना रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम बुहारी भी लगा रहे हो, तो भी काम नहीं है। तुम संन्यासी हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अब काम नहीं है। काम करना पड़ेगा, काम होगा, लेकिन तुम्हारे लिए अब सब खेल है। तुम्हारा दृष्टिकोण खेल का ही होगा। और खेल में ही बुहारी भी लगाई जा सकती है और खेल में बड़ा काम भी किया जा सकता है, लेकिन तब खेल से पीड़ा नहीं आती।
काम छोटे और बड़े होते हैं, खेल सब बराबर होते हैं। यह बड़े मजे की बात है। काम में हायरेरकी होती है। कोई काम छोटे का काम है, कोई काम बड़े का काम है। खेल? खेल नॉन-हायरेरकल है। उसमें कोई हायरेरकी नहीं है; उसमें कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। खेल यानी खेल! चाहे तुम शतरंज खेलो, और चाहे तुम ताश खेलो, और चाहे तुम गिल्ली-डंडा खेलो, और चाहे तुम फुटबाल खेलो, तुम कुछ भी खेलो, खेल कोई छोटा और बड़ा नहीं है।
तो जैसे ही जिंदगी खेल बनती है, वैसे ही उसमें हायरेरकी, ऊपर-नीचे का मामला खत्म हो जाता है। तुम्हारे भीतर अब कोई ऊपर-नीचे नहीं है--किसी भी कारण से--न कोई ज्ञान में, न कोई उम्र में, न कोई किसी और वजह से। तुम्हारे पीछे भी लोग आएंगे, वे भी तुमसे कोई पीछे नहीं होंगे। कोई कभी भी आएगा, जो जब आ जाएगा; वह जैसे ही खेल की दुनिया में सम्मिलित हुआ, वैसे ही जो काम की दुनिया के नियम थे वे लागू नहीं होते।
अभी तक संन्यासी की दुनिया में भी काम के नियम लागू होते हैं। वहां भी सीनियारिटी है, जूनियारिटी है। वहां भी जो एक साल पहले संन्यासी हो जाता है वह सीनियर होता है, जो पीछे आता है उसको नीचे बैठना पड़ता है। सीनियर संन्यासी ऊपर बैठता है। सीनियर संन्यासी के पैर पड़ने पड़ते हैं। तुम्हारा पैर पड़ने का मन हो तो तुम किसी के भी पड़ना। तुम्हारा न पड़ने
का मन हो तो भगवान भी हो तो मत पड़ना। तुमसे मिलने भी कोई आए और उसके भी तुम्हारा पैर पड़ने का मन हो जाए तो बराबर पड़ लेना। यह भी मत सोचना कि मैं संन्यासी हूं और वह गृहस्थ है। हमें गृहस्थ और संन्यासी की भी अवधारणाएं तोड़नी हैं। तुमसे कोई मिलने आया है और तुम्हें ऐसा लगे कि पैर पड़ने जैसा लग रहा है, तो बराबर उसके पैरों पर सिर रख देना। तुम्हारा संन्यास उससे सम्मानित होगा। क्योंकि संन्यास की जो मौलिक मनोदशा है वह विनय है, वह विनम्रता है। और विनम्रता नियम नहीं मानती, सिर्फ अविनम्रता नियम बनाती है। अविनम्र आदमी कहता है कि ठीक है, आप चूंकि उम्र में बड़े हैं इसलिए हम पैर छू लेते हैं। लेकिन जो हमसे उम्र में छोटा है उसके कैसे पैर छू सकते हैं? अविनम्र आदमी कहता है, हमसे बड़ी उम्र के आदमी के पैर छू लेते हैं और

हमसे छोटी उम्र के से छुला लेते हैं। इस तरह बैलेंस कर लेता है। वह कहता है कि चलो ठीक है, कोई बात नहीं। इधर छूना पड़ता है, इधर छुला लेते हैं, सब बराबर हो जाता है।
तुम्हारे लिए अब कोई इस जगत में छोटा-बड़ा नहीं है। एक छोटा बच्चा तुम्हें प्यारा लगे तो उसके पैर छू लेना सड़क पर चलते। उससे तुम्हारे संन्यास की गरिमा बढ़ेगी, गहरी होगी। और संन्यास जो अहंकारग्रस्त हुआ है, उसे तोड़ने की हमें सुविधा हो जाएगी। उसे तोड़ना है।
अब मैंने तुमसे पहले कहा कि उदासी, गंभीरता... अगर ठीक से समझोगे तो वे
सब अहंकार के लक्षण हैं। असल में अहंकारी आदमी खेल नहीं खेल सकता। अगर खेल भी खेलेगा तो खेल को काम बना लेगा। उसमें भी उसको जीतना ही चाहिए। इजिप्त के फैरोह हुए, सम्राट हुए। तो वे खेल खेलते थे, लेकिन नियम उसमें था यह कि जीत सदा उनकी ही होनी चाहिए। मतलब जो खेलता था, उसको हारना सुनिश्चित है। हारना ही है उसको। अगर वह जीत गया तो गर्दन कट जाएगी। क्योंकि वह कोई खेल नहीं है, वह मामला काम का है, सम्राट जीतना ही चाहिए।
गंभीर आदमी खेल भी खेले तो काम बना लेता है। संन्यासी काम भी करे तो उसको खेल बना लेगा। यही संन्यासी और गृहस्थ का फर्क है--काम और खेल का।
और अहंकार अपने तरह के ढांचे बनाता है। वे ढांचे हमें नहीं बनने देने हैं। तो तुमसे मैं कहूंगा, तुम पैर छूना किसी के भी और मत छूना किसी के भी, तुम झुक जाना कहीं भी। सड़क चलते कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाए, तुम गए हो नाचने और कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाए, तुम्हारा मन हो तो एक क्षण मत रुकना, तुम उसके पैर छूना। तुम कहीं भी झुकना। तुम्हारे लिए सब मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे बराबर हैं, तुम सबमें झुकना। तुम्हें सारे लोगों के अनेक-अनेक मार्गों से हृदयों को अपने करीब लाना है। तुम्हारी जिम्मेवारी इतनी बड़ी है जितनी किसी संन्यासी की कभी नहीं थी। क्योंकि कोई संन्यासी था जो महावीर के सामने झुकता था, राम के सामने अकड़ा रहता था। कोई संन्यासी था जो कृष्ण के सामने झुकता था, बुद्ध के सामने अकड़ा रहता था। कोई बुद्ध के सामने झुकता था, जीसस के सामने अकड़ा रहता था।
तुम्हें मैं पहली दफा पृथ्वी पर एक ऐसा संदेश देने को कह रहा हूं, कि
सब तुम्हारे हैं, क्योंकि कोई हमारा नहीं है। इसका मतलब ठीक से समझ लेना। सब हमारे तभी हो सकते हैं जब कोई हमारा नहीं है। अगर कोई भी हमारा है तो फिर सब हमारे नहीं हो सकते हैं। तो सारे मंदिर-मस्जिद तुमको सौंपता हूं, सब तुम्हारे हैं। तुम सब जगह जाना, कहीं भी घुस जाना।

कोई न करे तो? मनाही करे तो?

तो दरवाजे पर नाचना, इसमें दिक्कत क्या है! कह दिए कि भई तुम भीतर नहीं आने देते, हम बाहर नाच कर चले जाएंगे। बाकी हमारा दिल नाचने का हुआ है, तुम जितनी दूर बता दो हम उतनी दूर नाच कर चले जाएंगे।

मस्जिद वाले न नाचने दें तो?

तो उनसे कहना कि कितनी दूर? हम उतनी दूर खड़े होकर नाचेंगे और चले जाएंगे। लेकिन मस्जिद के परमात्मा को भी हम अपना गीत भेंट कर जाना चाहते हैं। तुम जितनी दूर कहो, सीमा खींच दो, उसके बाहर हम नाच कर और चले जाएंगे, वहीं से हम सिर झुका कर मस्जिद को नमस्कार कर लेंगे।
तुम्हारे ऊपर बड़ी जिम्मेवारियां मेरे ख्याल में हैं, क्योंकि इन दो वर्षों में मैं दस हजार लोगों को संन्यास की यात्रा पर चला दूंगा। और जो काम कभी नहीं हो सका है, वह हो सकेगा। तो मैं तुम्हें जान कर मस्जिद भेजूंगा, मंदिर भेजूंगा। अगर दस हजार संन्यासी इस मुल्क में मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के बीच सम्मिलित हो जाएं तो इस मुल्क में दंगे-फसाद खत्म हो सकते हैं, कोई वजह नहीं है, कोई कारण नहीं है! असल में जो कहते भी हैं कि सब एक है, कुरान में भी वही, गीता में भी वही, वे भी इतने अकड़ कर सिंहासनों पर बैठे रहते हैं, कि वे कहते जरूर हैं एक, लेकिन वह एक-वेक कुछ होता नहीं उससे। वह हो नहीं सकता।

हमें कुछ एक-वेक नहीं कहना है, हम अपने एक्ट से जाहिर करेंगे कि एक है। हमें कोई वक्तव्य नहीं देना उसका कि वह एक है। हमारा कृत्य कहेगा कि वह एक है। तुम किसी गांव में जाओ, मस्जिद में भी ठहर जाना, मंदिर में भी ठहर जाना, जहां तुम्हें मौका मिले ठहर जाना। तुम्हें हिंदू बुलाए, हिंदू के घर खाना खा लेना; मुसलमान बुलाए, मुसलमान के घर खाना खा लेना; ईसाई बुलाए, उसके घर चले जाना।
और जल्दी ही मैं चाहूंगा कि मुसलमानों को भी लाना है, ईसाइयों को भी लाना है, सिक्खों को भी लाना है। इस संन्यास के वृक्ष के नीचे सभी धर्मों के लोग आ जाएं, इसकी हमें फिक्र में लग जाना है। तुम जितने विनम्र रहोगे, उतना सरल हो जाएगा। और इसका तुम्हें पता ही नहीं है कि विनम्रता का आनंद कितना है, और अहंकार का दुख कितना है। क्योंकि हम विनम्र कभी हैं ही नहीं, इसलिए हमें पता ही नहीं चलता कि उसका आनंद कितना है! जब तुम रहोगे तब तुम्हें पता चलेगा। तुम कल सुबह से ही फिक्र करना कि तुम्हें जहां भी जीवन में विनम्र होने का मौका मिले, उसे तुम चूकना ही मत, उसे तुम फौरन ले लेना। झुकने का एक भी अवसर मत खोना। तब तुम्हारे आनंद की कोई सीमा न रहेगी। और तुम्हें इतना सहयोग मिलेगा और इतने साथी मिल जाएंगे जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। एक!
दूसरी बातः धर्म का बहुत गहरा संबंध तर्क से नहीं है, बुद्धि से भी नहीं है। मुझे दिन-रात तर्क और बुद्धि की बात करनी पड़ती है, वह एक बहुत सिचुएशनल, परिस्थितिगत मजबूरी है। वह मजबूरी मैं तुम्हें कह दूं। वह मजबूरी यह है कि इस युग का जो विचारशील आदमी है, वह ऐसी किसी बात को सुनने को राजी नहीं है जो तर्क और विचार से प्रमाणित न होती हो।
धर्म, तर्क और विचार से संबंधित नहीं है। इसलिए इस समय का विचारशील आदमी धर्म से टूट गया है--टूट रहा है, टूट गया है। जो विचारहीन है वह धर्म के साथ रह गया है। विचारहीन होने से ऐसा नहीं है कि वह विचार के पार है। उसे विचार ही नहीं है, वह विचार ही नहीं कर सकता। और धर्म ऐसी चीज है कि जो विचार करने से भी आगे की चीज है। तो विचारहीन के साथ धर्म मर रहा है, बच नहीं सकता उसके साथ। हर युग में वही चीज बचती है जो उस युग की बुद्धिमान प्रजा को, उस युग की जो इंटेलिजेंसिया है, उस युग का जो विचार-संपन्न वर्ग है, उसकी स्वीकृति में होती है। वही चीज बचती है, दूसरी चीज कोई बचती नहीं। तो मुझे निरंतर धर्म के लिए अत्यंत विचार और तर्क से बात करनी पड़ रही
है, और वह सिर्फ इसलिए करनी पड़ रही है कि एक दफा तर्क और विचार से वह इंटेलिजेंसिया जो है वह उत्सुक हो जाए तो उसे धक्का देना निर्विचार में बहुत कठिन नहीं है, उसे हम राजी कर लेंगे।
लेकिन वह मुझसे ही राजी हो सकता है। उसको जब इतना भरोसा आ जाए कि जहां
तक उसका तर्क जाता है वहां तक तो मैं चलता ही हूं, उससे आगे भी तर्क को ले चलता हूं; जिस दिन उसे यह भरोसा आ जाए कि तर्क में मेरी कोई कमी नहीं है; यानी तर्क में मैं कोई कंजूसी नहीं करता, कोई बचाव नहीं करता, जहां तक वह चलता है उससे दो कदम आगे मैं तर्क में चलता हूं; फिर भी मैं उससे कहता हूं कि तर्क के आगे कुछ है, तो ही उसको बात ख्याल में आ सकती है। लेकिन ऐसे धर्म का बहुत गहरे में तर्क-विचार से कोई संबंध नहीं है। यानी मेरी मजबूरी है। मेरी मजबूरी मैं तुम्हारी मजबूरी नहीं बनाना चाहता। तुमसे मैं कुछ और
ही काम लेना चाहता हूं। और मेरी मजबूरी तुम अपनी मजबूरी बना भी न पाओगे, उसमें तुम अड़चन में पड़ोगे। तुम धर्म को तर्क और विचार की तरफ से पकड़ने की फिक्र ही छोड़ दो। तुम उसे भाव की तरफ से ही पकड़ो। क्योंकि जिनको मैं तर्क और विचार से भाव तक लाऊंगा, उन्हें मैं तुममें डुबाऊंगा। तुमको तर्क और विचार नहीं पकड़ना है। तुम्हें किसी से विवाद में भी नहीं पड़ना है, वह विवाद-इवाद का काम तुम मेरे ऊपर छोड़ दो। उससे मैं निपट लूंगा। तुम उसमें पड़ना ही मत। उसमें तुम सिर्फ परेशान और पीड़ित हो जाओगे। उसमें तुम सिर्फ उपद्रव में पड़ोगे। तुम तो धर्म को जीना। और तुम्हारा जीना ही किसी के लिए आकर्षण बन जाए तो उसे खींच लेना। तुमसे तो कोई तर्क करे तो तुम नाचना, तुमसे कोई विवाद करे तो तुम गीत गाना। तुम अपनी जिंदगी से उत्तर देना। तो ही तुम जीत पाओगे, अन्यथा तुम चिंता में पड़ जाओगे और तुम खुद की भी शांति खो दोगे। उसको तो तुम शांत नहीं कर पाओगे, तुम खुद भी अशांत हो जाओगे।

तर्क की तो मैं सिर्फ उसी को आज्ञा देता हूं जो तर्क को खेल की तरह कर सके, जो अशांत न हो। जिस दिन तुममें से कोई भी तर्क ऐसा कर सके कि वह उसकी मौज है, मजा है, उसमें कोई झंझट नहीं है, वह करे। बाकी तुम्हारी चिंता बन जाए और विवाद तुम्हें परेशानी में डालने लगे तो मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम तर्क करो। तो अभी तुम उसमें पड़ना ही मत। उसमें तुम्हें पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।
और ध्यान रहे, दुनिया में धर्म का प्रभाव कम इसलिए होता है, इसलिए नहीं कि धर्म को तर्क देने वाले नहीं मिलते, बल्कि इसलिए कि धर्म को जीकर उत्तर देने वाले नहीं मिलते। वे कम पड़ते चले जाते हैं।
तुम्हें एक और सेतु का उपयोग करना है। क्योंकि मैं जो कर रहा हूं उससे मैं मुल्क की और मुल्क के बाहर की जो इंटेलिजेंसिया है उससे तो निकटता बना लूंगा, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। उससे भी बड़ा हिस्सा है जगत का, समाज का, जिसको बुद्धि-वुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हें मैं उसे भी पकड़ने भेजना चाहता हूं, तुम उसे भी घेर लाना।
तो तुम्हारी एक स्पष्ट जो दिशा है वह यह है कि तुम इतनी मौज से जीओ, इतने आनंद से जीओ, जो भी करो वह इतना रसपूर्ण हो कि दूसरे के मन में लोभ आ जाए। उसे लगे कि ऐसी भी एक चीज होती है! तुम उसे मत कहना कि हम तर्क देते हैं, कि हम तुम्हें समझाते हैं। समझाने-वमझाने का काम नहीं है बहुत तुम्हारा। तुम तो कहना कि हम ऐसे जीते हैं और मजे से जीते हैं। हम नहीं कहते कि ईश्वर है। हम नहीं कहते कि ईश्वर है, हम इतना ही कहते हैं कि हमारा होना एक आनंद है। और उस आनंद में हम किसी को धन्यवाद देना चाहते हैं। हम किसको दें? हम सब जगत को ही धन्यवाद देना चाहते हैं। तो यह जो हम गीत गा रहे हैं, यह किसी मंदिर में बैठे कोई भगवान के लिए नहीं है। यह सबमें जो व्याप्त है उसके लिए है। उसको हम धन्यवाद दे रहे हैं।
तुमसे लोग पूछेंगे, किस धर्म के हो? तो तुम कहना, हम सिर्फ धर्म के हैं। क्योंकि "किस धर्म" के लोग बहुत दिन रह चुके, उससे कुछ हुआ नहीं। अब हम एक और प्रयोग करते हैं, हम सिर्फ धर्म मात्र के हो जाते हैं। या सब धर्म हमारे हैं और सब धर्मों के हम हैं। हजार प्रश्न तुमसे लोग पूछेंगे, तुम प्रश्नों के उत्तर सदा सीधे देना। तुम्हारे उत्तर आर्गूमेंट नहीं होने चाहिए। तुम्हारे उत्तर सिर्फ स्टेटमेंट होने चाहिए। इसका फर्क समझ लेना। एक तो उत्तर होता है जो दलील होता है। दलील का मतलब होता है कि तुम जो
कह रहे हो वह गलत है और हम इसे सिद्ध करेंगे कि यह गलत है। स्टेटमेंट का मतलब और होता है। वक्तव्य का मतलब होता है कि हमें पता नहीं गलत-सही क्या है, हम जो जी रहे हैं वह यह है, और हम इसमें आनंदित हैं। अगर तुम अपने वक्तव्य में आनंदित हो तो भगवान को धन्यवाद! तुम आनंदित रहो! और अगर तुम नहीं हो तो हमारे वक्तव्य में भी आकर देख लो, हम आनंदित हैं।
मेरा मतलब समझे न, वक्तव्य का मतलब क्या है? वक्तव्य आर्गूमेंट नहीं है, दलील नहीं है। हम यह नहीं कहते कि हम सिद्ध करते हैं। हम इतना ही कहते हैं कि हम मजे में हैं। तुम अगर मजे में हो तो खुशी की बात है। हमें तुम्हारे मजे से जरा भी एतराज नहीं है। तुम अपने मजे में रहो। किसी दिन हमारा मजा खो जाएगा तो हम तुम्हारे मजे में सम्मिलित हो जाएंगे। अगर तुम मजे में नहीं हो तो व्यर्थ की दलीलों में मत पड़ो; हमारे मजे में सम्मिलित होकर देखो। मिल जाए तो ठीक, अन्यथा हम बुलाते नहीं हैं, बुलाने का कोई कारण नहीं है।
इतनी सरलता से ही तुम अगर जाओगे जगत में तो तुम व्यापक काम कर पाओगे। इसका मतलब यह है कि जो मैं बोलता हूं, जो मैं कहता हूं, उस चक्कर में तुम बहुत मत पड़ना। वह तुम्हारे लिए है, तुम समझ लेना, लेकिन तुम दूसरे के लिए उसकी फिक्र में मत पड़ना! वह तुम्हारे लिए सिर्फ मानसिक क्लेश बन जाएगा। और तुम्हारा मानसिक क्लेश किसी को भी प्रभावित करने वाला नहीं है। तुम्हारी मानसिक प्रफुल्लता प्रभावित करेगी। इसका तुम प्रयोग करोगे तो तुम्हें फर्क ख्याल में आ जाएगा फौरन। तुम हंसना, तुम्हारे विरोध में कोई बोले! और तुम कहना कि आप जो विरोध में बोलते हैं, ठीक ही बोलते होंगे, बाकी हम इतने आनंद में हैं कि हम उस आनंद को किसी तर्क के आधार पर छोड़ने की कोई मर्जी नहीं रखते। उससे बड़ा आनंद तुम हमें बताते हो तो हम चलने को राजी हैं।

कोई कहता है, ईश्वर नहीं है। तो उससे पूछना कि ईश्वर नहीं हो तो हमारा आनंद कैसे बढ़ जाएगा, वह हमें समझा दो, तो हम चलने को राजी हैं। कोई कहे कि यह भजन-कीर्तन बेकार है, तो कहना कि हम बिल्कुल बंद करने को राजी हैं, लेकिन जो नहीं कर रहा है वह आनंद में हो तो हम वहां भी चलने को राजी हैं। उससे कहना कि तुम बिना भजन-कीर्तन के यहां खड़े होकर दिखा दो और हम भजन-कीर्तन करके दिखाते हैं। और जो आनंदित दिखे उसको चुन लेंगे।
मेरा मतलब समझ रहे हो न! मेरा मतलब कुल इतना है कि तुम एक वक्तव्य बनना, बेअर स्टेटमेंट! नो आर्गूमेंट, कोई दलीलबाजी न हो उसमें। दलीलबाजी के बड़े खतरे हैं। पहला खतरा तो यह है कि दलीलबाजी सिर्फ उस आदमी को करनी चाहिए जिसे दलील खेल हो, जिसको उससे कहीं कोई अड़चन-बिगूचन पैदा नहीं होती हो। जिससे कोई चिंता उसे पैदा होती ही नहीं। किया और गया, पानी पर एक लकीर होती है, उसे कोई मतलब नहीं है, कोई लेना-देना नहीं है पीछे लौट कर। तब तो दलील ऐसे आदमी की प्रभावी होती है। इसको ध्यान रखना। क्योंकि दूसरे को भी पकड़ जाता है कि वह आदमी सिर्फ दलील ही नहीं दे रहा है, दलील देने में बहुत आनंदित है। यानी वह उसकी कोई तकलीफ नहीं है।
और दूसरी बात यह है कि दलील का अलग मैकेनिज्म है। उसकी अलग व्यवस्था है, उसकी अलग ट्रेनिंग है। वह वर्षों की ट्रेनिंग है, वह एक दिन का काम नहीं है। प्रफुल्ल तो तुम अभी हो सकते हो, तर्कयुक्त तुम्हें होने में वर्षों लग जाएंगे। क्योंकि प्रफुल्लता क्षण में खिल सकती है।
अब इसका फर्क समझ लेना। तुम चाहो तो अव्यवस्थित ढंग से नाच सकते हो, इसमें कोई तुम्हें दुनिया में रोकने को नहीं है। लेकिन अव्यवस्थित ढंग से तर्क करोगे तो फंस जाओगे। उसमें तो व्यवस्था चाहिए। और उसकी व्यवस्था का जाल भारी है। और मुझे पता है कि उसकी व्यवस्था का जाल कितना लंबा है। उस जाल में अगर मैं तुम्हें डालूं तो तुम्हारी पूरी जिंदगी उसमें उलझ जाए। उससे न तुम किसी को कुछ दे पाओगे और न तुम कुछ कर पाओगे।
तो तुम्हें तो मैं बिल्कुल ही विमुक्त करता हूं। तर्क-वर्क में तुम पड़ना ही मत। और इससे तुम मेरी जो तर्क की व्यवस्था है उसमें सहयोगी बनोगे। क्योंकि अगर मेरे तर्क की व्यवस्था के पास तुम्हारे नृत्य भी दिखाई पड़ते हैं तो मेरा तर्क सिर्फ तर्क नहीं रह जाता, उसके पास नाच भी हो रहा है।
तो उसको ख्याल में रखना। और काम अब बहुत है, कई तरह का है। एक तो जहां
भी तुम हो, जल्दी से वहां मित्रों के छोटे-छोटे मंडल बनाने शुरू करो। एक गांव में एक संन्यासी बहुत कारगर नहीं हो पाएगा। क्योंकि कुछ चीजें हैं जो सिर्फ समूह में कारगर होती हैं, एक से नहीं हो पातीं। अगर एक संन्यासी सड़क पर नाचेगा तो पागल मालूम पड़ेगा, और पचास नाचेंगे तो नहीं मालूम पड़ेंगे; क्योंकि जगत संख्या से जीता है। अगर तुम्हें अकेले को मैं भेज दूं सड़क पर नाचने, तुम पागल मालूम पड़ोगे। लेकिन जब पचास जाते हैं तब फर्क समझते हो क्या होता है? देखने वाला अकेला होता है, तुम पचास होते हो। देखने वाला अकेला होता है, क्योंकि दो आदमी इकट्ठे नहीं देख सकते। दो आदमी इकट्ठे नाच सकते हैं।
समझे रहे हो न फर्क! देखने वाले कितने ही खड़े हों, हजार आदमी खड़े हों, लेकिन हर देखने वाला अकेला होता है। नाचने वाले पचास होते हैं। इन पचास से एक की टक्कर होती है, उसको लगता है कि मैं ही पागल होना चाहिए, पचास तो पागल नहीं हो सकते। इसलिए तुम गांव-गांव में, जहां-जहां हो, वहां ग्रुप को बड़ा करने में लग जाओ।
सुविधा बड़ी यह है कि पुराना संन्यास जो था तो वह भारी व्यवस्था में से आता था। कहीं पांच वर्ष की, कहीं दस वर्ष की प्राथमिक सीढ़ियां थीं। कहीं पांच सीढ़ियां थीं। अगर दिगंबर जैनों का संन्यासी होना हो तो पांच सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। पांच सीढ़ियां पार करने में अंदाजन बीस से चालीस वर्ष लग जाते हैं। यानी अगर दस साल का लड़का संन्यासी हो तो वह कोई साठ साल के करीब जाकर उनकी आखिरी संन्यास की सीढ़ी पर खड़ा हो पाता है। और इस पचास साल में उसके भीतर जो भी रागयुक्त है, जो भी संवेदनयुक्त है, वह सब मर जाता है। यह ट्रेनिंग इतनी लंबी है, यह इतनी बड़ी है।
तुम्हें मैंने संन्यास को बिल्कुल खेल ही कर दिया है। तुम अभी ले लो।
तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुमने दुबारा सोचा कि नहीं। इसकी भी कोई बात

नहीं है। क्योंकि तुम्हें गंभीर मैं बनाना नहीं चाहता हूं। वह तुम्हारा निर्णय है। तुम किसी का कुछ बिगाड़ नहीं रहे हो, बना नहीं रहे हो। वह निपट तुम्हारी बात है। तुम्हारे कपड़े पहनने से यह जगत कहीं खिसका नहीं जा रहा है, कुछ हुआ नहीं जा रहा है।
फिर मैं कहता हूं, कल तुम्हें लगे तो तुम वापस लौट जाना। कोई जरूरी नहीं है।
उस संन्यास में इतनी लंबी व्यवस्था इसीलिए थी ताकि वापस न लौटा जा सके। अब सोचो कि जो आदमी एक जगह से पचास साल एप्रेंटिस रहा हो, पचास साल, तीस साल, पच्चीस साल जिस आदमी ने सिर्फ प्रवेश का शिक्षण लिया हो, वह लौट सकता है? लौटते वक्त उसको लगेगा कि पच्चीस साल का सिर्फ शिक्षण है प्रवेश का! जिंदगी तो चली गई उसकी सीढ़ियां चढ़ने में, अब मंदिर में पहुंच पाया, अब मंदिर से लौट कैसे सकता है? पच्चीस साल की जिंदगी जो खोई है उसने, वही मार्ग में खड़ी हो जाती है, कि अब वह वापस नहीं लौट सकते।
असल में इतनी लंबी-लंबी संन्यास की जो ट्रेनिंग थी, वह सिर्फ न लौट सके कोई वापस, इसका इंतजाम था। और कुछ मामला नहीं है उसमें। संन्यासी तो कोई इसी वक्त हो सकता है। वह तो सिर्फ एक डिसीजन है तुम्हारे मन का। लेकिन इतनी व्यवस्था इसलिए की थी कि वापस लौटना फिर असंभव है, फिर कोई उपाय नहीं है लौटने का।
तो जो भी राजी होता है, उसे तत्काल संन्यास दे देना, तुम सब अधिकारी हो। उसको राजी कर लेना, मुझे खबर कर देना। उसको कहना कि जाओ यात्रा पर तुम अपनी। तुम्हारे ऊपर और कोई बंधन नहीं है सिवाय तुम्हारे अपने विवेक के। तो उसको बंधन नहीं कहा जा सकता। कोई तुम पर और डिसिप्लिन नहीं है। कोई डिसिप्लिन नहीं है। तुम्हारे कपड़े हैं, तुम्हारी माला है, वह कोई डिसिप्लिन नहीं है, वह भी उस खेल का हिस्सा है जिसमें यूनिफार्म चाहिए पड़ती है, और कुछ नहीं है।.
हम जो एक खेल खेलने जा रहे हैं, चूंकि उसमें समूह का उपयोग करना है, इसलिए बिना यूनिफार्म के समूह नहीं बनता। अगर तुम पचास आदमी बिना एक से कपड़ों के सड़क पर खड़े हो तो तुम एक-एक खड़े हो। अगर तुम पचास आदमी एक से कपड़े पहन कर खड़े हो तो तुम इकट्ठे पचास खड़े हो। तुम्हारे कपड़े तुम्हें इकट्ठा कर देंगे, जोड़ बनेंगे। समाज के लिए उपयोगी होंगे और तुम्हारे लिए सदा स्मरण बनेंगे। तुम्हें चौबीस घंटे स्मरण रहेगा कि तुम संन्यासी हो। छोटी घटना नहीं है वह। आदमी की पूरी की पूरी व्यवस्था बदल जाती है बहुत छोटी सी घटना से, एक दफे उसको रिमेंबरिंग भर होनी शुरू हो जाए।
तो इसलिए तुम्हारे कपड़े हैं, तुम्हारी माला है, वे तुम्हारे लिए स्वयं के स्मरण के लिए हैं, और समाज भी तुम्हें स्मरण रखेगा। ये दोनों स्मरण तुम्हारे विवेक को जगाने के लिए प्रेरणा का काम करते रहेंगे। प्रेरणा का काम ही कर सकते हैं, जगाना तो तुम्हें है ही। अब तुम्हें अपने ही विवेक से जीना है। और जिम्मेवारी तुम्हारी बढ़ जाती है, क्योंकि तुम्हें एक बड़ा काम करने का ख्याल अपने में और अपने से बाहर भी तुम्हें पकड़ा है।
यह भी ध्यान रखना कि संन्यास आमतौर से अब तक निजी काम था, सेल्फिश काम
था वह अब तक। बस अपना ही था। उसका दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं था। मैं जिस संन्यास की दिशा में तुम्हें ले जा रहा हूं वह सिर्फ तुम्हारा अपना काम नहीं है। क्योंकि मेरी अपनी समझ यह है कि इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम फलित होता है वह सदा संबंधों में फलित होता है। तुम भी खिलते हो तो दूसरों के अंतर्संबंधों में खिलते हो। अकेले तुम जरूर भीतर हो, लेकिन अकेले होने का कोई आकार नहीं बनता। आकार तो सब तुम्हारे दूसरों के साथ होने पर बनता है। तुम सच बोलते हो, झूठ बोलते हो, अकेले में कुछ अर्थ नहीं है। दूसरे के साथ सब बनना शुरू होता है। तुम ईमानदार हो, बेईमान हो, तुम प्रसन्न हो कि उदास हो, तुम क्या हो, इसकी डेफिनीशन जो है, इसकी जो सीमा-रेखा है, वह दूसरे बनाते हैं, उनसे तुम निर्मित होते हो।
तो यह संन्यास हमारा सिर्फ निजी मामला नहीं है; निजी तो है ही, समूहगत
भी है; व्यक्तिगत तो है ही, समष्टिगत भी है। तो तुम अकेली अपनी साधना पर निकले हो, इतना ही नहीं है। तुम अपने साथ-साथ समाज की साधना पर भी निकले

हो। क्योंकि समाज ही तुम्हें पैदा करता है, समाज ही तुम्हें बड़ा करता है, समाज में तुम जीते हो, समाज में तुम मरते हो। तुम भी समाज हो! इसलिए बिल्कुल अकेले होने की बात बिल्कुल बेमानी है। अपने को बिल्कुल तोड़ा नहीं जा सकता। सब जुड़ा है। इसको ध्यान में रखते हो... ।
इसलिए तुम्हारा विवेक तुम्हें पूरे वक्त ख्याल में लेना है कि तुम कैसे उठते हो, कैसे बैठते हो, क्या करते हो, वह सब तुम्हें ख्याल में रखना है। ख्याल में रखने का मतलब यह नहीं है कि तुम उससे गंभीर हो जाओ और तुम उसे पैटर्नाइज कर लो। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम होटल में बैठ कर मत खाना खा लेना। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम सिनेमा मत चले जाना।
नहीं, तुम सिनेमा भी जा सकते हो, तुम होटल में भी खाना खा सकते हो। लेकिन फिर भी तुम संन्यासी हो तो तुम होटल में भी और तरह से प्रवेश कर सकते हो। वह बड़ी अलग बात है। होटल में प्रवेश न करना उतना कठिन नहीं है, संन्यासी की तरह होटल में प्रवेश करना बिल्कुल दूसरी बात है। तुम सिनेमा में भी जाओ, तो भी तुम संन्यासी हो तो तुम संन्यासी की तरह ही सिनेमा में प्रवेश करना।
असल में संन्यासी कमजोर था इसलिए वह नहीं गया था। तुम जाना; तुम्हें लगे तो जाना; तुम्हें आनंदपूर्ण हो तो जाना। तुम्हें न लगे तो नहीं जाना। लेकिन जहां भी तुम जाओ वहां भी तुम संन्यासी हो वैसे ही तुम जाना।

संन्यासी की तरह का मतलब?

संन्यासी की तरह का मतलब है कि तुम साधारण नहीं हो अब, तुम्हारे पास
एक विशेष व्यक्तित्व है, तुम्हें चारों तरफ लोग देख रहे हैं। जब तुम साधारण हो तब तुम्हें कोई नहीं देख रहा है।

यह तो बड़ा उछलती-कूदती है!

उछलने-कूदने में हर्जा नहीं है, संन्यासी की तरह उछलना-कूदना! उछलने- कूदने में हर्जा नहीं है। उछल-कूद लेना, मुझे पसंद है; उछलें-कूदें। पर उसमें भी तुम जानना कि तुम्हें लोग देख रहे हैं। उनके देखने का कोई प्रश्न नहीं है, उनसे कोई भयभीत नहीं होना है। लेकिन जिन लोगों के बीच तुम्हें बड़े काम पर जाना है, जिन लोगों के बीच तुम्हें और बहुत कुछ करना है, उनके मन में तुम्हारे प्रति एक आनंद का भाव, अहोभाव बनता जाए। गंभीरता का नहीं। यह फर्क ख्याल में ले लेना। ऐसा न बन जाए कि तुम भारी गंभीर हो। ऐसा नहीं है। तुम्हारे प्रति एक अहोभाव बने, कि इतना पुलकित भी व्यक्तित्व है, इतना आनंदित भी, फिर भी एक अनुशासन है उस आनंद में, फिर भी एक व्यवस्था है उस आनंद में। वह तुम्हारा आकर्षण बने। वह लोगों को खींचे तुम्हारे पास। फर्क ख्याल में ले लेना।
पुराना संन्यासी भी ख्याल रखता था कि लोग देख रहे हैं। लेकिन इसलिए
कि लोग उसका आदर करें। यह मैं तुमसे नहीं कह रहा कि लोग तुम्हारा आदर करें। लोग तो तुम्हारा आदर करें या न करें, यह सवाल नहीं है बड़ा। नहीं, लोग तुम्हें देख कर आनंदित हों। इन दोनों में बड़ा फर्क है।
ध्यान रखना, आदर हम उसका करते हैं जिसे देख कर हम आनंदित नहीं होते, बल्कि थोड़े बेचैन हो जाते हैं। इसलिए आदर करने वाला आदमी चौबीस घंटे कमरे में रहे तो हम कहेंगे, अब बस बहुत हो गया। इस कमरे में अब हम नहीं रुक सकते। क्योंकि आदर जिसका हमें करना है उसके साथ थोड़ी-बहुत देर चल सकता है। घड़ी, आधा घड़ी हम आदर की व्यवस्था में रह सकते हैं। फिर इसके बाद घबराने वाला हो जाता है। लेकिन जिसके साथ हम आनंदित होते हैं, उसके साथ हम चौबीस घंटे रह सकते हैं। उसके साथ कभी घबराना नहीं होता।
तो तुम्हें आदर मिले, यह तुम्हें ध्यान नहीं लेना है। यह तो अहंकार ही है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन तुम किसी के भी मन में, कहीं से भी निकलो, तो खुशी की एक लहर उसके मन में छोड़ जाओ। बस उतना तुम्हें ख्याल रखना है।
और तुम्हें कुछ पूछना हो दो-चार बातें तो पूछ लो।

और एक प्रश्न आया है कि संन्यास लेने में घरवालों से बगावत हो जाती है। इसको आप न्यायसंगत मानते हैं? और दूसरा एक प्रश्न है कि घरवालों की नाराजगी के कारण या उनको खुश रखने के कारण या कुछ अपना जो उनके ऊपर भाव है वह बताने के कारण कपड़ा बदलना उचित है? नये संन्यासी मित्रों का यह सवाल है।

इसमें दो-तीन बातें ख्याल लेनी चाहिए। एक तो यह कि जहां तक बने कोई दुखी न हो, इसका ख्याल जरूरी है। जहां तक बने कोई दुखी न हो। तुम अपनी सारी कोशिश कर लेना कि घर में रह कर, बिना किसी को दुखी किए, तुम्हारा संन्यास फलित हो सके। लेकिन, किसी के दुखी होने के लिए अगर कोई उपाय ही न बचे, तो इसके लिए संन्यास नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि तब तुम खुद दुखी होओगे। अगर तुम्हें ऐसा लगे कि संन्यास छोड़ने से मैं इतना दुखी नहीं होता, जितना संन्यास लेने से घर के लोग दुखी होते हैं तब मैं दुखी होता हूं, तब तुम मत लेना। लेकिन तुम्हें ऐसा लगे कि घर के लोग तो दुखी होते हैं, राजी नहीं हैं, लेकिन घर के लोगों के दुखी होने से जितना मैं दुखी होऊंगा उससे ज्यादा दुखी संन्यास को छोड़ने से हो जाऊंगा, तो मैं तुमसे कहूंगा कि संन्यास ले लो। क्योंकि इस जगत में एब्सोल्यूट चुनाव नहीं हैं, रिलेटिव चुनाव हैं सब।
दूसरों के दुख का ध्यान रखना, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अपने दुख
का ध्यान ही मत रखना। क्योंकि तुम भी हो! कोई दूसरों ने ठेका नहीं ले लिया है दुखी होने का। ध्यान रखना बिल्कुल जरूरी है कि जहां तक बन सके वे सुखी हों इस भांति। अगर ऐसा लगे कि यह असंभव है, वे सुखी हो नहीं सकते, तुमने अपनी सारी कोशिश कर ली, कोई उपाय नहीं है, अब तो तुन्हें दुखी ही रहना पड़ेगा, तो मैं कहूंगा तुम संन्यास लेना।
लेकिन तुमने अगर सारी कोशिश कर ली है तो घर के लोग ज्यादा देर दुखी नहीं रहेंगे। क्योंकि उन्हें यह भी तो दिखाई पड़ेगा कि तुमने सब कोशिश की है। और संन्यास लेने के बाद भी तुम कुछ उनके दुश्मन मत हो जाना, भले ही वे तुम्हारे दुश्मन हो जाएं। तुम आना-जाना जारी रखना, तुम्हारा सब संबंध जैसा था वैसा जारी रखना। तुम उनसे कहते रहना कि आप नहीं रहने दे रहे हो इसलिए हम घर में नहीं रह रहे हैं, हम तो रहने को राजी हैं। और हममें कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। कहीं भी कोई फर्क हुआ है तो हमको बताएं। हम वैसे ही रहेंगे जैसे कल तक थे। लेकिन अगर आपमें ही फर्क हो गया, हमारे संन्यास से हममें फर्क नहीं हुआ, आपमें फर्क हो गया और आप हमारा रहना बरदाश्त नहीं कर सकते, तो आपको दुख न दें इसलिए हम बाहर जा रहे हैं।
लड़ाई अपनी तरफ से नहीं लेना। अपनी तरफ से सदा ही मैत्री रखना। उनकी लड़ाई थोड़े दिन में मर जाएगी, क्योंकि कोई भी लड़ाई एकतरफा ज्यादा दिन नहीं चलती।
फिर, वे तुम्हें प्रेम ही करते हैं इसीलिए चिंतातुर हैं। उनकी चिंता एकदम गलत नहीं है। और संन्यास के नाम से वे जो समझते हैं, वह कुछ और है। वे जब तुम्हें देखेंगे कि वैसा संन्यास नहीं है, कुछ और ही बात है, तो पिघल जाएंगे। तुम्हें प्रेम करते हैं इसीलिए विरोध में हैं। लेकिन जब देखेंगे कि कोई नुकसान नहीं हुआ, जिस नुकसान के डर से वे विरोध में हैं, तो विरोध गिर जाएगा। उसके लिए चिंता लेने की जरूरत नहीं है। घर में ही रह कर लेना, न बन सके तो ही आश्रम में जाना है। और फिर भी घरवाले कल वापस बुलाएं कि बनता है, तुम आ जाओ संन्यासी रहते, तो घर आ जाना। उसमें कोई अड़चन नहीं है।
थोड़ा विरोध आएगा, स्वाभाविक है। लेकिन दो वर्ष का है। जब हजारों लोग होंगे तो विरोध गिरता जाएगा। अभी आनंदमूर्ति के पिता मुझसे क्षमा मांग गए हैं। विरोध आया था। कपड़े-वपड़े छीन लिए थे। सब किया था, सब तरह से दबाया था। अभी माफी मुझसे मांग कर गए हैं कि मुझे माफ कर देना, मैंने आपके लिए कुछ गलत बातें उस समय कह दीं गुस्से में, वह भूल हो गई है। और किसी के लिए भी कही हों तो उन सबसे भी मैं माफी मांगता हूं।
कितनी देर लगेगी? अगर तुम ठीक हो तो कितनी देर लगेगी? उसका भरोसा रखना
और चलना।

संन्यासियों के लिए कोई अलग शिविर आप करने वाले हैं
या उनका कोई कोर्स भी आप करवाने वाले हैं?

हां, जल्दी ही सोचता हूं कि तुम्हारे लिए, सब संन्यासियों के लिए एक अलग शिविर रखने का है। एक तो वह करना ही है। और अभी तुम वहां आजोल में जो संन्यासी हैं वे, और बाहर जो संन्यासी हैं वे, एक सात-आठ दिन का तुम ही एक शिविर अभी पहले ले लो वहां। वह शिविर तो सिर्फ तुम्हारे नृत्य, तुम्हारे गीत, इस सबके अभ्यास के लिए हो। उसमें मेरी कोई जरूरत नहीं है। वह तुम वहां ले डालो। ताकि एक सात दिन में तुम्हारी थोड़ी सी समझ बढ़ जाए। व्यवस्था में बांध नहीं लेना है, लेकिन एक व्यवस्था का तुम्हें बोध हो जाए।
फिर तो मेरा आगे से ख्याल यह है कि जहां भी मीटिंग्स होंगी अब--और अब
सब जगह मेरा ख्याल यह हो गया है कि नौ दिन से कम मीटिंग कहीं भी नहीं लेनी है, तो अभी एक वर्ष तो गीता ही पूरा करना होगा, तो पूरे गुजरात में ही करने का ख्याल है। दो-दो अध्याय एक-एक जगह। इसके बाद जूनागढ़, फिर पोरबंदर, फिर भावनगर, फिर राजकोट, फिर सूरजनगर, फिर अहमदाबाद, फिर बड़ौदा, ऐसा नौ सेशन लेने होंगे। शायद ज्यादा भी लेने पड़ें, क्योंकि दो अध्याय तो प्राथमिक थे, अब तो एक-एक सेशन... । तो जहां भी सेशन हो, वहां जिनकी भी संभावना हो, जो आजोल में हों उनको तो सबको पहुंचा ही देना जो संन्यासी वहां आकर रह रहे हैं आश्रम में। जो बाहर से भी मित्र आना चाहें, उनको भी सेशन में पहुंचा देना। तो वहां मेरे पहुंचने के तीन दिन पहले कम से कम पहुंच जाए मंडली वहां। और वह गांव में घर-घर में जगा दे लोगों को कीर्तन करके। मेरे लौटने के बाद भी तीन दिन रुकना है। तीन दिन फिर गांव में धुन लगा देनी है। साहित्य भी पहुंचा देना है, धुन भी पहुंचा देनी है। तो मैं नौ दिन रहूंगा, तुम्हें पंद्रह दिन, सोलह दिन वहां रहना है।
और एक ही सेशन एक महीने में होगा, बाकी पंद्रह दिन फिर आजोल में जो काम चलेगा वह चलाना है। अभी तो अपने पास थोड़े लोग हैं, कल ज्यादा हो जाएंगे, तो थोड़े से लोगों को भेजा एक जगह, थोड़े से लोगों को दूसरी जगह भेज दिया, वह होगा। और अभी गांव-गांव भेजना शुरू करो। जब कोई काम नहीं है, दो-दो तीन-तीन को भेजा। कभी पूरी मंडली गांव में गई, एक दिन गांव में चक्कर लगा आई, एक दिन साहित्य भी दे आई, एक दिन समझा भी आई।
और यह ध्यान रखो कि जो हमारे मुल्क का मानस है, उसका पूरा उपयोग करना है। जो बीज हमें बोने हैं, उसके लिए मुल्क की भूमि का पूरा उपयोग कर लेना है। गांव है वहां कृष्ण से प्रेम है तो कृष्ण के गीत गाओ, और धर्म की खबर पहुंचाओ। गांव मुसलमानों का है तो सूफियों के गीत गाओ।

सीखना पड़ेगा न!

तो सीख लेना। उसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। और बहुत आनंदपूर्ण हैं वे, बहुत आनंदपूर्ण हैं। धर्म की खबर पहुंचाओ। गांव ईसाइयों का है, तो कोई बात नहीं, जीसस के गीत गाओ। उनको खबर पहुंचाओ। वह सब तैयारी वहां तुम्हें करनी है। जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, कम से कम पांच तो फिलहाल कर लेने का है, फिर धीरे-धीरे और थोड़े से कर लेंगे। इन सबके दो-दो, चार-चार गीत भी तैयार कर लेने हैं, नृत्य भी तैयार कर लेने हैं। फिर तो मैं लोग तुम्हें भेजूंगा। कोई सूफी भेजूंगा, वह तुम्हें दरवेश नृत्य सिखा जाएगा। और किसी को भेजूंगा, वह तुम्हें कुछ और सिखा जाएगा। और जो भी सीखने जिससे मिल जाए वह सीखना। और जल्दी ही सब किस्म के साधु आ जाएंगे, वे सिखाएंगे। अब वे नाथ-बाबा कहां बैठे हैं? वे बैठे हैं। वे तुम्हें कुछ सिखाएंगे।

सामाजिक अन्याय व शोषण के लिए नव-संन्यासी क्या करेगा?

अभी तुम समाज के अन्याय की फिक्र छोड़ दो। अभी तो तुम समाज में धर्म को पहुंचाने की फिक्र करो, वही समाज के अन्याय को तोड़ने का पाजिटिव उपाय है। अन्याय है इसीलिए कि धर्म का भाव कम है। उसको पहुंचाने की फिक्र करो। तुम

अन्याय-वन्याय की फिक्र छोड़ो अभी। वह पीछे की बात है कि जब तुम्हारे पास एक बड़ा वर्ग होगा, तो हम तोड़ सकेंगे ग्रुप भी। अन्याय के खिलाफ भी किसी दिन तुम्हें लड़ाया जा सकता है, लेकिन उसकी ताकत इकट्ठी होनी चाहिए तभी लड़ाया जा सकता है।
लड़ाया जा सकता है बराबर। उसमें कोई अड़चन नहीं है। अब जैसे कि एक गांव में समझो कि शूद्रों को जला कर मार डाला है। पर हमारे पास दस हजार संन्यासी जिस दिन होंगे, दस हजार संन्यासियों को लेकर उस पूरे गांव पर हमला ही बोल देंगे। पर वह तुम्हारे पास शक्ति हो जाए उसके बाद सोचने की बात है। यह ज्यादती नहीं होने देंगे। लेकिन ठीक है, अभी तो हम नहीं कर सकते कुछ। नहीं कर सकने की हालत में करने में व्यर्थ ताकत व्यय होती है, उसमें कुछ लेना-देना नहीं है।
तो अभी तो शक्ति को बढ़ाओ। अभी तो बिल्कुल पाजिटिव रखो, सब विधायक रखो। अभी निगेटिव कुछ भी नहीं रखना है। कोई उसकी चिंता नहीं लेनी है। वह है; दुखद है। लेकिन हमारे पास अभी शक्ति नहीं है। जब होगी तब हम उससे लड़ लेंगे।

संन्यास लेने के बाद लग्न कर सकते हैं?

बिल्कुल कर सकते हैं। क्योंकि संन्यास को इतनी बड़ी बात मानता हूं मैं
कि लग्न-वग्न इतनी छोटी बातें हैं। यह ऐसे ही है कि कोई आदमी पूछे कि संन्यास के बाद दतौन कर सकता है। बस इतना ही है। नहीं तो कोई मूल्य नहीं है मामले में। यानी उसको इतना सिग्नीफिकेंट बना लिया है हमने, इसलिए। हालांकि यह हमको नहीं लगता। लेकिन अब वह हंस इसीलिए रही है, क्योंकि वह जहां से आती है वहां दतौन करना मुश्किल है। जैन संन्यासी दतौन नहीं कर सकता, नहा भी नहीं सकता। तो वह पूछता है जैन संन्यासी कि संन्यास के बाद नहा सकते हैं? बस इतना ही मामला है। प्रोटेस्टेंट फकीर है, वह शादी करता है। तो वहां कभी कोई नहीं पूछेगा। कैथोलिक पूछेगा कि संन्यासी शादी कर सकता है?
यह संन्यासी की बात है। उसको शादी से ज्यादा परमात्मा के प्रति धन्यवाद देने की सुविधा दिखती है, शादी कर ले। अगर शादी ही उसे धन्यवाद बन सकती है, तो बराबर कर ले। अगर शादी सिर्फ कलह और उपद्रव बनती है, तो न करे। यह उसकी निजी बात है। इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हम ही करवा देंगे सब उसकी शादी मिल कर। यानी उसका मतलब सिर्फ इतना हुआ कि इस संन्यासी में एक डायमेंशन और जुड़ा--शादीशुदा संन्यासी! यह शादीशुदा संन्यासी है। इससे संन्यासी होने में कोई फर्क नहीं पड़ता है।
हम कोई बाधा ही नहीं डालना चाहते। हम संन्यास को इतना परम और अल्टिमेट समझते हैं कि उसमें कोई क्षुद्र बात बीच में लानी, संन्यास को बहुत नीचे उतारना है। वह इतना महत्वपूर्ण मामला है, उसमें बाकी कुछ भी सब इतना क्षुद्र है कि उसकी गिनती ही करने की जरूरत नहीं है। हम गिनती ही नहीं करेंगे उसकी। कठिन पड़ेगा, क्योंकि हमारा मुल्क बहुत दिन गिनती किया। लेकिन तोड़ लेंगे दो साल में, उसमें कोई अड़चन नहीं है। वह टूट जाएगा।

संन्यासी नियमित रूप से ध्यान तो करता रहे। साथ-साथ कुछ साहित्य का अध्ययन करता रहे, उसके लिए आपका क्या कहना है?

रुचि की बात है। वह रुचि की बात है। ध्यान तो प्रत्येक को करना है, रुचि की बात नहीं है। क्योंकि किसी तरह का आदमी हो, ध्यान सबके लिए अर्थपूर्ण है, बाकी सब रुचि की बात है। किसी आदमी को हो सकता है अध्ययन रुचिकर हो तो अध्ययन करे, किसी को हो सकता है कि बागवानी रुचिकर हो तो बागवानी करे आश्रम में, किसी को रुचिकर है कि वह हारमोनियम बजाए तो हारमोनियम बजाना सीखे। वह जो समय उसके पास बचता है निजी, उसको हम उस पर छोड़ देंगे।
कम से कम चार घंटे आश्रम में वह उत्पादक-श्रम करेगा। वह निजी नहीं है उसका। वह आश्रम के लिए है। उसमें वह जो कर सकता है, वह हम उससे लेंगे।

लेकिन कोई न कोई काम लेंगे। वह चाहे खेती करे, चाहे बागवानी करे, चाहे स्कूल में पढ़ाए, चाहे अस्पताल में सेवा करे। चार घंटे वह ऐसा श्रम करे, जिससे उसकी रोजी-रोटी-कपड़ा और उसके रहने की सारी व्यवस्था निकलती हो, ताकि हम किसी के सामने हाथ जोड़ कर कभी खड़े न हों। अगर कोई देने भी आश्रम को आए तो हाथ जोड़ कर देने आए। हम नहीं लेने उससे जाएं। क्योंकि जो आश्रम समाज पर निर्भर हुआ वह बदतर हो जाता है। क्योंकि जो उसे एक पैसा देता है, वह पैसा जब हम मांगने की हालत में होते हैं तो सशर्त आता है, उसमें शर्त होती है, चाहे कोई कहे चाहे न कहे।
तो हम कोई सशर्त पैसा लेंगे नहीं। तो फिर हमें मेहनत करनी पड़ेगी। और तभी व्यापक हो भी सकता है, जब हम खुद मेहनत करें। तो हम वहां इंडस्ट्री, और सब धीरे-धीरे जमाएंगे। चार घंटे प्रत्येक को उसमें करना ही है जाकर। हमको ही लगे कि ये चार घंटे इससे खेत पर काम करवाना उचित नहीं है, क्योंकि यह चार घंटा अगर साहित्य-निर्माण में दे तो ज्यादा काम का है, तो हम उसे रोकेंगे। वह कम्यून रोकेगा। हमें लगे कि इस आदमी का चार घंटे बागवानी में खराब करवाना ठीक नहीं है, हमारे आश्रम को इससे ज्यादा उपयोग होगा अगर यह चार घंटा पढ़े, तो हम कहेंगे कि वह पढ़े। मगर बाकी जो समय बचता है, उसमें उसकी मौज है, वह अपनी मौज से जीए। जो-जो जिसकी रुचि है वैसा करे।
और सब रुचियों के लोग आएंगे धीरे-धीरे तो कई रुचियां वहां विकसित हो जाएंगी और सारा काम हो जाएगा। और विविध रुचियां होंगी तो ही फायदा होगा। क्योंकि हमें सबकी जरूरत है। कोई पढ़ेगा, कोई लिखेगा, कोई एडिट करेगा, कोई गीत गाएगा, कोई संगीत, उस सबकी हमें जरूरत पड़ेगी। कोई नाटक में रुचि रखता है तो कुछ नाटक बनाए, ड्रामा तैयार करे, कोई अभिनय में रुचि रखता है तो उसकी तैयारी करे। क्योंकि यह जैसे-जैसे तुम्हारा काम बड़ा होता जाएगा तो जैसे ही मैं किसी गांव में जाता हूं तो मैं चाहूंगा कि दो सौ संन्यासी वहां उतार दिए। वे ड्रामा भी करेंगे, वे नृत्य भी करेंगे, वे समझाएंगे भी, वे कालेज में भी जाएंगे, वे सड़कों पर नाचेंगे भी, वे पूरे गांव को सब तरफ से घेर लेंगे। वे पंद्रह दिन उस गांव में रह जाएंगे तो उस गांव के प्राणों में सब कोनों से घुस जाएंगे। यानी उस गांव में किसी भी रुचि का आदमी बच नहीं सकेगा। गांव में तो अनेक रुचि वाले हैं न! किसी को गीता में रुचि है, किसी को है ही नहीं। उसको भजन में रुचि है, वह भजन में आ जाए। किसी को न गीता में रुचि है, न भजन में, किसी को नाटक देखना है, तो हमारा संन्यासी एक नाटक भी करे।
नाटक संन्यासी का ही होगा। उसमें वह बुद्ध की कथा दोहराए, कि कृष्ण की कथा लाए, कि क्या करे, वह उसकी समझ की बात है। तो वह सब रुचियां होंगी।

संन्यासी को, आपने जो कही वह सब साधना तो है ही, मगर उसके अलावा कोई ध्यान की गहराई के लिए
और कोई साधना करनी है?

नहीं, बस ध्यान ही करना है। और सब संन्यासियों को धीरे-धीरे इक्कीस दिन के गहरे ध्यान का प्रयोग करना है।

रोज-रोज एक ही तरह का ध्यान करना चाहिए या आज मौन किया, कल त्राटक किया?

जैसा तुझे अच्छा लगे! ऐसा कर सकती है। लेकिन तीन महीने अगर एक ही तरह
का करेगी तो ही ज्यादा फायदा जल्दी होगा।

जैसे ही हम संकल्प करते हैं कि मैं रोज ध्यान करूंगी, दूसरे ही दिन गड़बड़ हो जाती है!

संकल्प मत कर, रोज कर!

ओशो, फिलहाल एक घंटा कर लिया है रोज सुबह।

ध्यान तो जारी रखना है रोज घंटे भर का। उसको तो वैसा समझ लेना जैसे भोजन है, स्नान है।
"नव-संन्यास क्या?" : चर्चा एवं प्रश्नोत्तर

मैं कहता आंखन देखी
ब्यालीसवां प्रवचन

पूरब की श्रेष्ठतम देनः संन्यास

मनुष्य है एक बीज, अनंत संभावनाओं से भरा हुआ। बहुत फूल खिल सकते हैं, अलग-अलग प्रकार के। बुद्धि विकसित हो मनुष्य की तो विज्ञान का फूल खिलता है, और हृदय विकसित हो तो काव्य का, और पूरा मनुष्य ही विकसित हो जाए तो संन्यास का।
संन्यास है समग्र मनुष्य का विकास। और पूरब की मनीषा ने, पूरब की प्रतिभा ने जगत के विकास को जो दान दिया है, वह संन्यास है।
संन्यास का अर्थ है, जीवन को एक काम की भांति नहीं, वरन एक खेल की भांति जीना। जीवन नाटक से ज्यादा न रह जाए, बन जाए एक अभिनय। जीवन में कुछ भी इतना महत्वपूर्ण न रह जाए कि चिंता को जन्म दे सके। दुख हो या सुख, पीड़ा हो, संताप हो, जन्म हो या मृत्यु, संन्यास का अर्थ है इतनी समता में जीना-- हर स्थिति में--कि भीतर कोई चोट न पहुंचे। अंतरतम में कोई झंकार भी पैदा न हो। अंतरतम ऐसा अछूता रह जाए जीवन की सारी यात्रा से, जैसे कमल के पत्ते पानी में रह कर भी पानी से अछूते रह जाते हैं। ऐसे अस्पर्शित, ऐसे असंग, ऐसे जीवन से गुजरते हुए भी जीवन के बाहर रहने की कला का नाम संन्यास है। यह कला बहुत विकृत भी हुई। जो भी इस जगत में विकसित होता है, उसकी संभावना विकृत होने की भी होती है। संन्यास विकृत हुआ संसार के विरुद्ध खड़े हो जाने के कारण, संसार की निंदा, संसार की शत्रुता के कारण। संन्यास खिल सकता है वापस, फिर मनुष्य के लिए आनंद का मार्ग बन सकता है--संसार के साथ संयुक्त होकर, संसार को स्वीकृत करके। संसार का विरोध करने वाला, संसार की निंदा और संसार को शत्रुता के भाव से देखने वाला संन्यास अब आगे संभव नहीं होगा, उसका कोई भविष्य नहीं है। है भी रुग्ण वैसी दृष्टि।
यदि परमात्मा है तो यह संसार उस परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। इसे छोड़ कर, इसे त्याग कर परमात्मा को पाने की बात ही नासमझी है। इस संसार में रह कर ही इस संसार से अछूते रह जाने की जो सामर्थ्य विकसित होती है, वही इस संसार का पाठ है, वही इस संसार की सिखावन है। और तब संसार एक शत्रु नहीं, वरन एक विद्यालय हो जाता है। और तब कुछ भी त्याग करके--सचेष्ट रूप से त्याग करके--छोड़ कर भागने की पलायनवादी वृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता, वरन जीवन को उसकी समग्रता में, स्वीकार में, आनंदपूर्वक, प्रभु का अनुग्रह मान कर जीने की दृष्टि विकसित होती है।
भविष्य के लिए मैं ऐसे ही संन्यास की संभावना देखता हूं जो परमात्मा
और संसार के बीच विरोध नहीं मानता, कोई खाई नहीं मानता, वरन संसार को परमात्मा का प्रकट रूप मानता है और परमात्मा को संसार का अप्रकट छिपा हुआ प्राण मानता है। संन्यास को ऐसा देखेंगे तो वह जीवन को दीन-हीन करने की बात नहीं, जीवन को और समृद्ध और संपदा से भर देने की बात है।
असल में जब भी कोई व्यक्ति जीवन को बहुत जोर से पकड़ लेता है तभी जीवन कुरूप हो जाता है। इस जगत में हम जो भी जोर से पकड़ेंगे, वही कुरूप हो जाएगा। और जिसे भी हम मुक्त रख सकते हैं, स्वतंत्र रख सकते हैं, मुट्ठी बांधे बिना रख सकते हैं, वही इस जगत में सौंदर्य को, श्रेष्ठता को, शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है।
जीवन के सब रहस्य ऐसे हैं जैसे कोई मुट्ठी में हवा को बांधना चाहे। जितने जोर से बांधी जाती है मुट्ठी, हवा मुट्ठी के उतने ही बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी रखने की सामर्थ्य हो तो मुट्ठी हवा से भरी रहती है और बांधी मुट्ठी कि हवा से खाली हो जाती है। उलटी दिखाई पड़ने वाली, उलटबांसी सी यह बात--कि मुट्ठी खुली हो तो भरी रहती है और बंद की गई हो, बंद करने की आकांक्षा हो, तो खाली हो जाती है--जीवन के समस्त रहस्यों पर लागू होती है। कोई अगर प्रेम को पकड़ेगा, बांधेगा, प्रेम नष्ट हो जाएगा। कोई अगर आनंद
को पकड़ेगा, बांधेगा, आनंद नष्ट हो जाएगा। और कोई अगर जीवन को भी पकड़ना चाहे, बांधना चाहे, तो जीवन भी नष्ट हो जाता है।

संन्यास का अर्थ हैः खुली हुई मुट्ठी वाला जीवन, जहां हम कुछ भी बांधना नहीं चाहते, कुछ भी रोकना नहीं चाहते। प्रवाह! और सतत नये की स्वीकृति! और कल जो दिखाएगा उसके लिए भी परमात्मा को धन्यवाद का भाव! बीते हुए कल को भूल जाना है, क्योंकि बीता हुआ कल अब स्मृति के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। जो हाथ में है, उसे भी छोड़ने की तैयारी रखनी है, क्योंकि इस जीवन में सब कुछ क्षणभंगुर है। जो अभी हाथ में है, क्षण भर बाद हाथ के बाहर हो जाएगा। जो श्वास अभी भीतर है, क्षण भर बाद बाहर होगी। ऐसा प्रवाह है जीवन। इसमें जिसने भी रोकने की कोशिश की, वही गृहस्थ है। और जिसने जीवन के प्रवाह में बहने की सामर्थ्य साध ली, जो प्रवाह के साथ बहने लगा--सरलता से, सहजता से, असुरक्षा में, अनजान में, अज्ञात में--वही संन्यासी है।
संन्यास के तीन बुनियादी सूत्र ख्याल में ले लेने जैसे हैं।
पहलाः जीवन एक प्रवाह है। उसमें रुक नहीं जाना, ठहर नहीं जाना, वहां कहीं भी घर नहीं बना लेना है--एक यात्रा है। और जीवन में पड़ाव हैं बहुत, लेकिन मंजिल कहीं भी नहीं। मंजिल जीवन के पार परमात्मा में है।
दूसराः जीवन जो भी दे, उसके साथ पूर्ण संतुष्टि और पूर्ण अनुग्रह। क्योंकि जहां असंतुष्ट हुए हम, तो जीवन जो देता है, उसे भी छीन लेता है; और जहां संतुष्ट हुए हम, जीवन जो नहीं देता, उसके भी द्वार खुल जाते हैं।
और तीसरी बातः जीवन में सुरक्षा का मोह न रखना। सुरक्षा संभव नहीं है। तथ्य ही असंभावना का है। असुरक्षा ही जीवन है। सच तो यह है, सिर्फ मृत्यु ही सुरक्षित हो सकती है, जीवन तो असुरक्षित होगा ही। इसलिए जितना जीवंत व्यक्तित्व होगा, उतना असुरक्षित होगा; और जितना मरा हुआ व्यक्तित्व होगा, उतना सुरक्षित होगा।
सुना है मैंने, एक सूफी फकीर मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मरते वक्त वसीयत की थी कि मेरी कब्र पर एक दरवाजा बना देना और उस दरवाजे पर कीमती से कीमती, वजनी से वजनी, मजबूत से मजबूत ताला लगा देना; लेकिन एक बात ध्यान रखना, दरवाजा ही बनाना, मेरी कब्र के चारों तरफ दीवार मत बनाना। कब्र पर दरवाजा बना है, आज भी नसरुद्दीन की कब्र पर दरवाजा खड़ा है--बिना दीवारों के। ताले लगे हैं जोर से, मजबूत। चाबियां समुद्र में फेंक दी गईं, ताकि कोई उन्हें खोज न ले। नसरुद्दीन की यह मरते वक्त आखिरी मजाक थी--एक संन्यासी की मजाक संसारियों के प्रति।
हम भी जीवन में कितने ही ताले डालें, सिर्फ ताले ही रह जाते हैं। चारों तरफ जीवन असुरक्षित है सदा, कहीं कोई दीवार नहीं है। जो इस सत्य को स्वीकार करके जीना शुरू कर देता है कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है, असुरक्षा के लिए मैं राजी हूं, मेरी पूर्ण सहमति है, वही संन्यासी है। और जो असुरक्षित होने को तैयार हो गया, निराधार होने को, उसे परमात्मा का आधार उपलब्ध हो जाता है।
"नव-संन्यास क्या?" से संकलित
"संन्यासः मेरी दृष्टि में" रेडियो-वार्ता
नुष्य है एक बीज, अनंत संभावनाओं से भरा हुआ। बहुत फूल खिल सकते हैं, अलग-अलग प्रकार के। बुद्धि विकसित हो मनुष्य की तो विज्ञान का फूल खिलता है, और हृदय विकसित हो तो काव्य का, और पूरा मनुष्य ही विकसित हो जाए तो संन्यास का।
संन्यास है समग्र मनुष्य का विकास। और पूरब की मनीषा ने, पूरब की प्रतिभा ने जगत के विकास को जो दान दिया है, वह संन्यास है।
संन्यास का अर्थ है, जीवन को एक काम की भांति नहीं, वरन एक खेल की भांति जीना। जीवन नाटक से ज्यादा न रह जाए, बन जाए एक अभिनय। जीवन में कुछ भी इतना महत्वपूर्ण न रह जाए कि चिंता को जन्म दे सके। दुख हो या सुख, पीड़ा हो, संताप हो, जन्म हो या मृत्यु, संन्यास का अर्थ है इतनी समता में जीना-- हर स्थिति में--कि भीतर कोई चोट न पहुंचे। अंतरतम में कोई झंकार भी पैदा न हो। अंतरतम ऐसा अछूता रह जाए जीवन की सारी यात्रा से, जैसे कमल के पत्ते पानी में रह कर भी पानी से अछूते रह जाते हैं। ऐसे अस्पर्शित, ऐसे असंग, ऐसे जीवन से गुजरते हुए भी जीवन के बाहर रहने की कला का नाम संन्यास है।

यह कला बहुत विकृत भी हुई। जो भी इस जगत में विकसित होता है, उसकी संभावना विकृत होने की भी होती है। संन्यास विकृत हुआ संसार के विरुद्ध खड़े हो जाने के कारण, संसार की निंदा, संसार की शत्रुता के कारण। संन्यास खिल सकता है वापस, फिर मनुष्य के लिए आनंद का मार्ग बन सकता है--संसार के साथ संयुक्त होकर, संसार को स्वीकृत करके। संसार का विरोध करने वाला, संसार की निंदा और संसार को शत्रुता के भाव से देखने वाला संन्यास अब आगे संभव नहीं होगा, उसका कोई भविष्य नहीं है। है भी रुग्ण वैसी दृष्टि।
यदि परमात्मा है तो यह संसार उस परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। इसे छोड़ कर, इसे त्याग कर परमात्मा को पाने की बात ही नासमझी है। इस संसार में रह कर ही इस संसार से अछूते रह जाने की जो सामर्थ्य विकसित होती है, वही इस संसार का पाठ है, वही इस संसार की सिखावन है। और तब संसार एक शत्रु नहीं, वरन एक विद्यालय हो जाता है। और तब कुछ भी त्याग करके--सचेष्ट रूप से त्याग करके--छोड़ कर भागने की पलायनवादी वृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता, वरन जीवन को उसकी समग्रता में, स्वीकार में, आनंदपूर्वक, प्रभु का अनुग्रह मान कर जीने की दृष्टि विकसित होती है।
भविष्य के लिए मैं ऐसे ही संन्यास की संभावना देखता हूं जो परमात्मा
और संसार के बीच विरोध नहीं मानता, कोई खाई नहीं मानता, वरन संसार को परमात्मा का प्रकट रूप मानता है और परमात्मा को संसार का अप्रकट छिपा हुआ प्राण मानता है। संन्यास को ऐसा देखेंगे तो वह जीवन को दीन-हीन करने की बात नहीं, जीवन को और समृद्ध और संपदा से भर देने की बात है।
असल में जब भी कोई व्यक्ति जीवन को बहुत जोर से पकड़ लेता है तभी जीवन कुरूप हो जाता है। इस जगत में हम जो भी जोर से पकड़ेंगे, वही कुरूप हो जाएगा। और जिसे भी हम मुक्त रख सकते हैं, स्वतंत्र रख सकते हैं, मुट्ठी बांधे बिना रख सकते हैं, वही इस जगत में सौंदर्य को, श्रेष्ठता को, शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है।
जीवन के सब रहस्य ऐसे हैं जैसे कोई मुट्ठी में हवा को बांधना चाहे। जितने जोर से बांधी जाती है मुट्ठी, हवा मुट्ठी के उतने ही बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी रखने की सामर्थ्य हो तो मुट्ठी हवा से भरी रहती है और बांधी मुट्ठी कि हवा से खाली हो जाती है। उलटी दिखाई पड़ने वाली, उलटबांसी सी यह बात--कि मुट्ठी खुली हो तो भरी रहती है और बंद की गई हो, बंद करने की आकांक्षा हो, तो खाली हो जाती है--जीवन के समस्त रहस्यों पर लागू होती है। कोई अगर प्रेम को पकड़ेगा, बांधेगा, प्रेम नष्ट हो जाएगा। कोई अगर आनंद
को पकड़ेगा, बांधेगा, आनंद नष्ट हो जाएगा। और कोई अगर जीवन को भी पकड़ना चाहे, बांधना चाहे, तो जीवन भी नष्ट हो जाता है।
संन्यास का अर्थ हैः खुली हुई मुट्ठी वाला जीवन, जहां हम कुछ भी बांधना नहीं चाहते, कुछ भी रोकना नहीं चाहते। प्रवाह! और सतत नये की स्वीकृति! और कल जो दिखाएगा उसके लिए भी परमात्मा को धन्यवाद का भाव! बीते हुए कल को भूल जाना है, क्योंकि बीता हुआ कल अब स्मृति के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। जो हाथ में है, उसे भी छोड़ने की तैयारी रखनी है, क्योंकि इस जीवन में सब कुछ क्षणभंगुर है। जो अभी हाथ में है, क्षण भर बाद हाथ के बाहर हो जाएगा। जो श्वास अभी भीतर है, क्षण भर बाद बाहर होगी। ऐसा प्रवाह है जीवन। इसमें जिसने भी रोकने की कोशिश की, वही गृहस्थ है। और जिसने जीवन के प्रवाह में बहने की सामर्थ्य साध ली, जो प्रवाह के साथ बहने लगा--सरलता से, सहजता से, असुरक्षा में, अनजान में, अज्ञात में--वही संन्यासी है।
संन्यास के तीन बुनियादी सूत्र ख्याल में ले लेने जैसे हैं।
पहलाः जीवन एक प्रवाह है। उसमें रुक नहीं जाना, ठहर नहीं जाना, वहां कहीं भी घर नहीं बना लेना है--एक यात्रा है। और जीवन में पड़ाव हैं बहुत, लेकिन मंजिल कहीं भी नहीं। मंजिल जीवन के पार परमात्मा में है।
दूसराः जीवन जो भी दे, उसके साथ पूर्ण संतुष्टि और पूर्ण अनुग्रह। क्योंकि जहां असंतुष्ट हुए हम, तो जीवन जो देता है, उसे भी छीन लेता है; और जहां संतुष्ट हुए हम, जीवन जो नहीं देता, उसके भी द्वार खुल जाते हैं।
और तीसरी बातः जीवन में सुरक्षा का मोह न रखना। सुरक्षा संभव नहीं है। तथ्य ही असंभावना का है। असुरक्षा ही जीवन है। सच तो यह है, सिर्फ

मृत्यु ही सुरक्षित हो सकती है, जीवन तो असुरक्षित होगा ही। इसलिए जितना जीवंत व्यक्तित्व होगा, उतना असुरक्षित होगा; और जितना मरा हुआ व्यक्तित्व होगा, उतना सुरक्षित होगा।
सुना है मैंने, एक सूफी फकीर मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मरते वक्त वसीयत की थी कि मेरी कब्र पर एक दरवाजा बना देना और उस दरवाजे पर कीमती से कीमती, वजनी से वजनी, मजबूत से मजबूत ताला लगा देना; लेकिन एक बात ध्यान रखना, दरवाजा ही बनाना, मेरी कब्र के चारों तरफ दीवार मत बनाना। कब्र पर दरवाजा बना है, आज भी नसरुद्दीन की कब्र पर दरवाजा खड़ा है--बिना दीवारों के। ताले लगे हैं जोर से, मजबूत। चाबियां समुद्र में फेंक दी गईं, ताकि कोई उन्हें खोज न ले। नसरुद्दीन की यह मरते वक्त आखिरी मजाक थी--एक संन्यासी की मजाक संसारियों के प्रति।
हम भी जीवन में कितने ही ताले डालें, सिर्फ ताले ही रह जाते हैं। चारों तरफ जीवन असुरक्षित है सदा, कहीं कोई दीवार नहीं है। जो इस सत्य को स्वीकार करके जीना शुरू कर देता है कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है, असुरक्षा के लिए मैं राजी हूं, मेरी पूर्ण सहमति है, वही संन्यासी है। और जो असुरक्षित होने को तैयार हो गया, निराधार होने को, उसे परमात्मा का आधार उपलब्ध हो जाता है।

"नव-संन्यास क्या?" से संकलित
"संन्यासः मेरी दृष्टि में" रेडियो-वार्ता

मैं कहता आंखन देखी
तिरतालीसवां प्रवचन

पत्र-पाथेयः संन्यासियों के लिए

ओशो द्वारा
नव-संन्यासियों को
अंतःप्रेरणा एवं मार्गदर्शन हेतु
लिखे गए 39 अमृत-पत्र!

1 / वे इकट्ठे होंगे--जिनके लिए मैं आया हूं

प्रिय मधु,
प्रेम। "कम्यून" की खबर हृदय को पुलकित करती है।
बीज अंकुरित हो रहा है।
शीघ्र ही असंख्य आत्माएं उसके वृक्ष तले विश्राम पाएंगी।
वे लोग जल्दी ही इकट्ठे होंगे--जिनके लिए कि मैं आया हूं।
और तू उन सब की आतिथेय होने वाली है।
इसलिए, तैयार हो--अर्थात स्वयं को पूर्णतया शून्य कर ले।
क्योंकि, वह शून्यता ही आतिथेय, होस्ट बन सकती है।
और तू उस ओर चल पड़ी है--नाचती, गाती, आनंदमग्न।
जैसे सरिता सागर की ओर जाती है।
और मैं खुश हूं।
और सदा साथ हूं।
सागर निकट है--बस दौड़... और दौड़... और दौड़!

2 / संघर्ष, संकल्प और संन्यास

प्यारी मधु,
प्रेम। संघर्ष का शुभारंभ है।
और, उसमें तुझे धक्का देकर मैं अत्यंत आनंदित हूं।
संन्यास संसार को चुनौती है।
वह स्वतंत्रता की मौलिक घोषणा है।
पल-पल स्वतंत्रता में जीना ही संन्यास है।
असुरक्षा अब सदा तेरे साथ होगी, लेकिन वही जीवन का सत्य है।
सुरक्षा कहीं है नहीं--सिवाय मृत्यु के।
जीवन असुरक्षा है।
और यही उसकी पुलक है--यही उसका सौंदर्य है।
सुरक्षा की खोज ही आत्मघात है।
वह अपने ही हाथों, जीते-जी मरना है।
ऐसे मुर्दे चारों ओर हैं!
उन्होंने ही संसार को मरघट बना दिया है।
उनमें प्रतिष्ठित मुर्दे भी हैं।
इन सबको जगाना है, हालांकि वे सब जागे हुओं को भी सुलाने की चेष्टा करते हैं।
अब तो यह संघर्ष चलता ही रहेगा।
इसमें ही तेरे संपूर्ण संकल्प का जन्म होगा।
और मैं देख रहा हूं दूर--उस किनारे को जो कि तेरे संघर्ष की मंजिल है।

3 / संन्यासी बेटे का गौरव

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। फौलाद के बनो--मिट्टी के होने से अब काम नहीं चलेगा।
संन्यासी होना प्रभु के सैनिक होना है।

माता-पिता की सेवा करो।
पहले से भी ज्यादा।
संन्यासी बेटे का आनंद उन्हें दो।
लेकिन, झुकना नहीं।
अपने संकल्प पर दृढ़ रहना।
इसी में परिवार का गौरव है।
जो बेटा संन्यास जैसे संकल्प में समझौता कर ले वह कुल के लिए कलंक है।
मैं आश्वस्त हूं तुम्हारे लिए।
इसीलिए तो तुम्हारे संन्यास का साक्षी बना हूं।
हंसो और सब झेलो।
हंसो और सब सुनो।
यही साधना है।
आंधियां आएंगी और चली जाएंगी।

4 / संन्यास की आत्मा हैः अडिग, अचल और अभय होना

प्रिय योग समाधि,
प्रेम। संन्यास गौरी-शंकर की यात्रा है।
चढ़ाई में कठिनाइयां तो हैं ही।
लेकिन दृढ़ संकल्प के मीठे फल भी हैं।
सब शांति और आनंद में झेलना।
लेकिन संकल्प नहीं छोड़ना।
मां की सेवा करना, पहले से भी ज्यादा।
संन्यास दायित्वों से भागने का नाम नहीं है।
परिवार नहीं छोड़ना है, वरन सारे संसार को ही परिवार बनाना है।
मां को भी संन्यास की दिशा में उन्मुख करना।
कहना उनसेः संसार की ओर बहुत देखा, अब प्रभु की ओर आंखें उठाओ।
और तेरी ओर से उन्हें कोई कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना।
लेकिन इसका अर्थ झुकना या समझौता करना नहीं है।
संन्यास समझौता जानता ही नहीं है।
अडिग और अचल और अभय--यही संन्यास की आत्मा है।

5 / संन्यास जीवन का परम-भोग है

प्रिय योग प्रिया,
प्रेम। तेरे संन्यास से अत्यंत आनंदित हूं।
जिस जीवन (वृक्ष) में संन्यास के फूल न लगें, वह वृक्ष बांझ है।
क्योंकि, संन्यास ही परम जीवन-संगीत है।
संन्यास त्याग नहीं है।
वरन, वही जीवन का परम-भोग है।
निश्चय ही जो हीरे-मोती पा लेता है, उससे कंकड़-पत्थर छूट जाते हैं।
लेकिन, वह छोड़ना नहीं, छूटना है।

6 / संन्यास नया जन्म है

प्रिय योग यशा,
प्रेम। नये जन्म पर मेरे शुभाशीष।
संन्यास नया जन्म है।
स्वयं में, स्वयं से, स्वयं का।
वह मृत्यु भी है।
साधारण नहीं--महामृत्यु!
उस सब की जो तू कल तक थी।
और जो तू अब है, वह भी प्रतिपल मरता रहेगा।
ताकि, नया जन्मे--नया जन्मता ही रहे।

अब एक पल भी तू तू नहीं रह सकेगी।
मिटना है प्रतिपल और होना है प्रतिपल।
यही है साधना।
नदी की भांति जीना है।
सरोवर की भांति नहीं।
सरोवर गृहस्थ है।
सरिता संन्यासी है।

7 / संसार में संन्यास का प्रवेश

प्रिय प्रेम कृष्ण,
प्रेम। संन्यास की सुगंध को संसार तक पहुंचाना है।
धर्मों के कारागृहों ने संन्यास के फूल को भी विशाल दीवारों की ओट में कर लिया है।
इसलिए, अब संन्यासी को कहना है कि मैं किसी धर्म का नहीं हूं, क्योंकि समस्त धर्म ही मेरे हैं।
संन्यास को संसार से तोड़ कर भी बड़ी भूल हो गई है।
संसार से टूटा हुआ संन्यास रक्तहीन हो जाता है।
और संन्यास से टूटा हुआ संसार प्राणहीन।
इसलिए, दोनों के बीच पुनः सेतु निर्मित करने हैं।
संन्यास को रक्त देना है, और संसार को आत्मा देनी है।
संन्यास को संसार में लाना है।
अभय और असंग।
संसार में और फिर भी बाहर।
भीड़ में और फिर भी अकेला।
और संसार को भी संन्यास में ले जाना है।
अभय और असंग।
संन्यास में और फिर भी पलायन में नहीं।
संन्यास में और फिर भी संसार में।
तब ही वह स्वर्ण-सेतु निर्मित होगा जो कि दृश्य को अदृश्य से और आकार
को निराकार से जोड़ देता है।
लगो इस महत कार्य में।
बनो मजदूर इस सेतु के निर्माण में।

8 / संन्यास अर्थात जीवन का समग्र स्वीकार

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। भय छोड़।
क्योंकि भय को पकड़ा कि वह बढ़ा।
उसे पकड़ना ही उसे पानी देना है।
लेकिन, भय छोड़ने का अर्थ उससे लड़ना नहीं है।
लड़ना भी उसे पकड़ना ही है।
भय है--ऐसा जान।
उससे भाग मत, पलायन मत कर।
जीवन में भय है।
असुरक्षा है।
मृत्यु है।
ऐसा जान। ऐसा है।
यह सब जीवन का तथ्य है।
भागेंगे कहां?
बचेंगे कैसे?
जीवन ऐसा है ही।
इसकी स्वीकृति--इसका सहज अंगीकार ही भय से मुक्ति है।
भय स्वीकृत है तो फिर भय कहां है?

मृत्यु स्वीकृत है तो फिर मृत्यु कहां है?
असुरक्षा स्वीकृत है तो फिर असुरक्षा कहां है?
जीवन की समग्रता के स्वीकार को ही मैं संन्यास कहता हूं।

9 / संन्यास के संकल्प में अडिग रहो

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। संकल्प के मार्ग में आती बाधाओं को प्रभु-प्रसाद समझना, क्योंकि उनके बिना संकल्प के प्रगाढ़ होने का और कोई उपाय नहीं है।
राह के पत्थर प्रज्ञावान के लिए, अवरोध नहीं, सीढ़ियां ही सिद्ध होती हैं।
अंततः, सब कुछ स्वयं पर ही निर्भर है।
अमृत जहर हो सकता है, और जहर अमृत हो सकता है।
फूल कांटों में छिपे हैं।
कांटों को देख कर जो भाग जाता है, वह व्यर्थ ही फूलों से वंचित रह जाता है।
हीरे खदानों में दबे हैं।
उनकी खोज में पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं।
लेकिन, उनसे निराश होना हीरों को सदा के लिए ही खोना है।
एक-एक पल कीमती है।
समय लौट कर नहीं आता है।
और खोये अवसर खोया जीवन बन जाते हैं।
अंधेरा जब घना हो तो जानना कि सूर्योदय निकट है।

10 / ईश्वर की पुकार से भर गए प्राणों में संन्यास का अवतरण

प्रिय धर्म ज्योति,
प्रेम। संन्यास उस चित्त में ही अवतरित होता है, जिसके लिए कि ईश्वर
ही सब कुछ है।
जहां ईश्वर सब कुछ है, वहां संसार अपने आप ही "कुछ नहीं" हो जाता है।
किसी फकीर के पास एक कंबल था।
उसे किसी ने चुरा लिया है।
फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी की रिपोर्ट लिखवाई।
उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत सी चीजें चोरी चली गई हैं।
चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला आया था।
सूची की इतनी लंबी-चौड़ी रूपरेखा देख कर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया
और थानेदार के सामने कंबल फेंक कर बोला--"बस यही, एक सड़ा-गला कंबल था! इसके बदले इसने संसार भर की चीजें लिखा डाली हैं!"
फकीर ने कंबल उठा कर कहा--"आह! बस यही तो मेरा संसार है!"
फकीर कंबल उठा कर चलने को उत्सुक हुआ तो थानेदार ने उसे रोका और कहा
कि रिपोर्ट में झूठी चीजें क्यों लिखाईं?
वह फकीर बोला--"नहीं, झूठ एक शब्द भी नहीं लिखाया है। देखिए! यही कंबल मेरे लिए सब कुछ है--यही मेरा तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पाजामा, यही कोट।"
बेशक, उसकी बात ठीक ही थी।
जिस दिन ईश्वर भी ऐसे ही सब कुछ हो जाता है--तकिया, गद्दा, छाता, पाजामा, कोट--उसी दिन संन्यास का अलौकिक फूल जीवन में खिलता है।

11 / संसार को अभिनय जानना ही संन्यास है

प्रिय योग प्रिया,
प्रेम। संन्यास में संसार अभिनय है।
संसार को अभिनय जानना ही संन्यास है।

फिर न कोई छोटा है, न बड़ा--न कोई राम है, न रावण।
फिर तो जो भी है सब रामलीला है!
जो मिले अभिनय उसे पूरा कर।
वह अभिनय तू नहीं है।
और जब तक अभिनय से हमारा तादात्म्य है, तब तक आत्मज्ञान असंभव है।
और जिस दिन यह तादात्म्य टूटता है उसी दिन से अज्ञान असंभव हो जाता है।
अभिनय कर और जान कि तू वह नहीं है।

12 / संन्यास सबसे बड़ा विद्रोह है

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम। संन्यास बड़ा से बड़ा विद्रोह है--संसार से, समाज से, सभ्यता से।
वह मूल्यों का मूल्यांतरण है।
वह स्वयं से स्वयं में और स्वयं के द्वारा क्रांति है।
इसलिए, अनेक प्रकार की कठिनाइयां सहनी होंगी।
विरोध होगा।
हंसी होगी।
लेकिन, उस सबके साक्षी बनना।
वह परीक्षा है।
और, उससे तुम निखरोगे और उज्ज्वल बनोगे।
उनका अनुग्रह मानना जो तुम्हें सताएं।
क्योंकि, वे ही तुम्हारे लिए परीक्षा का अवसर देंगे।
विनम्रता से सब सहना।
संतोष से सब स्वीकार करना।
और, तब तुम पाओगे कि इस जगत में शत्रु कोई भी नहीं है।
सिवाय स्वयं के अहंकार के।

13 / खिलना--संन्यास के फूल का

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन में जो भी शुभ है, सुंदर है, सत्य है, संन्यास उन सबका समवेत संगीत है।
संन्यास के बिना जीवन में सुवास असंभव है।
जीवन अपने आप में जड़ों से ज्यादा नहीं है।
संन्यास का फूल जब तक न खिले तब तक जीवन अर्थ और आनंद और अहोभाव को उपलब्ध नहीं होता है।
और मैं यह जान कर अत्यधिक आनंदित हूं कि आत्म-क्रांति का वह अमूल्य क्षण तुम्हारे जीवन में आकर उपस्थित हो गया है।
तुम्हारी आंखों में उस क्षण को मैंने देखा है।
वैसे ही जैसे भोर में सूर्योदय के पूर्व आकाश लालिमा से भर जाता है, ऐसे ही संन्यास के पूर्व की लालिमा को मैंने तुम्हारे हृदय पर फैलते देखा है।
पक्षी स्वागत-गीत गा रहे हैं और सोए पौधे जाग रहे हैं।
अब देर उचित नहीं है।
ऐसे भी क्या काफी देर नहीं हो चुकी है?

14 / ध्यान, प्रेम और संन्यास का फूल

प्रिय कचु,
प्रेम। ध्यान का जल सींचते रहो।
संन्यास का फूल तो खिलेगा ही।
लेकिन, सतत प्रयास चाहिए।
हृदय की धड़कन-धड़कन में ध्यान का नाद भरना है।

संन्यास सरल है, लेकिन सस्ता नहीं है।
और सरल है, इसीलिए सस्ता नहीं है।
क्योंकि, जीवन में सरलता को पाना ही कठिनतम है।
मीरा ने कहा है--"अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई।"
मीरा के लिए प्रेम ही ध्यान है।
तुम्हारे लिए ध्यान ही प्रेम होगा।
ऐसे दोनों ही, एक ही सत्य के दो छोर हैं।

15 / संसार को लीला मात्र जानना संन्यास है

प्यारी हंसा,
प्रेम। संसार आनंदपूर्ण अभिनय बन जाए तो संन्यास फलित होता है।
संसार को बोझ रूप ढोना गार्हस्थ है।
संसार को लीला-मात्र जानना संन्यास है।
संन्यास संसार का विरोध नहीं है।
वरन संसार के प्रति दृष्टि का रूपांतरण है।
और सब कुछ--सुख-दुख, राग-द्वेष, यश-अपयश--सभी कुछ दृष्टि के बदलते ही बदल जाते हैं।
दृष्टि--जीवन को देखने का ढंग ही जीवन का आधार बन जाता है।
संन्यास विवाद भी नहीं है।
मेरे देखे तो संसार को संन्यास की दृष्टि से न देखने से ही विवाद उत्पन्न होता है।
संन्यास तो परम रस है--परम भोग है।
क्योंकि, संन्यास परमात्मा का साझीदार होना है।
लेकिन बहुत बार कंकड़-पत्थरों का मोह हीरों की खदान तक ही नहीं पहुंचने देता है।
पर तुझे मैं छोडूंगा नहीं।
हीरों की खदान निकट है और तुझे वहां तक पहुंचना ही है।

16 / संन्यास भी ध्यान का एक मार्ग है

मेरे प्रिय,
प्रेम। ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।
या, जो भी मार्ग है, वे सब ध्यान (मेडिटेशन) के ही रूप हैं।
प्रार्थना भी ध्यान है।
पूजा भी।
उपासना भी।
योग भी ध्यान है।
सांख्य भी।
ज्ञान भी ध्यान है।
भक्ति भी।
कर्म भी ध्यान है।
संन्यास भी।
ध्यान का अर्थ है चित्त की मौन, निर्विचार, शुद्धावस्था।
कैसे पाते हो इस अवस्था को, यह महत्वपूर्ण नहीं है।
बस पा लो, यही महत्वपूर्ण है।
किस चिकित्सा-पद्धति से स्वस्थ होते हो, यह गौण है।
बस स्वस्थ हो जाओ, यही महत्वपूर्ण है।

17 / कोयले जैसी चेतना को हीरे जैसा बनाने की कीमिया है--संन्यास

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। नासमझी से वरदान भी अभिशाप हो जाते हैं।
और समझ से अभिशाप भी वरदान।

इसलिए, असली सवाल अभिशाप या वरदान का नहीं है; असली सवाल है उस कीमिया(अल्केमी) को जानने का, जो कि कांटों को फूल में रूपांतरित कर देती है।
कोयला ही रासायनिक प्रक्रिया से गुजर कर हीरा हो जाता है।
संन्यास कोयले जैसी चेतना को हीरे जैसा बनाने की ही प्रक्रिया है।
संन्यास के रसायन-शास्त्र का मूल सूत्र तुझे कहता हूं।
सीधा नहीं कहूंगा।
कहूंगा जरूर--लेकिन फिर भी तुझे उसे खोजना भी होगा।
क्योंकि, परोक्ष इशारा भी उस सूत्र की अभिव्यक्ति का अनिवार्य अंग है।
कुछ महामंत्र हैं, जो कि सीधे कहे ही नहीं जा सकते हैं।
या कहे जावें तो समझे नहीं जा सकते हैं।
या समझे भी जावें तो उनमें निहित काव्य खो जाता है।
और वह काव्य ही उनकी आत्मा है।
एकनाथ रोज भोर में गोदावरी में स्नान करने जाते थे।
वे स्नान करके लौटते तो एक व्यक्ति उन पर थूक देता, वे हंसते और पुनः स्नान कर आते।
धर्म के ठेकेदारों ने उस व्यक्ति को किराए पर रखा था।
लेकिन, एक शर्त थी कि एकनाथ क्रोधित हों तो ही उसे पुरस्कार मिल सकता था।
एक दिन--दो दिन--सप्ताह--दो सप्ताह--और उस व्यक्ति की मेहनत व्यर्थ ही
जा रही थी।
अंततः उसने आखिरी कोशिश की।
और एक दिन एकनाथ पर 107 बार थूका।
एकनाथ बार-बार हंसते और पुनः स्नान कर आते।
फिर उसने 107 वीं बार भी थूका।
एकनाथ हंसे और पुनः स्नान कर आए।
और फिर उसके पास आकर खड़े हो गए--इस आशा और प्रतीक्षा में कि शायद वह और
भी थूके।
लेकिन, वह गरीब बुरी तरह थक गया था।
थूकते-थूकते उसका मुंह भी सूख गया था।
एकनाथ ने थोड़ी देर प्रार्थनापूर्ण मन से प्रतीक्षा की और फिर बोलेः "किन शब्दों में तुम्हारा धन्यवाद करूं? मैं पहले गोदावरी की गोद का आनंद एक ही बार लेता था; फिर तुम्हारी सत्प्रेरणा से दो बार लेने लगा। और आज का तो कहना ही क्या है--108 बार गोदावरी-स्नान का पुण्य मिला है! श्रम तुम्हारा है, और फल मैं ले रहा हूं।"

18 / संन्यास की आत्मा--स्वतंत्रता में

प्रिय योग माया,
प्रेम। स्वतंत्रता से बहुमूल्य इस पृथ्वी पर कुछ और नहीं है।
उसकी गहराई में ही संन्यास है।
उसकी ऊंचाई में ही मोक्ष है।
लेकिन, सच्चे सिक्कों के साथ खोटे सिक्के भी तो चलते ही हैं।
शायद, साथ कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि खोटे सिक्के सच्चे सिक्कों के कारण ही चलते हैं।
उनके चलन का मूलाधार भी सच्चे सिक्के ही जो होते हैं।
असत्य को चलने के लिए सत्य होने का पाखंड रचना पड़ता है।
और बेईमानी को ईमानदारी के वस्त्र ओढ़ने पड़ते हैं।
परतंत्रताएं स्वतंत्रताओं के नारों से जीती हैं।
और, कारागृह मोक्ष के चित्रों से स्वयं की सजावट कर लेते हैं!
फिर भी सदा-सदैव के लिए धोखा असंभव है।
और आदमी तो आदमी, पशु भी धोखे को पहचान लेते हैं!
मैंने सुना है कि लंदन में एक अंतर्राष्ट्रीय कुत्ता-प्रदर्शनी हुई।

उसमें आए रूसी कुत्ते ने अंग्रेज कुत्ते से पूछाः "यहां के हालचाल कैसे हैं साथी?"
उत्तर मिलाः "खास अच्छे नहीं। खाने-पीने की तंगी है। और नगर पर सदा ही धुंध छाई रहती है; जो मेरा गठिए का दर्द बढ़ा देती है। हां, मास्को में हालत कैसी है?"
रूसी कुत्ते ने कहाः "भोजन खूब मिलता है। चाहो जितना मांस, और चाहो जितनी हड्डियां। खाने की तो वहां बिल्कुल ही तंगी नहीं है।"
लेकिन फिर वह अगल-बगल झांक कर जरा नीची आवाज में कहने लगा, "मैं यहीं राजनीतिक आश्रय चाहता हूं। क्या तुम दया करके मेरी कुछ मदद कर सकोगे?" अंग्रेज कुत्ता स्वभावतः चकित होकर पूछने लगाः "मगर तुम यहां क्यों रहना चाहते हो; जब कि तुम ही कहते हो कि मास्को में हालत बड़ी अच्छी है?" उत्तर मिलाः "बात यह है कि मैं कभी-कभी जरा भौंक भी लेना चाहता हूं। कुत्ता हूं और वह भी रूसी, तो क्या हुआ, मेरी आत्मा भी स्वतंत्रता तो चाहती है।"

19 / संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि

प्रिय योग मूर्ति,
प्रेम। आह! क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि "आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास"?
तब तुम न तो हरिभजन का ही अर्थ समझते हो, न ही कपास ओटने का।
जिसके लिए "कपास ओटने" के प्रति निंदा का भाव है, वह कहीं भी क्यों न जाए, कपास ही ओटेगा।
और जो "हरिभजन" को जीवन की समग्रता से तोड़ कर अलग-थलग देखता है, वह आज नहीं तो कल पाएगा ही कि कपास ओट रहा है।
हरिभजन और कपास ओटने में ऐसी कोई शत्रुता नहीं है।
पूछ देखो कबीर से या गोरा कुम्हार से।
जीवन की कला तो यही है कि कपास ओटने में भी हरिभजन हो और हरिभजन में भी कपास ओटा जा सके।
इसलिए तो मेरे लिए संन्यास संसार का विरोधी नहीं, वरन संसार को ही देखने का एक नया आयाम है।
संसार है कर्ता-ग्रसित दृष्टि।
संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि।
संसार है निद्रा--साक्षी की।
संन्यास है जागरण--साक्षी का।
कपास ओटो जागे हुए तो हरिभजन है
हरिभजन करो सोए हुए तो कपास ओटना है
कबीर ने इसे ही सहज समाधि कहा हैः "साधो, सहज समाधि भली।"

20 / संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है

मेरे प्रिय,
प्रेम। सोच-विचार कैसा?
क्षण का भी तो भरोसा नहीं है।
समय तो प्रतिपल हाथ से चुकता ही जाता है।
और मृत्यु न पूछ कर आती है।
न बता कर ही।
फिर संन्यास का अर्थ हैः सहज जीवन।
वह आरोपण नहीं; विपरीत समस्त आरोपणों से मुक्ति है।
संन्यास तुम्हारा निर्णय भी नहीं है।
वह तो तुमसे ही छुटकारा जो है।
संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है।

21 / मन है संन्यास का तो डूबो

मेरे प्रिय,
प्रेम। मन है संन्यास का तो डूबो।
फिर स्थगन ठीक नहीं।
प्रभु जब पुकारे तो चल पड़ो।
फिर रुकना नहीं।
क्योंकि, अवसर द्वार पर बार-बार आए कि न आए।

22 / संन्यास में छलांग

प्यारी सावित्री,
प्रेम। कब तक करेगी बाहर-भीतर का भेद?
शरीर और आत्मा का?
पदार्थ और परमात्मा का?
काफी किया--अब छोड़।
संन्यास न है बाहर से, न भीतर से।
संन्यास बाहर-भीतर का अभेद है।
और इसलिए कहीं से प्रारंभ कर--अंत सदा एक है।
असली बात है कि प्रारंभ कर और स्थगन न कर।

23 / ध्यान की गहराई के साथ ही संन्यास-चेतना का आगमन

मेरे प्रिय,
प्रेम। बहुमूल्य है तुम्हारा अनुभव।
जो चाहते थे, वही हुआ है।
द्वारा खुला है--जन्मों-जन्मों से बंद पड़ा द्वार।
इसलिए पीड़ा स्वाभाविक है।
नया जन्म हुआ है तुम्हारा।
इसलिए, प्रसव से गुजरना पड़ा है।
भय जरा भी मन में न लाना।
भय हो तो मेरा स्मरण करना।
स्मरण के साथ ही भय तिरोहित हो जाएगा।
मेरी आंखें सदा ही तुम्हारी ओर हैं।
जो भी सहायता आवश्यक होगी, वह तत्काल पहुंच जाएगी।
आनंद भी बाढ़ की भांति आ गया है।
उससे भी न घबड़ाना।
जब भी आनंद बढ़े तभी बस प्रभु को धन्यवाद देना और शांत रहना।
जब संन्यास का भाव बढ़ेगा।
उससे भी चिंतित मत होना।
अब तो संन्यास स्वयं ही आ जाएगा।
आ ही रहा है।
बादल तो घिर ही गए हैं।
बस, अब वर्षा होने को ही है।
और हृदय की धरती तो सदा से ही प्यासी है।

24 / संन्यास है--मन से मनातीत में यात्रा

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। संन्यास के लिए मन कैसे-कैसे बचाव खोज रहा था।
क्योंकि, संन्यास मन की मृत्यु जो है।
पर साहस किया तुमने--उठ सके मन के ऊपर।
तो जाना वह, जो कि परमानंद है।
मन है संसार।
मनातीत है सत्य।

संन्यास मन से मनातीत में यात्रा है।
अब जो पाया है उसकी खबर औरों तक भी पहुंचाओ।
जो जाना है उसे औरों को भी जनाओ।
अब तो तुम भी उपकरण हो गए प्रभु के।
अब उसे बोलने दो--तुम उसकी वाणी बनो।
अब उसे गाने दो--तुम उसकी बांसुरी बनो।

25 / संन्यास और गृहस्थी का मेल परमात्मा पर छोड़

प्यारी साधना,
प्रेम। पूछा है तूनेः "मनःस्थिति संन्यासी की और परिस्थिति गृहस्थी की--इनमें मेल कैसे करें?"
मेल तू करना ही नहीं--वह कठिन कार्य प्रभु पर ही छोड़!
क्योंकि, वह ऐसे मेल करने में कुशल भी है और अनुभवी भी।
संसार और स्वयं का भी उसने मेल किया है--शरीर और आत्मा का भी।
उसके लिए तो जैसे कहीं द्वंद्व है ही नहीं।
द्वंद्व अज्ञान में ही है।
ज्ञान में द्वंद्व नहीं है।
इसलिए अज्ञान में मेल बिठाना पड़ता है, फिर भी बैठता नहीं--बैठ सकता ही नहीं।
और ज्ञान में मेल बैठ ही जाता है, क्योंकि विपरीत संभव ही नहीं है।
तू मेल बिठाने में मत पड़ना--अन्यथा स्थिति और भी बेमेल हो जाएगी।
तू बेमेल को स्वीकार कर ले और प्रार्थनापूर्वक जीती चल।
फिर किसी दिन पाएगी कि बेमेल कहीं है ही नहीं।
स्वीकृति उसकी मृत्यु है।

26 / अंततः संन्यास का संकल्प

प्रिय सुमित्रा,
प्रेम। संन्यास का मन है तो मन से तो संन्यास ले ही लो।
बाह्य परिवर्तन की जब सुविधा मिले तब कर डालना।
स्वयं को संन्यास में ही जानो और उसी भांति जियो।
फिर जब परिवार और प्रियजनों को तुम्हारे जीवन-रूपांतरण की प्रतीति होगी तो वे भी बाधा नहीं बनेंगे।
अंततः तो वे भी तुम्हारे मंगल की ही कामना करते हैं न!

27 / संन्यास है रूपांतरण की कीमिया

प्रिय विजय मूर्ति,
प्रेम। संन्यास की कीमिया (अल्केमी) ऐसी ही है।
निर्णय लेते ही जीवन रूपांतरित होने लगता है।
निर्णय (डिसीजन) साधारण घटना नहीं है।
क्योंकि, संन्यास का निर्णय संकल्प भी है और समर्पण भी।
अब तुम वही नहीं हो जो कि संन्यास के पूर्व थे।
इसलिए, पुरानी आदतें अपने आप बिखर गई हैं तो आश्चर्य नहीं है।
असल में उनके संगठन का पुराना केंद्र ही जब टूट गया है तो उनके बचे रहने का कोई भी उपाय नहीं है।

28 / नव-संन्यास को समझने में पुरानी धारणाओं की कठिनाइयां

प्यारी धर्म सरस्वती,
प्रेम। संन्यास के संबंध में पुरानी धारणाओं के कारण प्रियजनों को समझने में कठिनाई होती है, जो कि स्वाभाविक है।
लेकिन उससे चिंता में न पड़।

हां--उन्हें संन्यास की नयी दृष्टि को सादर समझाने की कोशिश जरूर कर।
जो तुझे प्रेम करते हैं, वे निश्चय ही तेरी स्थिति को समझ सकेंगे।
और तू उनकी शुभकामनाएं भी पा सकेगी।
संकल्प को तो पूरा करना है।
साधना को तो सिद्धि तक पहुंचाना ही है।
निश्चय ही मार्ग में अनेक बाधाएं आएंगी, उन्हें भी साधना में सहयोगी बनाना है।
प्रभु के प्रति समग्र समर्पण से आगे बढ़ और चिंताएं उस पर ही छोड़ दे।

29 / संन्यास है--जीवन को उत्सव बना लेने की कला

प्रिय भक्ति वेदांत,
प्रेम। प्रभु से उसके समस्त रूपों में प्रेम ही प्रार्थना है।
जहां देखो--उसे ही देखो।
जो सुनो--उसमें उसे ही सुनो।
फिर जीवन--मात्र जीना ही उत्सव हो जाता है।
जीवन को उत्सव--बेशर्त उत्सव बना लेने की कला ही संन्यास है।

30 / स्वयं की खोज ही संन्यास है

प्रिय योग उमा,
प्रेम। भूलो बाहर को और डूबो प्रभु में।
बाहर दुख है।
और नरक है।
भीतर और केवल भीतर ही सुख है।
या, स्वर्ग है।
खोजो स्वयं में ही उस बिंदु को जिसके कि पार और भीतर नहीं है।
यही खोज संन्यास है।
संन्यास में, परिस्थिति की बदलाहट संन्यास नहीं है।
परिस्थिति नहीं--मनःस्थिति बदलनी है।

31 / संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम। बाह्य और अंतस में समस्वरता लाओ।
पदार्थ और परमात्मा में विरोध नहीं है।
घर और मंदिर को दो जाना कि उलझे।
संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है।
एक को ही देखो दसों दिशाओं में।
एक को ही जीओ श्वास-प्रश्वास में।
क्योंकि, एक ही है।
लहरों की अनेकता भ्रम है।
सागर का ऐक्य ही सत्य है।

32 / नया नाम--पुराने से तादात्म्य तोड़ने के लिए

प्रिय योग संबोधि,
प्रेम। नया दिया है नाम तुझे--नये व्यक्तित्व के जन्म के लिए।
पुराने से तादात्म्य टूटे--शृंखला विशृंखल हो इसलिए।
अंतराल पड़े बीच में--अलंघ्य खाई निर्मित हो इस आशा में।
भूल जा जो थी--भूल जा उसे जो स्वप्न की भांति आया और जा चुका है।
और स्मरण कर उसका जो सदा है--सनातन और नित नवीन।
चिर नूतन को पहचान।
यद्यपि वही अनादि भी है।

33 / संन्यासी जाएंगे अमृत संदेश बांटने

प्यारी योग तरु,
प्रेम। निश्चय ही संदेश को उन सब तक पहुंचाना ही होगा जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
और बहुत हैं जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
ऐसे ही जैसे कि चातक स्वाति-नक्षत्र की बाट जोहता है।
और वे प्यासे लोग पृथ्वी के कोने-कोने में हैं।
तुम्हें अमृत की खबर लेकर उन तक जाना होगा।
सब सीमाएं तोड़कर--सब सरहदों के पार।
उस महाकार्य के लिए ही तो तुम संन्यासियों-संन्यासिनियों को निर्मित
कर रहा हूं।
मनुष्य की चेतना में एक बड़ी उत्क्रांति की घड़ी निकट है और मैं उसकी ही पूर्व तैयारी में लगा हूं।

34 / गैरिक वस्त्र साधक के लिए मंगलदायी

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम। जब तक शरीर-भाव आमूल तिरोहित नहीं होता है तब तक वस्त्रों का
भी मूल्य है।
गैरिक वस्त्र उस रंग के निकटतम हैं जो कि शरीर-भाव से अशरीर-भाव में प्रवेश करते समय प्रकट होता है।
उनकी उपस्थिति साधक के लिए मंगलदायी है।
रंग, ध्वनि, गंध, सभी का चित्त-दशाओं से संबंध है।
प्रत्येक का आघात भिन्न है और भिन्न तरंग-जालों का स्रोत है।
अस्तित्व में जो क्षुद्रतम प्रतीत होता है वह भी विराटतम से अनंत रूपों से संबद्ध है।
पदार्थ-परमाणु (एटम) में विज्ञान ने अनंत ऊर्जा का उदघाटन किया है।
वह सभी आयामों में सत्य है।

35 / नव-संन्यास आंदोलन का महत कार्य

प्यारी योग तरु,
प्रेम। निश्चय ही जो मुझे कहना है वह कहा नहीं जा सकता है।
और जो कहा जा सकता है वह मुझे कहना नहीं है।
इसलिए ही तो इशारों से कहता हूं--शब्दों के बीच छोड़े अंतरालों से कहता हूं।
विरोधाभासों (पैराडाक्सेज) से कहता हूं या कभी न कह कर भी कहता हूं।
धीरे-धीरे इन संकेतों को समझनेवाले भी तैयार होते जा रहे हैं और न समझनेवाले दूर हटते जा रहे हैं--इससे काम में बड़ी सुविधा होगी।
नव-संन्यास आंदोलन से इन संकेतों के बीज पृथ्वी के कोने-कोने तक पहुंचा देने हैं।
और हजार फेंके गए बीजों में यदि एक भी अंकुरित हो जाए तो यह रिकार्ड तोड़ सफलता है।

36 / संन्यास के संस्कार--पिछले जन्मों के

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारा यह लगना ठीक ही है कि जैसे मैं चौबीस घंटे तुम्हारे साथ हूं।
हूं ही।
बदलना है तुम्हें।
नया जन्म देना है तुम्हें।

तो तुम्हारा पीछा करना ही पड़ेगा न?
प्रभु के सैनिक तो तुम हो ही--बस वर्दी पहन कर पंक्ति में खड़े भर हो जाने की देर है।
और वह भी शीघ्र ही हो जाएगा।
तुम्हारी नियति की रेखाएं बहुत साफ हैं और तुम्हारे संबंध में आश्वासनपूर्वक भविष्यवाणी की जा सकती है।
विगत दो जन्मों के तुम्हारे संस्कार भी संन्यासी के हैं--तुम्हारी हड्डियां, तुम्हारे मांस, तुम्हारी मज्जा में फकीरी की गहरी छाप है।
अब जो बीज है उसे वृक्ष बनाना है और जो संभावना है उसे सत्य करना है।
और मैं एक माली की भांति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

37 / प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है

प्यारी साधना,
प्रेम। प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है।
लेकिन, उन अभागों के लिए क्या कहा जाए जो कि उसके द्वार की ओर पीठ किए
ही खड़े रहते हैं।
और कभी-कभी जब द्वार ही उनके सामने आ जाता है तब भी वे आंखें बंद कर लेते हैं!
अपात्र तो तू है ही नहीं; क्योंकि अपात्र कोई भी नहीं है।
और अभागी भी नहीं है।
द्वार तेरे सामने है--नाच, गा और प्रवेश कर।
धर्म है एक उत्सव।
गंभीर, उदास और रुग्ण चेहरों की वहां कोई भी गति नहीं है।

38 / सहजता ही संन्यास है

प्रिय आनंद आलोक,
प्रेम। सहजता ही संन्यास है।
सहज बहो--जैसे तिनका बहता है सरिता में।
तैरे कि डूबे।
बचाया स्वयं को कि मिटे।

39 / संन्यास, प्यास और स्वयं का दांव

मेरे प्रिय,
प्रेम! नहीं--प्यासे नहीं रहोगे।
देर है--अंधेर नहीं।
और देर भी है तो स्वयं ही के कारण।
प्यास पकेगी तब ही तो कुछ होगा?
फिर कच्ची प्यास को छेड़ना उचित भी नहीं है।
पकने दो प्यास को।
गहन होने दो--तीव्र होने दो।
झेलो पकने की पीड़ा।
झेलनी ही पड़ती है, क्योंकि निर्मूल्य कुछ भी नहीं है।
मूल्य चुकाओ।
गुजरो जीवन से।
दुख से--संताप से।
नरकों से--स्वर्गों की आशा में।
बनाओ भवन ताशों के--क्योंकि और किसी प्रकार के भवन पृथ्वी पर बनते ही नहीं हैं!
और हवा के झोंके जब उन्हें गिरा दें--तो रोओ।
टूटो और स्वयं भी उनके साथ गिरो।

तैराओ नावें कागजों की महासागरों में--क्योंकि आदमी और किसी भांति की नावें बनाने में समर्थ ही नहीं है।
और फिर जब लहरों के थपेड़े उन्हें डुबा दें--तो पछताओ जैसे कि सुखद-स्वप्न टूट जाएं तो कोई भी पछताता है।
और ऐसे ही यात्रा होगी।
और ऐसे ही अनुभव शिक्षा देंगे।
और ऐसे ही ज्ञान जगेगा।
और पकेगी प्यास।
और तुम स्वयं को दांव पर लगा उसे खोजोगे जो कि समस्त प्यासों के पार
ले जाता है।
वह तो निकट ही है--बस तुम्हारी ही स्वयं को दांव पर लगाने की देर है।